अहिर्बुध्न्यसंहिता

(पाञ्चरात्रागमान्तर्गता)

डॉ॰ सुधाकर मालवीय

।। श्रीः ।।
व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
120

—*—

अहिर्बुध्न्यसंहिता

(श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गता)

'सरला' हिन्दीटीकोपेता

सम्पादकः व्याख्याकारश्च
डॉ. सुधाकर मालवीयः
एम. ए. पीएच्. डी., साहित्याचार्य
संस्कृत-विभाग : कला-संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

अहिर्बुध्न्यसंहिता

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली-110007
दूरभाष : 23856391; 41530902

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
प्रथम संस्करण 2007
मूल्य 450.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वांराणसी-221001
दूरभाषा : 2420404

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाषा : 2335263

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
दूरभाषा : 32996391

मुद्रक
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

The

VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

120

AHIRBUDHNYA-SAṂHITĀ

OF THE
PĀÑCARĀTRĀGAMA

With the Sarala Hindi Translation

Edited & Translated by

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA

M. A., Ph. D. Sahityacarya

Department of Sanskrit : Arts Faculty,
Banaras Hindu University
Varanasi - 5

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

Publishers:
© **CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN**
(Oriental Publishers & Distributors)
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 23956391

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37 / 117, Gopal Mandir Lane
Post Box No.1129
VARANASI 221001
Telephone : 2335263; 2333371

*

Sole Distributors :
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 2420404

Computer Type-setters :
Malaviya Computers
Varanasi

Printers :
A. K. Lithographers
Delhi

काशी के पाञ्चरात्र आगम के एकमात्र
पारदृश्वा विद्वान् मेरे गुरुकल्प
प्रोफेसर व्रजवल्लभ द्विवेदी
के कर कमलों में सादर
समर्पित

सुधाकर मालवीय

प्राक्कथन

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ —यजुर्वेद ३१.१८

उन्हीं आदित्य (सूर्य मण्डलस्थ) रूप परम पुरुष को जानकर कोई भी मृत्यु का उल्लङ्घन कर सकता है क्योंकि मोक्ष के लिए कोई अन्य मार्ग नहीं है।

यह तभी सम्भव है जब हम भगवान् विष्णु के स्वरूप, उनके गुण तथा ऐश्वर्य का चिन्तन करें। भगवान् विष्णु की शक्ति महालक्ष्मी हैं। यह चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका के समान भावाभाव रूप दोनों अवस्थाओं में उनका अनुगमन करने वाली महान् पतिव्रता हैं। इस प्रकार महालक्ष्मी विष्णु से अभिन्न होते हुए भी भिन्न रूपा हैं। यह ज्ञान, आनन्द एवं क्रियामयी हैं। अनासक्त होते हुए भी यह आसक्त रहने वाली हैं। यह सन्मात्र, पूर्णा, रिक्ता एवं ऋतम्भरा हैं। यद्यपि समस्त प्रपञ्च का भेद उनमें अस्त हो जाता है जब कि सारे भेद उन्हीं से प्रगट होते हैं। वे षडध्व विषय से परे होने पर भी षडध्वविषयात्मिका हैं। इस प्रकार की महालक्ष्मी का स्वरूप, गुण एवं वैभव का वर्णन प्रस्तुत पाञ्चरात्र आगम गत अहिर्बुध्न्य संहिता में हुआ है।

भगवान् विष्णु की उत्प्रेक्षारूपिणी शक्ति, जिसका दूसरा नाम 'सुदर्शन' है, वही ब्रह्मदेव की पङ्कजा शक्ति हैं। भगवान् विष्णु का सङ्कल्प 'सुदर्शन' रूप में, जिसे भावक कहते हैं, स्थित है। अत: जगद्रक्षण रूप मन्त्र, यन्त्र तथा अस्त्र का विस्तार रूप से वर्णन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।

अहिर्बुध्न्य संहिता का प्रस्तुत संस्करण इदं प्रथमतया कृत हिन्दी व्याख्या के साथ भगवान् विष्णु एवं उनकी शक्ति महालक्ष्मी के उपासकों के सम्मुख प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ का मूल आड्यार संस्करण पर ही आधृत है। 'सरला' हिन्दी व्याख्या में पूर्णरूप से आड्यार संस्करण से सहायता ली गई है। इसके लिए मैं फ्रेडरिक ओटो श्रोडर, पण्डित एम.डी. रामानुजाचार्य एवं पण्डित वी. कृष्णमाचार्य आदि विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ एवं पाञ्चरात्र सम्प्रदाय पर कार्य करने के लिए मुझे प्रथमत: प्रोफ़ेसर जी.सी. पाण्डेय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, ने ही प्रोत्साहित किया था। १९८० के दशक में प्रोफेसर पाण्डेय जी हमारे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्यकारिणी के सदस्य थे।

वाद में कुछ वर्षो तक ये मानित यू.जी.सी. प्रोफेसर भी थे। १९८५ से लेकर मैंने पाञ्चरात्र आगम के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद कर डाले और इसी कड़ी में प्रथम तन्त्र ग्रन्थ लक्ष्मीतन्त्र २००३ में चौखम्बा से प्रकाशित हुआ। अब अहिर्बुध्न्य संहिता का हिन्दी अनुवाद चौखम्बा से ही प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकार आगम शास्त्र के कार्य में संलग्न कराने वाले गुरुकल्प प्रोफेसर जी.सी. पाण्डेय का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

गुरुकल्प प्रोफेसर व्रजवल्लभ द्विवेदी की मेरे ऊपर १९७२ से ही कृपा दृष्टि बनी हुई है। काशीस्थ 'तारा प्रेस' कमच्छा में अनेक वर्षो तक सम्पादन के दौरान उनसे शास्त्रचर्चा हुआ करती थी। सम्प्रति काशी में पाञ्चरात्र आगम के ये एकमात्र विद्वान् हैं। सात्वत शास्त्र के निष्णात एवं पारदृश्वा विद्वान् के कर कमलों में यह ग्रन्थ मैं आशीर्वाद की कामना से सादर समर्पित कर रहा हूँ।

तन्त्र एवं पाञ्चरात्र शास्त्र के इस अनुपम ग्रन्थ में जो कुछ भी मेरी गति हो सकी है अथवा मैं इस शास्त्र को जो कुछ समझ सका हूँ, इसमें मेरे पूज्य गुरुवर्य पं० हीरामणि मिश्र का ही कृपा प्रसाद है। उनकी अमोघ कृपा मेरे ऊपर बनी रहे और मुझे आशीर्वाद प्रदान करते रहें। मुझमें किसी भी प्रकार का अहङ्कार कदापि न आवे। इसी कामना के साथ उनके चरणों में शतशः प्रणाम है।

आगमशास्त्र का यह अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ जो आज इस रूप में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत हो सका है उसके लिए मैं 'चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान' के संचालक श्री वल्लभदास गुप्त का हृदय से आभारी हूँ। मैं अपने सहयोगी सम्पादक श्री चक्रपाणिभट्ट को उनके प्रूफ संशोधन के सहयोग के लिए धन्यवाद प्रकाश करना नहीं भूल सकता। मेरे चिरञ्जीव श्रीरामरञ्जन एवं श्रीचित्तरञ्जन ने कम्प्यूटर कार्य तथा सम्पादन में मेरी भरसक सहायता की है। उनकी स्नेहमयी माता का आध्यात्मिक एवं नैतिक सहयोग ही ग्रन्थ की पूर्णता में कारण है। भगवान् विष्णु एवं भगवती पराम्बा महालक्ष्मी इनका निरन्तर अभ्युदय करें तथा सदैव प्रसन्न रक्खें। अन्ततः भगवान् विष्णु एवं महालक्ष्मी से प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ से मानवमात्र का अजस्र कल्याण करते रहें।

गंगासप्तमी, ४.५.२००६
वैशाख शुक्ल, वि.सं. २०६३
ए, ४/३१, शीशमहल कालोनी
कमच्छा, वाराणसी २२१०१०
दूरभाष : २४५२७०९

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीयः

भूमिका

सानन्दमानन्दवने वसन्तम् आनन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

भगवान् शङ्कर स्वयं आनन्दकन्द हैं और वह आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशी क्षेत्र) में निवास करते हैं । वह पापसमूह का नाश करने वाले हैं । उन अनाथों के नाथ काशीपति श्रीविश्वनाथ की मैं शरण में हूँ ।

'आगम' का अर्थ—

आगम शब्द की व्युत्पत्ति वाचस्पति मिश्र ने योगभाष्य की तत्त्ववैशारदी व्याख्या में इस प्रकार किया है—**'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयनि:श्रेयसोपाय: स आगम:'**—अर्थात् जिससे अभ्युदय (लौकिक कल्याण) तथा नि:श्रेयस (मोक्ष) के उपाय बुद्धि में आते हैं वह 'आगम' कहलाता है, अर्थात् अभ्युदय और नि:श्रेयस के उपायों का प्रतिपादक शास्त्र ही 'आगम' है । इस व्युत्पत्ति से ही निगम से पार्थक्य द्योतित हो जाता है । वस्तुत: 'निगम' कर्म, उपासना तथा ज्ञान का स्वरूप बतलाता है और 'आगम' इनके साधनभूत उपायों का रूप समझाता है । इस प्रकार दोनों ही परस्पर एक दूसरे के उपकारक शास्त्र हैं । जैसे अद्वैत वेदान्त नाना युक्तियों के सहारे अद्वैत तत्त्व की उपपत्ति करता है उसी प्रकार आगम शास्त्र उसी अद्वैत तत्त्व की साधना का प्रकार बतलाता है । 'आगम' के सात लक्षण इस प्रकार हैं—

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवातानां यथार्चनम् ।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विध: ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधा: ॥ (वाराहीतन्त्र)

१. **सृष्टि**—विश्व का प्रपञ्च किस प्रकार उदित हुआ ।

२. **प्रलय**—विश्व का तिरोभाव किस प्रकार होता है ।

३. **देवार्चन**—देवताओं की सर्वाङ्गपूर्ण पूजा का विधान ।

४. **सर्वसाधन**—सब सिद्धियों की प्राप्ति के उपाय ।

५. **पुरश्चरण**—मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना ।

६. **षट्कर्म**— शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्मों का साधन।

७. **ध्यानयोग**—अभीष्ट देवता के स्वरूप का एकाग्र मन से चिन्तन, जिससे देवता का प्राकट्य सम्पन्न होता है।

इस प्रकार वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट ज्ञान का क्रियात्मक रूप या विधानात्मक आचार ही आगमों का मुख्य विषय है। क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है—'**ज्ञानं भारः क्रियां विना**।'

तन्त्र में प्रथमतः देवता के स्वरूप, गुण एवं कर्म आदि का चिन्तन किया जाता है और तद्विषयक मन्त्रों का उद्धार किया जाता है, तब उन मन्त्रों को यजन में संयोजित कर देवता के ध्यान और उपासना का वर्णन किया जाता है। यह उपासना पाँचो अङ्गों से समन्वित होने पर पुष्ट मानी जाती है—पटल, पद्धति, कवच, स्तोत्र तथा सहस्रनाम। इस प्रकार तन्त्रों का वैशिष्ट्य 'क्रिया' है, जैसे वेदों का वैशिष्ट्य 'ज्ञान' है। आगम में दोनों ही है। तन्त्रों में सामान्य रूप से सृष्टि और प्रलय का प्रतिपादन नहीं होता है क्योंकि उसका मुख्य विषय 'क्रिया' है।

तन्त्र का प्राधान्य कलि में क्यों ?

जहाँ जप, तप आदि की सिद्धि के लिए सत्य युग में तीन हजार छह सौ दिन लगते हैं वहाँ कलियुग में एक ही अहोरात्र पर्याप्त है। साधन की सरलता ही कलि की विशिष्टता है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैः त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम्॥

(विष्णुपुराण ६.२.१७)

तन्त्र इसी कलियुग की महिमा का प्रतिपादन कर उसका क्रियान्वयन भी करता है।

कृते श्रुत्व्युक्त आचारः त्रेतायां स्मृति सम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः॥ (कुलार्णव तन्त्र)

सत्य युग में श्रुति (वेद) के द्वारा प्रतिपादित आचार की प्रधानता होती है, त्रेता में स्मृति की, द्वापर में पुराण की और कलियुग में आगम तथा तत्प्रतिपादित आचार की प्रधानता रहती है।

वस्तुतः कलियुग में मानवमात्र की आध्यात्मिक शक्ति में क्षीणता दृष्टिगोचर होती है। इसके लिए त्याग, तितिक्षा तथा धैर्य की आवश्यकता है। साधक को बाह्य और आन्तरिक शुद्धि चाहिए। ये यथेष्ट आचरण कलियुग में सम्भव नहीं हैं। तन्त्र में इसकी इतनी आवश्यकता नहीं है। फिर तन्त्र में तो स्त्री तथा शूद्र दोनों का अधिकार है। निगम के क्रियाकलाप त्रिवर्ण के लिए सीमित हैं और फिर उनमें से अधिकांश कलिवर्ज्य भी हैं। किन्तु आगम ने अपना द्वार प्रत्येक वर्ण के लिए खोल रक्खा है। यहाँ किसी प्रकार का

भेदभाव नहीं, जाति पाँति की विभिन्नता नहीं । अत: तन्त्र या आगम का यह सार्वभौम तथा सार्ववार्णिक रूप उसकी लोकप्रियता का कारण है ।

कठिनाई इतनी ही है की तान्त्रिक गुरु प्रयोग के द्वारा अधिकारी शिष्य को ही शास्त्र की सत्यता का प्रमाण देकर उसे 'तन्त्र' की व्यावहारिक शिक्षा देते हैं । योग्य गुरु और योग्य अधिकारी शिष्य ही तन्त्र विद्या की चरितार्थता में प्रधान हेतु हैं । फलत: तन्त्र का मार्ग सर्वसाधारण के लिए उन्मुक्त होने पर भी अधिकारी की अपेक्षा रखता है । योग्य गुरु की शिक्षा की उचित समीक्षा की जाय तो फल की सिद्धि में विलम्ब नहीं होता और इसी प्रयोगात्मकता के कारण तन्त्र भी आधुनिक विज्ञान के समकक्ष ठहरता है । आज दोनों की ही मानव मात्र को आवश्यकता है—व्यवहार में विज्ञान की तथा आध्यात्म विद्या में तन्त्र की । महानिर्वाणतन्त्र में कहा भी है—

विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गति: प्रिये ।

आशय यह है कि विना आगम (= तन्त्र) मार्ग के कलि में (आध्यात्मिक) गति नहीं होती ।

आगम की वेदमूलकता—

इस प्रकार निगम (= वेद या श्रुति) में प्रतिपादित ज्ञान का क्रियात्मक अर्थ एवं विधानात्मक आचार आगमों का प्रधान विषय है । संक्षेपत: भारतीय धर्म निगमागममूलक है । इस प्रकार तन्त्र (= आगम) प्रधान रूप से दो श्रेणियों में विभाजित है—१. वेदानुकूल तथा २. वेदविपरीत । कुछ तन्त्रों का मूल वेद है । उसके सिद्धान्त तथा आचार का मूल स्रोत वेद है ।

सामान्यत: तीन प्रकार के आगम ग्रन्थ हैं । १. वैष्णव आगम (पाञ्चरात्र आगम), २. शैवागम (शक्तितन्त्र), तथा ३. शाक्त आगम । इनमें पाञ्चरात्र तथा शैवागम के कतिपय सिद्धान्त वेदमूलक अवश्य हैं, फिर भी प्राचीन ग्रन्थों में इन्हें वेद बाह्य ही माना गया है ।[१] शाक्त आगम की वेदमूलकता के विषय में जनसाधारण में सन्देह है । वस्तुत: यह शाक्तों के सप्तविध आचारों में से मात्र एक ही—वामाचार—की घृणित पूजा पद्धति के कारण सम्पूर्ण शाक्त आगम को लोग अवैदिक ठहराते हैं, परन्तु शाक्तों के सिद्धान्त और आचार के परिशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनमें महती संख्या वेदानुकूल तन्त्रों की ही है । शक्ति की कल्पना यहाँ वैदिक सिद्धान्तों के ही आधार पर की गई है ।[२] अत: आगम के सिद्धान्त एवं निगम के सिद्धान्त से किसी भी प्रकार से अलगाव नहीं है । अनेक शाक्ताचार वैदिक हैं । भेद इतना ही है कि निगम तीन वर्णो (ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में ही सीमित रहता है और आगम सभी शूद्र तथा स्त्रीजनों के लिए भी उन्मुक्त है । निगम ज्ञान प्रधान है और आगम क्रिया प्रधान है ।

---

[१] माहेश्वर तन्त्र ।

[२] ऋग्वेद का वागाम्भृणीसूक्त (१०.१२५) । शक्ति तन्त्र इसी सूक्त के भाष्य रूप में प्रस्तुत है ।

ईश्वर के नि:श्वासभूत होने से वेदों की प्राणाणिकता है । अत: सूत्र रूप से वेदों में और विशद रूप से तन्त्र शास्त्रों में तान्त्रिक साधना के क्रम का विवेचन है और तन्त्र में उनकी पद्धति का विस्तार है । तन्त्र में मन्त्र की प्रमुखता होती है और ये तान्त्रिक मन्त्र वेदों से कभी तो साक्षात् रूप से लिए गए हैं और कभी इन्हें वेदों में 'भूर्भुव: स्व:' आदि व्याहृतियों के समान बीजाक्षरों से संयोजित किया गया है । वैदिक मन्त्रों में 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि मन्त्र से शिव स्वरूप महामृत्युञ्जय (सञ्जीविनी विद्या) की उपासना होती है और अथर्ववेदीय आसुरी मन्त्र से आसुरी विद्या (शक्ति स्वरूपा दुर्गा) की उपासना होती है। महामृत्युञ्जय मन्त्र में भी व्याहृतियों को वैदिक कर्मकाण्ड की पद्धति के अनुसार मन्त्र के आगे और पीछे रक्खा गया है । ऋग्वैदिक गायत्री मन्त्र को भी व्याहृतियों से सम्पुटित कर उपासना की जाती है । आसुरी (दुर्गा) के नवार्ण मन्त्र का दिग्दर्शन हमें उपनिषद में होता है । सम्भवत: मन्त्रोद्धार (संकेत के माध्यम से मन्त्र को श्लोक में प्रस्तुत करने) की पद्धति प्रथमत: यहीं हमें दृष्टिगोचर होती है । बाद में मन्त्र को तन्त्र ग्रन्थों में भी संगोपित करने की प्रक्रिया आचार्यों ने की है जैसा कि अहिर्बुध्न्यसंहिता में हमें प्राप्त होता है ।

ऋग्विधान में शौनक ने सर्वप्रथम ऋक् मन्त्रों का काम्य प्रयोग के अनुसार विधान किया है । बाद में अग्नि पुराण में चारों वेदों के मन्त्रों का काम्य प्रयोग के अनुसार विधान प्राप्त होता है । नारद पुराण मे तान्त्रिक पद्धति और मन्त्र के निर्देश है । पुराण वेदों के उपबृंहण हैं । वेदों को समझने के लिए षडङ्ग की आवश्यकता होती है । उनमें पुराण भी एक अंग माना जाता है । इस प्रकार 'मन्त्र' वेद से उपनिषद के मार्ग से पुराणों में प्रविष्ट होकर अन्तत: तान्त्रिक विस्तार को प्राप्त कर लेते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि आचार्यों ने बहुत परिश्रम करके इन्हे संजोया है । उनके अनुभव इसमें निहित हैं । श्रीविद्या के ही अनेक स्वरूप हमें तन्त्र ग्रन्थों में मिलते हैं । इनमें क से प्रारम्भ होने वाली (कादि मन्त्र की मन्त्रकूट) विद्या और ह से आरम्भ होने वाली (हादि मन्त्र का मन्त्रकूट) विद्या ही अनेक प्रकार से वर्ण विपर्यय करके मन्त्रमहोदधि में ३२ प्रकार की बताई गई है । वसिष्ठ, दुर्वासा, दत्तात्रेय आदि अनेक आचार्यों द्वारा श्रीविद्या की उपासना की गई है । जिससे श्रीविद्या के भेद उनके अनुभव के कारण हो गए हैं । नीलसरस्वती तन्त्र में वसिष्ठ के द्वारा श्रीविद्या की उपासना की बात कही गई है ।

तन्त्र के अनुसार 'हृत्-प्रदेश' कमल के समान है । जहाँ पर आत्मस्वरूप परतत्त्व परमात्मा का वास है । इस हृत्कमल पर ईष्टदेव को पहचान कर पूजन करना चाहिए । मानसिक पूजा का संकेत ऐतेरेय ब्राह्मण में किया गया है और इसे श्रेष्ठ भी माना गया है । तान्त्रिक पद्धति के अनुसार सगुण स्वरूप की उपसना हमें हृत्कमल पर करनी होती है । इसी हृत्कमल को सगुण रूप से यन्त्र बनाकर हम दृष्टिपथ में ला देते हैं । यन्त्र में मुख्य रूप से कमल पर पूजा की जाती है । यह कमल पङ्खुड़ियों के आवरण वाला होता है । अत: सभी पङ्खुड़ियों के अलग-अलग आवरणों में आवरण पूजा का विधान तन्त्र में किया गया है ।

पाञ्चरात्र आगमों का प्रयोजन—

पाञ्चरात्रागमों में प्रधानतया ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या—इन्हीं चार प्रकार के विषयों का ही विवेचन होता है । १. **ज्ञान**—ब्रह्म, जीव तथा जगत् तत्व के आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन तथा सर्ग अर्थात् सृष्टि का विशेष निरूपण । २. **योग**—मुक्ति के साधनभूत योग एवं योग से सम्वन्धित प्रक्रियाओं का वर्णन । ३. **क्रिया**—देवालय का निर्माण, मूर्ति की प्रतिष्ठा एवं मूर्ति के विभिन्न आकार प्रकार का साङ्गोपाङ्ग वर्णन । ४. **चर्या**—आह्निक क्रिया, यन्त्रों के निर्माण की प्रक्रिया तथा मूर्तियों एवं यन्त्रों के पूजन का विस्तृत विवेचन, वर्णाश्रम का परिपालन, पर्व तथा उत्सव के अवसर पर विशिष्ट पूजा का विधान । इन चारों में से आधे से भी अधिक भाग में चर्या का ही वर्णन होता है । शेष आधे भाग में से सबसे अधिक क्रिया, क्रिया से कम ज्ञान और सबसे कम योग का विवेचन है । अत: 'चर्या' और 'क्रिया' का व्यावहारिक प्रतिपादन ही पाञ्चरात्रागमों का मुख्य प्रयोजन है । यहाँ प्रमेयों की मीमांसा गौड़ तथा प्रासङ्गिक है । आगमों (तन्त्रों) की शैली के अनुसार हमें सृष्टि एवं आध्यात्म तत्त्व का एक साथ मिश्रित रूप से दिग्दर्शन होता है ।

अहिर्बुध्न्य संहिता की तत्त्व मीमांसा—

पाञ्चरात्रागम के अनुसार परब्रह्म अद्वितीय दु:खरहित, नि:सीम, सुखानुभवरूप, अनादि, अनन्त, सभी प्राणिजात में निवास करने वाला, समस्त जगत् में व्याप्त होकर स्थित रहने वाला, निर्वद्य एवं निर्विकार है । इस विषय में उस परब्रह्म की समता उस महासागर से दी जाती है जो तरङ्गरहित होने से नितान्त रूप से प्रशान्त है अर्थात् अतरङ्गार्णवोपम है । वह प्राकृतगुणस्पर्शहीन तथा अप्राकृत गुणों का आस्पद है । वह आकार, देश तथा काल से निरवच्छिन्न होने के कारण पूर्ण, नित्य तथा व्यापक है । वह देय–उपादेय से रहित है तथा इदन्ता (स्वरूप) ईश्वरत्व, और इयत्ता (परिमाण) इन तीनों से अनवच्छिन्न है । वह षाड्गुण्य योग से 'भगवान्' हैं । समस्त भूतवासी होने से वही 'वासुदेव' है तथा समस्त आत्माओं में श्रेष्ठ होने के कारण वही 'परमात्मा' हैं । इसी प्रकार गुणों की विशेषता के कारण वह अव्यक्त, प्रधान, अनन्त, अपरिमित, अचिन्त्य, ब्रह्म, हिरण्यगर्भ तथा शिव आदि नामों से प्रसिद्ध है ।

पाञ्चरात्रागम में परब्रह्म के उभय–निर्गुण तथा सगुणभाव स्वीकृत हैं । परमात्मा त्रिविध परिच्छेद शून्य है वह न भूत है, न वर्तमान है और न भविष्य, न ह्रस्व है, न दीर्घ, न स्थूल है, न अणु, न आदि है, न मध्य है और अन्तविहीन भी है । इस प्रकार वह सब द्वन्द्वों से विनिर्मुक्त, सर्व उपाधि से विवर्जित सब कारणों का कारण, षाड्गुण्यरूप परब्रह्म है ।[१]

षाड्गुण्य—

विष्णु 'निर्गुण' होकर भी 'सगुण' हैं । वह अप्राकृत गुणों से रहित होने के

---

[१] सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणाम् ॥ —अहि०सं० २.५३

कारण 'निर्गुण' है और षड्गुण युक्त होने से 'सगुण' हैं। जगत् के व्यापार के लिए कल्पित इन छह गुणों के नाम—१. ज्ञान, २. शक्ति, ३. ऐश्वर्य, ४. बल, ५. वीर्य एवं ६. तेज हैं।

१. अजड़, स्वात्म सम्बोधी (=स्वप्रकाश), नित्य सर्वापगाही गुण को **'ज्ञान'** कहते हैं। ज्ञान ब्रह्म का स्वरूप भी है तथा उसका गुण भी है।

२. **शक्ति** से अभिप्राय है जगत् का उपादान कारण।

३. **ऐश्वर्य** का अर्थ है स्वातन्त्र्यपरिबृंहितं जगत्कर्तृत्व।

४. जगत् का निर्माण करने में भगवान् नारायण को तनिक भी आभास नहीं होता। इस श्रमाभाव को **'बल'** कहते हैं।

५. जगत् के उपादान होने पर भी विकार राहित्य की पाञ्चरात्रगत शास्त्रीय संज्ञा **'वीर्य'** है। कार्यावस्था में जगत् के समस्त उपादान कारणों में विविध विकार दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु निर्विकार ब्रह्म (=भगवान्) में जगदुपादान होने पर भी किसी प्रकार के विकार का उदय नहीं होता। यही विकार राहित्य है।

६. जगत् की सृष्टि में सहकारी की अपेक्षा न होना अर्थात् अनावश्यकता को **'तेज'** कहते हैं।

पाञ्चरात्र की ब्रह्मकल्पना—

इस प्रकार ब्रह्म में जगत् की उभयविध कारणता (=अर्थात् उपादान कारणता तथा निमित्त कारणता) है। ब्रह्म बिना किसी सहायता के स्वतन्त्रतापूर्वक अपने से ही इस दृष्टि का उत्पादक है। 'सर्वकारणकारण' विशेषण इसी सर्वशक्तिमत्ता तथा स्वतन्त्रता को द्योतित करता है।[1] वासुदेव का ज्ञान ही उत्कृष्ट रूप है, शक्त्यादि अन्य पाँच गुण ज्ञान के गुण भगवान की शक्ति होने से सर्वदा तत्सम्बद्ध रहते है।

भगवान् की शक्ति—

भगवान् की शक्ति को सामान्यत: 'लक्ष्मी' नाम से अभिहित किया गया है।[2] भगवान् शक्तिमान हैं तथा लक्ष्मी उनकी शक्ति हैं। भगवान् तथा लक्ष्मी का पारस्परिक सम्बन्ध आपातत: अद्वैत प्रतीत होता है। परन्तु दोनों में अद्वैत नहीं है।

नारायणी शक्ति का रूप—

प्रलय दशा में जब प्रपञ्च का क्षय हो जाता है तब भी भगवान् तथा लक्ष्मी का नितान्त ऐक्य नहीं होता। उस समय भी नारायण तथा नारायणी शक्ति मानो[3] एकत्व धारण करते हैं।

---

[1] सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्॥ —अहि०सं० २.५३

[2] अहि०सं० ८.१४-१५।

[3] व्यापकावति संश्लेषादेकं तत्त्वमिव स्थितौ। अहि०सं० ४.७८

शक्ति तथा शक्तिमान का सम्बन्ध—

धर्म तथा धर्मी, अहन्ता तथा अहं, चन्द्रिका तथा चन्द्रमा, आतप तथा सूर्य के समान ही शक्ति तथा शक्तिमान् में अविनाभाव या समभाव सम्बन्ध स्वीकृत किया गया है। किन्तु मूल में तो भेद रहता ही है।[१]

भगवान् की शक्ति—

भगवान् की आत्ममूला शक्ति आरम्भकाल में किसी अचिन्त्य कारण के वश कहीं उन्मेष प्राप्त करती है, वह जगद् रचना व्यापार में प्रवृत्त होती है।[२] विष्णु की स्वातन्त्र्य रूपी शक्ति भिन्न-भिन्न गुणों के कारण विभिन्न नामों से पुकारी जाती है। आनन्दा, स्वतन्त्रा, लक्ष्मी, श्री, पद्मा आदि उसी के नामान्तर हैं। उसी लक्ष्मी के सृष्टिकाल में दो रूप हो जाते हैं—१. क्रियाशक्ति, तथा २. भूतशक्ति।

भगवान् की जगत् सिसृक्षा (जगत् उत्पन्न करने के संकल्प) को क्रियाशक्ति कहते हैं[३] और जगत् की परिणति (भवनं भूतिः) की संज्ञा 'भूतशक्ति' है। अहिर्बुध्न्य संहिता में ही लक्ष्मी को इच्छाशक्ति तथा सुदर्शन को 'क्रियाशक्ति' कहा गया है।[४] इन दोनों शक्तियों के अभाव में भगवान् स्वयं अकिञ्चित्कर हैं। शक्तिद्वय के सद्भाव में ही भगवान् जगत् की सृष्टि, स्थिति, तथा संहति व्यापार के उत्पादक हैं। लक्ष्मी शक्ति के उस प्रथम आविर्भाव को 'शुद्ध-सृष्टि' या गुणोन्मेष कहते हैं। तब तरङ्गरहित प्रशान्त समुद्र में प्रथम बुद्बुद् के समान परब्रह्म में ज्ञानादि षड्गुणों का प्रथम उदय होता है।[५] इसी शक्ति के विकास से जगत् की सृष्टि सम्पन्न होती है। सृष्टि शुद्ध और शुद्धेतर भेद से दो प्रकार की होती है। इसी के भीतर जयाख्य संहितानुसार शुद्ध सर्ग, प्राधानिक सर्ग तथा ब्रह्म सर्ग का अन्तर्भाव किया जाता है।

शुद्ध सृष्टि—

भगवान् जगत् के परम मङ्गल के लिए अपने ही आप चार रूपों की सृष्टि करते हैं—१. व्यूह, २. विभव, ३. अर्चावतार तथा ४. अन्तर्यामी अवतार।

(१) **व्यूह**—पूर्वोक्त षड्गुणों में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि होती है—

सङ्कर्षण में ज्ञान तथा बल गुण का प्राधान्य रहता है।

---

[१] देवाच्छक्तिमतो भिन्न ब्रह्माणः परमेष्ठिनः। अहि० सं० ३.२५-२७

[२] स्वातन्त्र्यादेव कस्माच्चित् क्वचित् सोन्मेषमृच्छति।
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः॥ अहि०सं० ५.४

[३] क्रियाख्यो योऽयमुन्मेषः स भूतिपरिवर्तकः।
लक्ष्मीमयः प्राणरूपो विष्णोः संकल्प उच्यते॥ अहि०सं० ३.२९-३०

[४] अहि०सं० ३६.५५।

[५] निस्तरङ्गदशायां ते निःसत्ता सक्तचिन्मयाः।
शक्त्यात्मका गुणोन्मेषदशायां ते व्यवस्थिताः। अहि०सं० ५.४२-४३।

प्रद्युम्न में ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणों का आधिक्य रहता है।

अनिरुद्ध में शक्ति तथा तेज का उद्रेक विद्यमान रहता है।

इन तीनों के सर्जनात्मक तथा शिक्षणात्मक द्विविध कार्य होते हैं[१]—

(क) सङ्कर्षण का कार्य जगत् की सृष्टि करना तथा ऐकान्तिक मार्ग (=पाञ्चरात्र तत्त्व) का उपदेश करना है।

(ख) प्रद्युम्न का कार्य ऐकान्तिक मार्ग सम्मत क्रिया की शिक्षा देना है।

(ग) अनिरुद्ध का कार्य क्रियाफल (मोक्ष तत्त्व) का शिक्षण करना है।

वैषम्य दशा में गुण–प्रधान भाव से षड्गुणों की व्यवस्था की जाती है। षाड्गुण्य चारों व्यूहों में सामान्यतः विद्यमान रहता है। वासुदेव को मिलाकर इन्हें 'चतुर्व्यूह' कहते हैं। चतुर्व्यूह भगवद्रूप ही है। परन्तु शङ्कराचार्य के अनुसार[२] वासुदेव से सङ्कर्षण अर्थात् जीव की उत्पत्ति होती है। सङ्कर्षण से प्रद्युम्न अर्थात् मन की तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार की सृष्टि होती है। यही चतुर्व्यूह सिद्धान्त पाञ्चरात्र का विशिष्ट सिद्धान्त माना जाता है। जयाख्य आदि संहिताओं में यह मत नहीं मिलता। परन्तु महाभारत के नारायणीयोपाख्यान[३] तथा लक्ष्मीतन्त्र[४] में निर्दिष्ट होने से यह पाञ्चरात्र का एकदेशीय मत ही प्रतीत होता है।

(२) **विभव**—विभव का अर्थ है 'अवतार'। ये संख्या में ३९ माने जाते हैं[५]। विभव (= अवतार) मुख्य तथा गौड़ दो प्रकार के होते हैं—

(क) मुख्य—जिनकी उपासना भुक्ति के लिए की जाती है।

(ख) गौड़—जिनकी पूजा मुक्ति के लिए की जाती है।

ये ३९ विभव इस प्रकार है—१. पद्मनाभ, २. ध्रुव, ३. अनन्त, ४. शक्त्यात्मा, ५. मधुसूदन, ६. विद्याधिदेव, ७. कपिल, ८. विश्वरूप, ९. विहङ्गम, १०. क्रोडात्मा, ११. वडवावक्त्र, १२. धर्म, १३. वागीश्वर, १४. एकाम्भोनिधिशायी, १५, भगवान् कमठेश्वर, १६. वराह, १७. नरसिंह, १८. पीयूषहरण, १९. श्रीपतिभगवान् देव, २०. कान्तात्मा, २१. अमृतधारक, २२. राहुजित्, २३. कालनेमिघ्न, २४. पारिजातहर, २५. लोकनाथ, २६. शान्तात्मा, २७. महाप्रभु दत्तात्रेय, २८. न्यग्रोधशायी, २९. भगवान् एकशृङ्गतनु, ३०. वामनदेह, ३१. सर्वव्यापी त्रिविक्रम, ३२. नर, ३३. नारायण, ३४. हरि, ३५. कृष्ण, ३६. ज्वलत्परशुधृक्–राम (=परशुराम), ३७. धनुर्धर राम, ३८. वेदविद् भगवान् कल्की, ३९. पातालशयन।

---

[१] अहि० सं० ५.१७–६०।

[२] ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य २.२.४२–४५।

[३] शान्तिपर्व ३३९.४०–४२।

[४] लक्ष्मीतन्त्र ५. ९–१४।

[५] अहि० सं० ५.५०।

(३) **अर्चावतार**—पाञ्चरात्र विधि से पवित्रित किए जाने पर भगवान् की प्रस्तर आदि की मूर्तियाँ भी भगवान् का अवतार मानी जाती हैं। सर्वसाधारण की पूजा में इनका उपयोग होता है। इन्हीं का नाम 'अर्चावतार' है।

(४) **अन्तर्यामी**—भगवान् सब प्राणियों के हृत्पुण्डरीक में वास करते हुए वे उनके समस्त व्यापारों के नियामक हैं। इस रूप का नाम 'अन्तर्यामी' रूप है। यह कल्पना उपनिषदों के आधार पर ही है।[1]

शुद्धेतर सृष्टि—

शुद्ध सृष्टि के आधार पर शुद्धेतर सृष्टि की सत्ता है। इस सृष्टि का क्रम[2] निम्नलिखित है—

प्रद्युम्न → कूटस्थ पुरुष → मायाशक्ति → नियति → काल → सत्वगुण → रजोगुण → तमोगुण → बुद्धि →

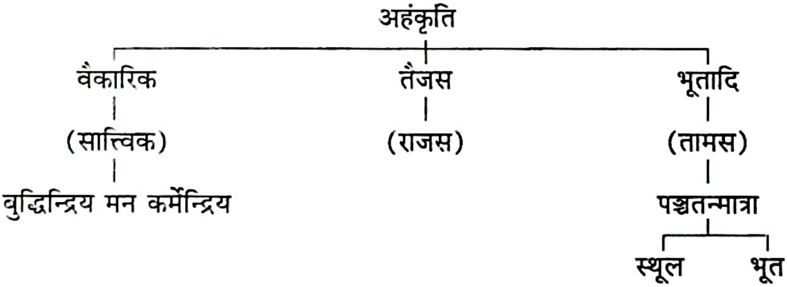

यह क्रम अहिर्बुध्न्यसंहिता में जैसा है वैसा क्रम जयाख्य संहिता का नहीं है। वहाँ वासुदेव से अच्युत और अच्युत से अनन्त की उत्पत्ति मानी गई है। वासुदेव में जब क्षोभ उत्पन्न होता है तो उस उद्वेलन रूप लहर से जो फेन उठता है वही 'अच्युत' हैं। वासुदेव समुद्र रूप हैं। अच्युत सूर्य रूप हैं और 'अनन्त' बादल रूप हैं। 'पुरुष' सत्य और अच्युत भगवान् वासुदेव के अवतार हैं। भगवान् स्थूल रूप से जगत् की सृष्टि करते हैं और सूक्ष्म रूप से जीव में विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार पाञ्चरात्र का सिद्धान्त यद्यपि सांख्य दर्शन से मिलता जुलता है। किन्तु यह क्रम उसके अनेक सिद्धान्तों से भिन्न है। पाञ्चरात्र के अनुसार प्रकृति पुरुष की अध्यक्षता में सृष्टि करती है। सांख्य प्रकृति को स्वतः प्रवृत्त मानता है। परन्तु यहाँ आगम में चुम्बक के सान्निध्य से लोहे की गति की भाँति आत्मच्छुरता से यह प्रकृति कार्य में प्रवृत्त होती है। पाञ्चरात्र मत में तीनों गुणों की सृष्टि क्रमशः एक से दूसरे की होती है। किन्तु सांख्यशास्त्र में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

---

[1] यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो, यं पृथिवी न वेद, यस्य पृथिवी शरीरम्, यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष स आत्माऽन्तर्याम्यमृतः (बृह०उ० ३.७.३)।

[2] अहि०सं० ६.५-१८।

अहिर्बुध्न्यसंहिता में जीव-तत्त्व का सिद्धान्त—

इस जगत् के अधिपति भगवान् नारायण हैं । उनका स्वातन्त्र्य अलौकिक होता है । समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेने पर भी वही वासुदेव राजा के समान लीलापूर्वक क्रीडा किया करते हैं । यह जगत् उन्हीं परतत्त्व वासुदेव की लीला का विलास है । भगवान् के 'संकल्प' अथवा 'इच्छाशक्ति' का नाम 'सुदर्शन' है । यह इच्छाशक्ति अनन्त होने पर भी प्रधानरूप से पाँच प्रकार की है—१. उत्पत्ति, २. स्थिति, ३. विनाशकारिणी शक्तियाँ, ४. विग्रहशक्ति (माया, अविद्या आदि नामधारिणी तिरोधान शक्ति) तथा ५. अनुग्रहशक्ति ।[१]

जीव स्वभावत: सर्वशक्तिशाली, व्यापक तथा सर्वज्ञ तो है, परन्तु सृष्टिकाल में भगवान् की तिरोधान शक्ति जीव के विभुत्व, सर्वशक्तिमत्त्व और सर्वज्ञत्व का तिरोधान कर देती है, जिससे जीव क्रमश: अणु, किञ्चित्कर तथा किञ्चिदज्ञ बन जाता है । इन्हीं अणुत्वादिकों को पाञ्चरात्र सम्प्रदाय में 'मल' नाम से अभिहित करते हैं । इन्ही से 'जीव' बद्ध बन जाता है और पूर्व कर्मों के अनुसार जाति, आयु तथा भोग की प्राप्ति करता है तथा इस विकट भावचक्र में वह निरन्तर घूमता रहता है ।

शक्तिपात तत्त्व—

जीव के क्लेशों को देखकर भगवान् के हृदय मे 'कृपा' का स्वत: अविर्भाव होता है । इसी कृपा को पाञ्चरात्र में 'अनुग्रहात्मिका शक्ति' कहा गया है जिसे आगम शास्त्र में 'शक्तिपात' नाम से पुकारते हैं । जीवों की दीन हीन दशा को देखकर करुणावरुणालय भगवान् का हृदय द्रवित हो जाता है और उनकी कृपा साधक को प्राप्त हो जाती है ।

पाञ्चरात्र आगम के प्रधान देवता—

विष्णु को परदेवता मानकर जो उनकी उपासना करते हैं, वे 'वैष्णव' कहलाते हैं । परतत्त्व का स्वरूप, उसकी प्राप्ति का उपाय, नि:श्रेयस् का स्वरूप आदि का निश्चय वैष्णवमत से श्रुति, स्मृति तथा पाञ्चरात्र आगम के द्वारा होता है । इस आगम में यह निर्णय किया गया है कि विष्णु ही देवताओं मे अग्रणी हैं, दूसरे देवता उनकी अपेक्षा अवर (गौड़) हैं । 'विप्लृ व्याप्तौ' धातु से विष्णु पद निष्पन्त हुआ है । इस व्याप्त्यर्थक धातु से सर्वत्र गुणों से, स्वरूप से तथा गुण गणों से विष्णु की व्याप्ति का बोध होता है । इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विश्व–ब्रह्माण्ड में जो देवता, जीव तथा पदार्थ समूह हैं, वे सब बाहर और भीतर सर्वत्र श्रीभगवान् के द्वारा व्याप्त हैं । अन्तरात्मा के रूप में भगवान् उनके नियन्ता हैं । परम पुरुष का माहात्म्य, गृह एवं मन्दिर में उनकी अर्चा विधि, उनके मन्दिर निर्माण की विधि आदि विषयों को लेकर आलोचना करने वाले पाञ्चरात्र आदि आगम विष्णु को ही प्रधान देवता के रूप में स्वीकार करते हैं ।

विश्वरूप विष्णु और आगमगत विष्णु—

ऋग्वेद में उपलब्ध 'एकं वा इदं विवभूव सर्वम्', के अनुसार एक ही तत्त्व दृश्यमान

---

[१] अहि० सं० १४.१२-१४ ।

विश्व के अनेक रूपों में परिणत हो गया है । इस विश्व में परज्योतिरूप एक ही देवता हैं जिसको 'परम पुरुष' कहते हैं । वह अपनी ही 'माया' शक्ति से अवच्छिन्न (युक्त) होकर जगत् रूप विविध भावों में परिणत हो गया है । अपने में लीन (प्रसुप्त) मायाशक्ति को प्रकट (=उद्‌बुद्ध) करके ही वह परम पुरुष सर्वप्रथम पुरुष (=शक्तिमान्) एवं माया (शक्ति)—इन दो रूपों में प्रकट हुआ ।

शक्तितत्त्व (i) एक तत्त्व से चार तत्त्व—

(१) वेदों मे आनन्द, ज्ञान, इच्छा, क्रिया एवं आवरण इन पाँच गुणों का समुदाय 'शक्ति' शब्द से अभिहित होता है । उसी को आगमों में ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—इन षड्‌गुणों के समुदाय को 'शक्ति' कहा गया है ।[1] (२) इनमें अवच्छेद रूप-आवरणशक्ति 'माया' है । माया रूप अवच्छेद से अवच्छिन्न, अखण्ड खण्डवत्, शान्त अशान्तवत्, अद्वय द्वयवत् रूप से भासता है, परन्तु वह प्रतिभान मिथ्या नहीं है । (३) माया (प्रकृति) के गुण भेद से वह तीन रूपों में—सत्त्वगुण से विष्णु, रजोगुण से ब्रह्मा एवं तमोगुण से शिवरूप में प्रकट होता है । इनके कार्य क्रमशः स्थिति, उत्पत्ति एवं प्रलय हैं । (४) धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य इन चार गुणों के योग से वह एक ही क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार रूपों में प्रकट हुआ है ।

(ii) चार से लेकर सोलह तत्त्व—

वासुदेव आदि वही चार रूप, चार वर्ण, चार आश्रम, चार युग एवं चार पुरुषार्थ आदि परमात्मा के चार-चार रूप हैं । (५) शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन पाँच गुणों के कारण क्रमशः परमेष्ठि, पुमान, विश्व, निवृत्ति एवं सर्व—ये परमात्मा के पाँच रूप है । (६) श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक् एवं मन—ये परमात्मा के ही छह रूप हैं । वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त एवं शिशिर—इन छह ऋतुओं के रूप में भी वह प्रजापति ही परिणत हुआ हैं । (७) भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्य—इन सात व्याहृतियों में वही परिणत हुआ है । गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती—ये सात छन्द भी उसके ही रूप हैं । अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, वाजपेय, अतिरात्र और ज्योतिष्टोम—ये सात रूप हैं, उन रूपों में भी परमात्मा ही परिणत हुए हैं । (८) अव्यक्त, महत्, अहंकार तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इन आठ रूपों में परमात्मा ही परिणत होते है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य एवं यजमान—इस आठ मूर्तियों के रूप में वही ईश्वर परिणत हुआ है । इसी प्रकार आठ दिक्पाल, आठ गुण एवं आठ सिद्धियाँ आदि रूपों में भी वही चैतन्य स्थित हैं । (९) नरसिंह, वराह, वामन, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और चन्द्र—ये नौ रूप भी उन्हीं विश्वात्मा की विभूति है । (१०) इन्द्र, अग्नि, यम, निकृति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त-नाग—इन दस रूपों में भी वही विद्यमान है । (११) पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय एवं मन—ये ग्यारह भी भगवान् विष्णु के ही रूप हैं । (१२)

---

[1] अहि० सं० २.५३ ।

इन्द्र, भग, पूषा, पर्जन्य, अंशु, विष्णु, त्वष्टा, धाता, विवस्वान्, वरुण, अर्यमा, भिन्न—ये बारह आदित्य भी परमात्मा के ही विभिन्न रूप हैं। (१३) विश्वदेव, (१४) चौदह मनु[१] (१५) पन्द्रह तिथि एवं (१६) सोलह दिशा–विदिशाओं के रूप में वहीं एक तत्त्व परिणत हुआ है। इस प्रकार सभी देवों के आश्रय एवं उपादान कारण विष्णु हैं। विष्णु ही सब देवता हैं। सम्पूर्ण चराचर विष्णु से व्याप्त है।[२] फिर जिनसे सारी सृष्टि हुई है एवं अन्त में जिनमें लीन हो जायेगी, उन पुण्डरीकाक्ष को छोड़कर दूसरा कौन विश्व को व्याप्त करके रह सकता है।

भगवान् विष्णु के व्यूह का रहस्य—

परब्रह्म परमात्मा प्रकृति परे हैं। वह मानव–मनोभूमि से अतीत हैं। किन्तु वह प्रकृति से परे हैं और परे भी नहीं है। परमात्मा प्रकृति से परे भी है और प्रकृति में भी है।[३] त्रिपाद् रूप से वे प्रकृति से परे हैं[४] और एकपाद्‌रूप से प्रकृति में हैं। इस प्रकार परमात्मा की दो विभूतियाँ हैं—

१. त्रिपाद्विभूति और २. एकपाद्‌विभूति।

त्रिपाद्‌विभूति को 'नित्यविभूति' कहते है और एकपाद्‌विभूति को 'लीलाविभूति' कहते हैं। इस एकपाद्‌विभूति में भगवान् विष्णु जगत् के उदय, विभव और लय की लीला किया करते है। आत्माराम, आप्तकाम परमात्मा का प्रकृति के साथ यह विहार चिरन्तन है, अनादि तथा अनन्त भी। इस विहारस्थली के देश–काल का ज्ञान मानव मनीषा में नहीं समाता। मनुष्य यह जान नहीं सकता कि भगवान् जिस प्रकृति–नटी के साथ अपना महारास कर रहे हैं उसका परिमाण केवल इतना है। वस्तुतः प्रकृति के असंख्य ब्रह्माण्ड भाण्डो को अहर्निश बनाने बिगाडने के अनवरत कार्य को समग्ररूप में जानने की शक्ति किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में नहीं है। यह जानना भी कठिन है कि प्रकृति के साथ भगवान् का यह विहार कब प्रारम्भ हुआ और कब तब चलेगा।

इस जगत् की तीन अवस्थाएँ हैं—सृष्टि, स्थिति और प्रलय। जड प्रकृति में परमात्मा के ईक्षण से—संकल्प[५] से कभी तो विकासोन्मुख परिणाम हुआ करता है, जिसे 'सृष्टि' कहते हैं और कभी विनाशोन्मुख, जिसे 'प्रलय' कहते हैं। सृष्टि और प्रलय के मध्य की दशा का नाम 'स्थिति' है। जब परमात्मा जगत् की रचना करते हैं, तब वे 'प्रद्युम्न' होते हैं और जब पालन करते हैं तब 'अनिरुद्ध' और जब संहार करते है तब 'सङ्कर्षण' कहलाते है—इन रूपों की संज्ञा 'व्यूह' है।

---

[१] कूटस्थो यः पुरा प्रोक्तः पुमान् व्योम्नः परादधः।
मनवो देवताद्याश्च तद्‌यष्टय इतीरिताः॥—अहि०सं० ७.५८।

[२] जीवभेदा मुने सर्वे विष्णुमूर्त्यंशकल्पिताः— वही ५९।

[३] भगवान् वासुदेवः स परमा प्रकृतिश्च सा।

[४] तत्र शुद्धमयं सर्गं विभूतेः प्रथमं शृणु। अहि० सं० ५.१५।
युगैस्तस्य त्रिभिः शुद्धा सृष्टिमूर्तेः प्रवर्तते॥ वही ५.१६।

[५] संकल्पनिर्मिता शक्तिर्या तत्तत्कार्यगोचरा। वही ५.५९।

सङ्कर्षण—

भगवान् विष्णु में यद्यपि अनन्त कल्याण गुण हैं तथापि उनमें छह मुख्य हैं। उन्हीं छह गुणों में से जब वे 'ज्ञान' और 'बल' का प्रकाशन करते हैं,[१] तब उनका नाम 'सङ्कर्षण' होता है। सङ्कर्षण मे अन्य चार गुणों अर्थात् वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेज का निगूहन होता है, अभाव नहीं।

सङ्कर्षण का वर्ण पद्मराग के समान है। ये नीलाम्बरधारी हैं। ये अपने चार कर कमलों में क्रमशः हल, मूसल, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। ताल इनकी ध्वजा का लक्षण है। ये जीव के अधिष्ठाता होकर भी 'ज्ञान' गुण से शास्त्र का प्रवर्तन करते हैं और 'वल' नामक गुण से जगत् का संहार करते हैं।

प्रद्युम्न—

जब वे ही विष्णु 'वीर्य' और 'ऐश्वर्य' का प्रकाशन करते हैं तब उनका नाम 'प्रद्युम्न' होता है।[२] इनमें ज्ञान, बल, शक्ति और तेज का निगूहन होता है, अभाव नहीं।

प्रद्युम्न का वर्ण रवि किरण के समान है। ये रक्ताम्बरधारी हैं। इनके चार हाथ में धनुष, वाण, शङ्ख और अभयमुद्रा विद्यमान है। इनकी ध्वजा का चिह्न 'मकर' है। ये मनस्तत्त्व के अधिष्ठाता होते हुए भी 'वीर्य' नामक गुण से धर्म का प्रवर्तन करते हैं और 'ऐश्वर्य' नामक गुण से जगत् की सृष्टि भी करते हैं।

अनिरुद्ध—

जब परब्रह्म परमात्मा 'शक्ति' और 'तेज' का प्रकाशन करते है तब उनका नाम अनिरुद्ध होता है।[३] इनमें ज्ञान, बल, वीर्य, और ऐश्वर्य का निगूहन होता है, अभाव नहीं।

अनिरुद्ध का वर्ण नील है। ये शुक्लाम्बरधारी हैं। इनके चार कर कमलों में खड्ग, खेट, शङ्ख और अभयमुद्रा रहती है। इनकी ध्वजा का चिह्न मृग है। अहंकार के अधिष्ठाता होते हुए भी ये 'तेज' नामक गुण से आत्मतत्त्व का प्रवर्तन करते हैं और शक्ति नामक गुण से जगत् का भरण–पोषण भी करते हैं।

परब्रह्म के व्यूहान्तर—

इस प्रकार त्रिव्यूह का प्रतिपादन हुआ। कभी–कभी षाड्गुण्य मूर्ति परतत्त्व श्रीभगवान् विष्णु भी व्यूहों में सम्मिलित होते हैं। उस समय वे 'व्यूह–वासुदेव' के नाम से अभिहित होते हैं।[४]

---

[१] तत्र ज्ञानबलद्वन्द्वाद् रूपं सांकर्षणं हरेः। अहि०सं० ५.१७।

[२] ऐश्वर्यवीर्यसंभेदाद् रूपं प्राद्युम्नमुच्यते। वही ५.१७।

[३] शक्तितेजःसमुत्कर्षादानिरुद्धो तनुर्हरेः। अहि०सं० ५.१८।

[४] भगवान् वासुदेवश्च व्यूहाश्चैते त्रयो मुने॥
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षणम्॥ अहि०सं० ५.२५–२६।

ये शशिगौर और पीताम्बरधारी हैं। ये चार कर कमलों में शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। इनकी ध्वजा का चिह्न 'गरुड' है। इस प्रकार भगवान् के चार व्यूह होते हैं।[१]

उपरोक्त व्यूहों के अतिरिक्त अन्य भी व्यूहान्तर हैं।[२]

(१) केशव, नारायण और माधव—ये तीन वासुदेव के विलास हैं।[३] इनमें केशव स्वर्णाभ हैं और चार चक्र धारण करते हैं। नारायण श्याम वर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। माधव इन्द्रनील के समान वर्ण वाले हैं और चार गदाएँ धारण करते हैं।

(२) गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन—ये तीन सङ्कर्षण के विलास हैं।[४] गोविन्द चन्द्र गौर हैं और चार शार्ङ्ग धनुष धारण करते हैं। विष्णु पद्म किञ्जल्क वर्ण हैं और चार हल धारण करते हैं। मधुसूदन अब्ज वर्ण हैं और चार मूसल धारण करते हैं।

(३) त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर—ये तीन प्रद्युम्न के विलास है।[५] त्रिविक्रम अग्निवर्ण हैं और चार शङ्ख धारण करते हैं। वामन बालसूर्याभ हैं और चार वज्र धारण करते हैं। श्रीधर पुण्डरीक वर्ण हैं और चार पट्टिश धारण करते हैं।

(४) हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर—ये तीन अनिरुद्ध के विलास हैं।[६] हृषीकेश तडिदाभ हैं और चार मुद्‌गर धारण करते हैं। पद्मनाभ सूर्याभ हैं और शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष तथा खड्‌ग धारण करते हैं। दामोदर इन्द्रगोप वर्षा हैं और चार पाश धारण करते हैं।

संक्षेप में हम यह जान लें कि एकपाद्‌विभूति में लीला निमित्त रूप धारण किए हुए परब्रह्म के अनुक्त रूप 'व्यूह' कहलाते हैं। यही पाञ्चरात्र में वर्णित व्यूह का रहस्य है।

अहिर्बुध्न्य के लिए ऋग्वेद में मात्र कुछ ऋचाओं में ही स्तवन प्राप्त है। निरुक्तकार के अनुसार यह एक अन्तरिक्ष के देवता हैं।[७] वाजसनेयी संहिता[८], ऐतरेय ब्राह्मण[९] और तैत्तिरीय ब्राह्मण[१०] के अनुसार यह एक गार्हपत्य अग्नि का नाम है। महाभारत में एकादश रुद्रों में से एक अहिर्बुध्न्य कहे गये हैं।[११] भागवत में रुद्र के नामों में परिगणित

---

[१] भगवान् वासुदेवश्च व्यूहाश्चैते त्रयो मुने ॥
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षणम् ॥ अहि०सं० ५.२५-२६।

[२] व्यूहान्तरं दश द्वे च केशवाद्या: प्रकीर्तिता। अहि०सं० ५.४६।

[३] केशवादि त्रयं तत्र वासुदेवाद् विभाव्यते। अहि०सं० ५.४६।

[४] संकर्षणाच्च गोविन्दपूर्वं त्रितयमदभुतम् ॥ अहि०सं० ५.४७।

[५] त्रिविक्रमाद्यं त्रितयं प्रद्युम्नादुदितं मुने। अहि०सं० ५.४७।

[६] हृषीकेशादिकं तत्त्वमनिरुद्धान्महामुने। अहि०सं० ५.४८।

[७] निरुक्त० ५.४।

[८] वा०सं० ५.३३।

[९] ऐ०ब्रा० ३.३६। एष ह वा अहिर्बुध्न्यो मदाग्निर्गार्हपत्य:।

[१०] तै०ब्रा० ११.१०.३।

[११] महाभारत आ० ५०.१-३।

हैं ।[१] स्कन्द पुराण[२] के अनुसार ये दुष्ट राक्षसों के संहारार्थ सुदर्शन चक्र की आराधना कर रहे थे । इनके संहारार्थ राक्षसों के आते ही चक्र के प्रगट होने से राक्षसों का नाश हुआ । शिव पुराण की शतरुद्रिय संहिता में इन्हें कश्यप तथा सुरभि का पुत्र कहा गया है ।[३] इन्हीं एकादश रुद्रों में से एक अहिर्बुध्न्य ने इस संहिता का प्रवचन किया है ।

सुदर्शन सहस्रनाम समालोचन—

अनन्त प्रकार के नाम और रूप के साथ इस नानात्वमय जगत् में उस एक तत्त्व की ही अभिव्यक्ति है । जिस प्रकार स्वणनिर्मित सभी आकार–प्रकार की वस्तुएँ स्वर्ण ही हैं, उसी प्रकार यह विभिन्नरूपमय जगत् उन 'परतत्त्व' की ही आत्माभिव्यक्ति है ।

वस्तुत: जो परिच्छिन्न है, वही इच्छा होने से इन्द्रियगम्य हो सकता है उसी को मानव मन और बुद्धि द्वारा प्रत्यक्ष कर सकता है । महर्षियों ने उस 'परतत्त्व' का अनुभव तो किया और उस अनन्त, असीम प्रभु को बतलाने के लिए परिच्छिन्न व्यक्त जगत् की जिन वस्तुओं के द्वारा उन्होंने निर्देश किया है वे उनकी विभूतिमात्र हैं । पुराण, आगम एवं तन्त्र ग्रन्थों में भगवान् का पवित्र 'नाम' माना गया है । वस्तुत: विष्णु रमा आदि देवी देवताओं के 'सहस्रनाम' उनके गुणों के निर्देशक चिह्न हैं । आध्यात्मिक साधक इन्हीं गुणों के संकेतक नामों के माध्यम से उसी 'परतत्त्व' की उपासना करता है । इन नामों के झरोखे से वह उस परमात्मा के विभिन्न अलौकिक कार्यों का स्मरण करके चिन्तन करते हुए उसमें अपनी आस्था दृढ़ कर लेता है । उसका ज्ञान परिपक्व होता है और तभी भक्ति तत्त्व का उसमें उद्रेक होता है । पुराणों में या आगम साहित्य में जहाँ भी भगवान् के एक रूप की अपेक्षा उनके दूसरे रूप की प्रशंसा की गई है । वहाँ उपासक के भक्तिभाव का पोषण ही मुख्य उद्देश्य है । वस्तुत: 'विष्णु–तत्त्व' एक है किन्तु वह अपने विलास में अनेक भी हो जाता है । वही त्रिगुणात्मक प्रपञ्च में प्रविष्ट है और वही त्रिगुणातीत भी है । वह 'महतो महीयान्' भी है एवं प्रकृति के अणु–अणु में और प्रत्येक चेतन जीवात्मा में भी अन्तर्यामी रूप से व्यापक है, क्योंकि वह 'अणोरणीयान्' भी है । इसी व्यापकता की अनुभूति साधक को सहस्रनामों के माध्यम से होती है । ये सहस्रनाम साधक को एक सहस्र आश्रय प्रदान करते हैं और उसे प्रत्येक पद से प्रेरणा मिलती है । इसी प्रेरणा के बल से वह बुद्धि को ज्ञान के शिखर पर ले जाने में सफल हो जाता है ।

देवी–देवताओं के सहस्रनामों में 'विष्णु सहस्रनाम' ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है । किन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक सहस्रनाम हमें प्राप्त होते हैं जैसे—शिवसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, श्रीरामसहस्रनाम आदि । भगवान् के ये सहस्रनाम ऋषियों द्वारा विरचित और साधक के कल्याण के लिए प्रदत्त हैं । आत्मदर्शी कवि भगवान् व्यास द्वारा श्रद्धा और भक्ति की माला के रूप में विष्णु आदि देवों के अह्लादकारी स्तवन में संग्रहीत हैं ।

---

१. भाग० ६.६.१८ ।

२. स्क०पु० ३.१.२३ ।

३. शिव०शत०सं० १८ ।

सहस्रनाम की आलोचना की दृष्टि से इन सभी सहस्रनामों की एक सूची आवश्यक हैं। सर्वप्रथम वाल्मीकीय–रामायण और महाभारत तथा पुराणों एवं आगम या तन्त्र ग्रन्थों के क्रम से यह सूची होनी चाहिए।

इन सहस्रनामों का दो प्रकार क्रम हमें ग्रन्थों में प्राप्त है एक तो यह कि नामों को जैसे–तैसे रख दिया गया है और दूसरा यह कि सभी नामों को अकारादि क्रम से रक्खा गया है। एक ही नाम की पुनरावृत्ति भी होती है। यह पुनरावृत्ति गलत नहीं हैं अपितु पुन: जिन पदों की अवृत्ति होती है वह दृढ़ के लिए प्रयुक्त होते हैं। ऐसी पुनरावृत्ति वैदिक सूक्तों में तथा पुराणों में भी विद्यमान है।

प्राय: तन्त्रों और आगमों में प्राप्त सहस्रनाम मातृका क्रम से ही पाए जाते हैं। देवी भागवत में भी यही क्रम मिलता है। शेष सभी पुराणों में प्राप्त सहस्रनाम अकारादि क्रम से न होकर जैसे–तैसे रख दिए गए हैं। रुद्रायामल में प्राप्त कुमारी के सहस्रनाम वर्ण क्रम (कादि) से आरम्भ होते हैं बाद में स्वरों को रक्खा गया है। किन्तु देवी भागवत में स्वरों को पहले स्थान दिया गया है। अहिर्बुध्न्य संहिता में सुदर्शन के सहस्रनाम का एक परिशिष्ट है। इसका क्रम भी वर्ण क्रम (क) से आरम्भ होता है किन्तु ठ के लिए कोई नाम नहीं है। यहाँ ५६० नाम ही प्राप्त होते हैं। शेष की खोज अत्यन्त आवश्यक है।

यह उत्तम संहिता साठ अध्यायों में कही गई है जिसको जान लेने पर पुरुष सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है। परा और मध्यमा नाम की जो दो संहितायें है, उन दोनों संहिताओं का सभी अर्थ इसमें संक्षेप रूप से प्रदर्शित किया गया है।

ॐ नमो विष्णुपत्न्यै च यस्या नारायण: प्रिय:।
नमो नित्यानवद्याय जगत: सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने॥

(लक्ष्मीतन्त्र ५७.५५)

जिन वासुदेव की प्रिया श्रीलक्ष्मी हैं। उन विष्णुपत्नी को नमस्कार है, जिनको नारायण प्रिय हैं। उनको नमस्कार है, जो नित्य हैं, जो अनिर्वचनीय हैं और जो संसार का कारण हैं, जो ज्ञानस्वरूप हैं और जो शान्त हैं, जो लक्ष्मीनारायण स्वरूप हैं उनको नमस्कार है।

गंगासप्तमी, ४.५.२००६
वैशाख शुक्ल, वि.सं. २०६३
ए, ४/३१, शीशमहल कालोनी
कमच्छा, वाराणसी २२१०१०
दूरभाष : २४५२७०९

विद्वद्वशंवद:
सुधाकर मालवीय:

विषयानुक्रमणिका

प्रथमोऽध्यायः	**१-१२**
शास्त्रावतारः	
मङ्गलाचरणम्	१
भरद्वाजस्य दुर्वाससं प्रति सुदर्शनमाहात्म्यकारणप्रश्नः	२
दुर्वाससः प्रश्नप्रशंसापूर्वकं तत्प्रतिवचनम्	४
पक्वकषायस्यैव परतत्त्वजिज्ञासोदयः	४
अत्र ब्रह्मादीनामपि संशयः	४
स्वस्याहिर्बुध्न्यात् तत्त्वनिर्णयप्राप्तिः	४
नारदस्योत्कर्षः	४
कैलासवर्णनम्	५
अहिर्बुध्न्यवर्णनम्	५
नारदकृताहिर्बुध्न्यस्तुतिः	६
कालनेमिसंग्रामे नारदस्य सुदर्शनमहिमदर्शनम्	८
सर्वास्त्राणां सुदर्शनेन पराभवः	१०
अत्यद्भुतमहिमदर्शनात् संशयोदयः	११
संहितावतरणम्	११
द्वितीयोऽध्यायः	**१३-२२**
षाड्गुण्यब्रह्मविवेकः	
अहिर्बुध्न्यं प्रति नारदप्रश्नः	१३
अहिर्बुध्न्येन सङ्कर्षणात् स्वस्य ज्ञानप्राप्तिकथनम्	१३
परब्रह्मस्वरूपसंक्षेपः	१४
सुदर्शनशब्दार्थनिरूपणम्	१४
सर्वस्य सुदर्शनाधीनत्वम्	१४
पुनर्नारदकृताः प्रश्नाः	१५
विस्तरेण परब्रह्मस्वरूपनिरूपणम्	१६
परब्रह्मणः हेयप्रतिभटत्वं कल्याणगुणाकारत्वं च	१६
परब्रह्मणः परमात्मादिसकलशब्दवाच्यत्वम्	१७
प्रतिबन्धविगमे ब्रह्मानुभवसम्भवः	१९
ब्रह्मणः प्रयत्नलभ्यत्वविरहः	१९
ब्रह्मणः त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम्	१९
ब्रह्मणः षाड्गुण्यप्रपञ्चकथनम्	२१
ज्ञानस्वरूपनिरूपणम्	२१
शक्तिस्वरूपनिरूपणम्	२१
ऐश्वर्यस्वरूपनिरूपणम्	२१
बलस्वरूपनिरूपणम्	२१
वीर्यस्वरूपनिरूपणम्	२१
तेजःस्वरूपनिरूपणम्	२२
शक्त्यादिगुणपञ्चकस्य ज्ञानगुणप्रकारत्वम्	२२
तृतीयोऽध्यायः	**२३-३१**
वैश्वरूप्यसंक्षेपः	
सर्ववस्तूनां शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम्	२३
शक्तीनामपर्यनुयोज्यत्वम्	२३
परब्रह्मणोऽपि शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम्	२३
भगवच्छक्तेरानन्दादिशब्दाभिधेयत्वम्	२४
शक्तिमतः शक्तिर्भिन्ना	२६
शक्तेः द्वैविध्यम्; भूतिशक्तेः त्रैविध्यम्	२७
क्रियाशक्तेः भूतिशक्ति प्रवर्तकत्वम्	२७
क्रियाशक्तेः वैविध्येन सर्वभावानुयायित्वम्	२८

वैविध्यप्रपञ्चनम् २८

चतुर्थोऽध्यायः ३२-४२

प्रतिसञ्चरवर्णनम्

प्राकृतप्रलयवर्णनम् ३२
प्रतिसञ्चरकालपरिमाणम् ३३
सर्वस्य पृथिव्यां लयः ३३
पृथिव्या अप्सु लयः ३४
अपां तेजसि लयः ३४
तेजसो वायौ लयः ३४
वायोराकाशे लयः ३५
आकाशस्याहङ्कारे लयः ३५
अहङ्कारस्य बुद्धौ लयः ३६
बुद्धेस्तमसि लयः ३६
इन्द्रियाणां भूतैः सह तत्तत्कारणेषु लयः ३६
तमसो रजसि लयः ३७
रजसः सत्त्वे लयः ३७
सत्त्वस्य काले लयः ३७
कालस्य नियतौ लयः ३८
नियतेः शक्तौ लयः ३८
शक्तेः कूटस्थपुरुषे लयः ३९
कूटस्थपुरुषस्यानिरुद्धे लयः ३९
अनिरुद्धस्य प्रद्युम्ने लयः ४०
प्रद्युम्नस्य सङ्कर्षणे लयः ४०
सङ्कर्षणस्य वासुदेवे लयः ४०

पञ्चमोऽध्यायः ४३-५१

शुद्धसृष्टिवर्णनम्

प्रलयावस्थब्रह्मस्वरूपम् ४३
शक्तिरूपाया लक्ष्म्याः क्वचिदुन्मेषः ४३
शक्तेर्विविधभावव्यञ्जकत्वम् ४४
शुद्धसृष्टिप्रपञ्चनम् ४५
गुणयुग्मत्रयात् व्यूहत्रयाविर्भावः ४५
व्यूहत्रयेऽपि षाड्गुण्यानुवृत्तिः ४५
त्रिधा चातुरात्म्यस्थितिः ४५
सङ्कर्षणस्य कृत्यम् ४५
प्रद्युम्नस्य कृत्यम् ४६
अनिरुद्धस्य कृत्यम् ४६
परवासुदेवेन सह व्यूहस्य चातुरात्म्यम् ४६
गुणोन्मेषस्वरूपप्रदर्शनम् ४६
सिसृक्षोर्वासुदेवात् सङ्कर्षणाविर्भावः ४७
तस्य षोडशशतवर्षप्रतीक्षणम् ४७
प्रद्युम्नाविर्भावः ४७
अनिरुद्धाविर्भावः ४८
व्यूहस्य षोडशशतवर्षानन्तरं सृष्टौ व्यापृतिः ४८
व्यूहानां हेयप्रतिभटत्वमनादित्वं च ४८
चातुरात्म्यस्य मनआलम्बनार्थत्वम् ४८
व्यूहात् व्यूहान्तराविर्भावः ४९
द्वादश व्यूहान्तराणि ४९
वासुदेवात् केशवादित्रयम् ४९
सङ्कर्षणात् गोविन्दादित्रयाविर्भावः ४९
प्रद्युम्नात् त्रिविक्रमादित्रयाविर्भावः ४९
व्यूहान्तरस्य त्रैविध्यम् ४९
अनिरुद्धात् हृषीकेशादित्रयाविर्भावः ४९
विभवा एकोनचत्वारिंशत् ५०
तेषामुत्पत्त्यादिकं सात्त्वतादौ ज्ञेयम् ५०
अध्यायार्थोपसंहारः ५१

षष्ठोऽध्यायः ५२-६१

शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्

शक्तितद्वतोर्भेदवदभेदस्याप्युपपत्तिः ५२
शक्तितद्वतोरपृथक्स्थितिः ५२
भगवतो लक्ष्म्याश्च प्रत्येकं जगत्कारणत्वव्यवहारकथनम् ५२
शुद्धेतरसृष्टिकथनप्रतिज्ञा ५२
भूतिशक्तेः स्वसङ्कल्परूपक्रियाशक्तिप्रवर्त्यत्वम् ५३
योगालम्बनभूतव्यूहविभवादेः शुद्धिमयस्फूर्तिरूपत्वम् ५३
शुद्धेतरसृष्टेः व्यूहविभवमूलकत्वम् ५३

तस्यास्त्रैविध्यम् ५३
प्रद्युम्नात् मिथुनचतुष्टयोत्पत्तिः ५३
कालप्रकृतिसृष्टिः ५४
अनिरुद्धाय पालनाज्ञादानम् ५४
तेन तद्वर्धनम् ५४
नियतिकालयोरुदयः ५४
गुणमय्याः प्रकृतेस्त्रैविध्यम् ५४
सत्त्वादिभ्यो रजआद्युत्पत्तिः ५४
पुनर्विस्तरेण सृष्टिप्रपञ्चनप्रश्नः ५५
तत्प्रपञ्चनम् ५५
परवासुदेवस्य नित्यविभूतिमत्ताप्रतिपादनम् ५५
मुक्तानां स्वरूपम् ५६
तेषामपुनरावृत्तिः ५६
तेषां यथोपासनं फलप्राप्तिः ५६
परमव्योम्नोऽशक्यवर्णनत्वम् ५६
जीवसमष्टिपुरुषस्यार्वाचीनस्थानवर्तित्वम् ५७
तिरोहितस्वरूपाणां चातूरूप्यम् ५७
तेषां कर्मपारवश्यात् पृथिव्यामवतरणम् ५७
अवतीर्णानां प्रजास्रष्टृत्वम् ५८
अनिरुद्धात् शक्त्युत्पत्तिः ५८
शक्तौ कूटस्थमनूनामवतरणम् ५८
शक्तितो नियतेरुत्पत्तिः ५८
तत्र मनूनां स्थितिः ५९
नियतितः कालस्योत्पत्तिः ५९
तत्र मनूनां स्थितिः ५९
कालात् क्रमेण गुणमयरूपोत्पत्तिः ५९
तत्र प्रथमं सत्त्वोत्पत्तिः ५९
आनिरुद्ध्या वैष्णवमूर्त्या तस्याधिष्ठानम् ५९
तत एव तस्य सुखरूपत्वं स्वच्छत्वं च सत्त्वाद्रजगुणोत्पत्तिः ५९
तत्र मनूनां स्थितिः ६०
तस्यानिरुद्धाधिष्ठितब्रह्मरूपत्वम् ६०
अतस्तस्य दुःखरूपत्वम् ६०
रजसस्तमउत्पत्तिः ६०
तत्र मनूनां स्थितिः ६०
तस्यानिरुद्धाधिष्ठितरुद्ररूपत्वम् ६०
अतस्तस्य मोहनादिरूपत्वम् ६१
अंशतो गुणत्रयसाम्यापत्तिः ६१
प्रकृतिपर्यायशब्दाः ६१
सप्तमोऽध्यायः ६२-७३

शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्

प्रकृतिपुरुषकालानां समष्टिः ६२
प्रकृतिः स्वरूपतः स्वभावतश्च परिणामिनी ६२
पुरुषः स्वरूपतोऽपरिणामी ६३
कालस्य प्रकृतिपुरुषपाचकत्वम् ६३
प्रकृतेर्महत्तत्त्वोत्पत्तिः ६३
महत्तत्त्वपर्यायाः ६३
महतस्त्रैविध्यम् ६३
तत्र सात्त्विकस्य चातुर्विध्यम् ६३
तामसस्यापि चातुर्विध्यम् ६४
महत्तत्त्वे मनूनामवस्थितिः ६४
तत्र बुद्ध्युत्पत्तिः ६४
महतोऽहङ्कारोत्पत्तिः ६४
अहङ्कारपर्यायाः ६४
अहङ्कारस्य त्रैविध्यम् ६४
अहङ्कारस्य रूपभेदाः ६५
अहङ्कारे मनूनामवस्थितिः ६५
अहङ्कारात् मनउत्पत्तिः ६५
भूतादेः शब्दतन्मात्रोत्पत्तिः ६५
तस्मादाकाशोत्पत्तिः ६५
आकाशस्य गुणकर्मणी ६५
आकाशे मनूनां स्थितिः ६५
श्रोत्रवाचोरुत्पत्तिः ६५
मनूनां तद्वैशिष्ट्यम् ६६
अथ स्पर्शतन्मात्रोत्पत्तिः ६६
तस्माद्वायूत्पत्तिः ६६
वायोः क्रियाभेदाः ६६

त्वक्पाण्योरुत्पत्तिः ६६
वायौ मनूनां स्थितिः ६६
रूपतन्मात्रतेजसोरुत्पत्तिः ६६
तेजसः क्रियाभेदाः ६७
चक्षुः पादयोरुत्पत्तिः ६७
तेजसि मनूनां स्थितिः ६७
तेषां चक्षुःपादवैशिष्ट्यम् ६७
रसतन्मात्राम्भसोरुत्पत्तिः ६७
तत्क्रियाभेदाः ६७
रसनोपस्थेन्द्रियोत्पत्तिः ६७
अप्सु मनूनां स्थितिः ६७
तेषां रसनोपस्थवैशिष्ट्यम् ६८
गन्धतन्मात्रमह्योरुत्पत्तिः ६८
पार्थिवगुणभेदाः ६८
घ्राणपाय्वोरुत्पत्तिः ६८
तेषां घ्राणपायुवैशिष्ट्यम् ६८
सङ्कल्पाद्युत्पत्तिः ६८
एवं मनूनां सर्वावयवपूर्णता ६८
सृष्टिप्रलयकालयोस्तुल्यपरिमाणत्वम् ६९
मनुविभागः ६९
मनुभिर्गर्भोत्पादनम् ६९
तेषां ब्राह्मणादिसंज्ञा ६९
तदुत्पन्नानां मानवमानवादिसंज्ञा ६९
तेषां भगवत्कैंकर्यकारित्वम् ७०
भागवतकैंकर्यकारिणां मोक्षसम्पत्तिः ७०
अन्येषां संसारप्राप्तिः ७०
कर्महेतुकदेवादिसृष्टिः ७०
मनूनां देवादीनां च कूटस्थपुरुषव्यष्टिरूपत्वम् ७१
जीवानां भगवद्विभूतित्वम् ७१
महतो मेघात्मना परिणामः ७१
जीवानां ज्ञानभ्रंशहेतुकथनम् ७१
ततः शास्त्रप्रवृत्तिः ७१
अध्यायद्वयार्थसंक्षेपः ७१
सुदर्शनानधीनस्य वस्तुनस्तुच्छता ७३
अष्टमोध्यायः ७४-८२

जगदाधारनिरूपणम्

सृष्टौ वादिनां बहुधा विप्रतिपत्तिः ७४
तत्र तत्त्वजिज्ञासया प्रश्नः ७५
तदुत्तरकथनारम्भः ७५
वेदवाचोऽपि कार्त्स्न्येन तत्त्वावगाहनासामर्थ्यम् ७५
विप्रतिपत्तौ हेतुकथनम् ७५
एकस्या अपि लक्ष्म्या नानाशब्दगोचरत्वम् ७६
तत्त्वविदां स्वस्वदृष्टार्थवादित्वम् ७६
भगवत्प्रकारानन्त्यम् ७७
वादिनामेकैकप्रकारवादित्वम् ७७
अतः शास्त्रवैविध्यम् ७७
ब्राह्मकल्पानां नानारूपत्वम् ७७
श्रुतार्थानुवादः ७८
द्वितीयप्रश्नस्मारणम् ७८
सुदर्शनस्य जगदाधारत्वम् ७८
तत्र महारात्रिधरचक्रं प्रथमम् ७९
उषश्चक्रं द्वितीयम् ७९
उदयचक्रं तृतीयम् ८०
ऐश्वर्यचक्रं चतुर्थम् ८०
शक्तिमहाचक्रं पञ्चमम् ८०
षडरचक्रं षष्ठम् ८०
महासुदर्शनचक्रं सप्तमम् ८१
सहस्रारचक्रमष्टमम् ८१
नवमोऽध्यायः ८३-८९

अशुद्धजगदाधारनिरूपणम्

प्रथमं पौरुषचक्रम् ८३
शक्त्यादिचक्राणि ८३
महाविभूतिचक्रम् ८४
संहृतिचक्रम् ८७
चलनचक्रम् ८८
तस्य त्रैविध्यम् ८८

दशमोऽध्यायः ९०-९६

अर्थात्मकप्रमाणनिरूपणम्

प्रमाणनिरूपणप्रतिज्ञा ९०
प्रमाणस्वरूपनिरूपणम् ९१
प्रमाणविभागः ९१
समष्टिप्रमाणस्वरूपम् ९१
व्यष्टिप्रमाणस्वरूपम् ९१
तस्यैव विस्तरेण प्रतिपादनम् ९२
शस्त्रव्यूहप्रतिपादनम् ९५
अस्त्रव्यूहप्रतिपादनम् ९५
एकादशोऽध्यायः ९७-१०५

शब्दात्मकप्रमाणव्यूहनिरूपणम्

शब्दात्मकप्रमाणप्रश्नः ९७
तत्प्रतिविवक्षयोपोद्घातः ९७
आदिसर्गे भगवतश्चिन्ताप्रकारः ९७
सत्त्वविवृद्ध्या परमपुरुषप्राप्तिपूर्वकं स्वरूपाविर्भावः ९८
रजस्तमोविवृद्ध्या सत्त्वह्रासः ९८
तदा दैत्याद्याविर्भावः ९८
तैर्वैदिकमर्यादाविलोपनम् ९८
ज्ञानप्रमोषात् धर्मतिरोधानम् ९८
ततः प्रजाक्षोभः ९८
तदा भगवदवताराणां लब्धावकाशता ९८
धर्मस्थापननिश्चयः ९८
अधर्मनिरास साधनद्वैविध्यम् ९९
भगवत्सङ्कल्पात् तदुभयोत्पत्तिः ९९
आदिशास्त्रस्वरूपवर्णनम् ९९
तस्य सर्वशास्त्रार्थगर्भितत्वम् १००
तस्य शास्त्रस्य भगवत्प्रीतिहेतुत्वम् १०३
तस्य शास्त्रस्य मन्दप्रचारता १०३
वाच्यायनादिभिस्तच्छास्त्रविभजनम् १०३
तत्र वाच्यायनेन वेदविभजनम् १०४
कपिलेन सांख्यविभजनम् १०४
हिरण्यगर्भेण योगशास्त्रविभजनम् १०४
शिवेन पाशुपतविभजनम् १०४
भगवता पाञ्चरात्रविभजनम् १०५
अध्यायार्थनिगमनम् १०५
द्वादशोऽध्यायः १०६-११३

शब्दात्मकप्रमाणव्यूहविशेषस्वरूपनिरूपणम्

वृत्तानुवादः १०६
त्रय्यादिस्वरूपप्रश्नः १०६
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा १०६
त्रयीस्वरूपनिरूपणम् १०६
अथर्वणां पृथक्करणे हेतुः १०७
ऋगादीनां शाखासङ्ख्या १०७
इयतामेव वेदानां प्रत्यक्षत्वम् १०७
कल्पादीनि षडङ्गानि १०७
मीमांसान्यायश्चोपाङ्गम् १०७
उपवेदादिकम् १०८
सांख्यस्वरूपवर्णनम् १०८
प्राकृतमण्डलवर्णनम् १०८
वैकृतमण्डलवर्णनम् १०९
योगशास्त्रस्वरूपवर्णनम् ११०
योगे संहिताद्वयम् ११०
निरोधसंहिताया द्वादशविधत्वम् ११०
कर्मसंहितायाश्चातुर्विध्यम् ११०
पाशुपतस्वरूपवर्णनम् १११
पाशुपतस्याष्टकाण्डत्वम् १११
पाञ्चरात्रस्वरूपवर्णनम् १११
शास्त्राभासप्रवृत्तौ कारणम् ११२
उक्तार्थनिगमनम् ११२
सुदर्शनपर्यायशब्दाः ११२
पञ्चानामपि शास्त्राणां भगवति निष्ठा ११३
त्रयोदशोऽध्यायः ११४-१२१

प्रमाणार्थनिरूपणम्

प्रमाणार्थविषयकः प्रश्नः ११४
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा ११४
प्रमाणशब्दनिर्वचनम् ११४

प्रमाणार्थस्वरूपम् ११५
तस्य द्वैविध्यम् ११५
हितस्वरूपम् ११५
साधनस्वरूपम् ११५
हितस्वरूपयाथात्म्यम् ११५
साधनद्वैविध्यम् ११६
तयोर्हेतुहेतुमद्भावः ११६
ज्ञानद्वैविध्यम् ११६
तयोरपि हेतुहेतुमद्भावः ११६
कर्मणां ज्ञानहेतुत्वम् ११६
कर्मणां द्वैराश्यम् ११६
व्यवहितकर्मस्वरूपम् ११६
अव्यवहितधर्मस्वरूपम् ११७
पाञ्चरात्रस्याव्यवहितधर्मपरत्वम् ११७
सशिरस्कस्य वेदस्य व्यवहितधर्मपरत्वम् ११७
पाशुपतस्यैकविभूतिविषयकधर्मपरत्वम् ११७
सांख्यस्य परोक्षज्ञानफलकत्वम् ११७
वेदान्तानामपरोक्षज्ञानफलकत्वम् ११८
योगस्यापरोक्षज्ञानाङ्गयमादिपरत्वम् ११८
गुणप्रधानभावेन सर्वत्र सर्वोपदेशः ११८
लौकिकपुरुषार्थद्वयोपक्षेपः ११९
त्रिवर्गस्य मिथः साध्यसाधनभावविवेकः ११९
मोक्षस्य सर्वदा साध्यत्वमेव ११९
अर्थकामयोः प्रमाणनिरूपणम् ११९
इतिहासादेस्तत्त्वज्ञानसहकारित्वम् १२०
धर्मादीनामन्तरङ्गसाधनानि १२०
तेषामेव बहिःसाधनानि १२०
अध्यायार्थोपसंहारः १२१
चतुर्दशोऽध्यायः १२२-१२८

जीवस्य संसारहेतुतदुद्धरणप्रकारवर्णनम्

तत्रादौ मुक्तिविषयः पुनः प्रश्नः १२२
जीवस्वरूपसंक्षेपः १२३
जीवस्य भगवच्छक्त्यंशलेशत्वम् १२३
तस्य कालवश्यत्वात् संसारप्राप्तिः १२३
साधननिष्पत्त्या स्वरूपाविर्भावः १२३
तत्र पुनः प्रश्नः १२३
भगवत्स्वातन्त्र्यस्यापर्यनुयोज्यत्वम् १२४
भगवत्सङ्कल्पस्य पञ्चधा विभागः १२४
तिरोधायकपर्यायशब्दाः १२४
जीवाणुत्वादि १२५
अणुत्वादेर्मलत्वं बन्धत्वं च १२५
अविद्यादिभिर्मलविवृद्धिः १२५
इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छा १२५
कर्मवशात् जात्यायुर्भोगप्राप्तिः १२५
तिरोधाने सहकारिकारणम् १२६
सृष्ट्यादीनां सञ्चितकर्ममूलकत्वम् १२६
सहेतुकस्य बन्धस्यानादित्वम् १२६
बद्धजीवे भगवत्कृपाविर्भावः १२६
कृपाया अनुग्रहशक्तिपातरूपत्वम् १२६
कृपाविषयस्य जीवस्य कर्मसाम्यप्राप्तिः १२७
मुमुक्षोर्मोक्षोपायप्राप्तिप्रकारः १२७
लब्धज्ञानस्य मोक्षप्राप्तिः १२८
पञ्चदशोऽध्यायः १२९-१४१

अधिकारिनिरूपणम्

अधिकारिविषयः प्रश्नः १२९
मनुसन्ततिजानां पाञ्चरात्राधिकारः १३०
तेषां तन्निष्ठया भगवत्प्राप्तिः १३०
तेषु त्रैवर्णिकानां चातुराश्रम्यम् १३०
तेषां शुश्रूषया शूद्रस्य भगवत्प्राप्तिः १३०
अन्यतमाश्रमस्थानामपि तेषां मोक्षसिद्धिः १३०
गार्हस्थ्यस्याश्रमान्तरोपजीव्यत्वम् १३१
सात्त्विकरीतिनिगमनम् १३१
त्रय्यादिरीतिकथनारम्भः १३२
मुखबाहूरुपज्जानां त्रय्याद्यधिकारः १३२
सांख्यानां नैष्कर्म्यम् १३२
योगनिष्ठानां वैदिककर्मानुष्ठातृत्वम् १३२

वर्णाश्रमतद्धर्माणां निरूपणम् १३३
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा, एकजातित्वं च १३३
याजनाध्यापनप्रतिग्रहा ब्राह्मणस्यैव १३३
शस्त्रधारणादिकं क्षत्रियस्य १३३
कृष्यादिकं वैश्यस्य १३३
इज्याध्ययनदानानि त्रयाणां तुल्यानि १३४
शुश्रूषा शूद्रस्य धर्मो वृत्त्यर्था च १३४
चतुर्णां सामान्यधर्माः १३४
ब्राह्मणोत्तमक्षत्रिययोश्चातुराश्रम्यम् १३४
क्षत्रियवैश्ययोराद्यमाश्रमत्रयम् १३४
त्रैवर्णिकानां प्रागुपनयनात् कामचारः १३४
उपनयने द्वितीयं जन्म १३४
यज्ञदीक्षायां तृतीयम् १३५
तेषां स्वाध्यायनिष्ठानां देवतुल्यत्वम् १३५
आश्रमधर्माः १३५
उपकुर्वाणब्रह्मचारिधर्माः १३५
नैष्ठिकब्रह्मचारिधर्माः १३६
गृहस्थधर्माः १३६
गृहस्थस्यापि पाञ्चरात्रधर्मावश्यकता १३६
निष्कामकर्मिणो गृहस्थस्यापि मोक्षप्राप्तिः १३६
सकामस्य गृहस्थस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः १३७
वानप्रस्थधर्माः १३७
वानप्रस्थस्यापि निष्कामकर्मिणो मोक्षप्राप्तिः १३७
सकामस्य तस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः १३८
संन्यासिधर्माः १३८
सन्यासिनः परमपुरुषोपासनान्मोक्षप्राप्तिः १३९
अध्यायार्थनिगमनम् १४०
षोडशोऽध्यायः १४१-१५७

वर्णोत्पत्तिनिरूपणम्

रक्षा तदधिकारिविषयकः प्रश्नः १४१
तत्प्रतिवचनारम्भः १४१
वस्तुनिष्ठसामर्थ्यस्य सुदर्शनात्मकत्वम् १४१
शस्त्रास्त्रव्यूहस्य रक्षासाधनत्वम् १४२
मन्त्रग्रामस्यापि रक्षासाधनत्वम् १४२
मन्त्रमयरक्षायां ब्राह्मणस्यैवाधिकारः १४२
ब्राह्मणस्यापि राजानवष्टब्धस्य रक्षायामसामर्थ्यम् १४३
राजप्रशंसा १४३
राजद्विषां दृष्टादृष्टयोः प्रत्यवायः १४३
अतो राजा अवश्यं बहु मन्तव्यः १४४
केवलयोर्ब्राह्मणनृपयोर्लक्ष्म्या अस्थिरत्वम् १४४
संसृष्टयोस्तयोर्लक्ष्म्याः स्थैर्यम् १४४
तत्र हेतुः १४४
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तत्र दृष्टान्तकथनम् १४४
राजार्थं प्रयुक्ताया अपि क्रियाशक्तेः सर्वप्रजोपकारकत्वकथनम् १४५
चक्रवर्त्यादीनां क्रियाशक्तावधिकारतारतम्यम् १४५
क्रियाशक्तिस्वरूपकथनारम्भः १४५
सामान्यतः शक्तेर्द्वैविध्यम् १४६
शक्तेः पर्यायशब्दाः १४६
भावकस्य भूत्यंशप्रवर्तकत्वम् १४६
क्रियाशक्तेर्नादात्मकत्वम् १४६
नादस्य दीर्घघण्टाध्वनिसाम्यम् १४६
तस्य योगिमात्रप्रत्यक्षविषयत्वम् १४६
क्वचिदुन्मेषात् तस्य बिन्दुरूपत्वम् १४७
बिन्दोर्नामनामिरूपेण द्वैविध्यम् १४७
नाम्नः शब्दब्रह्मत्वम् १४७
नामिनो भूतिरूपत्वम् १४७
वर्णोत्पत्तिकथनारम्भः १४७
बिन्दोर्द्वैविध्यम् १४७
अकारात्मना तस्य समुन्मेषः १४८
अकारस्य सर्ववाग्रूपत्वम् १४८

बिन्दोरिकारोकारात्मना समुन्मेषः १४८
यथोक्तवर्णत्रयस्य सर्वस्वरविभावकत्वम् १४८
तेषां दीर्घतापत्तिः १४८
एषामुत्पत्तिः १४८
तेषां सन्ध्यक्षरत्वम् १४९
तेषामवयवार्थाविष्करणम् १४९
ऋऌवर्णोत्पत्तिः १४९
नाभौ कुण्डल्याः पश्यन्तीत्वम् १५०
तस्या हृदब्जे विस्तारः १५०
तस्याः कण्ठदेशे विसर्गात्मना परिणामः १५१
स्वराणामवान्तरभेदनिरूपणम् १५१
स्वराणां सूर्यचन्द्रकिरणात्मता १५२
तयोरहोरात्रप्रवर्तकत्वम् १५२
परशक्तेः सुषुम्नासञ्चारित्वम् १५३
व्यञ्जनसृष्टिकथनारम्भः- १५३
विसर्गस्य वासुदेवमूर्तित्वम् १५३
क्षकारसहितानां तेषां ब्रह्मशब्दवाच्यत्वम् १५४
अन्तःस्थानामुत्पत्तिस्तेषां संज्ञात्रयं च १५४
मकारोत्पत्तिः १५४
तस्य सर्वचेतनसमष्टिरूपत्वं जीववाचित्वं च १५४
भकारोत्पत्तिस्तस्य च प्रकृतिवाचित्वम् १५५
बादिटान्तत्रयोदशवर्णोत्पत्तिः १५५
बादित्रयस्य महदहङ्कारमनोवाचित्वम्; तवर्गस्य ज्ञानेन्द्रियवाचित्वम् १५५
टवर्गस्य कर्मेन्द्रियवाचकत्वम् १५५
चवर्गोत्पत्तिः; तस्य तन्मात्रवाचित्वम् १५५
कवर्गोत्पत्तिः; तस्य महाभूतवाचित्वम् १५५
ळकारोत्पत्तिः १५६
व्यञ्जनानां वैविध्यम् १५६
वर्णमातृकाया भगवच्छक्तिप्रोतत्वम् १५६
भगवदाज्ञया रुद्रांशस्यापि वर्णमातृकाधिष्ठातृत्वम् १५७
सप्तदशोऽध्यायः १५८-१६५

वर्णसंज्ञानिरूपणम्

वर्णमातृकाधिष्ठातृरूपप्रश्नः १५८
तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा १५८
वर्णाधिष्ठातृवैष्णवरूपाणि १५८
वर्णाधिष्ठातृरौद्ररूपाणि १६२
वर्णचक्रपद्मनिरूपणम् १६३
वर्णमातृकात्मकवैष्णवशक्तिस्वरूपवर्णनम् १६३
वैष्णवरूपैरेव वैष्णवमन्त्रोद्धरणम् १६४
रौद्रमन्त्राणां रौद्ररूपैरुद्धरणम्; शक्तिमन्त्राणां शक्तिरूपैः १६४
उक्तक्रमोल्लङ्घने प्रत्यवायः १६४
अनुल्लङ्घनेऽभ्युदयः १६५
अष्टादशोऽध्यायः १६६-१७३

मन्त्रोद्धारः

शक्तिमन्त्रोद्धारः १६६
संक्षेपतस्तत्प्रभावः १६६
सुदर्शनदशाक्षरमन्त्रोद्धारः १६७
संक्षेपतस्तत्प्रभाववर्णनम् १६८
त्रेधा पञ्चमबीजकथनम् १६९
त्रेधा षष्ठबीजकथनम् १६९
सुदर्शनगायत्री १७०
पुनः शक्तिमन्त्रवैभवः १७०
शक्तिमन्त्रस्य प्रथमद्वितीयाक्षराभ्यां पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोराविर्भावः १७१
संक्षेपतो मन्त्रार्थवर्णनम् १७१
सुदर्शनसप्ताक्षरी १७२
सुदर्शनाष्टाक्षरी १७२
सुदर्शननवाक्षरी १७२

अथाङ्गसिद्ध्यर्थाङ्गमन्त्रः १७२
एकोनविंशोऽध्यायः १७४-१८२

अङ्गोपाङ्गमन्त्रोद्धारः

हृदयमन्त्रः १७४
शिरोमन्त्रः १७५
शिखामन्त्रः १७५
कवचमन्त्रः १७६
अस्त्रमन्त्रः १७७
नेत्रमन्त्रः १७७
उपाङ्गमन्त्रः १७८
चक्रगायत्री १७९
चक्राद्यस्त्रमन्त्राः १७९
शङ्खादिमन्त्राः १८०
दण्डाद्यस्त्रमन्त्राः १८१
अत्रानुक्तस्य संहितान्तरात् ग्रहणम् १८२
विंशोऽध्यायः १८३-१९१

मन्त्रग्रहणादिदीक्षाविधानम्

आचार्यलक्षणम् १८३
शिष्यलक्षणम् १८४
दीक्षाक्रमः १८४
अङ्गन्यासकरन्यासौ १८५
ऋष्यादीनां स्थानभेदः १८५
परसूक्ष्मस्थूलमन्त्राणामृषयः १८५
सुदर्शनमन्त्रस्याथर्वणवेदसारतमत्वम् १८६
सङ्कर्षणाज्ञया अहिर्बुध्न्येन तदुद्धरणम् १८६
देहे संहारन्यासक्रमः १८६
अङ्गोपाङ्गन्यासः १८७
देहस्य त्रेधा विभावनम् १८७
सृष्टिन्यासः १८७
शिष्यावेक्षणम् १८८
शिष्यस्य संहारन्यासः १८८
सृष्टिन्यासः १८८
मन्त्रोपदेशः १८८
शिष्यकृत्यम् १८९
क्षुद्रार्थं मन्त्रो न प्रयोज्यः १८९
मन्त्रप्रयोगविषयाः १८९
पुरश्चरणार्थप्रदेशविधिः १९०
कृच्छ्रादिभिः शरीरशोधनम् १९०
पुरश्चरणाङ्गनियमाः १९०
मन्त्रजपादिसंख्या १९०
मन्त्रसिद्धिः, तेन लोकसंरक्षा १९०
मन्त्रानधिकारिणः १९१
एकविंशोऽध्यायः १९२-१९६

ज्योतिर्मयरक्षानिरूपणम्

रक्षाप्रकारप्रश्नः १९२
रक्षाया द्वैविध्यम् १९२
अक्षकल्पनम् १९३
नाभिकल्पनम् १९३
श्रियः षाड्गुण्यपूर्णता १९३
अरकल्पनम् १९४
नेमिकल्पनम् १९४
विभवेशादीनां नेमिबाह्यस्थानकल्पनम् १९५
एवं ध्यायिन आनुषङ्गिकं फलम् १९५
मुख्यफलकथनम् १९६
अध्यायार्थनिगमनम् १९६
द्वाविंशोऽध्यायः १९७-२०३

मन्त्रमयरक्षानिरूपणम्

तत्रादौ चतुःब्रह्मचक्रम् १९७
षडरविष्णुचक्रम् १९९
अष्टारनारायणचक्रम् २०१
त्रयोविंशोऽध्यायः २०४-२१७

वासुदेवादियन्त्रनिरूपणम्

द्वादशारचक्रम् २०४
अजिताख्यद्वात्रिंशदरचक्रम् २०६
नारसिंहद्वात्रिंशदरचक्रम् २०८
शतारज्योतिश्चक्रम् २०९
ब्रह्मचक्रम् २१२

सहस्रारमातृकाचक्रम् २१३

चतुर्विंशोऽध्यायः २१८-२२५

यन्त्रदेवताध्याननिरूपणम्

उक्तानामष्टानां चक्राणां संक्षेपेण फलकथनम् २१८

मातृकाचक्रे लक्ष्म्या ध्येयत्वम् २२१

अङ्गमन्त्रदेवतातद्ध्यानादिप्रपञ्चनम् २२२

सुदर्शनमयसर्वचक्रकूटध्यानम् २२३

सौदर्शनसर्वमन्त्रमूलभूतशक्तिध्यानम् २२४

उक्तेषु यन्त्रेषु द्विजस्यैवाधिकारः २२४

सौदर्शनमन्त्रेष्वभिक्रमनाशाद्यभावः २२५

पञ्चविंशोऽध्यायः २२६-२३०

सुदर्शनयन्त्रवैभववर्णनम्

यन्त्रवैभवं प्रदर्शयितुमुक्तार्थानुवादः २२६

संक्षेपतः कलिस्वरूपकथनम् २२७

तादृशे कलौ राज्ञां रक्षाविध्युपायप्रश्नः २२७

तत्प्रतिवचनारम्भः २२७

स्वकृतपितामहशिरश्छेदमहापापप्रशमाय नारायणात् २२८

सुदर्शनयन्त्रप्राप्तिकथनम् २२८

तन्महिमसंक्षेपः २२८

सुदर्शननारसिंहयन्त्रफलप्रदर्शनम् २२९

विष्णुपञ्जरयन्त्रफलप्रदर्शनम् २२९

महासुदर्शनयन्त्रफलम् २२९

षड्विंशोऽध्यायः २३१-२४६

महासुदर्शनयन्त्रलक्षणम्

विस्तरेण महासुदर्शनयन्त्रलक्षणप्रश्नः २३१

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा २३१

यन्त्रनिर्माणद्रव्याणि २३१

यन्त्रलेखनसाधनद्रव्याणि २३२

यन्त्रमध्ये सौदर्शनपुरुषलेखनम् २३२

तत्स्वरूपवर्णनम् २३२

तस्य सर्वशरण्यत्वं निर्दोषत्वं कल्याणगुणाकरत्वं च २३३

तत्पादप्रान्ते साधकनामलेखनम् २३३

ततः पर्यन्ते षट्कोणचक्रलेखनम् २३३

तत्र षडक्षरविन्यासः २३३

अङ्गमन्त्रन्यासः २३३

ततश्चतुर्दलपद्मलेखनम् २३४

तत्र न्यसनीया वर्णाः २३४

अन्तरालेष्वन्तःस्थवर्णविन्यासः २३४

ततः षोडशकेसराष्टदलपद्मलेखनम् २३४

केसरेषु षोडशस्वरविन्यासः २३४

दलेष्वष्टाक्षरमन्त्रन्यासः २३४

द्वात्रिंशत्केसरषोडशदलपद्मलेखनम् २३४

केसरेषु कादिसान्तवर्णविन्यासः २३४

दलेषु षोडशार्णमन्त्रवर्णन्यासः २३४

द्वात्रिंशत्केसरदलपद्मलेखनम् २३४

केसरेषु वाराहनुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः २३५

दलेषु नारसिंहानुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः २३५

चतुःषष्टिदलपद्मलेखनम् २३५

तद्दलेषु पातालनारसिंहमन्त्रन्यासः २३५

पुनरष्टदलपद्मलेखनम् २३५

तद्दलेष्वष्टाक्षरनारसिंहमन्त्रन्यासः २३५

तद्बहिर्माहेन्द्रमण्डलकल्पनम् २३५

बहिष्कोणेष्वन्तःस्थवर्णन्यासः २३६

कोणान्तरालेषु तद्बीजन्यासः २३६

तत्परितः स्वराणां प्रातिलोम्येन विन्यासः २३६

तत्परितः सादिकान्ताक्षरविन्यासः २३६

स्वनाम्ना पाशाङ्कुशाभ्यां चावेष्टनम् २३६

भूपुरकल्पनम् २३६

समन्तात् केशवादिमूर्तिन्यासः २३६

(१) केशवस्वरूपवर्णनम् २३६

(२) नारायणस्वरूपवर्णनम् २३७

(३) माधवस्वरूपवर्णनम् २३७

(४) गोविन्दस्वरूपवर्णनम् २३७

(५) विष्णुस्वरूपवर्णनम् २३७

(६) मधुसूदनस्वरूपवर्णनम् २३७
(७) त्रिविक्रमस्वरूपवर्णनम् २३८
(८) वामनस्वरूपवर्णनम् २३८
(९) श्रीधरस्वरूपवर्णनम् २३८
(१०) हृषीकेशस्वरूपवर्णनम् २३८
(११) पद्मनाभस्वरूपवर्णनम् २३८
(१२) दामोदरस्वरूपवर्णनम् २३८
नमोऽन्तानां तत्तन्नाम्नामपि लेखनम् २३८
प्रागादिषु प्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः २३९
ऐशान्यादिष्वप्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः २३९
पुनः पाशाङ्कुशाभ्यां वेष्टनम् २३९
प्रागादिचतुर्दिक्षु विष्णुविन्यासस्तेषामायुधानि च २३९
आग्नेयादिकोणेषु हृषीकेशन्यासः २३९
तेषामायुधविशेषाः २३९
कोणान्तरालेष्वष्टसु जनार्दनविन्यासः २४०
तेषामायुधविशेषाः २४०
तत्तत्पार्श्वेषु तत्तत्परिवारलेखनम् २४०
ततो भूमौ भूम्या सह पुरुषोत्तमस्मरणम् २४०
अम्बरे नरसिंहस्मरणम् २४०
प्रागादिषु चक्रगदाशार्ङ्गखड्गस्मरणम् २४०
अस्य यन्त्रस्यापराङ्गकल्पनाय मध्ये चतुर्विंशत्यरचक्रकल्पनम् २४१
तन्मध्ये द्वादशदलपद्मलेखनम् २४१
तत्कर्णिकायामाग्नेयमण्डलन्यासः २४१
तन्मध्ये योगनृसिंहलेखनम् २४१
चक्रस्य प्रागादिष्वष्टशक्तिध्यानम् २४२
यथोक्तलक्षणयन्त्रमहिमा २४२
भूर्जपत्रलिखितस्यापि यन्त्रस्य सर्वफलसाधनता २४३
एतद्यन्त्रशिलाप्रतिष्ठाया मुक्तिसाधनत्वम् २४३
लोहादिभिर्यन्त्रप्रतिमानिर्माणफलम् २४३
कर्षणादिप्रतिष्ठान्तायतननिर्माणफलम् २४३
भयादिषु यन्त्रस्मरणे फलम् २४३
त्रिसन्ध्यं यन्त्रार्चनं मुक्तिसाधनम् २४३
रक्षाविधौ राज्ञां वैशेषिकविध्यारम्भः २४४
तत्र प्रथममाचार्यपूजाविधिः २४४
ततो भगवदाराधनविधिः २४४
ततो यन्त्रनिर्माणम् २४४
यन्त्रनिर्माणस्य राज्यप्राप्तिहेतुत्वम् २४४
प्रतिष्ठापूर्वकार्चनस्य सप्तद्वीपान्तभूमिप्राप्तिहेतुत्वम् २४४
अन्ततस्त्रैलोक्यपालयितृत्वसिद्धिः २४५
परकृताभिचारपरावर्तनसिद्धिः २४५
अवग्रहादिपरिहारसिद्धिः २४५
सर्वेषां स्वधर्मप्रवृत्तिसिद्धिः २४५
दुर्वाससा शप्तस्येन्द्रस्य यन्त्रेणानेन पुनः स्वपदप्राप्तिः २४५
चतुर्मुखस्य भगवत्सकाशाद्यन्त्रप्राप्तिः २४५
चतुर्मुखेन विश्वकर्मणा यन्त्रविमानयोर्निर्मापणम् २४५
तदा प्रभृति यन्त्रस्यैव रक्षासाधनत्वम् २४६
अध्यायार्थनिगमनम् २४६
सप्तविंशोऽध्यायः २४७-२५४

धारकयन्त्रनिरूपणम्

वृत्तानुवादपूर्वकं धारकयन्त्रविषयकः प्रश्नः २४७
तत्प्रतिवचनारम्भः २४७
प्रथमं माहेन्द्रमण्डलनिर्माणम् २४८
तत्कोणेषु भूबीजाक्षरन्यासः २४८
मण्डलप्राग्भागे शेषगुलिकयोर्न्यासः २४८
दक्षिणभागे वासुकिशङ्खयोः २४८

पश्चिमे तक्षकमहाम्बुजयोः २४८
उत्तरभागे कार्कोटकाम्बुजयोः २४८
मध्ये वह्निमण्डलकल्पना २४८
तन्मध्ये वायुमण्डलविन्यासः २४९
तन्मध्ये दशारचक्रलेखनम् २४९
अरेषु सुदर्शननारसिंहमन्त्रन्यासः २४९
चक्रमध्ये अष्टदलपद्मलेखनम् २४९
कर्णिकायां प्रणवन्यासः २४९
तत्रैवाभीष्टार्थसाध्यनाम्नोर्विलेखनम् २४९
यन्त्रेणानेनेन्द्रस्य शत्रुजयप्राप्तिः २५०
अस्यैव यन्त्रस्य पूर्वोक्तमहासुदर्शनयन्त्रधारकत्वम् २५०
राजन्वद्देशस्यैव यथोक्तयन्त्रभरणक्षमत्वम् २५१
राज्ञो नित्यमेतदभ्यर्चनविधिः २५१
एतन्मन्त्रप्रदातुर्विशेषतः पूज्यत्वम् २५१
एतन्मन्त्रविधिना कर्षणादिप्रतिष्ठान्तकर्मविधिः २५१
तन्त्रस्यास्य सात्त्वतादिभिरेकतन्त्रत्वम् २५१
राज्ञामेतदर्चनेन राज्यादिलाभः २५२
नित्यमर्चयतः फलविशेषः २५२
होमार्थं प्रासादकुण्डयोर्निर्माणम् २५२
साधकेन तत्र होमादिनिर्वर्तनम् २५२
वैकल्पिकप्रदेशान्तरविधिः २५२
पुनर्यन्त्रार्चनफलविशेषकथनम् २५२
अस्मिन् मन्त्रे यन्त्रे च राज्ञामेवाधिकारः २५३
एतत्प्रणामादीनामपि तत्तत्फलसाधनत्वम् २५३
अध्यायार्थनिगमनम् २५४
अष्टाविंशोऽध्यायः २५५-२६६

भगवदाराधनविधिनिरूपणम्

आराधनविधिनिरूपणारम्भः २५५
तस्यैहिकामुष्मिकफलसाधनत्वम् २५५
तत्रादौ स्नानविधिः २५५
आराधनोपक्रमः २५६
मण्डपवर्णनम् २५६
तत्र वेदिकानिर्माणम् २५७
तत्र सपरिवारभगवद्ध्यानम् २५७
भगवत्प्रार्थना २५८
भूतशुद्धिक्रमः २५८
पात्रादिस्थापनम् २५९
अर्घ्यादिषु प्रक्षेप्यद्रव्याणि २५९
तत्र मन्त्रासनं प्रथमम् २५९
स्नानासनं द्वितीयम् २६०
तृतीयमलङ्कारासनम् २६१
चतुर्थं भोज्यासनम् २६२
हविर्निवेदनम् २६३
पुनर्मन्त्रासनं पञ्चमम् २६३
षष्ठं पर्यङ्कासनम् २६४
दास्यप्रार्थना २६५
एवमनुष्ठितस्याराधनस्य मोक्षसाधनत्वम् २६५
आनुषङ्गिकफलसाधनत्वं कैमुतिकम् २६५
परिवाराद्यर्चनविधिः २६५
एकोनत्रिंशोऽध्यायः २६७-२७७

काम्याराधनविधिनिरूपणम्

तत्प्रतिवचनारम्भः २६७
तत्तदाराधनविशेषाणां तत्तद्दिग्विजयसाधनत्वम् २६७
तत्र प्राचीदिग्विषये २६८
दक्षिणदिग्विषये २६९
पश्चिमदिग्विषये २७०
उत्तरदिग्विषये २७२
विदिशां विषये २७३
ऊर्ध्वलोकस्य विषये २७४
नागलोकस्य विषये २७५

सामान्यपरिभाषा २७६

त्रिंशोऽध्यायः २७८-२८३

अस्त्राणां जन्मनामनिरूपणम्

ब्राह्माद्यस्त्राणां देवपरिवारत्वकथन्ताप्रश्नः २७८
तेषां जन्मनामप्रश्नः २७८
तत्प्रतिवचनार्थमाख्यायिकारम्भः २७८
लीलार्थं भगवतो बहुभवनम् २७८
पुरुषाधिष्ठितप्रधानसृष्टिः २७८
प्रधानान्महतः सृष्टिः २७९
महतोऽहङ्कारसृष्टिः २७९
सात्त्विकाहङ्कारादेकादशेन्द्रियसृष्टिः २७९
तामसाहङ्कारात् भूतसूक्ष्माणां भूतानां च सृष्टिः २७९
सप्तावरणवेष्टिताण्डसृष्टिः २७९
अण्डे चतुर्मुखसृष्टिः २७९
भगवच्छक्तिभूतस्य कालस्य सृष्टौ सहकारित्वम् २७९
चतुर्मुखव्याजेन भगवत एव विचित्रजगत्स्रष्टृत्वम् २८०
वेदशब्देभ्य एव देवादीनां नामरूपव्याकरणम् २८०
आप्तकामस्यापि स्रष्टृत्वोपपत्तिः २८०
भगवत एव पालकत्वम् २८०
दुष्टनिरसनं विना पालनस्याशक्यत्वम् २८०
दुष्टनिबर्हणाय भगवत एव चक्रात्मनावस्थानम् २८०
देवादीनां सुदर्शनधारणासामर्थ्यम् २८०
शस्त्रास्त्ररूपेण तस्य विभागः २८१
भगवदात्मकात् सुदर्शनादस्त्राणामुत्पत्तिः २८१
तत्र मुखजातान्यस्त्राणि २८१
वक्षोजातान्यस्त्राणि २८१
ऊरुजातान्यस्त्राणि २८२
पादजातान्यस्त्राणि २८२
अपराङ्गजातान्युपसंहारास्त्राणि २८२
अध्यायार्थनिगमनम् २८३

एकत्रिंशोऽध्यायः २८४-२९१

योगाङ्गयमनियमासननिरूपणम्

हृद्यागस्वरूपप्रश्नः २८४
तदुत्तरकथनारम्भः २८४
हृद्यागलक्षणम् २८४
आत्मसमर्पणस्य हृद्यागतुल्यत्वम् २८५
प्रकृतिवियुक्तात्मस्वरूपविषयकः प्रश्नः २८५
तदुत्तरकथनारम्भः २८५
योगकर्मणोर्विविक्तात्मस्वरूपप्राप्तिसाधनता २८५
तद्विषयकः प्रश्नः २८६
तदुत्तरकथनारम्भः २८६
कर्मणां द्वैविध्यम् २८६
प्रवर्तकनिवर्तककर्मणोः क्रमादभ्युदयनिःश्रेयससाधनत्वम् २८६
जीवपरसंयोगस्याष्टाङ्गयोगशब्दार्थता २८६
योगाङ्गपरिगणनम् २८६
यमस्वरूपनिरूपणम् २८७
सत्यादीनां स्वरूपनिरूपणम् २८७
नियमस्वरूपनिरूपणम् २८७
सिद्धान्तश्रवणादीनां स्वरूपनिरूपणम् २८८
अथासनानां स्वास्थ्यहेतुत्वम् २८८
मुख्यासनपरिगणनम् २८८
चक्रासनम् २८९
पद्मासनम् २८९
कूर्मासनम् २८९
मयूरासनम् २८९
कुक्कुटासनम् २८९
वीरासनम् २८९
स्वस्तिकासनम् २९०
भद्रासनम् २९०

सिंहासनम् २९०
मुक्तासनम् २९०
गोमुखासनम् २९०
प्राणायामसिद्धये नाडीशुद्ध्यावश्यकता २९१
द्वात्रिंशोऽध्यायः २९२-३०३

नाडीशुद्धिवायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपणम्

नाडीसङ्ख्यास्थानादिप्रश्नः २९२
वायुसङ्ख्यादिप्रश्नः २९२
तदुत्तरकथनारम्भः २९२
शरीरस्य षण्णवत्यङ्गुलपरिमाणत्वम् २९२
शरीरमध्यभागनिर्णयः २९३
शरीरस्थवह्निमण्डलस्वरूपम् २९३
नाडीमूलस्थानम् २९३
नाभिचक्रस्थानम् २९३
नाभिचक्रस्यारेषु सुदर्शनमन्त्रवर्णन्यासः २९३
शिष्टाक्षराणां चक्रमध्ये न्यासः २९३
नाभिचक्रं परितः कुण्डल्यवस्थितिः २९३
चक्रमध्ये अलम्बुसासुषुम्नयोः स्थितिः २९४
अन्यासां द्वादशनाडीनां स्थानभेदाः २९४
मुख्यानां चतुर्दशनाडीनां नामानि २९४
देहवर्तिनाडीसङ्ख्या २९५
मुख्यास्तिस्रो नाड्यः २९५
तास्वपि सुषुम्ना मुख्यतमा २९५
जीवस्य नाडीचक्रे भ्रमणम् २९५
सुषुम्नाया मध्यमरन्ध्रस्य कुण्डल्या पिधानम् २९५
नाडीनां परिमाणनिरूपणम् २९५
इडापिङ्गलयोश्चन्द्रसूर्यावस्थितिः २९६
शारीरवायुवृत्तान्तकथनम् २९६
शरीरे दश वायवः २९६
प्राणादिवायूनां स्थाननिरूपणम् २९६
प्राणादीनां वृत्तिनिरूपणम् २९७
नाडीशोधनविधिः २९८
तच्छोधनप्रकारः २९८
उत्क्रमेण शोधयतो मासत्रयेण नाडीशुद्धिसिद्धिः २९८
ततो वायुजयः २९८
वायुजयान्मनसः स्थैर्यम् २९८
प्राणायामविधिः २९८
शिखादिस्थानेषु मनोः षडक्षरन्यासः २९९
प्राणायामप्रकारः २९९
प्रत्याहारनिरूपणम् २९९
धारणानिरूपणम् ३००
ध्याननिरूपणम् ३००
ध्यानालम्बनभूतध्येयस्वरूपनिरूपणम् ३००
समाधिनिरूपणम् ३०१
समाधिनिष्ठस्य महिमानुवर्णनम् ३०१
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३०३-३१७

मणिशेखरोपाख्यानवर्णनम्

उक्तार्थानुवादः ३०३
सुदर्शनप्रभावविषयकस्त्रिधा प्रश्नः ३०३
विस्तरेण तदुत्तरकथनारम्भः ३०४
सर्वस्यापि सुदर्शनात्मकत्वम् ३०४
सुदर्शनस्यैव कालचक्रात्मकत्वम् ३०४
कालचक्रस्वरूपनिरूपणम् ३०४
सर्वस्यापि कालचक्रवशवर्तित्वम् ३०४
परमात्मा कालचक्रप्रवर्तकः ३०४
जगच्चक्रनिरूपणम् ३०४
परमात्मनस्तत्प्रेरकत्वम् ३०४
परमात्मनो नाभिचक्रप्रेरकत्वम् ३०५
परमात्मनः सर्वप्रेरकत्वनिगमनम् ३०५
तस्यैव जगत्सर्गस्थितिसंहारहेतुत्वम् ३०५
तस्यैव शिवरूपधरस्य शैवैराराध्यत्वम् ३०५
तस्यैव ब्रह्मरूपेण जगत्स्रष्टृत्वम् ३०५

तस्यैव स्वांशरूपेण जगत्पालकत्वम् ३०५
तस्यैव रुद्ररूपेण संहर्तृत्वम् ३०५
तस्यैव बुद्धरूपत्वम् ३०५
तस्यैव दिगम्बररूपत्वम् ३०६
तस्यैव जिनरूपत्वम् ३०६
तस्यैव यज्ञपुरुषरूपत्वम् ३०६
कापिलमते तस्यैव पुरुषरूपत्वम् ३०६
सर्वस्वरूपत्वात् तस्यैव सर्वफलप्रदत्वम् ३०६
देवादिरूपधारणादपि चक्ररूपधारणं भगवतः प्रियतमम् ३०६
तत्र हेतुनिरूपणम् ३०६
तत्रेतिहासोदाहरणम् ३०७

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३१८-३३३

ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपनिरूपणम्

ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपप्रश्नः ३१८
१. ब्रह्मास्त्रम् ३१९
२. दण्डचक्रम् ३१९
३. कालचक्रम् ३१९
४. धर्मचक्रम् ३१९
५. विष्णुचक्रम् ३२०
६. इन्द्रचक्रम् ३२०
७. वज्रास्त्रम् ३२०
८. त्रिशूलम् ३२०
९. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम् ३२१
१०. ऐषीकास्त्रम् ३२१
११. मोदकी ३२१
१२. शिखरी ३२१
१३. धर्मपाशास्त्रम् ३२१
१४. कालपाशास्त्रम् ३२२
१५. वरुणपाशास्त्रम् ३२२
१६. आद्योऽशनिः ३२२
१७. अन्योऽशनिः ३२२
१८. पैनाकास्त्रम् ३२२
१९. नारायणास्त्रम् ३२३
२०. पाशुपतास्त्रम् ३२३
२१. आग्नेयास्त्रम् ३२३
२२. दयितास्त्रम् ३२३
२३. वायव्यास्त्रम् ३२४
२४. हयशिरोऽस्त्रम् ३२४
२५. क्रौञ्चास्त्रम् ३२४
२६. प्रथमा शक्तिः ३२४
२७. द्वितीया शक्तिः ३२५
२८. कङ्कालास्त्रम् ३२५
२९. मुसलास्त्रम् ३२५
३०. कापालास्त्रम् ३२५
३१. कङ्कणी ३२५
३२. वैद्याधरास्त्रम् ३२६
३३. असिरत्नास्त्रम् ३२६
३४. गान्धर्वास्त्रम् ३२६
३५. प्रस्थापनास्त्रम् ३२६
३६. प्रशमनास्त्रम् ३२६
३७. सौर्यास्त्रम् ३२७
३८. दर्पणास्त्रम् ३२७
३९. शोषणास्त्रम् ३२७
४०. सन्तापनास्त्रम् ३२७
४१. विलापनास्त्रम् ३२८
४२. मदनास्त्रम् ३२८
४३. कंदर्पदयितास्त्रम् ३२८
४४. पैशाचास्त्रम् ३२८
४५. तामसास्त्रम् ३२८
४६. सौमनास्त्रम् ३२९
४७. संवर्तास्त्रम् ३२९
४८. मौसलास्त्रम् ३२९
४९. सत्यास्त्रम् ३२९
५०. मायाधरास्त्रम् ३२९
५१. घोरास्त्रम् ३३०
५२. रत्यस्त्रम् ३३०
५३. अघोरास्त्रम् ३३०
५४. सौमास्त्रम् ३३०
५५. त्वाष्ट्रास्त्रम् ३३१

५६. दारुणास्त्रम् ३३१
५७. भगास्त्रम् ३३१
५८. शीतेष्वस्त्रम् ३३१
५९. मानवास्त्रम् ३३२
६०. रौद्रास्त्रम् ३३२
६१. प्रस्वापनास्त्रम् ३३२
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३३४-३४८

संहारास्त्रस्वरूपनिरूपणम्

संहारास्त्रस्वरूपप्रश्नः ३३४
तदुत्तरकथनारम्भः ३३४
१. सत्यवदस्त्रम् ३३४
२. सत्यकीर्त्यस्त्रम् ३३५
३. धृष्टास्त्रम् ३३५
४. रभसास्त्रम् ३३५
५. प्रतीहारतरास्त्रम् ३३५
६. पराङ्मुखास्त्रम् ३३६
७. अवाङ्मुखास्त्रम् ३३६
८. लक्षाक्षास्त्रम् ३३६
९. विषमास्त्रम् ३३६
१०. दृढनाभास्त्रम् ३३७
११. संहारकास्त्रम् ३३७
१२. दशाक्षास्त्रम् ३३७
१३. दशशीर्षास्त्रम् ३३७
१४. शतोदरास्त्रम् ३३८
१५. पद्मनाभास्त्रम् ३३८
१६. महानाभास्त्रम् ३३८
१७. दुन्दुनाभास्त्रम् ३३८
१८. धृतिमाल्यस्त्रम् ३३९
१९. रुचिरास्त्रम् ३३९
२०. पितृसौमनसास्त्रम् ३३९
२१. विधूतास्त्रम् ३३९
२२. मकरास्त्रम् ३४०
२३. करवीरसमास्त्रम् ३४०
२४. धनास्त्रम् ३४०
२५. धान्यास्त्रम् ३४१
२६. ज्यौतिषास्त्रम् ३४१
२७. कृशनास्त्रम् ३४१
२८. नैराश्यास्त्रम् ३४१
२८. विमलास्त्रम् ३४२
३०. योगन्धरास्त्रम् ३४२
३१. विनिद्रास्त्रम् ३४२
३२. नैद्रास्त्रम् ३४३
३३. प्रमथनास्त्रम् ३४३
३४. सार्चिर्माल्यस्त्रम् ३४३
३५. कामरूपास्त्रम् ३४३
३६. कामरुच्यस्त्रम् ३४४
३७. मोहनास्त्रम् ३४४
३८. आवरणास्त्रम् ३४४
३९. जृम्भकास्त्रम् ३४४
४०. सर्वनाभकास्त्रम् ३४५
४१. भृशाश्वतनयास्त्रम् ३४५
४२. सन्धानास्त्रम् ३४५
४३. वारुणास्त्रम् ३४५
अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वजिज्ञासया नारदेनाहिर्बुध्न्यस्तुतिः ३४६
अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वप्रश्नः ३४७
तेषां मूर्तत्वप्रतिपादनम् ३४७
षट्त्रिंशोऽध्यायः ३४९-३५८

राज्ञां सुदर्शनयन्त्राराधनविधानकेशवादिगुणप्रधानभावव्यवस्थापनम्

सौदर्शनयन्त्रस्य पूर्वापराङ्गध्यानार्चनप्रकारप्रश्नः तदुत्तरकथनम् ३४९
तत्र पूर्वाङ्गे यन्त्रमध्ये सुदर्शनध्यानम् ३५०
परितः केशवादिद्वादशमूर्तिध्यानम् ३५०
ततो विष्ण्वादिषोडशमूर्तिध्यानम् ३५०
परितो मूर्तिमत्संहारास्त्रध्यानम् ३५१
ततो मूर्तिमत्प्रवर्तकास्त्रध्यानम् ३५१
ततो नारसिंहध्यानम् ३५१
अपराङ्गध्यानम् ३५१

अपराङ्गे सर्वास्त्राणां मन्त्रमात्रध्यानम् ३५२
एतद्यन्त्राभ्यर्चनाद्राज्ञां चक्रवर्तित्वलाभः ३५२
अन्यैरपि राजहितैषिभिरेतदर्चनं कार्यम् ३५२
अन्येषामपि श्रीकामानामेतदभ्यर्चनम् ३५२
द्विमुखयन्त्रार्चने मन्त्रोपदेष्टुर्ब्राह्मणस्यैवाधिकारः ३५३
आदित्यमण्डलाक्ष्यादिस्थानां पुरुषाणामभिन्नत्वम् ३५३
तस्यैव कालचक्रादिप्रवर्तकत्वम् ३५३
विमाने संस्थाप्य तस्यैव समभ्यर्चनमैहिकामुष्मिकफलसाधकम् ३५३
विमानकरणारम्भस्यापि महाफलकत्वम् ३५४
विमानकरणार्थस्य कर्षणस्यापि सर्वसम्पत्साधनत्वम् ३५४
आरब्धापरिसमाप्तस्यापि विमानकरणस्यान्ततो मुक्तिसाधनता ३५४
साङ्गप्रतिष्ठादिकर्तुः फलपरम्परानिरूपणम् ३५४
सुदर्शनपुरुषमनाराधयतो नृपत्वं दुर्लभम् ३५५
एतदाराधनतारतम्यात् फलतारतम्यम् ३५५
तस्माद्राज्ञामन्येषां चैतदाराधनावश्यकता ३५५
तदुत्तरकथनारम्भः ३५६
तदुपपादनाय परमात्मशक्तेर्द्वैधा विभागः ३५६
तत्रेच्छारूपिण्याः शक्तेर्लक्ष्मीरूपत्वम् ३५६
क्रियारूपायाः शक्तेः सुदर्शनरूपत्वम् ३५६
ताभ्यां शक्तिभ्यां विना भगवतोऽप्यकिञ्चित्करत्वम् ३५७
तस्य शक्तिद्वयस्य सृष्टिस्थितिसंहाराद्युपकरणत्वम् ३५७
रक्षकं परमात्मानं प्रति शक्तिद्वयस्यापि रक्ष्यकोट्यन्तर्भावः ३५७
विशिष्य लक्ष्म्या अपि रक्ष्यकोट्यन्तर्भावप्रतिपादनम् ३५७
प्रकारान्तरेणापि गुणप्रधानभावोपपादनम् ३५८
एतद्रहस्यश्रवणादेरपि क्रमशः परमपुरुषार्थसाधनत्वम् ३५८
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३६०-३६९

न्यासापरपर्यायप्रपत्तिनिरूपणम्

उक्तानुवादपूर्वकं सुदर्शनस्य षोडशभुजत्वप्रयोजनादिप्रश्नः ३६०
राज्ञामत्याहितादिनिवारणं षोडशभुजत्वस्य प्रयोजनम् ३६१
षोडशभुजसुदर्शनविग्रहवर्णनम् ३६१
यथोक्तसुदर्शनध्यानस्य निःसापत्न्यसाधनता ३६२
सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां शत्रुपराभवादिः ३६३
योगेन न्यासेन वा सुदर्शनाराधनस्यैहिकामुष्मिकफलसाधनता ३६३
उक्तानुवादपूर्वकं न्यासाख्यप्रपत्तिस्वरूपप्रश्नः ३६३
न्यासस्य परमरहस्यत्वख्यापनम् ३६३
न्यासस्य सर्वफलसाधनत्वोपपादनम् ३६४
प्रपत्तेः षडङ्गानि ३६४
न्यासप्रकरणे शरणशब्दस्य साधनवाचित्वम् ३६४
प्रपत्तिलक्षणम् ३६४
सुदर्शनप्रपत्तौ मन्त्रविशेषकथनम् ३६५
प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वम् ३६५

न्यासमात्रेण तपोयज्ञादिसिद्धिकथन्ताप्रश्नः ३६५
तदुत्तरकथने न्यासस्य सर्वतपोऽतिरिक्ततपस्त्वकथनम् ३६५
नमःशब्देन कृतात्मन्यासस्य स्वध्वरत्वोपपादनम् ३६६
न्यासस्य परमधर्मत्वे प्रमाणप्रदर्शनम् ३६६
न्यासस्य सर्वयज्ञसमत्वम् ३६६
न्यासस्य यज्ञत्वनिर्वहणाय यज्ञाङ्गपौष्कल्यनिरूपणम् ३६६
प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वनिगमनम् ३६७
यथोक्तक्रमेण सुदर्शनमनाराधयतां क्लेशप्राप्तिनिगमनम् ३६७
सुदर्शनमनाराधयतां राज्ये ब्रह्महत्यादिदोषोत्पत्तिः ३६८
सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां प्रजानुरागाभावः ३६८
राज्ये सुदर्शनानाराधनात् प्रजानामपि बहुदुःखभागिता ३६८
सुदर्शनसमाराधनस्य सर्वफलावाप्तिसाधनतानिगमनम् ३६८
अष्टात्रिंशोऽध्यायः ३७०-३७९

ज्वरादिरोगनिवृत्त्युपायविधानम्

उक्तानुवादपूर्वकं रोगमोचनोपायप्रश्नः ३७०
रोगोत्पत्ति तद्विनाशकारणकथनम् ३७०
प्राकृतप्रलये एकाकिनः परमपुरुषस्य रमणाभावः ३७१
लीलार्थं पुनः सृष्टिः ३७१
नामरूपव्याकरणम् ३७१
लीलोपकरणभूतप्रकृत्या परमात्मनो रमणम् ३७१
प्रकृत्या जीवपरयोः स्वरूपप्रच्छादनम् ३७२
प्रकृतिपारवश्याज्जीवस्य संसरणम् ३७२
प्रकृतेर्देहात्मभ्रमहेतुत्वम् ३७२
अहङ्कारममकारोत्थवासनादार्ढ्यम् ३७२
तदुत्थवासनानां रागद्वेषद्वारा पुण्यपापहेतुत्वम् ३७२
प्रारब्धकर्मफलोपभोगायैव शरीरसृष्टिः ३७३
रोगाणां पापजन्यत्वम् ३७३
तत्र प्रथमं ज्वरशान्त्युपायः ३७३
राजयक्ष्मशान्तिः ३७५
प्रमेहरोगशान्तिः ३७७
उदररोगशान्तिः ३७७
अपस्माररोगशान्तिः ३७८
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३८०-३८५

सर्वफलसाधनभूतमहाभिषेकविधानम्

केन प्रयोगेण सर्वार्थसिद्धिरिति प्रश्नः ३८०
तदुत्तरकथनारम्भः ३८०
महाभिषेकाख्यकर्मविधिः ३८१
तदङ्गतया स्थानादिविशेषविधिः ३८१
प्रागादिदिक्षु मध्ये चाग्निकुण्डविधिः ३८२
प्रागाद्यग्निकुण्डानां लक्षणकथनम् ३८२
दिशां होमेषु वैष्णवर्त्विग्वरणम् ३८२
होमे द्रव्यसङ्ख्ययोर्विधिः ३८२
होमे मन्त्रविधिः ३८३
कुम्भाभिमन्त्रणविधिः ३८३
प्रथमं प्रागादिकुम्भजलैरभिषेकः ३८३
ततः पूर्णकुम्भजलेनाभिषेकः ३८३
यथोक्ताभिषेकेण सर्वकामावाप्तिः ३८३
अन्ते साधकार्चनविधिः ३८४
ऋत्विजां ब्राह्मणानां च परितोषणविधिः ३८५
चत्वारिंशोऽध्यायः ३८६-४००

अस्त्रस्वरूपतच्छक्तिनिरूपणम्

उक्तानुवादपूर्वकमस्त्रसंस्थानतच्छक्तिस्वरूपप्रश्नः ३८६

अस्त्राणां स्वरूपेण प्रत्यक्षागोचरता ३८७
देवकार्यार्थमिन्द्रं प्रति कदाचित् तेषां गोचरता ३८७
मन्त्ररूपेणासाध्ये विषये तेषां स्वस्वरूपाविष्करणम् ३८७
भगवता तेषां स्वरूपेण धारणम् ३८७
तत्स्वरूपतच्छक्तिकथनप्रतिज्ञा ३८७
१. नारायणास्त्रम् ३८७
२. पाशुपतास्त्रम् ३८८
३. ब्राह्मास्त्रम् ३८८
४. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम् ३८८
५. विष्णुचक्रास्त्रम् ३८८
६. जृम्भणास्त्रम् ३८८
७. कालपाशास्त्रम् ३८८
८. आग्नेयास्त्रम् ३८९
९. हयशिरोऽस्त्रम् ३८९
१०. प्रस्वापनास्त्रम् ३८९
११. तामसास्त्रम् ३८९
१२. कालास्त्रम् ३८९
१३. दण्डचक्रास्त्रम् ३८९
१४. कालचक्रास्त्रम् ३८९
१५. धर्मचक्रास्त्रम् ३८९
१६. शैवास्त्रम् ३९०
१७. शूलास्त्रम् ३९०
१८. परश्वस्त्रम् ३९०
१९. त्रिशूलास्त्रम् ३९०
२०. घोरास्त्रम् ३९०
२१. अघोरास्त्रम ३९०
२२. सम्मोहनास्त्रम् ३९०
२३. ऐषीकास्त्रम् ३९०
२४. ऐन्द्रचक्रास्त्रम् ३९१
२५. शुष्काशन्यस्त्रम् ३९१
२६. आर्द्राशन्यस्त्रम् ३९१
२७. पैनाकास्त्रम् ३९१
२८. कङ्कालास्त्रम् ३९१
२९. कापालास्त्रम् ३९१
३०. सौरास्त्रम् ३९१
३१. वरुणपाशास्त्रम् ३९२
३२. सन्तापनास्त्रम् ३९२
३३. वारुणास्त्रम् ३९२
३४. धर्मपाशास्त्रम् ३९२
३५-३६. शक्तिद्वयास्त्रम् ३९२
३७. वायव्यास्त्रम् ३९२
३८. मौसलास्त्रम् ३९२
३९. गान्धर्वास्त्रम् ३९२
४०. दर्पणास्त्रम् ३९३
४१. शोषणास्त्रम् ३९३
४२. पैशाचास्त्रम् ३९३
४३. तेजःप्रभास्त्रम् ३९३
४४. ऐन्द्रास्त्रम् ३९३
४५. विलापनास्त्रम् ३९३
४६. वैद्याधरास्त्रम् ३९३
४७. कङ्कालास्त्रम् ३९३
४८. मोदक्यस्त्रम् ३९४
४९. शिखरास्त्रम् ३९४
५०. क्रौञ्चास्त्रम् ३९४
५१. असिरत्नास्त्रम् ३९४
५२. प्रशमनास्त्रम् ३९४
५३. कन्दर्पदयितास्त्रम् ३९४
५४. मदनास्त्रम् ३९४
५५. सौमनास्त्रम् ३९४
५६. सत्यास्त्रम् ३९४
५७. संवर्तकास्त्रम् ३९५
५८. मायाधरास्त्रम् ३९५
५९. सोमास्त्रम् ३९५
६०. त्वाष्ट्रास्त्रम् ३९५
६१. शीतेष्वस्त्रम् ३९५
६२. भगास्त्रम् ३९५
६३. सदामनास्त्रम् ३९५
६४. सत्यवदस्त्रम् ३९५
६५. वारणास्त्रम् ३९५
६६. धृष्टास्त्रम् ३९६

६७. भृशाश्वतनयास्त्रम् ३९६
६८. सत्यकीर्त्यस्त्रम् ३९६
६९. मोहास्त्रम् ३९६
७०. रभसास्त्रम् ३९६
७१. सर्वनाभास्त्रम् ३९६
७२. पराङ्मुखास्त्रम् ३९६
७३. जृम्भकास्त्रम् ३९६
७४. प्रतिहारास्त्रम् ३९७
७५. अवाङ्मुखास्त्रम् ३९७
७६. धनास्त्रम् ३९७
७७. धान्यास्त्रम् ३९७
७८. महाभूतास्त्रम् ३९७
७९. कामरूपास्त्रम् ३९७
८०. दृढनाभास्त्रम् ३९७
८१. कामरुच्यास्त्रम् ३९७
८२. सुनाभास्त्रम् ३९८
८३. मकरास्त्रम् ३९८
८४. दशाक्षास्त्रम् ३९८
८५. वेतालास्त्रम् ३९८
८६. दशवक्त्रास्त्रम् ३९८
८७. रुचिरास्त्रम् ३९८
८८. दशकर्णास्त्रम् ३९८
८९. योगन्धरास्त्रम् ३९८
९०. वारुणास्त्रम् ३९९
९१. अनिद्रास्त्रम् ३९९
९२. कुठारास्त्रम् ३९९
९३. शतोदरास्त्रम् ३९९
९४. सौमनसास्त्रम् ३९९
९५. पद्मनाभास्त्रम् ३९९
९६. महानाभास्त्रम् ३९९
९७. ज्यौतिषास्त्रम् ३९९
९८. क्षेपणास्त्रम् ३९९
९९. त्रैराशिकास्त्रम् ४००
१००. सार्चिर्माल्यस्त्रम् ४००
१०१. विमलास्त्रम् ४००
१०२. धृतिकास्त्रम् ४००

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४०१-४०८

स्वरूपतोऽस्त्रधारणतत्प्रयोजनप्रतिपिपादयिषया मधुकैटभसंहारवर्णनम्

भगवता अस्त्राणां स्वरूपतो धारणस्य कालविशेषप्रयोजनादिप्रश्नः ४०१
पृष्टस्यार्थस्य परमगुह्यत्वख्यापनमुखेन तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा ४०१
प्रलयावसाने भगवतः सिसृक्षोदयः ४०२
प्रकृतिपुरुषमहदादिविशेषान्तजगत्सृष्टिः ४०२
अण्डोत्पादनपूर्वकं चतुर्मुखसृष्टिः ४०२
प्रजासृष्ट्यर्थं चतुर्मुखाय वेदोपदेशः ४०२
चतुर्मुखस्य प्रजासृष्ट्यारम्भः ४०२
तत्र बलदर्पितमधुकैटभोत्पत्तिः ४०२
मधुकैटभाभ्यां चतुर्मुखाद्वेदापहरणम् ४०३
वेदापहाराच्चतुर्मुखस्य सृष्ट्यसामर्थ्यम् ४०३
निर्विण्णस्य चतुर्मुखस्य चिन्ताप्रकारः ४०३
कृतनिश्चयस्य चतुर्मुखस्य क्षीराब्धिगमनम् ४०३
चतुर्मुखेन भगवतः स्तुतिः ४०३
भगवता चतुर्मुखाय दर्शनप्रदानम् ४०४
चतुर्मुखेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम् ४०४
भगवता मधुकैटभस्मरणम् ४०५
मधुकैटभयोस्तत्रागमनम् ४०५
मधुकैटभौ प्रति भगवद्वचनम् ४०५
भगवद्वचनतिरस्करणपूर्वकं मधुकैटभयोः प्रतिवचनम् ४०५
भगवता मधुकैटभयोर्हननाय विष्वक्सेनादेशनम् ४०५
ततः समरसन्नहनम् ४०६
द्वयोः सेनयोस्तुमुलसंग्रामः ४०६

विष्वक्सेनेन भगवत्सकाशे मधुकैटभयोरजय्यत्वनिवेदनम् ४०६
भगवतः सर्वास्त्राणां स्वरूपतो धारणपूर्वकं युद्धाय निर्गमनम् ४०६
सर्वास्त्रस्वरूपधारिभगवद्रूपवर्णनम् ४०७
तद्रूपदर्शनाद् दैत्यसैन्यानां निःशेषं विलयः ४०७
चक्रेण मधुकैटभयोः शिरश्छेदः ४०७
ब्रह्मणे वेदप्रदानपूर्वकं भगवतस्तिरोधानम् ४०८
ब्रह्मणा यथापूर्वं प्रजासृष्टिः ४०८
उपसंहारः ४०८
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४०९-४२२

काशिराजश्रुतकीर्त्युपाख्यानवर्णनम्

अङ्गमन्त्राणामुत्पत्तिदेवताप्रयोजनशक्तिध्येयप्रश्नाः ४०९
पृष्टस्यार्थस्य गुह्यत्वख्यापनमुखेनोत्तरकथनारम्भः ४०९
उत्पत्तिप्रश्नस्योत्तरम् ४१०
देवताप्रश्नस्योत्तरम् ४१०
प्रयोजनशक्तिप्रश्नयोरुत्तरम् ४१०
ध्येयप्रश्नस्योत्तरम् ४१०
निवर्तकास्त्रप्रयोगावसरप्रश्नः ४१०
तत्प्रयोगावसरकथनम् ४११
पराभिचाराभिभवज्ञानोपायप्रश्नः ४११
तज्ज्ञानोपायलिङ्गनिरूपणम् ४११
पराभिचारनिवर्तनाय निवर्तकास्त्रधारिसुदर्शनप्रीणनम् ४१३
प्रीतेन सुदर्शनेन पराभिचारनिर्दहनम् ४१३
परप्रयुक्तकृत्यायास्तत्प्रयोक्तुश्च विनाशनम् ४१३
काशीराजेतिहासोदाहरणम् ४१४
श्रुतकीर्त्युपाख्यानोदाहरणम् ४१४
राज्ञा श्रुतकीर्त्तिना धर्मेण सप्तद्वीपमहीपरिपालनम् ४१४
स्वस्तिकनगरवर्णनम् ४१५
युयुत्सुना श्रुतकीर्त्तिना तन्नगरोपरोधः ४१६
गन्धर्वराजेन वाहिनीप्रेषणम् ४१६
तत्र तुमुलसंग्रामः ४१६
श्रुतकीर्त्तिना गन्धर्वसैन्यविद्रावणम् ४१६
क्रुद्धस्य गन्धर्वराजस्य स्वयं युद्धाय निर्गमनम् ४१६
गन्धर्वराजश्रुतकीर्त्योरष्टदिनपर्यन्तं युद्धप्रवृत्तिः ४१७
भूपतिना गन्धर्वराजस्य धनुरादिच्छेदो बलविद्रावणं च ४१७
गन्धर्वराजस्य विषादः ४१७
गन्धर्वराजेन मानुषबले गान्धर्वास्त्रप्रयोगः ४१७
तेन मानुषसैन्यविमोहनम् ४१८
तत्प्रतीकाराशक्तस्य श्रुतकीर्त्तेः पुरोधसि स्ववृत्तनिवेदनम् ४१८
तेन जातबलस्य श्रुतकीर्त्तेः पुनर्युद्धायागमनम् ४१९
तेन स्वसैनिकमोहविमोचनम् ४१९
पुनर्युद्धे श्रुतकीर्त्तेर्विजयो गन्धर्वलोकवशीकरणं च ४१९
ततः स्वपुरप्रत्यागमनम् ४१९
सुदर्शनप्रभावाद्विस्मितस्य पुनः पुरोधसा सह मन्त्रणप्रकारः ४२०
स्वसम्पदो भगवत्प्रसादहेतुकत्वकथनम् ४२०
भगवत्प्रसादात् स्वस्य मोक्षलाभे संशयाभावकथनम् ४२०
राजानं प्रति पुरोधसा सुदर्शनप्रतिष्ठापनाद्युपदेशः ४२०
राज्ञा तथैवानुष्ठानम् ४२१
तदर्थं राज्ञा द्विजानां वृत्तिप्रकल्पनम् ४२१
ततो भगवत्प्रसादाद्राज्ञः परमपुरुषार्थलाभः ४२१

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४२३-४२९

जलन्धरवधोपायचिन्तनम्

कृत्स्नस्य जगच्चक्रमयत्वकथन्ताप्रश्नः ४२३
दानवादीनां धर्मविघातकत्वम् ४२४
पापिनां विनाशोपायचिन्तयाहिर्बुध्न्यस्य मेरुशिखरगमनम् ४२४
तत्र समाधिमास्थितस्य तस्य तेजोविशेषदर्शनम् ४२४
भीतिवशात् आथर्वणमन्त्रोच्चारणपूर्वकं पुनस्तद्दर्शनम् ४२४
तेजोमध्ये सुदर्शनपुरुषसाक्षात्कारपूर्वकं प्रश्नः ४२४
प्रीतेन भगवता स्वस्वरूपख्यापनम् ४२५
ततोऽहिर्बुध्न्येन भगवति स्वाभिप्रेतनिवेदनम् ४२५
दैत्यादिविनाशनप्रार्थना ४२६
भगवता तथेत्युक्ते स्वस्य कैलासगमनम् ४२६
अत्रान्तरे जलन्धरवधार्थमिन्द्रस्य मन्त्रालोचना ४२६
तत्र वायुना स्वाभिप्रायविनिवेदनम् ४२६
वायुवचनमङ्गीकृत्य शङ्करं गन्तुं शक्रेण बृहस्पतिप्रचोदनम् ४२७
इन्द्रवचनात् बृहस्पतेः कैलासगमनम् ४२७
तत्र शङ्करदर्शनम् ४२८
जलन्धरवधार्थं बृहस्पतिना शङ्करस्तुतिः ४२८
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४३०-४३९

सुदर्शनस्वरूपप्रदर्शनम्

स्तुतिप्रीतेन शङ्करेणागमनकारणप्रश्नः ४३०
बृहस्पतिना शङ्कराय सुरकार्यनिवेदनम् ४३०
शङ्करेण जलन्धरवधप्रतिज्ञा ४३१
स्वस्य दैत्यनिग्रहसामर्थ्ये सुदर्शनप्रसादस्य हेतुत्वख्यापनम् ४३१
सौदर्शनविद्याग्रहणाय शङ्करं प्रति बृहस्पतेः प्रार्थना ४३२
शङ्करेण तस्मै तदुपदेशः ४३२
लब्धविद्येन बृहस्पतिना हिमवत्तटे तत्पुरश्चरणम् ४३२
बृहस्पतिना सुदर्शनसाक्षात्कारः ४३३
विस्मितेन बृहस्पतिना तस्य द्विभुजत्वकारणप्रश्नः ४३३
सुदर्शनेन प्रतिवचनम् ४३३
अनन्तेषु सौदर्शनव्यूहेषु चतुर्णां प्राधान्यम् ४३३
तेषां परिगणनम् ४३४
व्यूहान्तराणामुपासकानुग्रहार्थत्वम् ४३४
व्यूहचतुष्टयस्य स्वाभाविकत्वं नित्यत्वं सात्त्विकत्वं च ४३४
अन्येषामुपासकानुग्रहार्थत्वनिगमनम् ४३४
स्वस्यात्यद्भुतरूपान्तरास्तित्वप्रतिपादनम् ४३४
बृहस्पतिना तद्रूपदर्शनप्रार्थना ४३४
भगवता जगच्चक्रात्मकस्वस्वरूपप्रदर्शनम् ४३५
तद्रूपवर्णनम् ४३५
अदृष्टपूर्वरूपदर्शनात् बृहस्पतेर्मोहाधिगमः ४३६
लब्धसंज्ञेन तेन सुदर्शनस्तुतिः ४३६
बृहस्पति कृता सुदर्शनस्य स्तुतिः ४३६
तद्रूपोपसंहरणप्रार्थना ४३८
सुदर्शनेनाष्टभुजेन भूत्वा स्वस्वरूपस्यातिगुह्यत्वकथनम् ४३८
सुदर्शनस्य भगवत्क्रियाशक्तिस्वरूपत्वनिरूपणम् ४३९

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४४०-४४९

कुशध्वजोपाख्यानवर्णनम्

अध्यात्मविद्यादिविषयकः प्रश्नः ४४०
अविद्याकार्यनिरूपणम् ४४०
अध्यात्मज्ञानकार्यनिरूपणम् ४४१
परविद्याकार्यनिरूपणम् ४४१
प्रारब्धकर्मणां भोगैकनाश्यत्वम् ४४१
तत्प्रतिविवक्षया कुशध्वजेतिहासोदाहरणम् ४४१
कुशध्वजस्य महामोहेन भृशं पीडा ४४२
उदासीनस्यापि तस्य मुहुर्मुहुः पीडातिशयः ४४२
नितरां पीडितस्य तस्य चिन्ताप्रकारः ४४२
तस्य स्वकुलगुरुयाज्ञवल्क्याभिगमनम् ४४२
कुशध्वजेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम् ४४३
याज्ञवल्क्यस्य प्रतिवचनम् ४४३
शरीरसृष्टेः फलभोगार्थत्वम् ४४३
ब्रह्मविच्छरीरस्यापि तथात्वम् ४४३
महामोहस्य पापफलत्वम् ४४४
तत्कारणभूतपापनिरूपणप्रतिज्ञा ४४४
राज्ञामुन्मादादिदोषोत्पत्तिकारणनिरूपणम् ४४४
युद्धादन्यत्र राजवधात् कुशध्वजस्य महामोहप्राप्तिकथनम् ४४४
सुदर्शनमहिम्नाष्टानामपि दोषाणां निश्चयेन नाश्यत्वम् ४४५
सुदर्शनप्रसादसम्पादनयत्नोपदेशः ४४५
प्रथमं मण्डपादिनिर्माणम् ४४५
सरस्वतीतीरे मण्डपनिर्माणविधिः ४४५
तत्र स्वागमनप्रतिज्ञा ४४६
यथोपदेशं राज्ञोऽनुष्ठानम् ४४६
याज्ञवल्क्यस्य तन्मण्डपगमनम् ४४६
मण्डपस्य पश्चिमभागे राजासनकल्पनम् ४४६
प्राग्भागद्वयमध्ये होमकुण्डकल्पनम् ४४६
मध्ये अष्टदिक्षु च कुण्डकल्पना ४४७
प्रतिकुण्डमेकैकस्य, मध्ये द्वयोश्च कुम्भयोः स्थापनम् ४४७
याज्ञवल्क्येन स्वयं कुम्भार्चनम् ४४७
यन्त्रप्रतिष्ठाविलेखनादि ४४७

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४५०-४५५

सुदर्शनहोमाङ्गद्रव्यपरिमाणादिनिरूपणम्

राज्ञो होममण्डपानागमने कर्तव्यक्रमः ४५०
पुरोहितलक्षणम् ४५०
पुरोधस एव राज्ञः सर्वकार्यकर्तृत्वम् ४५१
तादृशपुरोहिताभावे राज्ञोऽनिष्टकथनम् ४५१
कुम्भादीनां परिमाणादिप्रश्नः ४५२
उत्तमपरिमाणम् ४५२
मध्यमपरिमाणम् ४५२
अधमपरिमाणम् ४५२
यथाविधि स्रुगादिनिर्माणम् ४५२
ऋत्विक्सङ्ख्या ४५२
अङ्गमन्त्रादिविधिः ४५३
होमान्ते राज्ञोऽभिषेकः ४५३
गुर्वादिप्रीणनम् ४५३
प्रधानहोमकर्त्रे विशेषतो दक्षिणादानम् ४५४
ततो ब्राह्मणतर्पणम् ४५४

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४५६-४६६

महाशान्तिविधानम्

ऐहिकामुष्मिकसर्वफलसाधकैकोपायप्रश्नः ४५६
तदुत्तरकथनारम्भः ४५७
वक्ष्यमाणे कर्मविशेषे राज्ञामधिकारः ४५७

अम्बरीषप्रभृतीनामेतदनुष्ठानात् यथोक्तफललाभः ४५७
तत्र राज्ञामधिकारनिगमनम् ४५७
देशविशेषविधिः ४५८
मण्डपनिर्माणक्रमः ४५८
कुण्डकल्पनाक्रमः ४५८
अस्त्रकुण्डकल्पना ४५९
ऋत्विग्वरणम् ४५९
अस्त्रकुण्डेषु ऋत्विगन्तरवरणम् ४५९
कुम्भस्थापनम् ४६०
होमार्थमृत्विगन्तरवरणविधिः ४६०
मध्यमकुण्डे आचार्यकर्तृकहोमविधिः ४६०
होमसङ्ख्याविधिः ४६१
तत्तत्कुम्भेषु तत्तद्देवताभ्यर्चनविधिः ४६१
होमान्ते कुम्भोदकेन राज्ञोऽभिषेकः ४६१
अस्त्रकुण्डेषु होमविधिः ४६१
उत्तममध्यमाधमभेदेन होमसङ्ख्याविकल्पः ४६१
नारायणीयाद्यस्त्रवर्गे होमसाधनद्रव्यविधिः ४६१
कालचक्रादिवर्गे चरुविधिः ४६२
कङ्कालादिवर्गे दधिविधिः ४६२
मदनादिवर्गे पयोविधिः ४६२
रभसादिवर्गे पायसविधिः ४६३
योगन्धरादिवर्गे तिलविधिः ४६३
धनादिवर्गे मधुविधिः ४६३
अन्येष्वस्त्रेषु शालितण्डुलविधिः ४६३
होमान्ते मन्त्रविशेषेण सुदर्शनतर्पणविधिः ४६४
नारायणीयादितर्पणे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
कालचक्रादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
मदनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
रभसादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६४
धनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः ४६५
अन्येष्वस्त्रेषु मन्त्रविशेषविधिः ४६५
तर्पणान्ते सहस्रब्राह्मणभोजनविधिः ४६५
ततोऽस्त्रमन्त्रजलैः राज्ञोऽभिषेकविधिः ४६५
रुग्णस्य तु राज्ञः प्रोक्षणविधिः ४६६
मण्डपान्तःस्थकुम्भतोयाभिषेचनावश्यकता ४६६
यथोक्तमहाशान्तिफलकीर्तनम् ४६६

अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ४६७-४८२

श्रीसुदर्शनमहायन्त्रघटितासनादिप्रभाववर्णनम्

इष्टार्थसाधने जपादिव्यतिरिक्तोपायप्रश्नः ४६७
तत्रासनादीनामुपायत्वकथनम् ४६७
आसनादिभिर्मुक्तापीडादीनामिष्टसिद्धिः ४६८
केवलासनादीनामिष्टसाधनत्वकथन्ताप्रश्नः ४६८
आसनप्रभाववर्णनाय मुक्तापीडोपाख्यानकथनम् ४६८
मुक्तापीडस्य विषयासक्ततया राज्ये धर्मविच्युतिः ४६८
सपुरोधसाममात्यानां मन्त्रणप्रकारः ४६९
यथोपदिष्टानुष्ठानेन राज्ञो निष्कण्टकभूमिलाभः ४७३
अङ्गुलीयकप्रभाववर्णनाय विशालोपाख्यानारम्भः ४७३
विशालगुणवर्णनम् ४७४
तज्जनन्याः स्वपुत्रमरणसूचकाकाशवाणीश्रवणाद्विलापः ४७४
राज्ञा मातुः समाश्वासनपूर्वकं पुरोधसः पुलहस्याश्रमगमनम् ४७४
पुलहं प्रति स्ववृत्तान्तनिवेदनम् ४७४
मुनिना तत्प्रतीकारोपायोपदेशनम् ४७५
राज्ञा यथोपदिष्टानुष्ठानम् ४७५
ततश्च राज्ञो यमकिङ्करैः समागमः ४७५

अङ्गुलीयप्रभावात् किङ्कराणां दूरात् पलायनम् ४७५
राज्ञोऽपमृत्युजयात् यमादीनां विस्मयः ४७५
दर्पणप्रभाववर्णनाय सुनन्दोपाख्यानम् ४७६
सुमतिनाम्नस्तत्पुत्रस्य नागकन्यया नागलोके नयनम् ४७६
पुत्रविरहात् खिद्यता राज्ञा चारैः पुत्रान्वेषणम् ४७७
अलब्धपुत्रवृत्तान्तेन राज्ञा अनशनव्रतस्वीकरणम् ४७७
पुरोधसा कण्वाश्रमगमनपूर्वकं तस्मिन् राजवृत्तस्य निवेदनम् ४७८
कण्वमुनिना राजकुमारवृत्तान्तस्याविष्करणम् ४७८
कुमारप्रत्याहरणे सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणस्यैव साधनत्वोपदेशः ४७९
यथोपदिष्टानुष्ठानात् राज्ञो नागलोकगमनसिद्धिः ४७९
अत्यद्भुतनागलोकदर्शनात् राज्ञो विस्मयातिशयः ४८०
राज्ञा सदारस्य कुमारस्य स्वपुरीं प्रति प्रत्यानयनम् ४८०
ततः क्रुद्धस्य वासुकेर्युद्धसमुद्योगः ४८०
सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणप्रभावात् राज्ञो विजयलाभः ४८०
पराजितेन वासुकिना शरणागतिपूर्वकं राजाभ्यर्हणम् ४८१
ततो राज्ञः सपरिकरस्य स्वपुरप्रवेशः ४८१
एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ४८३-४९३

सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपणम्

सुदर्शनयन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपण ४८३
चित्रशेखराधिष्ठितभद्रवाटीनगरवर्णनम् ४८३
तत्पित्रोपरिचरेण कदाचिद् द्वन्द्वयुद्धे शङ्कुकर्णाख्यासुरहननम् ४८४
अमर्षणनाम्ना शङ्कुकर्णसुतेन चित्रशेखरपीडनम् ४८४
चित्रशेखरस्य तेन सह घोरयुद्धम् ४८५
दिनत्रयं युध्यमानस्यापि विजयालाभः ४८५
श्रान्तसेनयोर्द्वयोरपि युद्धात् प्रतिनिवृत्तिः ४८५
एवं सप्तदशवारं युध्यमानस्यापि विजयासिद्धिः ४८५
खिन्नस्य राज्ञः चिन्ताप्रकारः ४८५
कृतनिश्चयस्य कैलासगमनम् ४८६
गगने गच्छतोऽस्य मन्दरोपरि स्यन्दनगतिप्रतिरोधः ४८६
तत्कारणजिज्ञासया चरतस्तत्र कुबेरदर्शनम् ४८६
तेन समं संलापः ४८७
राज्ञा कुबेरे स्ववृत्तान्तस्य निवेदनम् ४८७
कुबेरवचनात् तत्र गिरौ लक्ष्मीनिवासपरिज्ञानम् ४८७
लक्ष्मीप्रसादनोपदेशपूर्वकं कुबेरान्तर्धानम् ४८८
राजसाहाय्यार्थ कुबेरप्रहितपुरुषसमागमः ४८८
तद्वचनात् तत्रैव स्थाने तद्रात्रियापनम् ४८८
प्रभाते राज्ञा लक्ष्मीनिवासस्थानजिज्ञासया गुह्यकं प्रति प्रश्नः ४८८
गुह्यकस्य प्रतिवचनम् ४८८
ततो गुह्यकेन सह लक्ष्मीमन्दिरगमनम् ४८९
गुहाद्वारदेशे गुह्यकस्यावस्थानम् ४८९

राज्ञो मन्दिरान्तःस्थरत्नमण्डपे प्रवेशः ४८९
मण्डपवर्णनम् ४८९
मण्डपमध्यस्थरत्नपर्यङ्के अब्जासनस्थमहालक्ष्मीदर्शनम् ४९०
तत्पादोदकप्राशनपरिपूतेन राज्ञा तत्स्तुतिकरणम् ४९०
तत्र लक्ष्म्याः उभयविभूत्यैश्वर्यप्रतिपादनम् ४९१
लक्ष्म्या एव निर्व्याजपुरुषकारत्वसमर्थनम् ४९१
लक्ष्म्याः पारमार्थिकमङ्गलगुणाकरतया श्रुतिशिरोभूषणत्वम् ४९२
उमाशचीप्रभृतीनां महालक्ष्मीविभूतित्वम् ४९२
स्तुतिप्रीतया लक्ष्म्या राजाभीष्टस्य प्रश्नः ४९२
लक्ष्मीदत्तध्वजमहिम्ना शत्रुजयपूर्वकं राज्ञो निष्कण्टकराज्यलाभः ४९३
पञ्चाशोऽध्यायः ४९४-५१२

कीर्तिमाल्युपाख्यानवर्णनम्

वक्ष्यमाणार्थसूचनम् ४९४
भद्रशृङ्गनाम्ना राज्ञा भूमण्डलस्य परिपालनम् ४९४
तत्पुत्रस्य कीर्तिमालिनो गुणवर्णनम् ४९४
पितुरनन्तरं तेनापि धर्मतो राज्यस्य पालनम् ४९५
कदाचित् निशीथे गूढं सञ्चरतस्तस्य पुराद् बहिर्विप्रदर्शनम् ४९५
तद्वृत्तान्तजिज्ञासोः राज्ञस्तं प्रति प्रश्नः ४९६
योगारूढस्य तस्य राजप्रश्नमजानतो मौनीभावः ४९६
बलाद् ग्रहीतुमुद्युक्तस्य राज्ञो विप्रप्रभावात् स्तम्भीभावः ४९६
विस्मितेन राज्ञा स्तुतिभिर्विप्रस्य प्रसादनम् ४९६
प्रसन्नेन विप्रेण स्ववृत्तान्तस्याविष्करणम् ४९७
विदितवृत्तान्तेन राज्ञा स्वपुरं प्रति ब्राह्मणस्यानयनम् ४९७
हितमुपदेष्टुं राजप्रार्थना ४९७
तेन राज्ञे साङ्गसौदर्शनमहामन्त्रस्योपदेशः ४९८
राज्ञा गुरवे दक्षिणयाः प्रदानम् ४९८
गुरुणा तदग्रहणपूर्वकं स्वाभिमतदेशस्य गमनम् ४९९
राज्ञा धर्मतो राज्यस्य प्रशासनम् ४९९
मन्त्रिणां प्रतिवचनम् ५००
कृत्स्नस्यापि भूमण्डलस्य वश्यत्वप्रतिपादनम् ५००
देवादीनां वश्यत्वाभावप्रतिपादनम् ५००
पुनरमात्यान् प्रति राज्ञो देवादिविजयोपायप्रश्नः ५०१
अमात्यानां प्रतिवचनम् ५०१
स्वपक्षे बलसमृद्धिनिरूपणपूर्वकमभिषेणनोद्योगजननम् ५०१
मन्त्रिवचनात् प्रथमं राज्ञो नागलोकाभिगमनम् ५०२
गारुडास्त्रप्रभावेण तत्र राज्ञो विजयप्राप्तिः तथा दैत्यविजयः ५०३
यक्षगन्धर्वादिजयपूर्वकं राज्ञः स्वनगरागमनम् ५०३
तत्र स्वपरिवारेषु देवानामदर्शनादिन्द्रं प्रति सन्देशप्रेषणम् ५०३
राजसन्देशात् मनोजवनाम्नो दूतस्यामरावतीगमनम् ५०४
तत्रास्थानमण्डपे वासवदर्शनम् ५०४
वासवेन दूतस्याभिनन्दनम् ५०४
दूतेनेन्द्राय राजसन्देशस्य निवेदनम् ५०४
दूतेन राजोक्तसन्देशस्यानुवादः ५०५

सन्देशश्रवणात् कुपितस्येन्द्रस्य तत्प्रतिक्रियाचरणम् ५०५
सवज्रेणैरावतेन राजसैन्यस्य विनाशनम् ५०५
भीतैर्जानपदैः राज्ञे तद्वृत्तान्तस्य निवेदनम् ५०६
सैन्यविनाशश्रवणात् दुःखितेन राज्ञा पुरोधसं प्रति प्रश्नः ५०६
पुरोधसा देवकोपस्यैव तत्कारणत्वेन निवेदनम् ५०६
अत्रान्तरे मनोजवसमागमः ५०७
मनोजवं प्रति राज्ञः प्रश्नः ५०७
मनोजवेन राज्ञे निवेदनम् ५०७
तच्छ्रुतवता वासवेन युद्धार्थं देवसैन्यस्य प्रेषणम् ५०७
ततो देवमानुषसेनयोर्घोरयुद्धप्रवृत्तिः ५०८
प्रवृत्तयुद्धवर्णनम् ५०८
तत्र जिगीषुणेन्द्रेण स्वसेनाधिपतीनां प्रचोदनम् ५०९
देवसेनापतीनां तात्कालिकजयप्राप्तिः ५०९
राज्ञा दिव्यास्त्रस्य विमोचनम् ५०९
राजप्रयुक्तेन वैष्णवचक्रेण देवसैन्यस्य प्रतिहतिः ५१०
वासवप्रयुक्तानां दिव्यास्त्राणामपि तस्मिन् विष्णुचक्रे विलयः ५१०
अन्ततो वज्रस्याप्यकिञ्चित्करत्वम् ५१०
स्वपराजयात् विस्मितस्य शक्रस्य राज्ञा सह संलापः ५११
राजशक्रयोः सख्यकरणपूर्वकं स्वस्वस्थानगमनम् ५११

एकपञ्चाशोऽध्यायः ५१३-५२६

तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थवर्णनम्

तारादिमन्त्रार्थप्रश्नः ५१३
उत्तरकथनारम्भः ५१४
तारकस्य सर्वश्रैष्ठ्यप्रतिपादनम् ५१४
मन्त्रसामान्येऽप्यर्थस्य त्रैविध्यम् ५१४
स्थूलादीनां सामान्यतो लक्षणम् ५१४
स्थूललक्षणम् ५१५
सूक्ष्मलक्षणम् ५१५
परलक्षणम् ५१५
तारस्य स्थूलार्थप्रदर्शनम् ५१५
क्रमेण तेषां प्रणवाक्षरत्रयप्रतिपाद्यत्वम् ५१६
तेषामेकैकस्य विश्वतैजसप्राज्ञरूपैकैकसंज्ञाभागित्वम् ५१६
विश्वाख्यानिरुद्धरूपप्रदर्शनम् ५१७
अनिरुद्धस्यैव स्थानविशेषनिर्देशपूर्वकं भोग्यविशेषनिरूपणम् ५१७
प्रद्युम्नस्य भोग्यविशेषस्थानविशेषनिरूपणम् ५१७
सङ्कर्षणस्य भोग्यविशेषस्थानविशेषनिरूपणम् ५१७
अनिरुद्धस्य स्थूलदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः ५१७
प्रद्युम्नस्य सूक्ष्मदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः ५१८
सङ्कर्षणस्यानन्दाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः ५१८
अनिरुद्धस्य बहिःप्रज्ञत्वम् ५१८
प्रद्युम्नस्यान्तःप्रज्ञत्वम् ५१८
सङ्कर्षणस्यानन्दमयत्वम् ५१८
वासुदेवाख्यायाश्चतुर्थशक्तेर्नादप्रतिपाद्यत्वम् ५१८
शक्तिचतुष्टयविलये सति अखण्डभगवच्छक्तेः स्तैमित्यरूपत्वम् ५१९
शक्तिचतुष्टयविलापनप्रकारः ५१९
स्तैमित्यरूपायास्तस्याः शक्तेः पञ्चमदशारूपत्वम् ५१९
प्रणवाभ्यासविशेषस्य तादृशशक्तिसाक्षात्कारहेतुत्वम् ५१९

ओंकाराभ्यासिनो हृदये लक्ष्म्या निर्हेतुकं स्वस्वरूपस्य प्रकाशनम् ५२०
पाशुपतोक्तस्येशादिसंज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम् ५२०
सांख्ययोगोक्तस्य संज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम् ५२०
लक्ष्मीविशिष्टस्य परस्य ब्रह्मणो मुक्तप्राप्यत्वम् ५२१
उक्तार्थस्यैव भङ्ग्यन्तरेण विशदीकरणम् ५२१
अथ परार्थनिरूपणम् ५२१
ओंकारेण यथोक्तब्रह्मणोरभिन्नत्वस्य बोधनम् ५२२
उक्तार्थध्याननिष्ठस्य योगनिष्ठासिद्धिः ५२२
तारानुतारयोरर्थवर्णनप्रतिज्ञा ५२२
तत्र तारायाः स्थूलार्थनिरूपणम् ५२३
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५२३
परार्थनिरूपणम् ५२३
अनुतारायाः स्थूलार्थनिरूपणम् ५२४
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५२४
परार्थनिरूपणम् ५२४
उक्तसर्वार्थसंक्षेपः ५२५
द्विपञ्चाशोऽध्यायः ५२७-५४१

विष्ण्वादिमन्त्रार्थनिरूपणम्

वृत्तानुवादपूर्वकं विष्ण्वादिमन्त्रार्थकथनप्रतिज्ञा ५२७
नमःशब्दस्य स्थूलार्थनिरूपणे शब्दार्थप्रदर्शनम् ५२७
उत्कृष्टापकृष्टभेदेन चेतनद्वैविध्यम् ५२७
अनवधिकातिशयप्रकर्षविशिष्टस्य ज्यायःशब्दमुख्यार्थत्वम् ५२८
तदन्येषामज्यायस्त्वम् ५२८
जीवपरयोः सम्बन्धनिरूपणपूर्वकं नन्तृनन्तव्यत्वव्यवस्था ५२८
जीवेशयोः शेषशेषिभावस्य निरुपाधिकत्वम् ५२८
निरुपाधिकोत्कर्षापकर्षज्ञानस्य नमनहेतुत्वम् ५२९
अन्तर्णिजर्थविवक्षया नमःशब्दस्य निर्वचनान्तरम् ५२९
करणत्रयसहितस्य नमसः पूर्णत्वम् ५२९
प्रह्वीभावात्मकात्मनिक्षेपतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५२९
कार्पण्यतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३०
महाविश्वासतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३०
गोप्तृत्ववरणतद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३०
प्रातिकूल्यवर्जनम्, तद्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३१
आनुकूल्यसङ्कल्पतम्, द्विरोधिनोर्निरूपणम् ५३१
उक्तार्थनिगमनम् ५३१
नमःशब्दस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणे म इत्यस्याहङ्कारममकारवाचित्वम् ५३१
नमःशब्दस्याहन्ताममताबुद्धिनिवर्तकत्वम् ५३२
उक्तार्थस्यैव विवरणम् ५३२
नमः शब्दार्थज्ञानस्याहन्ताममताबुद्धिनिवर्तकत्वे उपपत्तिप्रदर्शनम् ५३२
नमःशब्दस्य परार्थनिरूपणम् ५३२
विष्णुमन्त्रस्य स्थूलार्थनिरूपणम् ५३३
व्याप्तिगुणनिरूपणम् ५३४
कान्तिगुणनिरूपणम् ५३४
प्रवेशगुणनिरूपणम् ५३४
इच्छागुणनिरूपणम् ५३४
विष्णुशब्दे एकैकवर्णार्थनिरूपणम् ५३४
परार्थनिरूपणम् ५३५
नारायणमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५३५
परार्थनिरूपणम् ५३६
वासुदेवमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५३६

भकारार्थनिरूपणम् ५३७
गकारार्थनिरूपणम् ५३७
मतुवर्थनिरूपणम् ५३७
वासुशब्दार्थनिरूपणम् ५३७
देवशब्दार्थनिरूपणम् ५३८
परार्थनिरूपणे भकारार्थनिरूपणम् ५३८
गकारार्थनिरूपणम् ५३८
वकारार्थनिरूपणम् ५३९
तकारार्थनिरूपणम् ५३९
वाकारार्थनिरूपणम् ५३९
सुकारार्थनिरूपणम् ५३९
देकारार्थनिरूपणम् ५४०
वकारार्थनिरूपणम् ५४०
त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ५४२-५५७

जितन्ताख्यमन्त्रार्थनिरूपणम्

तयोर्ज्ञानादिषड्गुणजन्यत्वम् ५४२
ज्ञानादिगुणपूर्णत्वात् भगवत एव नन्तव्यत्वम् ५४२
पुण्डरीकाक्षशब्दस्य यथोक्तार्थप्रकाशकत्वोपपादनम् ५४३
तस्यैव शब्दस्य हेयप्रतिभटत्वकल्याणगुणाकरत्वरूपोभयलिङ्गपरत्वम् ५४३
तस्यैव वासुदेवाख्यप्रथमव्यूहनिरूपकत्वम् ५४३
कालत्रैविध्यकथनपूर्वकं तदुपपादनम् ५४४
व्यूहत्रयात् परवासुदेवस्य वैलक्षण्याविष्करणम् ५४४
पुण्डरीकाक्षशब्दस्य भगवति नित्यविभूतियोगप्रतिपादकत्वम् ५४४
तस्यैव स्वमहिमप्रतिष्ठितत्वप्रतिपादकत्वम् ५४५
परार्थनिरूपणारम्भः ५४५
पकारार्थनिरूपणम् ५४५
उकारार्थनिरूपणम् ५४५
णकारार्थनिरूपणम् ५४५
डकारार्थनिरूपणम् ५४५
ईकारशिरस्करेफार्थनिरूपणम् ५४६
आकारसहितककारार्थनिरूपणम् ५४६
क्षकारार्थनिरूपणम् ५४६
पुण्डरीकाक्षशब्दार्थस्य चिरकालादपि कार्त्स्न्येन वक्तुमशक्यत्वम् ५४६
मन्त्रद्वितीयपादस्थूलार्थनिरूपणम् ५४६
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५४६
विश्वभावनशब्दस्य सर्वकारणपरत्वम् ५४७
कारणत्वोपयोगिसर्वज्ञत्वपरत्वम् ५४७
सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वम् ५४७
सर्वशेषिपरत्वम् ५४७
सर्वाधारपरत्वम् ५४७
परार्थनिरूपणारम्भः ५४८
इकारशिरस्कवकारार्थनिरूपणम् ५४८
शकारार्थनिरूपणम् ५४८
द्वितीयवकारार्थनिरूपणम् ५४८
आकारसहितभकारार्थनिरूपणम् ५४८
भकारविवक्षितसिद्धिप्रदत्वोपपादनम् ५४९
तृतीयवकारनकारार्थनिरूपणम् ५४९
मन्त्रतृतीयपादस्थूलार्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम् ५४९
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५४९
ज्ञाननिर्मलीकरणद्वारा हर्षहेतुत्वपरत्वेन प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम् ५५०
ज्ञानेन्द्रियनियामकपरत्वम् ५५०
जगन्मयपरत्वम् ५५०
सृष्ट्यादिरूपक्रीडाहेतुकहर्षाश्रयदेवपरत्वम् ५५०
ऐश्वर्यवीर्यरूपगुणाश्रयपरत्वम् ५५१
जगच्छब्दविवक्षितसर्वचेतनशेषित्वपरत्वम् ५५१
परार्थनिरूपणारम्भः ५५१
हकारार्थनिरूपणम् ५५१

ऋकारार्थनिरूपणम् ५५१
ईकारशिरस्कषकारार्थनिरूपणम् ५५२
एकारशिरस्कककारार्थनिरूपणम् ५५२
शकारार्थनिरूपणम् ५५२
मन्त्रचतुर्थपादस्य स्थूलार्थनिरूपणम् ५५२
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५५३
मकारार्थनिरूपणम् ५५३
हाकारार्थनिरूपणम् ५५३
महेतिसमुदायार्थनिरूपणम् ५५३
पुकारार्थनिरूपणम् ५५३
रुशब्दार्थनिरूपणम् ५५४
षकारार्थनिरूपणम् ५५४
पुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम् ५५४
रेफशिरस्कपूकारार्थनिरूपणम् ५५४
वकारजकारार्थनिरूपणम् ५५४
पूर्वजशब्दसमुदितार्थनिरूपणम् ५५४
महापुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम् ५५५
परार्थनिरूपणारम्भः ५५५
मकारार्थनिरूपणम् ५५५
हाकारार्थनिरूपणम् ५५५
उकारशिरस्कपकारार्थनिरूपणम् ५५६
तादृशरेफार्थनिरूपणम् ५५६
षकारपकारार्थनिरूपणम् ५५६
ऊकारार्थनिरूपणम् ५५६
द्वितीयरेफार्थनिरूपणम् ५५६
वकारजकारार्थनिरूपणम् ५५६
प्रकृतमहामन्त्रतात्पर्यसूचनम् ५५७
चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ५५८-५६७

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

सप्तभिः श्लोकैर्मन्त्रमाहात्म्यनिरूपणम् ५५८
सर्वचेतनहितकामनया कल्पादौ सङ्कर्षणेनास्य प्रकाशितत्वम् ५५९
ब्रह्मरुद्रादीनामपि महता श्रमेण सङ्कर्षणादेतन्मन्त्रप्राप्तिः ५५९
मान्त्रवर्णिकैरुग्रादिपदैः रौद्रादिरसप्रतिपादनम् ५६०
अहंपदस्य भगवच्छेषत्वेन रूपेणात्मस्वरूपनिष्कर्षकत्वम् ५६०
उग्रादिपदाभिहितानां रौद्रादिरसानां विष्णुव्यवस्थाप्रदर्शनम् ५६०
सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ५६१
उग्रशव्दार्थनिरूपणम् ५६१
वीरशब्दार्थनिरूपणम् ५६१
महच्छब्देन त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वस्य वोधनम् ५६१
पुनर्महच्छव्दस्य नवधा निर्वचनप्रदर्शनम् ५६१
यथाक्रमं तेषामुपपादनम् ५६२
विष्णुशब्दार्थनिरूपणम् ५६२
महाविष्णुपदसम्पिण्डितार्थनिरूपणम् ५६३
ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम् ५६३
सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम् ५६३
नृसिंहशव्दार्थनिरूपणम् ५६३
भीषणशब्दार्थनिरूपणम् ५६३
भद्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६४
मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम् ५६४
प्रथममृत्युशब्दस्याज्ञानादित्रयपरत्वे निर्वचनप्रदर्शनम् ५६४
अहंशब्दस्य चतुर्धार्थवर्णनम् ५६४
सांख्यमार्गेण मन्त्रार्थं प्रदर्शयितुमुग्रभीषणशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६५
ज्वलच्छब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६५
वीरशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६५
महाविष्णुशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
सर्वतोमुखशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
भद्रशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
नृसिंहशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
मृत्युमृत्युशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६
अहंशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६६

नमामिशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम् ५६७
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ५६८-५७७

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

योगमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणप्रतिज्ञा ५६८
उग्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६८
वीरशब्दार्थनिरूपणम् ५६८
ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम् ५६९
सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम् ५६९
भीषणशब्दार्थनिरूपणम् ५६९
महाविष्णुनृसिंहभद्रमृत्युमृत्युशब्दार्थस्य पूर्वोक्तत्वसूचनम् ५६९
संपिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५६९
पाशुपतमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणे उग्रशब्दार्थनिरूपणम् ५६९
वीरशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम् ५७०
भीषणशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम् ५७०
पदान्तरार्थस्य पूर्वप्रदर्शितत्वसूचनम् ५७०
सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५७०
त्रय्यन्तमतानुसार्यर्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम् ५७१
सात्त्वतमतेन मन्त्रार्थनिरूपणम् ५७१
उग्रशब्दस्य सङ्कर्षणाख्यव्यूहपरत्वम् ५७१
वीरशब्दस्य प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम् ५७१
महाविष्णुशब्दस्यानिरुद्धाख्यव्यूहपरत्वम् ५७१
ज्वलच्छब्दस्य रामकृष्णादिविभवपरत्वम् ५७२
भद्रशब्दस्यावतारदशायामपि हेयसम्बन्धराहित्यपरत्वम् ५७२
भीषणशब्दस्य मोक्षप्रदत्वपरत्वम् ५७२
मृत्युमृत्युशब्देन भद्रशब्दोदितस्य हेयप्रतिभटत्वस्य बोधनम् ५७३
नृसिंहशब्दस्य द्विविधव्याप्तिपरत्वम् ५७३
वीरपदेन प्रद्युम्नव्यूहस्य प्रतिपादनम्, तदुपपादनञ्च ५७५
सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५७५
महाविष्णुशब्देनानिरुद्धव्यूहस्य सङ्कीर्तनम्, तदुपपादनञ्च ५७५
षट्पञ्चाशोऽध्यायः ५७८-५८७

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ज्वलदादिपदानां पद्मनाभाद्येकोनचत्वारिंशदवतारपरत्ववर्णनम् ५७८
वकारस्य कान्तात्मामृतधारकाख्यविंशावतारपरत्वम् ५७९
लकारस्य शक्त्यात्माख्यचतुर्थावतारपरत्वम् ५७९
नकारस्य धर्माख्यद्वादशावतारपरत्वम् ५७९
तकारस्यानन्ताख्यतृतीयावतारपरत्वम् ५७९
अम्प्रत्ययावयवयोरकारमकारयोः कालनेमिघ्नाख्यद्वाविंशावतारपरत्वम् ५८०
तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन श्रीपत्याख्यैकोनविंशावतारपरत्वम् ५८०
सरेफस्य वकारस्य वराहाख्यषोडशावतारपरत्वम् ५८१
तकारस्य वागीश्वराख्यत्रयोदशावतारपरत्वम् ५८१
ओकारस्य त्रिविक्रमाख्यत्रिंशावतारपरत्वम् ५८१
तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन विश्वरूपाख्याष्टमावतारपरत्वम् ५८१
तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन वेदविदाख्यसप्तत्रिंशावतारपरत्वम् ५८२

ऋकारस्य पारिजातहरणाख्यत्रयोविंशावतारपरत्वम् ५८३
इकारस्य परशुरामश्रीरामाख्यपञ्चत्रिंशषट्त्रिंशावतारद्वयपरत्वम् ५८३
ङकारस्य क्रोडात्माख्यदशमावतारपरत्वम् ५८३
हकारस्य विहङ्गमाख्यनवमावतारपरत्वम् ५८४
प्रत्ययावयवस्य मकारस्य कल्क्याख्याष्टात्रिंशावतारपरत्वम् ५८४
ईकारस्य न्यग्रोधशायिसंज्ञकसप्तविंशावतारपरत्वम् ५८४
षकारस्य नरसिंहाख्यसप्तदशावतारपरत्वम् ५८४
णकारस्य मधुसूदनाख्यपञ्चमावतारपरत्वम् ५८४
दकारस्य दत्तात्रेयाख्यषड्विंशावतारपरत्वम् ५८५
रेफस्य शान्तात्माख्यपञ्चविंशावतारपरत्वम् ५८५
द्वितीयमृत्युशब्दस्य लोकनाथाख्यचतुर्विंशावतारपरत्वम् ५८६
अध्यायशेषेण मन्त्रस्य महिमान्तरनिरूपणम् ५८६

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ५८८-६००

ज्योतिश्चक्रमन्त्रार्थनिरूपणम्

प्रथमं गायत्र्यर्थप्रपञ्चने तच्छब्दस्य भगवत्सकल्परूपसुदर्शनपरत्वनिरूपणम् ५८८
सवितृशब्दस्य जगत्कारणत्वभोगमोक्षप्रदत्वादिगुणविशिष्टपरमपुरुषपरत्वम् ५८९
वरेण्यशब्दस्योपास्यत्वपरत्वम् ५८९
भर्गःशब्दस्य तच्छब्दविवक्षितसुदर्शनगुणविशेषपरत्वम् ५८९
देवशब्दस्य द्योतनत्वादिगुणविशिष्टपरमात्मपरत्वम् ५९०
धीमहीत्यस्योपासनात्मकज्ञानविशेषपरत्वम् ५९०
तृतीयपादार्थनिरूपणपूर्वकं गायत्र्याः संपिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम् ५९०
संक्षेपतो गायत्रीमहिमवर्णनम् ५९१
व्याहृतित्रयस्वरूपनिरूपणपूर्वकं संग्रहेण तदर्थप्रकाशनम् ५९१
गायत्रीमन्त्रनिगूढानां ब्रह्मशिरःप्रभृतीनामस्त्राणां दिङ्मात्रप्रदर्शनम् ५९१
'जातवेदसे' इति त्रिष्टुभोऽर्थनिरूपणे जातवेदःशब्दस्य सोमशब्दस्य चार्थवर्णनम् ५९२
सुनवामेति पदस्य बद्धात्मनि भगवच्छेषत्वयोग्यतापादनपरत्वम् ५९३
योग्यतापादनस्य प्रकृत्यात्मविवेकरूपतां वक्तुं विवक्षितार्थस्य सोमपदगम्ये दृष्टान्ते शिक्षणम् ५९३
दृष्टान्ते शिक्षितस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम् ५९३
यथोक्तात्महविर्याजिनः स्वेन रूपेणाभिनिष्पत्तिरूपो गुणाष्टकाविर्भावः फलम् ५९३
भङ्ग्यन्तरेण नमःशब्दार्थस्यैवात्र प्रथमपादे विवक्षितत्वसूचनम् ५९४
द्वितीयपादेन परमपुरुषस्य स्वप्राप्तिप्रतिबन्धकप्रकृतिसम्बन्धरूपबन्धनिवर्तकत्वप्रदर्शनम् ५९४
उत्तरार्धे सदृष्टान्तं पूर्वोक्तार्थोपपादनम् ५९४
उत्तरार्धगतस्याग्निशब्दस्य परमपुरुषपरत्वसमर्थनम् ५९४
दृष्टान्तपरस्य चतुर्थपादस्य वाक्यार्थवर्णनम् ५९५

तस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम् ५९५
अस्मिन् मन्त्रे निगूढानां पावकाद्यस्त्राणां संक्षेपतः स्वरूपसूचनम् ५९६
'त्रियम्बकम्' इत्यनुष्टुभोऽर्थवर्णने त्रियम्बकशब्दस्य ज्ञानशक्तिक्रियान्वितपरमपुरुषपरत्वकथनम् ५९७
यजामहे इति पदार्थनिरूपणम ५९८
सुगन्धिशब्दार्थनिरूपणम् ५९८
पुष्टिवर्धनशब्दार्थनिरूपणम् ५९८
वाक्यार्थवर्णनमुखेन पूर्वार्धस्य भगवति स्वात्महविः समर्पणपरत्वप्रदर्शनम् ५९९
उत्तरार्धस्य वाक्यार्थनिरूपणम् ५९९
प्रपत्तुर्ब्रह्मसाधर्म्यापत्तिलक्षणस्य फलस्य तात्पर्यगतया मन्त्रे विवक्षितत्वप्रदर्शनम् ५९९

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ६०१-६११

पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

दशहोत्रादिपदविवक्षितमन्त्रविशेषसूचनम् ६०१
अथोक्तानां मन्त्राणामर्थवर्णनप्रतिज्ञा ६०२
प्रथमं दशहोतृमन्त्रार्थनिरूपणे चित्त्यादिपदार्थप्रदर्शनम् ६०२
दशहोत्रादिसमाख्यानिमित्तप्रदर्शनम् ६०३
क्रियाभूतिविभेदेन भगवच्छक्तेर्द्वैविध्यम् ६०३
क्रियायाः सङ्कल्परूपत्वं कृत्योपकरणत्वं च ६०३
सङ्कल्पस्य च निश्चयात्मकमित्यादिरूपत्वम् ६०३
चित्त्यादिवाक्योक्तस्रुगादिपदार्थनिरूपणम् ६०३
यथोक्तस्य जगद्विधानाख्यस्य वैष्णवयज्ञस्य ज्ञेयत्वविधिः ६०४
तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन ग्रहभागस्यात्महविःसमर्पणपरत्वस्फुटीकरणम् ६०४
आत्महविःसमर्पणस्य स्वार्थत्वशङ्काव्युदासः ६०५
चतुर्होतृमन्त्रेऽपि पूर्वोक्तस्यैव यज्ञस्य भङ्ग्यन्तरेण विवक्षितत्वनिरूपणम् ६०५
पृथिवीद्युरुद्रशब्दानां प्रकृतिपुरुषकालपरत्वप्रदर्शनम् ६०५
बृहस्पतिशब्दस्य श्रियःपतित्वपुरस्कारेण भगवत्परत्वम् ६०६
ग्रहभागार्थनिरूपणे वाचोवीर्यशब्दस्य भगवत्कर्तृकसृष्ट्युद्यमपरत्वप्रदर्शनम् ६०६
सम्भृततमशब्देन सृष्ट्युद्यमस्य सर्वार्थविषयकत्वविवक्षा ६०६
पूर्वोक्तस्य प्राणस्यैवात्रापि हविष्ट्वविवक्षा ६०६
मन्त्रशेषस्य दास्यमहारसरूपसुखप्रार्थनापरत्वप्रदर्शनम् ६०६
मन्त्रचरमवाक्यस्य प्रतिबन्धनिवृत्तिप्रार्थनापरत्वम् ६०७
पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम् ६०७
ग्रहभागस्यात्मयागसाधनत्वेन विनियोगः ६०७
तत्र षष्ठ्यन्तयोः प्रथमान्तयोश्च सोमशुक्रपदयोरर्थविवेकः ६०७
प्रथमान्तसोमपदविवक्षितस्य जीवस्य षष्ठ्यन्तसोमपदविवक्षितात् लतासारादुत्तमत्वम्, तदुपपादनञ्च ६०८
शुक्रशब्दस्य जीवपरत्वे प्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम् ६०८
इन्द्रशब्देन भगवतः सम्बोधनम् ६०८
वातापिशब्दस्य व्याप्तिपूर्वकभगवन्निष्ठक्रियाशक्तिवैशिष्ट्यपरत्वम् ६०८

हवनश्रुत्पदस्य स्वविषयकाह्वानश्रवणरसिकत्वपरत्वम् ६०८
अथ षड्ढोतृमन्त्रार्थनिरूपणम् ६०९
अपरस्य षड्ढोतृमन्त्रस्यार्थनिरूपणम् ६१०
सप्तहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम् ६१०
ग्रहभागार्थनिरूपणम् ६११
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ६१२-६२३

पुरुषसूक्तश्रीसूक्तवाराहमन्त्रार्थनिरूपणम्

ब्रह्मचक्रान्तर्गतसम्भारादिमन्त्रार्थानिरूपणे कारणनिरूपणम् ६१२
पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोरर्थं निरूपयितुं जगद्धिताय परमपुरुषाल्लक्ष्म्याश्च ६१२
तयोराविर्भावकथनम् ६१२
पुरुषसूक्तस्य ऋक्सङ्ख्यायां मतभेदप्रदर्शनम् ६१२
पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यप्रमेयप्रदर्शनम् ६१३
आद्यानां चतसृणामृचां वासुदेवादिचातुरात्म्यस्वरूपविवेचकत्वम् ६१३
तत्राद्यमन्त्रस्य लक्ष्मीपतित्वपरिष्कृतवासुदेवाख्यप्रथमव्यूहप्रतिपादकत्वम् ६१३
मन्त्रस्य प्रतिपदमर्थं वर्णयितुं सहस्रशीर्षशब्दस्य श्रियः पतित्वपरत्वप्रदर्शनम् ६१३
पुरुषशब्दस्यावाप्तसमस्तकामत्वपरत्वम् ६१४
'सहस्राक्ष'शब्दस्य सहस्रत्वगुणविशिष्टबद्धात्मवैशिष्ट्यपरत्वम् ६१४
सहस्रपाच्छब्दस्य सहस्रत्वगुणविशिष्टप्रकृतिवैशिष्ट्यपरत्वम् ६१४
प्रकृतिपुरुषयोः सहस्रशब्दप्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम् ६१४
वासुदेवस्य प्रकृतिपुरुषवैशिष्ट्यनिगमनम् ६१५
द्वितीयमन्त्रस्य सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वप्रतिपादनम् ६१६
मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्य सङ्कर्षणपरत्वोपपादनम् ६१६
उत्तरार्धेन सङ्कर्षणस्य ज्ञानोपदेष्टृत्वनिबन्धनमोक्षप्रदत्वप्रतिपादनम् ६१६
तृतीयमन्त्रस्य प्रद्युम्नाख्यतृतीयव्यूहपरत्वप्रतिपादनम् ६१७
मन्त्रगतेन पुरुषशब्देन प्रद्युम्नस्य ज्यायस्त्वोपपादनम् ६१७
चतुर्थमन्त्रस्यानिरुद्धाख्यचतुर्थव्यूहपरत्वप्रतिपादनम् ६१७
मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्यानिरुद्धपरत्वोपपादनम् ६१७
अवशिष्टानां चतुर्दशमन्त्राणामर्थस्य लोकतो ज्ञेयत्वकथनपूर्वकं पुरुषसूक्तार्थनिगमनम् ६१८
तन्त्रान्तरे विस्तरेण निरूपितस्य श्रीसूक्तार्थस्यातिसंक्षेपेण सूचनम् ६१८
नियमपूर्वकं यथोक्तसूक्तद्वयनिष्ठस्य मोक्षप्राप्तिः फलम् ६१९
वराहमन्त्रे स्थूलार्थस्य लोकतो ज्ञेयत्वकथनम् ६१९
तस्यैव संक्षेपतः सूक्ष्मार्थनिरूपणम् ६१९
तस्यैव परार्थनिरूपणम् ६१९
शास्त्रार्थमुपसंहर्तुं संक्षेपतः सुदर्शनगतिनिरूपणम् ६२०
शास्त्रार्थसंक्षेपः ६२०
एतत्संहितोपदेशानर्हजनपरिगणनम् ६२२
मङ्गलाचरणव्याजेन शास्त्रप्रमेयसारानुवादपूर्वकं शास्त्रसमापनम् ६२३
षष्टितमोऽध्यायः ६२४-६२८

शास्त्रवैभवनिरूपणम्

भारद्वाजं प्रति दुर्वाससा वृत्तानुवादव्याजेनापेक्षितयावदर्थप्रतिपादकत्वरूपशास्त्रवैभवप्रपञ्चनम् ६२४

प्राधान्येन भगवदिच्छाशक्तिभूतलक्ष्मीस्वरूपरूपगुणविभवादिप्रतिपादकत्वम् ६२५
तथा प्राधान्येन भगवत्क्रियाशक्तिभूतसुदर्शनस्वरूपादिप्रतिपादकत्वम् ६२५
सांख्ययोगाद्यर्थप्रतिपादकत्वरूपवैभवान्तरसूचनम् ६२६
एतच्छास्त्राधिकारिनिरूपणम् ६२७
अनधिकारिनिर्देशापूर्वकं तेभ्य: शास्त्रप्रदाननिषेध: ६२७
योग्याधिकारिनिर्देशपूर्वकं तेभ्य: शास्त्रप्रदानाभ्यनुज्ञा ६२७
शास्त्रवैभवनिगमनम् ६२७
ग्रन्थसमापनम् ६२८

सुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रम् ६२९-६३९
(अहिर्बुध्न्यसंहितापरिशिष्टं)

सुदर्शनस्य ध्यानम् ६३१
ककारादीनि षोडश नामानि ६३१
खकारादीनि दश नामानि ६३१
गकारादीनि द्वादश नामानि ६३२
घकारादीन्येकादश नामानि ६३२
ङकारादीनि चत्वारि नामानि ६३२
चकारादीनि षट्पञ्चाशत् नामानि ६३२
छकारादीनि नव नामानि ६३३
जकारादीनि षोडश नामानि ६३३
झकारादीनि चत्वारि नामानि ६३३
ञकारादिनी द्वे नामानि ६३३
टकारादीनि नव नामानि ६३३
डकारादीन्येकोनविंशति: नामानि ६३३
ढकारादीन्यष्टौ नामानि ६३४
णकारादीनि चत्वारि नामानि ६३४
तकारादीनि चतुर्दश नामानि ६३४
थकारादीनि चत्वारि नामानि ६३४
दकारादीनि दश नामानि ६३४
धकारादीनि चतुर्विंशति: नामानि ६३४
नकारादीनि षोडश नामानि ६३५
पकारादीन्यष्टादश नामानि ६३५
अथ फकारादीनि नव नामानि ६३५
बकारादीनि षोडश नामानि ६३५
भकारादीनि चतुर्विंशति: नामानि ६३५
मकारादीनि त्रिपञ्चाशत् नामानि ६३६
यकारादीनि दश नामानि ६३६
रेफादीनि विंशति: नामानि ६३७
लकारादीन्यष्टौ नामानि ६३७
वकारादीनि सप्तदश नामानि ६३७
शकारादीनि पञ्चविंशति: नामानि ६३७
षकारादीनि षोडश नामानि ६३८
सकारादीनि विंशति: नामानि ६३८
हकारादीनि चतु:षष्टि: नामानि ६३८
क्षकारादीनि द्वादश नामानि ६३९
फलश्रुति: ६३९

पारिभाषिक शब्दकोश ६४०

*

अकारादिक्रमेण वर्णसंज्ञासूची

अ — प्रथम, अप्रमेय, व्यापक
आ — आनन्द, आदिदेव, गोपन
इ — इष्ट, इद्ध, राम
ई — विष्णु, पञ्चबिन्दु, माया
उ — उदय, उद्दाम, भुवन
ऊ — प्रज्ञाधार, लोकेश, ऊर्ज
ऋ — ऋतधाम, सत्य, अङ्कुश
ॠ — ज्वाला, प्रसरण, विष्टर
ऌ — तारक, लिङ्गात्मा, भगवान्
ॡ — दीर्घघोण, देवदत्त, विराट्
ए — जगद्योनि, त्र्यक्ष, विग्रह
ऐ — ऐश्वर्य, योगी, ऐरावण
ओ — ओदन, ओतदेव, विक्रम्य
औ — और्व, भूधर, औषध
अं — सृष्टिकृत्
अ: — परमेश्वर
ॐ — त्रैलोक्यैश्वर्यद, व्यापी, व्योम
क — कमल, कराल, परा, प्रकृति
ख — खर्वदेह, वेदात्मा, विश्वभावन
ग — गदध्वंसी, गोविन्द, गदाधर
घ — घर्मांशु, तेजस्वी, दीप्तिमान्
ङ — एकदंष्ट्र, भूतात्मा, भूतभावन
च — चन्द्रांशु, चलचक्री
छ — छन्द:पति, छलध्वंसी, छन्द
ज — अजित, जन्महन्ता, शाश्वत
झ — झष, सामग, सामपाठक
ञ — उत्तम, ईश्वर, तत्त्वधारक
ट — विश्वाप्यायकर, चन्द्री, आह्लाद
ठ — धाराधर, नेमि, कौस्तुभ
ड — मांसल, दण्डधार, अखण्डविक्रम
ढ — विश्वरूप, दृढकर्मा, प्रतर्दन
ण — अभयद, शास्ता, वैकुण्ठ
त — काललक्ष्मा, वैराज, स्त्रग्धर
थ — धन्वी, भुवनपाल, सर्वधारक
द — दत्तावकाश, दमन, शान्तिद
ध — शार्ङ्गधृक्धाम, माधव
न — नर, नारायण, पन्था
प — पद्मनाभ, पवित्र, पश्चिमानन
फ — फुल्लनयन, लाङ्गली, श्वेत
ब — वामन, ह्रस्व, पूर्णाङ्ग
भ — भल्लातक, भकार, सिद्धिप्रद, ध्रुव
म — मर्द्दन, काल, प्रधान
य — चतुर्गति, सुसूक्ष्म, शङ्ख
र — अशेषभुवनाधार, कालपावक,
अनल
ल — विबुध, धरेश, पुरुषेश्वर
व — वराह, अमृताधार, वरुण
श — शङ्कर, शान्त, पुण्डरीक
ष — नृसिंह, अग्निरूप, भास्कर
स — अमृत, तृप्ति, सोम
ह — प्राण, परमात्मा, सूर्य
क्ष — अनन्तेश, वर्गान्त, गरुड़
बिन्दु (ं) — संहार
विसर्ग (:) — सृष्टि

* * *

अकारादिक्रमेण वर्णसङ्केतसूची

अखण्डविक्रम — ड
अङ्कुश — ऋ
अग्निरूप — ष
अजित — ज
अनन्तेश — क्ष
अनल — र
अप्रमेय — अ
अभयद — ण
अमृत — स
अमृताधार — व
अशेषभुवनाधार — र
आदिदेव — आ
आनन्द — आ
आह्लाद — ट
इद्ध — इ
इष्ट — इ
ईश्वर — ञ
उत्तम — ञ
उदय — उ
उद्दाम — उ
ऊर्ज — ऊ
ऋतधाम — ऋ
एकदंष्ट्र — ङ
ऐरावण — ऐ
ऐश्वर्य — ऐ
ओतदेव — ओ
ओदन — ओ
और्व — औ
औषध — औ
कमल — क
कराल — क
काल — म
कालपावक — र
कौस्तुभ — ठ
खर्वदेह — ख
गदध्वंसी — ग
गदाधर — ग
गरुड़ — क्ष
गोपन — आ
गोविन्द — ग
घर्मांशु — घ
चतुर्गति — य
चन्द्रांशु — च
चन्द्री — ट
चलचक्री — च
छन्द — छ
छन्द:पति — छ
छलध्वंसी — छ
जगद्योनि — ए
जन्महन्ता — ज
ज्वाला — ॠ
झष — झ
तत्त्वधारक — ञ
तारक — ऌ
ताललक्ष्मा — त
तेजस्वी — घ
त्र्यक्ष — ए
तृप्ति — स

त्रैलोक्यैश्वर्यद	—	ॐ
दण्डधार	—	ड
दत्तावकाश	—	द
दमन	—	द
दीर्घघोण	—	ऌ
दीप्तिमान्	—	घ
दृढ़कर्मा	—	ढ
देवदत्त	—	ऌ
धन्वी	—	थ
धरेश	—	ल
धाराधर	—	ठ
ध्रुव	—	भ
नर	—	न
नारायण	—	न
नृसिंह	—	ष
नेमि	—	ठ
पञ्चविन्दु	—	ई
पद्मनाभ	—	प
पन्था	—	न
परमात्मा	—	ह
परमेश्वर	—	अः
परा	—	क
पवित्र	—	प
पश्चिमानन	—	प
पुण्डरीक	—	श
पुरुषेश्वर	—	ल
पूर्णाङ्ग	—	ब
प्रकृति	—	क
प्रज्ञाधार	—	ऊ
प्रतर्दन	—	ढ
प्रथम	—	अ
प्रधान	—	म
प्रसरण	—	ॠ
प्राण	—	ह
फुल्लनयन	—	फ
भकार	—	भ
भगवान्	—	ॡ
भल्लातक	—	भ
भास्कर	—	ष
भुवन	—	उ
भुवनपाल	—	थ
भूतभावन	—	ङ
भूतात्मा	—	ङ
भूधर	—	औं
मर्दन	—	म
माधव	—	ध
माया	—	ई
मौसल	—	ड
योगी	—	ऐ
राम	—	इ
लाङ्गली	—	फ
लिङ्गात्मा	—	ॡ
लोकेश	—	ऊ
वर्गान्त	—	क्ष
वराह	—	व
वरुण	—	व
वामन	—	ब
विक्रम्य	—	ओ
विग्रह	—	ए
विबुध	—	ल
विराट्	—	ऌ
विष्णु	—	ई
विष्टर	—	ॠ
विश्वभावन	—	ख
विश्वाप्यायकर	—	ट
विश्वरूप	—	ढ
वेदात्मा	—	ख
वैकुण्ठ	—	ण
वैराज	—	त
व्यापक	—	अ
व्यापी	—	ॐ
व्योम	—	ॐ

सत्य — ऋ
सर्वधारक — थ
सामग — झ
सामपाठक — झ
सिद्धिप्रद — भ
सुसूक्ष्म — य
सूर्य — ह
स्रग्धर — त
सृष्टिकृत् — अं
सृष्टि — विसर्ग (:)
सोम — स
संहार — बिन्दु (ं)
शान्त — श
शान्तिद — द
शार्ङ्गधृक्धाम — ध
शास्ता — ण
शाश्वत — ज
शङ्कर — श
शङ्ख — य
श्वेत — फ
ह्रस्व — ब

* * *

⁂

नमः शिवाय शान्ताय नारदाय महर्षये।
नमः सुदर्शनायाथ विष्णोः सङ्कल्परूपिणे॥

शान्तस्वरूप शिव को नमस्कार है। महर्षि श्रीनारद को नमस्कार है तथा विष्णु के सङ्कल्प स्वरूप सुदर्शन को भी नमस्कार है।

⁂

श्रीपाञ्चरात्रागमे

अहिर्बुध्न्यसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

शास्त्रावतारः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

※ सरला ※

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रित्य हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ १ ॥

विद्वांसोऽप्यथ योगिनोऽपि कतिचित्सन्त्येव सन्तः परं
तत्सामान्यविशेषभावकथने लोकेऽन्यथा मन्यते ।
अस्तु श्रीमद्रामकुबेरविबुधादन्यो न शैवागम-
ग्रन्थग्रन्थिविभेदनेऽद्य मतिमानित्युच्चकैर्ब्रूमहे ॥ २ ॥

कार्यारम्भ में सभी प्रकार से (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) तीनों प्रकार के विघ्नों के विनाश के लिये शुक्ल वस्त्र धारण करने वाले, चन्द्रमा जैसे श्वेत वर्ण वाले, चार भुजाओं से युक्त प्रसन्नमुख विष्णु का ध्यान करना चाहिये ।

मङ्गलाचरणम्

अक्षरत्रितयाव्यक्तविकाराक्षादिरूपिणे ।
परव्यूहादितत्त्वाय नमश्चक्राय चक्रिणे ॥ १ ॥

अक्षर (अप्रतिहत ज्ञान एवं इच्छा प्रयत्न वाले), त्रितय (ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र इन तीन स्वरूपों वाले), अव्यक्त (निर्गुण), विकारवान् (साकार रूप धारण करने वाले), अ से लेकर क्ष पर्यन्त वर्ण वाले तथा पर व्यूहादि तत्त्वों वाले चक्रधारी विष्णु एवं उनके सुदर्शन चक्र को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

सोमसूर्यानलाकल्पामकल्यामिन्दुशेखराम् ।
पञ्चबिन्दुं हरेः शक्तिं पञ्चकृत्यकरीं नुमः ॥ २ ॥

सोम, सूर्य एवं अग्नि के समान देदीप्यमान स्वरूपों वाली किन्तु स्वयम्भुव, चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करने वाली, पञ्चबिन्दुस्वरूपा (ईकार स्वरूपा), पञ्चकृत्यकरी श्री विष्णु की शक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

भरद्वाजस्य दुर्वाससं प्रति सुदर्शनमाहात्म्यकारणप्रश्नः

आप्लुतं दिव्यगङ्गायामुपासीनं परं पदम् ।
भरद्वाजोऽथ पप्रच्छ दुर्वाससमकल्मषम् ॥ ३ ॥

दिव्यगङ्गा में स्नान किये हुये, परं पद में लीन एवं सर्वथा निष्पाप महर्षि दुर्वासा से भरद्वाज ने सर्वप्रथम पूछा ॥ ३ ॥

भरद्वाजः—

अनसूयाहृदानन्द भगवंस्तपसां निधे ।
अस्ति मे संशयः कश्चित् तं मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे अनसूया के हृदय को आनन्द देने वाले, हे तपस्याओं के आकर ! मुझे कुछ संशय है । अतः आप उसका समाधानपूर्वक व्याख्यान करें ॥ ४ ॥

अग्नीषोमक्रियायोगिन्याथर्वणविनिर्णये ।
महोदयेऽस्त्रसङ्घे च प्रवर्तकनिवर्तके ॥ ५ ॥

जब कि अग्नीषोमात्मक (अभिचार एवं शान्ति) क्रिया से युक्त अथर्ववेत्ता ब्राह्मण विद्यमान हैं और प्रयोग तथा संहार वाले महाफलवान् अस्त्र समूह भी विद्यमान हैं, फिर भी सुदर्शन का आश्रय लेने के लिये तत्तत् शास्त्रों में निरूपण किया गया है ऐसा क्यों? ॥ ५ ॥

लोकपालास्त्रसङ्घे च तत्तत्सामर्थ्यसम्भृते ।
महोदयासु शक्तीषु वह्निसूर्येन्दुवर्त्मनाम् ॥ ६ ॥

इसी प्रकार जब तत्तत्सामर्थ्यों को धारण करने वाले लोकपालों के अस्त्र-समूह एवं अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा के समान (दाहक, प्रकाशक एवं शैत्योत्पादक) महाफलवती शाक्तियाँ विद्यमान हैं, तब सभी शास्त्रों में सुदर्शन के आश्रय ग्रहण करने का निरूपण क्यों किया गया है? ॥ ६ ॥

अस्त्राश्रये च शस्त्रौघे ब्रह्मरुद्रादिनिर्मिते ।
त्रैलोक्यत्राणसंहारजनिकर्मविचक्षणे ॥ ७ ॥

जब ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं द्वारा निर्मित संसार की रक्षा संहार एवं सृष्टि करने में विचक्षण अनेक प्रकार के अस्त्रों एवं शस्त्रों के समूह विद्यमान हैं तब सुदर्शन की आवश्यकता क्यों आ पड़ी? ॥ ७ ॥

महर्षिगणसंदृष्टे मन्त्रग्रामे महोदये ।
वैष्णवे च गदाशार्ङ्गशङ्खखड्गादिपूर्वके ॥ ८ ॥

महर्षिगण जिनके द्रष्टा हैं, ऐसे महा फलवान् मन्त्र समूहों के रहते एवं गदा, शार्ङ्ग, शङ्ख तथा खड्गादि वैष्णवास्त्रों के रहते सुदर्शन की आवश्यकता क्यों? ॥ ८ ॥

लाक्ष्मे च दलगण्डाब्जपूर्वेऽस्त्रौघे महोदये ।
अन्यत्रोच्चावचेऽप्येवं कीर्त्यमाने प्रभावतः ॥ ९ ॥

जब दल (कमल दल), गण्ड (हाथी) एवं अब्ज (शङ्ख) आदि मङ्गलपूर्वक लक्ष्मी के महाफलदायी अनेक अस्त्र समूह हैं और (द्र. 'अक्षस्रक्परशुं गदेषु' इत्यादि महालक्ष्मी का ध्यान दुर्गा सप्तशती अ. २) इसी प्रकार शास्त्रों में ऊँचे नीचे प्रभाव वाले अन्यान्य शस्त्र भी वर्णित हैं ॥ ९ ॥

सुदर्शनाश्रयत्वं तु तत्र तत्र निरूपितम् ।
किंकृतं तस्य माहात्म्यं स्वतः संसर्गतोऽपि वा ॥ १० ॥

तब फिर उन-उन शास्त्रों में सुदर्शन के आश्रय का निरूपण क्यों किया गया है? क्या उसका यह माहात्म्य परिकल्पित है ? अथवा स्वतः सिद्ध है? अथवा किसी के संसर्ग का फल है? ॥ १० ॥

किं तत् सुदर्शनं नाम कश्च शब्दार्थ इष्यते ।
तेन किं क्रियते कर्म जगद् व्याप्नोति तत्कथम् ॥ ११ ॥

वह सुदर्शन नाम वाले कौन हैं? सुदर्शन शब्द का अर्थ क्या है? वह सुदर्शन कौन सा कर्म करते हैं? और वह किस प्रकार से जगत् में व्याप्त हैं? ॥ ११ ॥

कियन्तः कीदृशाः के च व्यूहास्तस्योदिता मुने ।
प्रयोजनं च किं तेषां व्यूही तेषां च कीदृशी ॥ १२ ॥

हे मुने ! उनके व्यूह कितने हैं? और कौन-कौन हैं? उन व्यूहों का प्रयोजन क्या है? तथा उनका व्यूही कैसा है? ॥ १२ ॥

विष्णुना तस्य सम्बन्धः कश्च कीदृक् च सम्मतः ।
किं तेन नियतं नित्यमुतान्यत्रापि दृश्यते ॥ १३ ॥

उन सुदर्शन का विष्णु के साथ कौन सा सम्बन्ध है? वह सम्बन्ध कैसा है? क्या वह नियमपूर्वक नित्य विष्णु से ही सम्बन्धित हैं?, अथवा अन्यत्र भी दिखाई पड़ते हैं? ॥ १३ ॥

एष मे संशयो जातो नानाशास्त्रनिरीक्षणात् ।
छिन्ध्येनं भगवन् सम्यगुपसन्नोऽस्म्यधीहिभोः ॥ १४ ॥

भरद्वाज कहते हैं कि मुझे ये सब सन्देह उत्पन्न हो गये हैं । हे भगवन् ! आप नाना प्रकार के शास्त्रों के निरीक्षण से मेरे इन सन्देहों को दूर कीजिये । मै आपकी शरण में आया हूँ । आप मुझे अध्ययन कराइये ॥ १४ ॥

दुर्वाससः प्रश्नप्रशंसापूर्वकं तत्प्रतिवचनम्

दुर्वासाः—

उपपन्नमिदं वत्स यत् त्वयैवं विमृश्यते ।
तानि तानि तपांस्यद्य व्युच्छन्ति तव सुव्रत ॥ १५ ॥

दुर्वासा ने कहा—हे वत्स ! यह आपके लिये उचित ही है कि जो आप इस प्रकार का विचार उपस्थित कर रहे हैं । हे सुव्रत ! आपके द्वारा की गई उन-उन तपस्याओं की परिसमाप्ती भी इसी में है ॥ १५ ॥

पक्वकषायस्यैव परतत्त्वजिज्ञासोदय.

आन्तःकरणिके तैस्तैः क्षयं नीते कषायके ।
मनीषा जायते पुंसां परतत्त्वविमर्शिनी ॥ १६ ॥

जब उन-उन तपस्याओं के द्वारा अन्तःकरण का कषाय (राग द्वेषादि मल) क्षीण हो जाता है । तब पुरुषों की पर तत्त्व के विचार में बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

अत्र ब्रह्मादीनामपि संशयः

न संशयी भवानेव पूर्वोपन्यस्तवस्तुनि ।
ब्रह्माद्याश्च यतन्तेऽत्र संशयाना मनीषिणः ॥ १७ ॥

केवल आप ही को इस विषय में संशय हुआ हो, यह वात नहीं । ब्रह्मादि बड़े-बड़े बुद्धिमान् देवगण भी इसी प्रकार के सन्देह में पड़कर उसे दूर करने का प्रयत्न करते रहते हैं ॥ १७ ॥

स्वस्याहिर्बुध्न्यात् तत्त्वनिर्णयप्राप्तिः

निर्णयोऽत्र मया प्राप्तो नारदाय सुरर्षये ।
साक्षात् कथयतः पृष्टाच्छङ्कराल्लोकशङ्करात् ॥ १८ ॥

मैंने इस विषय में नारद द्वारा इसी प्रकार पूछे जाने पर लोक कल्याणकारी सदाशिव (अहिर्बुध्न्य) के मुख से उनके लिये उपदेश किये जाते समय इसका निर्णय प्रत्यक्ष रूप में किया है ॥ १८ ॥

नारदस्योत्कर्षः

प्राप्याग्र्यां तपसो व्युष्टिं नारदो देवसम्मतः ।
छिन्दानः संशयान् सर्वान् ब्रह्मदेवमहर्षिषु ॥ १९ ॥

देवताओं में पूज्य नारद जब तपस्या के सर्वोच्च फल प्राप्त कर चुके, तब ब्रह्मदेव एवं महर्षियों के सभी प्रकार की शङ्काओं का समाधान करने लगे ॥ १९ ॥

तस्यापि तत्त्वविषयसन्देहादहिर्बुध्न्याभिगमनम्

स्वयं तु संशयं प्राप्य गहनं दुर्विदं सुरैः ।
अरागरोगकलुषस्तपस्वी संयतेन्द्रियः ॥ २० ॥

किसी समय वे (नारद) अचिन्त्य देवता अत्यन्त गहन सन्देह में स्वयं पड़ गये। जबकि राग-रोग से उनका हृदय कलुषित नहीं था और वे स्वतः इन्द्रियों को संयम में रखने वाले तपस्वी थे ॥ २० ॥

पदवाक्यप्रमाणानां याथातथ्यविधानवित्।
ब्रह्मचारी दमावासः परापरविभागवित्॥ २१ ॥

पद, वाक्य (व्याकरण) और प्रमाण (न्याय) के याथातथ्येन वे ज्ञाता थे और ब्रह्मचारी, इन्द्रियों के दमन करने वाले तथा परापर विभागवेत्ता भी थे ॥ २१ ॥

शुश्रूषुरनहंवादी यथार्थज्ञानतत्परः।
नारदो मुनिशार्दूलस्त्रीन् लोकाननुसञ्चरन्॥ २२ ॥
छेत्तारं संशयस्यास्य दुर्विदस्य सुरर्षिभिः।
देवादनभिगम्यान्यं सर्वज्ञाच्चन्द्रशेखरात्॥ २३ ॥

शुश्रूषा के अहङ्कार से रहित एवं यथार्थज्ञान में तत्पर मुनिशार्दूल नारद तीनों लोकों में घूमते हुये देवता गणों से अगम्य इस संशय को करने के लिये सर्वज्ञ चन्द्रशेखर को छोड़कर अन्य देवों के पास न जा कर कैलास पर्वत पर गये ॥ २२-२३ ॥

कैलासवर्णनम्

प्रभाभिः स्वाभिरखिलान् प्रहसन्तमिवाचलान्।
उन्मेषमिव सत्त्वस्य प्रकृष्टज्ञानकारिणः॥ २४ ॥
सिद्धविद्याधराकीर्णं देवगन्धर्वसेवितम्।
कैलासं शङ्करावासं शङ्करं द्रष्टुमाययौ॥ २५ ॥

कैलास पर्वत अपने प्रकाश से मानो सभी पर्वतों को हँसा रहा हो। प्रकृष्ट ज्ञान उत्पन्न करने वाले सत्त्व का वह मानो उन्मेष हो। वह पर्वत देव गन्धर्वों से सेवित एवं सिद्धों तथा विद्याधरों से संकुलित था। इस प्रकार शङ्कर के निवासभूत कैलास पर श्री नारद भगवान् शङ्कर के दर्शन के लिये गये ॥ २४-२५ ॥

अहिर्बुध्न्यवर्णनम्

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः सिद्धैः साध्यैर्मरुद्गणैः।
ऋषिभिर्योगिभिर्दिव्यैर्भूतैर्नानाविधैरपि ॥ २६ ॥
ददर्श सेवितं तत्र समासीनं सहोमया।

वहाँ नारद ने भगवान् शङ्कर को रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, सिद्धगण, साध्य, मरुद्गण, ऋषिगण, योगीगण तथा अनेक प्रकार के दिव्य प्राणिगणों से सेवित भगवती पार्वती के साथ विराजमान देखा ॥ २६-२७ ॥

त्र्यक्षं वरदमीशानं शूलिनं चन्द्रशेखरम्॥ २७ ॥
पतिं पशूनामनिशं भवपाशविभेदिनम्।
स्थितं मूर्तिभिरष्टाभिरवष्टभ्य जगत्त्रयम्॥ २८ ॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं नारदो देवदर्शनः ।
प्रणिपत्याथ तुष्टाव गीर्भिरग्र्याभिरादरात् ॥ २९ ॥

तीन नेत्रों वाले, वरद, सबके ईश्वर, त्रिशूल धारण करने वाले, चन्द्रशेखर, पशुरूप जीवों के पति, संसार के पाश को काटने वाले तथा तीनों लोकों को अपनी आठ मूर्तियों से अत्यधिक प्रकाशित करने वाले ऐसे ईशान देव को देख कर देवताओं के लिये दर्शनीय नारद ने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम कर सर्वश्रेष्ठ वाणी द्वारा उनकी इस प्रकार स्तुति की ॥ २७-२९ ॥

नारदकृताहिर्बुध्न्यस्तुतिः

नारदः—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते वृषकेतन ।
वृषप्रवरवाहाय वृष्णे कामप्रवर्षिणे ॥ ३० ॥

नारद ने कहा—हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार है, हे धर्मध्वज ! आपको नमस्कार है । हे सर्वश्रेष्ठ बैल पर सवारी करने वाले ! हे कामनाओं की वर्षा करने वाले ! आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

ओजीयसे परस्मै ते मीढुष्टम नमोऽस्तु ते ।
सर्वज्ञाय स्वतन्त्राय नित्यतृप्ताय ते नमः ॥ ३१ ॥

ओजस्वी, पर, पुरुष एवं अत्यन्त बलवान् आपको नमस्कार है । सर्वज्ञ, स्वतन्त्र एवं नित्य तृप्त रहने वाले सदा आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

अनादिबोधरूपाय नमस्ते नित्यशक्तये ।
कर्त्रे हर्त्रे च जगतां षडङ्गाय नमोऽस्तु ते ॥ ३२ ॥

अनादि, ज्ञानस्वरूप तथा नित्य शक्तिमान् आपको नमस्कार है । जगत् के कर्त्ता हर्त्ता आपको नमस्कार है । षडङ्गवेद स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

दशाव्यय नमस्तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे ।
अघोरायाथ घोराय घोरघोरतराय च ॥ ३३ ॥

अविक्रिय अवस्था वाले आपको नमस्कार है, व्याघ्रचर्म धारण करने वाले आपको नमस्कार है, अघोर (सौम्य मूर्त्ति वाले) आपको नमस्कार है, (अत्यन्त) भयानक रूप वाले आपको नमस्कार है, घोर-घोरतर (भयानक से भयानक) स्वरूप वाले आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

(सद्योजाताय देवाय वामदेवाय ते नमः ।
नमो ज्येष्ठाय रुद्राय भवोद्भव नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥

सद्योजात् (शिव का एक अवतार) आपको नमस्कार है । वामदेव आपको नमस्कार है, ज्येष्ठ (अतिश्रेष्ठ) रुद्र भवोद्भव आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

नमो बलविकाराय बलप्रमथनाय ते ।
नमः .... य ते नमः) ॥ ३५ ॥

बलविकार वाले आपको नमस्कार है । बलप्रमथन आपको नमस्कार है । नमः .... य ते नमः ॥ ३५ ॥

नमः कलविकाराय कालाय कलनात्मने ।
नमस्ते सर्वभूतानां दमनाय मनोन्मन ॥ ३६ ॥

हे मनोन्मन ! कल विकार के लिये नमस्कार है, काल के लिये नमस्कार है, सङ्ख्या करने वाले अथवा सर्वत्र प्रेरक के लिये नमस्कार ! हे मनोन्मन ! सम्पूर्ण प्राणियों को दमन करने वाले (संहारक) आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥

नमः शर्वाय शान्ताय शम्भवे शम्भवे नमः ।
विद्येश्वर नमस्तुभ्यं भूतेश्वर नमस्तेऽस्तु ते ॥ ३७ ॥

शर्व के लिये नमस्कार है, शान्त स्वरूप के लिये नमस्कार है, कल्याण करने वाले शम्भु को नमस्कार है, हे विद्येश्वर ! आपको नमस्कार है, हे भूतेश्वर ! आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

महादेव नमस्तेऽस्तु नमस्तत्पुरुषाय ते ।
ज्ञानरूप नमस्तुभ्यं नमो वैराग्यवारिधे ॥ ३८ ॥

हे महादेव ! आपको नमस्कार है । तत्पुरुष आपको नमस्कार है । ज्ञानरूप आपको नमस्कार है । वैराग्य के समुद्र रूप आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यगुणपूर्णाय नमस्ते तपसां निधे ।
नित्यसत्य नमस्तेऽस्तु क्षमासार नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥

ऐश्वर्य गुण से परिपूर्ण आपके लिये नमस्कार है । तपस्या के निधि आपको नमस्कार है, नित्य सत्य आपको नमस्कार है, क्षमासार आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

धृतिसार नमस्तुभ्यं स्रष्ट्रे ते जगतां नमः ।
आत्मसम्बोधपूर्णाय त्रीन् लोकानधितिष्ठते ॥ ४० ॥

हे धृतिसार (महाधैर्यशालिन्) आपको नमस्कार है, सारे जगत् के स्रष्टा आपको नमस्कार है, आत्मज्ञान से परिपूर्ण के लिये नमस्कार है, तीनों लोकों को व्याप्त कर स्थित हुये आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥

दशाव्ययाय ते नित्यमव्ययाय नमो नमः ।
क्षोण्यम्ब्वनलवाय्वभ्रचन्द्रादित्यात्मने नमः ॥ ४१ ॥
नमः सर्वोपकाराय त्रिलोकीमधितस्थुषे ।

अविक्रिय अवस्था वाले आपको नित्य नमस्कार है । आप अव्यय के लिये

नमस्कार है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा एवं आदित्य स्वरूप के लिये नमस्कार है, सब के उपकार में परायण त्रिलोकी में व्याप्त हो कर स्थित रहने वाले आप के लिये नमस्कार है ॥ ४१-४२ ॥

दुर्वासा:—

इति स्तुवानमग्र्याभिर्वाग्भिर्देवर्षिसत्तमम् ॥ ४२ ॥
प्रसादमधुरं वाक्यमित्युवाच वृषध्वजः ।

दुर्वासा ने कहा—इस प्रकार श्रेष्ठ वाणी से स्तुति करते हुये देवर्षि नारद को देख कर धर्म की ध्वजा वाले, भगवान् शङ्कर ने प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणी में उनसे कहा ॥ ४२-४३ ॥

अहिर्बुध्न्य:—

स्तोत्रेणानेन भक्त्या च तुष्टोऽस्मि मुनिपुंगव ॥ ४३ ॥
ब्रूहि किं करवाण्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुनिपुंगव ! आपके द्वारा किये गये इस स्तोत्र से तथा आपकी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, बताइये मैं इस समय आपके दुर्लभ से दुर्लभ किस कार्य को करूँ ॥ ४३-४४ ॥

नारद:—

किमन्यदिह वक्तव्यं यदि तुष्टो जगत्पतिः ॥ ४४ ॥
एतदेव हि काङ्क्षन्ति यतमाना विपश्चितः ।

नारद ने कहा—यदि जगत् के पालक आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तब इससे बढ़ कर मुझे और क्या कहना है? क्योंकि प्रयत्न करके विद्वान् लोग भी आपकी प्रसन्नता ही तो चाहते हैं ॥ ४४-४५ ॥

अहिर्बुध्न्य:—

प्रसन्नोऽस्मि तवाद्यास्तु दर्शनं सफलं मम ॥ ४५ ॥
ब्रूहि नारद तत्त्वेन यत् ते मनसि वर्तते ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—मैं आप पर प्रसन्न हूँ । मेरा दर्शन आज आपके लिये फलवान् हो । हे नारद ! जो आपकी अभिलाषा हो उसे सत्य-सत्य कहिये ॥ ४५-४६ ॥

कालनेमिसंग्रामे नारदस्य सुदर्शनमहिमदर्शनम्

नारद:—

तारकामयसङ्काशे संग्रामे कालनेमिनः ॥ ४६ ॥
सम्प्रवृत्ते जगद्धातुर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षो भयावहे ॥ ४७ ॥

नारद ने कहा—तारकासुर के संग्राम में जो जगत् के पालक भगवान् विष्णु का

कालनेमि के साथ संग्राम चल रहा था। वह संग्राम इतना भयानक था कि देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष एवं राक्षस उससे भयभीत हो उठे थे ॥ ४६-४७ ॥

मध्याह्नार्कसहस्राभशस्त्रास्त्रगणसङ्कुले ।
सुरासुरेन्द्रसैन्येषु निकृत्तेषु महास्त्रतः ॥ ४८ ॥

मध्याह्नकाल के सहस्रों सूर्य के समान उसमें अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग हो रहा था, जिनसे देवताओं और असुरों की सेनायें काटी जा रही थीं ॥ ४८ ॥

भीतविस्मितसम्भूतहृतसंगतसंप्लुतैः ।
पिशाचप्रेतवेतालभूतसङ्घैः समाकुले ॥ ४९ ।

भय तथा विस्मय उत्पन्न कर देने वाला प्राणियों का जान लेवा वह संग्राम रुधिर में एक साथ स्नान करने वाले पिशाच, प्रेत, बेताल तथा भूतगणों के कोलाहल से व्याप्त था ॥ ४९ ॥

उद्यन्तीष्वतिघोरासु ह्लादिनीष्वशनीषु च ।
देवदानवदेहेभ्यः क्षरद्भिः क्षतजैस्तथा ॥ ५० ॥
स्यन्दमानासु वेगेन स्यन्दिनीषु समन्ततः ।
विद्रुतैः सर्वतो भीतैर्हतशेषैः सुरासुरैः ॥ ५१ ॥

उस संग्राम में अत्यन्त भयानक बिजली के समान चमकने वाले शस्त्रास्त्रों के प्रयोग से देवता और दानवों के शरीर से निकले हुये रक्त की नदी चारों ओर से बह रही थी। मारने से बचे हुये देवता एवं असुर भयभीत होकर यत्र-तत्र भाग रहे थे ॥ ५०-५१ ॥

गरुडस्थे जगन्नाथे सुदर्शनकराम्बुजे ।
प्रादुश्चक्रे कालनेमिरस्त्रग्रामानशेषतः ॥ ५२ ॥

उस समय गरुड़ पर सवार हाथ में सुदर्शन चक्र धारण किये हुये भगवान् विष्णु से युद्ध करते हुये कालनेमि ने अपनी माया से सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रों के समूहों को उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥

भृशाश्वतनया ये ते ये ते त्वन्मुखनिःसृताः ।
ये ते ब्रह्ममुखोद्भूता ये ते संवर्तकालजाः ॥ ५३ ॥

भृशाश्व के तनय कहे जाने वाले जितने अस्त्र हैं, आप सदाशिव के मुख से उत्पन्न हुये जितने अस्त्र हैं, ब्रह्मदेव के मुख से उत्पन्न जितने अस्त्र हैं तथा प्रलय कालीन संवर्त्त काल से उत्पन्न जितने भी अस्त्र हैं ॥ ५३ ॥

लोकपालोद्भवा ये ते ये ते पातालवासिनः ।
महाभूतमया ये ते ये ते वैकारिकोद्भवाः ॥ ५४ ॥

लोकपालों से उत्पन्न जितने अस्त्र हैं, पाताल से उत्पन्न जितने अस्त्र हैं, महाभूतमय जितने अस्त्र हैं, वैकारिक जितने भी अस्त्र हैं ॥ ५४ ॥

गुणत्रयमया ये ते ये ते गन्धर्वयोनयः ।
रक्षोयक्षोद्भवा ये ते ये ते विद्याधराह्वयाः ॥ ५५ ॥
ये ते द्वन्द्वगुणोद्भूता ये ते शक्तिसमुद्भवाः ।
अथर्वाङ्गिरसा ये ते ये ते मन्त्रान्तरोद्भवाः ॥ ५६ ॥
सर्वकार्यकरा ये ते प्रवर्तकनिवर्तकाः ।
यष्टयः शक्तयो यास्ता ये ते दण्डादिरूपकाः ॥ ५७ ॥
महाबला महावीर्यास्त्रैलोक्यक्षपणोद्यताः ।
शैलेन्द्रसन्निभाः केचित् केचिन्नागेन्द्रसन्निभाः ॥ ५८ ॥
पारावारनिभाः केचित् केचिद् गगनसन्निभाः ।
ज्वलज्ज्वालाशतालीढा रोदसीमध्यवर्तिनः ॥ ५९ ॥
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च क्ष्वेलन्तः पतयालवः ।
अनिर्देश्या अनौपम्या गौराः श्वेतारुणासिताः ॥ ६० ॥
नानासंस्थानवर्णाश्च नानाविभ्रमरोचिषः ।
सर्वे सम्भूय संयत्ताः कालनेमिप्रचोदिताः ॥ ६१ ॥

त्रिगुणात्मक गन्धर्वों, राक्षसों एवं यक्षों से उत्पन्न विद्याधर नाम वाले, द्वन्द्वगुणों (शीत उष्ण) से युक्त एवं शक्ति से उत्पन्न अथर्वाङ्गिरस देवता वाले, अन्य मन्त्रों से उत्पन्न, सभी प्रकार के कार्यों को सिद्ध करने वाले प्रवर्त्तक एवं निवर्त्तक अस्त्रग्राम (समूह), सभी प्रकार की यष्टियाँ एवं शक्तियाँ दण्डादि का निरूपण करने वाले, महा बलवान् महा वीर्यवान् जिन अस्त्रों से त्रैलोक्य का प्रलय हो सकता है, ऐसे शस्त्र समूह जिनमें कुछ पहाड़ के समान, कुछ हाथी के समान, कुछ समुद्र के समान, कुछ आकाश के समान, कुछ द्यावापृथ्वी के मध्य में जलते हुये सैंकडों अङ्गारे के समान, नाचते हुये, हँसते हुये, मदोन्मत्त शत्रु पर गिरने वाले, इदमित्थमित्यादिरूपेण अनिर्देश्य उपमारहित, गौर-श्वेत, लाल एवं कृष्ण वर्ण वाले इस प्रकार अनेक संस्थान (सन्निवेश या अवयव विभाग) एवं वर्ण वाले, नाना प्रकार की चेष्टाओं से जलते हुये सभी प्रकार के अस्त्र समूह कालनेमि की प्रेरणा से उत्पन्न हो एकत्रित हो गये ॥ ५५-६१ ॥

सर्वास्त्राणां सुदर्शनेन पराभवः

सप्रयोगोपसंहारैः सरहस्यैश्च सङ्गतैः ।
अस्त्रग्रामैरशेषैस्तैर्नारायणकरोद्यते ॥ ६२ ॥
सुदर्शनमहावह्नौ सम्भूय शलभायितम् ।
पूर्णाहुतिरभूत् तस्मिन् कालनेमिर्महासुरः ॥ ६३ ॥

फिर तो प्रयोग एवं उपसंहारों तथा अपने-अपने रहस्यों से युक्त सभी प्रकार के कालनेमि द्वारा उत्पन्न किये गये वे अस्त्र समूह नारायण के हाथ में रहने वाले सुदर्शन रूपी महाग्नि में पड़कर पतङ्ग के समान भस्मीभूत हो गए । इतना ही नहीं, महान् असुर वह कालनेमि भी उस महाग्नि में पड़कर पूर्णाहुति को प्राप्त हो गया ॥ ६२-६३ ॥

अत्यद्भुतमहिमदर्शनात् संशयोदयः

तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः संग्रामं महदद्भुतम् ।
अन्तर्हितं क्षणात् कृष्णं प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ ६४ ॥

मै उस अद्भुत एवं महान् संग्राम को देख कर आश्चर्य से भर गया और तत्क्षण मैंने अन्तर्धान हो जाने वाले जगद्गुरु श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥ ६४ ॥

इमं सन्देहसन्दोहं हृदयेन वहन् गुरुम् ।
तवान्तिकमिह प्राप्तः संशयच्छेदनाय वै ॥ ६५ ॥
न हि सर्वज्ञमीशानं विना छेत्तास्य विद्यते ।

हे प्रभो ! फिर इस महान् सन्देहों के समूह (४६-६१) को मैं अपने हृदय में धारण कर उसके निवारणार्थ आपके पास आया हूँ, क्योंकि मैं इस बात को भली भाँति जानता हूँ कि सर्वज्ञ ईशान (महादेव) के सिवाय और कोई दूसरा इस संशय को दूर नहीं कर सकता ॥ ६५-६६ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

देवर्षे संशयान् ब्रूहि ये वर्तन्ते तवान्तरे ॥ ६६ ॥
अप्यनिर्वचनीयास्ते सर्वांश्छेत्तास्ति साम्प्रतम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे देवर्षे ! आप अपने हृदय में होने वाले सभी संशयों को मुझसे कहिये । मैं इसी समय उन संशयों को दूर करूँगा, भले ही वे अनिर्वचनीय क्यों न हों ॥ ६६-६७ ॥

दुर्वासाः—

अथ प्रश्नान् क्रमेणोक्तान् नारदेन सुरर्षिणा ॥ ६७ ॥
व्याचष्ट भगवान् शर्वः सर्वतः प्रीतमानसः ।

संहितावतरणम्

संहिता सेयमाख्याता नानामन्त्रार्थगोचरा ॥ ६८ ॥
पञ्चरात्रमयी दिव्या नाम्नाहिर्बुध्न्यपूर्विका ।
अर्थैः परकृतिप्रायैः पुराकल्पैश्च संयुता ॥ ६९ ॥

दुर्वासा ने कहा—इस प्रकार देवर्षि नारद द्वारा क्रम से कहे गये (१.४६-६१) सभी प्रश्नों का भगवान् सदाशिव ने प्रसन्न मन से जो समाधान किया वही अनेक प्रकार के मन्त्रार्थों को प्रगट करने के कारण पाञ्चरात्रमयी दिव्य अहिर्बुध्न्य नाम की संहिता हुई जो प्राय: परमात्मा की कृति मानी जाती है और जिसमें पुराकल्प के अर्थों का निर्देश है ॥ ६७-६९ ॥

नानासिद्धान्तसम्भेदा नानाविद्योपशोभिता ।
शतद्वयमिहाध्यायाश्चत्वारिंशच्च दर्शिताः ॥ ७० ॥

पूर्व (सत्ययुग) में संहिता अनेक प्रकार के सिद्धान्तों के भेद तथा अनेक प्रकार की विद्याओं से शोभित थी। इसमें २४० अध्याय प्रदर्शित किये गये थे ॥ ७० ॥

ततो द्वापरवेलायां मनुष्याणां हिताय वै।
अध्यायानां शतेनाथ विंशत्या च समन्विता॥ ७१ ॥

फिर जब द्वापरयुग का काल आया तब यह संहिता मनुष्यों के हित के लिये मात्र १२० अध्याय की रह गई ॥ ७१ ॥

अतिविस्तरमुत्सृज्य गुह्येन प्रतिसंस्कृता।
ततोऽपि बुद्धिसङ्कोचान्मनुष्याणां हिताय वै॥ ७२ ॥
याति द्वापरसन्ध्यंशे व्यासस्यानुमतेर्मया।
षष्ट्यध्यायैरियं भूयः संहिता प्रतिसंस्कृता॥ ७३ ॥

इसका अतिविस्तार त्याग दिया गया और गुह्य रूप से इसका संशोधन भी कर दिया गया। फिर जब लोगों की बुद्धि ग्रहण एवं धारण में पटु न होने के कारण संकुचित हो गई तब मनुष्यों के उपकार के लिये द्वापर के सन्धिकाल में व्यास की अनुमति से यह संहिता पुनः साठ अध्यायों में मेरे द्वारा प्रतिसंस्कृत कर दी गई ॥ ७२-७३ ॥

उपन्यास्थद्यथाप्रश्नं नारदो भगवानृषिः।
निरुवाच यथा शर्वस्तान् सर्वांस्त्वं निबोध मे॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शास्त्रावतारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ श्लोकाः ७४ ॥

⁂

दुर्वासा ने कहा—अब जिस प्रकार देवर्षि नारद ने इन प्रश्नों को उपस्थित किया तथा जिस प्रकार भगवान् शङ्कर ने उसका समाधान किया, अब उन बातों को, हे भरद्वाज ! आप मुझसे सुनिये ॥ ७४ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में शास्त्रावतार नामक प्रथम अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १ ॥

⁂

अथ द्वितीयोऽध्याय:

षाड्गुण्यब्रह्मविवेक:

अहिर्बुध्न्यं प्रति नारदप्रश्नः

नारदः—

मन्त्रग्रामानशेषांस्तान् सूर्यवैश्वानरोपमान् ।
अनायासेन जग्राह हरेश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ १ ॥

नारद ने कहा—सूर्य एवं अग्नि के समान तेजस्वी तत्-तत् सम्पूर्ण मन्त्रसमूहों को भगवान् विष्णु के चक्र सुदर्शन ने ग्रहण कर लिया ॥ १ ॥

सांसिद्धिकप्रभावोऽयमस्य सांसर्गिकोऽपि वा ।
किं तत् सुदर्शनं नाम कश्च शब्दार्थ उच्यते ॥ २ ॥

क्या उन (सुदर्शन) का यह सांसिद्धिक (=स्वयं सिद्ध) प्रभाव है, अथवा सांसर्गिक (= किसी के सम्बन्ध द्वारा) प्रभाव है । वह कौन हैं जो 'सुदर्शन' नाम से पुकारे जाते हैं और सुदर्शन शब्द का अर्थ क्या है? ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्येन सङ्कर्षणात् स्वस्य ज्ञानप्राप्तिकथनम्

अहिर्बुध्न्य:—

शृणु नारद तत्त्वेन यत् तज्ज्ञानमनुत्तमम् ।
वर्षायुतगणान् घोरं तपस्तप्त्वा मया पुरा ॥ ३ ॥
प्राप्तं सङ्कर्षणात् साक्षाद् विज्ञानबलवारिधेः ।
ब्रह्मादिषु यदन्येषु न महर्षिषु विद्यते ॥ ४ ॥
सुदर्शनस्वरूपं तत् प्रोच्यमानं मया शृणु ।
श्रुते यत्राखिलाधारे संशयास्ते न सन्ति वै ॥ ५ ॥

अहिर्बुध्न्य द्वारा सङ्कर्षण से ज्ञान-प्राप्ति का कथन—

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप तत्त्वत: मेरी बात सुनिए । पूर्वकाल में जिस ज्ञान को, मैंने दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या कर, विज्ञान एवं बल के समुद्र सङ्कर्षण द्वारा प्राप्त किया था और जो ज्ञान सङ्कर्षण के अतिरिक्त न तो ब्रह्मा में और न तो अन्य महर्षियों में है और जो ज्ञान सुदर्शन स्वरूप है, उसके विषय में मेरे द्वारा कही गई बात

सुनिए। उन सर्वस्वाधार सुदर्शन के विषय में कही गई बातों को सुन लेने पर आपको कहीं कोई और सन्देह नहीं रह जायेगा ॥ ३-५ ॥

परब्रह्मस्वरूपसंक्षेपः

अनाद्यन्तं परं ब्रह्म यत् तदक्षरमव्ययम्।
अनामरूपसम्भेद्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ६ ॥
सर्वशक्ति समास्ताख्यं षाड्गुण्यमजरं ध्रुवम्।

परब्रह्मस्वरूप का संक्षेप—वे 'सुदर्शन' आदि एवं अन्त से रहित परब्रह्म स्वरूप है। उनका न कोई नाम है, न रूप है और न कोई उनसे भिन्न है। वस्तुत: वह वाणी एवं मन से परे है। वह सर्वशक्तिमान् हैं तथा पूर्ण-रूप हैं। अन्ततः वे षाड्गुण्य (६ गुणों) से युक्त हैं पुन: वे अजर एवं ध्रुव हैं ॥ ६-७ ॥

सुदर्शनशब्दार्थनिरूपणम्

तस्य स्यामिति सङ्कल्पो भावतोऽभावतोऽपि वा ॥ ७ ॥
स्वातन्त्र्याननुयोज्येन रूपेण परिवर्तते।
यत् तत् प्रेक्षणमित्युक्तं दर्शनं तत् प्रगीयते ॥ ८ ॥

'सुदर्शन' शब्दार्थ निरूपण—किं वा जगत् का भाव हो अथवा अभाव ही क्यों न हो, उन (सुदर्शन) का 'स्याम्' (=होऊँ) इस प्रकार का सङ्कल्प स्वातन्त्र्यपूर्वक एवं बिना किसी की प्रेरणा से सर्वदा विद्यमान रहता है; जिसे 'प्रेक्षण' (=नाटक) कहा जाता है। उसी को 'दर्शन' कहते हैं ॥ ७-८ ॥

वस्तुतः कालतो देशात् तस्य त्वव्याहतिर्हि या।
पूजा सात्र सुशब्दार्थस्तत् सुदर्शनमीर्यते ॥ ९ ॥

वस्तु से, काल से एवं देश से अव्याहत (अप्रतिहत) जो उनकी पूजा (अर्थात् प्रशस्ति, प्रसिद्धि या श्रेष्ठता) है वही 'सु' शब्द का अर्थ है और उसी को 'सुदर्शन' कहा जाता है ॥ ९ ॥

सर्वस्य सुदर्शनाधीनत्वम्

कारणं जगतो यत् तदाधारो जगतश्च यः।
प्रमाणं जगतो यत् तत् प्रमाणार्थोऽखिलश्च यः ॥ १० ॥

जो सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं और जो इस जगत् के आधार हैं तथा जो वे इस जगत् के प्रमाण (अर्थात् हेतु, मर्यादा, सीमा, ज्ञाता, इयत्ता एवं परिच्छेद) हैं, वही अखिल रूप से 'प्रमाणार्थ' हैं ॥ १० ॥

तत्राधिकारिणो ये च विभागा ये च तद्गताः।
रक्षाविधिश्च यस्तस्य स च यस्य प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥
सर्वं सुदर्शनायत्तं सुदर्शनमयं च यत्।
इति सांसिद्धिकं रूपं तस्य सर्वातिशायि च ॥ १२ ॥

इस जगत् के वे अधिकारी हैं—जो-जो विभाग उन्हें सौंपे गए हैं और जो (सुदर्शन) उन की सुरक्षा का विधान करते हैं वह (अधिकार, विभाग व सुरक्षा) सब सुदर्शन के अधीन हैं। यह सम्पूर्ण जगत् ही 'सुदर्शन' से व्याप्त है और उस सुदर्शन का यह (व्याप्य-व्यापकभाव) सांसिद्धिक एवं सर्वातिशायी स्वरूप है ॥ ११-१२ ॥

अस्त्रग्रामेष्वशेषेषु यत् तत् सामर्थ्यमैश्वरम्।
एतदीयमशेषं तदित्याप्तं स्वेन तत् स्वकम्॥ १३ ॥

सम्पूर्ण अस्त्र समूहों में जो सामर्थ्य एवं ऐश्वर्य है वह सब 'सुदर्शन' का ही है। इस प्रकार वह स्वयं सर्वत्र व्याप्त हैं और यही उनका स्व से निर्मित स्वकीय रूप है ॥ १३ ॥

पुनर्नारदकृताः प्रश्नाः

नारदः—

देवदेव जगन्नाथ लोकत्रितयशङ्कर।
विमुह्यतीव चित्तं मे संशयो बहुलीकृतः॥ १४ ॥

पुनः नारद का प्रश्न—नारद ने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे तीनों लोकों का कल्याण करने वाले प्रभो ! मेरा संशय बहुत अधिक बढ़ गया है और मेरा मन उस संशय रूप सागर में डूब रहा है ॥ १४ ॥

षाड्गुण्यं किं परं ब्रह्म किं प्रकारं च तद्भवेत्।
सङ्कल्पः कीदृशस्तस्य कथं दर्शनतास्य च॥ १५ ॥

(आपने जो कहा वह) षाड्गुण्य क्या है ? परब्रह्म क्या है ? वह किस प्रकार का है ? उनके सङ्कल्प का स्वरूप क्या है और उनकी 'दर्शनता' कैसी है ? ॥ १५ ॥

कथं चाविहतिस्तस्य सर्वदेशातिगोचरा।
किं कारणं च जगतः कीदृशं किंविधं च तत्॥ १६ ॥

सम्पूर्ण देश का अतिक्रमण करने वाली उनकी अप्रतिहत गति क्यों है। इस सम्पूर्ण जगत् का कारण क्या है ? फिर वह कारण कैसा और किस प्रकार का है? ॥ १६ ॥

को वा जगत आधारः कीदृक् कतिविधश्च सः।
किं तत् प्रमाणमित्युक्तं कीदृक् कतिविधश्च तत्॥ १७ ॥

इस सम्पूर्ण जगत् का आधार क्या है? वह कैसा है और कितने प्रकार का है? उसका प्रमाण कितना कहा गया है? और वह भी कितने प्रकार का है? ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थश्च को नाम कीदृक् कतिविधश्च सः।
के तेऽधिकारिणो नाम कीदृशाः किंविधाश्च ते॥ १८ ॥

और फिर, प्रमाणार्थ किसे कहते हैं? वह कैसा और कितने प्रकार का है? उस जगत् के अधिकारी कौन हैं? कैसे हैं और किस प्रकार के हैं? ॥ १८ ॥

सर्वस्यास्य च का रक्षा तद्विधिः कश्च किंविधः।

कश्च तत्राधिकार्यर्थः स च किंगुण इष्यते ॥ १९ ॥

इस सारे जगत् की रक्षा कैसे होती है? उसकी विधि क्या है? उसके प्रकार कितने हैं? उनके अधिकृत अर्थ क्या है और उसका गुण क्या है? ॥ १९ ॥

एतन्मे भगवन् ब्रूहि प्रश्नजातमशेषतः ।
उपसंगृह्य चरणावुपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ २० ॥

हे भगवन्! मेरे इन प्रश्न समूहों का समाधान पूर्णरूप से कीजिये । मैं आपके चरणों को पकड़ कर आपकी शरण में आया हूँ । कृपा कर मुझे अध्ययन कराइये ॥ २० ॥

दुर्वासाः—

ततो दर्शनपूताय प्रणिपत्याभियाचते ।
उपसन्नाय मुनये सर्वं व्याचष्ट शङ्करः ॥ २१ ॥

दुर्वासा ने कहा—फिर अपने दर्शन दान से पवित्र हुए एवं प्रणाम कर प्रार्थना करते हुये शरणागत महामुनि नारद से भगवान् शङ्कर ने उक्त सारे प्रश्नों का व्याख्यान इस प्रकार किया ॥ २१ ॥

विस्तरेण परब्रह्मस्वरूपनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

एकं निर्दुःखनिःसीमसुखानुभवलक्षणम् ।
अनाद्यन्तं परं ब्रह्म नारायणमनामयम् ॥ २२ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—एक दुःखरहित निःसीम मात्र सुखानुभव लक्षण वाला, आदि अन्त से रहित परब्रह्म है जो अनामय एवं नारायण स्वरूप है ॥ २२ ॥

सर्वभूतकृतावासं सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम् ।
निरवद्यमविक्षिप्तमतरङ्गार्णवोपमम् ॥ २३ ॥

सारे प्राणियों का उसमें निवास है और वह सब में व्याप्त हो कर स्थित है । वह निरवद्य (दोषरहित) विक्षेप एवं तरङ्गरहित शान्त समुद्र के समान है ॥ २३ ॥

परब्रह्मणः हेयप्रतिभटत्वं कल्याणगुणाकारत्वं च

अप्राकृतगुणस्पर्शमप्राकृतगुणास्पदम् ।
भवोदधेः परं पारं निष्कलङ्कं निरञ्जनम् ॥ २४ ॥

वह प्रकृति जन्य गुणों के स्पर्श से रहित है और प्रकृति के गुणों से भी रहित है । इस भवसागर के पार स्थित है और सर्वथा कलङ्क एवं माया से रहित है ॥ २४ ॥

आकाराद् देशतः कालादनवच्छेदयोगतः ।
पूर्णं नित्योदितं व्यापि हेयोपादेयतोज्झितम् ॥ २५ ॥

वह परब्रह्म आकार, देश तथा काल से अपरिच्छेद्य होने से परिपूर्ण है, नित्य वर्तमान है । सर्वत्र व्यापक है तथा हेय एवं उपादेय से दूर है ॥ २५ ॥

परब्रह्मणः परमात्मादिसकलशब्दवाच्यत्वम्

इदमीदृगियत्ताभिरपरिच्छेद्यमञ्जसा ।
उपर्युपरि तत्त्वानां पूर्वपूर्वात्मभाविनाम् ॥ २६ ॥
पारम्येणात्मभावित्वात् परमात्मा प्रकीर्तितः ।
ओमित्यापन्नयोगेन सर्वतत्त्वप्रवेशतः ॥ २७ ॥

वह इदम् (यह है) इस प्रकार की इयत्ता से एका-एक अपरिच्छेद्य है । पूर्व-पूर्व के आत्मा से-उत्पन्न एवं ऊपर-ऊपर के महत्तत्वादि तत्त्वों से परे हैं । आत्मा से ध्येय है । इसलिये उस परब्रह्म को परमात्मा कहा जाता है । योग युक्त तथा सारे तत्त्वो में प्रविष्ट होने के कारण वह 'ॐ' है ॥ २६-२७ ॥

षाड्गुण्यगुणयोगेन भगवान् परिकीर्तितः ।
समस्तभूतवासित्वाद् वासुदेवः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥

षाड्गुण्य से युक्त होने के कारण उन्हें भगवान् कहा जाता है, सारे प्राणियों में वास करने के कारण वह वासुदेव हैं ॥ २८ ॥

आप्नोति जगदित्येवमात्मत्वेन निरूपितः ।
रूपात् प्रकारतोऽव्यक्तेरव्यक्तः परिगीयते ॥ २९ ॥

वह सारे जगत् को व्याप्त करता है इसलिये आत्मा कहा गया है । रूप से तथा प्रकार से अव्यक्त होने के कारण वह अव्यक्त रूप से गान किया जाता है ॥ २९ ॥

सर्वप्रकृतिशक्तित्वात् सर्वप्रकृतिरीरितः ।
प्रधीयमानकार्यत्वात् प्रधानः परिगीयते ॥ ३० ॥

सारी प्रकृतियों की शक्ति उसमें हैं इसलिये वह सर्वप्रकृति है । वह अपने कार्यों से ही ध्यान करने योग्य है इसलिये उसे प्रधान कहते हैं ॥ ३० ॥

नेतृत्वादनितृत्वाच्च नित्य इत्यपि पठ्यते ।
अननाददनाच्चापि ह्यनन्तः परिपठ्यते ॥ ३१ ॥

वह सबका नेता तो है पर उसका नेता कोई नहीं है । इसलिये 'नित्य' रूप में भी पढ़ा जाता है । वह सबको प्राण देता है तथा सबका भक्षण करता है, इसलिये 'अनन्त' पढ़ा जाता है ॥ ३१ ॥

परितो मित्यभावाच्च प्रोक्तोऽपरिमितो बुधैः ।
अक्षयादक्षरः प्रोक्तो ह्यरिष्टो रिष्टवर्जनात् ॥ ३२ ॥

किसी भी दिशा से उसकी मिति (= माप) नहीं है, इसलिये बुद्धिमान् लोग उसे अपरिमित कहते हैं । वह अक्षय होने से अक्षर है । कल्याण तथा मङ्गलामङ्गल से वर्जित होने के कारण उसे अरिष्ट कहा जाता है ॥ ३२ ॥

अविकार्यस्वभावत्वादव्याप्यत्वात् तथाच्युतः ।
रागादिदोषनिर्मुक्तेः समधीगोचरत्वतः ॥ ३३ ॥

सर्वोपादानतासाम्यात् समः सम्परिकीर्तितः ।
ध्यानवर्त्मबहिर्भावात् स्वभावाननुयोगतः ।। ३४ ।।
इयत्तयाप्यचिन्त्यत्वादचिन्त्यः परिकीर्तितः ।
जगन्ति प्रभवन्त्यस्मात् सर्वत्र प्रभवत्यपि ।। ३५ ।।

स्वभाव से अविकार्य होने के कारण तथा किसी एकदेश में न होकर सर्वत्र व्यापक होने से वह अच्युत है । रागादि दोष से सर्वथा मुक्त होने के कारण, सब में समत्व बुद्धि रखने के कारण तथा सभी वस्तुओं में एक समान उपादान कारण होने के कारण वह सम कहा जाता है । ध्यान मार्ग से बाहर होने के कारण और स्वभाव के प्रश्न का विषय न होने के कारण एवं इयत्ता (इतना है) से अचिन्त्य होने के कारण वह अचिन्त्य कहा गया है । इसी से अनेक जगत् उत्पन्न होते हैं तथा वह सबका प्रभु है ।। ३३-३५ ।।

प्रकृष्टश्च भवो यस्मात् प्रभवः परिकीर्तितः ।
सर्वप्रलयभूमित्वादव्ययो व्ययनाशनात् ।। ३६ ।।

यह प्रकृष्ट संसार है इसलिये वह प्रभव कहा जाता है । सभी के प्रलय का विषय होने के कारण तथा विकाररहित होने के कारण वह अव्यय भी कहा जाता है ।। ३६ ।।

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मेति श्रुतिगह्वरे ।
कपिलः श्रेष्ठविद्यत्वात् तेजिष्ठत्वाच्च कापिलः ।। ३७ ।।

सब से बृहत् होने के कारण तथा बृंहण करने के कारण वह ब्रह्म है ऐसा निर्वचन श्रुति में किया गया है । श्रेष्ठ ज्ञानी होने के कारण वह कपिल तथा अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण उसे कापिल कहते हैं ।। ३७ ।।

हितश्च रमणीयश्च गर्भो हृदयनामवान् ।
हिरण्यगर्भ इत्येवं योगिभिः समुदाहृतः ।। ३८ ।।

'हि' से हितकर एवं 'र' से रमणीय तथा 'गर्भ' से हृदय नाम वाला होने के कारण योगी लोग उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं ।। ३८ ।।

अपनाशतपोयोगादपान्तरतपाः श्रुतः ।
शिवङ्करतया प्रोक्तः शिवः पाशुपते स्थितैः ।। ३९ ।।

'अप' का अर्थ विनाशरहित तथा उसमें तपस्या करने के कारण उसे 'अपान्तरतपाः' भी कहा जाता है । सबका शिव करने से वह शिव है ऐसा पाशुपत की दीक्षा लेने वाले कहते हैं ।। ३९ ।।

अदूरविप्रकर्षस्थैर्वस्तुतोऽनवगाहिभिः ।
इत्येवमादिभिः शब्दैस्तत्त्वं तदुपलक्ष्यते ।। ४० ।।

दूर तथा निकट रहने वाली वस्तुओं से न जानने योग्य होने पर भी वह 'इत्येवम्' आदि शब्दों से उपलक्षित होता है । इसलिये उसे तत्त्व भी कहा जाता है ।। ४० ।।

प्रतिबन्धविगमे ब्रह्मानुभावसम्भवः

अनेकजन्मसंसिद्धपुण्यपापपरिक्षये ।
निकृत्ते वासनाजाले सम्यग्विज्ञानशस्त्रतः ॥ ४१ ॥

अनेक जन्म जन्मान्तरों के किये गए पाप और पुण्य का जब परिक्षय हो जाता है और सम्यग्विज्ञान रूप शस्त्र से जब वासना का जाल काट दिया जाता है तब वह ब्रह्म अनुभव में आता है ॥ ४१ ॥

त्रैगुण्योपरमे तत्तु स्वेनानुभवितुं क्षमम् ।
साक्षादिदमिति व्यक्तं वाचा वक्तुं न शक्नुमः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार जब त्रिगुण की उपरति (विनाश) हो जाती है तब वह ब्रह्म स्वयं अनुभव गम्य हो जाता है । अतः अनुभव गम्य होने के कारण, उसे 'साक्षात्' (इस प्रकार का वह है) इस प्रकार की वाणी से प्रगट रूप में बताया नहीं जा सकता ॥ ४२ ॥

ब्रह्मणः प्रयत्नलभ्यत्वविरहः

संवत्सरसहस्राणि पक्षिराडिव सम्पतन् ।
नैवान्तं कारणस्यैति यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥ ४३ ॥

जगत् के कारण रूप उस परब्रह्म का अन्त वेगवान् वायु भी नहीं पा सकता, चाहे वह गरुड़ के वेग के समान हजारों वर्ष तक उड़ता रहे ॥ ४३ ॥

उपर्युपरि गच्छन्तो विशिक्षन्तस्तथा तथा ।
ज्ञानोद्यमदशायास्ते न व्यक्तिमधिकां गताः ॥ ४४ ॥

ऊपर-ऊपर जाते हुये उस-उस प्रकार का अभ्यास करते हुये भी ऐसे लोग ज्ञानोद्यम दशा से अधिक उसकी अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त कर सके ॥ ४४ ॥

तत्र सर्वाणि तत्त्वानि निषीदन्ति परात्मनि ।
भावाभावावुभौ प्रोतौ ज्ञानसूत्रमयात्मना ॥ ४५ ॥

उस परमात्मा में सभी तत्त्व अवस्थित हैं । उनके ज्ञान रूप सूत्रात्मा से भाव एवं अभाव दोनों ही अनुस्यूत हैं ॥ ४५ ॥

ब्रह्मणः त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम्

सर्वप्रत्यक्षदर्शित्वात् सर्वात्मा तत् परं पदम् ।
अतीतानागते काले मध्यतः प्रतिसंहृते ॥ ४६ ॥

अतीत काल में, भविष्य काल में, मध्य (वर्तमान) काल में एवं संहार काल में वह सबको प्रत्यक्ष रूप से देखता है, इसलिए उसे सर्वात्मा कहा जाता है क्योंकि वही परं पद है ॥ ४६ ॥

वर्तमानं न तद् ब्रह्म नातीतं नैव भावि तत् ।
अग्रतः पृष्ठतो नैव नोर्ध्वतः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ४७ ॥

उस ब्रह्म में वर्त्तमान, अतीत तथा भविष्य नहीं है । न कोई उसके आगे है, न पीछे, न ऊपर, न दोनों पार्श्व में है ॥ ४७ ॥

न कल्माषं न विकलं न कृष्णं न च पिङ्गलम् ।
न सारङ्गं पिशङ्गं न कपिलं नारुणं न च ॥ ४८ ॥

न वह कर्बुर (चितकबरा) है, न विकल है, न कृष्ण है, न पिङ्गल (पीला) है, न सारङ्ग (काला) है, न पिशङ्ग है, न कपिल और न तो अरुण (लाल) है ॥ ४८ ॥

न बभ्रु नकुलं नैव न श्यामं न च रोहितम् ।
न दीर्घं नैव च ह्रस्वं न स्थूलं नैव चाप्यणु ॥ ४९ ॥

न भूरा है, न नकुल है, न श्याम है और न तो रोहित है । न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न स्थूल है और न तो अणु है ॥ ४९ ॥

न वृत्तं नाप्यपावृत्तं नाश्रितं तदनाश्रितम् ।
नैव भावो न चाभावस्तद्भावार्चितये न च ॥ ५० ॥

वह वृत्त (गोलाकार) नहीं है, अपावृत्त भी नहीं है । वह किसी के आश्रित नहीं है, न उसका कोई अनाश्रित है । उसका कोई भाव (भवन क्रिया) नहीं है, न तो अभाव ही है और उसका न कोई अर्चनीय है ॥ ५० ॥

न शीतं नापि चैवोष्णं नानुष्णाशीतमप्युत ।
न दुःखं न सुखं नैव निर्दुःखं सुखमव्रणम् ॥ ५१ ॥

वह शीत नहीं है, ऊष्ण भी नहीं है और न अनुष्ण है, न अशीत है, न दुःख है और न सुख है, न निर्दुःख है, न व्रण है और न सुख है ॥ ५१ ॥

न मूलं नापि तन्मध्यं नैवान्तं कस्याचिन्मुने ।
न शेते तन्न चैवास्ते न तिष्ठति न गच्छति ॥ ५२ ॥

हे मुने ! उस ब्रह्म का न मूल है, न मध्य है, न अन्त है । न जड़ है, न वह सोता है, न बैठता है, न खड़ा होता है और न चलता है ॥ ५२ ॥

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ ५३ ॥

जो सभी प्रकार के द्वन्द्व से रहित है । सभी प्रकार की उपाधियों (चिन्ताओं) से विनिर्मुक्त है वही षाड्गुण्य परब्रह्म सभी कारणों का कारण है ॥ ५३ ॥

नारदः—

किं तत् षाड्गुण्यमित्युक्तं देवदेव जगत्पते ।
कथं च गुणहीनं तत् षाड्गुण्यं परिगीयते ॥ ५४ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे देवदेव ! हे जगत्पते ! वह षाड्गुण्य क्या कहा जाता है । जब वह गुण तीन है तो षाड्गुण्य कैसे? ॥ ५४ ॥

ब्रह्मण: षाड्गुण्यप्रपञ्चकथनम्

अहिर्बुध्न्य:—

अप्राकृतगुणस्पर्शं निर्गुणं परिगीयते ।
शृणु नारद षाड्गुण्यं कथ्यमानं मयानघ ॥ ५५ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिसे प्रकृति जन्य गुणों का स्पर्श न हो, वह निर्गुण परब्रह्म है । अब हे निष्पाप श्रीनारद ! मेरे द्वारा कहा गया जिस प्रकार का षाड्गुण्य उसमें है उसे सुनिए ॥ ५५ ॥

ज्ञानस्वरूपनिरूपणम्

अजडं स्वात्मसम्बोधि नित्यं सर्वावगाहनम् ।
ज्ञानं नाम गुणं प्राहु: प्रथमं गुणचिन्तका: ॥ ५६ ॥

जो चेतन है, आत्मा का ज्ञान कराने वाला है, नित्य है और सर्वत्र व्याप्त है, उसी को गुण चिन्तक विद्वान् ज्ञान नामक प्रथम गुण कहते हैं ॥ ५६ ॥

ब्रह्मणा ज्ञानस्वरूपत्वं ज्ञानगुणकत्वं च

स्वरूपं ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते ।

शक्तिस्वरूपनिरूपणम्

जगत्प्रकृतिभावो य: सा शक्ति: परिकीर्तिता ॥ ५७ ॥

ऊपर कहे गए ब्रह्म का स्वरूप ही ज्ञान गुण वाला है । जगत् का प्रकृतिभाव (प्रकृति के रूप में दिखाई पड़ना) ही उसकी शक्ति कही जाती है । यह उसका दूसरा गुण है ॥ ५७ ॥

ऐश्वर्यस्वरूपनिरूपणम्

कर्तृत्वं नाम यत् तस्य स्वातन्त्र्यपरिबृंहितम् ।
ऐश्वर्यं नाम तत् प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थचिन्तकै: ॥ ५८ ॥

स्वातन्त्र्य से परिबृंहित होने वाला कर्तृत्व नाम का उसका तीसरा गुण है जिसे गुणतत्वार्थचिन्तक ऐश्वर्य नाम से पुकारते हैं ॥ ५८ ॥

बलस्वरूपनिरूपणम्

श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत् ।
बलं नाम गुणस्तस्य कथितो गुणचिन्तकै: ॥ ५९ ॥

सारे जगत् का निर्माण करने पर भी उसे थकावट नहीं आती । अत: गुणचिन्तक लोग उसे बल नामक ब्रह्म का चौथा गुण कहते हैं ॥ ५९ ॥

वीर्यस्वरूपनिरूपणम्

तस्योपादानभावेऽपि विकारविरहो हि य: ।
वीर्यं नाम गुण: सोऽयमच्युतत्वापराह्वयम् ॥ ६० ॥

इस जगत् के उपादान कारण के होने पर भी उसमें विकार नहीं उत्पन्न होता वही उसका वीर्य नामक पाँचवाँ गुण है जो कभी उससे परिच्युत नहीं होता इसीलिए वह सबसे परे है ॥ ६० ॥

तेजःस्वरूपनिरूपणम्

सहकार्यनपेक्षा या तत् तेजः समुदाहृतम् ।

शक्त्यादिगुणपञ्चकस्य ज्ञानगुणप्रकारत्वम्

एते शक्त्यादयः पञ्च गुणा ज्ञानस्य कीर्तिताः ॥ ६१ ॥

उसे कभी किसी सहकारी की अपेक्षा नहीं होती, उसी को तेज कहते हैं । ये सभी शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य और तेज पाँचों तथा ज्ञान इस प्रकार कुल छः गुण हमने आपसे कहा ॥ ६१ ॥

ज्ञानमेव परं रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म स्वशक्तिपरिबृंहितम् ।
बहु स्यामिति सङ्कल्पं भजते तत् सुदर्शनम् ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां षाड्गुण्यब्रह्मविवेको नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १९२ ॥

* * *

उस परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान सर्वप्रधान गुण है । अपनी शक्ति से परिबृंहित इन छः गुणों से युक्त वही परब्रह्म कहा जाता है । उसी को सुदर्शन भी कहा जाता है जो 'बहु स्याम्' 'बहुत होऊँ' इस प्रकार के सङ्कल्प को धारण करता है ॥ ६२ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में षाड्गुण्यविवेक नामक द्वितीय अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २ ॥

* * *

अथ तृतीयोऽध्यायः

वैश्वरूप्यसंक्षेपः

नारदः—

षाड्गुण्यं तत् कथं ब्रह्म स्वशक्तिपरिबृंहितम् ।
तस्य शक्तिश्च का नाम यया बृंहितमुच्यते ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे सदाशिव ! वह ब्रह्म किस प्रकार अपनी शक्ति से उपबृंहित होकर षड्गुण सम्पन्न है । उसकी शक्ति का क्या नाम है जिससे वह षड्गुण से उपबृंहित होता है ॥ १ ॥

सर्ववस्तूनां शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम्

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिताः ।
स्वरूपे नैव दृश्यन्ते दृश्यन्ते कार्यतस्तु ताः ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—सभी भावो (वस्तुओं) की शक्तियाँ उससे पृथक् स्थित न होकर (उसी में रह कर) अचिन्त्य हैं, वह शक्ति स्वरूपतः दिखाई नहीं पड़ती, कार्य से दिखाई पड़ती हैं ॥ २ ॥

सूक्ष्मावस्था हि सा तेषां सर्वभावानुगामिनी ।
इदंतया विधातुं सा न निषेद्धुं च शक्यते ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण पदार्थों में रहने वाली वह शक्ति उन-उन वस्तुओं की सूक्ष्मावस्था ही है । उसे इदंतया (इस प्रकार) बताया नहीं जा सकता और न इदंतया निषिद्ध ही किया जा सकता है ॥ ३ ॥

शक्तीनामपर्यनुयोज्यत्वम्

सर्वैरननुयोज्या हि शक्तयो भावगोचराः ।

परब्रह्मणोऽपि शक्तिरपृथक्सिद्धविशेषणम्

एवं भगवतस्तस्य परस्य ब्रह्मणो मुने ॥ ४ ॥
सर्वभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ।
भावाभावानुगा तस्य सर्वकार्यकरी विभोः ॥ ५ ॥

पदार्थों में दिखाई पड़ने वाली शक्तियाँ सब लोगों के द्वारा अनुयोजित नहीं की जा सकती । इस प्रकार, हे मुने ! उस परब्रह्म की शक्ति जगत् के समस्त पदार्थों में व्याप्त है

जिस प्रकार चन्द्रमा में चन्द्रिका । वह शक्ति उस परब्रह्म का सारा कार्य सम्पादन करती है और उसके प्रगट या तिरोहितावस्था में सर्वदा उसके साथ रहती है ॥ ४-५ ॥

स्वातन्त्र्यरूपा सा विष्णोः प्रस्फुरत्ता जगन्मयी ।
उदितानुदिताकारा निमेषोन्मेषरूपिणी ॥ ६ ॥

विष्णु की वह शक्ति सर्वदा स्वतन्त्र रूप से रहती है जब वह विष्णु में प्रस्फुरित होती है तो जगत् के रूप में दिखाई पड़ती है । उसका आकार कभी उदीयमान् और कभी अनुदीयमान् रहता है । वह निमेष (सङ्कोच) और उन्मेष (विकास) रूपा है ॥ ६ ॥

भगवच्छक्तेरानन्दादिशब्दाभिधेयत्वम्

निरपेक्षतयानन्दा स्वतन्त्रा नित्यपूरणात् ।
स्वात्मभित्तिसमुन्मीलत्परावरजगत्स्थितिः ॥ ७ ॥

वह आनन्द स्वरूपा है किन्तु उसका आनन्द किसी की अपेक्षा से रहित है सबको नित्य पूर्ण करती है । स्वयं परिपूर्ण हैं इसलिए स्वतन्त्र हैं । वह आत्मभित्ति पर प्रकाशित होती है तथा जगत् के भीतर-बाहर तथा पर और अवर में स्थित रहती है ॥ ७ ॥

नित्या कालापरिच्छेदात् पूर्णाकारावियोगतः ।
व्यापिनी देशविभ्रंशाद्रिक्ता पूर्णा च सर्वदा ॥ ८ ॥

वह काल से अपरिच्छेद्य है इसलिए **नित्या** कही जाती है । किसी से उसका वियोग नहीं होता इसलिए वह **पूर्णाकारा** है । किसी देश से उसकी सत्ता रिक्त नहीं है इसलिए वह **व्यापिनी** एवं सर्वदा **पूर्णा** है ॥ ८ ॥

जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते ।
श्रयन्ती वैष्णवं भावं सा श्रीरिति निगद्यते ॥ ९ ॥

हे मुने ! वह शक्ति जगत् स्वरूप से लक्षित होती है इसलिए उसे **लक्ष्मी** कहते हैं । वह विष्णु भाव का आश्रय प्राप्त करती है इसलिए उसे **श्री** कहा जाता है ॥ ९ ॥

अव्यक्तकालपुंभावात् सा पद्मा पद्ममालिनी ।
कामदानाच्च कमला पर्याप्तसुखयोगतः ॥ १० ॥

काल तथा दुर्भाव से वह अव्यक्त पद्ममाला धारण करने वाली है इसलिए **पद्मा** है । पर्याप्त सुख से युक्त होने के कारण तथा काम दान करने के कारण वह **कमला** कही जाती है ॥ १० ॥

विष्णोः सामर्थ्यरूपत्वाद् विष्णुशक्तिः प्रगीयते ।
पालयन्ती हरेर्भावं विष्णुपत्नी प्रकीर्तिता ॥ ११ ॥

विष्णु के सामर्थ्य का स्वरूप होने से उसे **विष्णुशक्ति** कहते हैं । अतः विष्णु की भावना (आज्ञा) का पालन करती है इसलिए वह विष्णुपत्नी है ॥ ११ ॥

जगदाकारसङ्कोचात् स्मृता कुण्डलिनी बुधैः ।
अनाहता बुधैः प्रोक्ता मनोवागाद्यनाहतेः ॥ १२ ॥

संसार के आकार को सङ्कुचित करने के कारण उसे वुद्धिमानों ने कुण्डलिनी कहा है। मन एवं वाणी से अनाहत होने के कारण वुद्धिमान् उसे 'अनाहता' कहते हैं ॥ १२ ॥

परमानन्दसम्बोधा मन्त्रसूक्ष्मतयापि च ।
शुद्धसत्त्वाश्रयाद् गौरी ह्यदितिश्चाविशेषणात् ॥ १३ ॥

मन्त्र की सूक्ष्मता होने पर भी वह परमानन्द तथा ज्ञान स्वरूपा है, शुद्धसत्त्व का आश्रय लेने के कारण वह गौरी कही जाती है। किसी से वह विशेषित नहीं है इसलिए अदिति है ॥ १३ ॥

सर्वपुण्यकरीभावान्महीयस्यपि सा मही ।
तथानाहतशीर्ष्णी चानाहतोऽभ्युदयो यतः ॥ १४ ॥

सर्वपुण्यकरी भाव से महती होने के कारण वह महीस्वरूपा है। अतः उसकी कृपा से मनुष्य का अभ्युदय अनाहत (निर्विघ्न) चलता है इसलिए वह अनाहतशीर्ष्णी कही जाती है ॥ १४ ॥

प्राणयन्ती स्वसंवित्त्या जगत्प्राणा इतीर्यते ।
पराहतासुरूपत्वान्मन्त्रमाता प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥

वह अपनी संवित्ति से सबको अनुप्राणित करती है इसलिए जगत्प्राणा कही जाती है, अपने सुरूपत्व से पराहता है इसलिए मन्त्रमातृका कही जाती है ॥ १५ ॥

त्रायन्ती गायतः सर्वान् गायत्रीत्यभिधीयते ।
प्रकुर्वती जगत् स्वेन प्रकृतिः परिगीयते ॥ १६ ॥

अपना गान करने वाले सभी का वह परित्राण करती है इसलिए गायत्री है, वह स्वयं अपने आपसे बिना किसी उपादान के जगत् का निर्माण करती है इसलिए प्रकृति कही गई है ॥ १६ ॥

मिमीते च तता चेति सा माता परिकीर्तिता ।
सर्वेषामविपर्यासाच्छिवङ्करतया शिवा ॥ १७ ॥

वह सारे जगत् का पालन करने के कारण माता कही जाती है। सबके अनुकूल रह कर उनका कल्याण करती रहने के कारण वह शिवा कही गयी है ॥ १७ ॥

तरुणी काम्यमानत्वात् तारा संसारतारणात् ।
अविपर्यासरूपत्वात् सत्या सत्यद्वयान्वयात् ॥ १८ ॥

सभी से काम्यमान (अभियाचित एवं प्रार्थित) होने के कारण तरुणी है। संसार से पार करने के कारण 'तारा' है। कभी उसमें विपर्यास (फेर बदल) नहीं होता इसलिए वह सत्या है। किसी दूसरे से कभी वह युक्त नहीं होती, इसलिए सती है ॥ १८ ॥

शान्ताशेषविकारत्वाच्छान्ता सा चिन्त्यते बुधैः ।
मोहानपनयन्ती सा मोहिनी मोहनादपि ॥ १९ ॥

सम्पूर्ण विकारों से शान्त रहने के कारण बुद्धिमान् लोग उसे शान्ता कहते हैं। मोह को दूर करती है अथवा सबको मोहित करने के कारण वह 'मोहिनी' कही जाती है ॥१९॥

इडा हविरधिष्ठानादिष्यमाणतयापि च ।
रमयन्तीति सा रन्ती रतिश्च परिकीर्तिता ॥ २० ॥

हवि का अधिष्ठान होने के कारण तथा सभी से (अभिलषित) होने के कारण वह ईडा है। सबको रमण कराती है इसलिए वह रन्ती या रति कही जाती है ॥ २० ॥

विश्रुतिर्विश्रुता सद्भिः स्मारयन्ती सरस्वती ।
अनवच्छिन्नभासत्वान्महाभासाभिधीयते ॥ २१ ॥

सज्जनों से विश्रुत होने के कारण वह विश्रुति है। स्मरण कराने के कारण सरस्वती है। अनवच्छिन्न (बे रोक-टोक) भासित होने के कारण वह महाभासा कही जाती है ॥२१॥

नामधेयैरियं तैस्तैर्नानाशास्त्रसमाश्रयैः ।
अन्वर्थैर्दर्शिताशेषविभवा वैष्णवी परा ॥ २२ ॥

इस प्रकार उन-उन शास्त्रों के द्वारा उन-उन नामों से पुकारी जाने वाली तथा अपने नाम के अर्थ के अनुसार अशेष विभव प्रदर्शित करने वाली वह परा वैष्णवी कही जाती है ॥ २२ ॥

उदधेरिव च स्थैर्यं महत्तेव विहायसः ।
प्रभेव दिवसेशस्य ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ॥ २३ ॥
विष्णोः सर्वाङ्गसम्पूर्णा भावाभावानुगामिनी ।
शक्तिर्नारायणी दिव्या सर्वसिद्धान्तसंमता ॥ २४ ॥

उसमें समुद्र के समान स्थिरता है। आकाश के समान महत्ता है। वह सूर्य की प्रभा के समान तथा चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका के समान विष्णु के भाव (अवतार प्राकट्य) तथा अभाव (तिरोहित अन्तर्धान) अवस्था में अनुगामिनी रहती है। सर्वाङ्ग सम्पूर्णा है। शक्ति है, नारायणी है और दिव्या है अतः सभी शास्त्रकारों ने उसे इस प्रकार का माना है ॥ २३-२४ ॥

शक्तिमतः शक्तिर्भिन्ना

देवाच्छक्तिमतो भिन्ना ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
एष चैषा च शास्त्रेषु धर्मधर्मिस्वभावतः ॥ २५ ॥

सर्व शक्तिमान् परमेष्ठी ब्रह्मदेव से वह शक्ति भिन्न है क्योंकि यह परब्रह्म और यह शक्ति, धर्म और धर्मी स्वभाव से शास्त्रों में कहे गए हैं अर्थात् ब्रह्मधर्मी है तो वह शक्ति उसका धर्म है ॥ २५ ॥

भवद्भावस्वरूपेण तत्त्वमेकमिवोदितौ ।
स्वातन्त्र्येण स्वरूपेण विष्णुपत्नीयमद्भुता ॥ २६ ॥
यतो जगद्भविष्यन्ती क्वचिदुन्मेषमृच्छति ।

एक भाव (पदार्थ) है तो दूसरा उसमें रहने वाली शक्ति है इस प्रकार दोनों मिलकर एक तत्त्व के प्रतिपादक हैं। यह महाशक्ति विष्णुपत्नी होकर भी अपने स्वतन्त्र रूप से अद्भुत है। क्योंकि यही जगत् को उत्पन्न करने वाली है तथा कभी-कभी प्रगट रूप में दिखाई भी पड़ती है॥ २६-२७॥

शक्तेः द्वैविध्यम्; भूतिशक्तेः त्रैविध्यम्

सहस्रायुतकोट्योघकोटिकोट्यर्बुदांशकः ॥ २७॥
लक्ष्मीमयः समुन्मेषः स द्विधा व्यवतिष्ठते।
क्रियाभूतिविभेदेन भूतिः सा च त्रिधा मता॥ २८॥

यह लक्ष्मीमय समुन्मेष (प्रकाश) अपने हजारवें दसहजारवें, करोड़हवें, दस करोड़वें, करोड़ों के करोड़हवें तथा अर्बुदवें के अंश से जगत में प्रगट होता है। क्रिया और भूति के भेद से वह प्रकाश दो रूपों में प्रकाशित होता है। जिसमें भूति के तीन भेद हैं॥ २७-२८॥

अव्यक्तकालपुंभावात् तेषां रूपं प्रवक्ष्यते।
क्रियाख्यो योऽयमुन्मेषः स भूतिपरिवर्तकः॥ २९॥

प्रथम अव्यक्त भूति, दूसरी कालभूति एवं तीसरी प्रभूति उनका रूप आगे चलकर कहेंगे। क्रियामय उन्मेष उस भूति को प्रेरित (द्र० ३.३२) करता है॥ २९॥

लक्ष्मीमयः प्राणरूपो विष्णोः सङ्कल्प उच्यते।
स्वातन्त्र्यमूल इच्छात्मा प्रेक्षारूपः क्रियाफलः॥ ३०॥

जिसे विष्णु का सङ्कल्प कहते हैं वह लक्ष्मीमय है एवं प्राणरूप है। वह स्वातन्त्र्यमूलक है, इच्छात्मा और प्रेक्षारूप है जिसका फल क्रिया है॥ ३०॥

उन्मेषो यः सुसङ्कल्पः सर्वत्राव्याहतः कृतौ।
अव्यक्तकालपुंरूपां चेतनाचेतनात्मिकाम्॥ ३१॥
भूतिं लक्ष्मीमयीं विष्णोः शक्तिं सम्भावयत्यसौ।
अव्यक्तं परिणामेन कालं कलनकर्मणा॥ ३२॥
पुरुषं भोजनोद्योगैः सर्गे संयोजयत्ययम्।
सामर्थ्यत्रितयादानाद् वियोजयति सञ्चरे॥ ३३॥

यह प्रकाश (उन्मेष) जिसे सुसङ्कल्प रूप में जाना जाता है और प्रकृति में सर्वत्र अव्याहत है वही अव्यक्त काल तथा पुंरूपवाली चेतना चेतनात्मिका विष्णु की लक्ष्मीमयी भूति को प्रेरित करता है (द्र० ३.२९)। वही परिणाम से अव्यक्त को, कलन कर्म से काल को तथा भोजनादिक के उद्योग से पुरुष को सृष्टि में संयुक्त करता है। जब सृष्टि होती है तब वह क्रिया रूप सुसङ्कल्प उक्त तीन प्रकार का सामर्थ्य तीनों भूतियों को प्रदान करता है और प्रलयावस्था आने पर उन तीनों प्रकार के सामर्थ्यों को उनसे वियुक्त कर देता है॥ ३१-३३॥

विषमे परिणामे यत् सामर्थ्यं त्रिगुणात्मनः ।
सृष्टौ दधाति तत् तस्मिन् विपर्यासं च संहृतौ ॥ ३४ ॥

वह सुसङ्कल्प सृष्टि के विषय परिणाम काल में त्रिगुणात्मा सामर्थ्य धारण करता है पुनः उस सामर्थ्य को प्रलय काल में उससे हटा लेता है ॥ ३४ ॥

अव्यक्तपुरुषोद्योगसंयोजनविधिक्रमम् ।
काले दधाति सर्गादौ विपर्यासं च संहृतौ ॥ ३५ ॥

वह सङ्कल्प अव्यक्त, पुरुष एवं उद्योग इन तीनों के परस्पर संयोजन के जिस विधिक्रम को सृष्टि के आदि काल में धारण करता है उसी को संहार काल में वियुक्त कर देता है ॥ ३५ ॥

पुंसश्च बुद्धिसामर्थ्यमसामर्थ्यं च भोजने ।
सङ्कल्पः कुरुते विष्णोः सर्गप्रतिविसर्गयोः ॥ ३६ ॥

विष्णु का वह सङ्कल्प सर्ग काल में पुरुष के भोग को वुद्धि का सामर्थ्य प्रदान करता है तथा प्रलय काल में उस सामर्थ्य को हटा लेता है ॥ ३६ ॥

त्रीनेतान् संहतान् सृष्टौ विहतान् प्रतिसञ्चरे ।
दधाति स्वेन रूपेण गुणो मणिगणानिव ॥ ३७ ॥

वह अपने स्वरूप से सृष्टि में इन तीनों को संयुक्त करता है । पुनः प्रतिसञ्चर (प्रलय) में उससे अलग-अलग कर देता है । जिस प्रकार सूत्र में पिरोया गया मणि समूह कभी एक में सङ्गत हो जाता है और कभी अलग-अलग विखर जाता है ॥ ३७ ॥

स्थितौ च कुरुते रक्षां तेषां कार्यसमीक्षणात् ।
सर्वत्राव्याहतत्वं यत् तत् सुदर्शनलक्षणम् ॥ ३८ ॥

सर्ग की स्थिति काल में वह उनके कार्य की आवश्यकता का ध्यान रखते हुये उसकी रक्षा करता है । इस प्रकार जिसका सर्वत्र अव्याहतत्व है वही सुदर्शन का लक्षण है ॥ ३८ ॥

क्रियाशक्तेः वैविध्येन सर्वभावानुयायित्वम्

सोऽयं सुदर्शनं नाम सङ्कल्पः स्पन्दनात्मकः ।
विभज्य बहुधा रूपं भावे भावेऽवतिष्ठते ॥ ३९ ॥

स्पन्दनात्मक (क्रिया उत्पन्न करने वाला) वही सङ्कल्प सुदर्शन नाम से अभिहित होता है जो बहुत प्रकार से अपने को विभिन्न रूपों में विभक्त कर भाव-भाव (प्रत्येक वस्तु) में स्थित रहता है ॥ ३९ ॥

वैविध्यप्रपञ्चनम्

व्याप्तिं सुदर्शनस्येमां प्रोच्यमानां मया शृणु ।
यज्ज्ञात्वा पुरुषो लोके कृतकृत्यत्वमश्नुते ॥ ४० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब सुदर्शन की इस व्याप्ति को जो मेरे द्वारा कही जा रही है उसे सुनो । जिसे जान कर पुरुष लोक में अपने को कृतकृत्य मान लेता है ॥ ४० ॥

षाड्गुण्यं यत् परं ब्रह्म या गतिर्योगिनां परा ।
नारायणः स विश्वात्मा भावाभावमिदं जगत् ॥ ४१ ॥
निष्कलेन स्वरूपेण यदा प्राप्य नियच्छति ।
सदा सत्ता हि या तस्य जगन्निर्माणशक्तिका ॥ ४२ ॥
सर्वभावात्मिका लक्ष्मीरहन्ता परमात्मनः ।
तद्धर्मधर्मिणी देवी भूत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ४३ ॥
निष्कलेन स्वरूपेण सापि तद्वन्नियच्छति ।

षड्गुण सम्पन्न जो परब्रह्म योगियों की परा गति है वही नारायण, वही विश्वात्मा है । जब भावाभावात्मक इस जगत् को प्राप्त कर वह अपने को निष्कल रूप से नियमित करते हैं तब उनकी जगन्निर्माणात्मिका (नित्यात्मिका) शक्ति जिसे सर्वभावात्मिका लक्ष्मी कहते हैं और जो परमात्मा की अहन्ता है, वह देवी भी उन्हीं के समान उनकी सहचरी बन कर अपने निष्कल स्वरूप से उसी प्रकार जगत् का नियन्त्रण करती हैं ॥ ४१-४४ ॥

तदीयैका कला भूतिर्जगद्भवनसंज्ञिता ॥ ४४ ॥
व्यापारो वास्तवस्तत्र जगन्नियमनात्मकः ।
निष्कला या क्रियाशक्तिर्लक्ष्म्याः सौदर्शनीकला ॥ ४५ ॥

उनकी एक कला भूति नाम वाली है जो जगत् को उत्पन्न करती है उसमें जगन्नियमनात्मक वस्तुजन्य व्यापार रहता है । इस प्रकार जो निष्कला लक्ष्मी की क्रिया शक्ति है वही सुदर्शन की कला है ॥ ४४-४५ ॥

भजेते तौ यदा रूपं मनोनयननन्दनम् ।
रक्षायै जगतामीशौ चक्रपद्मे तदा क्रिया ॥ ४६ ॥

जब दोनों ईश्वर और उनकी शक्ति जगत् की रक्षा के लिए मनोज्ञ रूप धारण करते हैं तब चक्र और पद्म उनकी क्रिया के रूप में अवतरित होते हैं ॥ ४६ ॥

रक्षोपकरणं देवौ तौ यावद्यावदिच्छतः ।
शङ्खशार्ङ्गादिरूपेण तावत् तावत् सुदर्शनम् ॥ ४७ ॥

वे दोनों देव जब-जब जगत् के रक्षोपकरण (रक्षार्थ सामग्री) की इच्छा करते हैं वहाँ-वहाँ (पाञ्चजन्य नामक) शङ्ख और शार्ङ्ग (धनुष नामक) रूप से सुदर्शन विद्यमान रहते हैं ॥ ४७ ॥

प्रकाशाह्लादपातैर्यद्विश्वस्योपचिकीर्षतः ।
सूर्येन्दुवह्निरूपेण तदा चक्रं सुदर्शनम् ॥ ४८ ॥

वे दोनों जब-जब प्रकाश एवं आह्लाद के द्वारा विश्व का उपकार करना चाहते हैं तब सूर्य, इन्दु तथा अग्नि स्वरूप से वहाँ सुदर्शन उपस्थित रहते है ॥ ४८ ॥

देवदैत्यादिकान् भावान् यदा तौ भजतः स्वयम् ।
तत्तदस्त्रमयी देवी तदा सौदर्शनी क्रिया ॥ ४९ ॥

जब वे दोनों देव तथा दैत्यादि भाव में अवतरित होते हैं तब वहीं सुदर्शन में रहने वाली क्रिया तत्तद् अस्त्रमयी बन जाती है ॥ ४९ ॥

यदा विश्वोपकाराय शास्त्रं नानाफलाश्रयम् ।
कुरुतः सा क्रिया तत्र शासनं हृदयस्थितम् ॥ ५० ॥

जब वे दोनो विश्व के उपकार के लिए नाना प्रकार के फल वाले शास्त्रों का प्रणयन करते हैं तब वही क्रिया हृदय में स्थित होकर शासन (शास्त्राज्ञा) बन जाती है ॥ ५० ॥

यदा तौ भवतः शास्त्रं विश्वोपकृतये विभू ।
तदा सा शास्त्रतात्पर्यं क्रिया सौदर्शनी कला ॥ ५१ ॥

जब वे दोनों विभु विश्व के उपकार के लिए शास्त्र के रूप में अवतरित होते हैं तब वही सौदर्शनी कला उन शास्त्रों का तात्पर्य बन जाती है ॥ ५१ ॥

शास्त्राधिकारिणो नाम यदा तौ पितरौ ध्रुवौ ।
अधिकारस्तदा तेषां क्रियाशक्तिः सुदर्शनम् ॥ ५२ ॥

जब वे दोनों किसी शास्त्राधिकारी के निश्चित रूप से पिता बन कर आते हैं तब वह सुदर्शन ही क्रिया शक्ति के रूप में उनका अधिकार बन कर अवतरित होते हैं ॥ ५२ ॥

यदा शास्त्रार्थभूतौ तौ फलसाधनसंश्रयात् ।
फलप्रसवसामर्थ्यं क्रिया तत्र सुदर्शनम् ॥ ५३ ॥

जब फलसाधन (निष्पत्ति) का आश्रय लेकर वे शास्त्र का अर्थ बन कर अवतरित होते हैं तब वही सुदर्शन फल प्रसव का सामर्थ्य बन कर क्रिया रूप में अवतरित होते हैं ॥ ५३ ॥

पुरुषार्थास्तु चत्वारो यदा तौ भवतः स्वयम् ।
आत्मतर्पणसामर्थ्यं तदा चक्रं सुदर्शनम् ॥ ५४ ॥

जब वे स्वयं चारों पुरुषार्थ बन कर अवतरित होते हैं तब वह सुदर्शन पुरुषार्थ करने वाले की प्रसन्नता का सामर्थ्य लेकर अवतरित होते हैं ॥ ५४ ॥

यदा मन्त्रमयीं रक्षां भजतो जगतां हिते ।
मन्त्रयन्त्रमयी देवी क्रियाशक्तिस्तदा त्वियम् ॥ ५५ ॥

जब वे दोनों जगत् के हित के लिए मन्त्रमयी रक्षा का शरीर धारण करते हैं तब यह क्रियाशक्ति, मन्त्र एवं यन्त्रमयी देवी के रूप में अवतरित होती हैं ॥ ५५ ॥

वैश्वरूप्यस्य संक्षेप: क्रियाशक्ते: प्रदर्शित: ।
सुदर्शनात्मिकायास्ते किं भूय: श्रोतुमिच्छसि ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां क्रियाशक्तेवैश्वरूप्यप्रदर्शनं
नाम तृतीयोऽध्याय: ॥ ३ ॥

॥ आदित: श्लोका: १९२ ॥

* * *

मैंने इस प्रकार उन वैश्वरूप (विश्वात्मा) की सुदर्शनात्मिका क्रियाशक्ति संक्षेप में प्रदर्शित की। अब आप पुन: क्या सुनना चाहते हो? ॥ ५६ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में क्रियाशक्ति के वैश्वरूप
प्रदर्शन नामक तृतीय अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर
मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रतिसञ्चरवर्णनम्

नारदः—

भगवन् देवदेवेश सर्वज्ञ वृषकेतन ।
किं तत् कारणमित्युक्तं सृष्टये यत् प्रवर्तते ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे सर्वज्ञ! हे वृषकेतन! सृष्टि के लिए जो प्रवृत्त होता है वह कौन सा कारण कहा गया है? ॥ १ ॥

सुदर्शनेन यद् व्याप्तं रूपतः कार्यतोऽर्थतः ।
विस्तरेण ममाचक्ष्व जगतः कारणं परम् ॥ २ ॥

जो सुदर्शन के रूप से कार्य से तथा अर्थ से अधिक हैं, जगत् के उस पर कारण को मुझे विस्तार से समझाइये ॥ २ ॥

प्राकृतप्रलयवर्णनम्

अहिर्बुध्न्यः—

प्रोच्यमानं मया तत्त्वं कारणस्यावधारय ।
तत्र तावन्निबोधेमं प्राकृतं प्रतिसञ्चरम् ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! मेरे द्वारा कहे गए उस कारण के तत्त्व को आपने सुना। उसमें भी पहले आप इस प्राकृत प्रलय को मुझसे सुनिए ॥ ३ ॥

येन कालेन सा विद्या प्रकृतिर्मूलसंज्ञिता ।
सस्यादिसृष्टये धेनुरभवन्मेघरूपिणी ॥ ४ ॥
कालेन तावता सा तु चिकीर्ष्ये प्रतिसञ्चरे ।
अधेनुर्नीरसा शुष्का भवत्यव्यक्तसंज्ञिता ॥ ५ ॥

जिस काल के प्रभाव से मूल संज्ञक विद्या रूपा प्रकृति सस्यादि (धन धान्य आदि) की सृष्टि के लिए मेघ रूप धेनु बनी। किन्तु उसी काल ने जब सृष्टि के संहार की चिर्कीर्षा की तब वही अव्यक्त संज्ञा वाली मूलप्रकृति नीरस और शुष्क होकर अपने धेनु रूप का त्याग कर दिया ॥ ४-५ ॥

नारदः—

कालेन कियता सर्गः सा धेनुः कामरूपिणी ।
अधेनुः सा भवेद् देवी यावता प्रतिसञ्चरे ॥ ६ ॥

श्रीनारद ने कहा—कितने काल तक सर्ग में वह विद्या कामरूपिणी धेनु के रूप में रहती हैं । फिर संहार काल में जितने दिन तक वह अधेनु के रूप में रहती है उसे हमें बताइये ॥ ६ ॥

प्रतिसञ्चरकालपरिमाणम्

अहिर्बुध्न्यः—

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।
तास्तु त्रिंशत् क्षणस्ते तु मुहूर्तो द्वादश स्मृतः ॥ ७ ॥

प्रलय के काल का परिमाण

अहिर्बुध्न्य ने कहा—अष्टादश निमेष की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला तथा तीस कला का एक क्षण एवं बारह क्षण का एक मुहूर्त्त कहा जाता है ॥ ७ ॥

ते तु पञ्चदशाहः स्यात् तावती रात्रिरिष्यते ।
ते पञ्चदश पक्षः स्यात् पक्षौ द्वौ मास इष्यते ॥ ८ ॥

पन्द्रह मुहूर्त्त का एक दिन तथा उतने ही मुहूर्त्त की एक रात्रि कही गई है । पन्द्रह रात दिन का एक पक्ष और दो पक्ष का एक मास कहा गया है ॥ ८ ॥

संवत्सरो मानुषस्तु तैर्द्वादशभिरिष्यते ।
काम्यः षोडशभिस्तैस्तु काम्याब्दानां तथा मुने ॥ ९ ॥

बारह मास का एक मानव संवत्सर तथा षोडश मानव संवत्सर का एक काम्य तथा इस प्रकार के काम्य सम्वत्सरों का .... (इसके बाद का पाठ-अप्राप्य) ॥ ९ ॥

विद्या धेनुरधेनुश्च भवेत् कालेन तावता ।
अधेन्वां तु ततस्तस्यां चिकीर्ष्ये प्रतिसञ्चरे ॥ १० ॥

उतने-उतने काल तक वह मूला विद्या धेनु एवं अधेनु के रूप में रहती है । किन्तु जब काल सर्ग का संहार करना चाहता है तो वही विद्या अधेनु के रूप में विद्यमान हो जाती है ॥ १० ॥

सर्वस्य पृथिव्यां लयः

नीरसं शुष्कमेवासीज्जगदेतच्चराचरम् ।
महावातेन संशुष्कं संदग्धं च महाग्निना ॥ ११ ॥

जब यह सारा चराचर जगत् शुष्क और नीरस हो गया, तब उस जगत् को महावात ने शुष्क किया तथा महाग्नि ने उसे जलाया ॥ ११ ॥

आ शैलादा तृणाच्चैव यदा भूमौ समुन्नतम् ।
मानवेषु लयं यान्ति तदा मानवमानवाः ॥ १२ ॥

जब पृथ्वी पर रहने वाले पर्वत से लेकर तृणपर्यन्त सभी शुष्क होकर दग्ध हो गए, तब मनु के पुत्र प्रत्येक मानव मनु में लय को प्राप्त हो गए ॥ १२ ॥

मनुष्वेव लयं यान्ति मानवास्ते चतुःशतम् ।
एवं चेतनवर्गे तु मनुष्वेव लयं गते ॥ १३ ॥
मिथुनान्येव चत्वारि मनूनां केवलानि तु ।
कूर्मपृष्ठसमानायां भुवि तिष्ठन्ति वै मुने ॥ १४ ॥

वे मानव चार सौ वर्षों तक मनु में लीन रहे । इसी प्रकार समस्त चेतन वर्गों के मनु में लीन हो जाने पर, हे मुने ! केवल चार मनुष्यों के मिथुन (सभी पुरुष के जोड़े) कूर्मपृष्ठ के समान भूमि पर स्थित रहे ॥ १३-१४ ॥

पृथिव्या अप्सु लयः

नारायणस्य सङ्कल्पादव्याहतसुदर्शनात् ।
भूमेर्गन्धात्मकं सारं ग्रसन्त्यापस्तदा मुने ॥ १५ ॥

फिर तो नारायण के अव्याहत सुदर्शन रूप सङ्कल्प से, हे मुने ! भूमि के गन्धात्मक सार को जल ने ग्रस लिया ॥ १५ ॥

आत्तगन्धा यदा भूमिरम्भसा कारणात्मना ।
अतिभूय तदा पृथ्वीं मनवोऽप्सु व्यवस्थिताः ॥ १६ ॥

जब अपने कारण रूप जल के द्वारा पृथ्वी का गन्ध शोषण कर लिया गया । तब मनु लोग पृथ्वी को छोड़कर जल में अवस्थित हो गए ॥ १६ ॥

भूमिस्त्वात्तरसा शश्वज्जहाति व्यक्तिनामनी ।
प्रभवन्त्याप एतर्हि जगदेतच्चराचरम् ॥ १७ ॥

जब भूमि शुष्क रस वाली हो गई, तब उसने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम को परित्याग कर दिया । फिर तो यह सारा चराचर जगत् जल स्वरूप हो गया ॥ १७ ॥

अपां तेजसि लयः

सङ्कल्पादेव पूर्वस्मात् सुदर्शनमयाद्धरेः ।
अपामपि रसं सारं ज्योतिर्ग्रसति कारणम् ॥ १८ ॥
अतिभूय तदापस्तु मनवो ज्योतिषि स्थिताः ।
आपश्चात्तरसाः शश्वज्जहति व्यक्तिनामनी ॥ १९ ॥

तदनन्तर सुदर्शनमय विष्णु के पूर्व सङ्कल्प से जल के सारभूत रस को उसके कारण तेज ने ग्रस लिया, तब मनु लोग जल को छोड़ कर तेज में स्थित हो गए । इस प्रकार जब जल का रस समाप्त हो गया, तब उसने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ १८-१९ ॥

तेजसो वायौ लयः

देदीप्यमानमेतर्हि ज्योतिरेव जगन्मुने ।

सङ्कल्पचोदितो विष्णोर्वायुः कारणसंज्ञितः ॥ २० ॥
ज्योतिषोऽप्यान्तरं रूपं सारं ग्रसति तद् ध्रुवम् ।
सङ्कल्पचोदिता विष्णोर्मनवोऽपि तदा मुने ॥ २१ ॥
अतिभूयाखिलं ज्योतिर्वायुमेव श्रयन्ति ते ।
आत्तरूपं तदा ज्योतिर्जहाति व्यक्तिनामनी ॥ २२ ॥

हे मुने ! इस प्रकार सारा जगत् ज्योति रूप में जगमगाने लगा । तदनन्तर विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित तेज के कारणभूत वायु ने तेज के अन्तर्गत रूप सार को निश्चित रूप से ग्रस लिया, तब हे मुने ! विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित हुये मनु तेज को छोड़कर वायु में समाश्रित हो गए । फिर तो जब तेज का (सार) रूप समाप्त हो गया । तब उसने भी अपनी अभिव्यक्ति एवं नाम का परित्याग कर दिया ॥ २०-२२ ॥

वायोराकाशे लयः

वायुर्दोधूयमानस्तु जगदेतच्चराचरम् ।
ततः कारणमाकाशं विष्णोः सङ्कल्पचोदितम् ॥ २३ ॥
सारं ग्रसति संस्पर्शं कारणं वै नभस्वतः ।
सुदर्शनेरिता विष्णोर्मनवोऽपि महामुने ॥ २४ ॥
नभस्येवावतिष्ठन्ते व्यतिभूय समीरणम् ।
आत्तस्पर्शस्तदा वायुर्जहाति व्यक्तिनामनी ॥ २५ ॥

फिर तो सारा चराचर जगत् वायु बन कर वहने लगा । तदनन्तर विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित वायु के कारणभूत आकाश ने वायु के स्पर्श गुण को ग्रस लिया । हे महामुनि ! तब सुदर्शन से प्रेरित मनु गण भी वायु को छोड़कर आकाश में स्थित हो गए । इस प्रकार जब वायु का स्पर्श गुण पराधीन हो गया तो वायु ने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम को छोड़ दिया ॥ २३-२५ ॥

आकाशस्याहङ्कारे लयः

भृशं शब्दायमानं तद्वियद्विश्वं चराचरम् ।
क्रियाशक्तीरितो विष्णोरहङ्कारोऽभिमानवान् ॥ २६ ॥
सारं ग्रसति शब्दाख्यं कारणं नभसो मुने ।
तयैव प्रेरिता विष्णोरतिभूय वियत्पदम् ॥ २७ ॥
अहङ्कारेऽवतिष्ठन्ते मनवो भगवन्मयाः ।
आत्तशब्दं वियत् तच्च जहाति व्यक्तिनामनी ॥ २८ ॥

तब चराचर सारा विश्व अत्यन्त शब्दायमान होने लगा । फिर विष्णु की क्रिया शक्ति से प्रेरित अभिमानवान् अहङ्कार ने जो आकाश का कारण है उसके शब्द रूप गुण को ग्रस लिया । तब विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित भगवत् स्वरूप मनु गण भी आकाश को छोड़ कर अहङ्कार में स्थित हो गए । जब आकाश का शब्द गुण ग्रस लिया गया तो उसने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ २६-२८ ॥

अहङ्कारस्य बुद्धौ लयः

अहमित्येव तद्विश्वमहङ्कारात्मकं मुने ।
अभिमानात्मकं सारमहङ्कारस्य कारणम् ॥ २९ ॥
सुदर्शनेरिता विष्णोर्बुद्धिर्ग्रसति वै मुने ।
सुदर्शनेरिता विष्णोरतिभूय त्वहङ्कृतिम् ॥ ३० ॥
बुद्धावेवावतिष्ठन्ते मनवोऽष्टौ महामुने ।
अत्ताभिमानोऽहङ्कारो जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ३१ ॥
बुद्धिरेवेदमखिलं व्यवसायवती मुने ।

बुद्धेस्तमसि लयः

सारमध्यवसायाख्यं बुद्धेः कारणमव्ययम् ॥ ३२ ॥
सुदर्शनेरितं विष्णोस्तमो ग्रसति कारणम् ।
सुदर्शनेरिता विष्णोर्मनवोऽपि महामुने ॥ ३३ ॥
अतिभूय तदा बुद्धिं तमस्येव श्रिताः स्थितिम् ।
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ ३४ ॥

हे मुने ! तब यह सारा विश्व 'अहम्' मात्र रह कर अहङ्कारात्मक वन गया । फिर सुदर्शन की प्रेरणा से अहङ्कार के कारण बुद्धि ने अहङ्कार के अभिमानात्मक सार को ग्रस लिया । हे महामुने ! सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर आठो मनुगण भी अहङ्कार को छोड़ कर बुद्धि में निवास करने लगे । तब अभिमानात्मक गुण के ग्रस लिए जाने पर अहङ्कार ने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया । इस प्रकार सब कुछ व्यवसाय युक्त बुद्धि स्वरूप हो गया । तदनन्तर बुद्धि के कारण अव्यय तमोगुण ने बुद्धि के सारभूत अध्यवसाय को ग्रस लिया । हे महामुने! तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर मनुगणों ने भी तम में अपनी स्थिति स्थापित की । फिर तो यह सारा का सारा जगत् ज्ञानरहित एवं लक्षणरहित तमोमय हो गया ॥ २९-३४ ॥

इन्द्रियाणां भूतैः सह तत्तत्कारणेषु लयः

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं संस्तब्धं गुरु मोहनम् ।
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् च श्रोत्रं च पञ्चमम् ॥ ३५ ॥
पायूपस्थं तथा पादौ हस्तौ वाक् चैव पञ्चमी ।
द्वयोः पञ्चकयोर्द्वन्द्वं घ्राणपाय्वादिकं क्रमात् ॥ ३६ ॥
महीजलादिभिर्हेतौ लीयमानैः स्वके स्वके ।
समं विलयमायाति सह घ्राणादिवृत्तिभिः ॥ ३७ ॥
मनोऽहङ्कार इत्येतत् सवृत्ति करणद्वयम् ।
अहङ्कारे लयं याति बुद्धौ बोधनमिन्द्रियम् ॥ ३८ ॥
तम एवेदमखिलमिदानीमवतिष्ठते ।

वह तम तर्क और ज्ञान से परे था। जड़ गुरु तथा मोहित करने वाला था। घ्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वक् तथा श्रोत्र ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। पायू, उपस्थ, पादहस्त और पाँचवी वाणी ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दोनों पञ्चकों के दो गणों के अपने-अपने कारणभूत यही जलादि में घ्राण आदि वृत्तियों के साथ लीन हो जाने पर अपनी-अपनी वृत्ति के सहित मन और अहङ्कार ये दो करण भी अहङ्कार में तथा बुद्धि में लीन हो गए, फिर तो सब कुछ तम मे ही स्थित हो गया ॥ ३५-३९ ॥

तमसो रजसि लयः

स्थितिशक्तिर्हि या चास्य तमसो गुरुतामयी ॥ ३९ ॥
रजो ग्रसति तां शश्वदीश्वरेच्छाप्रचोदितम् ।
इच्छया प्रेरिता विष्णोर्मनवोऽपि महामुने ॥ ४० ॥
रजस्येवावतिष्ठन्ते व्यतिभूय तमोगतिम् ।
आत्तसारं तमस्तत्तु जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ४१ ॥

इस तम की गुरुता से पूर्ण स्थिति शक्ति की ईश्वरेच्छा से प्रेरित रजोगुण ने ग्रस लिया। हे महामुने ! फिर तो ईश्वरेच्छा से प्रेरित मनुगण भी तम का परित्याग कर रजोगुण में स्थित हो गए। इस प्रकार जब तम का सार पराधीन हो गया? तो उसने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम छोड़ दिया ॥ ३९-४१ ॥

रजसः सत्त्वे लयः

चलक्रियात्मकं दुःखं रज एव जगत् तदा ।
या सा स्पन्दमयी शक्तिश्चलत्तात्मा रजोमयी ॥ ४२ ॥
तां वै सुदर्शनादिष्टं सत्त्वं ग्रसति कारणम् ।
रजःस्था मनवश्चैव विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ॥ ४३ ॥
अभिभूय रजः सत्त्वं विशन्ति विमलं मुने ।
आत्तसारं रजस्तत्तु जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ४४ ॥

फिर तो सारा जगत् चलनात्मक क्रिया से युक्त होकर दुःखमय हो गया। तदनन्तर चलतात्मा, स्पन्दमयी, रजोमयी उस रजोगुण की शक्ति को सुदर्शन की आज्ञा से उसका कारण सत्त्व ने ग्रस लिया है। तब हे महामुने ! विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित रजः स्थित मनुगण रजोगुण का अतिक्रमण कर सत्त्व में अवस्थित हो गए। फिर तो अपने सार के पराधीन हो जाने पर उस रजोगुण ने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम को छोड़ दिया ॥ ४२-४४ ॥

सत्त्वस्य काले लयः

लघु प्रकाशकं सत्त्वमिदमासीच्चराचरम् ।
कालो नाम गुणो विष्णोः सुदर्शनसमीरितः ॥ ४५ ॥
सारं प्रज्ञामयं सत्त्वादादत्ते ज्ञानकारणम् ।
अतिभूय तदा सत्त्वं मनवः कालसंश्रिताः ॥ ४६ ॥

काल एव जगत् कृत्स्नमिदमासीत् तदा मुने।
आत्तसारं च तत् सत्त्वं जहाति व्यक्तिनामनी॥ ४७ ॥

तब यह सारा चराचर जगत् स्वल्प प्रकाश वाला सत्त्व हो गया। तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर विष्णु के काल नामक गुण ने उस सत्त्व से ज्ञान के कारणभूत प्रज्ञामय सार को ले लिया। तब सत्त्व को त्याग कर मनु लोग काल में स्थित हो गए। हे मुने! उस समय यह सारा जगत् कालमय हो गया। तब प्रज्ञामय सार के पराधीन हो जाने पर सत्त्व ने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया॥ ४५-४७॥

कालस्य नियतौ लयः

काली कालगता शक्तिर्या साशेषप्रकालिनी।
नियतिर्नाम तां तत्त्वं ग्रसतीश्वरचोदिता॥ ४८ ॥

काल में रहने वाली और सबको कवलित करने वाली काल रूप उस महाशक्ति को ईश्वर की प्रेरणा से नियति ने ग्रस लिया॥ ४८॥

सुदर्शनेरितास्ते च मनवोऽष्टौ महामुने।
अतीत्य कालतत्त्वं तां नियतिं प्रतिपेदिरे॥ ४९ ॥

हे महामुने! तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर आठों मनु काल तत्त्व का त्याग कर नियति में प्रविष्ट हो गए॥ ४९॥

आत्तसारस्तदा कालो जहाति व्यक्तिनामनी।
नियतिर्नाम सा विश्वमिदमासीच्चराचरम्॥ ५० ॥

जब अपने सार के ग्रहण कर लिए जाने पर काल ने भी अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम छोड़ दिया, तब उस समय यह सारा चराचर जगत् नियति नाम वाला हो गया॥ ५०॥

नियतेः शक्तौ लयः

महाविद्यामयी शक्तिर्नियतेर्या महामुने।
शक्तिर्नाम तदा वां तु ग्रसतीश्वरचोदिता॥ ५१ ॥

हे महामुने! नियति की महाविद्या नाम वाली शक्ति को ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर महाशक्ति ने ग्रस लिया है॥ ५१॥

मनवोऽपीश्वरादिष्टा नियतिं तामतीत्य वै।
शक्तिं मायामयीं विष्णोर्विशन्ति विपुलात्मिकाम्॥ ५२ ॥

तब ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर मनुगण भी नियति का परित्याग कर विपुलात्मिका विष्णु की महामाया शक्ति में प्रवेश कर गए॥ ५२॥

नियतिश्चात्तसारा सा जहाति व्यक्तिनामनी।
अथ शक्तिरिदं विश्वं जगदासीच्चराचरम्॥ ५३ ॥

जब नियति का सार ग्रस लिया गया तो उसने अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया। फिर तो सारा चराचर जगत् शक्तिमय दिखाई पड़ने लगा ॥ ५३ ॥

शक्तेः कूटस्थपुरुषे लयः

आ चैतन्योन्मिषत्तायाः शक्तेः शक्तिः सनातनी।
सुदर्शनेरितस्तां तु पुरुषो ग्रसति स्वयम् ॥ ५४ ॥

चैतन्य से उन्मिषित (अनुप्राणित) उस शक्ति की जो सनातनी शक्ति है उसे सुदर्शन के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं पुरुष ने ग्रस लिया ॥ ५४ ॥

अतीत्य मनवः शक्तिं तं विशन्तीश्वरेरिताः।
आत्तसारा तदा शक्तिर्जहाति व्यक्तिनामनी ॥ ५५ ॥

फिर तो ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त कर वे मनुगण उस शक्ति का परित्याग कर उस पुरुष में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार शक्ति ने अपने तत्त्व के ग्रस लिए जाने पर अपनी अभिव्यक्ति तथा नाम का परित्याग कर दिया ॥ ५५ ॥

सर्वात्मा सर्वतः शक्तिः पुरुषः सर्वतोमुखः।
सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ५६ ॥
मनूनामेष कूटस्थः पुरुषो द्विचतुर्मयः।
कृत्स्नकर्माधिकारो वै देवदेवस्य वै हरेः ॥ ५७ ॥
त्रयोदशानां भूम्यादिशक्त्यन्तानां महामुने।
विलीनस्वस्वकार्याणां काम्यवर्षशतस्थितिः ॥ ५८ ॥

तदनन्तर सर्वत्मा सर्वतोभावेन शक्तिमान् सर्वतोमुख, सर्वज्ञ, सर्वग, सर्व वह पुरुष सब कुछ को अपने में उदरस्थ कर स्थित रहा। इस प्रकार मनुष्यों का अष्टसङ्ख्यामय कूटस्थ पुरुष ने देवाधिदेव विष्णु के सम्पूर्ण कर्मो का अधिकार प्राप्त कर लिया। अपने-अपने कार्यो को अपने कारण में विलीन करने वाले भूमि से लेकर शक्ति पर्यन्त (भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, बुद्धि, तम, रज, सत्त्व, काल, नियति एवं शक्ति) इस प्रकार १३ सङ्ख्या वाले सर्गोपकरण उस कूटस्थ पुरुष में काम्य (द्र० ४.९) वर्षों के गणनानुसार सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रहे ॥ ५६-५८ ॥

कूटस्थपुरुषस्यानिरुद्धे लयः

पुंसस्त्रीणि शतानि स्युस्ततो मनुमयः पुमान्।
चतुर्धा स्वं विभज्याथ ब्रह्मक्षत्रादिभावतः ॥ ५९ ॥
स्वे स्वे स्थानेऽनिरुद्धस्य मुखबाह्वादिके मुने।
प्रलीयते क्षणेनैव तप्तायःपिण्डवारिवत् ॥ ६० ॥

फिर वह मनुमय कूटस्थ पुरुष (द्र० ४.५७) पुरुष-वर्ष के गणनानुसार तीन सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रह कर अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार भागों में प्रविभक्त कर अनिरुद्ध

के मुख, बाहू आदि स्व स्व स्थानों में क्षण मात्र में इस प्रकार लीन हो गया जैसे तप्त लौहपिण्ड में जल का कण ॥ ५९-६० ॥

ततोऽसौ भगवानेकः प्रलीनचिदचिन्मयः ।
शतानि दश षट् चाथ वर्षाणामवतिष्ठते ॥ ६१ ॥

इस प्रकार चिदचित् सबको अपने में लीन कर एक मात्र भगवान् सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रहे ॥ ६१ ॥

अनिरुद्धस्य प्रद्युम्नेलयः

अवस्थाय ततोऽप्येति प्रद्युम्नमजरं विभुम् ।
निरुध्य सर्वचेष्टाः स्वास्तावत्कालं स तिष्ठति ॥ ६२ ॥

फिर अनिरुद्ध भगवान् उतने वर्ष पर्यन्त बाहर स्थित होकर अजर-अमर और सर्वव्यापक प्रद्युम्न में लीन हो गए । प्रद्युम्न भगवान् भी अपनी सारी चेष्टाओं को रोक कर उतने ही काल पर्यन्त स्थित रहे ॥ ६२ ॥

प्रद्युम्नस्य सङ्कर्षणे लयः

ततः प्रद्युम्नसंज्ञोऽसौ भगवान् पुष्करेक्षणः ।
अप्येति भगवन्तं तं सङ्कर्षणमनामयम् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर वे कमलनेत्र प्रद्युम्न संज्ञक भगवान् आमयरहित भगवान् सङ्कर्षण देव में लीन हो गए ॥ ६३ ॥

कालं तिष्ठति तावन्तं सर्वदेवमयोऽच्युतः ।
चिदचित्खचितं विश्वं शुद्धाशुद्धमशेषतः ॥ ६४ ॥

सर्वदेवमय अच्युत (सङ्कर्षण) उतने ही काल तक चित् अचित समूह सम्पूर्ण शुद्ध-अशुद्ध सारे विश्व को अपने ज्ञानमय शरीर में काले तिल के समान धारण कर उतने ही काल तक स्थित रहे ॥ ६४ ॥

तिलकालकवत् स्वस्य देहे ज्ञानमये दधत् ।
उदयास्ताचलावेष देवः सङ्कर्षणो बलः ॥ ६५ ॥
चिदिन्दोरचिदङ्कस्य कलास्ता अनुधावतः ।
अहीनमहरेतद्धि सङ्कर्षणमयं परम् ॥ ६६ ॥
यत्र नानाविधा भावा व्यज्यन्ते स्वस्वयाख्यया ।

तदनन्तर यही बलदेव सङ्कर्षण देव अचित् रूप कलङ्क वाले चिच्चन्द्रमा की उदय से अस्ताचल पर्यन्त कला को धारण करते हैं । यही कला सङ्कर्षणमय पर तथा श्रेष्ठ उनका एक दिन होता है । जिसमें अपनी-अपनी आख्या के अनुसार जीवों के अनेक प्रकार के भाव प्रकट होते रहते हैं ॥ ६५-६७ ॥

सङ्कर्षणस्य वासुदेवे लयः

शतानि षोडश स्थित्वा वर्षाणामयमच्युतः ॥ ६७ ॥

अप्येति भगवन्तं तं वासुदेवं सनातनम् ।
नासदासीत् तदानीं हि नो सदासीत् तदा मुने ॥ ६८ ॥

इस प्रकार अच्युत बलदेव सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित होकर भगवान् सनातन वासुदेव में लीन हो जाते हैं । हे मुने ! उस समय न सत् था न असत् था ॥ ६७-६८ ॥

भावाभात्रौ विलोप्यान्तर्विचित्रविभवोदयौ ।
अनिर्देश्यं परं ब्रह्म वासुदेवोऽवतिष्ठते ॥ ६९ ॥

तदनन्तर विचित्र विभव एवं उदय से युक्त भावाभाव को अपने अन्तःकरण में लीन कर अनिर्देश्य परब्रह्म भगवान् वासुदेव स्थित हो गए ॥ ६९ ॥

सा रात्रिस्तत् परं ब्रह्म तदव्यक्तमुदाहृतम् ।
षण्णां युगानि विज्ञानबलादीनामशेषतः ॥ ७० ॥
त्रीणि यस्मिन् प्रलीयन्ते यत् तत् सा रात्रिरुच्यते ।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्तमञ्जनं विगतं यतः ॥ ७१ ॥

उसी को कोई रात्रि, कोई परब्रह्म और कोई अव्यक्त कहते हैं । इस प्रकार की सम्पूर्ण विज्ञान बलादिकों के छः युग बीतते हैं । जिसमें तीन प्रलयावस्था में बीत जाते हैं उसी को रात्रि कहते हैं । सङ्कर्षण से लेकर माया पर्यन्त माया का अभाव था ॥ ७०-७१॥

तदव्यक्तमिति ज्ञेयं समत्वात् सम उच्यते ।
या सा भगवतः शक्तिरहन्ता सर्वभावगा ॥ ७२ ॥

उसी को अव्यक्त कहते हैं । सबको सम करने के कारण उसे सम कहा जाता है भगवान् की जो अहन्ता (अहङ्कार स्वरूपा) शक्ति है वह सभी पदार्थों में रहती है ॥ ७२ ॥

अपृथक्चारिणी सत्ता महानन्दमयी परा ।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्तस्तस्याः कोट्यंश ईरितः ॥ ७३ ॥
सदसच्चिदचिद्रूपैर्यत्र विश्वं प्रकाशते ।
तस्मिन्नुपरते शश्वद्विश्वकोलाहलोद्गमे ॥ ७४ ॥
अलक्ष्या कार्यतः शक्तिर्देवाद्विजहतीभिदाम् ।
प्रतिसञ्चरिकां शक्तिं क्रियां सौदर्शनीं स्वकाम् ॥ ७५ ॥
संहृत्य बिभ्रती तां तु स्थितिं सङ्कल्परूपिणीम् ।
इन्धनाभावतो ज्वाला वह्निभावं यथा गता ॥ ७६ ॥
ब्रह्मभावं व्रजत्येवं सा शक्तिर्वैष्णवी परा ।

वही भगवान् से विलग न रहने वाली सत्ता है जो महानन्दमयी एवं परा है । सङ्कर्षण से लेकर भूमिपर्यन्त उस सत्ता का करोड़हवाँ अंश कहा गया है । जिसमें सत्-असत्, चित्-अचित् रूपों से विश्व प्रकाशित होता रहता है । इस प्रकार उस विश्व के कोलाहल के सर्वदा के लिए शान्त हो जाने पर वह शक्ति कार्यतः अलक्षित हो जाती है । अपनी प्रलय में होने वाली सौदर्शनी क्रियात्मिका सङ्कल्परूप में स्थित रहने वाली शक्ति को वह शक्ति

अपने में धारण करती हुई उसी प्रकार ब्रह्म में लीन हो जाती है जिस प्रकार इन्धन के अभाव में ज्वाला अग्निभाव को प्राप्त कर जाती है । इस प्रकार वह परा वैष्णवी शक्ति वासुदेव ब्रह्म में लीन हो जाती है ॥ ७३-७७ ॥

नारायणः परं ब्रह्म शक्तिर्नारायणी च सा ॥ ७७ ॥
व्यापकावतिसंश्लेषादेकं तत्त्वमिव स्थितौ ।
सङ्कर्षणोदयो यावदहः पौरुषमिष्यते ।
तावती पौरुषी रात्रिः संहृताखिलवस्तुका ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां प्रतिसञ्चरवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २७० ॥

* * *

परब्रह्म नारायण और वह नारायणी शक्ति जो सर्वत्र व्यापक है, वे परस्पर मिलकर एक तत्त्व के रूप में स्थित हो जाते हैं । सङ्कर्षण जब तक रहते हैं तावत् पर्यन्त उस पुरुष ब्रह्म का दिन रहता है और सारी वस्तुओं को अपने में समेट कर स्थित रहने वाली वह शक्ति उतने ही काल पर्यन्त उस परब्रह्म पुरुष की होती है ॥ ७७-७८ ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता में प्रतिसञ्चरवर्णन नामक चौथे अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

शुद्धसृष्टिवर्णनम्

अहिर्बुध्न्यः—

कार्यकारणवर्गस्य प्रलयोऽयं प्रदर्शितः ।
सुदर्शनमयीं सृष्टिं तस्य वक्ष्यामि ते मुने ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुने ! कार्यकारण वर्ग का इस प्रकार हमने प्रलय प्रदर्शित किया । अब उस कार्य कारण वर्ग की जिस प्रकार सुदर्शनमयी सृष्टि होती है उसे सुनिए ॥ १ ॥

प्रलयावस्थब्रह्मस्वरूपम्

प्रसुप्ताखिलकार्यं यत् सर्वतः समतां गतम् ।
नारायणः परं ब्रह्म सर्वावासमनाहतम् ॥ २ ॥
पूर्णस्तिमितषाड्गुण्यमसमीराम्बरोपमम् ।

शक्तिरूपाया लक्ष्म्याः क्वचिदुन्मेषः

तस्य स्तैमित्यरूपा या शक्तिः शून्यत्वरूपिणी ॥ ३ ॥

जिनमें सम्पूर्ण कार्य प्रसुप्त रहते हैं और जो सर्वत्र समरूप से स्थित रहते हैं । जिनमें सम्पूर्ण जीवों का आवास है, जो अप्रतिहत हैं, जिनमें ज्ञान, शक्ति आदि छहों गुण स्तब्ध स्थित रहते हैं, वे परब्रह्म वायुरहित आकाश के समान सृष्टि से पूर्व स्थित रहते हैं । उस समय शून्यरूपिणी उनकी शक्ति स्तब्ध होकर निश्चेष्ट रूप से उनमें पड़ी रहती है ॥ २-३॥

स्वातन्त्र्यादेव कस्माच्चित् क्वचित् सोन्मेषमृच्छति।
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः ॥ ४ ॥
देवी विद्युदिव व्योम्नि क्वचिदुद्द्योतते तु सा ।
शक्तिर्विद्योतमाना सा शक्तिरित्युच्यतेऽम्बरे ॥ ५ ॥

वह शक्ति किसी अनिर्वचनीय स्वतन्त्रता से किसी समय उन्मेष (अङ्कुर प्रकाश) को प्राप्त करती है । परब्रह्म परमात्मा की वह आत्मभूताशक्ति जैसे बिजली आकाश में एकाएक किसी समय चमकती है उसी प्रकार अच्युत रूपी आकाश में उनकी वह विद्योतमाना शक्ति कभी कारणवशात् सृष्टि के आरम्भ में चमक उठती है ॥ ४-५ ॥

शक्तेर्विविधभावव्यञ्जकत्वम्

व्यनक्ति विविधान् भावान् शुद्धाशुद्धान् समूर्तिकान् ।
तस्या उन्मेषमृच्छन्त्याः स्वातन्त्र्यं यत् स्वनिर्मितम् ॥ ६ ॥

उस समय अच्युत रूपी आकाश में देदीप्यमान वह विद्युत् मूर्त्ति रूप धारण किये हुए अनेक वस्तुओं को प्रगट करती हैं । उन्मेष प्राप्त करने वाली उस महाशक्ति का यही स्वातन्त्र्य है जो कि उसे वह स्वयं निर्मित करती है ॥ ६ ॥

प्रेक्षणात्मा स सङ्कल्पस्तत् सुदर्शनमुच्यते ।
सा क्रिया तद्धरेर्वीर्यं तत् तेजश्च बलं च तत् ॥ ७ ॥
व्यज्यन्ते ये च ते भावाः स्वभित्तिपरिवर्तिताः ।
सा भूतिर्विष्णुशक्तिः सा शक्तेः कोट्यंशकल्पिता॥ ८ ॥

वही प्रेक्षण करने वाला सङ्कल्प सुदर्शन कहा जाता है । वही क्रिया है, वही विष्णु का वीर्य, तेज और बल है । अपनी भित्ति पर परिवर्तित रूप में जो भाव (वस्तु में) प्रगट होते हैं वही विष्णुशक्ति की विभूति है जो मुख्य शक्ति का करोड़वाँ अंश कल्पित की गई है ॥ ७-८ ॥

बहुभिर्द्वन्द्वभावैः सा शक्तिर्भूतमयी स्थिता ।
शुद्धाशुद्धविभागेन चेत्यचेतनरूपतः ॥ ९ ॥
काल्यकालविभेदेन व्यक्ताव्यक्तविभागतः ।
व्यङ्ग्यव्यञ्जनरूपेण वाच्यवाचकभेदतः ॥ १० ॥
भोग्यभोक्तृविभेदेन देहदेहिविभेदतः ।
अन्यैश्चैवंप्रकारैः सा द्वन्द्वभेदैर्विभज्यते ॥ ११ ॥

वह भूतमयी शक्ति अनेक प्रकार के द्वन्द्वभाव (दो-दो भाव) में प्रगट होकर स्थित हैं जैसे शुद्ध-अशुद्ध विभाग से, चेतन और अचेतन रूप से, काल्य (कवलित होने वाला), काल (सबको ग्रास करने वाला), भेद से व्यक्त (प्रगट), अव्यक्त (तिरोहित), भाव से व्यङ्ग्य और व्यञ्जक रूप से, वाच्य एवं वाचक भेद से, भोग्य-भोक्ता रूप से, देह-देही भेद से इसी प्रकार अन्य भी द्वन्द्व भेदों से उसका विभाग हो जाता है ॥ ९-११ ॥

एवं प्रकारभेदेन या शक्तिर्हेतुतां गता ।
तां विजानीहि देवर्षे दिव्यां सौदर्शनीं कलाम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार के भेद से जो शक्ति हेतु या (भेद के कारणभाव) को प्राप्त हुई, हे देवर्षे नारद ! उसी को आप दिव्य सुदर्शन की कला समझिये ॥ १२ ॥

समीर्यते यथा वह्निर्मेघो वापि समीरणात् ।
तथा सुदर्शनेनैव विभूतिः प्रेर्यते कला ॥ १३ ॥

जैसे वायु के द्वारा आग अथवा मेघ प्रेरित होते हैं उसी प्रकार सुदर्शन द्वारा ही विभूति कला प्रेरित होती है ॥ १३ ॥

आनुलोम्येन सर्गे तु प्रातिलोम्येन संहृतौ ।
यथा सम्प्रेर्यमाणा सा सुदर्शननभस्वता ॥ १४ ॥
दधाति विविधान् भावांस्तथा मे गदतः शृणु ।

सृष्टि में अनुलोम क्रम से और प्रलय में प्रतिलोम क्रम से सुदर्शन रूप वायु से प्रेरित वह भूति कला जिस प्रकार विविध आकार धारण करती है उसे मैं कह रहा हूँ, आप सुनिए ॥ १४-१५ ॥

शुद्धसृष्टिप्रपञ्चनम्

तत्र शुद्धमयं सर्गं विभूतेः प्रथमं शृणु ॥ १५ ॥
यत् तत् षाड्गुण्यमित्युक्तं ज्ञानैश्वर्यबलादिकम् ।
युगैस्तस्य त्रिभिः शुद्धा सृष्टिर्भूतेः प्रवर्तते ॥ १६ ॥

उसमें पहले विभूति के शुद्ध सर्ग को सुनिए । हमने पहले जो ज्ञान, ऐश्वर्य एवं बल (द्र० २.५६-९१) आदि षाड्गुण्य कहा है उनके तीन युगों से शुद्ध होने पर विभूति की सृष्टि प्रवृत्त होती है ॥ १५-१६ ॥

गुणयुग्मत्रयात् व्यूहत्रयाविर्भावः

तत्र ज्ञानबलद्वन्द्वाद्रूपं साङ्कर्षणं हरेः ।
ऐश्वर्यवीर्यसम्भेदाद्रूपं प्राद्युम्नमुच्यते ॥ १७ ॥
शक्तितेजःसमुत्कर्षादानिरुद्धी तनुर्हरेः ।
एते शक्तिमया व्यूहा गुणोन्मेषस्वलक्षणाः ॥ १८ ॥

उसमें ज्ञान और बल के द्वन्द्व से सङ्कर्षण रूप विष्णु का रूप, ऐश्वर्य और वीर्य के भेद से प्रद्युम्न का रूप तथा शक्ति और तेज के समुत्कर्ष से अनिरुद्ध का रूप कहा गया है । ये सभी शक्तिमय व्यूह गुणों के उन्मेष (प्रकाशक) रूप लक्षण वाले हैं अर्थात् प्रत्येक व्यूह में दो-दो गुण होने से तीन व्यूह का निर्माण हुआ ॥ १७-१८ ॥

व्यूहत्रयेऽपि षाड्गुण्यानुवृत्तिः

षाड्गुण्यविग्रहा देवाः पुरुषाः पुष्करेक्षणाः ।
तत्र तत्रावशिष्टं यद् गुणानां द्वियुगं मुने ॥ १९ ॥
अनुवृत्तिं भजत्येव तत्र तत्र यथायथम् ।

त्रिधा चातुरात्म्यस्थितिः

व्याप्तिमात्रं गुणोन्मेषो मूर्तीकार इति त्रिधा ॥ २० ॥
चातुरात्म्यस्थितिर्विष्णोर्गुणव्यतिकरोद्भवा ।

हे मुने ! देवताओं का विग्रह षाड्गुण्य है । कमल के समान नेत्र वाले पुरुष हैं । इस प्रकार जो प्रत्येक व्यूह में दो-दो गुण हैं वे उन-उन व्यूहों में परस्पर अनुवृत्ति को प्राप्त करते हैं अर्थात् छओं गुणों का तीनों व्यूहों में पर्यवसान हो जाता है । इस प्रकार व्याप्ति-

मात्र, गुणोन्मेष एवं मूर्त्तीकार ये तीन प्रकार के व्यूह गुणों के अनुसार वनते हैं, किन्तु परस्पर गुणों के मिश्रण से विष्णु की मूर्ति चार रूपों में स्थित है ॥ १९-२१ ॥

तत्र ज्ञानमयत्वेन देवः सङ्कर्षणो बली ॥ २१ ॥
व्यनक्त्यैकान्तिकं मार्गं भगवत्प्राप्तिसाधनम् ।

उसे महाबली सङ्कर्षणदेव ज्ञानमय होने से मात्र एक भगवत्प्राप्ति साधन का मार्ग प्रकट करते हैं ॥ २१-२२ ॥

प्रद्युम्नस्य कृत्यम्

वीर्यैश्वर्यमयो देवः प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥
स्थितः शास्त्रार्थभावेन भगवत्प्राप्तिवर्त्मना ।
शास्त्रार्थस्य फलं यत् तद् भगवत्प्राप्तिलक्षणम् ॥ २३ ॥

वीर्य एवं ऐश्वर्यमय पुरुषोत्तम प्रद्युम्न देव भगवत्प्राप्ति के मार्ग से शास्त्र के अर्थ के रूप से स्थित रहते हैं । क्योंकि उन-उन सभी शास्त्रों के अर्थ का फल उसी-उसी प्रकार भगवत्प्राप्तिलक्षण कहा गया है ॥ २२-२३ ॥

अनिरुद्धस्य कृत्यम्

प्रापयत्यनिरुद्धः सन् साधकान् पुरुषोत्तमः ।
शास्त्रशास्त्रार्थतत्साध्यफलनिर्वाहका इमे ॥ २४ ॥
पुरुषाः पुण्डरीकाक्षा व्यूहाः शक्तिमया हरेः ।

पुनः वही पुरुषोत्तम अनिरुद्ध बन कर साधकों को साध्य तक पहुँचाते हैं ये तीनों ही व्यूह शास्त्र, शास्त्रार्थ तथा तत्साध्यफल के निर्वाहकर्त्ता हैं, यही पुरुष हैं जिनके नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं और यही विष्णु के शक्तिमय व्यूह हैं ॥ २४-२५ ॥

परवासुदेवेन सह व्यूहस्य चातुरात्म्यम्

भगवान् वासुदेवश्च व्यूहाश्चैते त्रयो मुने ॥ २५ ॥
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षणम् ।

हे मुने ! ये तीनों व्यूह तथा चौथे भगवान् वासुदेव इनको मिलाकर चातुरात्म्य समझिये, जो व्यक्त और अव्यक्त लक्षण वाले हैं ॥ २५-२६ ॥

गुणोन्मेषस्वरूपप्रदर्शनम्

गुणाः शक्तिमया ये ते ज्ञानैश्वर्यबलादयः ॥ २६ ॥
तेषां युगपदुन्मेषः स्तैमित्यविरहात्मकः ।
सङ्कल्पकल्पितो विष्णोर्यः स तद्व्यक्तिलक्षणः ॥ २७ ॥
भगवान् वासुदेवः स परमा प्रकृतिश्च सा ।
शक्तिर्या व्यापिनो विष्णोः सा जगत्प्रकृतिः परा ॥ २८ ॥
शक्तेः शक्तिमतो भेदाद् वासुदेव इतीर्यते ।

ज्ञान, ऐश्वर्य, बलादि (द्र० २.५६-९१) जो शक्तिमय गुण हैं उनका स्तैमित्य

(स्तब्धता) से रहित युगपद् उन्मेष विष्णु सङ्कल्प से कल्पित है वही अभिव्यक्ति लक्षण कहा जाता है । वही भगवान् वासुदेव हैं और परमा प्रकृति वह है जो विष्णु की सर्वव्यापिका शक्ति है । उसे ही परा जगत्प्रकृति कहते हैं । शक्ति तथा शक्तिमान् का परस्पर भेद होने से शक्ति के निवास वासुदेव कहे जाते हैं ॥ २६-२९ ॥

सिसृक्षोर्वासुदेवात् सङ्कर्षणाविर्भावः

सर्वशक्तिमयो देवो वासुदेवः सिसृक्षया ॥ २९ ॥
विभजत्यात्मनात्मानं यः स सङ्कर्षणः स्मृतः ।
भानावुदयशैलस्थे प्रभा यद्वद्विजृम्भते ॥ ३० ॥
उदयस्थे तथा देवे प्रभा सङ्कर्षणात्मिका ।

सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेव जब सृष्टि की इच्छा से अपने को स्वयं अपने से विभक्त करते हैं तब जिस प्रकार उदयाचल पर उदय होने वाले सूर्य की प्रभा विकसित होती है उसी प्रकार उदीयमान भगवान् वासुदेव से सङ्कर्षणात्मिका प्रभा निकलती है ॥ २९-३१॥

तस्य षोडशशतवर्षप्रतीक्षणम्

अव्यापृता शतान्येषा शक्तिस्तिष्ठति षोडश ॥ ३१ ॥
सङ्कर्षणात्मिका साक्षाद् विज्ञानबलवारिधिः ।
अनन्तो भगवान् विष्णुः शक्तिमान् पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥
पूर्णस्तिमितषाड्गुण्यो निस्तरङ्गार्णवोपमः ।

तब सोलह सौ वर्ष पर्यन्त अप्रगट रूप से विज्ञान बल का समुद्र वही सङ्कर्षणात्मिका शक्ति उनमें निवास करती है । उस समय पुरुषोत्तम सर्व शक्तिमान् भगवान् अनन्त जिनमें ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि छः गुण तरङ्गरहित समुद्र के समान निश्चेष्ट रहते हैं ॥ ३१-३३ ॥

षण्णां युगपदुन्मेषाद् गुणानां स्वप्रचोदितात् ॥ ३३ ॥
अनन्त एव भगवान् वासुदेवः सनातनः ।
तत्र ज्ञानबलोन्मेषात् स्वसङ्कल्पप्रचोदितात् ॥ ३४ ॥
अनन्त एव भगवान् देवः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।
स्थित्वा षोडश वर्षाणि देवः शक्तिमयोऽच्युतः ॥ ३५ ॥
अनन्त एव भगवान् प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ।
अंशांशेनोदिता शक्तिः प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा ॥ ३६ ॥

जब स्वयं प्रेरित छः गुणों का उनमें एक साथ उन्मेष (विकास) होता है तब वही भगवान् अनन्त वासुदेव कहे जाते हैं । जब स्वयं प्रेरित छः गुणों में मात्र ज्ञान बल इन दो गुणों का उन्मेष होता है तब वही भगवान् अच्युत सङ्कर्षण देव हो जाते हैं । फिर शक्तिमय अच्युत देव भगवान् अनन्त सोलह वर्ष तक स्थित रह कर पुरुषोत्तम प्रद्युम्न हो जाते हैं । यह प्राद्युम्नी प्रभा विष्णु के अंश के अंश से प्रगट होती है अर्थात् वासुदेव के अंश सङ्कर्षण उनके अंश से प्रद्युम्न प्रगट होते हैं ॥ ३३-३६ ॥

अनिरुद्धाविर्भाव:

अव्यापृता शतान्येषा तूष्णीं तिष्ठति षोडश ।
ततः शक्तिमयो देव: प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ॥ ३७ ॥
शतानि षोडश स्थित्वा स्वसङ्कल्पप्रचोदितः ।
अनन्त एव भगवाननिरुद्धो भवत्युत ॥ ३८ ॥
अंशांशेनोदिता शक्तिरानिरुद्धी हरेः प्रभा ।
अव्यापृता शतान्येषा तूष्णीं तिष्ठति षोडश ॥ ३९ ॥

यह प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा सोलह सौ वर्ष पर्यन्त अप्रगट रूप से चुपचाप स्थित रहती हैं । तदनन्तर शक्तिमय वे पुरुषोत्तम प्रद्युम्न देव सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रह कर अपने सङ्कल्प से प्रेरित हो वे अनन्त भगवान् ही अनिरुद्ध हो जाते हैं । इस प्रकार अनिरुद्ध में रहने वाली शक्ति आनिरुद्धी नाम की भगवत्प्रभा अंशी के अंश से उदित होती है । वह भी उसी प्रकार अप्रगट रूप से सोलह सौ वर्ष पर्यन्त चुपचाप तूष्णीरूप से स्थित रहती है ॥ ३७-३९ ॥

व्यूहस्य षोडशशतवर्षानन्तरं सृष्टौ व्यापृतिः

शतानि षोडश स्थित्वानिरुद्धः शक्तिमानसौ ।
तदा व्याप्रियते सृष्टौ पूर्वाभ्यां सह नारद ॥ ४० ॥

इस प्रकार सोलह सौ वर्ष पर्यन्त स्थित रह कर वे शक्तिमान् अनिरुद्ध अपने से पूर्व में उत्पन्न सङ्कर्षण और प्रद्युम्न के साथ, हे नारद ! सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होते हैं ॥ ४० ॥

व्यूहानां हेयप्रतिभटत्वमनादित्वं च

व्यूहा एते विशालाक्षाश्चत्वारः पुरुषोत्तमाः ।
निर्दोषा निरनिष्टाश्च निरवद्याः सनातनाः ॥ ४१ ॥

विशाल नेत्र वाले पुरुषोत्तम ये चार (वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) व्यूह सब प्रकार के दोषों एवं अनिष्ट से रहित हैं, निरवद्य और सनातन हैं ॥ ४१ ॥

अनन्तमक्षरं चैतच्चातुरात्म्यं महामुने ।
निस्तरङ्गदशायां ते निःसत्ताः सक्तचिन्मयाः ॥ ४२ ॥
शक्त्यात्मका गुणोन्मेषदशायां ते व्यवस्थिताः ।
तत्र स्थूलदशायां ते व्यक्ति भावमुपागताः ॥ ४३ ॥
जगतामुपकाराय सच्चिदानन्दलक्षणाः ।

चातुरात्म्यस्य मनआलम्बनार्थत्वम्

मनआलम्बनायैषा चातुरात्म्यव्यवस्थितिः ॥ ४४ ॥

हे महामुने ! यही चार आत्मा वाले व्यूह अनन्त और अक्षर हैं । निस्तरङ्गदशा में वे सत्तारहित रहते हैं । परन्तु गुणों के उन्मेष (प्राकट्य) दशा में वे सत्ता से युक्त, चिन्मय और शक्त्यात्मक रूप में व्यवस्थित रहते हैं । वे अपनी स्थूल दशा में अभिव्यक्ति भाव को प्राप्त

करते हैं और संसार के उपकार के लिए सच्चिदानन्द रूप लक्षण से लक्षित होते हैं व्यूहों की यह चातुरात्म्य स्थिति मन के आलम्बन के लिए होती है ॥ ४२-४४ ॥

व्यूहात् व्यूहान्तराविर्भावः

आम्नासिषुरमुष्याश्च रहस्याम्नायवेदिनः ।
व्यूहान्तरविभावादीन् भेदान् सङ्कल्पकल्पितान् ॥ ४५ ॥

इन शक्तियों के रहस्य एवं गुरुसम्प्रदायवेत्ता विद्वानों ने इनके अतिरिक्त और भी सङ्कल्प कल्पित विभावादि भेद वाले व्यूहों का व्याख्यान किया है ॥ ४५ ॥

द्वादश व्यूहान्तराणि

व्यूहान्तरं दश द्वे च केशवाद्याः प्रकीर्तिताः ।

वासुदेवात् केशवादित्रयम्

केशवादित्रयं तत्र वासुदेवाद् विभाव्यते ॥ ४६ ॥

वे अन्य व्यूह केशवादि नामों से बारह सङ्ख्या वाले कहे गए हैं । उनमें केशव से लेकर तीन नाम वाले केशव (नारायण, माधव) वासुदेव नामक व्यूह से उत्पन्न हैं ॥ ४६ ॥

सङ्कर्षणात् गोविन्दादित्रयाविर्भावः

सङ्कर्षणाच्च गोविन्दपूर्वं त्रितयमद्भुतम् ।

प्रद्युम्नात् त्रिविक्रमादित्रयाविर्भावः

त्रिविक्रमाद्यं त्रितयं प्रद्युम्नादुदितं मुने ॥ ४७ ॥

गोविन्द से लेकर (गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन) ये तीन अद्भुत व्यूह सङ्कर्षण से उत्पन्न हुए हैं । कभी हे मुने ! त्रिविक्रम से लेकर तीन (त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर) प्रद्युम्न से उत्पन्न हुए हैं ॥ ४७ ॥

अनिरुद्धात् हृषीकेशादित्रयाविर्भावः

हृषीकेशादिकं तत्त्वमनिरुद्धान्महामुने ।
पराः स्वकारणान्तःस्थाः सूक्ष्मास्ते द्विभुजाः स्मृताः ॥ ४८ ॥

हे महामुने ! इसी प्रकार ऋषीकेश से लेकर तीनों अनिरुद्ध से उत्पन्न हैं । इसके अतिरिक्त वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कुल (ऋषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर) १२ सङ्ख्या हुई । हे मुने ! इन व्यूहान्तरों के तीन भेद हैं प्रथम जो सूक्ष्म हैं वे पर हैं, स्वकारण हैं, अन्तःकरण में स्थित हैं तथा द्विभुज हैं ॥ ४८ ॥

चतुर्भुजास्ते विज्ञेयाः स्थूलास्त्रिभुवनेश्वराः ।
चक्राद्यायुधविन्यासो यन्त्रतन्त्रेऽभिधास्यते ॥ ४९ ॥

दूसरे जो स्थूल हैं वे भुवनेश्वर और चार भुजा वाले हैं ऐसा समझना चाहिए । अब तीसरे जो चक्रायुध के रूप में जिनका विन्यास है, उन्हें यन्त्र-तन्त्र के प्रकरण में (द्र० २२-२७ अध्याय) कहेंगे ॥ ४९ ॥

विभवा एकोनचत्वारिंशत्

विभवाः पद्मनाभाद्यास्त्रिशच्च नव चैव हि ।
पद्मनाभो ध्रुवोऽनन्तः शक्त्यात्मा मधुसूदनः ॥ ५० ॥
विद्याधिदेवः कपिलो विश्वरूपो विहङ्गमः ।
क्रोडात्मा बडबावक्त्रो धर्मो वागीश्वरस्तथा ॥ ५१ ॥
एकाम्भोनिधिशायी च भगवान् कमठेश्वरः ।
वराहो नारसिंहश्च पीयूषहरणस्तथा ॥ ५२ ॥
श्रीपतिर्भगवान् देवः कान्तात्मामृतधारकः ।
राहुजित् कालनेमिघ्नः पारिजातहरस्तथा ॥ ५३ ॥
लोकनाथस्तु शान्तात्मा दत्तात्रेयो महाप्रभुः ।
न्यग्रोधशायी भगवानेकशृङ्गतनुस्तथा ॥ ५४ ॥
देवो वामनदेहस्तु सर्वव्यापी त्रिविक्रमः ।
नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णस्तथैव च ॥ ५५ ॥
ज्वलत्परशुधृग्रामो रामश्चान्यो धनुर्धरः ।
वेदविद्भगवान् कल्की पातालशयनः स्मृतः ॥ ५६ ॥
त्रिंशच्च नव चैवैते पद्मनाभादयो मताः ।

विभवादि व्यूह पद्मनाभादि भेद से, हे मुने ! उन्तालीस सङ्ख्या में कहे गए हैं वे इस प्रकार है—पद्मनाभ, ध्रुव, अनन्त, शक्त्यात्मा, मधुसूदन, विद्याधिदेव, कपिल, विश्वरूप, विहङ्गम, क्रोडात्मा, बड़वावक्त्र, धर्म, वागीश्वर, एकाम्भोनिधिशायी, भगवान् कमठेश्वर, वाराह, नारसिंह, पीयूषहरण, श्रीपति, भगवान् देव, कान्तात्मा, अमृतधारक, राहुजित, कालनेमिघ्न, पारिजातहर, लोकनाथ, शान्तात्मा, दत्तात्रेय, महाप्रभु, न्यग्रोधशायी, भगवान् एकशृङ्गतनु देव, वामनदेह, सर्वव्यापीत्रिविक्रम, नरनारायण, हरि, कृष्ण, ज्वलत्परशुधृक्, धनुर्धर राम, वेदविद् भगवान् कल्की और पातालशयन कहे गए हैं । ये पद्मनाभादि ३९ सङ्ख्या वाले कहे गए हैं ॥ ५०-५७ ॥

तेषामुत्पत्त्यादिकं सात्त्वतादौ ज्ञेयम्

यतश्चैषां समुत्पत्तिर्यो व्यापारो यदायुधम् ॥ ५७ ॥
या मूर्तिर्यादृशी चैव यत्र चैते व्यवस्थिताः ।
भूषणानि विचित्राणि वासांसि विविधानि च ॥ ५८ ॥
बाह्यान्तःकरणानां च त्रयो वर्गाः सवृत्तयः ।
सङ्कल्पनिर्मिता शक्तिर्या तत्तत्कार्यगोचरा ।
सात्त्वते शासने सर्वं तत्तदुक्तं महामुने ॥ ५९ ॥

इनकी जिससे उत्पत्ति हुई है, इनका जो व्यापार एवं आयुध है, जो जैसी मूर्त्ति है और जहाँ ये व्यवस्थित हैं, जिस प्रकार के इनके विचित्र आभूषण हैं और जिस प्रकार के

विविध वस्त्र हैं, बाह्य और अन्त:करण के सवृत्तिक जो तीन वर्ग हैं, उनके सङ्कल्पों से जो शक्ति निर्मित हुई है जो तत्तत्कार्यों में दिखाई पड़ती है, हे महामुने ! वह सब हमने सात्वतसंहिता में कह दिया है ॥ ५७-५९ ॥

अध्यायार्थोपसंहारः

इतीयं शुद्धसृष्टिस्ते विष्णोः सङ्कल्पकल्पिता ।
भूत्यंशो लेशतः प्रोक्तः शृणु सृष्टिमथेतराम् ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शुद्धसृष्टिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३३० ॥

*

इस प्रकार विष्णु के सङ्कल्प से कल्पित शुद्धसृष्टि के कुछ भूत्यंश हमने आपसे कहे हैं । अब अन्य सृष्टि को सुनिए ॥ ६० ॥

॥ श्री पाञ्चरात्रआगमगत तन्त्ररहस्य के अहिर्बुध्न्यसंहिता के शुद्धसृष्टिवर्णन नामक
पाँचवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय
के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

*

अथ षष्ठोऽध्यायः

शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्

शक्तितद्वतोर्भेदवदभेदस्याप्युपपत्तिः

अहिर्बुध्न्यः—

योऽसौ नारायणो देवः परमात्मा सनातनः ।
अहंभावात्मिका शक्तिस्तस्य तद्धर्मधर्मिणी ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह जो परमात्मा सनातन नारायण देव हैं उनके समान धर्म वाली उनकी अहंभावात्मिका शक्ति है ॥ १ ॥

ताविमावेकधैवोक्तौ भेद्यभेदकभावतः ।
पृथक्त्वेन च शास्त्रेषु जगद्धेतुतयोदितौ ॥ २ ॥

वे दोनों यद्यपि एक ही कहे गए हैं तथापि शास्त्रों में भेद्य भेदक (विशेष्य विशेषण) भेद से जगत् का कारण होने से उन्हें पृथक्-पृथक् रूप से कहा है ॥ २ ॥

शक्तितद्वतोरपृथक्स्थितिः

नैव शक्त्या विना कश्चिच्छक्तिमानस्ति कारणम् ।
न च शक्तिमता शक्तिर्विनैका व्यवतिष्ठते ॥ ३ ॥

अतः शक्ति के बिना कोई शक्तिमान् कारण नहीं हो सकता और शक्तिमान् के बिना शक्ति अकेली नहीं रह सकती ॥ ३ ॥

भगवतो लक्ष्म्याश्च प्रत्येकं जगत्कारणत्वव्यवहारकथनम्

तत्तद्गौरवमाश्रित्य तन्त्रवेदान्तपारगैः ।
जगद्धेतुतया देवावेकैकाविव दर्शितौ ॥ ४ ॥

तन्त्र तथा वेदान्तशास्त्र के पारदर्शी विद्वानों ने उन दोनों (शक्ति और शक्तिमान) को भिन्न-भिन्न मानने में गौरव समझ कर दोनों देवों को जगत् की हेतुता के लिए एक ही के समान स्वीकार किया है ॥ ४ ॥

शुद्धेतरसृष्टिकथनप्रतिज्ञा

इति व्यवस्थिते सृष्टिमुक्तशिष्टामिमां शृणु ।

इस प्रकार की व्यवस्था को मानते हुये । अब कही गई सृष्टि (शुद्ध सृष्टि) के अतिरिक्त (शुद्धेतर) सृष्टि को सुनिए ॥ ५ ॥

भूतिशक्तेः स्वसङ्कल्परूपक्रियाशक्तिप्रवर्त्यत्वम्

येयं भूतिमयी स्फूर्तिर्विष्णुशक्तेः पुरोदिता ॥ ५ ॥
तस्याः सङ्कल्पमय्यैव स्फूर्त्या सा बहु नर्त्यते ।

योगालम्बनभूतव्यूहविभवादेः शुद्धिमयस्फूर्तिरूपत्वम्

भूतेः शुद्धिमयी स्फूर्तिः सा व्यूहविभवात्मिका ॥ ६ ॥
यामालम्ब्य तरन्तीमं योगिनो भवसागरम् ।

इसके पहले हमने स्फूर्ति (क्रिया) रूपा जो विष्णु की भूतिमयी सृष्टि कही है । उस शक्ति की सङ्कल्पमयी स्फूर्त्ति इस सारी सृष्टि को नाना प्रकार का नाच नचाती है—वह स्फूर्त्ति शुद्धमयी तथा व्यूह विभवात्मिका है । उसका सहारा लेकर योगीगण इस भवसागर से पार उतर जाते हैं ॥ ५-७ ॥

शुद्धेतरसृष्टेः व्यूहविभवमूलकत्वम्

अथ शुद्धेतरा सृष्टिस्तन्मूलैव प्रवर्तते ॥ ७ ॥

इसके बाद शुद्धेतरा सृष्टि उसी की मूलरूपा बन कर प्रवृत्त होती है ॥ ७ ॥

तस्यास्त्रैविध्यम्

पुरुषश्चैव कालश्च गुणश्चेति त्रिधोच्यते ।
भूतिः शुद्धेतरा विष्णोः पुरुषो द्विचतुर्मयः ॥ ८ ॥
स मनूनां समाहारो ब्रह्मक्षत्रादिभेदिनाम् ।

वह शुद्धेतरा भूति सृष्टि पुरुष, काल तथा गुण के भेद से तीन प्रकार की कही गई हैं । उसका प्रथम भेद अष्टमय पुरुष हैं । वह अष्टमय पुरुष ब्राह्मण क्षत्रियादि भेद वाले उन मनुष्यों का समाहार (समूह) है ॥ ८-९ ॥

प्रद्युम्नात् मिथुनचतुष्टयोत्पत्तिः

ब्राह्मणो ब्राह्मणी चैव मिथुनं तन्मनुद्वयम् ॥ ९ ॥
प्रद्युम्नस्य मुखाज्जातं स्वसङ्कल्पेन चोदितम् ।
उरसः क्षत्रियद्वन्द्वमूरुतश्च विशो द्वयम् ॥ १० ॥

ब्राह्मण और ब्राह्मणी के मिथुन, दो मनु के सङ्कल्प से प्रेरित हो प्रद्युम्न के मुख से उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार उनके वक्षःस्थल से क्षत्री तथा क्षत्राणी के मिथुन तथा जङ्घा से वैश्य के मिथुन उत्पन्न होते हैं ॥ ९-१० ॥

पद्भ्यां शूद्रद्वयं चैव प्रद्युम्नस्य समुद्गतम् ।
समष्टिर्या मनूनां सा पुरुषो द्विचतुर्मयः ॥ ११ ॥

तदनन्तर प्रद्युम्न के पैर से शूद्र (मिथुन) उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार वही अष्टमय पुरुष सभी मनुष्यों का समष्टि (सामूहिक) रूप हुआ ॥ ११ ॥

कालप्रकृतिसृष्टिः

सूक्ष्मकालगुणावस्था सुदर्शनसमीरिता ।
प्रद्युम्नस्य ललाटाच्च भ्रुवोः कर्णादुदीरिता ॥ १२ ॥

अब दूसरे भूति के भेद **काल की उत्पत्ति** कहते हैं—सुदर्शन की प्रेरणा से सूक्ष्म काल और गुणों की अवस्था की उत्पत्ति और प्रद्युम्न के ललाट से दोनों भ्रुव तथा कर्ण की हुई है ॥ १२ ॥

अनिरुद्धाय पालनाज्ञादानम्

पुरुषः शक्तिरित्येतच्चेतनाचेतनात्मकम् ।
वर्धयेत्यनिरुद्धाय प्रद्युम्नेनोपपाद्यते ॥ १३ ॥

तब वे प्रद्युम्न अपने अंश अनिरुद्ध को 'आप पुरुष शक्ति इन चेतना चेतनात्मक तत्त्वों को बढ़ाइये' ऐसी आज्ञा प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

तेन तद्वर्धनम्

अन्तःस्थपुरुषां शक्तिं तामादाय स्वमूर्तिगाम् ।
संवर्धयति योगेन ह्यनिरुद्धः स्वतेजसा ॥ १४ ॥

तदनन्तर अनिरुद्ध अपने योगबल और तेजबल से अन्तःकरण में स्थित एवं मूर्त्ति में लीन उस पुरुष समेत शक्ति को (द्र० ९.१३) बढ़ाते हैं ॥ १४ ॥

नियतिकालयोरुदयः

नियतिः काल इत्येवं शक्तिः सङ्कल्पचोदिता ।
द्विधोदेत्यनिरुद्धात् सा यत् तत् कालमयं वपुः ॥ १५ ॥

सङ्कल्प द्वारा प्रेरित वह शक्ति नियति और काल नामक दो भेदों से अनिरुद्ध से प्रकट होती है । यही उनका कालमय शरीर कहा जाता है (द्र० ९.८) ॥ १५ ॥

गुणमय्याः प्रकृतेस्त्रैविध्यम्

यत्तद्गुणमयं रूपं शक्तेस्तस्याः प्रकीर्तितम् ।
सत्त्वं रजस्तम इति त्रिधोदेति क्रमेण तत् ॥ १६ ॥

हमने जो उस शक्ति का गुणमय रूप कहा है, वह सत्त्व, रज तथा तम तीन भेद से क्रम से अनिरुद्ध के शरीर से उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

सत्त्वादिभ्यो रजआद्युत्पत्तिः

सत्त्वाद्रजस्तमस्तस्मात् तमसो बुद्धिरुद्गता ।
बुद्धेरहङ्कृतिस्तस्या भूततन्मात्रपञ्चकम् ॥ १७ ॥

सत्त्व से रज और रज से तम, फिर उस तम से बुद्धि उत्पन्न हुई । बुद्धि से अहङ्कार तथा उससे पञ्चतन्मात्रायें उत्पन्न हुईं ॥ १७ ॥

एकादशकमक्षाणां मात्रेभ्यो भूतपञ्चकम् ।

भूतेभ्यो भौतिकं सर्वमित्ययं सृष्टिसंग्रहः ॥ १८ ॥

फिर उन पञ्चतन्मात्राओं से पञ्च महाभूत एवं ११ इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) की उत्पत्ति हुई । पुनः उन पञ्चभूतों से समस्त भौतिक पदार्थ उत्पन्न हुये । इस प्रकार सृष्टि का विस्तार हुआ ॥ १८ ॥

पुनर्विस्तरेण सृष्टिप्रपञ्चनप्रश्नः

नारदः—

भगवन् भगनेत्रघ्न तत्त्वविज्ञानवारिधे ।
आख्याहि विस्तरेणाद्य भूतेरुन्मेषमद्भुतम् ॥ १९ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगनेत्रघ्न, हे तत्त्वज्ञान के वारिधि, हे भगवान् सदाशिव ! इस समय आप भूति सृष्टि के अद्भुत उन्मेष (प्राकट्य) को विस्तारपूर्वक समझाइये ॥ १९ ॥

तत्प्रपञ्चनम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन विष्णोः सङ्कल्पकारिताम् ।
भूतेः परिणतिं चित्रां चिदचिद्वर्गसङ्कुलाम् ॥ २० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! विष्णु के सङ्कल्प से की गई चिदचिद् समूह वाली भूति की विचित्र परिणति को तत्त्वतः सुनिए ॥ २० ॥

परवासुदेवस्य नित्यविभूतिमत्ताप्रतिपादनम्

शुद्धा पूर्वोदिता सृष्टिर्या सा व्यूहादिभेदिनी ।
सुदर्शनाख्यात् सङ्कल्पात् तस्या एव प्रभोज्ज्वला ॥ २१ ॥
ज्ञानानन्दमयी स्त्याना देशभावं व्रजत्युत ।
स देशः परमं व्योम निर्मलं पुरुषात् परम् ॥ २२ ॥

व्यूहादि भेदों वाली जो शुद्धा सृष्टि पूर्व में हमने कही है, वह सुदर्शन नामक सङ्कल्प से उसी की उज्ज्वल प्रभा ज्ञानानन्दस्वरूपिणी है । वही स्त्यान (धनी) होकर देशभाव को प्राप्त होती हैं । वह देश निर्मल परम व्योम है जो पुरुष से परे है ॥ २१-२२ ॥

निःसीमसुखसन्तानमनवद्यमनाकुलम् ।
तत्रानन्दमया भोगा लोकाश्चानन्दलक्षणाः ॥ २३ ॥

वह निर्मल व्योम निःसीम सन्तान सुख से युक्त है । अनवद्य एवं अनाकुल है, वहाँ सभी भोग आनन्द से पूर्ण हैं और वहाँ का सब लोक भी आनन्द लक्षण वाला है ॥ २३ ॥

ज्ञानानन्दमया देहा मुक्तानां भावितात्मनाम् ।

श्रियः पत्युर्भगवतो नित्यमुक्तानुभाव्यत्वम्

सदा पश्यन्ति ते देवाः पुरुषं पुष्करेक्षणम् ॥ २४ ॥

वहाँ पुण्यात्मा मुक्तों का शरीर ज्ञान और आनन्दमय है, वहाँ के देवगण सर्वदा कमलनेत्र वाले पुरुष का दर्शन करते रहते हैं ॥ २४ ॥

षाड्गुण्यविग्रहं देवं तादृश्या च श्रिया युतम् ।
सङ्कल्पसाधिताशेषदेहदैहिकविस्तरम् ॥ २५ ॥
ईशानमस्य सर्वस्य जगतस्तस्थुषस्पतिम् ।
सर्वावासमनावासं नारायणमनामयम् ॥ २६ ॥

षाड्गुण्य विग्रह वाले तथा उसी प्रकार के श्री से युक्त, अपने सङ्कल्पमात्र से सम्पूर्ण देह तथा दैहिक (आत्मा या जीव) के विस्तार को करने वाले, इस चराचर जगत् के पति, सबको अपने में वास देने वाले, स्वयं निराधार और अनामय उन ईशान देव का वे देव दर्शन करते रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

मुक्तानां स्वरूपम्

तत्पदं प्राप्य तत्त्वज्ञा मुच्यन्ते वीतकल्मषाः ।
त्रसरेणुप्रमाणास्ते रश्मिकोटिविभूषिताः ॥ २७ ॥

तत्त्वज्ञ पुण्यात्मा गण उस पद को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं । वे मुक्त त्रसरेणु प्रमाण वाले तथा करोड़ो रश्मियों से भूषित रहते हैं ॥ २७ ॥

आविर्भावतिरोभावधर्मभेदविवर्जिताः ।

तेषामपुनरावृत्तिः

परमं तेऽध्वनः पारं वैष्णवं पदमाश्रिताः ॥ २८ ॥

वे न तो आविर्भूत होते हैं, न तिरोहित होते हैं, दोनों प्रकार के भेदों से वर्जित हैं, वे संसार रूप अध्वा को पार कर परम वैष्णव पद का आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥

विशन्ति नेममध्वानं कालकल्लोलसङ्कुलम् ।

तेषां यथोपासनं फलप्राप्तिः

भक्तास्ते यादृशे रूपे संसारपदमाश्रिताः ॥ २९ ॥
तादृशं ते समीक्षन्ते परमव्योमवासिनः ।

वे तत्त्वज्ञ पुनः काल के तरङ्ग से सङ्कुल इस संसार रूप अध्वा में प्रवेश नहीं करते । संसार में रहने वाले वे भक्त, भगवान् के जिस रूप की भक्ति करते हैं, परमव्योम में निवास करने पर भी वे उसी रूप का दर्शन करते हैं ॥ २९-३० ॥

विहृत्य सुचिरं कालं कोट्योघप्रतिसञ्चरम् ॥ ३० ॥
ततो विशन्ति ते दिव्यं षाड्गुण्यं वैष्णवं यशः ।

परमव्योम्नोऽशक्यवर्णनत्वम्

तदेतत् परमव्योम लेशतस्ते प्रदर्शितम् ॥ ३१ ॥

वहाँ कई करोड़ प्रलय पर्यन्त चिरकाल तक विहार कर तदनन्तर षाड्गुण्य युक्त दिव्य वैष्णव यश में प्रविष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार हमने आपको लेश मात्र परमव्योम का स्वरूप प्रदर्शित किया ॥ ३०-३१ ॥

नैव वर्षायुतेनापि वक्तुं शक्योऽस्य विस्तरः ।

जीवसमष्टिपुरुषस्यार्वाचीनस्थानवर्तित्वम्

उक्तः कर्माधिकारो यः पुरुषस्ते चतुर्युगः ॥ ३२ ॥

दस हजार वर्षों तक भी इसका परम व्योम विस्तार वर्णन करना सम्भव नहीं है । यहाँ तक हमने कर्म के अधिकारी चतुर्युग पुरुष का वर्णन किया ॥ ३२ ॥

अस्मात् स परमव्योम्नस्तिष्ठत्यर्वाचि वै पदे ।
सर्वात्मनां समष्टिर्या कोशो मधुकृतामिव ॥ ३३ ॥
शुद्ध्यशुद्धिमयो भावो भूतेः स पुरुषः स्मृतः ।
अनादिवासनारेणुकुण्ठितैरात्मभिश्चितः ॥ ३४ ॥

उस परमव्योम के (नीचे) अवर भाग में सभी आत्माओं की समष्टि मधुमक्षिका के कोश के समान स्थित हैं । वहाँ विभूति का शुद्धाशुद्धमय भाव जिसमें पुरुष स्थित है वह अनादि वासना के रेणु से कुण्ठित आत्माओं से घिरा है ॥ ३३-३४ ॥

स्वतः शुद्धानामप्यात्मनां भगवच्छक्त्या स्वरूपतिरोधानम्

आत्मनो भूतिभेदास्ते सर्वज्ञाः सर्वतोमुखाः ।
भगवच्छक्तिमय्यैवं मन्दतीव्रादिभावया ॥ ३५ ॥
तत्तत्सुदर्शनोन्मेषनिमेषानुकृतात्मना ।
सर्वतोऽविद्यया विद्धाः क्लेशमय्या वशीकृताः ॥ ३६ ॥

आत्मा के वे विभूतिभेद सर्वज्ञ और सर्वतोमुख सर्वत्र व्याप्त हैं । भगवान् की शक्तिमयी, इस प्रकार मन्दतीव्रादि भाव वाली, सुदर्शन के उन-उन उन्मेष तथा निमेष का अनुकरण करने वाली तथा क्लेशमयी अविद्या से विद्ध है और उसके वशवर्तिनी है ।३५-३६॥

तिरोहितस्वरूपाणां चातूरूप्यम्

ब्रह्मक्षत्रादिभावेन चातूरूप्यं व्रजन्ति ते ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा इति विभेदतः ॥ ३७ ॥
आत्मानो जीवसंज्ञास्ते बन्धमोक्षौ व्रजन्ति ते ।

तेषां कर्मपारवश्यात् पृथिव्यामवतरणम्

मनवो नाम कूटस्थास्तेषामुक्ताः समष्टयः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आत्मा के वे भूतिभेद ब्राह्मण क्षत्रियादि भाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र भेद से चार रूप में हो जाते हैं । इस प्रकार की आत्माओं की जीव संज्ञा है तथा वे बन्धन और मोक्ष प्राप्त करते हैं । जो कूटस्थ मनु हैं उनकी समष्टि हम पहले कह आये हैं (द्र० ६.११) ॥ ३७-३८ ॥

क्लेशाशयापरामृष्टाः सर्वज्ञाः सर्वतोमुखाः ।
नित्यसिद्धा हि भूत्यंशास्ते प्रोक्ता भगवन्मयाः ॥ ३९ ॥

वे क्लेश और आशय से अपरामृष्ट सर्वज्ञ, सर्वव्यापक नित्य सिद्ध भूत्यंश हैं और भगवन्मय कहे गए हैं ॥ ३९ ॥

आविर्भावतिरोभावैः स्वस्मिन्नात्मनि नारद ।
आत्मानो वर्तयन्तस्ते वैष्णवा आधिकारिकाः ॥ ४० ॥

हे नारद ! जो अपनी आत्मा में आविर्भाव तिरोभाव के द्वारा आत्मव्यवहार करते हैं ऐसे वे मनु उस वैष्णव तत्त्व के अधिकारी हैं ॥ ४० ॥

विष्णोः सङ्कल्परूपेण स्थित्वास्मिन् पौरुषे पदे ।
योगेनावतरन्त्यंशैः स्थानात् स्थानं धरावधि ॥ ४१ ॥

अवतीर्णानां प्रजास्रष्टृत्वम्

सृष्टायां कर्मभूमौ ते मिथुनीभूय मानवान् ।
चतुःशतं सृजन्त्येते भूयो मानवमानवान् ॥ ४२ ॥

जो विष्णु के सङ्कल्प रूप से स्थित रह कर योग के बल से पौरुष पद पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पृथ्वी पर्यन्त अवतरित होते हैं । वे कर्मभूमि की सृष्टि हो जाने पर मिथुनीभाव को प्राप्त कर ४०० की सङ्ख्या में मानवों की सृष्टि करते हैं । फिर वे मानव अन्य मानवों की सृष्टि करते हैं ॥ ४१-४२ ॥

ते चापरिमिताः सर्वे विस्तारस्तत्र वक्ष्यते ।

अनिरुद्धात् शक्त्युत्पत्तिः

अर्वाचीने पदे तस्मात् पुरुषाद्धि चतुर्युगात् ॥ ४३ ॥
सृष्टानिरुद्धतः शक्तिस्तत्सुदर्शनचोदितात् ।

शक्तौ कूटस्थमनूनामवतरणम्

सृष्टायामथ शक्तौ तु मनवोऽष्टौ महामुने ॥ ४४ ॥
अवतीर्य स्वकात् स्थानाद्विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ।
तिष्ठन्ति कललीभूतास्तस्मिञ्शक्तिमये पदे ॥ ४५ ॥

इस प्रकार सृष्ट हुये उन सभी मानवों की सङ्ख्या अपरिमित है । उनका विस्तार आगे कहेंगे । उस अर्वाचीन स्थान में (द्र० ६.३३) सुदर्शन की प्रेरणा से चतुर्युग वाले उस अनिरुद्ध पुरुष से शक्ति की सृष्टि हुई है । हे महामुने ! शक्ति की सृष्टि हो जाने पर वे आठों मनु विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित हो अपने स्थान से अवतरित हो कर उस शक्तिमय स्थान में कललीभूत (गर्भ की एक विशेष अवस्था) होकर निवास करते हैं ॥ ४३-४५ ॥

शक्तितो नियतेरुत्पत्तिः

कालो नाम गुणो नाम तस्या गर्भस्थितं द्वयम् ।
कालस्य नियतिर्नाम सूक्ष्मः सर्वनियामकः ॥ ४६ ॥

काल एवं गुण ये दोनों ही उस शक्ति के गर्भ में स्थित रहते हैं । काल का दूसरा नाम नियति है जो सूक्ष्म होते हुये भी सर्वनियामक है ॥ ४६ ॥

तत्र मनूनां स्थितिः

उदेति प्रथमं शक्तेर्विष्णुसङ्कल्पचोदितः ।
मनवोऽवतरन्त्यत्र ते सुदर्शनचोदिताः ॥ ४७ ॥

जो विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित होकर शक्ति के गर्भ से पहले पहल उत्पन्न होता है उसी काल में सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर मनु लोग इस संसार में अवतरित होते हैं । (द्र० ६.४५) ॥ ४७ ॥

यस्य स्याद्यादृशं रूपं यत्करं यत्स्वभावकम् ।
सुदर्शनप्रभावस्थं तत्तन्नियमभावितम् ॥ ४८ ॥

जिसका जैसा रूप कार्य और स्वभाव है वह सब सुदर्शन के प्रभाव से होने वाले उन-उन नियमों से प्रभावित होता रहता है ॥ ४८ ॥

नियतितः कालस्योत्पत्तिः

कालस्य पावनं रूपं यत्तु तत्कलनात्मकम् ।
उदेति नियतेः सोऽथ कालः सङ्कल्पचोदितः ॥ ४९ ॥

काल का पावन रूप, जिसे कलनात्मक (प्रेरक) कहते हैं, वह विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित काल नियति से उत्पन्न होता है ॥ ४९ ॥

तत्र मनूनां स्थितिः

नियतेर्मनवोऽप्यत्र काले ह्यवतरन्ति ते ।
कालः स कलयत्येको विष्णुसङ्कल्पचोदितः ॥ ५० ॥
कलयत्यखिलं काल्यं नदीकूलं यथा रयः ।

कालात् क्रमेण गुणमयरूपोत्पत्तिः

यत्तद्गुणमयं रूपं शक्तेः पूर्वं समीरितम् ॥ ५१ ॥
सोपानक्रमतः कालात् तद्गौणं व्यज्यते वपुः ।

तत्र प्रथमं सत्त्वोत्पत्तिः

सत्त्वं तत्र लघु स्वच्छं गुणरूपमनामयम् ॥ ५२ ॥
प्रथमं व्यज्यते कालान्मनवोऽवतरन्त्यतः ।

आनिरुद्ध्या वैष्णवमूर्त्या तस्याधिष्ठानम्

आनिरुद्धी ततो मूर्तिः स्वसङ्कल्पप्रचोदिता ॥ ५३ ॥
अधितिष्ठति तत् सत्त्वं विष्णुनाम्नैव नामभाक् ।

तत एव तस्य सुखरूपत्वं स्वच्छत्वं च सत्त्वाद्रजगुणोत्पत्तिः

तदेतत् सकलं स्वच्छं सुखमासीदनाकुलम् ॥ ५४ ॥

नियति से उत्पन्न इसी काल में मनु लोग अवतरित होते हैं । विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित वही एक काल अखिल ब्रह्माण्ड को खा जाता है, जिस प्रकार जल का वेग नदी के

किनारे को नष्ट कर देता है। हमने पहले जो शक्ति का गुण रूप कहा है, (द्र० ६.४६) सोपान क्रम से काल के अनन्तर उस शक्ति का वह दूसरा गुण रूप हैं। शक्ति के उस गुणमय रूप में सर्वप्रथम सत्त्वगुण अभिव्यक्त होता है जो लघु स्वच्छ गुणरूप तथा अनामय है। काल के प्रभाव से प्रेरित आनिरुद्धी मूर्त्ति विष्णु नाम वाली बन कर उस पर अधिकार करती हैं। इस प्रकार वह सत्त्व कलायुक्त, स्वच्छ एवं सुखदायक तथा शान्त गुण सम्पन्न था ॥ ५०-५४ ॥

अन्तःस्थमनुकं सत्त्वमन्तःस्थाचिद्गुणं मुने।
विष्णुनाधिष्ठितं तस्माद्विष्णुसङ्कल्पचोदितात् ॥ ५५ ॥
रजो नाम गुणः सत्त्वात् तस्मादाविर्भवत्यलम्।

तत्र मनूनां स्थितिः

मनवोऽवतरन्त्यत्र सत्त्वात् सङ्कल्पचोदिताः ॥ ५६ ॥

हे मुने! अन्तःकरण में रहने वाला, सबको चाहने वाला तथा अन्तःकरण में रहने वाले अचिद् गुणों से युक्त वह सत्त्व विष्णु द्वारा अधिष्ठित कर लिया गया। फिर, विष्णु सङ्कल्प प्रेरित उस सत्व से रजो नामक गुण उत्पन्न हुआ। तदनन्तर सङ्कल्प से प्रेरित मनु लोग उस सत्त्व से रजोगुण में अवतरित हो गए ॥ ५५-५६ ॥

तस्यानिरुद्धाधिष्ठितब्रह्मरूपत्वम्

ब्राह्मी मूर्तिर्गुणं तं चाप्यानिरुद्ध्यधितिष्ठति।

अतस्तस्य दुःखरूपत्वम्

तदेतत् प्रचलं दुःखं रजः शश्वत्प्रवृत्तिमत् ॥ ५७ ॥

उस रजो गुण को भगवान् की ब्राह्मी मूर्त्ति बिना रोक-टोक के अधिष्ठित करती है यह रज चञ्चल है, दुःखकारक है और प्रवृत्तिमार्ग वाला है ॥ ५७ ॥

लोलीभूतमिदं तच्च विश्वमन्तःस्थितं तदा।

रजसस्तमउत्पत्तिः

ब्रह्मणाधिष्ठितात् तस्मादन्तःस्थमनुकान्मुने ॥ ५८ ॥
सङ्कल्पचोदितं विष्णोस्तमो नाम गुणोऽभवत्।

तत्र मनूनां स्थितिः

मनवोऽवतरन्त्यत्र ते सुदर्शनचोदिताः ॥ ५९ ॥

तस्यानिरुद्धाधिष्ठितरुद्ररूपत्वम्

रुद्रो नाम गुणस्तं चाप्यानिरुद्ध्यधितिष्ठति।

उनका अनिरुद्धाधिष्ठित ब्रह्मरूपत्व एवं रुद्ररूपत्व—इस कारण उसके अन्तः में स्थित सारा जगत् ही चञ्चल रहता है। हे मुने! उस ब्रह्म से अधिष्ठित अन्तः में मनु को धारण करने वाले उस रजोगुण से विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित तम नाम का गुण उत्पन्न हुआ।

तब सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त कर वे मनु इस तमोगुण में अवतरित हो जाते हैं, फिर उस तमो नामक गुण को रुद्र देवता बे-रोक-टोक अधिष्ठित कर लेते हैं ॥ ५८-६० ॥

अतस्तस्य मोहनादिरूपत्वम्

गुरु विष्टम्भनं शश्वन्मोहनं चाप्रवृत्तिमत् ॥ ६० ॥
तत् तमो नाम भणितं गुणसागरपारगैः ।

यह तमोगुण गुरु, विष्टम्भनकारक, निरन्तर मोह उत्पन्न करने वाला तथा आलस्य पैदा करने वाला है । गुण सागर से पार होने वाले बुद्धिमानों ने उसी को तमोगुण कहा है ॥ ६०-६१ ॥

अंशतो गुणत्रयसाम्यापत्तिः

सुदर्शनमयेनैव सङ्कल्पेनात्र वै हरेः ॥ ६१ ॥
चोद्यमानेऽपि सृष्ट्यर्थं पूर्णं गुणयुगं तदा ।
अंशतः साम्यमायाति विष्णुसङ्कल्पचोदितम् ॥ ६२ ॥
त्रैगुण्यं नाम तत्त्वज्ञैस्तत् तमः परिगीयते ।

अंशतः गुणत्रय की साम्यापत्ति—विष्णु के सुदर्शनमय सङ्कल्प से सृष्टि के लिए वे गुण युग पूर्ण हो जाते हैं और विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित अंशतः साम्य को प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्वज्ञों ने उसी तम को त्रैगुण्य कहा है ॥ ६१-६३ ॥

प्रकृतिपर्यायशब्दाः

गुणसाम्यमविद्या च स्वभावो योनिरक्षरम् ।
अयोनिर्गुणयोनिश्चेत्याद्यास्त्रैगुण्यवाचकाः ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शुद्धेतरसृष्टिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३९३ ॥

* * *

प्रकृतिपर्यायशब्द—गुणसाम्य, अविद्या, स्वभाव, योनि, अक्षर, अयोनि एवं गुणयोनि इत्यादि शब्द त्रैगुण्य के वाचक हैं ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शुद्धेतरसृष्टि वर्णन नामक छठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

शुद्धेतरसृष्टिवर्णनम्

प्रकृतिपुरुषकालानां समष्टिः

अहिर्बुध्न्यः—

अन्यूनानतिरिक्तं यद् गुणसाम्यं तमोमयम् ।
तत् सांख्यैर्जगतो मूलं प्रकृतिश्चेति कथ्यते ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—अन्यून (न अधिक) अनतिरिक्त (न कम) सर्वत्र समरूप से वर्त्तमान जो तमोमय गुणसाम्य है, उसी को सांख्यवेत्ता लोग जगत् की मूलभूता प्रकृति कहते हैं ॥ १ ॥

क्रमावतीर्णो यस्तत्र चतुर्मनुयुगः पुमान् ।
समष्टिः पुरुषो योनिः स कूटस्थ इतीर्यते ॥ २ ॥

जिसमें क्रम से चतुर्मनुयुग पुमान् अवतीर्ण होता है उसी को समष्टि, पुरुष, योनि तथा कूटस्थ कहा जाता है ॥ २ ॥

यत् तत् कालमयं तत्त्वं जगतः सम्प्रकालनम् ।
स तयोः कार्यमास्थाय संयोजकविभाजकः ॥ ३ ॥

सारे जगत् को खा जाने वाला जो कालमय तत्त्व है वह उस प्रकृति और पुरुष के कार्य में रह कर उनका संयोग विभाग करता रहता है ॥ ३ ॥

भगवत्सङ्कल्पचोदितात् त्रितयादस्मात् महदाद्युत्पत्तिः

मृत्पिण्डीभूतमेतत्तु कालादित्रितयं मुने ।
विष्णोः सुदर्शनेनैव स्वस्वकार्यप्रचोदितम् ॥ ४ ॥
महदादिपृथिव्यन्ततत्त्ववर्गोपपादकम् ।

प्रकृतिः स्वरूपतः स्वभावतश्च परिणामिनी

पयोमृदादिवत् तत्र प्रकृतिः परिणामिनी ॥ ५ ॥

हे मुने ! ये कालादि त्रितय (काल, प्रकृति और पुरुष) मिट्टी के पिण्ड के समान हैं। विष्णु के सुदर्शन से उन-उन कार्यों के लिए प्रेरित हो महत्तत्त्व से लेकर पृथ्व्यादि

पर्यन्त सभी तत्त्वों को उत्पन्न करने वाले हैं। उन तीनों में एक मात्र प्रकृति दूध तथा मिट्टी के समान परिणाम (बदलने वाली) है ॥ ४-५ ॥

पुरुषः स्वरूपतोऽपरिणामी

पुमानपरिणामी सन् संनिधानेन कारणम्।

कालस्य प्रकृतिपुरुषपाचकत्वम्

कालः पचति तत्त्वे द्वे प्रकृतिं पुरुषं च ह ॥ ६ ॥

पुरुष परिणामी नहीं है। वह प्रकृति के सन्निधान में रहने से जगत् का कारण कहा जाता है। एकमात्र काल ही प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्त्वों को परिपक्व करता है ॥ ६॥

प्रकृतेर्महत्तत्त्वोत्पत्तिः

पुरुषाधिष्ठितात् तस्माद्विष्णुसङ्कल्पचोदितात्।
कालेन कलिताच्चैव गुणसाम्यान्महामुने ॥ ७ ॥

हे महामुने ! पुरुषाधिष्ठित उन विष्णु के संकल्प से प्रेरित होकर गुणसाम्य के कारण (प्रकृति और पुरुष) काल के द्वारा ग्रस लिये जाते हैं ॥ ७ ॥

महान् नाम महत्तत्त्वमव्यक्तादुदितं मुने।

महत्तत्त्वपर्यायाः

विद्या गौर्यवनी ब्राह्मी वधूर्वृद्धिर्मतिर्मधुः ॥ ८ ॥
अख्यातिरीश्वरः प्राज्ञेत्येते तद्वाचका मुने।

महतस्त्रैविध्यम्

कालो बुद्धिस्तथा प्राण इति त्रेधा स गीयते ॥ ९ ॥

हे मुने ! महान् नामक महत्तत्त्व अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। विद्या, गौ, यवनी, ब्राह्मी, वधू, वृद्धि, मति, मधु, अख्याति, ईश्वर और प्राज्ञ ये शब्द उस महत्तत्त्व के वाचक हैं। उस महत्तत्त्व के काल, बुद्धि एवं प्राण रूप तीन भेद कहे गए हैं ॥ ८-९ ॥

तमःसत्त्वरजोभेदात् तत्तदुन्मेषसंज्ञया।
कालस्त्रुटिलवाद्यात्मा बुद्धिरध्यवसायिनी ॥ १० ॥
प्राणः प्रयतनाकार•इत्येता महतो भिदाः।

तम, सत्त्व एवं रजो भेद से उन-उन गुणों के उन्मेष (प्राकट्य) संज्ञा होने से वह काल सत्त्व, तम एवं रज संज्ञा वाला है जो त्रुटि एवं लवात्मक है। अध्यवसाय करने वाली बुद्धि है। प्रयत्न करने के कारण वह प्राण है इतने ये महत्तत्त्व के भेद हैं ॥ १०-११ ॥

तत्र सात्त्विकस्य चातुर्विध्यम्

धर्मो ज्ञानं विरागश्चाप्यैश्वर्यमिति संज्ञया ॥ ११ ॥
महतः सात्त्विकं रूपं चतुर्धा प्रविभज्यते।

तामसस्यापि चातुर्विध्यम्

अधर्माज्ञानावैराग्यमनैश्वर्यं च तामसम् ॥ १२ ॥

धर्म-ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इन चार भागों में महत्तत्त्व का सात्त्विक रूप प्रविभक्त किया गया है। अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य ये चार उस महत्तत्त्व के तमोगुण के विभाग हैं ॥ ११-१२ ॥

महत्तत्त्वे मनूनामवस्थितिः

विद्याया उदरेऽष्टौ ते सुदर्शनसमीरिताः ।
मनवो गर्भतां यान्ति सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ १३ ॥

हम आपसे पहले कह आये हैं कि विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से विद्या के उदर में अष्ट मनु गर्भ धारण करते हैं। इसलिए वे सर्वज्ञ समदर्शी हैं। (द्र० ६.४५) ॥ १३ ॥

तत्र बुद्ध्युत्पत्तिः

बोधनं नाम वैद्यं तदिन्द्रियं तेषु जायते ।
येनार्थानध्यवस्येयुः सदसत्प्रविभागिनः ॥ १४ ॥

उन मनुष्यों में सबको ज्ञान अथवा वैद्य अथवा जिसे इन्द्रिय कहते हैं वे उत्पन्न होती हैं। सत् एवं असत् (अच्छी या बुरी) का प्रविभाग करने वाले लोग जिससे अपने प्रयोजन प्राप्ति के लिए अध्यवसाय करते हैं वह बुद्धि उद्भूत होती है ॥ १४ ॥

महतोऽहङ्कारोत्पत्तिः

विद्याया उदरे तत्राहङ्कृतिर्नाम जायते ।
सङ्कल्पाच्चोदिता विष्णोश्चोदितायाः सुदर्शनात् ॥ १५ ॥

महत् तत्त्व से अहङ्कार की उत्पत्ति—उस सुदर्शन से प्रेरित उस विद्या के उदर में विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित अहङ्कृति उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥

अहङ्कारपर्यायाः

अहङ्कारोऽभिमानश्च प्रजापतिरहङ्कृतिः ।
अभिमन्ता च बोद्धा चेत्यस्याः पर्यायवाचकाः ॥ १६ ॥

अहङ्कार के पर्याय—अहङ्कार, अभिमान, प्रजापति, अहङ्कृति, अभिमन्ता एवं बोद्धा—ये उस अहङ्कृति के पर्याय वाचक शब्द हैं ॥ १६ ॥

अहङ्कारस्य त्रैविध्यम्

तस्य वैकारिकं नाम रूपं सात्त्विकमुच्यते ।
तैजसं राजसं रूपं भूतादिर्नाम तामसम् ॥ १७ ॥

त्रिविध अहङ्कार—उस अहङ्कार में जब विकार उत्पन्न हुआ तब रूप हुआ जो सात्त्विक कहा जाता है जो तैजस हुआ वह राजस और जो भूतादि हुये वे ही तामस कहे गए ॥ १७ ॥

अहङ्कारस्य रूपभेदाः

कामः क्रोधश्च लोभश्च मानश्चावमतिस्तृषा ।
इत्यहङ्कृतिरूपाणि दर्शितानि मुने तव ॥ १८ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मान-अपमान एवं तृषा ये अहङ्कार के रूप हैं । हे मुने ! यहाँ तक हमने आपसे अहङ्कार का स्वरूप प्रदर्शित किया ॥ १८ ॥

अहङ्कारे मनूनामवस्थितिः

नानाविभवयुक्तायामुत्पन्नायामहङ्कृतौ ।
तदन्तर्गर्भमायाति मनूनां तच्चतुर्युगम् ॥ १९ ॥

अहङ्कार में मनुओं की अवस्थिति—अनेक ऐश्वर्य युक्त अहङ्कार के उत्पन्न होने पर मनुओं का वह चार जोड़ा उसके (अहङ्कार) के गर्भ में आ जाता है ॥ १९ ॥

अहङ्कारात् मनउत्पत्तिः

सुदर्शनेरितं विष्णोराहङ्कारिकमिन्द्रियम् ।
मनो नाम मनूनां तज्जायते चिन्तनात्मकम् ॥ २० ॥
मनस्वी बुद्धिमांश्चापि गर्भो मनुमयस्तथा ।

भूतादेः शब्दतन्मात्रोत्पत्तिः

भूतादेः शब्दतन्मात्रं तामसादथ जायते ॥ २१ ॥

विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से मनुमय, मनस्वी तथा बुद्धिमान् मनुओं का गर्भ अहङ्कारिक इन्द्रिय मनुओं का गर्भ बन कर पैदा होता है । भूतादि के शब्द तन्मात्रा तामस से उत्पन्न होती है ॥ २०-२१ ॥

तस्मादाकाशोत्पत्तिः

वियच्च शब्दतन्मात्राज्जायते शब्दलक्षणम् ।

आकाशस्य गुणकर्मणी

शब्दैकगुणमाकाशमवकाशप्रदायि च ॥ २२ ॥

उस शब्द तन्मात्री से शब्द लक्षण वाला आकाश उत्पन्न होता है । वह आकाश शब्द रूप एक गुण वाला है तथा अवकाश देने वाला होता है ॥ २२ ॥

आकाशे मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां यान्ति विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ।
मनवोऽष्टौ महाबुद्धे तदा वैकारिकात् पुनः ॥ २३ ॥

फिर तो विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित उस वैकारिक महाबुद्धि से निकल कर आठों मनु आकाश के गर्भ में आ जाते हैं ॥ २३ ॥

श्रोत्रवाचोरुत्पत्तिः

श्रोत्रं वागिति विज्ञानकर्मेन्द्रिययुगं मुने ।

समीक्षयैव देवस्य मनुषु प्रतिजायते ॥ २४ ॥

हे मुने ! श्रोत्र एवं वाणी ये दो ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ ईश्वर की प्रेरणा से उन मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

मनूनां तद्वैशिष्ट्यम्

श्रोत्रवानथ वाग्मी च गर्भो मनुमयस्तथा ।

अथ स्पर्शतन्मात्रोत्पत्तिः

सुदर्शनेरिताद्विष्णोर्भूतादेः स्पर्शमात्रकम् ॥ २५ ॥

तब वह सुनने वाला तथा बोलने वाला मनुमय गर्भ विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से भूतादि से स्पर्श तन्मात्रा वाला हो जाता है ॥ २५ ॥

तस्माद्वायूत्पत्तिः

जायते स्पर्शवान् वायुस्तस्मादपि च जायते ।

वायोः क्रियाभेदाः

शोषणं प्रेरणं चेष्टा व्यूहनं च समूहनम् ॥ २६ ॥
क्रियाभेदा इमे तस्माज्जायन्ते वायुतो मुने ।

त्वक्पाण्योरुत्पत्तिः

वैकारिकादहङ्कारात् त्वक्पाणिद्वितयं मुने ॥ २७ ॥
ज्ञानकर्मेन्द्रियद्वन्द्वं सङ्कल्पात् तस्य जायते ।

वायौ मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां याति तदा मनुमयः पुमान् ॥ २८ ॥

फिर उस स्पर्श तन्मात्रा से स्पर्श गुण विशिष्ट वायु उत्पन्न होता है । हे मुने ! उस वायु में शोषण करने वाली, प्रेरणा करने वाली, चेष्टा करने वाली, समूह बनाने वाली और अनेक भेद वाली आदि क्रियायें होती हैं । तदनन्तर हे मुने ! विष्णु के संकल्प से वैकारिक अहङ्कार से त्वगिन्द्रिय तथा पाणि ये ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियों के जोड़े उत्पन्न होते हैं । फिर वह मनुमय उनके भीतर गर्भ रूप में प्रविष्ट हो जाता है ॥ २६-२८ ॥

चेष्टामानस्तदा गर्भो विष्णुसङ्कल्पचोदितः ।
त्वक्पाणिद्वयवानासीत् स्पर्शादानादिसिद्धये ॥ २९ ॥

तब विष्णु के सङ्कल्प से प्रेरित होने के कारण चेष्टावान् वह मनुमय गर्भ त्वगिन्द्रिय वाला तथा दो हाथों वाला होता है । जिसमें त्वगिन्द्रिय से स्पर्श, ज्ञान तथा हाथ रूप कर्मेन्द्रिय द्वारा ग्रहण कार्य सिद्ध होता है ॥ २९ ॥

रूपतन्मात्रतेजसोरुत्पत्तिः

तामसादथ भूतादेः सुदर्शनसमीरितात् ।
जायते रूपमात्रं तु ज्योतिस्तस्माच्च रूपवत् ॥ ३० ॥

फिर सुदर्शन की प्रेरणा से उस तामस भूतादि से रूपतन्मात्रा उत्पन्न होती है। उस रूप तन्मात्रा से ज्योति होती है तब वह मनु रूपवान् बन जाता है ॥ ३० ॥

तेजसः क्रियाभेदाः

रूपं व्यक्तिस्तथा पाकः कान्तिर्दीप्तिरितीदृशाः ।
जायन्ते तैजसा भेदा भेदाद्वैकारिकात् तथा ॥ ३१ ॥

उस वैकारिक भेद से रूप, व्यक्ति, पाक, कान्ति, दीप्ति आदि उस तेज के भेद उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥

चक्षुः पादयोरुत्पत्तिः

सुदर्शनेरिताज्जातं चक्षुःपादयुगं मुने ।

तेजसि मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां यान्ति ते सुदर्शनचोदिताः ॥ ३२ ॥

फिर सुदर्शन की प्रेरणा से उस तेज से दोनों चक्षु तथा दोनों पैर उत्पन्न होते हैं। फिर सुदर्शन की प्रेरणा से वे मनु उनके भीतर गर्भ रूप में प्रविष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

तेषां चक्षुःपादवैशिष्ट्यम्

मनवो रूपवन्तस्ते कान्तिदीप्त्यादिशालिनः ।
चक्षुष्मन्तः पादवन्तो वीक्षणाटनयोगिनः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर वे मनु रूपवान्, कान्तिमान्, दीप्तिमान् आदि चक्षुष्मान्, पादवान्, नेत्रवान् एवं भ्रमणशील हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

रसतन्मात्राम्भसोरुत्पत्तिः

तामसादथ भूतादेर्विष्णोरीक्षानियोजितात् ।
जायते रसमात्रं तु जायन्तेऽम्भांसि वै ततः ॥ ३४ ॥

फिर विष्णु की इच्छावश तामस भूतादिगणों से रसतन्मात्रा उत्पन्न होती है। पुनः उससे जल उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥

तत्क्रियाभेदाः

जायन्तेऽथ गुणास्तेषां रसस्नेहद्रवादयः ।

रसनोपस्थेन्द्रियोत्पत्तिः

अथ वैकारिकात् तस्माद् विष्णुसंकल्पचोदितात् ॥ ३५ ॥
रसनोपस्थमित्येज्जायते दृक्क्रियात्मकम् ।

अप्सु मनूनां स्थितिः

तदन्तर्गर्भतां यान्ति विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ॥ ३६ ॥
मनवस्ते महाबुद्धे विष्णुकर्माधिकारिणः ।

तेषां रसनोपस्थवैशिष्ट्यम्

सरसाः स्नेहवन्तश्च रुधिरादिद्रवान्विताः ॥ ३७ ॥
जायन्ते रसनावन्तः पुंस्त्रीव्यञ्जनभेदिताः ।

गन्धतन्मात्रमह्योरुत्पत्तिः

सुदर्शनेरितात् तस्माद्भूतादेस्तदनन्तरम् ॥ ३८ ॥

उस जल के रस स्नेह तथा द्रवादि गुण हैं । फिर विष्णु सङ्कल्प प्रेरित उस वैकारिक जल से द्रव गुण वाले रसना एवं उपस्थेन्द्रिय उत्पन्न होते हैं । फिर विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित वे मनुगण उनके गर्भ में प्रविष्ट हो जाते हैं । तब हे महाबुद्धे ! वे मनु विष्णु कर्म के अधिकारी बन जाते हैं । फिर सभी पुरुष रूप भेद से वे सरस स्नेहवान् रुधिरादि द्रव पदार्थों से युक्त हो कर रसना वाले हो जाते हैं ॥ ३५-३८ ॥

जायते गन्धतन्मात्रं तस्माद्गन्धवती मही ।

पार्थिवगुणभेदाः

काठिन्यं गौरवं स्थैर्यमित्याद्याः पार्थिवागुणाः ॥ ३९ ॥

फिर विष्णु सङ्कल्प की प्रेरणा से गन्धतन्मात्रा उत्पन्न होती है । जिससे पृथ्वी उत्पन्न होती है । काठिन्य-गुरुता तथा स्थिरता आदि उस पृथ्वी के पार्थिव गुण हैं ॥ ३८-३९ ॥

वैकारिकादहङ्कारात् सुदर्शनसमीरितात् ।
घ्राणं पायुरिति द्वन्द्वं ज्ञानकर्मात्मकं मुने ॥ ४० ॥

सुदर्शन की प्रेरणा से वैकारिक अहङ्कार द्वारा घ्राण और पायु ये दो ज्ञान और कर्मेन्द्रियों के जोड़े उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

पृथिव्यां मनूनां स्थितिः

भुवस्ते गर्भतां यान्ति विष्णुसङ्कल्पचोदिताः ।

तेषां घ्राणपायुवैशिष्ट्यम्

गुरवः स्थिरसङ्घाता अस्थिदन्तादिसंयुताः ॥ ४१ ॥
घ्राणवन्तः पायुमन्तः सम्पूर्णावयवा मुने ।

सङ्कल्पाद्युत्पत्तिः

सङ्कल्पश्चैव संरम्भः प्राणाः पञ्चविधास्तथा ॥ ४२ ॥
मनसोऽहङ्कृतेर्बुद्धेर्जायन्ते पूर्वमेव तु ।

एवं मनूनां सर्वावयवपूर्णता

एवं सम्पूर्णसर्वाङ्गाः प्राणापानादिसंयुताः ॥ ४३ ॥
सर्वेन्द्रिययुतास्तत्र देहिनो मनवो मुने ।

फिर वे मनु विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित हो पृथ्वी के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं । तब वे गुरु स्थिर अवयवों वाले हड्डी एवं दन्तादि पार्थिव पदार्थों तथा घ्राण, पायु आदि

इन्द्रियों से युक्त हो सम्पूर्ण अङ्गावयवों से पूर्ण हो जाते हैं। सर्वप्रथम उनमें सङ्कल्प संरम्भ और पाँचों प्राण क्रमशः मन, अहङ्कार और बुद्धि से उत्पन्न होते हैं। हे मुने! इस प्रकार वे मनु सम्पूर्ण सर्वाङ्ग प्राणापानादि प्राणों तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों से युक्त शरीरधारी हो जाते हैं ॥ ४१-४४ ॥

सृष्टिप्रलयकालयोस्तुल्यपरिमाणत्वम्

यो यादृग्वर्णितः पूर्वं कालस्तत्प्रतिसञ्चरे ॥ ४४ ॥
सर्गे स एव विज्ञेयो वैष्णवैस्तत्त्वचिन्तकैः।
विद्याविपरिणामोऽयं सप्तधा वीक्षया हरेः ॥ ४५ ॥
महाभूतानि तान्याहुर्विभागान् सप्तधा मुने।

मनुविभागः

मनवोऽपि विभज्यन्ते सुदर्शनसमीरिताः ॥ ४६ ॥

पूर्व में हमने प्रलयकाल में जैसा काल का परिमाण वर्णन किया है, हे मुने! सृष्टि में भी उसी प्रकार का काल परिमाण तत्त्वचिन्तक वैष्णवों को जानना चाहिए। इस प्रकार हे मुने! विष्णु के वीक्षण से ऊपर कहे गए (महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चमहाभूत) ये सात विद्या के विपरिणाम से उत्पन्न हुये। ये ही सात महाभूत के नाम से शास्त्रों में बताये गए हैं। इसी प्रकार सुदर्शन की प्रेरणा से मनु लोग भी प्रविभक्त हो जाते हैं ॥ ४४-४६ ॥

युगशो युगशः पूर्वं पश्चात् पुंस्त्रीविभेदतः।
स्वयमागतविज्ञानाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ४७ ॥
आत्मन्यध्यक्षमीशानमनिरुद्धं दधत्यथ।

मनुभिर्गर्भोत्पादनम्

ततो ह्यध्यक्षवन्तस्ते तत्सङ्कल्पेन चोदिताः ॥ ४८ ॥
गर्भानादधते स्त्रीषु मनवस्ते शतं शतम्।

तेषां ब्राह्मणादिसंज्ञा

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति चतुर्विधाः ॥ ४९ ॥
मानवा मनुयोषिद्भ्यो जायन्ते द्वन्द्वलक्षणाः।

पहले युग-युग के रूप में, तदनन्तर स्त्री और पुरुष के भेद रूप में वे प्रविभक्त होते हैं। ये सभी स्वयं भूत, भविष्यादि, त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ तथा विज्ञानवेत्ता होते हैं। पश्चात् आत्माध्यक्ष ईशानस्वरूप अनिरुद्ध में गर्भधारण करते हैं, फिर उनके सङ्कल्प से प्रेरित हुये वे ही मनु अध्यक्षवान् होकर अपनी-अपनी स्त्रियों में सौ-सौ के रूप में गर्भ धारण करते हैं। तब वे ही मनु अपनी-अपनी स्त्रियों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रकार के मिथुन (स्त्री-पुरुष) के रूप में संस्कृत हुये ॥ ४७-५० ॥

तदुत्पन्नानां मानवमानवादिसंज्ञा

मनुभिः संस्कृतास्ते तु स्वासु पत्नीषु मानवाः ॥ ५० ॥

जनयन्ति बहून् पुत्रांस्ते स्युर्मानवमानवाः ।

तेषां भगवत्कैंकर्यकारित्वम्

तेषां गोत्राण्यनेकानि यैरिदं सकलं ततम् ॥ ५१ ॥
चातुर्वर्ण्यमया एते भगवत्कर्मकारिणः ।

भागवतकैंकर्यकारिणां मोक्षसम्पत्तिः

तेषां ये कर्म कुर्वन्ति साधवः शतवार्षिकम् ॥ ५२ ॥
विवेकज्ञानमासाद्य ते विशन्ति हरिं परम् ।

उन मानव ने भी (मनु पुत्र) अपनी-अपनी स्त्रियों में अनेक पुत्र उत्पन्न किये जो मनु की सन्तान मानव कहे गए, उनके अनेक गोत्र है, जिनसे यह सारा संसार व्याप्त है। यही चतुर्वर्णमय सृष्टि के कर्त्ता तथा भगवान् के आदेशकारी हुये । उनमें जो अच्छे लोग सौ वर्ष पर्यन्त कर्म करते हैं, वे ज्ञान प्राप्त कर विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ५०-५३ ॥

अन्येषां संसारप्राप्तिः

युगादियुगनिर्ह्रासाद्ये कर्मान्तरकारिणः ॥ ५३ ॥
फलाभिध्यायिनो यान्ति तत्प्रसूतां गतिं तु ते ।

कर्महेतुकदेवादिसृष्टिः

या सा विद्या पुरा प्रोक्ता मनुगर्भवती मुने ॥ ५४ ॥
गर्भवत्येव सा देवान् नानागुणविभेदितान् ।
दैत्यदानवरक्षांसि गन्धर्वोरगकिन्नरान् ॥ ५५ ॥
इति नानाविधा योनीर्विष्णोः सङ्कल्पचोदिता ।
स्वसङ्कल्पेन सृजति ते चान्यांस्तेऽपि चापरान् ॥ ५६ ॥

युग के आदि में एवं युग के अन्त में जो फलाभिसन्धि (फल प्राप्ति की इच्छा) से अन्यान्य कर्म करते हैं वे पुनः विष्णु से उत्पन्न होकर पुनः संसार में लौट आते हैं । हे मुने ! पूर्व में मनुओं को अपने गर्भ में धारण करने वाली विद्या (लय क्रम) कही है । वही पुनः गर्भ धारण कर अनेक प्रकार के गुणभेद से देवता, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, उरग एवं किन्नर आदि नाना प्रकार की योनियों को विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित अपने सङ्कल्प से जन्म देती है । फिर वे अन्यों की सृष्टि करते हैं और वे अन्य अपरों की सृष्टि करते हैं ॥ ५३-५६ ॥

मनुगर्भदशायां तु पितृदेवर्षिमानवाः ।
इति सृष्टास्तया शश्वद्विद्यया ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ५७ ॥

वही विद्या जब मनु से गर्भ धारण करती है तब पितर, देव, ऋषि और मानव उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार ब्रह्मा ने विद्या के द्वारा सृष्टि की रचना की ॥ ५७ ॥

मनूनां देवादीनां च कूटस्थपुरुषव्यष्टिरूपत्वम्

कूटस्थो यः पुरा प्रोक्तः पुमान् व्योम्नः परादधः ।
मनवो देवताद्याश्च तद्व्यष्टय इतीरिताः ॥ ५८ ॥

हमने पहले व्योम (अव्यक्त) से परे नीचे जिस कूटस्थ पुरुष का वर्णन किया है (द्र० ७.२) वह तो समष्टि है और मनु तथा देवतादि उसके व्यष्टि रूप हैं ॥ ५८ ॥

जीवानां भगवद्विभूतित्वम्

जीवभेदा मुने सर्वे विष्णुभूत्यंशकल्पिताः ।

हे मुने ! सभी जीवों के भेद विष्णु के भूत्यंश से कल्पित हैं ॥ ५९ ॥

महतो मेघात्मना परिणामः

अथ व्यक्तेषु मनुषु प्रजातेषु पुनः पुनः ॥ ५९ ॥
विद्यैवांशेन केनापि धेनुर्भवति शाश्वती ।
धेनुरित्युच्यते विद्या मेघभावमुपागता ॥ ६० ॥
पयः क्षरति वर्षाख्यमन्नादिपरिणामवत् ।

इस प्रकार जब मनुगण व्यक्त रूप से उत्पन्न होते हैं तब अपने कुछ अंश से वही विद्या शाश्वती धेनु के रूप में हो जाती है । उसे धेनु इसलिए कहते हैं कि वह मेघभाव को प्राप्त हो कर मनुष्यों के लिए जल की वर्षा करती है जिसके परिणाम स्वरूप अन्नादि उत्पन्न होते हैं ॥ ५९-६१ ॥

जीवानां ज्ञानभ्रंशहेतुकथनम्

तत्तु वैद्यं पयः प्राश्य सर्वे मानवमानवाः ॥ ६१ ॥
ज्ञानभ्रंशं प्रपद्यन्ते सर्वज्ञाः स्वत एव ते ।

ततः शास्त्रप्रवृत्तिः

ततः प्रवर्त्यते शास्त्रं मनुभिः पूर्वजैस्तदा ॥ ६२ ॥
तदादिष्टेन मार्गेण ते यान्ति परमां गतिम् ।

महाविद्या के उस जल को पीते ही सम्पूर्ण मनुपुत्र से उत्पन्न मानव स्वतः सर्वज्ञ होकर भी ज्ञान विभ्रष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार उनके ज्ञान विभ्रष्ट हो जाने पर उनके पूर्वज मनुगण शास्त्र का प्रणयन करते हैं । उनके शास्त्र रूप मार्ग का अनुसरण करने के कारण वे परम गति को प्राप्त करते हैं ॥ ६१-६३ ॥

लेशतः सृष्टिरुक्तेयं भूतेः शुद्धेतरा मुने ॥ ६३ ॥
सुदर्शनेन या विष्णोरेवंभावेन भाव्यते ।

अध्यायद्वयार्थसंक्षेपः

भूयश्च शृणु संक्षेपमिमं नारद तत्त्वतः ॥ ६४ ॥

हे मुने ! इस प्रकार भूति की शुद्धेतरा सृष्टि मैंने नाम मात्र आपसे कही जो भगवान्

विष्णु के सुदर्शन की प्रेरणा से इस प्रकार उत्पन्न की गई है। अब हे नारद! पुनः आप संक्षेप में मेरी यह बात सुनिए ॥ ६३-६४ ॥

एका शक्तिर्हरेर्विष्णोः सर्वभावानुगामिनी।
देवीषाड्गुण्यपूर्णा सा ज्ञानानन्दक्रियामयी ॥ ६५ ॥

हरि अथवा विष्णु की यह एक मात्र शक्ति सर्वभावानुगामिनी (सभी पदार्थों में व्याप्त) है वही देवी षाड्गुण्यपूर्ण एवं ज्ञान और आनन्द तथा क्रियामयी है ॥ ६५ ॥

भाव्यभावकभेदेन सा द्विधाभावमृच्छति।
भावकस्तत्र सङ्कल्पः सुदर्शनमयो हरेः ॥ ६६ ॥

वही शक्ति भाव्य (उत्पन्न होने वाली भूति द्र० ७.६८) तथा भावक (उत्पन्न करने वाले प्रेरक) भेद से दो प्रकार की है। उसमें विष्णु का सुदर्शनमय सङ्कल्प भावक (प्रेरक उत्पादन कर्त्ता) है ॥ ६६ ॥

अव्याघातस्तु यस्तस्य सा सुदर्शनता मुने।
ज्ञानमूलक्रियात्मासौ स्वच्छः स्वच्छन्दचिन्मयः ॥ ६७ ॥

हे मुने! वह सङ्कल्प अप्रतिहत (वे रोक-टोक) रूप से चलता रहता है। यही उसकी सुदर्शनता है जो ज्ञान का मूल एवं क्रियात्मा है, स्वच्छ है, स्वच्छन्द है और चिन्मय है ॥ ६७ ॥

भाव्यो नाम परांशो यः सा भूतिरिति गीयते।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्ता शुद्धेतरविभागिनी ॥ ६८ ॥

परा विद्या का जो अंश है वही भाव्य है उसको भूति पद से भी कहा जाता है। सङ्कर्षण से लेकर भूमि पर्यन्त वह शुद्धेतरा विभाग वाली भूति है ॥ ६८ ॥

सङ्कर्षणादिव्यूहान्ता शुद्धसर्गमयी स्थिता।
शक्त्यादिर्भूमिपर्यन्ता शुद्धेतरमयी मुने ॥ ६९ ॥

सङ्कर्षण से लेकर व्यूहान्त (अनिरुद्ध पर्यन्त) वह शुद्ध सर्गात्मिका है तथा हे मुने! शक्ति से लेकर भूमि पर्यन्त वह शुद्धेतर सर्गात्मिका है ॥ ६९ ॥

अंशयोः पुरुषो मध्ये यः स्थितः स चतुर्युगः।
शुद्धेतरमयं विद्धि कूटस्थं तं महामुने ॥ ७० ॥

दो अंशों (प्रकृति और काल द्र० ७.२-३) के मध्य में रहने वाला जो चतुर्युगमय पुरुष है उसे शुद्धेतरमय सर्ग समझो। वही कूटस्थ है ॥ ७० ॥

इतीयं विविधा भूतिर्नानातत्त्वमयी मुने।
सुदर्शनेन मरुता ज्वालेव बहुधेर्यते ॥ ७१ ॥

इस प्रकार, हे महामुने! यह भूति नाना प्रकार के तत्त्वों से परिपूर्ण अनेक प्रकार

वाली है। वह सुदर्शन के द्वारा इस प्रकार प्रेरणा प्राप्त करती है जैसे वायु के द्वारा अग्नि प्रेरित होती है ॥ ७१ ॥

आनुलोम्येन सर्गे तु प्रातिलोम्येन चाप्यये।
मध्ये च स्थाप्यते तेन कार्यते च तथा तथा॥ ७२ ॥

सृष्टि काल में अनुलोम रूप से तथा संहार काल में प्रतिलोम रूप से सुदर्शन द्वारा प्रेरित वह भूति मध्य में भी उसी की प्रेरणा से स्थापित की जाती है। वह प्रेरक सुदर्शन जैसा चाहता है उसी-उसी प्रकार का कार्य भी उससे करवाता है ॥ ७२ ॥

सुदर्शनानधीनस्य वस्तुनस्तुच्छता

भूतेरंशः स नैवास्ति स्वल्पाल्पोऽपि महामुने।
यो न याति स्वजन्मादौ सुदर्शनविधेयताम्॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शुद्धेतरसृष्टिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ४६६ ॥

* * *

सुदर्शनाधीनस्थ न होने वाली वस्तु की तुच्छता—हे महामुने! इस जगत् में स्वल्प से भी स्वल्प (अणु से भी अणु) ऐसा कोई भूत्यंश प्राप्त नहीं होगा, जो अपने जन्मादि में सुदर्शन की प्रेरणा प्राप्त किये बिना उत्पन्न हो ॥ ७३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शुद्धेतर-सृष्टिवर्णन नामक सातवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

* * *

अथाष्टमोध्याय:

जगदाधारनिरूपणम्

सृष्टौ वादिनां बहुधा विप्रतिपत्तिः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश भगनेत्रविनाशन ।
श्रुतं मयैतदखिलं तव वक्त्राम्बुजस्तुतम् ।। १ ।।

श्रीनारद ने कहा—हे देवदेवेश ! हे भगवान् ! हे भगनेत्रहा ! आप के मुख कमल से कही गई यह सारी बात मैंने सुन ली ।। १ ।।

व्याकुलस्त्वन्तरात्मा मे नानाज्ञानविमोहितः ।
केचित् त्रैभूतिकीं सृष्टिं ब्रुवते तत्त्ववादिनः ।। २ ।।

किन्तु तब भी अनेक प्रकार के अज्ञान से विमोहित मेरी अन्तरात्मा व्याकुलता प्राप्त कर रही है । कुछ तत्त्ववादी इस सृष्टि को त्रैभूतिक (मात्र तीन भूतों से उत्पन्न) मानते हैं ।।२।।

चतुर्भूतमयीमन्ये केऽप्यन्ये पाञ्चभौतिकीम् ।
तां षड्धातुमयीमेके सप्तधातुमयीं परे ।। ३ ।।

अन्य कोई लोग उसे चतुर्भूतमयी (चार भूतों वाली) मानते हैं तथा अन्य लोग उसे पाञ्चभौतिकी (पाँच भूतों से उत्पन्न होने वाली) मानते हैं । कोई एक इसे षड्धातुमयी तथा अन्य लोग सप्तधातुमयी मानते हैं ।। ३ ।।

अष्टप्रकृतिकां केचिन्नवप्रकृतिकां परे ।
दशतत्त्वमयीमेके केचिदेकादशात्मिकाम् ।। ४ ।।

कोई तत्त्वज्ञ इसे अष्टप्रकृतिका तो कोई नव प्रकृतिका कहते हैं । इसी प्रकार कोई दशतत्त्वात्मिका तो कोई एकादशप्रकृतिका मानते हैं ।। ४ ।।

एवमुच्चावचां सङ्ख्यां तत्त्वप्रकृतिगोचराम् ।
वदन्ति मुनयः सिद्धा देवा वेदास्तथैव च ।। ५ ।।

मुनि, सिद्ध, देवता एवं वेद इस प्रकार सृष्टि के तत्त्व की प्रकृतियों की सङ्ख्या में उच्चावच (न्यूनाधिक भेद) कहते हैं ।। ५ ।।

अण्डजामपरे सृष्टिं पद्मजामपि चापरे ।
पावकीमपरे सृष्टिं केचित् कायान्तरोद्भवाम् ॥ ६ ॥

कोई इस सृष्टि को अण्ड से उत्पन्न मानते हैं तो अपर लोग इसे पद्म से उत्पन्न मानते हैं । कोई पावक (अग्नि) से उत्पन्न मानते हैं तो कोई कायान्तर (अन्य-अन्य शरीर) से उत्पन्न मानते हैं ॥ ६ ॥

तत्र तत्त्वजिज्ञासया प्रश्नः

विद्यागर्भमयीमेके शून्यरूपामथापरे ।
इत्थमुच्चावचार्थास्ते नानाशास्त्रमहोदधौ ॥ ७ ॥
नानादर्शनकल्लोलजातकोलाहलोद्भटे ।
विमुह्यत्यवमग्नेयमप्लवा बुद्धिरद्य मे ॥ ८ ॥
निर्णयप्लवदानेन तामुत्तारय शङ्कर ।

कोई इसे विद्या के गर्भ से उत्पन्न मानते हैं, तो कोई शून्य से उत्पन्न मानते हैं । इस प्रकार वे लोग उच्चावच अर्थ वाली (ऊँची-नीची तत्त्व वाली) बातें कहते हैं । तब अनेक प्रकार के दर्शन रूप तरङ्ग से उत्पन्न, भीषण कोलाहल वाले, नानाशास्त्र रूप महोदधि में बिना नाव वाली मेरी बुद्धि निमग्न (डूब) हो कर मोह को प्राप्त हो रही है । अतः हे शङ्कर! इस विषय में निर्णयरूपी नौका प्रदान कर इस मेरी बुद्धि को पार कीजिए ॥ ७-९ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

उचितं तव देवर्षे यदयं प्रश्न ईरितः ॥ ९ ॥
मुह्यन्त्यत्र महान्तोऽपि शृणु मे तत्त्वनिर्णयम् ।
परमात्मा परो देव एकः षाड्गुण्यमुज्ज्वलम् ॥ १० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे देवर्षे ! आपने जो इस प्रकार का प्रश्न किया है वह उचित ही है । इस विषय में बड़े-बड़े लोग भी मोह को प्राप्त करते हैं । एक परात्मा ही सब से बड़ा देवता है । उसमें उज्ज्वल छः गुण हैं ॥ ९-१० ॥

वेदवाचोऽपि कार्त्स्न्येन तत्त्वावगाहनासामर्थ्यम्

वागनादिरनन्तापि तत्त्वं तन्नावगाहते ।
गुणैस्तटस्थितैस्तैस्तैरजानानेव सा स्थिता ॥ ११ ॥

आदि तथा अन्त से हीन (वेद) वाणी भी परमात्मतत्त्व का अवगाहन नहीं कर पाती । वह उन-उन तटस्थ गुणों से ही उस परमात्मा का स्तवन करती है । वस्तुतः वह भी इस विषय में अनभिज्ञ जैसी स्थित है ॥ ११ ॥

विप्रतिपत्तौ हेतुकथनम्

यद्गुणे नाम्नि ये श्रान्तास्तत्र तत्त्वविदो मुने ।
मनुभिस्तद्गुणैस्तैस्तैस्ते ते तत्त्वविदां वराः ॥ १२ ॥

निर्दिशन्ति जगद्धेतुं स्वनिरूढैर्महामुने ।
नानागुणनिमित्तैस्तैर्नानावक्तृसमीरितैः ॥ १३ ॥
भेदं व्यवस्थिताः शब्दैरपर्यायविदो जनाः ।

हे मुने ! जब-जब जो-जो तत्त्ववेता परमात्मा के जिस गुण और नाम को उन-उन मन्त्रों से तथा उन-उन गुणों से कहते-कहते थक गए, तब, हे महामुने ! उन्हीं तत्त्ववेत्ताओं ने अपनी बुद्धि से जो-जो जगत् का हेतु जान पड़ा उसी को कहा । इस प्रकार अनेक गुणों के निमित्त होने से तथा अनेक वक्ताओं के होने से सृष्टि के हेतु के विषय में भी शब्दों से भेद उत्पन्न हो गया और वस्तु तत्त्व को कोई भी नहीं जान सका ॥१२-१४॥

एकस्या अपि लक्ष्म्या नानाशब्दगोचरत्वम्

एवं विष्णोः प्रिया भाः सा शक्तिः षाड्गुण्यविग्रहा ॥ १४ ॥
नानानामभिरेकापि तत्त्वविद्भिरुपास्यते ।

इस प्रकार वही विष्णु प्रिया भा हैं, वही शक्ति है । षाड्गुण्यविग्रहा हैं । यद्यपि वे एक हैं किन्तु तत्त्ववेत्ता लोग अनेक नामों से उस महाशक्ति की उपासना करते हैं ॥ १४-१५ ॥

तत्त्वविदां स्वस्वदृष्टार्थवादित्वम्

तस्यां प्रवर्तमानायां स्वसङ्कल्पेन सर्जने ॥ १५ ॥
तथा निवर्तमानायां स्वसङ्कल्पेन संहृतौ ।
विज्ञानबलवैषम्याद्ये ये तत्त्वविदो मुने ॥ १६ ॥
न्यूनाधिकविभेदेन यावतीर्ददृशुर्भिदाः ।
तावतीस्तावतीस्ते ते प्रोचुः शिष्याभिचोदिताः ॥ १७ ॥
अतश्चासर्वदृग्बुद्धिः सङ्ख्यासु प्रविमुह्यति ।
पितामहादयो ये च जगत्कार्याधिकारिणः ॥ १८ ॥
तेषां न्यूनाधिभावोऽपि वक्तृभेदात् प्रकल्पितः ।
स्वातन्त्र्यमनियोज्यं तु विष्णोः षाड्गुण्यरूपिणः ॥ १९ ॥
तद्बुद्धिरुचिवैचित्र्यादण्डपद्मादिसम्भवः ।
नानुयोजनमर्हन्ति परमात्मप्रवृत्तयः ॥ २० ॥

जब वह विष्णु की शक्ति अपने सङ्कल्प से सृष्टि करने के लिए एवं संहार करने के लिए प्रवृत्त होती है, तब हे मुने ! अपने विज्ञान बल की विषमता से तत्त्ववेत्ताओं ने न्यूनाधिक रूप से जितना-जितना भेद देखा, उतना-उतना भेद शिष्य-प्रशिष्यों से पूछे जाने पर प्रतिपादित किया । इसीलिए अल्पज्ञ लोग तत्त्वों की सङ्ख्या में भी मोह को प्राप्त करते हैं । पितामहादिक एवं अन्य जो-जो भी जगत् के कार्य के अधिकारी हैं उनकी न्यूनाधिकता भी उन-उन वक्ताओं के भेद से कल्पित की गई है । वस्तुतः षाड्गुण्य रूपवाले विष्णु का स्वातन्त्र्य किसी के बस की बात नहीं । अपनी-अपनी बुद्धि की रुचि वैचित्र्य से, कोई अण्ड से और कोई पद्म से सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना करते हैं क्योंकि परमात्मा की प्रवृत्तियाँ किसी के अनुयोजन की अपेक्षा नहीं रखती ॥ १५-२० ॥

भगवत्प्रकारानन्त्यम्

स यथा चेष्टते सृष्टौ स्थितौ संहरणेऽपि वा ।
तथा तथा प्रकारास्ते ह्यनन्ताः कालवैभवात् ॥ २१ ॥

वह सृष्टि में, स्थिति में तथा संहार में जैसी चेष्टा करता है काल के माहात्म्य से उसी-उसी प्रकार उसके प्रकार भी अनन्त हैं उसकी इयत्ता नहीं है ॥ २१ ॥

वादिनामेकैकप्रकारवादित्वम्

एवं प्रकारनानात्वे देवस्य हरिमेधसः ।
कश्चिदेकं परोऽन्यं तु प्रकारमपरोऽपरम् ॥ २२ ॥
धिया विदित्वा प्रोवाच शिष्याय हितकाम्यया ।

अतः शास्त्रवैविध्यम्

चित्रा सृष्ट्यादिशास्त्राणां प्रवृत्तिरत ईदृशी ॥ २३ ॥
यथाद्यत्वे मनुष्याणां कर्मवैषम्यसम्भवा ।
अहोरात्रादिभेदेषु सुखदुःखव्यवस्थितिः ॥ २४ ॥
तथा ब्राह्मेष्वहःस्विष्टा सुखदुःखव्यवस्थितिः ।

इस प्रकार देवाधिदेव विष्णु के सृष्टि तत्त्व में प्रकारों के अनन्त होने से किसी ने उसे एक प्रकार माना, अन्य ने अन्य प्रकार माना तथा अपर ने अपर प्रकार माना और शिष्यों के हित की कामना से अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उन-उन प्रकारों को कहा । इसीलिए सृष्टि आदि शास्त्रों की प्रवृत्ति एक न होकर विचित्र-विचित्र रूप में कही गई हैं । जैसा कि आज भी मनुष्यों की सृष्टि कर्म की विषमता से भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ती है । जिस प्रकार दिन-रात के भेद से इस जगत् में सुख-दुःख की व्यवस्थिति है । उसी प्रकार ब्रह्म के दिनों में भी सुख-दुःख की व्यवस्थिति है ॥ २२-२५ ॥

ब्राह्मकल्पानां नानारूपत्वम्

केचिद्वाताकुला घस्त्रा ब्रह्मणो मुनिसत्तम ॥ २५ ॥
तथा वर्षाकुलाः केचित् केचिदातपसङ्कुलाः ।
प्रभूतशत्रवः केचित् केचित् सुखमनोहराः ॥ २६ ॥

हे मुनिसत्तम ! ब्रह्मदेव के कोई दिन वायु से, कोई दिन वर्षा से, कोई दिन घाम से व्याप्त रहते हैं । कोई दिन अनेक शत्रुओं से तथा कोई दिन सुख से कटते हैं ॥२५-२६॥

अनेन निश्चयेनैव धियमास्थाय शाश्वतीम् ।
संस्तम्भयान्तरात्मानं व्यामोहस्ते विनश्यतु ॥ २७ ॥

इस प्रकार भेद के विषय में निश्चय से अपनी शाश्वती बुद्धि का आश्रय लेकर आप अपनी अन्तरात्मा को शान्त करिए जिससे आपका व्यामोह विनष्ट हो जाए ॥ २७ ॥

इति नानाविधाकारं क्रियाभूतिविभेदितम् ।
निमित्तोत्पादकाकारं कारणं कथितं मुने ॥ २८ ॥

हे मुने ! क्रिया और भूति के भेद से होने वाले अनेक आकार प्रकार वाले निमित्तों को जो सृष्टि के उत्पादन में कारण हैं हमने आपसे कहा ॥ २८ ॥

श्रुतार्थानुवादः

नारदः—

कारणं कथितं देव सर्वज्ञ वृषकेतन ।
या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी ॥ २९ ॥
लक्ष्मीर्नाम द्विधा सा तु क्रियाभूतिविभेदिनी ।
या क्रिया नाम सङ्कल्पः स सुदर्शननामवान् ॥ ३० ॥

श्रीनारद ने कहा—हे सर्वज्ञ ! हे वृषकेतन ! आपने उस कारण को बताया जो विष्णु की महाशक्ति इस सृष्टि की समवायि कारणभूता (पट में तन्तु के समान सर्वत्र व्याप्त) हैं जिन्हें महालक्ष्मी कहा जाता है । जिनकी क्रिया और भूति ये दो भेद है । जिसमें सङ्कल्प क्रिया है वही सुदर्शन नाम से पुकारा जाता है ॥ २९-३० ॥

भूतिर्नाम जगद्रूपा कालाव्यक्तपुमात्मिका ।
अशुद्धा शुद्धरूपा तु सा व्यूहविभवात्मिका ॥ ३१ ॥
क्रिया प्रवर्तिका भूतेः सा सुदर्शनरूपिणी ।
इत्येतद्दर्शितं तत्त्वं देवदेवेन मे श्रुतम् ॥ ३२ ॥

यह संसार उसकी भूति भेद वाला हैं । इस भूति के काल, अव्यक्त एवं पुरुष ये तीन भेद हैं (द्र० ३.२९) । फिर वही अशुद्ध, शुद्ध तथा व्यूहविभवात्मिका है । भूति को प्रवृत्त कराने वाली क्रिया ही सुदर्शन स्वरूप है । यहाँ तक अत्यन्त बुद्धिमान देवाधिदेव ने मुझे तत्त्व का दिग्दर्शन कराया ॥ ३१-३२ ॥

द्वितीयप्रश्नस्मारणम्

अधुना श्रोतुमिच्छामि द्वितीयं प्रश्नमीश्वर ।
आधारो नाम यः प्रोक्तो जगतां वृषभध्वज ॥ ३३ ॥

अब हे ईश्वर ! मैं द्वितीय प्रश्न का उत्तर सुनना चाहता हूँ कि हे वृषभध्वज ! उस जगत् का आधार क्या है? ॥ ३३ ॥

सुदर्शनस्य जगदाधारत्वम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन य आधार उदीर्यते ।
येनेदं ध्रियते विश्वं तन्तुना मणयो यथा ॥ ३४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! तत्त्वतः जिसे आधार कहा जाता है, उसे सुनिए । वह इस सारे विश्व को इस प्रकार धारण करता है जिस प्रकार तन्तु (सूत्र) मणि को धारण करता है ॥ ३४ ॥

या सा शक्तिर्हरिराद्या लक्ष्मीर्नाम महामुने ।
या सा सर्वात्मनो विष्णोर्भावाभावानुयायिनी ॥ ३५ ॥

हे महामुने ! जो विष्णु की आद्याशक्ति हैं, जिन्हें लक्ष्मी नाम से पुकारा जाता है । वह सर्वात्मा विष्णु की 'भावभावानुगामिनी हैं । क्योंकि आविर्भूत होने पर आविर्भूत होती हैं एवं तिरोहित होने पर तिरोहित रहती हैं (द्र० ३.४०-५६) ॥ ३५ ॥

तस्या अल्पायुतांशांशः स्वस्वातन्त्र्यविजृम्भितः ।
क्रियाभूतिविभेदेन समुदेतीति वर्णितम् ॥ ३६ ॥

उनका अत्यन्त छोटा दस हजारहवाँ अंश अपनी स्वतन्त्रता से उद्भूत होकर क्रिया और भूति के भेद से उत्पन्न होता है । यह वात हम वहुत पहले कह आये हैं (द्र० ३.२७) ॥ ३६ ॥

सुदर्शनेन क्रियया शङ्कुनेव छदो मुने ।
भूतिः सा ध्रियते शश्वद्विस्तरं तत्र मे शृणु ॥ ३७ ॥

हे मुने ! जिस प्रकार अना (नास) पत्ते को धारण करते हैं उसी प्रकार वह सुदर्शन रूपा क्रिया भी इस भूति को धारण करती है उस विषय में अब विस्तार पूर्वक सुनिए ॥ ३७ ॥

तत्र महारात्रिधरचक्रं प्रथमम्

संहृताखिलभूतस्य स्तैमित्यं ब्रह्मणो हि यत् ।
अप्ययः सा महारात्रिस्तत्सङ्कल्पेन धार्यते ॥ ३८ ॥
महारात्रिधरो नाम तदरं वै सुदर्शनम् ।
तदेकारं महच्चक्रमद्यत्वे चिन्त्यते सुरैः ॥ ३९ ॥

प्रथम महारात्रिधरचक्र—जब ब्रह्मदेव सारे भूतों को अपने में उपसंहृत कर निस्तब्ध हो सो जाते हैं वही प्रलय है जिसे महारात्रि भी कहते हैं । उस महारात्रि को वह सङ्कल्पात्मक सुदर्शन धारण करता है । उस समय मात्र उस महारात्रि के धारण करने से वह सुदर्शन एक अरा वाला होता है । इसलिए देवता लोग आज भी उसे एक अरा वाला महाचक्र कहते हैं ॥ ३८-३९ ॥

उषश्चक्रं द्वितीयम्

यत् सिसृक्षामयं रूपं ब्रह्मणः शक्तिसम्भवम् ।
ज्वालेव वायुना वह्नेः सङ्कल्पेन तदीर्यते ॥ ४० ॥
उषश्चक्रं तदुद्दिष्टमरद्वितयभूषितम् ।
भूतिकामैरजस्रं तद्ब्रह्मणा चैव धार्यते ॥ ४१ ॥

द्वितीय उषश्चक्र—जब शक्ति से होने वाला ब्रह्मदेव का सिसृक्षामय (सृष्टि करने की इच्छा वाला) रूप होता है, तब जिस प्रकार वायु ज्वाला को उत्तेजित करता है उसी प्रकार वह सङ्कल्प भी उनकी सिसृक्षा को बढ़ाता है । तब वह चक्र दो अरों से विभूषित होकर

उषश्चक्र के नाम से कहा जाता है । उस चक्र को अपना कल्याण चाहने वाले लोग एवं ब्रह्मदेव भी सदैव धारण करते हैं ।। ४०-४१ ।।

उदयचक्रं तृतीयम्

यः स सङ्कर्षणोन्मेषो यो धारयति तं सदा ।
साक्षादुदयचक्रं तद्विज्ञानत्रितयात्मकम् ।। ४२ ।।
स सङ्कर्षणसङ्कल्पोज्ञानकामैर्निषेव्यते ।

तृतीय उदयचक्र—जो वह सङ्कर्षण रूप उन्मेष है उसे वह चक्र सर्वदा धारण करता है । इस कारण विज्ञान त्रितयात्मक होने से वह सङ्कल्प उदयचक्र कहा जाता है । वह सङ्कर्ष रूप सङ्कल्प ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाले लोगों से सर्वदा उपासित रहता है ।। ४२-४३ ।।

ऐश्वर्यचक्रं चतुर्थम्

यः स प्राद्युम्न उन्मेष ऐश्वर्यमय ऊर्जितः ।। ४३ ।।
वैष्णवेनेव लाक्ष्मेण स सङ्कल्पेन धार्यते ।
तद्वै प्रद्युम्नसङ्कल्पमैश्वर्यमयमूर्जितम् ।। ४४ ।।
सम्यक् चतुररं चक्रमैश्वर्यस्था उपासते ।

चतुर्थ ऐश्वर्यचक्र—इसके बाद प्रद्युम्न नाम का उन्मेष है जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यो से परिपूर्ण हैं वह भी विष्णु के अंशभूत लक्ष्मी जन्य सङ्कल्प से धारित होता है । वह प्रद्युम्न सङ्कल्प ऐश्वर्यमय है जो तेज से परिपूर्ण है और उत्तम चार अरों वाला चक्र है जिसकी ऐश्वर्यशाली लोग उपासना करते हैं ।। ४३-४५ ।।

शक्तिमहाचक्रं पञ्चमम्

आनिरुद्धो य उन्मेषः शक्तितेजोविदीपितः ।। ४५ ।।
सङ्कल्पो ब्रह्मशक्त्युत्थस्तं धारयति सर्वदा ।
तद्वै शक्तिमहाचक्रं पञ्चारं परिकल्पितम् ।। ४६ ।।
शक्तितेजःसमृद्ध्यर्थं विश्वे देवा उपासते ।
व्यूहान्तरसमाख्यातं केशवादिद्विषट्ककम् ।। ४७ ।।

पाँचवाँ पाँच अरों वाला शक्ति महाचक्र—आनिरुद्ध नामक उन्मेष शक्ति तथा तेज से देदीप्यमान है । ब्रह्म शक्ति से उत्पन्न हुआ सङ्कल्प उस (आनिरुद्ध नामक उन्मेष) को धारण करता है । वह शक्ति नामक महाचक्र पाँच अरों वाला है उसकी उपासना विश्वेदेव लोग अपनी शक्ति तथा तेज की अभिवृद्धि के लिए करते हैं और जो केशवादि बारह व्यूहान्तर हैं उन्हें हम पहले कह आये हैं । (द्र० ५.५४६-४६) ।। ४५-४७ ।।

षडरचक्रं षष्ठम्

सुदर्शनेन ध्रियते येन सङ्कल्परूपिणा ।
षडरं तन्महाचक्रं व्यूहान्तरविभावकम् ।। ४८ ।।

ऋत्वरं तत् समाख्यातं व्रतकामा उपासते।

छठवाँ छः अरों वाला शक्ति महाचक्र—यतः उन विभवादि व्यूहान्तरों को बारहों सङ्कल्प रूपी सुदर्शन धारण करते हैं वही छः अरों वाला महाचक्र है। उनका नाम ऋत्वर कहा गया है। व्रत की इच्छा वाले उनकी उपासना करते हैं॥ ४८-४९ ॥

महासुदर्शनचक्रं सप्तमम्

विभवोः यः पुरा प्रोक्तः पद्मनाभादिरूर्जितः॥ ४९ ॥
स येन ध्रियते विष्णोः सङ्कल्पेन महामुने।
महासुदर्शनं नाम द्वादशारं तदुच्यते॥ ५० ॥
विभवान्तरसंज्ञं तद्यच्छक्त्यावेशसम्भवम्।
धृतं तद् द्वादशारेण तत्सङ्कल्पेन चक्रिणा॥ ५१ ॥

सातवाँ बारह अरों वाला महासुदर्शन चक्र—हे मुने! हमने पूर्व में जो तेजस्वी पद्मनाभादि (द्र० ५.५०-५७) व्यूहों का वर्णन किया है उन्हें विष्णु का सङ्कल्प धारण करता है। उसका नाम महासुदर्शन है। वह द्वादश अरों वाला है जो विष्णु की महाशक्ति के आवेश से उत्पन्न हुआ है। उसी ने विभवान्तर संज्ञक व्यूहों को अपने द्वादश अरों वाले चक्र से धारण किया है॥ ४९-५१ ॥

सहस्रारचक्रमष्टमम्

यत्तु तत् परमं व्योम यद् विष्णोः पदमूर्जितम्।
सहस्रारेण चक्रेण तत्सङ्कल्पेन धार्यते॥ ५२ ॥

आठवाँ सहस्रार चक्र—विष्णु के अत्यन्त तेजस्वी धाम को, जिसे परम व्योम कहते हैं, उसे विष्णु का सङ्कल्प रूप सहस्र अरों वाला चक्र धारण करता है॥ ५२ ॥

एते सौदर्शना व्यूहाः समासेन प्रकीर्तिताः।
आधाराधेयभावेन वर्तन्ते ते स्वयं मुने॥ ५३ ॥

इस प्रकार हे मुने! हमने संक्षेप से इतने सुदर्शन व्यूहों का (द्र० ८.३७-५२) वर्णन आपसे किया। वे विष्णु स्वयं ही आधार-आधेय भाव से सर्वत्र व्याप्त हैं॥ ५३ ॥

सङ्कल्पः कोटिकोट्यंशः शक्तेर्भूतिस्तथा द्विधा।
शक्तिः सा वैष्णवी सत्ता बहुधैवं प्रभासते॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जगदाधारवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ५२० ॥

* * *

शक्ति के करोड़हवें का करोड़हवाँ अंश सङ्कल्प है । शुद्धभूति तथा शुद्धेतरभूति इस प्रकार भूति के दो भेद हैं । वह शक्ति ही वैष्णवी सत्ता आदि अनेक नामों से भासित हो रही है ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जगदाधार-वर्णन नामक आठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

अशुद्धजगदाधारनिरूपणम्

प्रथमं पौरुषचक्रम्

अहिर्बुध्न्यः—

आधारः कथितः शुद्धः शुद्धा सा येन धार्यते।
भूतिर्व्यूहादिरूपेण या सा देवी प्रवर्तते॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हमने शुद्ध आधार का वर्णन किया जो व्यूहादि रूप से शुद्धाभूति को धारण करता है और जिसके द्वारा यह भूति प्रवृत्त होती है॥ १ ॥

पुमाद्यवनिपर्यन्ता यथा शुद्धेतरात्मिका।
सा येन धार्यते चक्रं तत्सङ्कल्पमयं शृणु॥ २ ॥

पुरुष से लेकर अवनि पर्यन्त शुद्धेतरात्मिका भूति को जो सङ्कल्पमय चक्र धारण करता है अब उस चक्र को सुनिए॥ २ ॥

शक्त्यादिचक्राणि

त्र्यरं तत् पौरुषं चक्रं पुरुषो येन धार्यते।
चक्रं त्रिंशदरं प्रोक्तं शक्तिः सा येन धार्यते॥ ३ ॥

पौरुष नामक वह चक्र तीन अरों वाला है जो पुरुष को धारण करता है और जो शक्ति को धारण करता है वह तीस अरों वाला चक्र है॥ ३ ॥

तादृशं नैयतं चक्रं नियतिर्येन धार्यते।
षडरं कालचक्रं तत् स कालो येन धार्यते॥ ४ ॥

और जो नियति को धारण करता है वह नैयत चक्र कहा जाता है। काल या नियति को धारण करने वाला वह चक्र छः अरों वाला है॥ ४ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव धार्यन्ते यैर्महामुने।
तानि त्वाधारचक्राणि त्र्यराणीति विदुर्बुधाः॥ ५ ॥

हे महामुने! सत्त्व, रज एवं तम को जो धारण करते हैं। वे आधारचक्र तीन अरों वाले हैं। ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है॥ ५ ॥

चक्रमेकादशारं तु बुद्धिः सा येन धार्यते ।
अष्टारं तन्महाचक्रमहङ्कारस्य धारकम् ॥ ६ ॥

जो बुद्धि को धारण करता है वह ग्यारह अरों वाला चक्र है और जो अहङ्कार को धारण करता है वह आठ अरों वाला महाचक्र है ॥ ६ ॥

एकारं वैयतं चक्रं द्व्यरं तद्वायुधारकम् ।
त्र्यरं तैजसमाख्यातमाप्यं चतुररं मुने ॥ ७ ॥

जो आकाश को धारण करता है वह एक अरा वाला चक्र है । वायु को धारण करने वाला दो अरों वाला चक्र है । हे मुने ! जो तेज को धारण करता है वह तीन अरों वाला तथा जो जल को धारण करता है वह चार अरों वाला चक्र है ॥ ७ ॥

पञ्चारं पार्थिवं चक्रं पृथिवी येन धार्यते ।
गुणचक्राण्यरैः सर्वाण्यङ्कितानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

पृथ्वी धारण करने वाला चक्र पाँच अरों वाला है । सभी गुण चक्र तीन-तीन अरों से अङ्कित है ॥ ८ ॥

एकादशविधं चक्रमैन्द्रियं द्वियुगारकम् ।
इयमाधारशक्तिस्ते प्रोक्ता प्रातिस्विकी मुने ॥ ९ ॥

इन्द्रियों को धारण करने वाला चक्र ग्यारह प्रकार का है जिसमें दो-दो जोड़े अरे लगे हुये हैं । हे मुने ! इस प्रकार हमने आपसे प्रत्येक-प्रत्येक की आधारशक्ति कही ॥९॥

महाविभूतिचक्रम्

एकधारं महच्चक्रं महाभूतिकरं शृणु ।
महाकेतुपटी यद्वद्वितता व्योम्नि धार्यते ॥ १० ॥
अनिशं पावमानेन पवमानेन वै मुने ।
सङ्कर्षणादिभूम्यन्ता विष्णुशक्तिमयी तथा ॥ ११ ॥
निरालम्बे पटे भूतिः सङ्कल्पेनैव धार्यते ।
तत्सङ्कल्पमयं चक्रमनन्तारं महामुने ॥ १२ ॥

महाविभूतिचक्र—अब महाविभूति प्रदान करने वाले एक अरा वाले महाचक्र को सुनिए । जिस प्रकार आकाश में बहुत बड़े ध्वजा की पट्टी विस्तृत रूप से फहराती है, हे मुने ! उसी प्रकार निरन्तर पावमान और पवमान रूप सङ्कर्षणादि भूम्यन्त विष्णुशक्तिमयी निरालम्ब पट में सङ्कल्प के द्वारा भूति धारण की जाती है । हे महामुने ! वह सङ्कल्पमय चक्र अनन्त अरों से युक्त है ॥ १०-१२ ॥

दिव्यं महाविभूत्याख्यमवाङ्मनसलङ्घितम् ।
अप्रमेयमनाद्यन्तं भावाभावस्वलक्षणम् ॥ १३ ॥

उस अनन्त अरों वाले दिव्य चक्र का नाम महाविभूति है जहाँ वाणी एवं मन पहुँच

नहीं सकते वह अप्रमेय (किसी में न अँटने वाला) आदि अन्त से रहित भाव (उत्पत्ति) अभाव (तिरोहित) लक्षणों से युक्त है ॥ १३ ॥

अनन्तारमपर्यन्तं पर्यन्तकुलसङ्कुलम् ।
ब्रह्माण्डकोटिकोट्योघकोट्यर्बुदविभावितम् ॥ १४ ॥

उसमें लगे रहने वाले अरों की सङ्ख्या नहीं की जा सकती । ये अपर्यन्त हैं तथा सर्वत्र अन्त तक फैला है । करोड़ों ब्रह्माण्ड, करोड़ों ब्रह्माण्ड समूह, उनके भी करोड़ों अर्बुद अरब सङ्ख्या पर्यन्त ब्रह्माण्ड में वह सर्वत्र व्याप्त है ॥ १४ ॥

महाभूतसहस्रौघसहस्रौघविभावनम् ।
ज्योतिरिङ्गणसच्छायैरिन्द्रियैः कोटिकोटिशः ॥ १५ ॥

महाभूतों के हजारों समूह तथा उन हजार समूहों के भी हजारों को अपनी ज्योतिरूप इन्द्रियों से करोड़ों, उसके भी करोड़ों को वह विभावित (प्रकाशित) करता है ॥ १५ ॥

अङ्कितं क्षुद्रमेधाभैर्ब्रह्माण्डैरनुचित्रितम् ।
महाभूतमयीभिस्तु क्वचिदद्भिरिवाततम् ॥ १६ ॥

वह महाविभूति छोटे-छोटे बादलों के समान अनेक ब्रह्माण्डों से युक्त होकर चित्र-विचित्र है कहीं-कहीं महाभूतमय जल से भी वह परिपूर्ण है ॥ १६ ॥

विप्रुड्भिरिव वर्षाणां विततं वैष्णवं पदम् ।
महाभूतैः क्वचिद्दीप्तं ज्योतिर्भिरयुतायुतैः ॥ १७ ॥

जिस प्रकार वर्षा में अनन्त जलकण व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार वह वैष्णव पद (अनन्तार चक्र) सर्वत्र अधिक है । कहीं-कहीं अयुत, उन अयुतों के भी अयुत, महाभूत रूप ज्योति के भी अयुत महाभूत रूप ज्योति से वह जगमगाता रहता है ॥ १७ ॥

वीजितं भूतपवनैर्व्यजनोत्थैरिव क्वचित् ।
क्षुद्रावकाशसङ्काशैराकाशैः कोटिकोटिशः ॥ १८ ॥
छिद्रितं विविधाकारैरहङ्कारैरहङ्कृतम् ।
अमहद्भिर्महद्भिश्च कोटिकोटिविभागिभिः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार पङ्खे से वायु डुलायी जाती है उसी प्रकार कहीं-कहीं भूत रूपी पवन से वह वीजित (हिलाया-डुलाया) है । कहीं-कहीं छोटे-छोटे आकाश के समान करोड़ों, उसके भी करोड़ों महाकाश से वह छिद्र युक्त है । वह महाविभूति चक्र अनेक प्रकार के अहङ्कारों से अहङ्कृत है और करोड़ों तथा उसके भी करोड़ों की सङ्ख्या वाले महत्तत्त्वों एवं अमहत्तत्त्वों से वह युक्त है ॥ १८-१९ ॥

अङ्कितं विविधाकारैस्तमोभिर्बहुलं कृतम् ।
क्वचिद्विविधसन्तापचलनैरयुतायुतैः ॥ २० ॥
रजोभी रञ्जितं क्षुद्रैर्विशदैर्लघुभिः क्वचित् ।
अङ्कितं बहुभिः सत्त्वैर्विमलैः कोटिकोटिशः ॥ २१ ॥

अनेक प्रकार के तमों से अङ्कित रहने के कारण वह तम बहुल है । कहीं-कहीं अयुत, उसके भी अयुत अनेक प्रकार के सन्ताप से चलित होने वाले विशद एवं लघु रजोगुण से (लाल) रंगा हुआ है । इसी प्रकार कोटि-कोटि स्वच्छवर्ण वाले सत्त्वगुण से भी वह अङ्कित है ॥ २०-२१ ॥

त्रिविधैः षट्प्रकारैश्च द्विषट्कप्रविभागिभिः ।
चतुर्विंशतिसम्भेदैस्त्रिंशदर्धद्वयोज्ज्वलैः ॥ २२ ॥

तीन प्रकार वाले (जाड़ा गर्मी वर्षा), छः प्रकार वाले (षड़ृतु), बारह प्रकार वाले (महीने), चौबीस प्रकार वाले तीस के आधे अर्थात् पन्द्रह पन्द्रह रूप दो पक्षों से वह उज्ज्वल है ॥ २२ ॥

षष्टिषट्कसमाकीर्णैः कोटिकोटिविभागिभिः ।
कालैरनेकसाहस्रैरयुतायुतसङ्कुलैः ॥ २३ ॥

साठ का छः गुना (अर्थात् तीन सौ साठ) दिनों से व्याप्त है इस प्रकार कोटि-कोटि विभाग वाले अनेक सहस्र, दस सहस्र, उसके भी दस सहस्रात्मक काल से वह व्याप्त है ॥ २३ ॥

कीर्णं नियतिरूपेण नानानियमनात्मना ।
कोटिकोटिसहस्रौघकोटिकोटिगुणेन च ॥ २४ ॥
शक्त्या नानाविधाकारमधुकोशनिभात्मना ।
निष्यन्दमानतत्त्वौघस्वरूपमधुविप्रुषाम् ॥ २५ ॥

अनेक प्रकार के नियमन से युक्त नियतियों से वह चक्र व्याप्त है । करोड़ों, उसके भी करोड़ों, उसके भी सहस्र करोड़ों तथा उस करोड़ के करोड़ों गुण वाली शक्ति से वह इस प्रकार व्याप्त है जैसे अनेक प्रकार छतों से मधुकोश (मधु का छत्ता) व्याप्त रहता है और वह चूते हुये तत्त्वौघ स्वरूप मधु बिन्दुओं से युक्त है ॥ २४-२५ ॥

कोटिकोटिसहस्रौघनियुतायुतरूपया ।
स्निग्धं क्वचिदिवात्यर्थं पुंसा क्वचिदिवास्थितम् ॥ २६ ॥

करोड़ों, उसके भी करोड़ों तथा उसके सहस्र समूहों, उसके भी लाखों, उसके भी हजारों रूप वाले शक्ति से वह स्निग्ध तथा कहीं-कहीं पुरुष रूप से स्थित है ॥ २६ ॥

शुक्लरक्तासिताकारकर्मकल्पितरूपिणा ।
अनेकमशकाकीर्णोदुम्बरप्रतिमात्मना ॥ २७ ॥

शुक्ल, रक्त तथा काले आकार के कल्पित रूप वाले कर्मों से युक्त वह मानो अनेक मच्छरों से युक्त उदुम्बर के समान कहीं-कहीं पर स्थित है ॥ २७ ॥

नानाजीवविभेदेन नानाफलविधाजुषा ।
शुभाशुभोभयाकारवासनाजटिलात्मना ॥ २८ ॥
अनेकक्लेशकोशेन पुरुषेणास्थितं क्वचित् ।

निर्मलानन्दसम्बोधमहासत्तामयेन च ॥ २९ ॥
नित्यैर्मुक्तैर्निराबाधैर्निर्मलानन्दलक्षणैः ।
साक्षात् पश्यद्भिरीशानं नारायणमनामयम् ॥ ३० ॥
देव्या लक्ष्म्या समासीनं पूर्णषाड्गुण्यदेहया ।
नित्योदितैर्नित्यतृप्तैरतिक्रान्तैस्तमो महत् ॥ ३१ ॥
आत्मभिः शोभितेनैवं वरेण नियताङ्कितम् ।
षाड्गुण्यविग्रहैर्व्यूहैः पुरुषैः पुष्करेक्षणैः ॥ ३२ ॥
आस्थितं जगदुत्पत्तिस्थितिसंहृतिकारिभिः ।
इति व्याप्तवतीमेतां विभूतिं वैष्णवीं पराम् ॥ ३३ ॥
चित्राम्बरधरां सम्यग्दधदात्मानमात्मना ।
सङ्कल्पो वैष्णवो योऽयं मणीन् सूत्रमिवास्थितः ॥ ३४ ॥
तदनन्तारमव्यक्तं महच्चक्रं सुदर्शनम् ।
भावितं स्मृतिमात्रेण भावयत्यखिला गतीः ॥ ३५ ॥

नाना प्रकार के जीवों के भेद वाले नाना प्रकार के फल का भोग करने वाले, शुभ तथा अशुभ उभय प्रकार की वासनाओं से कठिनतापूर्वक जकड़े हुये करण वाले पुरुष से युक्त हो महाविभूति रूप चक्र सुदर्शन कहीं स्थित है। कहीं निर्मलानन्द संदोह सत्तात्मक, नित्यमुक्त, बाधाओं से रहित, निर्मलानन्दलक्षण से युक्त साक्षात् ईशान अनामय नारायण, जो षाड्गुण्य स्वरूप साक्षात् महालक्ष्मी के साथ विराज रहे हैं। उन लक्ष्मीनारायण का दर्शन करने वाले नित्य उदीयमान, नित्यतृप्त, तम का अतिक्रमण करने वाले आत्माओं से शोभित तथा वर प्रदान करने वाले, षाड्गुण्य युक्त शरीरधारण करने वाले, कमलनेत्र पुरुषों से जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने वाले हैं उनसे संयुक्त हैं और सर्वत्र व्याप्त वह वैष्णवी परामहा विभूति है जो चित्र-विचित्र आकाश को धारण करती है तथा अपनी आत्मा को भी अपने में ही धारण करने वाली है। इस प्रकार का यह वैष्णव सङ्कल्प सारे जगत् को इस भाँति धारण करता है जैसे सूत्र मणियों में अनुस्यूत होकर उसे धारण करता है। ऐसा है वह अनन्त अरों वाला, अव्यक्त, महान् चक्र वाला सुदर्शन जो स्मरण करते ही सब कुछ करने में समर्थ है ॥ २८-३५ ॥

संहृतिचक्रम्

यो जिहीर्षामयो नित्यः सङ्कल्पो वैष्णवः परः ।
अनन्तारमपर्यन्तं तत्संहृतिसुदर्शनम् ॥ ३६ ॥

जो सारे संसार का प्रलय करने वाला, पर और नित्य वैष्णव सङ्कल्प है वह अनन्त अरों वाला तथा आदि और अन्त से रहित है, उसे संहृति नामक सुदर्शन कहा जाता है ॥ ३६ ॥

एक एव तु सङ्कल्पो रूपैर्नानोपगीयते ।
अनन्तमपरिच्छेद्यमप्रमेयमनूपमम् ॥ ३७ ॥

सर्वत्र एक विष्णु मात्र का सङ्कल्प है जो अपने विभिन्न रूपों से अनेक प्रकार की संज्ञा धारण करता है। वह अनन्त है, परिच्छेद (इयत्ता) से रहित है, अप्रमेय (किसी मे न अँटने वाला) एवं सादृश्य से रहित है ॥ ३७ ॥

अतरङ्गार्णवाकारमनभ्राम्बर संन्निभम्।
एकं तत् परमं ब्रह्म षाड्गुण्यस्तिमितं महत् ॥ ३८ ॥

बिना तरङ्ग के समुद्र जैसा शान्त तथा बादलरहित आकाश के समान निर्मल है, वह एक है, परब्रह्म है, षड्गुणों से युक्त निश्चल एवं महान् है ॥ ३८ ॥

भावाभावमयी तस्य शक्तिरेकानपायिनी।
तद्धर्मधर्मिणी दिव्या ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः ॥ ३९ ॥

उसकी शक्ति भाव (उत्पत्ति) एवं अभाव (अन्तर्हितता) से युक्त है, वह एक हैं अविनाशिनी है, तद्धर्मधर्मिणी (उसके अनुकूल आचरण करने वाली) एवं दिव्या है तथा चन्द्रमण्डल में रहने वाली चन्द्रिका के समान निर्मल है ॥ ३९ ॥

तस्य सङ्कल्पसङ्कल्पो रूपव्याप्रियमाणता।
स्तैमित्यस्थितिसङ्कल्पस्तिमितं तत् सुदर्शनम् ॥ ४० ॥

उन पर ब्रह्म विष्णु के सङ्कल्प का सङ्कल्प रूपों में आसक्ति रखने वाला स्तैमित्य-स्थिति तथा सङ्कल्प का स्तिमित जो है वही सुदर्शन है ॥ ४० ॥

चलनचक्रम्

प्रभवे चाप्यये वापि स्थितौ वापि महामुने।
चलत्तापूर्वरूपं यः सङ्कल्पस्तत्र वर्तते ॥ ४१ ॥
चलनं नाम तच्चक्रं सुदर्शनमयं महत्।

तस्य त्रैविध्यम्

भेदास्त्रयोऽस्य विज्ञेयास्तन्त्रविज्ञानपारगैः ॥ ४२ ॥

हे महामुने! सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय एवं स्थिति में चलत्तापूर्वक जो सङ्कल्प प्रवृत्त होता है वह चलन नामक सुदर्शनमय चक्र कहा जाता है। वह अत्यन्त महान् है । तन्त्र विज्ञान के पारगामी विद्वान् उस चक्र के तीन भेद कहते हैं ॥ ४२ ॥

महासृष्टिमयं तत्र समासव्यासलक्षणम्।
नानाशक्तिसमाकीर्णं तच्च ते कथितं पुरा ॥ ४३ ॥

प्रथम भेद महासृष्टि नाम वाला चक्र है जिसका संक्षेप तथा विस्तारपूर्वक लक्षण हम पहले कह आये हैं। वह अनेक प्रकार की शक्तियों से परिपूर्ण है ॥ ४३ ॥

महासंहारचक्रं च समासव्यासलक्षणम्।
तादृगेवात्र विज्ञेयं तच्च ते दर्शितं पुरा ॥ ४४ ॥

उसका दूसरा भेद महासंहार नामक चक्र है उसका संक्षेप तथा विस्तारपूर्वक लक्षण

हम पहले कह आये हैं वह भी उसी प्रकार की नाना शक्तियों से परिपूर्ण है ॥ ४४ ॥

स्थितिचक्रं तु यन्मध्ये समासव्यासलक्षणम् ।
तस्य वक्ष्यामि विस्तारं यत्प्रमाणतया स्थितम् ॥ ४५ ॥

उस महासृष्टि तथा महाप्रलय के मध्य में रहने वाला जो स्थिति चक्र है । अब उसका संक्षेप तथा विस्तारपूर्वक लक्षण और वहाँ वह जितने प्रमाण में स्थित है उसका विस्तार यह सब आगे कहूँगा ॥ ४५ ॥

यथा ह्येको नटो भावैर्नानारूपैर्विभज्यते ।
तथा सङ्कल्प एवैकस्तैस्तैर्भेदैर्विभज्यते ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अशुद्धजगदाधार-निरूपणं नाम नवमोऽध्याथः ॥ ९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ५६६ ॥

*

जिस प्रकार एक ही नट अपनी चेष्टाओं से नाना प्रकार के रूपों को धारण कर भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ता है उसी प्रकार वह वैष्णव सङ्कल्प एक होते हुये भी उन-उन क्रिया-कलापों के भेद से भिन्न-भिन्न रूप धारण कर भिन्न-भिन्न नाम वाला हो जाता है ॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अशुद्ध जगदाधारवर्णन नामक नवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

*

अथ दशमोऽध्यायः

अर्थात्मकप्रमाणनिरूपणम्

नारदः—

भगवन् देवदेवेश भवानीजीवितेश्वर ।
लोकनाथ जगन्नाथ देवानामभयप्रद ॥ १ ॥
नमस्ते त्रिपुरघ्नाय तत्त्वविज्ञानसिन्धवे ।
दशाव्ययाय ते नित्यं षडङ्गाय नमो नमः ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे भवानीप्राणनाथ ! हे लोकनाथ ! हे जगन्नाथ ! हे देवताओं को अभय प्रदान करने वाले प्रभो ! त्रिपुरविनाशक ! तत्त्वविज्ञान के समुद्र ! आपको नमस्कार है । सर्वदा एक अवस्था वाले, षडङ्ग वेदस्वरूप आपको नमस्कार है । पुनः-पुनः आपको नमस्कार है ॥ १-२ ॥

यदेतदुदितं नित्यं जगत्कारणमव्ययम् ।
यच्चाधारतया प्रोक्तं सङ्कल्पाख्यं सुदर्शनम् ॥ ३ ॥
तदेतदखिलं देव विष्णुसङ्कल्पजृम्भितम् ।
समासव्याससरूपेण तत्त्वतो मेऽवधारितम् ॥ ४ ॥

जो यह जगत्कारणभूत अविनाशी एवं नित्य तत्त्व साक्षात् प्रकट हुआ है, जिसे आपने सृष्टि का आधार कहा है और जो 'सुदर्शन' नाम से पुकारा जाता है, हे देव ! वह सब विष्णु के सङ्कल्प से प्रकाशित है । उसे संक्षिप्त अथवा विस्तार रूप से आपने मेरे लिए यथार्थ रूप से कहा ॥ ३-४ ॥

प्रमाणनिरूपण

इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेणान्तकान्तक ।
विंः तत् प्रमाणमित्युक्तं कीदृशं किंविधं च तत् ॥ ५ ॥

अब हे काल के (नियन्त्रक) महाकाल ! मैं विस्तारपूर्वक यह सुनना चाहता हूँ कि वह प्रमाण किसे कहा जाता है? उसका स्वरूप क्या है तथा वह कितने प्रकार का है? ॥ ५ ॥

किमर्थं किमयं देव तन्मे विस्तरशो वद ।
वक्ता सर्वस्य गुह्यस्य त्वदन्यो नैव विद्यते ॥ ६ ॥

उसका प्रयोजन क्या है और वह कौन है? हे देव ! वह सब मुझे विस्तारपूर्वक

समझाइये क्योंकि इस प्रकार के रहस्यों का वक्ता आप के अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन प्रमाणस्थितिमव्ययाम् ।
विश्वं यत्रैव विश्रान्तं सदेवासुरमानुषम् ॥ ७ ॥

प्रमाणस्वरूपनिरूपणम्

मध्यमो यः स सङ्कल्पो विष्णोः सृष्टवतो जगत् ।
शाश्वते तिष्ठति व्यक्तं जगन्मार्ग इतीदृशः ॥ ८ ॥
तत् प्रमाणमिति प्रोक्तं स्थितिचक्रं महामुने ।

प्रमाणविभागः

समष्टिव्यष्टिभावेन तद् द्विरूपं विभाव्यते ॥ ९ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप विकाररहित उस प्रमाण की स्थिति को सुनिए जिसमें देवता, असुर एवं मानवों सहित यह सारा जगत् विश्राम को प्राप्त कर रहा है । जगत् की सृष्टि करने वाले विष्णु का जो वह मध्यम सङ्कल्प है उसी शाश्वत में यह सारा जगत् स्पष्ट रूप से स्थित है । इस प्रकार सारे जगत का मार्ग (गन्तव्य स्थान) वही प्रमाण है । हे महामुने ! उसे स्थिति चक्र भी कहते हैं । वह प्रथम समष्टि रूप से और दूसरे व्यष्टि रूप से दो प्रकार का कहा गया है ॥ ७-९ ॥

समष्टिप्रमाणस्वरूपम्

ऐकरूप्येण सङ्कल्पो यः सर्वविषये स्थितः ।
महास्थितिमयं चक्रं तदेतत् कीर्तितं मुने ॥ १० ॥

जो सङ्कल्प एक रूप से सर्वदा सर्वत्र जगत् में स्थित है, वह महास्थितिमय चक्र समष्टि रूप है । हे महामुने ! यह हम आपसे कह आये हैं । (द्र० १०.९) ॥ १० ॥

व्यष्टिप्रमाणस्वरूपम्

तत्त्वेयत्ता समस्तात्मन् यस्मिन्नायततेऽखिला ।
प्रातिस्विकी व्यवस्था या यस्य सत्त्वस्य यादृशी ॥ ११ ॥
परिणामक्रियासाध्यस्थानरूपादिगोचरा ।
तद्वद्व्यष्टिमये चक्रे प्रमाणे सा व्यवस्थिता ॥ १२ ॥

हे समस्तात्मन् ! जिसमें यह सारी सृष्टि इतने प्रमाण में समाई हुई है और जहाँ पर जिस जीव की जैसी-जैसी असाधारण व्यवस्था है और जो व्यवस्था परिणाम क्रिया, साध्य तथा स्थान रूप से दिखाई पड़ती है, वह सब व्यष्टिमय चक्र प्रमाण में व्यवस्थित है ॥ ११-१२ ॥

एकचेष्टादिको योऽर्थो यश्च सृष्ट्यादिलक्षणः ।
शास्त्रशास्त्रार्थतत्साध्यव्यवस्थात्मा च यो मुने ॥ १३ ॥

वासुदेवादिके व्यूहे स्वस्वसङ्कल्पसम्भवः ।
तदाद्यं भगवद्रूपं चक्रं स्थितिमयं महत् ॥ १४ ॥
प्रमाणं येन तत् सर्वमियत्तां प्रतिपद्यते ।

तस्यैव विस्तरेण प्रतिपादनम्

यच्च तत् परमं व्योम दिव्यसम्भोगलक्षणम् ॥ १५ ॥
स्थितिप्रमाणरूपेण तत्सङ्कल्पेन वै हरेः ।
अनियत्तमसङ्कोचमनन्तं व्यवतिष्ठते ॥ १६ ॥

हे मुने ! जो अर्थ अकेले एक की चेष्टा से अनुप्राणित है जो सृष्टि के आदिलक्षण से युक्त है और जो शास्त्र शास्त्रार्थ तथा उससे साध्य होने वाली व्यवस्था से परिपूर्ण है और जो वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध रूप व्यूहों में अपने-अपने सङ्कल्प से प्रगट होता है वही सब के आदि में होने वाला भगवद्रूप महान् स्थितिमय चक्र है, जिससे सब कुछ इयत्ता (परिच्छेद्य) को प्राप्त होता है, वही उस स्थितिमय चक्र का प्रमाण कहा जाता है । यह दिव्यसम्भोगलक्षण वाला परम व्योम (वैष्णव लोक का नाम) विष्णु के सङ्कल्प से स्थिति प्रमाण रूप से बिना किसी परिच्छेद्य के एवं बिना किसी सङ्कोच के अनन्त रूप से जिसमें स्थित है । (वही उस महास्थितिमय चक्र का प्रमाण है) ॥ १३-१६ ॥

अचेतनानां तत्त्वानां या सा योनिः परा मुने ।
कालकाल्यमयी शक्तिरियत्ता तत्त्रिधा परा ॥ १७ ॥

हे महामुने ! जो अचेतन तत्त्वों की परा योनि है, वह काल काल्यमयी शक्ति एवं इयत्ता भेद से तीन प्रकार की कही गई है ॥ १७ ॥

स्वरूपकार्यभावादौ सा प्रमाणनिबन्धना ।
नियतिः काल इत्येते द्वे कालस्य भिदे मते ॥ १८ ॥

वह स्वरूपतः कार्य तथा वस्तुओं के प्रमाण रूप से बाँधने वाली है । नियति और काल ये काल के दो भेद कहे गए हैं ॥ १८ ॥

शुद्धाशुद्धमये मध्ये यः पुमान् कूटवत् स्थितः ।
नानाजीवमहायोनिस्तस्य या स्थितिरव्यया ॥ १९ ॥
इयत्ता या च सा चक्रे प्रमाणे व्यवतिष्ठते ।
इयत्ताया भिदा या च कलाकाष्ठादिगोचरा ॥ २० ॥
सा प्रमाणमये चक्रे सर्वाप्यायतते मुने ।
सत्त्वादीनां स्वरूपं यद्या प्रवृत्तिः फलं च यत् ॥ २१ ॥
इयत्ता तत्र सर्वत्र सा प्रमाणसुदर्शनात् ।
यद्रूपत्रितयं बुद्धेर्धर्माद्या या च विक्रिया ॥ २२ ॥
व्यापारस्पन्दनिर्णीतिर्निमेषात्मा च योऽखिलः ।
योऽत्रेयत्तामयो भावः स प्रमाणसुदर्शनात् ॥ २३ ॥

शुद्धाशुद्धमय के मध्य में जो पुरुष कूटवत् स्थित है उसकी स्थिति की तथा नाना प्रकार के जीवों की जो योनि है उसकी स्थिति की इयत्ता उस प्रमाण चक्र में संस्थित है। उस काल की इयत्ता के भेद कला काष्ठादि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। हे मुने! वह सब उस प्रमाणमय चक्र में रहता है। सत्त्वादि गुणों का स्वरूप, उसकी जिस प्रकार की प्रवृत्ति और उसका जो फल, उन सब की उन-उन में जितनी इयत्ता हैं वह सब सुदर्शन से प्रमाणित है। बुद्धि के जो तीन रूप हैं और उनके धर्मादि के रूप में विक्रिया, व्यापार, स्पन्दनिर्णीति और जो सबका निमेषात्मा है उसका जो इयत्तामयभाव (परिच्छेद्य रूप से उस-उस का इतने प्रमाण वाला) है, वह सब प्रमाणरूप सुदर्शन से प्रादुर्भूत होता है॥ १९-२३ ॥

अभिमानो द्विधा योऽपि संरम्भोयोऽप्यहङ्कृतेः।
यश्च कामादिको भावस्तत्रेयत्तास्थितिश्च या॥ २४ ॥
सा प्रमाणमये चक्रे सङ्कल्पेऽस्मिन् सुदर्शने।
पञ्चानां पञ्चकं यच्च सङ्कल्पानामवस्थितम्॥ २५ ॥
तादृशं च विकल्पानां तदेतद् द्वितयं मुने।
इयत्ता या स्थिता व्याप्य सा प्रमाणसुदर्शनात्॥ २६ ॥

अहङ्कार का प्रथम भेद संरम्भ, दूसरा भेद उसका कामादिक भाव, उन दोनों प्रकारों की जो इयत्ता और स्थिति है वह सब इस प्रमाणमयचक्र रूप सुदर्शनमय सङ्कल्प में है। हे मुने! पाँच प्रकार के सङ्कल्पों का पञ्चक ये दोनों जिसमें इयत्ता रूप से व्याप्त होकर स्थित हैं, वह सब प्रमाणरूप सुदर्शन का प्रभाव समझना चाहिए॥ २४-२६ ॥

तानवं पाटवं यच्च यच्चालोचनपञ्चकम्।
शान्तघोरादिकं रूपं यच्च धीन्द्रियपञ्चके॥ २७ ॥
वचनादानविक्रान्तिमोदोत्सर्गमयं च यत्।
शान्तघोरादिकं रूपं यत्कर्मेन्द्रियपञ्चके॥ २८ ॥
तत्रेयत्तामयं रूपं यच्च स्थितिमयं वपुः।
प्रमाणे वैष्णवे सर्वं तत्सङ्कल्पसुदर्शने॥ २९ ॥

सूक्ष्मता, स्थूलता और जो आलोचन पञ्चक (पञ्च ज्ञानन्द्रियों का ज्ञान) शान्त घोरादि रूप ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियों के विषय वचन, आदान, विक्रान्ति, मोद और उत्सर्ग तथा शान्त घोरादिक रूप उनकी जो इयत्ता का स्वरूप तथा स्थितिमय स्वरूप वह सब इस वैष्णव रूप सङ्कल्पात्मक सुदर्शन में प्रमाण रूप से स्थित हैं॥ २७-२९ ॥

व्यूहावकाशलघुताचेष्टाप्रेरणशोषणम्।
व्यूहावकाशव्यक्तार्द्रस्नेहक्षुद्रत्वमप्युत॥ ३० ॥
स्थैर्यपार्थिवकाठिन्यमित्येतद्भौतिकं वपुः।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चगुणव्यूहमयी स्थितिः॥ ३१ ॥
यैस्तद्व्याप्य स्थितेयत्ता सा प्रमाणसुदर्शनात्।
तत्त्वे तत्त्वे च मर्यादा या या शश्वदवस्थिता॥ ३२ ॥

सा सा प्रमाणचक्रस्य सङ्कल्पस्य हरेर्गतिः ।
इतीयं स्थितिमर्यादियत्ता चक्रे प्रकीर्तिता ।। ३३ ।।

व्यूह (समूह), अवकाश, लघुता, चेष्टा, प्रेरणा, शोषण, व्यूह, अवकाश, व्यक्त, आर्द्र, स्नेह, क्षुद्रता, स्थिरता, पार्थिव, काठिन्य ये सभी भौतिक शरीर वाले एवं एक दो तीन चार पाँच गुणों वाली व्यूहमयी स्थिति, जिनसे व्याप्त होकर यह इयत्ता (इतने प्रमाण वाली) स्थिति है वह सब प्रमाणभूत सुदर्शन का प्रभाव है। इतना ही नहीं प्रत्येक तत्त्वों में उनकी जो मर्यादा निरन्तर उनमें स्थित है, वह सब विष्णुमय सङ्कल्प वाले प्रमाणभूत इस चक्र से ही जानना चाहिए। इस प्रकार स्थिति की मर्यादा इयत्ता रूप से इस स्थिति चक्र में है यह हमने आपसे कहा ।। ३०-३१ ।।

विष्णुसङ्कल्पसम्भूतां स्थितिमन्यां मुने शृणु ।
प्रतिबन्धनिरासेन या स्वभावगतिर्मुने ।। ३४ ।।
तत्त्वानां तात्त्विकानां च सा स्थितिः कथ्यते मुने ।
गुणान्तरानुग्रहेण यः सत्त्वोन्मेष ऊर्जितः ।। ३५ ।।
धर्मज्ञानादिरूपोऽसौ सुदर्शनसमीरितः ।
परिमाणविशेषः स बोध्यस्त्रैलोक्यधारकः ।। ३६ ।।

हे मुने ! अब विष्णुसङ्कल्प से होने वाली अन्य प्रकार की प्रमाण स्थिति को आप मुझसे सुनिए। हे मुने ! जो समस्त प्रतिबन्धों को निरस्त कर स्वभावतः गतिमान् है। जो समस्त तात्त्विक तत्त्वों की स्थिति भी कही जाती है। जब अन्य गुणों के अनुग्रह (सहायता) से सत्त्वगुण प्रकाशित होता है, तब वह धर्म ज्ञानादि रूप में सुदर्शन की प्रेरणा से प्रगट होता है। परिमाण में विशेष होने के कारण वही त्रैलोक्य को धारण भी करता है ।। ३४-३६ ।।

शनैराचर्यमाणोऽसौ सत्त्वोज्ज्वलितबुद्धिभिः ।
बिभर्ति रोदसी शश्वदन्नवृष्ट्यादिदानतः ।। ३७ ।।

सत्त्व से उज्ज्वल बुद्धि वाले लोगों के द्वारा धीरे-धीरे आचरण किये जाने के कारण वही सत्त्व निरन्तर अन्न तथा वृष्टि को देते हुये द्यावापृथ्वी को धारण करता है ।। ३७ ।।

गुणान्तरानुग्रहेण तमसो यः स उद्यमः ।
अधर्मादिस्वरूपोऽसौ विष्णुसङ्कल्पचोदितः ।। ३८ ।।

पुनः जब अन्य गुणों के अनुग्रह (सहायतां) से तमोगुण का उदय होता है, तब विष्णु सङ्कल्प से प्रेरित वही तम अधर्मादि रूप में प्रकट होता है ।। ३८ ।।

शनैराचर्यमाणोऽसौ तमोमलिनबुद्धिभिः ।
अन्नवृष्ट्यादिनाशेन विनाशयति रोदसी ।। ३९ ।।

फिर वह तम से मलिन बुद्धि वाले लोगों के द्वारा आचरण किये जाने पर अन्न और वृष्टि दोनों का नाश करता है। जिससे द्यावापृथ्वी का विनाश होने लगता है ।। ३९ ।।

सत्त्वस्योपद्रवः शश्वदतोऽन्यस्माद्गुणद्वयात् ।

शस्त्रव्यूहप्रतिपादनम्

धर्मसंस्थापनायाथ निरसिष्यन्नधार्मिकान् ॥ ४० ॥
जनार्दनत्वमीशानो यदा विष्णुः प्रपद्यते ।
तदा देवस्य सङ्कल्पः सुदर्शनसमाह्वयः ॥ ४१ ॥
आयुधादिस्वरूपेणाकारत्वं प्रतिपद्यते ।
चक्रलाङ्गलसौनन्दशङ्खशार्ङ्गशरात्मना ॥ ४२ ॥
खड्गखेटकरूपेण पाशाङ्कुशपरश्वधैः ।
दण्डकुन्तस्वरूपेण दम्भोलिमुसलात्मना ॥ ४३ ॥
शतवक्राग्निरूपेण कुन्तशक्तिमयात्मना ।
तथा शूलस्वरूपेण खर्वाङ्गाद्यायुधात्मना ॥ ४४ ॥

उस समय रज और तम इन दो गुणों के कारण सत्त्व गुण उपद्रुत (दब) हो जाता है । तब धर्म की संस्थापना के लिए तथा अधार्मिकों के विनाश के लिए स्वयं विष्णु ईश्वर जनार्दनत्व (दुष्टो के दमन के) रूप में उत्पन्न होते हैं । उस समय उन देव का सुदर्शन नामक सङ्कल्प भी आयुधादि स्वरूप से विग्रह धारण करता है । उन आयुधों के नाम इस प्रकार है—चक्र, लाङ्गल (हल), सौनन्द शङ्ख, शार्ङ्गधनुष बाण, खड्ग, खेटक, पाश, अङ्कुश, परश्वध, दण्ड, कुन्त, दम्भोलि (वज्र), मुशल, शतवक्राग्नि, कुन्त, शक्ति, शूल एवं खर्वाङ्ग आदि ॥ ४०-४४ ॥

एवं नानाविधै रूपैस्तत्सङ्कल्पविकल्पितैः ।
उदेति जगतो वृद्ध्यै नारायणकराश्रयी ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विष्णु के सङ्कल्प एवं विकल्पों के द्वारा वह चक्र नारायण विष्णु के हाथ का सहारा लेकर संसार की रक्षा के लिए उदय को प्राप्त करता है ॥ ४५ ॥

इति शस्त्रमयो व्यूहो लेशतस्ते निदर्शितः ।
अपरोऽस्त्रमयो व्यूहः सौदर्शन उदीर्यते ॥ ४६ ॥

इस प्रकार, हे मुने ! हमने आपको सुदर्शन के शस्त्रमय व्यूह का रञ्चमात्र उपदेश किया । अब दूसरे सुदर्शनमय अस्त्र व्यूह को कहता हूँ ॥ ४६ ॥

अस्त्रव्यूहप्रतिपादनम्

रूपमास्थाय दिव्यं तदङ्गप्रत्यङ्गभूषणम् ।
ब्रह्मक्षत्रादिभावेन मुखबाहूरुपादतः ॥ ४७ ॥
ब्रह्मास्त्रादिमयं व्यूहं प्रवर्तकनिवर्तकम् ।
सृजत्यशेषरक्षार्थं षष्टिद्वितयसम्मतम् ॥ ४८ ॥

फिर वही सुदर्शनमय विष्णु सङ्कल्प अङ्ग प्रत्यङ्ग के भूषण से युक्त दिव्य रूप धारण कर ब्राह्मण क्षत्रादि भाव से विष्णु के मुख, बाहु, ऊरु और पैर से प्रवर्त्तक निवर्त्तक बन कर

अशेष लोगों के कल्याण के लिए ६२ प्रकार के ब्रह्मास्त्रादि व्यूह के रूपों में प्रगट होता है अर्थात् जिस प्रकार भगवान् के मुख, बाहु, ऊरु तथा पैर से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति हुई जो प्रवृत्तमार्ग एवं निवृत्तमार्ग दोनों के अनुगामी हैं। उसी प्रकार सुदर्शन के भी मुख, बाहु, ऊरु और पैर से कुछ अस्त्र ब्राह्मण जाति के, कुछ क्षत्रिय जाति के, कुछ वैश्य एवं शूद्र जाति के हैं, जिनमें कुछ प्रयोग हो हैं और कुछ संहारात्मक हैं ॥ ४७-४८ ॥

प्रजापतिपितृब्रह्मदेवेभ्यश्च तथा तथा ।
दिव्यो नानाविधाकारः समुदेत्यस्त्ररूपवान् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वही सुदर्शन प्रजापति पितर, ब्रह्म और देवताओं के लिए उसी-उसी प्रकार के दिव्य नाना प्रकार के आकार वाले अस्त्रों के रूप में प्रगट होते हैं ॥ ४९ ॥

ब्रह्मदेवर्षिराजर्षिष्वपि मन्त्रमयात्मसु ।
अनुव्याहारशापादिरूपेणैवावतिष्ठते ॥ ५० ॥

पुनः मन्त्रमयात्मक ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों एवं राजर्षियों में वह अनुव्याहार (वरदान) एवं शाप रूप से प्रगट होते हैं ॥ ५० ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि वा मुनिसत्तम ।
निग्रहेऽनुग्रहे वापि यत्रायं नैव साधनम् ॥ ५१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस भूलोक में और दिव्य लोक में तथा निग्रह एवं अनुग्रह में, अथवा अन्य में कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं है जहाँ यह साधन रूप में वर्त्तमान न हों ॥ ५१ ॥

प्रमाणव्यूह एतावतर्थाकारो निदर्शितः ।
सुदर्शनस्य देवस्य शब्दाकारमथो शृणु ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अर्थात्मक-
प्रमाणव्यूहनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ आदितः श्लोकाः ६१८ ॥

⁂

हमने अर्थाकार रूप में इतना प्रमाण व्यूह आपसे कहा—अब इन सुदर्शन देव का शब्दाकार रूप सुनिए ॥ ५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अर्थात्मक-
प्रमाणव्यूह निरूपण नामक दसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १० ॥

⁂

अथ एकादशोऽध्यायः

शब्दात्मकप्रमाणव्यूहनिरूपणम्

नारदः—

नमः समस्तगीर्वाणसुखसौभाग्यदायिने ।
शङ्कराय गिरीशाय गौरीदयित ते नमः ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—समस्त देवताओं को सुख तथा सौभाग्य प्रदान करने वाले और सभी (चराचर जगत्) का कल्याण करने वाले गौरी के प्रिय भगवान् गिरीश के लिए नमस्कार है ॥ १ ॥

शब्दात्मकप्रमाणप्रश्नः

श्रुतः प्रमाणरूपोऽयं व्यूहार्थो यन्मयाखिलः ।
शब्दाकारो य उद्दिष्टस्तं मे वद सुरेश्वर ॥ २ ॥

हे भगवन् ! हमने प्रमाण रूप समस्त व्यूहार्थ आपके द्वारा सुना । अब, हे सुरेश्वर! जो प्रमाणव्यूह शब्दाकार है उसका उपदेश कीजिए ॥ २ ॥

तत्प्रतिविवक्षयोपोद्घातः

अहिर्बुध्न्यः—

आदिसर्गे पुरावृत्ते नानाभावविभूषिते ।
आसीच्छक्तिमतो विष्णोरियं चिन्ता सुखोदया ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जब पूर्वकाल में नाम रूपात्मक आदि सर्ग की सृष्टि हो चुकी, उस समय सर्वशक्तिमान् विष्णु के मन में सबको सुख देने वाली इस प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥

आदिसर्गे भगवतश्चिन्ताप्रकारः

विपुलेयं कृता सृष्टिर्मया सत्त्वगुणोत्तरा ।
प्रत्यक्षसर्वधर्मार्था निराबाधा सुखोत्तरा ॥ ४ ॥

मैंने सत्त्वगुण से परिपूर्ण इतनी बड़ी सृष्टि की, जो सभी प्रकार के धर्म एवं अर्थ को प्रत्यक्ष कराने वाली है और सर्व बाधा से रहित एवं सभी सुखों से सम्पन्न है ॥ ४ ॥

प्रजेयमभिनिर्वृत्ता देवर्षिब्रह्मसङ्कुला ।

सत्त्वविवृद्ध्या परमपुरुषप्राप्तिपूर्वकं स्वरूपाविर्भावः

तत्त्वज्ञानसमायोगात् सद्धर्मकरणादपि ॥ ५ ॥
अचिरणैव मां प्राप्य स्वीयं भावं भजिष्यते ।

देवता, ऋषि एवं ब्राह्मणों से परिपूर्ण यह सृष्टि सुखी भी है, क्योंकि वे सभी तत्त्वज्ञान और सद्धर्म के आचरण से परिपूर्ण हैं । फिर इस प्रकार करने से वे मुझे थोड़े ही समय में प्राप्त कर आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर लेंगे ॥ ५-६ ॥

रजस्तमोविवृद्ध्या सत्त्वह्रासः

रजस्तमोगुणोद्रेकः कालेनैव भविष्यति ॥ ६ ॥
तदुन्मेषवशेनैव सत्त्वमप्युपचोष्यते ।

तदा दैत्याद्याविर्भावः

तदा प्रादुर्भविष्यन्ति दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ७ ॥

किन्तु समय के प्रभाव से जब रज एवं तमोगुण की अभिवृद्धि होगी तब उनके अङ्कुरित होते ही सत्त्वगुण का विनाश हो जायगा । फिर तो ऐसी परिस्थिति आने पर दैत्य, दानव तथा राक्षस उत्पन्न होने लगेंगे ॥ ६-७ ॥

तैर्वैदिकमर्यादाविलोपनम्

तैरियं सात्त्विकी दिव्या मर्यादा चालयिष्यते ।

ज्ञानप्रमोषात् धर्मतिरोधानम्

रजस्तमोगुणोन्मेषात् सम्यग्ज्ञाने विनाशिते ॥ ८ ॥
ज्ञानहेतुः स धर्मोऽपि तिरोधानं गमिष्यति ।

ततः प्रजाक्षोभः

ततश्चेयमनाधारा प्रजाशुद्धा विनङ्क्ष्यति ॥ ९ ॥

उत्पन्न होते ही वे दैत्य, दानव तथा राक्षस इस सृष्टि की सात्त्विकी मर्यादा को चलायमान कर देंगे । इस प्रकार रजोगुण एवं तमोगुण की अभिवृद्धि से जब उत्तमोत्तम ज्ञान विनष्ट हो जायगा, तब ज्ञान का हेतुभूत धर्म भी तिरोहित हो जायेगा । फिर तो (सृष्टि के आधारभूत) धर्म के न रहने पर अशुद्ध हो कर यह प्रजा विनष्ट हो जायेगी ॥ ८-९ ॥

तदा भगवदवताराणां लब्धावकाशता

तत्र रूपैरनेकैर्मे कृत्यं शश्वद्भविष्यति ।
तेषूपकरणापेक्षा नानाकारा भविष्यति ॥ १० ॥

उस समय मुझे अनेक रूपों में अवतरित होने की आवश्यकता पड़ेगी । इस प्रकार अनेक रूप धारण करने पर अनेक आकार वाले उपकरणों की भी अपेक्षा होगी ॥ १० ॥

धर्मस्थापननिश्चयः

आविश्याविश्य भूतानि स्वेन रूपेण मायया ।

तैस्तैः साधनसम्भेदैर्निरस्य सुकृतद्विषः ॥ ११ ॥
सुकरा धर्ममर्यादा तत्र तत्र भविष्यति ।

इसलिए अपनी माया से उन-उन जीवों में रूप द्वारा प्रविष्ट होकर, उन-उन भिन्न-भिन्न साधनों से धर्म से द्वेष करने वाले उन दैत्य, दानव एवं राक्षसों का विनाश करके, वहाँ-वहाँ पुनः धर्म मर्यादा स्थिर करनी होगी ॥ ११-१२ ॥

अधर्मनिरास साधनद्वैविध्यम्

साधनं च द्विधा कार्यं धर्मद्वेषिनिराकृतौ ॥ १२ ॥
शस्त्रास्त्रव्यूहरूपेण शास्त्ररूपेण चैव हि ।

उन-उन धर्म द्वेषियों के निराकरण के लिए मुझे दो प्रकार के साधन अपनाने होंगे—१. प्रथम तो शस्त्रास्त्रव्यूह रूप साधन और २. दूसरा शास्त्रव्यूह रूप साधन ।

भगवत्सङ्कल्पात् तदुभयोत्पत्तिः

इत्युक्त्वार्थत्वरूपं हि शस्त्रास्त्रौघसमाकुलम् ॥ १३ ॥
व्यूहं ससर्ज सङ्कल्प्य स्वेन सङ्कल्पतेजसा ।
स च सौदर्शनो व्यूहो मर्यादाधारणक्षमः ॥ १४ ॥
प्रमाणरूप उद्दिष्टो वक्ष्यते च तथा तथा ।

ऐसा कहकर उन्होंने सङ्कल्प करके अपने सङ्कल्प के तेज से शस्त्रास्त्र समूहों से युक्त 'अर्थरूप-व्यूह' की रचना की । वही 'सौदर्शन-व्यूह' सृष्टि की मर्यादा को धारण करने में समर्थ था, जिसे हम प्रमाण रूप में पहले कह आए हैं और आगे इसे जैसा है वैसे-वैसे कहेंगे भी ॥ १३-१५ ॥

प्रमाणरूपशास्त्रार्थः सङ्कल्पो वैष्णवो हि यः ॥ १५ ॥
उदितो ब्रह्मणस्तस्माद्यथा तदवधारय ।

अब दूसरा साधनभूत प्रमाण रूप 'शास्त्रार्थ व्यूह' जो विष्णु का सङ्कल्प है, वह उन ब्रह्मा के द्वारा जिस प्रकार प्रगट हुआ उसे सुनिए ॥ १५-१६ ॥

आदिशास्त्रस्वरूपवर्णनम्

सङ्कल्पमयमेवैकं सकलान्तस्तमोनुदम् ॥ १६ ॥
निर्घातशब्दवद्व्योम्नः शस्त्रमेकमभूत् तदा ।
वर्णार्थैः सम्भृतैर्वर्णैश्चिदानन्दमहोर्मिभिः ॥ १७ ॥
विष्णुशक्तिसमुद्रोत्थैर्मणिभिर्मौक्तिकैरिव ।
प्रोतं सौदर्शनं रूपं विष्णोः सङ्कल्पकल्पितम् ॥ १८ ॥
तद्विज्ञानमयं शास्त्रं सद्धर्मप्रतिपादकम् ।
नियुताध्यायि यत् प्रोक्तं कामपालेन शाश्वतम् ॥ १९ ॥

सृष्टि के आदि में एक ही सङ्कल्पात्मक शास्त्र था, जो सम्पूर्ण अज्ञान को नष्ट करने में समर्थ था । (वस्तुतः अज्ञानान्धकार रूप) आकाश में बिजली की कौंध के समान पहले

एक ही शास्त्र था। जिस प्रकार बड़ी-बड़ी तरङ्गों वाले समुद्र से मणियों एवं मोतियों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार चिदानन्द रूप लहरों वाले 'विष्णु-शक्ति' रूप समुद्र से 'वर्ण' और 'अर्थ' वाले शास्त्र उत्पन्न हुए। उनमें विष्णु के सङ्कल्प द्वारा कराया गया सुदर्शन का रूप सर्वत्र अनुस्यूत था। वह विज्ञानमय शास्त्र सद्धर्म का प्रतिपादक था। उसे कामपाल ने वस्तुतः एक लाख अध्यायों में रचा था॥ १६-१९॥

तस्य सर्वशास्त्रार्थगर्भितत्वम्

पुरुषार्थैश्चतुर्भिस्तदन्वितं हेतुसङ्कुलम्।
ऋग्यजुःसामभिर्जुष्टमङ्गिरोभिरथर्वभिः॥ २०॥
पदवाक्यप्रमाणार्थैर्विकल्पैर्बहुभिश्चितम्।
अलङ्कृतं शुभैस्तैस्तैः समयैर्दिव्यमानुषैः॥ २१॥

वह (एक लक्ष अध्यायात्मक) शास्त्र चारों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप) पुरुषार्थो से युक्त था और अनेक हेतु से सङ्कुलित था। उस शास्त्र में ऋक्, यजुः, साम तथा अङ्गिरा प्रणीत अर्थववेद भी थे। वह पद (व्याकरण) वाक्य (मीमांसा), प्रमाण (न्याय), अर्थशास्त्र एवं अनेक प्रकार के अन्य विकल्प-शास्त्रों से युक्त था। वह दिव्य एवं मानुष अनेक प्रकार के शुभ कर्मों वाले शास्त्रों से अलङ्कृत था॥ २०-२१॥

तैस्तैर्विकल्पितैः कल्पैश्छन्दोभिर्विविधैर्वृतम्।
कालोपग्रहसङ्ख्याभिः प्रकृतिप्रत्ययैः स्वरैः॥ २२॥
विभक्तिकारकैर्लिङ्गैः स्वरैः प्रकृतिसन्धिभिः।
संज्ञाभिः साधिकाराभिर्भूषितं परिभाषया॥ २३॥
आदेशैरागमैर्लोपैर्विकारैश्चाप्युपाधिभिः।
वृत्तिभिर्विविधाभिश्च वाक्यैरुपपदैरपि॥ २४॥
अव्ययैरुपसर्गैश्च नामाख्यातनिपातकैः।
मात्रावृत्तिस्वरबलैरभिनिष्ठानसामभिः॥ २५॥

वह उन-उन विकल्पों वाले कल्पों (प्रकारों) से भी युक्त था। वह नाना प्रकार के छन्द, काल एवं उपग्रहों की सङ्ख्या, प्रकृति-प्रत्यय तथा स्वरों से युक्त था। इस प्रकार वह शास्त्र विभक्ति, कारक, लिङ्ग, स्वर, प्रकृतिभाव, सन्धियाँ, संज्ञाएँ अधिकार (सूत्र) सहित परिभाषात्मक सूत्रों से विभूषित था। उसमें आदेश, आगम, लोप, विकार, उपाधियाँ, विविध वृत्तियाँ, वाक्य, उपपद, अव्यय, उपसर्ग, नाम, आख्यात, निपात, मात्रा, वृत्ती, स्वर, बल (= आभ्यन्तर, बाह्य आदि प्रयत्न, स्थान और करण) वाले, अभिनिष्ठान अर्थात् विसर्जनीय तथा साम के शब्द थे॥ २२-२५॥

यमरङ्गविभागैश्च भूषितं पदभङ्गिभिः।
वर्णागमविकल्पैश्च तथा वर्णविपर्ययैः॥ २६॥
कल्पनाभिश्च लघ्वीभिर्विकृतेः प्रकृतेरपि।
निरुक्तकल्पैर्विविधैर्नानानिगमनैरपि॥ २७॥

ग्रहनक्षत्रराशिस्थैर्विकल्पैर्गणनोत्थितैः ।
होरास्कन्धविकल्पैश्च विधानैः फलकल्पितैः ॥ २८ ॥

उस शास्त्र में यम एवं रङ्गों का विधान था। पदों की भङ्गियों से विभूषित था। वर्णों का आगम, वर्णों का विकल्प तथा वर्णों के विपर्यय का उसमें वर्णन था। छोटी-छोटी कल्पनाएँ और प्रकृति के विकार भी उसमें थे। अनेक प्रकार के शब्दों के निर्वचन तथा नाना प्रकार के निगमन थे। ग्रह, नक्षत्र और राशियों में गणना से उत्पन्न होने वाला विकल्प, होरा विकल्प, स्कन्ध विकल्प तथा फलों द्वारा कल्पित किए गए (ज्योतिःशास्त्र के) विधान थे॥ २६-२८ ॥

विध्यर्थवादमन्त्रोत्थैर्विचारैः कर्मकल्पनैः ।
अङ्गयुक्तिक्रमोहैश्च तन्त्रवापातिदेशनैः ॥ २९ ॥
अधिकारैरनेकैश्च विचारैर्वाक्यगोचरैः ।
प्रमाणकल्पितैर्न्यायैर्निग्रहच्छलजातिभिः ॥ ३० ॥
द्रव्यकर्मविकल्पैश्च गुणसामान्यकल्पनैः ।
चातुर्होत्रविकल्पैश्च चातुर्वैद्यविजृम्भितैः ॥ ३१ ॥

वह शास्त्र विधि-वाक्य, अर्थवाद, मन्त्रों में उठाए गए विचार, कर्मों की कल्पना, अङ्ग एवं युक्तिक्रमों के ऊह, तन्त्र, आवाप, अतिदेश, अनेक प्रकार के अधिकार, वाक्य में आने वाले विचार, प्रमाण कल्पित न्याय (शास्त्र) जो निग्रह और छलयुक्तियों से परिपूर्ण था, द्रव्य कर्मों के विकल्प, गुण-सामान्य की कल्पना, चातुर्वैद्य से प्रकाशित होने वाले चातुर्होत्रों के विकल्प से युक्त था॥ २९-३१ ॥

चातुराश्रम्यकल्पैश्च चातुर्वर्ण्यविकल्पितैः ।
संस्कारकल्पैर्विविधैर्नित्यकाम्यक्रियाक्रमैः ॥ ३२ ॥
इतिहासपुराणाभ्यां विविधाभ्यां समन्वितम् ।
विविधैश्च प्रसङ्ख्यानैः स्वप्रकृत्यादिकल्पितैः ॥ ३३ ॥
पुमीश्वरविकल्पैश्च परिणामविकल्पितैः ।
अवस्थालक्षणव्याख्याधर्मक्लृप्तिविचित्रितम् ॥ ३४ ॥
प्रमाणानां ससर्गाणां नानाकल्पनयान्वितम् ।
लेपालेपविचारैश्च पुरुषाव्यक्तगोचरैः ॥ ३५ ॥

चातुराश्रम्य कल्प, चातुर्वर्ण्य के विकल्प, संस्कारों के विकल्प, विविध प्रकारों के नित्य एवं काम्य कर्म वाली क्रियाओं के क्रम तथा अनेक प्रकार के इतिहास और पुराणों से समन्वित वह एक लाख अध्यायों वाला कामपाल रचित शास्त्र था। उसमें अपनी प्रकृति से कल्पित, नाना प्रकार के प्रसङ्ख्यान थे। पुरुष-ईश्वर के विकल्पों से, परिणाम के विकल्पों से, अवस्था, लक्षण, व्याख्या एवं धर्म की रचना से, विचित्र सर्ग युक्त प्रमाणों से तथा नाना प्रकार की कल्पनाओं से वह परिपूर्ण था। उसमें लेपालेप के विचार, पुरुष और अव्यक्त से जानने योग्य विषयों से युक्त था॥ ३२-३५ ॥

तत्त्वतात्त्विककल्पैश्च नानागतिविचिन्तनैः ।
मुक्तिक्रमविचारैश्च ख्यातिकल्पैरनेकशः ॥ ३६ ॥
ज्ञानाज्ञानसमाख्यातगुणदोषविचारणैः ।
गुणत्रयविकल्पैश्च सर्गसंयोगचिन्तनैः ॥ ३७ ॥
अन्वितं विविधैः सांख्यैः प्रसङ्ख्यानकृतक्रमैः ।
योगप्रकारकल्पैश्च वृत्तीनां कल्पनैरपि ॥ ३८ ॥
अभ्यासकल्पैर्विविधैश्चातुर्वैराग्यकल्पनैः ।
अन्तरङ्गबहिर्भूतयोगाङ्गपरिचिन्तनैः ॥ ३९ ॥

तत्त्व एवं तात्त्विक विकल्प तथा नाना गतियों के विचार, मुक्ति क्रम के विचार, अनेक प्रकार के ख्याति-कल्प, ज्ञान या अज्ञान द्वारा होने वाले गुण दोषों पर विचार, गुणत्रय के विकल्प, सर्ग-संयोग के विचार और वह शास्त्र प्रसङ्ख्यान कृत क्रमों वाले अनेक प्रकार के सांख्यों से युक्त था। उसमें योग के प्रकारों के कल्प, वृत्तियों की कल्पना, अभ्यासक्रम, अनेक प्रकार के चातुर्वैराग्य की कल्पना, अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग वाले योगाङ्गों पर विचार से युक्त था ॥ ३६-३९ ॥

क्लेशकर्मविपाकानामाशयानां च वर्णनैः ।
तापसंस्कारचिन्ताभिर्दुःखभेदविचिन्तनैः ॥ ४० ॥
तैस्तैश्चतुरधिष्ठानकल्पनैः कल्पितं पृथक् ।
उपादेयस्य हेयस्य हानोपादानयोरपि ॥ ४१ ॥
स्वरूपचिन्तनैश्चित्रैर्भोगकामविकल्पनैः ।
क्रियायोगैरनेकैश्च चित्तसंस्कारसाधनैः ॥ ४२ ॥

क्लेश तथा कर्म विपाक वाले अन्तःकरण का वर्णन, ताप, संस्कार तथा चिन्ता से होने वाले, दुःख के भेदों का विचार एवं उन-उन चतुरधिष्ठान की कल्पना का पृथक् वर्णन भी था। उपादेय-हेय-हान, उपादान स्वरूप-चिन्तन, विचित्र प्रकार के भोग एवं काम के विकल्पों का भी वर्णन था। अनेक प्रकार के क्रिया-योग, चित्त के संस्कार के साधनों से युक्त था ॥ ४०-४२ ॥

सिद्धिभिश्च विचित्राभिश्चित्तस्थाभिरलङ्कृतम् ।
पतिपाशपशुव्याख्याविकल्पैर्हेतुचित्रितैः ॥ ४३ ॥
शुद्धाध्वकल्पनाभिश्च क्रियाज्ञानविभेदतः ।
अर्थपञ्चकचिन्ताभिरनेकाभिरलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥
शक्तिपञ्चकचिन्ताभिर्मलत्रयविचारणैः ।
भोगोपकरणाख्यानैः पुंसां रूपविकल्पनैः ॥ ४५ ॥

चित्त में होने वाली अनेक प्रकार की विचित्र सिद्धियों से वह अलङ्कृत था। पति (पालक), पाश (बन्धन) एवं पशु (जीव) की व्याख्या उसमें थी। उसके हेतुपूर्ण, उसके विकल्प से चित्रित क्रिया एवं ज्ञान के भेदों से युक्त शुद्धाध्व की कल्पना में अनेक प्रकार

के अर्थ पञ्चकों से वह शास्त्र विभूषित था। वह शक्तिपञ्चक के ऊपर किए गए विचारों से, मतत्रय के विचारों से, भोगोपकरण के व्याख्यान एवं पुरुषों के रूपों के विकल्प से युक्त था ॥ ४३-४५ ॥

दीक्षाप्रतिष्ठाकल्पैश्च धर्मैः पाशुपतैरपि।
इति नानाविधाकारबुद्धिकल्पविचित्रया ॥ ४६ ॥
युक्तं कल्पनया शश्वत् क्लृप्तनानाधिकारया।
अधिकारेण सद्धर्मान् व्याचक्षाणमनेकधा ॥ ४७ ॥
नियुताध्यायकं पूर्वमासीत् सङ्कर्षणोदितम्।
सङ्कल्पमयमाद्यस्य विष्णोः सङ्कल्पजात् किल ॥ ४८ ॥

दीक्षाकल्प, प्रतिष्ठाकल्प, पाशुपत धर्म से युक्त था। इस प्रकार अनेक आकार वाले बुद्धि की कल्पना की विचित्रता तथा बनावटी अनेक प्रकार के अधिकार वाली कल्पना से वह शास्त्र युक्त था। उसमें अधिकार के अनुसार अनेक प्रकार से सद्धर्मों की व्याख्या थी। इस प्रकार का एक लाख अध्यायों वाला वह शास्त्र सङ्कर्षण के मुख से कहा गया था जो आद्य भगवान् विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न हो कर सङ्कल्पमय हो गया था ॥ ४६-४८ ॥

तस्य शास्त्रस्य भगवत्प्रीतिहेतुत्वम्

तेन शास्त्रेण ते दिव्या मनवो मानवाश्च ते।
ये प्रोक्ता आदिसर्गे ते तथा मानवमानवाः ॥ ४९ ॥
सत्क्रियाभिरनल्पाभिर्नारायणमतोषयन्।

दिव्य, मनु एवं मानव जिनका वर्णन हम सर्ग के आदि में पूर्व कह आये हैं उन मनु पुत्र मानवों ने उस शास्त्र की अधिकाधिक सत्क्रियाओं के आचरण से भगवान् नारायण को सन्तुष्ट किया ॥ ४९-५० ॥

तस्य शास्त्रस्य मन्दप्रचारता

अथ कालविपर्यासाद्युगभेदसमुद्भवे ॥ ५० ॥
त्रेतादौ सत्त्वसङ्कोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते।
कामं कामयमानेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु ॥ ५१ ॥
मन्दप्रचारमासीत् तच्छासनं यत् सुदर्शनम्।

वाच्यायनादिभिस्तच्छास्त्रविभजनम्

ततो मोहाकुले लोके लोकतन्त्रविधायिनः ॥ ५२ ॥
सम्भूय लोककर्तारः कर्तव्यं समचिन्तयन्।

फिर समय के हेर-फेर से नव युगों का भेद होने लगा। उस समय त्रेता युग के आदि में सत्त्व गुण का ह्रास होने लगा और रजोगुण की वृद्धि होने लगी। महात्मा एवं ब्राह्मण वर्गों में काम की उत्पत्ति होने लगी। सुदर्शन से उद्भूत् उस शासन (शास्त्र) का प्रचार धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगा और सारा लोक मोहाकुल होने लगा। ऐसी अवस्था देखकर लोकतन्त्र के विधाता लोककर्ता लोग एकत्र होकर कर्त्तव्य की चिन्ता करने लगे ॥ ५०-५३ ॥

अपान्तरतपा नाम मुनिर्वाक्सम्भवो हरेः ॥ ५३ ॥
कपिलश्च पुराणर्षिरादिदेवसमुद्भवः ।
हिरण्यगर्भो लोकादिरहं पशुपतिः शिवः ॥ ५४ ॥
एते तप्त्वा तपस्तीव्रं वर्षाणामयुतं शतम् ।
आदिदेवमनुज्ञाप्य देवदेवेन चोदिताः ॥ ५५ ॥
सुदर्शनस्य लेशेन तत्सङ्कल्पेन संयुताः ।
विज्ञानबलमासाद्य धर्मद्देवप्रसादजात् ॥ ५६ ॥
आविर्भूतं तु तच्छास्त्रमंशतस्ते ततक्षिम ।

तत्र वाच्यायनेन वेदविभजनम्

ततक्ष भगवान्पूर्वमपान्तरतपा मुनिः ॥ ५७ ॥

अपान्तरतपा नाम वाले एवं विष्णु के वाक्य से उत्पन्न महर्षि वाच्यायन, पुराणर्षि कपिल, आदिदेव (महाविष्णु) से उत्पन्न हिरण्यगर्भ लोकादि मैं पशुपति शिव हम लोगों ने एक लाख वर्ष पर्यन्त घोर तपस्या की । फिर आदिदेव से अनुमति लेकर देवाधिदेव की प्रेरणा प्राप्त कर हम लोगों ने उत्पन्न उस शास्त्र का धीरे-धीरे थोड़ा हिस्सा संक्षिप्त किया । सर्वप्रथम भगवान् महर्षि अपान्तरतपा ने उसका संक्षेप किया ॥ ५३-५७ ॥

हरेर्वाच्यायनः पुत्रो यावदात्तं च वै ततः ।
उदभूत् तत्र धीरूपमृग्यजुःसामसङ्कुलम् ॥ ५८ ॥

फिर विष्णु पुत्र वाच्यायन ने उससे लेकर पुनः संक्षिप्त किया । जिससे ऋग्, यजुः तथा साम से युक्त धीरूप (गायत्री) उत्पन्न हुई ॥ ५८ ॥

विष्णुसङ्कल्पसम्भूतमेतद्वाच्यायनेरितम् ।

कपिलेन सांख्यविभजनम्

ततक्ष कपिलः शास्त्राद्यावदंशमुदारधीः ॥ ५९ ॥
तत् सांख्यमभवच्छास्त्रं प्रसङ्ख्यानपरायणम् ।

यह वाच्यायन द्वारा कहा गया सम्पूर्ण शास्त्र विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न हुआ है । तदनन्तर उदारचेता महर्षि कपिल ने उस शास्त्र का कुछ अंश संक्षिप्त किया । वही प्रसङ्ख्यान परायण सांख्यशास्त्र हुआ ॥ ५९-६० ॥

हिरण्यगर्भेण योगशास्त्रविभजनम्

हिरण्यगर्भो लोकादिर्यत् ततक्षादिशासनात् ॥ ६० ॥
यमाद्यङ्गमभूदेतद् दिव्यं योगानुशासनम् ।

लोकादि हिरण्यगर्भ ने आदिभूत उस शास्त्र से जो अंश संक्षिप्त किया वह योगानुशासन हुआ, जिसमें योग के यम नियमभूत अङ्गों का वर्णन है ॥ ६०-६१ ॥

शिवेन पाशुपतविभजनम्

अहं ततक्ष यच्छास्त्रादंशान्नानाव्रताकुलात् ॥ ६१ ॥

अभूत् पाशुपताख्यं तत् पशुपाशविमोचनम् ।

अनेक व्रतों से परिपूर्ण उस शास्त्र से संक्षिप्त कर मैंने जिस शास्त्र की रचना की वह पशुओं (जीवमात्र) को पाश (बन्धन) से विमुक्त करने वाला पाशुपत शास्त्र हुआ ।

भगवता पाञ्चरात्रविभजनम्

सदागममयात् तस्मात् केवलाद् दिव्यशासनात् ॥ ६२ ॥
निर्ममे सारमुद्धृत्य स्वयं विष्णुरसङ्कुलम् ।
तत् परव्यूहविभवस्वभावादिनिरूपणम् ॥ ६३ ॥
पञ्चरात्राह्वयं तन्त्रं मोक्षैकफललक्षणम् ।
सुदर्शनाह्वयो योऽसौ सङ्कल्पो वैष्णवः परः ॥ ६४ ॥
स स्वयं बिभिदे तेन पञ्चधा पञ्चवक्त्रगः ।

दिव्यशासन वाले सदागममय मात्र उस शास्त्र के सार को लेकर स्वयं विष्णु ने जिस शास्त्र की रचना की वह परव्यूह, विभव तथा स्वभाव का निरूपण करने वाला 'पाञ्चरात्र' नाम का तन्त्र हुआ जिसमें मात्र मोक्षफल के लक्षणों का वर्णन है । वह पर वैष्णव सङ्कल्प रूप सुदर्शन नामक शास्त्र अपने पञ्चवक्त्र से पाँच भागों में विभक्त हो गया, इसलिए उसे पाञ्चरात्र कहते हैं ॥ ६२-६५ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

विष्णुसङ्कल्परूपोऽयं प्रमाणव्यूह ईरितः ।
शस्त्रशास्त्रविभेदेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शब्दात्मकप्रमाणव्यूहनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
॥ आदितः श्लोकाः ६८३ ॥

* * *

यहाँ तक हमने पाञ्चरात्र के विष्णुसङ्कल्परूप शस्त्र एवं शास्त्र भेद से प्रमाणव्यूह का वर्णन किया । अब हे नारद ! आप क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शब्दात्मक-प्रमाणव्यूह निरूपण नामक ग्यारहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

* * *

अथ द्वादशोऽध्यायः

शब्दात्मकप्रमाणव्यूहविशेषस्वरूपनिरूपणम्

वृत्तानुवादः

नारदः—

सुरासुरगणाराध्य नमस्ते पार्वतीप्रिय ।
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं देव दिव्यं तद्वैष्णवं यशः ॥ १ ॥
यत् तदाद्यं महच्छास्त्रं सुदर्शनमयं हरेः ।
तस्मात् पृथक् पृथक्छास्त्रमाहुर्वाच्यायनादयः ॥ २ ॥

शब्दात्मकप्रमाणव्यूह-विशेष स्वरूप निरूपण—श्रीनारद ने कहा—हे देवताओं एवं असुरों से आराधना योग्य ! हे पार्वतीप्रिय ! आपको नमस्कार है । हे देव ! आपकी कृपा से मैंने उन वैष्णव (सुदर्शन) का यश (माहात्म्य) सुन लिया और यह भी सुन लिया कि पहले विष्णु का एक सुदर्शनमय शास्त्र था । इसके पश्चात् वाच्यायन आदि महर्षियों ने उसी से पृथक्-पृथक् शास्त्रों की रचना की ॥ १-२ ॥

त्रय्यादिस्वरूपप्रश्नः

त्रयी सांख्यं तथा योगशास्त्रं पाशुपतं तथा ।
सात्त्वतं चेति तद्रूपं श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ ३ ॥

अब, हे प्रभो ! हम त्रयी, सांख्य, योगशास्त्र, पाशुपत तथा सात्वत कहे जाने वाले शास्त्रों का स्वरूप सुनना चाहते हैं ॥ ३ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन तेषां रूपं पृथक् पृथक् ।
सङ्कल्पो यावता विष्णोर्भेदेन व्यवतिष्ठते ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब उन शास्त्रों का तत्त्वतः पृथक्-पृथक् स्वरूप सुनिए, विष्णु के सङ्कल्प से जितने भेद हैं वे शास्त्र रूप से स्थित हैं ॥ ४ ॥

त्रयीस्वरूपनिरूपणम्

तत्र त्रयीमयं रूपमाद्यं सर्वार्थदर्शनम् ।
ऋग्यजुःसामरूपत्वात् त्रयी सा परिकीर्तिता ॥ ५ ॥

कार्यभेदात् त्रयीत्वेऽपि चतुर्धा सा प्रकीर्तिता ।
ऋचो यजूंषि सामानि ह्यथर्वाङ्गिरसस्तथा ॥ ६ ॥
चातुर्होत्रप्रधानत्वादृगादित्रितयं त्रयी ।

अथर्वणां पृथक्करणे हेतुः

अथर्वाङ्गिरसां रूपं सर्वमृग्यजुषात्मकम् ॥ ७ ॥
तथापि शान्त्याभिचारप्राधान्यात् ते पृथक् कृताः ।

उसका प्रथम स्वरूप त्रयीमय है जिसमें (स्थावर जङ्गम रूप) सभी अर्थों का दर्शन हो जाता है । ऋक् यजुः साम इन तीन रूपों में होने से उसे त्रयी कहा जाता है । यद्यपि ये तीन ही हैं किन्तु कार्यभेद से यह त्रयी ही चार भी कही जाती हैं । चातुर्होत्र प्रधान होने से वह त्रयी ऋक् यजुः साम और अङ्गिरा निर्मित अथर्व चार है । ऐसे ऋगादि त्रितय की ही 'त्रयी' संज्ञा है । यद्यपि अङ्गिरस प्रोक्त अथर्वा का रूप ऋग् यजुषात्मक है फिर भी शान्ति एवं अभिचार प्रधान होने से उसकी गणना पृथक्-पृथक् की गई है ॥ ७-८ ॥

ऋगादीनां शाखासङ्ख्या

एकविंशतिशाखावानृग्वेदः परिगीयते ॥ ८ ॥
शतं चैका च शाखाः स्युर्यजुषामेकवर्त्मनाम् ।
साम्नां शाखाः सहस्रं स्युः पञ्च शाखा अथर्वणाम् ॥ ९ ॥

उसमें भी ऋग्वेद की २१ शाखायें कही गयी हैं । एक सौ एक वर्त्मा यजुः की, साम की एक साहस्र तथा अथर्व की मात्र ५ शाखायें हैं ॥ ८-९ ॥

इयतामेव वेदानां प्रत्यक्षत्वम्

इयन्त एव प्रत्यक्षा आम्नायन्ते महर्षिभिः ।
स्मर्यन्ते मुनिभिर्नित्यं लब्धानुज्ञैर्महेश्वरात् ॥ १० ॥
एषां नैयमिका धर्माः स्वरूपाम्नायगोचराः ।

महर्षियों ने प्रत्यक्ष रूप से इतना ही 'वेद' (= आम्नाय) कहा है । पुनः महेश्वर की आज्ञा से मुनियों ने वेदों का स्मरण किया, जो संसार को नियन्त्रित करने वाले 'धर्मशास्त्र' कहे गए । इनका स्वरूप उन वेदों में ही प्राप्त होता है ॥ १०-११ ॥

कल्पादीनि षडङ्गानि

कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं ज्योतिषां गतिः ॥ ११ ॥
छन्दसां विचयश्चेति षडङ्गानि विदुर्बुधाः ।

कल्प, व्याकरण, शिक्षा निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दों के संग्रह रूप शास्त्रों को बुद्धिमान् लोग (वेद के अङ्गों को) 'वेदाङ्ग' भी कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

मीमांसान्यायश्चोपाङ्गम्

उपाङ्गद्वितयं चैतन्मीमांसान्यायविस्तरः ॥ १२ ॥
धर्मज्ञसमयोऽर्थाश्च वेदवादोत्थितास्तथा ।

निबद्धा चानिबद्धा च संस्काराचारसन्ततिः ॥ १३ ॥
धर्मशास्त्रं महर्षीणामन्तःकरणसम्भृतम् ।

इसके अतिरिक्त 'मीमांसा' तथा 'न्याय' ये दो वेद के 'उपाङ्ग' हैं । धर्मज्ञों एवं समय (प्रतिज्ञा) और अर्थ वेद के वादों से उत्पन्न हुये हैं । निबद्ध अथवा अनिबद्ध (परम्परागत) युक्त आचारपद्धति तथा धर्मशास्त्र महर्षियों के अन्तःकरण से उत्पन्न हुये हैं ॥ १२-१४ ॥

उपवेदादिकम्

इतिहासपुराणाख्य उपवेदः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥
वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने ।
आयुर्वेदश्च पञ्चैत उपवेदाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥

'इतिहास (वाल्मीकीय रामायण और महाभारत) तथा पुराण' यह एक 'उपवेद' कहे गए हैं । इसके अतिरिक्त वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद ये चार अर्थात् कुल मिलाकर पाँच उपवेद कहे गए हैं ॥ १४-१५ ॥

दण्डनीतिश्च वार्ता च विद्याद्वयमिदं परम् ।
एकविंशतिभेदो यः सप्रकारः प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥
वाच्यायनादृषेः पूर्वं विष्णोर्वाणीसमुद्भवात् ।
त्रयीरूपेण सङ्कल्प इयद्वेदो विजृम्भितः ॥ १७ ॥

दण्डनीति और वार्त्ता (वर्त्तनोपाय जीविका) ये दो विद्यायें कही गई हैं । इस प्रकार (१. त्रयी ३ + वेदाङ्ग ६ + उपाङ्ग २ + संस्कार एवं आचार २+ धर्मशास्त्र १ + उपवेद ५ + विद्याएँ २ = २१) यहाँ तक हमने शब्द शास्त्र के जो २१ भेद बतलायें हैं वे सभी विष्णु के सङ्कल्परूप वाणी से उत्पन्न हैं और त्रयी रूप वेद महर्षि वाच्यायन के द्वारा पृथ्वी में प्रकाशित हुये (अर्थात् ये सभी शास्त्र वेद ही हैं) ॥ १६-१७ ॥

सांख्यस्वरूपवर्णनम्

सांख्यरूपेण सङ्कल्पो वैष्णवः कपिलादृषेः ।
उदितो यादृशः पूर्वं तादृशं शृणु मेऽखिलम् ॥ १८ ॥
षष्टिभेदं स्मृतं तन्त्रं सांख्यं नाम महामुने ।
प्राकृतं वैकृतं चेति मण्डले द्वे समासतः ॥ १९ ॥

अब दूसरे सांख्यशास्त्र के विषय में कहते हैं—वैष्णव सङ्कल्प ही महर्षि कपिल के द्वारा सांख्य रूप से उत्पन्न हुआ । वह पूर्व में जिस प्रकार उत्पन्न हुआ वह सब मुझसे उसी प्रकार सुनिए । हे महामुने ! वह सांख्यतन्त्र साठ भेदों वाला है, उसके संक्षेप में प्राकृत और वैकृत दो मण्डल हैं ॥ १८-१९ ॥

प्राकृतमण्डलवर्णनम्

प्राकृतं मण्डलं तत्र द्वात्रिंशद्भेदमिष्यते ।
तत्राद्यं ब्रह्मतन्त्रं तु द्वितीयं पुरुषाङ्कितम् ॥ २० ॥

त्रीणि तन्त्राण्यथान्यानि शक्तेर्नियतिकालयोः ।
गुणतन्त्राण्यथ त्रीणि तन्त्रमक्षरपूर्वकम् ॥ २१ ॥
प्राणतन्त्रमथान्यत्तु कर्तृतन्त्रमथेतरत् ।
सामितन्त्रमथान्यत्तु ज्ञानतन्त्राणि पञ्च च ॥ २२ ॥
क्रियातन्त्राणि पञ्चाथ मात्रातन्त्राणि पञ्च च ।
भूततन्त्राणि पञ्चेति त्रिंशद् द्वे च भिदा इमाः ॥ २३ ॥
प्राकृतं मण्डलं प्रोक्तं वैकृतं मण्डलं शृणु ।

उसमें प्राकृत मण्डल के ३२ भेद कहे गए हैं । उसमें प्रथम ब्रह्मतन्त्र द्वितीय पुरुष तन्त्र, अन्य तीन तन्त्र—शक्ति तन्त्र, नियति तन्त्र और काल तन्त्र हैं । इसी प्रकार तीन गुण तन्त्र—अक्षरतन्त्र, प्राणतन्त्र तथा कर्तृतन्त्र हैं । इसके अतिरिक्त सामितन्त्र उसके पश्चात् पॉच ज्ञानतन्त्र, पॉंच क्रियातन्त्र, पाँच मात्रातन्त्र और पाँच भूततन्त्र हैं । इस प्रकार कुल ये ३२ भेद हुये । यहाँ तक हमने प्राकृतमण्डल कहा । अव वैकृतमण्डल के भेद सुनिए ॥ २०-२४ ॥

वैकृतमण्डलवर्णनम्

अष्टाविंशतिभेदं तन्मण्डलं वैकृतं स्मृतम् ॥ २४ ॥
कृत्यकाण्डानि पञ्चादौ भोगकाण्डं तथाऽपरम् ।
वृत्तकाण्डं तथैकं तु क्लेशकाण्डानि पञ्च च ॥ २५ ॥
त्रीणि प्रमाणकाण्डानि ख्यातिकाण्डमतः परम् ।
धर्मकाण्डमथैकं च काण्डं वैराग्यपूर्वकम् ॥ २६ ॥
अथैश्वर्यस्य काण्डं च गुणकाण्डमतः परम् ।
लिङ्गकाण्डमथैकं च दृष्टिकाण्डमतः परम् ॥ २७ ॥
आनुश्रविककाण्डं च दुःखकाण्डमतः परम् ।
सिद्धिकाण्डमथैकं च काण्डं काषायवाचकम् ॥ २८ ॥
तथा समयकाण्डं च मोक्षकाण्डमतः परम् ।
अष्टाविंशतिभेदं तदित्थं विकृतिमण्डलम् ॥ २९ ॥
षष्टितन्त्राण्यथैकैकमेषां नानाविधं मुने ।
षष्टितन्त्रमिदं सांख्यं सुदर्शनमयं हरेः ॥ ३० ॥
आविर्बभूव सर्वज्ञात् परमर्षेर्महामुने ।

वह वैकृतमण्डल २८ भेदों वाला कहा गया है । सर्वप्रथम ५ कृत्यकाण्ड हैं । इसके बाद भोगकाण्ड वृत्तकाण्ड ५ क्लेशकाण्ड तीन प्रमाणकाण्ड इसके बाद ख्यातिकाण्ड, इसके बाद धर्मकाण्ड, फिर वैराग्यकाण्ड, ऐश्वर्यकाण्ड, गुणकाण्ड, लिङ्गकाण्ड, दृष्टिकाण्ड, आनुश्रविककाण्ड, दु:खकाण्ड, सिद्धकाण्ड, काषायकाण्ड, समय और मोक्षकाण्ड इस प्रकार यह विकृतिमण्डल २८ भेद का कह दिया गया । इस प्रकार कुल साठ तन्त्र हुये । इसके अतिरिक्त हे मुने! इनमें प्रत्येक के नाना भेद हैं, यह विष्णु के सुदर्शनमय

सांख्य का साठ भेद हमने कहा जो सर्वज्ञ महर्षि कपिल के द्वारा उत्पन्न हैं ॥ २४-३१ ॥

योगशास्त्रस्वरूपवर्णनम्

विष्णुसङ्कल्परूपं च महद्योगानुशासनम् ॥ ३१ ॥

योगशास्त्र के स्वरूप का वर्णन—अब विष्णु सङ्कल्प से उत्पन्न महान् योगानुशासन शास्त्र के विषय में सुनिए ॥ ३१ ॥

योगे संहिताद्वयम्

हिरण्यगर्भादुद्भूतं तस्य भेदानिमाञ्शृणु ।
आदौ हिरण्यगर्भेण द्वे प्रोक्ते योगसंहिते ॥ ३२ ॥
एका निरोधयोगाख्या कर्मयोगाह्वया परा ।

यह योगानुशासन हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुआ है । उसके इन भेदों को सुनिए सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ने दो योगसंहिताओं को कहा । एक निरोधयोग के नाम से कही जाती हैं दूसरी संहिता कर्मयोग के नाम से कही गई है ॥ ३२-३३ ॥

निरोधसंहिताया द्वादशविधत्वम्

संहिता तु निरोधाख्या तत्र द्वादशधा स्मृता ॥ ३३ ॥
अङ्गतन्त्रमथाद्यं तु दोषतन्त्रमतः परम् ।
उपसर्गाभिधं तन्त्र तथाधिष्ठानकं परम् ॥ ३४ ॥
आधारतन्त्रं योगं च बहिस्तत्त्वाधिकारवत् ।
रिक्तयोगाख्यतन्त्रं च पूर्णयोगाख्यमेव च ॥ ३५ ॥
सिद्धियोगाख्यया त्रीणि मोक्षतन्त्रमतः परम् ।
इति द्वादशभेदास्ते निरोधायाः प्रकीर्तिताः ॥ ३६ ॥

निरोधसंहिता के बारह भेद—उसमें निरोधसंहिता के बारह भेद कहे गए हैं । १. पहला अङ्गतन्त्र, २. दूसरा दोषतन्त्र, ३. उपसर्गतन्त्र, ४. अधिष्टानतन्त्र, ५. आधारतन्त्र, ६. योगतन्त्र जो बाहरी तत्त्वों के अधिकार से युक्त है । ७. रिक्तयोगाख्य तन्त्र, ८. पूर्णयोगाख्यतन्त्र, तीन सिद्धाख्य तन्त्र, इसके अतिरिक्त बारहवाँ मोक्ष तन्त्र है । इन निरोध नामक योग के १२ भेदों को हमने कहा ॥ ३३-३६ ॥

कर्मसंहितायाश्चातुर्विध्यम्

ब्रह्मणा गदितास्तत्र चतस्रः कर्मसंहिताः ।
नानाकर्ममयी त्वेका परा त्वेका क्रियामयी ॥ ३७ ॥
बाह्याभ्यन्तररूपेण द्वे अपि द्विविधे स्मृते ।

कर्मसंहिता के चार भेद—योग के कर्मयोग वाले दूसरे भेद को सुनिए । ब्रह्मदेव ने चार संहिताओं का प्रतिपादन किया । उसमें एक नाना कर्ममयी है और दूसरी मात्र एक क्रियामयी इन दोनों के बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो-दो भेद कहे गए हैं ॥ ३७-३८ ॥

योगानुशासनं शास्त्रमिति षोडशविस्तरम् ॥ ३८ ॥
सुदर्शनमयं विष्णोरुदितं तत् प्रजापतेः ।

इस प्रकार यह योगानुशासन शास्त्र १६ भेदों के विस्तार में प्रतिपादित है । वह प्रजापति विष्णु के द्वारा सुदर्शन रूप में प्रगट हुआ है ॥ ३८-३९ ॥

पाशुपतस्वरूपवर्णनम्

तन्त्रं पाशुपतं नाम पशुपाशप्रमोचनम् ॥ ३९ ॥
मद्वक्त्रान्निःसृतं विष्णोः सङ्कल्पप्रविजृम्भितम् ।

पाशुपतस्याष्टकाण्डत्वम्

अष्टकाण्डमिदं प्रोक्तं मया तन्त्रमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

पशुओं (जीवों) को पाश (माया) से मुक्त करने वाला पाशुपत नामक तन्त्र है जो विष्णु के सङ्कल्प से प्रकाशित होकर मेरे (अहिर्बुध्न्य के) मुख से प्रगट हुआ है । इसे मैंने स्वयं ही आठ काण्डों मे कहा है ॥ ३९-४० ॥

पतिकाण्डमथाद्यं तु पशुकाण्डमतः परम् ।
पाशकाण्डं तृतीयं तु प्रोक्तं पञ्चप्रभेदतः ॥ ४१ ॥
शुद्धचर्या च मिश्रा च काण्डे द्वे परिकीर्तिते ।
देवकाण्डमथो षष्ठं दीक्षाकाण्डमतः परम् ॥ ४२ ॥
सायुज्यमष्टमं प्रोक्तं काण्डं पाशुपतं महत् ।
अष्टकाण्डमिदं शास्त्रं सुदर्शनमयं हरेः ॥ ४३ ॥
दिव्यं पाशुपतं शास्त्रं मयैवोक्तं महामुने ।

पहला पतिकाण्ड दूसरा पशुकाण्ड तीसरा पाशकाण्ड इसके पाँच भेद हैं । एक शुद्धचर्या, दूसरी मिश्रचर्या इस प्रकार दो भेद पहले कह आये हैं कुल ५ भेद हुये । छठां देवकाण्ड, सातवाँ दीक्षाकाण्ड और आठवाँ सायुज्यकाण्ड है । इस प्रकार हमने पाशुपतशास्त्र के आठ भेदों को कहा । हे महामुने ! यह विष्णु का सुदर्शनमय शास्त्र, जिसे दिव्य पाशुपतशास्त्र कहते हैं उसे आठ काण्डों में मैंने ही कहा है ॥ ४१-४४ ॥

पाञ्चरात्रस्वरूपवर्णनम्

यत् तत् सौदर्शनं विष्णोः सात्त्वतं नाम जृम्भितम् ॥ ४४ ॥
भेदो दशविधस्तस्य संक्षेपेण प्रकीर्तितः ।
भगवत्संहिता त्वाद्या तथान्या कर्मसंहिता ॥ ४५ ॥
विद्यामयी तृतीया च चतुर्थी कालसंहिता ।
कर्तव्यसंहिता त्वन्या षष्ठी वैशेषिकी क्रिया ॥ ४६ ॥
सप्तमी गदिता तत्र पूज्या संयमसंहिता ।
अष्टम्यधिकृते चिन्ता नवमी मार्गसंहिता ॥ ४७ ॥
सात्त्वती गीयते शुद्धा दशमी मोक्षसंहिता ।

एतावत् सात्त्वतं शास्त्रमाविरासीत् सनातनात् ॥ ४८ ॥

विष्णु के सङ्कल्प से सात्वत शास्त्र के रूप में जो प्रकाशित हुआ है, उसके दस भेद हैं जो संक्षेप में इस प्रकार से कहे गए हैं—पहली 'भगवत्संहिता', दूसरी 'कर्मसंहिता', तीसरी 'विद्यामयी संहिता', चौथी 'कालसंहिता', पाँचवीं 'कर्त्तव्य संहिता', छठी 'वैशेषिकी', सातवीं 'पूज्या' 'संयम संहिता' के नाम से कही गई है, आठवीं 'चिन्ता संहिता', नवीं 'मार्गसंहिता' और दशवीं 'मोक्षसंहिता' है । इस प्रकार दश संहिताओं में 'सात्वतशास्त्र' कहा गया है । इतने परिमाण वाले सात्वतशास्त्र सनातन पुरुष के द्वारा उत्पन्न हुए हैं ॥ ४४-४८ ॥

एतानि पञ्च शास्त्राणि मूलभूतानि वै मुने ।
युगे युगे विभज्यन्ते विष्णुसङ्कल्पचोदितैः ॥ ४९ ॥
तत्तत्कर्तृसमाख्यातास्तास्तास्त्रय्यादिसंहिताः ।
प्रादेशिक्यो निवर्तन्ते ह्रासकालानुकालतः ॥ ५० ॥

हे मुने ! त्रयी, सांख्य, योगानुशासन, पाशुपत और सात्वत इस प्रकार पाँच शास्त्र मूलभूत हैं जो युग-युग के अनुसार विष्णु के सङ्कल्प की प्रेरणा से प्रविभक्त होते रहते हैं । उन-उन त्रय्यादि संहिताओं को तथा उनके करने वालों को भी हमने कहा । काल के ह्रास और अनुकूलता तथा प्रदेशों के भेद से इन संहिताओं में भेद हो जाता है ॥ ४९-५० ॥

शास्त्राभासप्रवृत्तौ कारणम्

हिंस्राणां मोहनार्थाय सङ्कल्पा एव वैष्णवाः ।
शास्त्राभासाः प्रवर्तन्ते देवब्रह्मर्षिवक्त्रतः ॥ ५१ ॥

हिंसा में रुचि रखने वालों को मोहित करने के लिए वे ही विष्णु के सङ्कल्प (सात्वतशास्त्र) देवता, ब्राह्मण और ऋषियों के मुख से शास्त्राभास के रूप में प्रगट होते हैं ॥ ५१ ॥

उक्तार्थनिगमनम्

एष प्रमाणयोर्व्यूहो दिव्यः सौदर्शनः परः ।
शब्दार्थप्रविभागेन गदितस्ते मया मुने ॥ ५२ ॥

हे महामुने ! इस प्रकार शब्द और अर्थ वाले प्रमाण का सुदर्शनमय श्रेष्ठ व्यूह हमने आपसे कहा ॥ ५२ ॥

सुदर्शनपर्यायशब्दाः

प्राणो माया क्रिया शक्तिर्भाव उन्मेष उद्यमः ।
सुदर्शनं च सङ्कल्पः शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥ ५३ ॥

प्राण, माया, क्रिया, शक्ति, भाव, उन्मेष, उद्यम और सुदर्शन सङ्कल्प ये सभी सुदर्शन के समान पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ५३ ॥

पञ्चानामपि शास्त्राणां भगवति निष्ठा

निष्ठा त्वेकैव शास्त्राणामेतेषां पञ्चवर्त्मनाम् ।
शास्त्रं सुदर्शनं नाम तदर्थो विष्णुरव्ययः ॥ ५४ ॥

पाँच मार्गो का प्रतिपादन करने वाले इन पाँचों शास्त्रों की निष्ठा (लक्ष्य) एक ही है । शास्त्र का नाम सुदर्शन तथा उसका अर्थ अव्ययात्मा विष्णु है ॥ ५४ ॥

प्रमाणमय उद्दिष्टो लेशतोऽयं महागुने ।
व्यूहः सौदर्शनो विष्णोः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् शब्दात्मकप्रमाणव्यूहविशेषस्वरूपनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ७३८ ॥

*

हे महामुने ! हमने विष्णु के सुदर्शनमय व्यूह का लेशमात्र यह शब्द प्रमाण आपसे उपदेश रूप में कहा । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥ ५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शब्दात्मक प्रमाणव्यूह-विशेषस्वरूप-निरूपण नामक बारहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

*

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

प्रमाणार्थनिरूपणम्

प्रमाणार्थविषयकः प्रश्नः

नारदः—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते मरुतां पते ।
भवानीपतये तुभ्यं नमस्ते वृषकेतन ॥ १ ॥

प्रमाणार्थनिरूपण—श्रीनारद ने कहा—हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार हैं। हे देवस्वामिन् ! आपको नमस्कार है। आप भवानीपति के लिए नमस्कार है। हे वृषकेतन ! आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

त्वद्वक्त्रकमलोद्भूता अर्था अवधृता मया ।
यत् कारणं च जगतामाधारो जगतां च यः ॥ २ ॥
जगतां यत् प्रमाणं च त्रयं तदवधारितम् ।
प्रमाणार्थमिदानीं मे वक्तुमर्हसि शङ्कर ॥ ३ ॥
यश्च यादृक् च यावांश्च प्रमाणास्यार्थ इष्यते ।

आपके मुखकमल से उत्पन्न हुये अर्थ को मैंने धारण किया। अब जो इस जगत् का कारण है, जो इस जगत् का आधार है और जो इस जगत् का प्रमाण है ये तीनों बातें भी मुझे ज्ञात हो गईं। अब हे शङ्कर ! प्रमाण शब्द का अर्थ मुझसे कहिये। वह प्रमाण जैसा है, जिस रूप का है और जितना कहा जाता है उसे बताइए ॥ २-४ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन प्रमाणस्यार्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥
विष्णुसङ्कल्पमूलो यो बहुधा प्रविजृम्भते ।

प्रमाणशब्दनिर्वचनम्

मितिर्मा गदिता सद्भिः प्रकृष्टा मा प्रमा स्मृता ॥ ५ ॥
प्रकर्षश्च मितेः सोऽयं यद्यथार्थावधारणम् ।

धीसाधकतमं यत् तत् प्रमाणमिति शब्द्यते ॥ ६ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब तत्त्वतः प्रमाण शब्द के उत्तम अर्थ को सुनिए। जो विष्णु सङ्कल्प का मूल हो कर अनेक प्रकार से प्रकाशित हो रहा है । मा शब्द का अर्थ मिति है । प्रकृष्टा मा प्रमा है ऐसा सज्जन लोग कहते हैं । मिति का वह प्रकर्ष जिससे यथार्थ में निश्चय किया जाय और जो बुद्धि का साधकतम हो उसे प्रमाण शब्द से कहा जाता है ॥ ४-६ ॥

प्रमाणार्थस्वरूपम्

प्रमाणेनार्थ्यते यद्धि स प्रमाणार्थ उच्यते ।
यत् पुंसो हितमत्यन्तं सर्वदेशेषु सर्वदा ॥ ७ ॥
स प्रमाणार्थ इष्टोऽत्र स द्वेधा व्यवतिष्ठते ।

तस्य द्वैविध्यम्

हितं च साधनं चेति तयोस्तत्त्वमिदं शृणु ॥ ८ ॥

प्रमाण के द्वारा जो प्राप्त किया जाय वह प्रमाणार्थ है । जो सर्वकाल से सर्वदेश में पुरुष का अत्यन्त हित साधक हो वही प्रमाणार्थ कहा जाता है । इस प्रकार वह दो भेदों में स्थित है—जो हितकारी हो और जो साधन हो । उन दोनों का तत्त्व अब मुझसे सुनिए ॥ ७-८ ॥

हितस्वरूपम्

आत्यन्तिकी निवृत्तिस्तु पुंसो या दुःखसन्ततेः ।
तयोपलक्षितं नित्यं सुखं यत् तद्धितं स्मृतम् ॥ ९ ॥

दुःख की परम्परा से जहाँ पुरुष की आत्यन्तिक निवृत्ति हो, उससे उपलक्षित नित्य सुख को 'हित' कहा जाता है ॥ ९ ॥

साधनस्वरूपम्

तस्य योऽव्यभिचारेण साधनत्वं प्रपद्यते ।
हितसाधनमित्युक्तः सोऽर्थो वेदान्तपारगैः ॥ १० ॥

उस सुख का व्यभिचार रहित साधन ही 'हितसाधन' है ऐसा अर्थ वेदान्त के निष्णात विद्वानों ने किया है ॥ १० ॥

हितस्वरूपयाथात्म्यम्

स्वरूपभूतं यत् पुंसो हितं सुखमुदीरितम् ।
भगवन्मयता सास्य भगवत्तापराह्वया ॥ ११ ॥

पुरुष का जो अपना स्वरूप (आत्मज्ञान) है वही हित है और वही सुख है ऐसा कहा गया है । जो उस पुरुष की भगवन्मयता अथवा दूसरी उसकी भगवत्ता की रूप वाली है ॥ ११ ॥

साधनद्वैविध्यम्

अत्यन्तसाधनं तस्य यत् तद् द्वेधा व्यवस्थितम् ।
विधा ज्ञानमिति त्वेका धर्म इत्यपरा विधा ॥ १२ ॥

उस भगवन्मयता के अथवा भगवत्ता के दो साधन व्यवस्थित हैं । पहला ज्ञान और दूसरा धर्म यह उसके दो साधन हैं ॥ १२ ॥

तयोर्हेतुहेतुमद्भावः

हेतुमद्धेतुभावस्तु विधयोरनयोः स्मृतः ।

ज्ञानद्वैविध्यम्

ज्ञानं तु हेतुमत् तत्र तच्च द्वेधा व्यवस्थितम् ॥ १३ ॥
साक्षात्कारमयं चैकं परोक्षं परमीर्यते ।

तयोरपि हेतुहेतुमद्भावः

हेतुमद्धेतुभावोऽयं द्वयोरपि निरूप्यते ॥ १४ ॥

इन दोनों विधाओं को हेतु-हेतुमद्भाव कहा गया है । उसमें ज्ञान हेतुमान है । वह ज्ञान भी दो प्रकारों से व्यवस्थित है । एक साक्षात्कारमय और दूसरा परोक्ष ज्ञान कहा जाता है । अब इन दोनों का हेतु-हेतुमद्भाव निरूपण करता हूँ ॥ १३-१४ ॥

हेतुमत्त्वपरोक्षं यत् परोक्षं हेतुरुच्यते ।

कर्मणां ज्ञानहेतुत्वम्

अनयोर्ज्ञानयोर्धर्मः स हेतुरिति गीयते ॥ १५ ॥
साक्षात् परोक्षे तत्साध्ये हेतुस्तन्मुखतो ह्यसौ ।

कर्मणां द्वैराश्यम्

अस्यापि द्वे विधे दृष्टे तत्त्वशास्त्राब्धिपारगैः ॥ १६ ॥
साक्षादाराधनात्मैकः परस्तु व्यवधानतः ।

व्यवहितकर्मस्वरूपम्

अपारं तत् परं ब्रह्म शक्तिमत् परमेश्वरः ॥ १७ ॥
नारायणसमाख्यातं नित्यं षाड्गुण्यमव्ययम् ।
विभूतयस्तु तस्येमे ब्रह्माद्याः स्थावरान्तिमाः ॥ १८ ॥
भावनात्रयसंमिश्रास्तत्सुदर्शनजृम्भिताः ।
या सा भूतिः पुरा शक्तेः कोट्यंशेनोदिता मया ॥ १९ ॥
तदंशलेशाद् ब्रह्माद्या विष्णुसङ्कल्पजृम्भिताः ।

जो अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) है वह हेतुमान् है और जो परोक्ष है वह हेतु है । इन दोनों प्रकारों के ज्ञान में धर्म को हेतु रूप में कहा गया है अर्थात् धर्म हेतु है और ज्ञान हेतुमान् है (द्र० १३.१२) । उस साधन हेतुभूत धर्म से साक्षात् ज्ञान और परोक्ष ज्ञान साध्य है उन

दोनों प्रकार के ज्ञान में मुख्य रूप से धर्म ही हेतु है। ज्ञान में हेतुभूत उस धर्म के भी दो भेद तत्त्वशास्त्ररूपी समुद्र के पारगामी विद्वानों ने कहे हैं। पहला आत्मा का साक्षात् आराधन तथा दूसरा व्यवधान रूप से आराधन अर्थात् वह परब्रह्म अपार है, शक्तिमान् है, परमेश्वर है और वह नारायण नाम से प्रसिद्ध है। वह नित्य है, षड्गुणों से युक्त एवं अव्यय है। ब्रह्मादि से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी उसकी विभूतियाँ हैं। वे सभी भावनात्रय से मिश्रित हैं और सुदर्शन रूप सङ्कल्प से प्रगट हुये हैं। पूर्व में हमने जो शक्ति के करोड़हवें अंश में यह सारी विभूति हैं ऐसा कहा है (द्र० ६.५) विष्णु सङ्कल्प से विजृम्भित उसके अंश के लेश से ब्रह्मादि देवता प्रगट होते हैं॥ १५-२०॥

एतद्विभूतिमुखतो यो ह्यकामहतैर्नरैः॥ २०॥
ब्रह्मार्पणेन क्रियते स धर्मो व्यवधानवान्।

इस प्रकार निष्काम लोग इन ब्रह्मादि विभूतियों के द्वारा ब्रह्मार्पण रूप से जो उपासना करते हैं वह व्यवधान धर्म है (द्र० १३.१७)॥ २०-२१॥

अव्यवहितधर्मस्वरूपम्

विभूतिमत् परं ब्रह्म तदेवाव्यवधानतः॥ २१॥
येन प्रीणयते योगी स साक्षाद्धर्म इष्यते।

पाञ्चरात्रस्याव्यवहितधर्मपरत्वम्

सात्त्वतं शासनं सर्वं तस्यैतस्यावबोधकम्॥ २२॥

वही विभूतिमान् परब्रह्म जब योगियों के द्वारा साक्षात् रूप से आराधना कर प्रसन्न किया जाता है वह साक्षात् धर्म कहा जाता है (द्र० १३.१७)। यह सारा सात्वत शास्त्र उसी परब्रह्म का अवबोधक है॥ २१-२२॥

सशिरस्कस्य वेदस्य व्यवहितधर्मपरत्वम्

यस्तु पूर्वस्त्रयीभागः परभागार्थतां गतः।
अपरस्य स धर्मस्य निष्कामानां निरूपकः॥ २३॥

पूर्व में जिस त्रयीभाग को कहा गया है वह पर भागार्थता को प्राप्त कर (परब्रह्म की प्रतिपादक होकर) निष्कामों के (व्यवधान युक्त) अपर धर्म का निरूपक है॥ २३॥

पाशुपतस्यैकविभूतिविषयकधर्मपरत्वम्

धर्म एकविभूतिस्थो मया पाशुपते स्मृतः।
उग्रव्रतैर्नरैः शश्वद् ब्रह्मप्रीत्यै स साध्यते॥ २४॥

एक विभूति में रहने वाला पाशुपत धर्म, जिसका प्रणयन मैंने किया है, उसको ब्रह्मप्रीति के लिए उग्र व्रत वाले लोग सिद्ध करते हैं॥ २४॥

सांख्यस्य परोक्षज्ञानफलकत्वम्

साक्षाच्च व्यवधानाच्च यत् तन्मोक्षस्य साधनम्।
परोक्षं तत् प्रसङ्ख्यानं ज्ञानं सांख्येन चिन्त्यते॥ २५॥

वह धर्म चाहे साक्षात् आराधित हो अथवा परोक्ष रूप से दोनों ही मोक्ष के साधन हैं। उनमें यह सांख्य शास्त्र परोक्ष ज्ञान का प्रसङ्ख्यान करता है ॥ २५ ॥

वेदान्तानामपरोक्षज्ञानफलकत्वम्

अन्तरङ्गशमाद्यङ्गभक्तिश्रद्धापुरःसरम् ।
त्रय्यन्तैर्ब्रह्मविज्ञानमपरोक्षं विभाव्यते ॥ २६ ॥

वेदान्त शास्त्र के द्वारा अन्तरङ्ग शम, दम एवं तितिक्षादि अङ्गों से युक्त भक्तिश्रद्धापुरःसर अपरोक्ष ज्ञान का उपदेश किया गया है ॥ २६ ॥

योगस्यापरोक्षज्ञानाङ्गयमादिपरत्वम्

बहिरङ्गान्तरङ्गाख्ययमाद्यङ्गकलापवान् ।
चित्तवृत्तिनिरोधात्मा योगो योगानुशासने ॥ २७ ॥
शश्वदभ्यासवैराग्यपरेशप्रणिधानतः ।
साक्षात्कारावभासांख्यसिद्धशुद्धापवर्गदः ॥ २८ ॥

बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग कहे जाने वाले यम नियमादि अङ्गों वाले जिस चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग का योगानुशासन में उपदेश किया गया है वह निरन्तर अभ्यास, वैराग्य एवं परमात्मा में प्रणिधान करने से परब्रह्म के साक्षात् का अवभास कराने वाला है और सिद्धि प्रदान करने वाला तथा शुद्ध अपवर्ग को देने वाला है ॥ २७-२८ ॥

गुणप्रधानभावेन सर्वत्र सर्वोपदेशः

यथोक्ततत्त्वविज्ञानं नानाहेतुविधान्वितम् ।
धर्मो बहुविधश्चेति सर्वं सर्वैर्निरूप्यते ॥ २९ ॥

पूर्व में हमने जिस तत्त्वज्ञान को कहा है वह अनेक हेतुओं से अनेक प्रकार का है। धर्म भी अनेक प्रकार के हैं। इस धर्म का निरूपण सभी शास्त्र करते हैं ॥ २९ ॥

शास्त्रेषु विविधफलान्तरसाधनान्तरोपदेशस्याभिप्रायकथनम्

हितप्रवृत्तेर्लोकानां तनूकाराय पाप्मनाम् ।
रागद्वेषप्रयुक्तानामायुर्वेदोपदेशवत् ॥ ३० ॥

जिस प्रकार आयुर्वेद का उपदेश सत्य होने से सबके लिए लाभकारी हैं, उसी प्रकार रागद्वेष से लिप्त होने वाले पापियों के पाप के प्रशमन हेतु तथा लोकमात्र को हित में प्रवृत्त करने के लिए धर्म आवश्यक है ॥ ३० ॥

नानारूपफलावाप्त्यै नानानियमभेदिताः ।
शास्त्रैर्धर्मा विधीयन्ते नानारूपा धियस्तथा ॥ ३१ ॥

यतः इस जगत् में अनेक प्रकार की बुद्धि वाले लोग हैं, इसलिए ऐसे लोगों को अनेक प्रकार के रूपों वाले फल की प्राप्ति के लिए तथा अनेक प्रकार के नियमों के भेद वाले धर्म का निरूपण शास्त्रों ने किया है ॥ ३१ ॥

लौकिकपुरुषार्थद्वयोपक्षेपः

तदित्थं सविशेषं ते पुमर्थद्वयमीरितम् ।
अथान्यल्लौकिकं शास्त्रैः पुमर्थद्वयमीरितम् ॥ ३२ ॥

हे महामुने ! इस प्रकार हमने आपके लिए विशेष रूप से दो प्रकार के पुरुषार्थों का वर्णन किया । जिसमें लौकिक तो लोक सिद्ध है और अलौकिक शास्त्रों के द्वारा जाना जाता है ॥ ३२ ॥

अर्थकामौ तयोः कामः स्मृतो वैषयिकेरितः ।
अर्थो गोभूहिरण्यादिप्रेक्षोत्थानफलात्मकः ॥ ३३ ॥

इसके अतिरिक्त अर्थ और काम दो पुरुषार्थ हैं, जिनमें विषयों में रहने वाला काम रूप पुरुषार्थ है और गाय, भूमि, हिरण्यादि से सापेक्ष उन्नति रूप फल देने वाला अर्थ रूप पुरुषार्थ है ॥ ३३ ॥

त्रिवर्गस्य मिथः साध्यसाधनभावविवेकः

अर्थो धर्मस्य कामस्य तथार्थस्यापि साधनम् ।
धर्मो धर्मस्य कामस्य तथार्थस्यापि साधनम् ॥ ३४ ॥
कामो धर्मस्य कामस्य तथार्थस्यापि साधनम् ।
अर्थः कामश्च सर्वत्र व्यभिचारेण साधनम् ॥ ३५ ॥

यह अर्थ, धर्म, काम तथा अर्थ का भी साधन है । धर्म भी धर्म, काम तथा अर्थ का साधन है । उसी प्रकार काम भी धर्म, काम तथा अर्थ का साधन है । जिनमें अर्थ और काम सभी पुरुषार्थों में व्यभिचरित रूप से साधन कहे गए हैं अर्थात् कहीं बिना काम के अर्थावाही तथा धर्मावाप्ति हो जाती है और कहीं बिना अर्थ के कामावाप्ति तथा धर्मावाप्ति हो जाती है ॥ ३४-३५ ॥

धर्मः सर्वस्य साध्यस्य नियमेनैव साधनम् ।
तदेतत् त्रितयं प्रोक्तं त्रिवर्ग इति पण्डितैः ॥ ३६ ॥

धर्म सभी साध्य पुरुषार्थों में नियमतः साधन है अर्थात् बिना धर्म के न तो काम मिलता है और न अर्थप्राप्ति ही सम्भव है । पण्डितों ने इन्हें (धर्म, काम और अर्थ) ही त्रिवर्ग कहा है ॥ ३६ ॥

मोक्षस्य सर्वदा साध्यत्वमेव

मोक्षश्च साध्य एवेति पुरुषार्थचतुष्टयम् ।

अर्थकामयोः प्रमाणनिरूपणम्

दण्डनीतिः सवार्ता सा सोपवेदचतुष्टया ॥ ३७ ॥
प्रमाणत्वेन निर्दिष्टा पण्डितैरर्थकामयोः ।

मोक्ष साध्य है वह किसी का साधन नहीं होता । यहाँ तक पुरुषार्थ चतुष्टय का

वर्णन किया गया । पण्डितों ने अर्थ और काम के विषय में दण्डनीति और वार्त्ता के (जीवन साधन) के सहित चार उपवेदों (वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद) को प्रमाणत्वेन निर्दिष्ट किया है ॥ ३७-३८ ॥

इतिहासादेस्तत्त्वज्ञानसहकारित्वम्

इतिहासपुराणाख्य उपवेदो हि यः स्मृतः ॥ ३८ ॥
सहायभावं शास्त्राणां तत्त्वज्ञाने व्रजत्यसौ ।
इति ते लेशतः प्रोक्ता पुरुषार्थचतुष्टयी ॥ ३९ ॥

पूर्व में हमने जो इतिहास पुराण नामक उपवेद कहे हैं । वह शास्त्रों के तत्त्वज्ञान में सहायक मात्र हैं । इस प्रकार हे महामुने ! हमने लेश मात्र पुरुषार्थ चतुष्टयी का वर्णन किया ॥ ३८-३९ ॥

धर्मादीनामन्तरङ्गसाधनानि

अन्तरङ्गममुष्यास्तु साधनं शृणु नारद ।
निर्व्याजा निरुपस्कारा दया धर्मस्य साधनम् ॥ ४० ॥
हेतुरुत्थानमर्थस्य देशकालोपपादितम् ।
हेतुः कामस्य सङ्कल्पो निर्व्याजो निरुपस्कृतः ॥ ४१ ॥
हेतुस्तु सर्वसंन्यासो मोक्षे ज्ञानपुरस्कृतः ।

अब हे नारद ! इस पुरुषार्थ चतुष्टयी के अन्तरङ्ग साधनों को सुनिए । बिना व्याज के और बिना अपेक्षा के जो दया की जाती है वह धर्म रूप पुरुषार्थ में साधन है । अर्थ का साधन हेतु उन्नति है जो देश और काल पर आधारित है । निर्व्याज एवं अपेक्षारहित सङ्कल्प काम का हेतु (साधन) है । इसके अतिरिक्त ज्ञान हो जाने पर सब कुछ का त्याग करना यह मोक्ष में हेतु (साधन) है ॥ ४०-४२ ॥

तेषामेव वहिःसाधनानि

न्याय्यं धर्मादि धर्मस्य बहिःसाधनमुच्यते ॥ ४२ ॥
बहिःसाधनमर्थस्य तन्त्रावापादिचिन्तनम् ।
कामे पाणिग्रहाद्युक्तं बहिरङ्गं विचक्षणैः ॥ ४३ ॥
निष्कामधर्मकृत्यादि बहिर्मोक्षस्य साधनम् ।
विजृम्भितमिदं भूतेः पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ ४४ ॥
सङ्कल्पो वैष्णवस्तस्य विजृम्भाहेतुरुच्यते ।

न्याय एवं धर्म तो धर्म के बहिरङ्ग साधन हैं तन्त्र एवं आवापादि चिन्तन अर्थ के बहिरङ्ग साधन हैं और पाणिग्रहण पूर्वक भार्या की अवाप्ति यह काम के बहिरङ्ग साधन हैं इसी प्रकार निष्काम धर्म कृत्यादि करते रहना यह मोक्ष का बहिरङ्ग साधन है । यही भूतियों के पुरुषार्थ चतुष्टय का विलास है जिसमें वैष्णव सङ्कल्प हेतु रूप सर्वत्र व्याप्त है ऐसा कहा गया है ॥ ४२-४५ ॥

अध्यायार्थोपसंहारः

इति ते सकला प्रोक्ता प्रमाणार्थगतिः परा ।
ससाधना सप्रकारा किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां प्रमाणार्थ-
निरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
॥ आदितः श्लोकाः ७८३ ॥

* * *

हे महामुने ! इस प्रकार हमने अत्यन्त उत्कृष्ट प्रमाणार्थ का साधन का उसके प्रकार सहित निरूपण किया । अब पुनः आप क्या सुनना चाहते हैं ॥ ४५ ॥

**॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के प्रमाणार्थ
निरूपण नामक तेरहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १३ ॥**

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

जीवस्य संसारहेतुतदुद्धरणप्रकारवर्णनम्

तत्रादौ मुक्तिविषयः पुनः प्रश्नः

नारदः—

अज्ञानतिमिरप्लोषिललाटनयनत्विषे ।
नमस्ते त्रिपुराराते नमस्तेऽन्तकविद्विषे ॥ १ ॥

जीव की संसार प्राप्ति के हेतु और उससे उद्धार होने के उपाय—श्रीनारद ने कहा—हे ललाट में रहने वाले तृतीय नेत्र की अग्नि से अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाले ! हे त्रिपुर के शत्रु कालान्तक ! आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

पुरुषार्थाः श्रुताः सर्वे मुख्यगौणविकल्पिताः ।
पुरुषार्थः श्रुतो मुख्यस्तत्र मुक्त्यभिसंज्ञितः ॥ २ ॥
भगवत्तामयी प्रोक्ता मुक्तिश्च त्रिपुरद्विषा ।
तस्याश्च साधनं साक्षात् तत्त्वज्ञानं द्विधा स्थितम् ॥ ३
साधनं तस्य च प्रोक्तो धर्मो निरभिसन्धिकः ।
भूयो विस्तरतः शंस मुक्तिं तां चन्द्रशेखर ॥ ४ ॥

मैंने मुख्य और गौड़ रूपों से विकल्पित दोनों प्रकार के पुरुषार्थों को श्रवण किया। जिसमें आप ने यह बताया कि मनुष्य का मुख्य पुरुषार्थ मुक्ति संज्ञक है (द्र० १३.३७)। साथ ही त्रिपुर का वध करने वाले आप ने यह भी बताया कि वह मुक्ति भगवत्तामयी (भगवान् में सायुज्य, सामीप्य, सृष्टि तथा सारूप्य रूप से मिल जाना) है। उसका साधन भूत तत्त्वज्ञान दो प्रकार का है (द्र० १३.१४)। अब हे चन्द्रशेखर ! जिस मुक्ति का साधन निष्काम धर्म है (द्र० १३.४४) उस मुक्ति का वर्णन विस्तारपूर्वक पुनः कीजिये ॥ २-३ ॥

यतो यस्य च या मुक्तिस्तच्च मे द्वितयं वद ।
न ह्यन्यं प्रष्टुमर्हामि त्वामृते सर्ववेदिनम् ॥ ५ ॥

जिस कारण से और जिसकी जैसी मुक्ति होती है इन दोनों बातों को आप मुझे बताइये। आप सर्वज्ञ हैं। इसलिए मैं दूसरे से नहीं पूछना चाहता ॥ ५ ॥

जीवस्वरूपसंक्षेपः

अहिर्बुध्न्यः—

अनादिरपरिच्छेद्यश्चिदानन्दमयः पुमान् ।
भगवन्मय एवायं भगवद्भावितः सदा ॥ ६ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह पुरुष अनादि है और किसी के द्वारा परिच्छेद का विषय नहीं है । यह चिदानन्दस्वरूप एवं भगवन्मय है और भगवान् से भावित (उद्भूत) है ॥ ६ ॥

जीवस्य भगवच्छक्त्यंशलेशत्वम्

या सा शक्तिर्महासत्ता विष्णोस्तद्धर्मधर्मिणी ।
तस्याः कोट्यर्बुदांशेन शक्ती द्वे कथिते तव ॥ ७ ॥
भूतिश्चेति क्रिया चेति भाव्यभावकसंज्ञिते ।
भूतिः सा क्रियया ज्वाला मरुतेव प्रणर्त्यते ॥ ८ ॥
नानाभेदवती भूतेर्विभूतिः कथिता पुरा ।
शुद्ध्यशुद्धिवशाद् द्वेधा शुद्धा सा बहुधोदिता ॥ ९ ॥
पुंशक्तिः कालमय्यन्या पुमान् सोऽयमुदीरितः ।

विष्णु की शक्ति, जिसे महाशक्ति भी कहते हैं, वह भी उन्हीं के धर्म से धर्मिणी है । उसके करोड़हवें अथवा अरबहवें अंश से दो शक्तियों का उदय होता है, यह हम आपसे कह आये हैं (द्र० ३.५, ३.२७-२८) । उसका एक भेद भूति है और दूसरा भेद क्रिया है । उसी शक्ति की भाव्य भावक संज्ञा है (द्र० ७.६६) । जिस प्रकार वायु के चलने से ज्वाला बढ़ती है उसी प्रकार वह भूति भी क्रिया शक्ति के द्वारा नाचती है (द्र० ७.१३) । उस भूति की विभूति शुद्ध और अशुद्ध इनमें दो में ही से युक्त होकर नाना भेदों से युक्त है यह भी हम पहले कह आये हैं (द्र० ७.१९) । उसके भी पुरुष, शक्ति और काल ये तीन भेद हैं ॥ ७-१० ॥

तस्य कालवश्यत्वात् संसारप्राप्तिः

कालशक्तिविकारस्थः सोऽयं संसरति ध्रुवम् ॥ १० ॥

साधननिष्पत्त्या स्वरूपाविर्भावः

सोऽयं शास्त्रीयमासाद्य मार्गं स्वेनाभिजायते ।

उसमें जो पुरुष है वही कालशक्ति से विकार को प्राप्त कर संसार में निश्चित रूप से प्रवेश कर संसारी बन जाता है । वही शास्त्रीय मार्ग को प्राप्त कर स्वयं उत्पन्न होता है ॥ १०-११ ॥

तत्र पुनः प्रश्नः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश त्रिपुरान्तक शङ्कर ॥ ११ ॥
कालशक्तिविकारस्थः कथं संसरति ध्रुवम् ।

कथं वोपायमासाद्य पुमान् स्वेनाभिजायते ॥ १२ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे त्रिपुरान्तक ! हे शङ्कर ! पुरुष काल शक्ति के विकार से विकृत होकर किस प्रकार निश्चित रूप से संसारी हो जाता है और किन उपायों को प्राप्त कर वह स्वयं संसार में उत्पन्न होता है ॥ ११-१२ ॥

भगवत्स्वातन्त्र्यस्यापर्यनुयोज्यत्वम्

अहिर्बुध्न्यः—

सर्वैरननुयोज्यं तत् स्वातन्त्र्यं दिव्यमीशितुः ।
अवाप्तविश्वकामोऽपि क्रीडते राजवद्वशी ॥ १३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—ईश्वर का वह दिव्य स्वातन्त्र्य सब लोगों की बुद्धि से परे है । यद्यपि वह पूर्णकाम है और वशी (जितेन्द्रिय) है फिर भी जैसे राजा के मन में क्रीड़ा करने की इच्छा होती है उसी प्रकार वह भी संसार की रचना कर कौतुक करना चाहता है ॥ १३ ॥

भगवत्सङ्कल्पस्य पञ्चधा विभागः

सङ्कल्पो नाम यस्तस्य सुदर्शनसमाह्वयः ।
सत्यप्यनन्तरूपत्वे पञ्चधा स विजृम्भते ॥ १४ ॥

उसका जो सुदर्शन नामक सङ्कल्प है यद्यपि उसके अनन्त रूप हैं फिर भी वह पाँच रूपों में प्रविभक्त किया गया है ॥ १४ ॥

सृष्टिस्थित्यन्तकारेण निग्रहानुग्रहात्मना ।

निग्रहशक्त्या जीवस्याकारादितिरोधानम्

तिरोधानकरी शक्तिः सा निग्रहसमाह्वया ॥ १५ ॥

प्रथम सृष्टि, दूसरा स्थिति, तीसरा प्रलय, चौथा निग्रह और पाँचवाँ अनुग्रह ये उसके पाँच भेद है । उसकी जो तिरोहित करने वाली शक्ति है उसी को निग्रहात्मिका शक्ति कहते हैं ॥ १५ ॥

पुमांसं जीवसंज्ञं सा तिरोभावयति स्वयम् ।
आकारैश्वर्यविज्ञानतिरोभावनकर्मणा ॥ १६ ॥

वही जीव संज्ञक पुरुष को आकार से, ऐश्वर्य से तथा विज्ञान से अपने तिरोभाव कर्म के द्वारा तिरोहित करती है ॥ १६ ॥

तिरोधायकपर्यायशब्दाः

मायाविद्या महामोहो महातामिस्रमित्यपि ।
तमो बन्धोऽथ हृद्ग्रन्थिरिति पर्यायवाचकाः ॥ १७ ॥

माया, विद्या, महामोह, महातामिस्र, तम, बन्ध एवं हृद्ग्रन्थि ये उस तिरोधायक (निग्रह) के पर्यायवाची शब्द हैं ॥ १७ ॥

जीवाणुत्वादि

आकारस्य तिरोधानादणुत्वं पुंस इष्यते ।
ऐश्वर्यस्य तिरोभावादकिंचित्करता स्मृता ॥ १८ ॥

जब पुरुष रूप जीव के आकार का तिरोधान हो जाता है तब वही पुरुष अणुत्व को प्राप्त कर लेता है । जब उसके ऐश्वर्य का तिरोभाव हो जाता है तब उसमें अकिञ्चित्करता आ जाती है ॥ १८ ॥

पुंसो विज्ञानसङ्कोचादज्ञत्वं समुदाहृतम् ।
तिरोहितः पुमाञ्छक्त्या विष्णुसङ्कल्परूपया ॥ १९ ॥
अणुः किंचित्करश्चेति किंचिज्ज्ञश्चेति कथ्यते ।

अणुत्वादेर्मलत्वं बन्धत्वं च

मलत्रयमिदं प्रोक्तं बन्धत्रयमिदं बुधैः ॥ २० ॥

जब उसके ज्ञान का तिरोभाव हो जाता है तब उसमें ज्ञान के सङ्कुचित हो जाने से अज्ञता आ जाती है । इस प्रकार पुरुष रूप जीव जब विष्णु सङ्कल्प रूप शक्ति से तिरोहित हो जाता हैं तब उसमें अणु किञ्चित्कर तथा किञ्चिज्ज्ञत्व कहा जाता है । बुद्धिमानों ने इसी को तीन मल या तीन बन्धन कहा है ॥ १९-२० ॥

अविद्यादिभिर्मलविवृद्धिः

तिरोभावनशक्त्यैवं वैष्णव्या बन्धमेयुषः ।
अविद्यास्मित्वरागाद्या मलं समुपचिन्वते ॥ २१ ॥

इस प्रकार वैष्णवी शक्ति की तिरोभावन शक्ति से बन्धन को प्राप्त हुये उस जीव को अविद्या, अस्मिता तथा रागादि मल घेर लेते हैं ॥ २१ ॥

इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छा

क्लिश्यद्भिः क्लेशितः क्लेशैरविद्यादिभिरीदृशैः ।
नुन्नः प्रेप्साजिहासाभ्यामागमाननुसम्पतन् ॥ २२ ॥
इष्टार्थप्राप्तयेऽनिष्टविघाताय च लालसः ।
कर्म तत् कुरुते कामी शुभाशुभफलोदयम् ॥ २३ ॥

उस समय संसार में पड़ा हुआ, क्लेश देने वाली अविद्या के क्लेशों को प्राप्त करता हुआ वह जीव प्रेप्सा (अपने पूर्व स्वरूप ईश्वरत्व) तथा जिहासा (मायामय जीवत्व के परित्याग) से अभिप्रेरित होकर अपने इष्टार्थ की प्राप्ति के लिए तथा अनिष्ट निवारण की इच्छा करता हुआ कामनावश शुभाशुभ फल देने वाले उन-उन कर्मों को करता है ॥ २२-२३ ॥

कर्मवशात् जात्यायुर्भोगप्राप्तिः

ततः कर्मविपाकस्थः शुभाशुभविमिश्रितान् ।
जात्यायुरनुबन्धान् स प्राप्नोति विधिचोदितः ॥ २४ ॥

तदनन्तर उन-उन कर्मों के विपाक (परिणाम) स्वरूप दैववश शुभाशुभ से मिले हुये जाति, आयु और भोगों को प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

सुखादिवासनास्तास्ताः सञ्चिनोति शनैः शनैः ।
एषा निग्रहशक्तेस्तु तिरोधानपरम्परा ॥ २५ ॥

फिर धीरे-धीरे उन-उन सुख की वासनाओं का सञ्चय करता है इस प्रकार तिरोधान शक्ति की परम्परा उसके लिए बनी रहती है ॥ २५ ॥

तिरोधाने सहकारिकारणम्

अंशौ यौ कालशक्त्याख्यौ भूतेः समनुवर्तिनौ ।
ताभ्यां पुंसस्तिरोभावं तनुते निग्रहात्मिका ॥ २६ ॥

भूति के और दो भेद जिनका नाम काल और शक्ति है वे भी उस तिरोधान के साथ ही रहती हैं । इस प्रकार उन दोनों के साथ निग्रहात्मिका सुदर्शनाख्या शक्ति पुरुष के तिरोभाव को विस्तृत करती रहती है ॥ २६ ॥

सृष्ट्यादीनां सञ्चितकर्ममूलकत्वम्

अजस्य त्वनया शक्त्या तिस्रः सृष्ट्यादिशक्तयः ।
सञ्चितैः सम्प्रवर्तन्ते तैस्तैः कर्मभिरूर्जितैः ॥ २७ ॥

परमात्मा की इसी शक्ति से तीनों सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय रूप वाली शक्तियाँ उन-उन किये गए संचित कर्मों से जीव को संसार बन्धन में प्रवृत्त करती रहती हैं ॥ २७ ॥

सहेतुकस्य बन्धस्यानादित्वम्

बन्धोऽनादिरयं प्रोक्तो बन्धहेतुश्च नादिमान् ।

इस प्रकार जीव का बन्ध अनादि है और उसके बन्ध का हेतु भी आदिमान् नहीं (अनादि) है ॥ २८ ॥

बद्धजीवे भगवत्कृपाविर्भावः

एवं संसृतिचक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः ॥ २८ ॥
जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काप्युपजायते ।

कृपाया अनुग्रहशक्तिपातरूपत्वम्

या ह्युक्ता पञ्चमी शक्तिर्विष्णुसङ्कल्परूपिणी ॥ २९ ॥

इस प्रकार संसार चक्र में अपने कर्म के द्वारा भ्रमण करते हुये दुःख से आकुल जीव पर कोई अहैतुकी भगवत्कृपा उत्पन्न होती है । जिसे हम विष्णु की सङ्कल्परूपिणी पञ्चमी शक्ति कह आये हैं (द्र० १४.१४-१५) ॥ २८-२९ ॥

अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा ।
शक्तिपातः स वै विष्णोरागमस्थैर्निगद्यते ॥ ३० ॥

वही भगवान् की कृपा विष्णु की अनुग्रहात्मिका शक्ति है। आगमशास्त्र को जानने वालों ने इसी को विष्णु का शक्तिपात कहा है ॥ ३० ॥

कृपाविषयस्य जीवस्य कर्मसाम्यप्राप्तिः

अनुग्रहात्मना शक्त्या सुदर्शनमयात्मना।
स्वीकृतो हि यदा विष्णोः करुणावर्षरूपया ॥ ३१ ॥
समीक्षितस्तदा सोऽयं करुणावर्षरूपया।
कर्मसाम्यं भजत्येव जीवो विष्णुसमीक्षितः ॥ ३२ ॥
शक्तिपातः स वै जीवमुत्तारयति संसृतेः।
कर्मणी च समे तत्र तूष्णींभावमुपागते ॥ ३३ ॥

सुदर्शनमयी अनुग्रहात्मिका विष्णु की करुणावर्षिणी शक्ति जब जीव को इस प्रकार अपनाती है तब उसकी करुणावर्षा से देखा जाता हुआ यह विष्णु समीक्षित जीव अपने (सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण) कर्मों को सम बना लेता है अर्थात् उसके ये तीनों कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार कर्मों के साम्य हो जाने पर और उनके द्वारा होने वाले जीव के भोगों के नष्ट हो जाने पर वह शक्तिपात जीव को संसार रूप संसृति से पार कर देता है ॥ ३१-३३ ॥

सदृष्टान्तं कर्मणामुदासितृत्वोपपादनम्

यथा हि मोषकाः पान्थे परिबर्हमुपेयुषि।
निवृत्तमोषणोद्योगाः समाः सन्त उदासते ॥ ३४ ॥
अनुग्रहात्मिकायास्तु शक्तेः पातक्षणे तथा।
उदासाते समीभूय कर्मणी ते शुभाशुभे ॥ ३५ ॥

जैसे मालटाल लिए हुये किसी धनी मुसाफिर को लुटेरे भयवश लूट सकने में असमर्थ होने के कारण जैसे-तैसे कुछ करने में असमर्थ रह कर उदासीन हो जाते हैं। उसी प्रकार भगवान् की अनुग्रहात्मिका शक्ति के पातक्षण में शुभाशुभ कर्म भी समतल जैसे होकर अकिञ्चित्कर हो जाते हैं ॥ ३४-३५ ॥

मुमुक्षोर्मोक्षोपायप्राप्तिप्रकारः

तत्पातानन्तरं जन्तुर्युक्तो मोक्षसमीक्षया।
प्रवर्तमानवैराग्यो विवेकऽभिनिवेशवान् ॥ ३६ ॥

उस अनुग्रहात्मिका भगवच्छक्ति के पात होते ही जीव मोक्ष की जिज्ञासा से वैराग्य में प्रवृत्त हो जाता है और विवेक में अपना अभिनिवेश (हठ) करने लगता है ॥ ३६ ॥

आगमाननुसञ्चिन्त्य गुरूनप्युपसद्य च।
लब्धसत्त्वप्रकारैस्तैः प्रबुद्धो बोधपालनः ॥ ३७ ॥

शास्त्रों को देखता हुआ गुरुओं के पास जाकर उन-उन सत्त्वों के प्रकारों को प्राप्त कर प्रबुद्ध हो जाता है और मान-ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न में तत्पर हो जाता है ॥ ३७ ॥

अक्षिण्वन् गुरुसम्बोधं क्षिण्वन् क्लेशादिकानपि ।
विचिन्वन् सर्वतः सारमुपचिन्वन् परां धियम् ॥ ३८ ॥
सांख्ययोगसमावेशी सत्कर्मनिरतः स्वयम् ।
उग्रव्रतधरो ज्ञानी वेदान्तज्ञाननिश्चलः ॥ ३९ ॥
संहतैर्विगृहीतैश्च मार्गैरेभिः सुनिश्चयैः ।
क्लेशेन महता स्थानं वैष्णवं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

गुरु प्राप्त ज्ञान को बढ़ाते हुये, अविद्या जनित क्लेशादि को विनष्ट करते हुये, सब प्रकार से तत्त्वों की खोज करते हुये परमात्मा में बुद्धि लगाकर सांख्य योग में आविष्ट हो जाता है। इस प्रकार सत्कर्म में लगकर कठिन तपस्या करते हुये ज्ञानी जीव वेदान्त ज्ञान में अपनी अविचल श्रद्धा रखते हुये समुदायात्मक अथवा पृथक् मार्ग द्वारा निश्चित रास्ते से महान् क्लेशों को सहता हुआ वैष्णव पद को प्राप्त करता है ॥ ३८-४० ॥

लब्धज्ञानस्य मोक्षप्राप्तिः

सम्प्राप्य ज्ञानभूयस्त्वं निर्मलीकृतचेतनः ।
अनाविलमसंक्लेशं वैष्णवं तद्विशेत् पदम् ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जीवस्य संसारहेतु-तदुद्धरणप्रकारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ८२४ ॥

* * *

तदनन्तर प्रचुर ज्ञानावाप्ति से अपने चित्त को निर्मल बना कर सर्वथा शुद्ध और दु:खरहित विष्णु पद में प्रवेश कर जाता है ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जीव के संसार हेतु तथा उससे उद्धार नामक चौदहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अधिकारिनिरूपणम्

ध्यातो धृतात्मभिश्चक्रमध्यस्थो मधुसूदनः ।
पायादपायात् संसाररूपकूपात्तु नः परः ॥

चक्र के मध्य में रहने वाले पर-मधुसूदन, जिनका ध्यान धृतात्मा लोग करते हैं, वे इस संसार रूपी कूप से हमारी रक्षा करें ।

अधिकारिविषयः प्रश्नः

नारदः—

देवदेव नमस्तेऽस्तु वृषकेतन शङ्कर ।
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं दिव्यं रहस्यं ज्ञानमुत्तमम् ॥ १ ॥

अधिकारी निरूपण—हे वृषकेतन ! हे शङ्कर ! आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! मैंने आपकी कृपा से दिव्य एवं रहस्यपूर्ण उत्तम ज्ञान का श्रवण किया ॥ १ ॥

प्रश्नशेषं मम ब्रूहि यत् पृष्टोऽसि मया पुरा ।
पुरुषार्था हि ये प्रोक्ताश्चत्वारः सकलाश्रयाः ॥ २ ॥
के हि तानधिकुर्वन्ति तन्मे विस्तरतो वद ।

हे प्रभो ! अब पूर्व में पूछे गए मेरे शेष प्रश्न का उत्तर दीजिये । सब लोगों को आश्रय देने वाले जो चार पुरुषार्थ कहे गए हैं उनके अधिकारी कौन-कौन लोग हैं? हमें विस्तार पूर्वक कहिये ॥ २-३ ॥

तत्प्रतिवचने प्रथमं सात्त्विकरीतिप्रतिपादनम्

अहिर्बुध्न्यः—

ये हि ते मनवो नाम विद्यागर्भाः पुरोदिताः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा इति विभेदिताः ।
मानवास्तत्प्रसूता ये तथा मानवमानवाः ॥ ४ ॥
मुखबाहूरूपादेभ्यो ब्राह्मणाद्याः समुत्थिताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा इत्यपि ते स्मृताः ॥ ५ ॥

द्वितये ते यथायोगमधिकुर्वन्ति तानिमान् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—पूर्व में हमने विद्यागर्भ के उत्पन्न होने वाले जिन मनुओं को कहा है और जिनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद हैं, वे मानव तथा उन मानवों से उत्पन्न मानव ब्राह्मणादि जो मुख, बाहू, ऊरु और पैर से उत्पन्न हुये हैं । जिन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है । वे इस पुरुषार्थ के दो-दो भागों (मोक्ष, धर्म और अर्थ, काम) में अपनी योग्यता के अनुसार इस पर अधिकार करते हैं ॥ ३-६ ॥

मनुसन्ततिजानां पाञ्चरात्राधिकारः

ये पुरा कथिताः पञ्च सिद्धान्ताः सर्वसम्मताः ॥ ६ ॥
मनुसन्ततिजास्तत्र सात्त्वतं त्वधिकुर्वते ।

तेषां तन्निष्ठया भगवत्प्राप्तिः

त्रयोदशविधं कर्म गुणैः सांयमिकैर्युतम् ॥ ७ ॥
कुर्वाणाः पञ्चकालस्थास्ते यान्ति पुरुषोत्तमम् ।

इसके पहले जो सर्वसम्मत पाँच सिद्धान्त हम पहले कह आये हैं (द्र० १२.३) उस सात्वतशास्त्र पर वे मनु की सन्ततियों से उत्पन्न लोग अधिकार रखते हैं । इस प्रकार समतादि गुणों से युक्त तेरह प्रकार के कर्मों को पाँचों काल में करते हुये वे मनुसन्तति से उत्पन्न लोग पुरुषोत्तम को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६-८ ॥

तेषु त्रैवर्णिकानां चातुराश्रम्यम्

विहितं चातुराश्रम्यं त्रयाणां तत्र नारद ॥ ८ ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो भिक्षुरित्यपि ।

तेषां शुश्रूषया शूद्रस्य भगवत्प्राप्तिः

शूद्रः शुश्रूषया तेषां भगवत्कर्मसाधनात् ॥ ९ ॥
अरागरोषलोभः सञ्छनैर्याति हरेः पदम् ।

हे नारद ! उनमें तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके लिए क्रमशः ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम विहित है और शूद्र उनकी सेवापूर्वक भगवत्कर्म करता हुआ राग, रोष और लोभ से रहित होकर धीरे-धीरे विष्णु पद को प्राप्त करता है ॥ ८-१० ॥

अन्यतमाश्रमस्थानामपि तेषां मोक्षसिद्धिः

सद्ब्रह्मयाजिनस्ते वै शुद्धाः स्वाध्यायतत्पराः ॥ १० ॥
अनन्ययाजिनो विप्रा आसृष्टेरधिकारिणः ।
मातापितृभ्यां तरुणाः प्राग्बुद्धेः साधु पालिताः ॥ ११ ॥
आचार्यनयसम्पन्नास्ते शुश्रूषणतत्पराः ।
सम्यक् सप्तपदार्थज्ञा नियमस्थाः समाहिताः ॥ १२ ॥

प्रकृतिज्ञानसम्पन्नाः प्रमादपरिवर्जिताः ।
त्यक्तकामाः सुधृतयः शुचयः संयतेन्द्रियाः ॥ १३ ॥
सिद्धा नाम महाभागाः समाप्तज्ञाननिश्चयाः ।
धिया समाप्तकर्माणश्चरणैरन्विताः शुभैः ॥ १४ ॥
आसमाप्तेः समास्थाय चतुर्णामेकमाश्रमम् ।
पाञ्चकालिकमच्छिद्रं कुर्वाणाः शतवार्षिकम् ॥ १५ ॥
विवेकजां परां प्राप्य कर्मणोऽन्ते शुभां धियम् ।
प्रद्योतमानविज्ञाना निर्धूतप्राकृतोद्यमाः ॥ १६ ॥
सहस्रार्चिषमीशानं लक्ष्मीपतिमनाविलम् ।
क्षेत्रज्ञं सर्वभूतानां वासुदेवं विशन्ति ते ॥ १७ ॥

किसी भी आश्रम में रहकर नारायण का भजन, स्वाध्याय में तत्पर अथवा अनन्य याजी ब्राह्मण समस्त सृष्टि के अधिकारी कहे गए हैं । जिनके माता-पिता ने भली प्रकार बुद्धि उत्पन्न होने से पहले पाल-पोष कर तरुण बनाया है, जो आचार्य से विनयी बनाये गए हैं और उनकी शुश्रूषा में तत्पर रहने वाले हैं, द्रव्य गुणादि सातों पदार्थो का ज्ञान रखने वाले है, सावधानी से नियम का पालन करते हैं । जो प्रकृति ज्ञान सम्पन्न एवं प्रमाद आलस्यादि दोषों से रहित हैं । निःस्पृह और धैर्य सम्पन्न हैं, शुचि एवं इन्द्रियों को वश में रखने वाले है, जो सिद्ध एवं भाग्यवान् है, जिन्होंने ज्ञान के निश्चय को समाप्त कर लिया है (अर्थात् ज्ञान के अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच चुके हैं), जिन्होंने बुद्धिपूर्वक कर्म का परित्याग कर दिया है, जो शुभ आचरणों से युक्त हैं वे जीवन की समाप्ति तक चार आश्रमों में कोई एक आश्रम का आश्रय लेकर, पाँचों काल में बिना किसी त्रुटि (दोष के) सौ वर्ष पर्यन्त उस आश्रम के कर्मों को करते हुये, कर्म के अन्त में विवेक से उत्पन्न पर एवं कल्याणकारिणी बुद्धि को प्राप्त कर ज्ञान से देदीप्यमान् एवं प्राकृत उद्यम को त्याग देने वाले साधक सहस्र किरणों वाले सूर्य के समान सबके ईश्वर एवं निर्दोष लक्ष्मीपति सम्पूर्ण प्राणियों के निवासभूत क्षेत्रज्ञ विष्णु में लीन हो जाते हैं ॥ १०-१७ ॥

गार्हस्थ्यस्याश्रमान्तरोपजीव्यत्वम्

अग्निमान् बहुमात्रावानेकः कौटुम्ब आश्रमः ।
व्रतादिनिरताः शुद्धास्त्रयोऽन्येऽनग्नयः स्मृताः ॥ १८ ॥

एक गृहस्थ आश्रम में रहकर बहुत मात्रा में धनादि संग्रह कर अग्निहोत्र करे । इसके अतिरिक्त शेष तीन आश्रम व्रतादि में निरत रहने से शुद्ध हो जाते हैं, उन्हें अग्निहोत्र की आवश्यकता नहीं कही गई है ॥ १८ ॥

कौटुम्बमुपजीवन्ति ते त्रयो ह्यूर्ध्वरेतसः ।

सात्त्विकरीतिनिगमनम्

गदिता सात्त्विकी रीतिरिति ते लेशतो मुने ॥ १९ ॥

गृहस्थ के अतिरिक्त अन्य तीन आश्रम में ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) रह कर गृहस्थाश्रमी के द्वारा भिक्षा प्राप्त कर प्राण धारण करें। हे मुने! यहाँ तक हमने आश्रमों के सात्विकी वृत्ति का वर्णन आपसे किया ॥ १९ ॥

त्र्य्यादिरीतिकथनारम्भः

एवं विस्तरतो मेऽद्य रीतिमन्यां निशामय।

मुखबाहूरुपज्जानां त्र्य्याद्यधिकारः

ये हि ब्रह्ममुखादिभ्यो वर्णाश्चत्वार उद्गताः ॥ २० ॥
ते सम्यगधिकुर्वन्ति त्र्य्यादीनां चतुष्टयम्।

त्रयीनिष्ठानां फलसिद्धिः;
सांख्यादिनिष्ठानां क्रमात् पञ्चरात्रारोहणं च

त्रयीस्था एव सिध्यन्ति सांख्यादिष्वपि च त्रिषु ॥ २१ ॥
आरोहन्तीच्छया तेऽपि सात्त्वतं शासनं परम्।

अब आप विस्तारपूर्वक मुझसे इस समय अन्य रीति को सुनें। जो चार ब्राह्मणादि चार वर्ण ब्रह्मदेव के मुख से उत्पन्न हुये हैं, वे ही ठीक प्रकार से त्रयी (वेद) आदि पर अधिकार रखते हैं। जो त्रयी के अधिकारी हैं वे ही सांख्य पाशुपत तथा योग शास्त्रों में सिद्धि प्राप्त करते हैं। यदि उनकी इच्छा हो तो वे भी सात्वत शास्त्र पर अपना अधिकार रख सकते हैं ॥ २०-२१ ॥

पाशुपतनिष्ठानां त्रयीधर्माननुष्ठातृत्वम्

प्राप्ताः पाशुपतं ये हि धर्मं ब्राह्मणपूर्वकाः ॥ २२ ॥
न धर्ममनुतिष्ठन्ति त्रयीस्थं ते पुनर्मुने।
पञ्चरात्रं प्रविश्येव नान्यं धर्मं वितन्वते ॥ २३ ॥

सांख्यानां नैष्कर्म्यम्

निष्कर्माणः स्मृताः सांख्याः प्रसङ्ख्यानैकतत्पराः।

जो ब्राह्मणादि वर्ण पाशुपत धर्म की दीक्षा ले चुके हैं, हे मुने! पुनः वे त्रयी धर्म के आचरण के अधिकारी नहीं रहते। इसी प्रकार पाञ्चरात्र में प्रवेश करने वालों को अन्य धर्म में अधिकार नहीं है। क्योंकि ध्यान मात्र में तत्पर रहने वाले सांख्य शास्त्र वेत्ता निष्कर्म कहे गए हैं ॥ २२-२४ ॥

योगनिष्ठानां वैदिककर्मानुष्ठातृत्वम्

नित्यनैमित्तिकैर्युक्तो योगी योगाङ्गवाञ्छया ॥ २४ ॥
कुर्यादलब्धलाभाय लब्धवृद्धय एव च।
ब्रह्मिष्ठो वैदिकं कर्म नित्यं नैमित्तिकं तथा ॥ २५ ॥

योगी जनों को योगाङ्गों की प्राप्ति करने की इच्छा से सर्वदा नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करते रहना चाहिए और अलब्ध के लाभ के लिए तथा लब्ध की वृद्धि के

लिए भी प्रयत्न करते रहना चाहिए । इससे वैदिक नित्य, नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करने वाले ब्रह्मिष्ठ हो जाते हैं ।। २४-२५ ।।

वर्णाश्रमतद्धर्माणां निरूपणम्

त्रय्यादिमार्गगा रीतिर्निर्दैषा प्रदर्शिता ।
वर्णाश्रमविभागं मे धर्मैः सह निशामय ।। २६ ।।

हे महामुने ! इस प्रकार वेदत्रयी में बताई हुई रीति का निर्देश मैंने आपसे किया । अब धर्मों के साथ-साथ वर्णाश्रम विभाग का वर्णन मुझसे सुनिए ।। २६ ।।

चत्वारो वर्णाः;
आद्यानां त्रयाणां वेदाध्ययनं द्विजातित्वं च

वर्णाश्चत्वार उद्दिष्टा ब्राह्मणादिक्रमेण ये ।
अधीयीरंस्यो वर्णाः पूर्वे भूत्वा द्विजातयः ।। २७ ।।

ब्राह्मणादि क्रम से जिन चार वर्णों को हम पढ़ आये हैं उनमें तीन वर्णों को (यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त) द्विजाति बनकर वेदों का अध्ययन करना चाहिए ।। २७ ।।

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा, एकजातित्वं च

चतुर्थ एकजातिस्ताञ्छुश्रूषेतानहङ्कृतः ।

याजनाध्यापनप्रतिग्रहा ब्राह्मणस्यैव

ब्राह्मणो नाम यो वर्ण आद्यो ब्रह्ममुखोद्गतः ।। २८ ।।
स त्रीनध्यापयेदेतान् ब्राह्मणादीननुक्रमात् ।
याजयेच्च यथाकामं वृत्त्यर्थमनसूयया ।। २९ ।।
त्रिभ्यश्च प्रतिगृहणीयादेष वैशेषिको विधिः ।

चौथा वर्ण जिसे शूद्र कहते हैं वह अहङ्काररहित है । अतः उसे इन तीन वर्णों की सेवा करनी चाहिए । पहला वर्ण ब्राह्मण है, जो ब्रह्मदेव के मुख से उत्पन्न है । वह क्रमशः इन ब्राह्मणादि तीन वर्णों का अध्यापन करे और अपनी जीविका के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के इच्छानुसार इनका यज्ञ करावे और इन्हीं तीन से प्रतिग्रह भी ले यह उसकी विशेषतायुक्त विधि है ।। २८-३० ।।

शस्त्रधारणादिकं क्षत्रियस्य

शस्त्राणां धारणं नित्यं क्षत्रजातेर्विशेषणम् ।। ३० ।।
क्षतत्राणं यथाशास्त्रं प्रजानां परिपालनम् ।

क्षत्र जाति की विशेषता यह है कि वह निरन्तर शस्त्र धारण करे । निर्बलों की रक्षा तथा प्रजा वर्ग का यथाशास्त्र पालन करना यह क्षत्रियों का कर्त्तव्य है ।। ३०-३१ ।।

कृष्यादिकं वैश्यस्य

विशो वैशेषिकी वृत्तिः कृषिगोरक्षवाणिजम् ।। ३१ ।।

कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य यह वैश्य की विशेष वृत्ति है ।। ३१ ।।

इज्याध्ययनदानानि त्रयाणां तुल्यानि

इज्याध्ययनदानं तु द्विजातीनामिदं समम् ।
नित्यं धर्मार्थमेवैतत् तत्र हिंसादिवर्जनम् ।। ३२ ।।

इज्या, अध्ययन और दान ये समस्त द्विजातियों के समान कर्म हैं जो बिना हिंसा के धर्म की दृष्टि से किया जाना चाहिए ।। ३२ ।।

शुश्रूषा शूद्रस्य धर्मो वृत्त्यर्था च

शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो वृत्त्यर्थमेव च ।
श्रेष्ठा ब्राह्मणशुश्रूषा कनिष्ठे त्वपरे स्मृते ।। ३३ ।।

शूद्र का एकमात्र धर्म यह है कि वह वृत्ति के लिए ऊपर कहे गए तीनो वर्णों की सेवा करे । उसमें ब्राह्मण की सेवा उत्तम है और वर्णों की सेवा अपेक्षा कृत लघु है ।।३३।।

चतुर्णां सामान्यधर्माः

अहिंसा सत्यमक्रोधः स्वदारनिरतिर्दया ।
चतुर्ष्वेतेषु धर्मोऽयं सामान्येन विधीयते ।। ३४ ।।

अहिंसा, सत्य, अक्रोध, अपनी स्त्री में रति और दया ये धर्म सामान्यतः इन चारों वर्णों के लिए विहित हैं ।। ३४ ।।

ब्राह्मणोत्तमक्षत्रिययोश्चातुराश्रम्यम्

ब्रह्मणश्चातुराश्रम्यं क्षत्रस्य तु कथञ्चन ।

क्षत्रियवैश्ययोराद्यमाश्रमत्रयम्

त्रयं चाद्यं क्षत्रविशोर्नियतं धर्मलक्षणम् ।। ३५ ।।

ब्राह्मण के लिए चारों आश्रम विहित हैं किन्तु क्षत्रिय के किसी प्रकार नहीं । क्षत्रिय और वैश्य के लिए आदि के तीन (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ) आश्रम नियत रूप से धर्म के रूप में कहे गए हैं ।। ३५ ।।

त्रैवर्णिकानां प्रागुपनयनात् कामचारः

आचार्यजन्मनः पूर्वमव्रतास्ते द्विजातयः ।

उपनयने द्वितीयं जन्म

आचार्याज्जन्म सावित्र्यां द्वितीयं दिव्यमिष्यते ।। ३६ ।।

वे द्विजाति आचार्य से जन्म होने के पहले (उपनयन संस्कार से पहले) किसी प्रकार के नियम के अधिकारी नहीं है अर्थात् कामाचार का व्यवहार कर सकते हैं । आचार्य के द्वारा जब सावित्री में उनका जन्म होता है वही उनका दिव्य और द्वितीय जन्म कहा जाता है ।। ३६ ।।

यज्ञदीक्षायां तृतीयम्

ते त्रयो यज्ञदीक्षायां जन्म प्राप्य तृतीयकम् ।

तेषां स्वाध्यायनिष्ठानां देवतुल्यत्वम्

ब्राह्मणाः सवनस्थार्याः सवनान्ते यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥
स्वाध्याये वर्तमानास्ते देवाः सर्वेऽपि ते त्रयः ।

आश्रमधर्माः

इति ते कथिता वर्णा आश्रमानपि मे शृणु ॥ ३८ ॥

जब वे यज्ञ में दीक्षा लेते हैं तब वह उनका तृतीय जन्म कहा जाता है । ब्राह्मण त्रिकाल स्नान एवं संध्या करे । स्नान के अनन्तर तीनों वर्ण वाले द्विजाति अपने अधिकार के अनुसार स्वाध्याय करे तो वे सभी देव हैं । यहाँ तक हमने आपसे वर्णों के विषय में कहा । अब आश्रम के विषय में सुनिए ॥ ३७-३८ ॥

उपकुर्वाणब्रह्मचारिधर्माः

आचार्याज्जन्म सम्प्राप्य तदन्ते नियतं वसन् ।
तद्धर्मकारी तन्निष्ठस्तद्भक्तस्तत्परायणः ॥ ३९ ॥
तन्निवेदितसर्वार्थो भिक्षार्थी तत्कुलाद्बहिः ।
कर्मशेषेण चाचार्यादिच्छन् स्वाध्यायमत्वरः ॥ ४० ॥
उपासीत बहिः संध्ये नित्यस्नाय्यनसूयकः ।
कुर्वन्निन्द्रियसंरोधं भूतानामनुकम्पकः ॥ ४१ ॥
वह्निं समिद्भिरिन्धान उभे संध्ये समाहितः ।
धर्मज्ञसमयस्थं चाप्याचरन्नात्मनो व्रतम् ॥ ४२ ॥
उपकुर्वाणको नाम स्वाध्याये सिध्यति द्विजः ।

आचार्य द्वारा जन्म प्राप्त हो जाने पर अर्थात् उपनीत हो जाने पर जो नियमतः उनके सन्निकट रह कर उन्हीं के समान धर्म का आचरण करे, उनमें निष्ठा और भक्ति रखे, मनसा-वाचा-कर्मणा उन्हीं में परायण हो, उन्हें अपना सर्वस्व निवेदन करे, आचार्य के कुल मात्र से भिक्षा न लेकर अन्य कुलों से भिक्षा माँग कर भोजन करे, आचार्य से ही स्वाध्याय की इच्छा रखे, जल्दीबाजी न करे, नित्य स्नान कर गाँव से बाहर नदी तट अथवा किसी पवित्र स्थान में सन्ध्योपासन करे, गुरु की निन्दा न करे, इन्द्रियों को सदा अपने वश में रखे, प्राणियों पर दया करे, नित्य समिधा से दोनों संध्याओं में सावधानीपूर्वक होम करे । धर्मज्ञों के आचरण में तत्पर रहकर अपने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तो वह ब्रह्मचारी उपकुर्वाणक कहा जाता है और उसे स्वाध्याय से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ३९-४३ ॥

समाप्तब्रह्मचर्यस्येच्छया आश्रमान्तरप्राप्तिः

वेदस्नायी व्रतस्नायी गुरवे दक्षिणां ददत् ॥ ४३ ॥

नैष्ठिकब्रह्मचारिधर्माः

प्राप्यानुज्ञां गुरोरिच्छेच्चतुर्णामेकमाश्रमम् ।
यदीच्छेद् ब्रह्मचर्यं स ब्रह्मचारी स्वमाश्रमम् ॥ ४४ ॥
आचार्यमेव सेवेत युक्त आ देहपातनात् ।
जिज्ञासुर्ब्रह्मचारी स लभेत ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४५ ॥
अन्यथा पुण्यलोपः स्यादिति वेदानुशासनम् ।

इस प्रकार वेद में निष्णात एवं ब्रह्मचर्यव्रत में निष्णात हो कर गुरु को दक्षिणा से सन्तुष्ट कर गुरु की आज्ञा से चार आश्रमों में एक आश्रम में रहने की इच्छा करे । यदि ब्रह्मचर्य आश्रम की इच्छा करे तो अपने आश्रम में रह कर आचार्य की सेवा मरणपर्यन्त करे । ऐसा जिज्ञासु ब्रह्मचारी उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लेता है । इससे विरुद्ध आचारण करने वाले के पुण्य का लोप हो जाता है । ऐसी वेद भगवान् की आज्ञा है ॥ ४४-४६ ॥

गृहस्थधर्माः

अथ चेद्रोचयेत् कर्तुं गार्हस्थ्यं धर्ममुत्तमम् ॥ ४६ ॥
लब्धानुज्ञो गुरोः स्नात्वा सम्प्राप्य विधिवत् स्त्रियम् ।
तया सह चरेद्धर्मं नित्यं स्वाध्यायतत्परः ॥ ४७ ॥
श्राद्धकृत् सत्यवादी च नित्यं चैवातिथिप्रियः ।
सङ्कोचिनीं चरन् वृत्तिमनसूयुरलोलुपः ॥ ४८ ॥
स्नातकव्रतशाली च पञ्चयज्ञपरायणः ।

गृहस्थस्यापि पाञ्चरात्रधर्मावश्यकता

पञ्चकालरतो नित्यं दयाक्षान्तिधृतिस्थितिः ॥ ४९ ॥
अक्रोधसत्यह्रीविद्याशौचास्तेयदमस्थितः ।
अनायासो ह्यकृपणः शास्त्रीये मङ्गले रतः ॥ ५० ॥

यदि वह स्वयं गृहस्थ आश्रम में जाने की इच्छा करे तो गुरु की आज्ञा लेकर स्नान कर विधिपूर्वक स्त्री से विवाह करे और उसके साथ धर्म का आचारण करे, नित्य स्वाध्याय करे, श्राद्ध करे, सत्य बोले और नित्य अतिथि का सत्कार करे । सङ्कोचनी वृत्ति (कम से कम में निर्वाह करने वाली वृत्ति) का आचरण करे । किसी की निन्दा न करे और न किसी वस्तु की लालच ही करे । स्नातक व्रत का आचरण करे और देव ऋषि यज्ञ देवयज्ञादि पाँचों यज्ञ में परायण रहे । पाँचों काल में कर्म में निरत रहे । दया, क्षमा एवं धैर्य में स्थित रहे । अक्रोध, सत्य, लज्जा, विद्या, शौच, अस्तेय एवं दम का आचरण करे । आयास (बहुत परिश्रम) न करे । कृपणता न रखे । शास्त्रीय मङ्गल का अनुष्ठान करे ॥ ४६-५० ॥

निष्कामकर्मिणो गृहस्थस्यापि मोक्षप्राप्तिः

मनसा कर्मणा वापि यज्ञान् सर्वान् समाचरेत् ।

अकामहतया बुद्ध्या त्यक्ताहङ्कारलोभया ॥ ५१ ॥
सत्तर्कव्यवसायाभ्यां लोचनाभ्येत्यसम्भवम् ।
श्रौतस्मार्तक्रियानित्यो नित्यनैमित्तिके रतः ॥ ५२ ॥
ईदृग्गृहस्थो जिज्ञासुः प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ।
प्राप्तवेदान्तविज्ञानो वैष्णवं श्रयते पदम् ॥ ५३ ॥

निष्काम रहकर अहङ्कार तथा लोभरहित बुद्धि और मन तथा कर्म द्वारा सभी यज्ञों का आचरण करें । अपने उत्तम तर्कों तथा व्यवसाय (प्रयत्न) से युक्त रहकर जन्म के कष्टों को स्मरण रखे । श्रौतस्मार्त्त क्रियाओं में एवं नित्य नैमित्तिक कर्मों में लगा रहे । ऐसा जिज्ञासु गृहस्थ उत्तम ज्ञान प्राप्त कर और वेदान्त के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति कर वैष्णव पद प्राप्त कर लेता है ॥ ५१-५३ ॥

सकामस्य गृहस्थस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः

केवलो धर्मनित्योऽसौ ब्रह्मलोके महीयते ।

केवल नित्यधर्म का आचरण करे तो वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५४ ॥

वानप्रस्थधर्माः

गार्हस्थ्यादथवा पूर्वं वानप्रस्थ्यं श्रयेत् पदम् ॥ ५४ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं वनं चाथ समाश्रयेत् ॥ ५५ ॥
ग्राम्याहारं परित्यज्य वन्याहारोपयोगवान् ।
बहिरात्मनि वाप्यग्निं जुह्वद्यज्ञपरायणः ॥ ५६ ॥

यदि गृहस्थाश्रम से वैराग्य हो जाय तो वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए । गृहस्थ जब अपने को देखे कि बाल पक गए हैं और लड़के को लड़का हुआ देख ले, तब वन का आश्रय ले । ग्राम्य में होने वाले अन्नादि आहार का परित्याग करे । वन्याहार से निर्वाह करे । अपनी आत्मा में अथवा बाहर अग्नि का आधान कर होमपूर्वक यज्ञ करे ॥ ५४-५६ ॥

वत्सरे वत्सरे त्रीणि तपांसि विधिवच्चरेत् ।

वानप्रस्थस्यापि निष्कामकर्मिणो मोक्षप्राप्तिः

कुर्वन् वनस्थः शास्त्रार्थानकामहतया धिया ॥ ५७ ॥

प्रत्येक वर्ष में तीन-तीन महा तप का आचरण करे वन में निवास करते हुये निष्काम भाव से शास्त्र प्रतिपादित अर्थों को करता रहे ॥ ५७ ॥

सेवमानो व्रतस्थश्च तास्ता दीक्षाः समाहितः ।
वृत्तिसङ्कोचकृच्छ्रभ्रस्तत्त्वजिज्ञासया युतः ॥ ५८ ॥
सम्प्राप्य तत्त्वविज्ञानं वैष्णवं श्रयते पदम् ।

ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम धारण करते हुये उन-उन दीक्षाओं का सावधानी से पालन करे। वृत्ति (आवश्यकता) का सङ्कोच करे और तत्त्व जिज्ञासा में लगा रहे। ऐसा वानप्रस्थी वैष्णव पद को प्राप्त कर लेता है ॥ ५८-५९ ॥

सकामस्य तस्य ब्रह्मलोकप्राप्तिः

केवलो धर्मनित्यश्च महाप्रस्थानमाचरन् ॥ ५९ ॥
वीतशोकभयो वन्यो ब्रह्मलोके महीयते।

केवल नित्य धर्म का आचरण करे और महाप्रस्थान का आचरण करे। शोक एवं भय का परित्याग करे तो ऐसा वानप्रस्थी पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥५९-६०॥

संन्यासिधर्माः

काषायवसनं प्राप्य द्वाभ्यामादित एव वा ॥ ६० ॥
द्वयोरेकस्य वा पश्चात् पारिव्राज्यं समाचरेत्।
प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ ६१ ॥
लब्धानुज्ञो गुरोर्वाथ कर्मश्रान्तो महाव्रती।
समारोप्याग्निमानग्नींश्चतुर्थाश्रममावसेत् ॥ ६२ ॥

दो आश्रमों (ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ) के अनन्तर अथवा मात्र एक (ब्रह्मचर्य) ही के अनन्तर अथवा तीन (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ) आश्रम के पश्चात् काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर सन्यासाश्रम ग्रहण करे। उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम प्राजापत्य इष्टि कर सारे वेदो को दक्षिणा में प्रदान करे अथवा जब कर्म करते करते थक जाय तब गुरु की आज्ञा ले महाव्रत का अनुष्ठान करें। अपनी आत्मा में अग्नि का आरोपण कर अग्निमान बन कर चतुर्थाश्रम (सन्यासाश्रम) में प्रवेश करें ॥ ६०-६२ ॥

विमुक्तः सर्वदोषेभ्यो विरक्तो विषयेषु च।
उच्चावचां विचिन्वंश्च गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥
अन्वीक्षमाणः सूक्ष्मं च परमात्मानमात्मना।
प्रसङ्ख्यानपरो नित्यं वेदान्तज्ञानतत्परः ॥ ६४ ॥
समाधिस्थश्च सततमुग्रव्रतपरोऽपि वा।
वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैकमुक्षतः ॥ ६५ ॥
विद्वेषमनुरागं वा द्वयोरप्यविचिन्तयन्।
वायुभूतः खवत् स्वस्थ उर्वीस्थिरमना मुनिः ॥ ६६ ॥
वारिवच्चार्द्रचेतास्तु शुचिर्ज्वलनवत् सदा।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यः शून्यागारसमाकृतिः ॥ ६७ ॥
धियालोचितसर्वार्थो धिया त्यक्तपरिग्रहः।
धिया स्वीकृतसच्छास्त्रो धिया तृप्तः सुशुद्धया ॥ ६८ ॥
दत्तसर्वाभयो योगी सर्वैर्दत्ताभयस्तथा।

स्वाध्यायाद्योगमासीनो योगात् स्वाध्यायमामनेत् ॥ ६९ ॥
अब्रुवन् केनचित् किंचित् प्राप्ते कालेऽप्यविब्रुवन्।
समः सर्वेषु भूतेषु मातृवत् पितृवत् सदा ॥ ७० ॥
आत्मज्योतिरात्मरतिः प्रसीदन्नात्मनि स्वयम्।
प्रज्ञाप्रासादमारूढो विमुक्तः सर्वतो जनैः ॥ ७१ ॥
भूमिष्ठानिव शैलस्थः पश्यन् सर्वानवस्थितान्।
कैश्चिन्मूक इति प्रोक्तः कैश्चिद्धीर इतीप्सितः ॥ ७२ ॥
कैश्चित् कः स्विदिति प्रोक्तः कैश्चिद् घोर इतीरितः।
उपेक्षाकरुणामैत्रीमुदितालिङ्गितः सदा ॥ ७३ ॥
विवेकबोधसन्तोषैर्नित्यं परिजनैर्वृतः।
भैक्षाशी तुष्टिसम्पूर्णो धर्मैरीदृग्गुणैर्युतः ॥ ७४ ॥

विषयों से विरक्त रहे। पापों से विमुक्त रह कर अपने आत्मा की ऊँची-नीची गतियों को देखते हुये आत्म-ज्ञान से सूक्ष्म परमात्मा का दर्शन करते हुये योगी वेदान्त ज्ञान में तत्पर रहकर ध्यान परायण रहे। निरन्तर समाधि धारण करे अथवा उग्र व्रत का आचरण करता रहे। यदि कोई एक बाहू को वसूले (लोहमय एक प्रकार का शस्त्र) से काटे अथवा कोई एक बाहू को चन्दन लगाकर भूषित करे, फिर भी दोनों में विद्वेष अथवा अनुराग न करे। वायु के समान चलता रहे। आकाश के समान अपने में प्रतिष्ठित रहे (निर्लिप्त रहे)। पृथ्वी के समान दृढ़ रहे। जल के समान आर्द्रचित्त (दयालु) रहे। आग के समान सर्वदा पवित्र रहे। गङ्गा के हृदय के समान अक्षोभ्य (अनाविल गन्दगी से रहित) रहे। शून्यागार के समान शान्त रहे। बुद्धि से संसार की असारता का ध्यान कर सभी प्रकार के परिग्रहों से मुक्त रहे। बुद्धि से सच्छास्त्र का आचरण करे और अपनी शुद्ध बुद्धि से नित्य तृप्त रहें। इस प्रकार सबको अभय प्रदान करने वाला तथा सभी से अभय प्राप्त करने वाला योगी स्वाध्याय से योग का आश्रय ले अथवा योग से स्वाध्याय का आचरण करे किसी से कुछ न बोले। बोलने की आवश्यकता हो तो भी न बोले। सभी प्राणियों में मातृवत् पितृवत् व्यवहार करे। आत्मप्रकाश, आत्मज्ञान में लगा रहे। स्वयं अपने में प्रसन्न रहे। प्रज्ञाप्रसाद पर आरुढ़ रहे। सभी लोगों से अलग रहे। पहाड़ पर खड़े होकर भूमि स्थित सभी को देखता रहे। किसी के द्वारा 'यह बहिरा है' किसी के द्वारा 'यह धीर है' किसी के द्वारा 'यह कौन पागल है' किसी के द्वारा 'यह पापी है' अथवा 'निष्पाप है' इस प्रकार से कहा जाता हुआ भी वह योगी उपेक्षा, करुणा, मैत्री एवं मुदिता से युक्त रहे। निरन्तर विवेक बोध और सन्तोष रूप परिजनों के द्वारा अपने को घिरा समझे। भिक्षाहार करे और सर्वदा सन्तुष्ट रहे ॥ ६३-७४ ॥

सन्यासिनः परमपुरुषोपासनान्मोक्षप्राप्तिः

प्रदीप इव शान्तार्चिः परिव्राड् ध्यानमास्थितः।
देहसंस्कारनाशेन वैष्णवं श्रयते पदम् ॥ ७५ ॥

इन-इन गुणों से युक्त हुआ योगी परिवार निर्वात (एक लौ से) जलने वाले प्रदीप के समान ध्यान में परायण रहकर देह के संस्कार का नाश कर विष्णु पद का आश्रय प्राप्त कर लेता है ॥ ७५ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

इति वर्णाश्रमा ये ते तुल्यवैशेषिकैर्युताः ।
धर्मास्ते लेशतः प्रोक्ताः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अधिकारिनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ९०० ॥

* * *

हे नारद ! यहाँ तक हमने समान एवं विशेषता से युक्त वर्णाश्रम धर्म का निरूपण लेश मात्र किया । अब आप क्या सुनना चाहते हो? ॥ ७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्र रहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अधिकारी निरूपण नामक पन्द्रहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

* * *

अथ षोडशोऽध्यायः

वर्णोत्पत्तिनिरूपणम्

रक्षा तदधिकारिविषयकः प्रश्नः

नारदः—

भगवंस्त्रिदशारिघ्न सर्वज्ञ वृषकेतन ।
प्रमाणार्थः श्रुतोऽस्माभिः सहेतुः सविपर्ययः ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे देवताओं के शत्रुओं का वध करने वाले! हे सर्वज्ञ सदाशिव! भगवन्, हमने हेतु तथा विपर्यय (सृष्टि और प्रलय द्र० १० अं०) से युक्त प्रमाणार्थ सुना ॥ १ ॥

सर्वस्यास्य च का रक्षा कश्च रक्षाधिकारवान् ।
सप्रकारमिदं द्वन्द्वं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

इन सभी प्रमाणार्थों की रक्षा कौन करता है और कौन उस रक्षा का अधिकारी है? हे भगवन्! मेरे दोनों प्रश्नों का उत्तर भेद निरूपण सहित कीजिये ॥ २ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

सुदर्शनमयी रक्षा देवस्य हरिमेधसः ।
स्वमृते विष्णुसङ्कल्पं रक्षान्या न विधीयते ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—श्रीभगवान् विष्णु की सुदर्शनमयी शक्ति ही उसकी रक्षिका है। भला विष्णु के सङ्कल्प के अतिरिक्त और कौन है जिससे उसकी रक्षा सम्भव हो? ॥ ३ ॥

वस्तुनिष्ठसामर्थ्यस्य सुदर्शनात्मकत्वम्

या सा दिव्या क्रियाशक्तिर्विष्णुशक्त्यंशसम्भवा ।
सुदर्शनाह्वया देवी सर्वकृत्यकरी विभोः ॥ ४ ॥

तत्तद् वस्तुओं में रहने वाली दिव्य क्रियाशक्ति जो विष्णुशक्ति के अंश से उत्पन्न है जो सुदर्शना देवी के नाम से पुकारी जाती है वही विष्णु शक्ति सृष्टि की रक्षा आदि सारे कार्यों को सम्पन्न करती है ॥ ४ ॥

तन्मयं विद्धि सामर्थ्यं सर्वं सर्वपदार्थजम् ।
तत्त्वानां तात्त्विकानां च चेतनाचेतनात्मनाम् ॥ ५ ॥
प्रमाणानां विचित्राणां भावाभावयुगस्य च ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य मुक्तेर्बन्धत्रयस्य च ॥ ६ ॥
यद्यत् स्वकार्यसामर्थ्यं तत्तत् सौदर्शनं वपुः ।

समस्त पदार्थों में रहने वाली जो सामर्थ्य है वह सब सुदर्शन से ही उत्पन्न है । सम्पूर्ण तत्त्वों, तात्विकों, चेतनों, अचेतनों, विचित्र प्रमाणों, भाव तथा अभाव वालों, धर्म, अर्थ, काम, मुक्ति तथा तीनों प्रकार के बन्धनों में रहने वाला जो अपने कार्य का सामर्थ्य हैं वह सब सुदर्शन का ही शरीर है ॥ ५-७ ॥

शस्त्रास्त्रव्यूहस्य रक्षासाधनत्वम्

उक्ता शस्त्रास्त्ररूपा ते विष्णुसङ्कल्पविक्रिया ॥ ७ ॥
यया देवो जगन्नाथः काले काले जनार्दनः ।
अवतीर्याथवाविश्य भूतानि लघयेद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥

जैसा कि हम पहले कह आए है, शस्त्र और अस्त्र के रूप में विष्णुसंकल्प की जो विक्रियाँ हैं वो इस जगत की उसी प्रकार रक्षा करती हैं जिस प्रकार जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु समय-समय पर अवतार लेकर अथवा प्राणियों में आविष्ट होकर जगत् के भार को हल्का करते हैं ॥ ७-८ ॥

मन्त्रग्रामस्यापि रक्षासाधनत्वम्

नानामन्त्रमयी चान्या यन्त्रकोशविचित्रिता ।
वेदतन्त्रोभयोद्भूता नानाप्रसवशालिनी ॥ ९ ॥
साक्षाद्विष्णोः क्रियाशक्तिः शुद्धसंविन्मयी परा ।

वह शक्ति प्रथम तो नानामन्त्रमयी है और दूसरी यन्त्र रूपी कोश में रहने से विचित्र सामर्थ्य वाली है । वह वेद तथा तन्त्र शास्त्रों से उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के फलों को देने वाली है । शुद्ध सविन्मयी परानाम से कही जाने वाली वही विष्णु की साक्षात् क्रियाशक्ति है ॥ ९-१० ॥

मन्त्रमयरक्षायां ब्राह्मणस्यैवाधिकारः

सर्वतत्त्वार्थपारज्ञः सर्वविद्याविशारदः ॥ १० ॥
अस्कन्ननित्यनैमित्तः शुद्धाभिजनसंमतः ।
त्रिशुक्लो निस्त्रिसंदेहः षट्कर्मविधिपारगः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणो ब्रह्मयोनिस्थः स्वदारनिरतः शुचिः ।
अधिकुर्यात् क्रियाशक्तिं विष्णोर्मन्त्रमयीं पराम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पदार्थों के तत्त्वों का जानकार, सर्वविद्याविशारद, जिसने कभी भी अपने

नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठान का त्याग नहीं किया है, जो शुद्ध देश का रहने वाला, त्रिशुक्ल (विद्या, कर्म और योनि), तीन प्रकार के संदेह भ्रम, प्रमाद विस्मतिरूप त्रिदोष से रहित है और अपने षट् कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, प्रतिग्रह के ग्रहण और त्याग) रूप विधि को जानने वाला है। ऐसा ब्राह्मण जो विशुद्ध ब्राह्मण और ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न, अपनी स्त्री से प्रेम करने वाला तथा मन वाणी और कर्म से पवित्र है वही इस परा विष्णु की मन्त्रमयी तथा क्रियाशक्ति का सच्चा अधिकारी है ॥ १०-१२ ॥

ब्राह्मणस्यापि राजानवष्टब्धस्य रक्षायामसामर्थ्यम्

ब्राह्मणो नानवष्टब्धस्तया कार्यमिहार्हति ।
अवष्टभ्य तु राजानं जगतोऽर्थे तया चरेत् ॥ १३ ॥

किन्तु उपर्युक्त लक्षण युक्त भी ब्राह्मण यदि राजाश्रित न हो तो वह इस कार्य के योग्य नहीं रहता। अत: राजा का आश्रय लेकर ही संसार की भलाई के लिए इस मन्त्रशास्त्र का आश्रय ले ॥ १३ ॥

राजप्रशंसा

राजा हि परमं भूतं सर्वदेवमयो विभुः ।
क्रियाशक्तेरधिष्ठानं वैष्णव्या भगवन्मयः ॥ १४ ॥

क्योंकि राजा सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, वह सर्वदेवमय है, प्रभु है। विष्णु की क्रियाशक्ति का अधिष्ठान है और विष्णुस्वरूप तो है ही क्योंकि 'नाविष्णु: पृथ्वीपति:' ऐसा कहा गया है ॥ १४ ॥

मूर्धतो हि पुरा देवो राजानमसृजत् प्रभुः ।
मूर्धाभिषिक्तस्तेनासौ सर्वभूतोपरि स्थितः ॥ १५ ॥
द्विगुणो ब्राह्मणो राजा वेदशास्त्रेषु गीयते ।

ब्रह्मदेव ने पूर्वकाल में राजा को अपने मूर्धा से उत्पन्न किया है। इसलिए राजा का मूर्धाभिषेक किया जाता है। अत: वह समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए वेद और शास्त्रों ने कहा भी है कि ब्राह्मण राजा सबसे दुगुना है ॥ १५-१६ ॥

राजद्विषां दृष्टादृष्टयोः प्रत्यवायः

यस्तु तं द्वेष्टि सम्मोहात् स हरिं द्वेष्टि दुर्मतिः ॥ १६ ॥
यो हरिं द्वेष्टि सम्मोहात् स लक्ष्मीं द्वेष्टि मानवः ।
लक्ष्म्या द्वेष्टा तु दुर्मेधाः सर्वधर्मेषु हीयते ॥ १७ ॥
स भ्रष्टः सर्वलोकेभ्यः सर्वदेवबहिष्कृतः ।
अप्रतिष्ठे तमस्यन्धे समास्तिष्ठति शाश्वतीः ॥ १८ ॥

जो दुर्मति मोहवश राजा से द्रोह करता है, वह विष्णु से द्वेष करता है और जो मानव विष्णु से द्वेष करता है, वह साक्षात् महालक्ष्मी से द्वेष करता है। इस प्रकार लक्ष्मी द्वेष्टा-दुर्बुद्धि सारे धर्मों से हीन कहा गया है। वह सभी लोकों से भ्रष्ट होता है। सम्पूर्ण

देव उसका बहिष्कार करते हैं तथा वह चिरकाल पर्यन्त अप्रतिष्ठ नामक नरक में निवास करता है ॥ १६-१८ ॥

अतो राजा अवश्यं बहु मन्तव्यः

ऐहिकामुष्मिकीं लक्ष्मीमतः प्रेप्सुरुदारधीः ।
राजानं बहु मन्येत सर्वलोकाधिदैवतम् ॥ १९ ॥

इसलिए बुद्धिमान् पुरुष यदि इस लोक की अथवा उस लोक की सम्पत्ति चाहे तो सारे लोक के अधिदैवत स्वरूप राजा का आदर करें ॥ १९ ॥

केवलयोर्ब्राह्मणनृपयोर्लक्ष्म्या अस्थिरत्वम्

ब्राह्मणे केवले लक्ष्मीर्न वसत्यतिमार्दवात् ।
अत्यौग्र्याद् बिभ्यती क्षत्रे केवले नेच्छति स्थितिम् ॥ २० ॥

केवल ब्राह्मण में इसलिए लक्ष्मी नहीं रहती कि वह बड़ा ही कोमल होता है । केवल क्षत्रिय से इसलिए डरती है कि वह उग्र होता है । इसलिए केवल क्षत्रिय में भी निवास नहीं करती ॥ २० ॥

संसृष्टयोस्तयोर्लक्ष्म्याः स्थैर्यम्

ब्रह्मक्षत्रे तु सम्पृक्ते ह्यग्नीषोममयात्मनि ।
निवसत्यतिसम्प्रीता ग्रीष्मे शीत इव ह्रदे ॥ २१ ॥

जिसमें ब्रह्म और क्षत्र तेज दोनों ही सम्मिलित है जो न केवल अग्न्यात्मक (क्रोधी) और न केवल सोमात्मक (शीतल स्वभाव वाला) है अपितु उभय धर्म सम्बद्ध है उसमें लक्ष्मी बड़े प्रेम से रहती है । जिस प्रकार ग्रीष्म में शीतल ह्रद में निवास करने वाला रहता है उसी प्रकार लक्ष्मी (भी व्यक्ति के पास) रहती हैं ॥ २१ ॥

तत्र हेतुः

द्वे हि ते बिभृतो लोकस्थितिं सम्भूय तेजसी ।
तयोर्हि सकला शक्तिः स्थिता विष्णोः क्रियात्मिका ॥ २२ ॥

इस प्रकार ऊपर कहे गए अग्नि और सोम ये उभयात्मक तेज लोक स्थिति को धारण करते हैं, क्योंकि उनमें विष्णु की सारी क्रियात्मिका शक्ति निहित हैं ॥ २२ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तत्र दृष्टान्तकथनम्

महत्या हि यथा नद्याः कुसरो न धृतेः क्षमम् ।
एवं लघुर्नरो नैव क्रियाशक्तेर्धृतौ क्षमः ॥ २३ ॥
पारावारो यथा धीरो महतीं तां प्रतीच्छति ।
ब्रह्मपृक्तं तथा क्षत्रं क्रियाशक्तिं प्रतीच्छति ॥ २४ ॥
पूर्यमाणं महानद्या कुतटाकं विदीर्यते ।
रक्ष्यमाणस्तथाप्येको नैव पर्याप्यते तया ॥ २५ ॥

जिस प्रकार बहुत बड़ी नदी को छोटा तालाब धारण करने में समर्थ नहीं होता। इसी प्रकार क्षुद्र मनुष्य भी विष्णु की क्रिया शक्ति को धारण करने में समर्थ नहीं होते। जिस प्रकार गम्भीर समुद्र ही उस बहुत बड़ी नदी को धारण करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार ब्रह्मशक्ति (सौम्यता) से युक्त क्षत्र शक्ति (अग्न्यात्मक स्वभाव) ही उस विष्णु की क्रियाशक्ति को धारण करने में समर्थ होती है। जिस प्रकार महानदी के मिलने पर छोटा तालाव विदीर्ण हो जाता है। उसी प्रकार एक ब्राह्मण (अकेले) अथवा मात्र क्षत्रिय उस विष्णु की क्रियाशक्ति को धारण करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं ॥ २३-२५ ॥

राजार्थं प्रयुक्ताया अपि क्रियाशक्तेः सर्वप्रजोपकारकत्वकथनम्

यथा समुद्रगामिन्यां महत्यां सरिति ध्रुवम्।
उपस्नेहेन पूर्यन्ते सरांस्यन्यानि भूयसा ॥ २६ ॥
प्रयुक्तायां क्रियाशक्तौ चक्रे वै चक्रवर्तिनः।
चक्रस्था हि प्रजाः सर्वाः समेधन्ते तथा श्रिया ॥ २७ ॥

जिस प्रकार महासमुद्र में जाने वाली नदी के जल से बहुत से तालाब तथा अन्य जलाशय परिपूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार चक्रवर्त्ती राजा द्वारा चक्र में प्रयुक्त क्रियाशक्ति के प्रयोग से चक्र में रहने वाली सारी प्रजायें श्री समृद्धि से सम्पन्न हो जाती हैं ॥ २६-२७ ॥

चक्रवर्त्यादीनां क्रियाशक्तावधिकारतारतम्यम्

चक्रवर्ती नृपः पूर्वां द्वितीयां मण्डलेश्वरः।
अधिकुर्यात् क्रियाशक्तिं तृतीयां विषयेश्वरः ॥ २८ ॥
महामात्रो द्विजातिर्वा यो बह्वी रक्षति प्रजाः।
इमां नैको नरः कुर्यादेकस्मै मानवाय तु ॥ २९ ॥

चक्रवर्त्ती राजा पूर्व में कही गई (शस्त्रास्त्र रूपा) शक्ति का तथा मण्डलेश्वर द्वितीय मन्त्रमयी शक्ति का और अपने विषय में सामान्य रहने वाला राजा, महामात्र या द्विजाति अथवा जो बहुत प्रजाओं की रक्षा करता हो, वह इस तृतीय मन्त्रस्वरूपा शक्ति का प्रयोग करे। किन्तु कोई भी मनुष्य एक मनुष्य के लिए इस शक्ति का प्रयोग न करे ॥ २८-२९ ॥

क्रियाशक्तिस्वरूपकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

अधिकारः क्रियायाश्च शक्तेस्ते सम्प्रदर्शितः।
रूपमस्या यथावन्मे गदतस्तन्निशामय ॥ ३० ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! हमने यहाँ तक आपसे क्रियाशक्ति का अधिकार प्रदर्शित किया। अब जिस प्रकार का इसका रूप है उसे मैं कह रहा हूँ आप उसे श्रवण कीजिए ॥ ३० ॥

सामान्यतः शक्तेर्द्वैविध्यम्

उन्मेषः परमः शक्तेर्विष्णोः कोट्यंशकोटितः ।
भाव्यभावकभेदेन स द्विधा व्यवतिष्ठते ॥ ३१ ॥

विष्णु शक्ति का करोड़हवाँ अंश का करोड़हवाँ अंश, जो प्रथम उन्मेष (प्रकाश अङ्कुर) है वह भाव्यभावक भेद से दो प्रकार का कहा गया है ॥ ३१ ॥

भावको विष्णुसङ्कल्पः सुदर्शनपराह्वयः ।

शक्तेः पर्यायशब्दाः

सैषा देवी क्रियाशक्तिः सामर्थ्यं योग इत्यपि ॥ ३२ ॥
पारमेष्ठ्यं महातेजो मायायोग इतीदृशैः ।
शब्दैः प्रकारसामर्थ्यः सङ्कल्पः सोऽभिधीयते ॥ ३३ ॥

उसमें भावक विष्णु का सङ्कल्प रूप सुदर्शन नाम से कहा जाता है । उसी को देवी की क्रियाशक्ति, सामर्थ्य तथा योग नाम से पुकारा जाता है, पुनः वही सङ्कल्प पारमेष्ठ्य, महातेज, मायायोग और प्रकार सामर्थ्य आदि इसी प्रकार के शब्दों से कहा जाता है ॥ ३२-३३ ॥

भावकस्य भूत्यंशप्रवर्तकत्वम्

भाव्यो नाम य उन्मेषः सा भूतिरिति गीयते ।
शुद्ध्यशुद्धिमयी सेति पूर्वमेव निदर्शितम् ॥ ३४ ॥

प्रथम भाव्य नाम का उन्मेष (द्र० १६.३१) भूति नाम से कहा जाता है । वह शुद्धमयी और अशुद्धमयी भेद वाली है, ऐसा हम पहले कह आये हैं ॥ ३४ ॥

ज्वलनस्येव सा ज्वाला सङ्कल्पेन प्रतन्यते ।
एको नारायणो देवस्तस्य भावानुगामिनी ॥ ३५ ॥
तस्या देव्याः क्रियाशक्तेः स्थितिं मन्त्रमयीं शृणु ।

जिस प्रकार आग से ज्वाला फैलती है, उसी प्रकार वह (भूति) भी सङ्कल्प के द्वारा फैलती है । अब भगवान् नारायण देव की भावानुगामिनी उस क्रियाशक्ति की जिसमें स्थिति है उस मन्त्रमयी शक्ति को सुनिए ॥ ३५-३६ ॥

क्रियाशक्तेर्नादात्मकत्वम्

उद्यती सा क्रियाशक्तिर्भजते नादरूपताम् ॥ ३६ ॥

नादस्य दीर्घघण्टाध्वनिसाम्यम्

तं नादं परमं विद्धि दीर्घघण्टानदोपमम् ।

तस्य योगिमात्रप्रत्यक्षविषयत्वम्

परमैर्योगिभिः स्वान्ते स साक्षात् क्रियते स्वयम् ॥ ३७ ॥

वह मन्त्रमयी शक्ति जब उत्पन्न होना चाहती है, तब वह प्रथम नाद स्वरूप में प्रकट होती है। वह उत्कृष्ट नाद बहुत देर तक होने वाले घण्टानाद के समान समझिये, अत्यन्त ऊँचे योगी लोग उस नाद का स्वयं अपने अन्तस्तल में साक्षात्कार करते हैं ॥ ३६-३७ ॥

क्वचिदुन्मेषात् तस्य बिन्दुरूपत्वम्

स बुद्बुदवदम्भोधौ क्वचिदुन्मेषमृच्छति ।
अनुद्रुतगतैः सोऽथ योगिभिर्बिन्दुरुच्यते ॥ ३८ ॥

कहीं-कहीं वही नाद समुद्र में बुद्बुद् के समान गम्भीर शब्द करता है। उसका अनुसरण करने वाले योगी जन उसी नाद को बिन्दु भी कहते हैं ॥ ३८ ॥

बिन्दोर्नामनामिरूपेण द्वैविध्यम्

नामनामिस्वरूपेण स बिन्दुर्भिद्यते द्विधा ।

नाम्नः शब्दब्रह्मत्वम्

तत्र नामोदयं प्राप्य शब्दब्रह्मप्रवर्तते ॥ ३९ ॥

वह बिन्दु नाम और नामी के रूप में दो प्रकार के भेदों वाला है। उसमें नामोदय को प्राप्त कर शब्द ब्रह्म का प्रवर्त्तन होता है ॥ ३९ ॥

नामिनो भूतिरूपत्वम्

प्राप्य नाम्युदयं भूतिः पूर्वोद्दिष्टा प्रवर्तते ।

वर्णोत्पत्तिकथनारम्भः

नामोदयमिदानीं मे मन्त्राध्वानं मुने शृणु ॥ ४० ॥

पुनः नामी का उदय प्राप्त कर वही बिन्दु पूर्व में कही गई भूति के रूप में प्रगट होता है। उसमें भी, हे मुने ! अब आप नामोदय वाले मन्त्राध्वा को सुनिए ॥ ४० ॥

सा हि बिन्दुमयी शक्तिः स्वेच्छया नामतां गता ।
अवर्णोऽप्येकधा पूर्वमनुत्तरमयात्मना ॥ ४१ ॥

वह बिन्दुमयी शक्ति स्वेच्छा से जब नाम को प्राप्त करती है तब वह अकेले सर्वप्रथम अवर्ण रूप में प्रगट होती है। जिससे श्रेष्ठ और कोई वर्ण नहीं कहा गया है ॥ ४१ ॥

बिन्दोर्द्वैविध्यम्

स्वरव्यञ्जनभेदेन स द्विधा व्यवतिष्ठते ।
बिन्दुशक्तेरमुष्यास्तु भूयोऽपि शृणु विस्तरम् ॥ ४२ ॥

वही अकार पुनः स्वर व्यञ्जन भेद से दो प्रकार के रूप में स्थित होता है। अब हे नारद ! उसी बिन्दुशक्ति का दूसरे प्रकार से विस्तार सुनिए ॥ ४२ ॥

उदेत्येषा विसृष्टाख्या शब्दसर्गमयी परा ।

एकानेकविचित्रार्था नानावर्णविकारिणी ॥ ४३ ॥
साक्षात् सोमस्वरूपा सा लक्ष्म्याः शब्दमयी तनुः ।
स्वरव्यञ्जनरूपेण सा विवर्तं प्रपद्यते ॥ ४४ ॥

जब यह विसृष्टा (बिन्दु) नाम वाली शक्ति, जो शब्दसर्गमयी एवं परा है, उदय को प्राप्त होती है, तब वह एक, अनेक अथवा विचित्र अर्थों वाली, नाना वर्णों के एवं विकारों से युक्त होती है । वही सोम स्वरूपा है और लक्ष्मी का शब्दमय शरीर है जो स्वर और व्यञ्जन के भेद से बृहत्ता को प्राप्त होता है ॥ ४३-४४ ॥

अकारात्मना तस्य समुन्मेषः

अ इत्यादिसमुन्मेषः सोऽनुत्तर उदीर्यते ।

वह उदीयमान बिन्दु उन्मेष को प्राप्त होता है । तब सर्वप्रथम उसका रूप 'अ' के रूप में प्रगट होता है । इसीलिए उसे अनुत्तर (सर्वप्रथम होने से श्रेष्ठ) भी कहा जाता है ॥ ४५ ॥

अकारस्य सर्ववाग्रूपत्वम्

सर्वा वागयमेवैकस्तत्तदाकारभेदवान् ॥ ४५ ॥

इसी अकार में सारा वर्ण निहित है जो तत्तद्वर्णों के आकार रूप में भिन्न-भिन्न रूप से प्रगट होता है ।

बिन्दोरिकारोकारात्मना समुन्मेषः

स इच्छन्निरिति व्यक्त उन्मिषन्नुरिति स्मृतः ।

यथोक्तवर्णत्रयस्य सर्वस्वरविभावकत्वम्

एत एव त्रयो वर्णाः सर्वस्वरविभावनाः ॥ ४६ ॥

जब वह अकार पुनः उन्मेष को प्राप्त होता है तब इ के रूप में तथा पुनः उन्मेष प्राप्त होने पर 'उ' के रूप में प्रगट होता है । यही तीन वर्ण (अ, इ और उ) सारे स्वरों को प्रगट करने वाले हैं ॥ ४६ ॥

तेषां दीर्घतापत्तिः

अनुत्तरः स आनन्द आभावं प्रतिपद्यते ।
इरिच्छया स ईशान ईभावं प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥

वही अनुत्तर (सर्वप्रथम) आनन्द रूपवाला अ आभाव को प्राप्त होता है । पुनः वही 'इ' अपनी इच्छा से ईशान होकर ई भाव को प्राप्त करता है ॥ ४७ ॥

उरुन्मिषन्नूनरूप ऊभावं प्रतिपद्यते ।

एषामुत्पत्तिः

अनुत्तरेच्छासन्धानादेकारो नाम जायते ॥ ४८ ॥

'उ' उन्मिष होते ही उन रूप को प्राप्त कर ऊ भाव को प्राप्त होता है । पुनः अनुत्तर

'अ' इच्छा 'इकार' की संधि हो जाने पर उसका नाम एकार होता है। पुनः वही अ ए से संधिभाव को प्राप्त कर ऐ भाव को प्राप्त करता है ॥ ४८ ॥

अनुत्तराद्भवन् भूय ऐभावं प्रतिपद्यते ।
दिव्यादनुत्तरोन्मेषादोकारो नाम जायते ॥ ४९ ॥
अनुत्तराद्भवन् भूय औभावं प्रतिपद्यते ।

तेषां सन्ध्यक्षरत्वम्

संध्यात्मान इमे कूटाश्चत्वारः समुदाहृताः ॥ ५० ॥

दिव्य अकार जब उन्मेष से संधि को प्राप्त होता है तब वह 'ओकार' नाम वाला होता है। फिर वही ओ जब अकार से संधित होता है तब औकार भाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार ये चार ए ऐ ओ और औ कूट स्वर सन्धिसंयुक्त कहे गए हैं ॥ ४९-५० ॥

तेषामवयवार्थाविष्करणम्

अनुत्तरेच्छायोगेन ह्येधमानः स ए स्मृतः ।
भूयोऽनुत्तरसंयोगादै चाप्यैश्वर्यवान् स्मृतः ॥ ५१ ॥

अनुत्तर (अकार) और इच्छा (इकार) से सन्धि होने पर बढ़ने के कारण वह 'ए' ऐसा कहा जाता है, फिर अ पुनः ए से संयुक्त (सन्धि) हो जाने पर ऐश्वर्यशालि 'ऐ' कहा जाता है ॥ ५१ ॥

दिव्यादनुत्तरोन्मेषादोतः सर्वत्र ओ स्मृतः ।
अनुत्तरात् स सम्भूय और्जित्यादौगतिं गतः ॥ ५२ ॥

दिव्य अकार जब अनुत्तर से संधित होता है तो ओ कहा जाता है। पुनः अकार से सन्धित होकर और्जित होने से 'औ' भाव को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

ऋॡवर्णोत्पत्तिः

एकत्रिभागयो ऋद्ध्या अरयो ऋ स्मृतो बुधैः ।
अलयोश्च तथा ॡत्वमाकारः स्यादनुत्तरः ॥ ५३ ॥

जब अकार का एक भाग और र् तथा य् का तीन भाग मिल जाता है तब बुद्धिमान् लोग उसे 'ऋ' ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार 'आ' का एक भाग तथा ल और य् का तीन भाग जब संयुक्त हो जाता है तब उसे ऌ कहते हैं ॥ ५३ ॥

भूयोऽप्यनुत्तरोद्योगात् प्लवमानस्तथा स्मृतः ।
एवं चतुर्दशोद्योगान्नानाकारविभाविनी ॥ ५४ ॥
नटीव कुण्डलीशक्तिराद्या विष्णोर्विजृम्भते ।
अस्य रूपद्वयं सूक्ष्मं सृष्टिसंहारकारणम् ॥ ५५ ॥

यह दूसरा ॡ भी वर्ण समाम्नाय तथा तन्त्रशास्त्रों में पठित है (देखिये शारदातिलकतन्त्रम्)। वर्णों की गणना के प्रसङ्ग में फिर जब अकार के साथ वही ल और अ संयुक्त

होकर ऊपर उठते हैं तब उसे दूसरा 'ल्ट' कहते हैं। इस प्रकार विष्णु की आद्याशक्ति कुण्डलिनी नटी के समान पूर्वोक्त दश अवस्था (द्र० १६.४५ में १ अवस्था, ४६ श्लो० २ अवस्था, ४७ में २, ४८ में २, ४९ में २ और ५० में १ = १०) को प्राप्त कर अनेक प्रकार के वर्णों को प्रगट करती है। इसके सृष्टि तथा संहार में कारणभूत दो सूक्ष्म रूप हैं ॥ ५४-५५ ॥

अनाख्येया महासत्ता क्रियाशक्तिः क्रमेण सा।
शब्दात्मना विवर्त्स्यन्ती सा पुरा याति सृष्टिताम् ॥ ५६ ॥
सृष्टिः सर्गो विसर्गश्च विसर्जनमितीदृशैः।

नाभौ कुण्डल्याः पश्यन्तीत्वम्

मूलाधारात् समुद्यन्ती सा शान्ता सा निरञ्जना ॥ ५७ ॥
अङ्क्ष्यन्ती साञ्जनैस्तैस्तैः संस्कारैः समनुत्तरम्।
दृष्टिदृश्यात्मतां प्राप्य शब्दार्थत्वविवर्तिनी ॥ ५८ ॥
पश्यन्ती नाम नाभौ सा योगदृश्योदयं गता।
शक्तिः सा वैष्णवी सत्ता मन्त्रमाता समञ्जना ॥ ५९ ॥
अधिकारक्षयं यान्ति योगिनस्तां गता धिया।

पहला रूप जो महासत्ता के नाम से कहा जाता है अनिर्वचनीय है और दूसरा रूप क्रियाशक्ति है जो शब्द स्वरूप से विवर्त्तित होकर सृष्टि करता है। जिसे सृष्टि सर्ग, विसर्ग एवं विसर्जन इन शब्दों से भी कहा जाता है। जब वह शान्ता तथा मायारहित कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर पश्चात् मायायुक्त संस्कारों से लिप्त होकर दृष्टि से दृश्यभाव को प्राप्त होकर नाभि स्थान में शब्द और अर्थ के रूप में विवर्त्तभाव को प्राप्त होती है, तब उसे पश्यन्ती कहते हैं। वहाँ वह योग के द्वारा दृश्यमान होती है और वही कुण्डलिनी वैष्णवी शक्ति साकार रूप से सभी मन्त्रों की जननी होती है और योगियों की बुद्धि द्वारा अधिकार एवं क्षय (?) को प्राप्त करती है ॥ ५६-६० ॥

तस्या हृदब्जे विस्तारः

विजृम्भणोन्मुखी लक्ष्मीः पश्यन्ती सा क्रियामयी ॥ ६० ॥
भावं संस्कृत्य संस्कारैः समर्थाख्यां विवर्तनाम्।
भृङ्गीव निनदन्ती सा हृदब्जे याति विस्तृतिम् ॥ ६१ ॥
वाच्यवाचकभावेन लोलीभूता क्रियामयी।
तदा संस्कृतयः सर्वाः स्मृतीः पुष्यन्ति वाच्यगाः ॥ ६२ ॥

जब वही क्रियामयी पश्यन्ती नाम वाली लक्ष्मी विकासोन्मुखता को प्राप्त कर संस्कार से भाव (पदार्थ) को संस्कृत कर समर्थनाम्नी विवर्त्तन् को प्राप्त कर हृदयकमल में भ्रमर के समान गुञ्जार करती हुई वाच्य-वाचक भाव से चञ्चल तथा क्रियाशील होकर विस्तार प्राप्त करती है, तब सभी संस्कृतियों के स्मृति भाव को प्राप्त कर वाच्यार्थ को पुष्ट करती है ॥ ६०-६२ ॥

तस्याः कण्ठदेशे विसर्गात्मना परिणामः

एवंविधा क्रियाशक्तिस्तत्तद्वाच्यविवक्षया ।
शब्दरूपं समास्थाय कूटस्थं व्यक्तिवर्जितम् ॥ ६३ ॥
सा यात्यनुत्तरस्पृष्टा कण्ठं शक्तिर्विसर्गिणी ।
पुनः सानुत्तरे स्थित्वा चतुर्दशविभाविनी ॥ ६४ ॥

विसर्ग (सृष्टि) करने वाली वह शक्ति इस प्रकार तत्तत्स्थानों से होती हुई कण्ठ स्थान को जाती है । इसी प्रकार चतुर्दश स्थान (मूलाधार, नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, दन्तोष्ठ, कण्ठतालु, कण्ठौष्ठ जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तथा नासिका) को भी प्राप्त कर तत्तद् वर्णों को प्रगट करती है ॥ ६३-६४ ॥

अनुत्तरोत्तरा याति कण्ठे हेति विजृम्भणम् ।
ततः सादिमयी भूत्वा कान्तव्यञ्जनशालिनी ॥ ६५ ॥

जब वह सृष्टि के लिए कण्ठ स्थान प्राप्त कर विकसित होती है तब सादि बन कर मनोहर व्यञ्जनयुक्त वर्णों को जन्म देती है । इसी प्रकार अन्य स्थानों को भी प्राप्त कर वर्णों की उत्पत्ति करती है ॥ ६५ ॥

अनुत्तरमयी भूयो बिन्दौ सम्प्रतितिष्ठति ।
बिन्दुः संहार इत्युक्तो विसर्गः सृष्टिरुच्यते ॥ ६६ ॥

फिर तत्तत्स्थानों से वर्णों को उत्पन्न कर अपने बिन्दु स्थान को लौट आती हैं । बिन्दु को संहार कहते हैं और विसर्ग को सृष्टि कहा जाता है (द्र० १७) ॥ ६६ ॥

इमौ द्वौ सृष्टिसंहारौ लेशतस्ते निदर्शितौ ।
मत्तः शृणु मुने भूयः स्वराणां विविधां ततिम् ॥ ६७ ॥

हे नारद ! इस प्रकार सृष्टि और संहार का निदर्शन मैंने आपसे संक्षेप में किया । अब हे मुने ! मुझसे स्वरों का नाना प्रकार का विस्तार सुनिए ॥ ६७ ॥

स्वराणामवान्तरभेदनिरूपणम्

यदादित्रितयं पूर्वं स्वरकूटस्थमीरितम् ।
अष्टादशविधं तत्तु प्रत्येकं योगिनां मतम् ॥ ६८ ॥

स्वरों का अवान्तर भेद—पूर्व में हमने जो आदि के कूटस्थ तीन स्वरों को कहा है उनमें प्रत्येक के अठारह अठारह भेद हैं ऐसा योगियों ने कहा है ॥ ६८ ॥

स्वरव्यञ्जनकूटौ यौ ऋ ऌ इत्युदितौ पुरा ।
आद्योऽष्टादशधान्त्यस्तु तयोर्द्वादशभेदवान् ॥ ६९ ॥

इसी प्रकार स्वर व्यञ्जन के कूट (अ र ल से मिश्रित) जो मैंने पूर्व में (द्र० १६.५३-५५) ऋ ऌ दो वर्णों को कहा है उसमें प्रथम ऋ के १८ भेद तथा ऌ के १२ भेद हैं ॥ ६९ ॥

इति स्वराणां पञ्चानामशीतिश्चतुरुत्तरा ।
स्वरकूटास्तु चत्वारो ये तेषामीदृशी भिदा ॥ ७० ॥
शतानि त्रीण्यथैकारा विंशतिश्चतुरुत्तरा ।
एवं पञ्च सहस्राणि शतान्यष्टावनुष्टुभाम् ॥ ७१ ॥

अ इ उ मिलाकर ५४ तथा ऋ के १८ और ऌ के बारह कुल मिलाकर ८४ भेद हुये और जो आगे के चार स्वरकूट ए ऐ ओ औ हैं इनके भी भेद उसी प्रकार समझना चाहिए । इसी प्रकार सभी वर्णो के भेद पाँच हजार एक सौ आठ हुये ॥ ७०-७१ ॥

ऐकारः कथितः सम्यक् शिक्षातत्त्वविशारदैः ।
ओकारश्च तथौकार इयद्भेदौ प्रकीर्तितौ ॥ ७२ ॥

शिक्षा तत्त्व विशारदों ने इस प्रकार ऐकार को कहा है । ओकार तथा औकार के भी इतने ही भेद जानना चाहिए ॥ ७२ ॥

रम्यौ गौरौ यमित्येव सङ्ख्या सम्भूय संधिगा ।
योगिनस्तां प्रपश्यन्ति मन्यन्ते मनसा नराः ॥ ७३ ॥

रम्य, गौर और यम् इस प्रकार संधि को लेकर सारी सङ्ख्या इतनी ही है । योगी लोग उसे ध्यान द्वारा देखे हुये हैं । इसलिए मनुष्य भी मन से उतनी ही सङ्ख्या को मान्यता देते हैं ॥ ७३ ॥

सम्भूय स्वरसङ्ख्या तु स्तब्धौ गौरो यमित्यसौ ।
द्विस्तावन्तः स्वरा ज्ञेयाः सृष्टिसंहारभेदिताः ॥ ७४ ॥

स्वरों की सङ्ख्या भी इसी प्रकार स्तब्ध, गौर और यम् सृष्टि (विसर्ग यथा अः) संहार (बिन्दु यथा अं) भेद से स्वरों की सङ्ख्या दुगुनी जाननी चाहिए ॥ ७४ ॥

सर्गयुक्ता बिन्दुयुक्ताः केवला इति ये त्रिधा ।
देहोऽर्थः सङ्ग इत्येव ते सम्भूय चतुर्दश ॥ ७५ ॥

ये स्वर कहीं विसर्ग से युक्त (अः), कहीं बिन्दु से युक्त (यथा अं), कहीं केवल (यथाच्यु) भेद से तीन प्रकार के होते हैं इसी प्रकार देह, अर्थ और सङ्ग कुल मिलाकर १४ सङ्ख्या हुई ॥ ७५ ॥

सृष्टिः सोमः समाख्याता बिन्दुः सूर्य उदीर्यते ।

स्वराणां सूर्यचन्द्रकिरणात्मता

पूर्वे सप्त स्वराः सूर्यकिरणाः परिकीर्तिताः ॥ ७६ ॥
सोमस्य किरणा ज्ञेया आकारादय उत्तरे ।

तयोरहोरात्रप्रवर्तकत्वम्

अहर्नयति सूर्यस्तु स्वरैः पिङ्गलया चरन् ॥ ७७ ॥

सृष्टि (विसर्ग) को सोम कहा जाता है । विन्दु (अनुस्वार) सूर्य नाम से पुकारा जाता है । पूर्व के सात स्वर (अ इ उ ऋ ए ओ और अः) सूर्य की किरण हैं । इसी प्रकार उत्तर के आकारादि स्वर (आ ई ऊ ॠ इत्यादि) सोम की किरण हैं । इन स्वरों के द्वारा पिङ्गला नामक नाड़ी से चलता हुआ दिन उत्पन्न करता है ॥ ७६-७७ ॥

रात्रिं सृजति सोमस्तु स्वरैः स्वैरिडया चरन् ।

परशक्तेः सुषुम्नासञ्चारित्वम्

स्वराणां या परा विष्णोः कूटस्था शक्तिरुज्ज्वला ॥ ७८ ॥
सुषुम्नया सञ्चरते शब्दब्रह्म वितन्वती ।
इति ते लेशतः प्रोक्ता स्वराणां गतिरुत्तमा ॥ ७९ ॥

सोम इन्हीं स्वरों से ईडा नामक नाडी से चलता हुआ रात्रि की सृष्टि करता है । जो सभी स्वरों से उत्तम है और जो विष्णु की कूटस्था उज्ज्वला शक्ति है वह शक्ति सुषुम्ना के द्वारा शव्दब्रह्म का निर्माण करती हुई सञ्चरण करती है । इस प्रकार, हे नारद ! मैंने सभी स्वरों की उत्तमगति का लेश मात्र निरूपण किया ॥ ७८-७९ ॥

व्यञ्जनसृष्टिकथनारम्भः

अथ व्यञ्जनसृष्टिं ते कथयामि मुने शृणु ।

विसर्गस्य वासुदेवमूर्तित्वम्

अनुत्तरोत्तरा सृष्टिर्या सा हेति पुरोदिता ॥ ८० ॥
आदिव्यूहस्य देवस्य वासुदेवस्य सा तनुः ।
अच्युतो बिन्दुयुक्तोऽसौ रुन्धन्नाधारमादिमम् ॥ ८१ ॥
साग्निं दीपयते नादं योगारम्भे तु योगिनाम् ।
अच्युतः सृष्टियुक्तोऽसावूर्ध्वसृष्टिं करोति च ॥ ८२ ॥

व्यञ्जन सृष्टि—हे मुने! अब व्यञ्जन सृष्टि आपसे कहता हूँ सावधान होकर सुनिए । पूर्व में अनुत्तरोत्तरा सृष्टि (अकार) जिसका दूसरा नाम हेति भी है । वह आदिव्यूह वाले देवाधिदेव विष्णु का शरीर है । जैसा कि 'आकारो वासुदेव स्यात्' कहा गया है वही अच्युत (अकार) बिन्दु से युक्त होकर (अ) योगिजनों के योगारम्भ काल में मूलाधार को रोककर अग्नियुक्त नाद को प्रदीप्त करता है । इस प्रकार अच्युत (अकार) सृष्टि (विसर्ग) से युक्त होने पर ऊर्ध्वसृष्टि करता है ॥ ८०-८२ ॥

अच्युतः सृष्टियुक्तस्तु बहिःसृष्टिं करोत्ययम् ।

तस्मादूष्मणामुत्पत्तिस्तेषां चातुरात्म्यं च

हात् सात् षात् शात्ततः शश्वच्छक्त्यूष्माण उदीरिताः ॥ ८३ ॥

वही सृष्टियुक्त (सविसर्ग) अच्युत (अकार) ह स ष और श से बाह्य सृष्टि भी करता है । यही शश्वच्छक्ति ऊष्मा नाम से भी कही जाती है ॥ ८३ ॥

चातुरात्म्यमिदं प्रोक्तं चतुर्ब्रह्मेति शब्दितम् ।

क्षकारसहितानां तेषां ब्रह्मशब्दवाच्यत्वम्

क्षेण कूटेन संयोगात् पञ्चब्रह्मेति शब्दितम् ॥ ८४ ॥

यही ह स ष और श ऊषा संज्ञक वर्ण चातुरात्म्य तथा चतुर्ब्रह्म के नाम से कहे गए हैं । जब क्ष रूप कूट वर्ण से ये संयुक्त होते हैं, तब इन्हें पञ्चब्रह्म भी कहा जाता है ॥ ८४ ॥

क्षस्तु सत्यस्य बीजं तु प्रोक्तः सात्त्वतशासने ।
कषकूटमुशन्त्यन्ये नित्यं तत्प्रतिरूपकम् ॥ ८५ ॥

सात्वतशास्त्र में 'क्ष' वर्ण को सत्य का बीज भी कहा गया है । कोई लोग उस 'क्ष' वर्ण को क् और ष वर्णो का कूट (मिलाकर) मानते हैं ॥ ८५ ॥

अन्तःस्थानामुत्पत्तिस्तेषां संज्ञात्रयं च

शाद्वस्तस्माल्ल उद्दिष्टो लाद्रो राद्यः प्रजायते ।
धारणा नाम विज्ञेया याद्या विश्वस्य धारणात् ॥ ८६ ॥
अन्तःस्था इति च प्रोक्ता अन्तःस्थपुरुषेशयाः ।
अवस्था इति च प्रोक्ता ईशावतरणक्रमे ॥ ८७ ॥

फिर उसी शकार से व, फिर वकार से ल वर्ण उत्पन्न हुआ । फिर लकार से र तथा र से य की उत्पत्ति हुई । य र ल और व ये वर्ण विश्व को धारण करते हैं । इसलिए इन्हें धारणा भी कहते हैं तथा अन्तःस्थ पुरुष के भीतर सोने के कारण इन्हें अन्तःस्थ भी कहा जाता है । ईशावतरण क्रम में इन्हीं वर्णों को (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया) अवस्था भी कहा गया है ॥ ८६-८७ ॥

मकारोत्पत्तिः

यकारादीशशक्तिस्थान्मकारो नाम जायते ।
अनुत्तरोत्तरो बिन्दुर्म इति प्रतिशब्द्यते ॥ ८८ ॥

मकार की उत्पत्ति—ईश्वर की शक्ति में रहने वाले यकार से मकार नामक वर्ण उत्पन्न हुआ । सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला बिन्दु इस मकार का दूसरा नाम है ॥ ८८ ॥

तस्य सर्वचेतनसमष्टिरूपत्वं जीववाचित्वं च

चेतनानां तु सर्वेषां समष्टिः सा निगद्यते ।
अस्मदर्थोऽयमुद्दिष्टः सोऽयमुत्तमपूरुषः ॥ ८९ ॥

यह मकार सभी चेतनों की समष्टि कहा गया है । इसे 'अस्मद्' (मैं) इस अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है जो तीन प्रकार के पुरुषों में उत्तम पुरुष से अभिहित होता है ॥ ८९ ॥

भकारोत्पत्तिस्तस्य च प्रकृतिवाचित्वम्

सूक्ष्मेक्षयानुवृद्धौ सा प्रकृत्या भोग्यरूपया ।
भ इत्येव मकारात् सा पुनः स्थूला विविच्यते ॥ ९० ॥

भकार की उत्पत्ति—पुन: सूक्ष्म ज्ञान के बढ़ जाने पर उस मकार से भोग्यरूप प्रकृति युक्त भकार उत्पन्न हुआ । अत: उसे स्थूला प्रकृति भी कहते हैं ॥ ९० ॥

बादिटान्तत्रयोदशवर्णोत्पत्तिः

भोगोपकरणाकारा बहिरन्तर्व्यवस्थया ।
त्रयोदशात्मना व्यक्ता बाद्या टान्ता महामुने ॥ ९१ ॥

हे महामुने ! उस मकार से बाहरी और भीतरी व्यवस्था के कारण भोग के उपकरण रूप आकार वाले त्रयोदशात्मक वर्ण व (औष्ठ स्थानीय) के आदि से लेकर 'ट' वर्ण पर्यन्त (व फ प न ध द थ त ण ढ ड ठ और ट) उत्पन्न हुये ॥ ९१ ॥

बादित्रयस्य महदहङ्कारमनोवाचित्वम्;
तवर्गस्य ज्ञानेन्द्रियवाचित्वम्

बुद्धिश्चाहङ्कृतिश्चैव मनश्चेति मनीषिभिः ।
बादित्रितयमुद्दिष्टं नादि तान्तं तु धीन्द्रियम् ॥ ९२ ॥

व से लेकर तीन वर्णो (व फ और प) को मनीषियों ने क्रमश: बुद्धि, अहङ्कार और मन कहा है तथा न से लेकर त पर्यन्त वर्णों को (न ध द थ और त) ज्ञानेन्द्रियों के नाम से कहा है ॥ ९२ ॥

टवर्गस्य कर्मेन्द्रियवाचकत्वम्

णादि टान्तं तु कर्माख्यमथ भोग्योद्भवो द्विधा ।

चवर्गोत्पत्तिः; तस्य तन्मात्रवाचित्वम्

ञादि चान्तं तु तन्मात्रपञ्चकं प्रविजृम्भते ॥ ९३ ॥

ण से लेकर ट पर्यन्तवर्ण (ण ढ ड ठ और ट) इन्हें कर्मेन्द्रियों की संज्ञा दी है । इस प्रकार बुद्धीन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों ही भोग्य के लिए उत्पन्न हुये हैं । म से लेकर च पर्यन्त पाँच वर्ण (ञ, झ, ज, छ और च) पञ्च तन्मात्राओं के रूप हैं ॥ ९३ ॥

कवर्गोत्पत्तिः; तस्य महाभूतवाचित्वम्

ङादिः पञ्चमहाभूता कान्तान्या वर्णसन्ततिः ।
यस्माद्यस्योद्भवो वर्णात् तत्त्वसृष्ट्यां तु तत् स्मरेत् ॥ ९४ ॥

इससे अतिरिक्त अन्य 'ङ' से लेकर क पर्यन्त वर्ण (ङ, घ, ग, ख और क) ये वर्ण समूह पञ्चमहाभूत नाम से कहे गए हैं । इस प्रकार जिस वर्ण से जिसकी सृष्टि कही गई हैं । तत्त्व सृष्टि में उस वर्ण का स्मरण करना चाहिए ॥ ९४ ॥

ळकारोत्पत्तिः

लस्यैव करणान्यत्वे ळकारो नाम जायते ।

ळकार का जब कोई दूसरा कारण होता है तब उसका नाम ळकार कहा जाता है ।

व्यञ्जनानां वैविध्यम्

चतुस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्णास्ते व्यञ्जनात्मकाः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार हे नारद ! हमने ३४ व्यञ्जन वर्णों (५ कवर्गादि मिलाकर २५ यकार से लेकर हकार पर्यन्त वर्ण कुल ३३ और एक अन्य ळकार) को आपसे कहा ॥ ९५ ॥

एवमेकैकशो योगाद्भेदाः स्युर्बहवः स्वरैः ।
चतुःपञ्चाशदुद्दिष्टाः ककारास्तत्र वै मुने ॥ ९६ ॥

इन व्यञ्जनों का जब एक-एक स्वर से संयोग होता है तो इनके बहुत से भेद हो जाते हैं । हे मुने ! उसमें केवल क कार ही ५४ भेद वाला कहा गया है ॥ ९६ ॥

किकाराश्च कुकाराश्च कृकाराश्च तथाविधाः ।
क्लृकारास्तत्र षट्त्रिंशत् केकारा रसधीर्मुने ॥ ९७ ॥

इसी प्रकार किकार, कुकार तथा कृकार भी उतने ही भेद वाले हैं । क्लृकार के ३६ भेद हैं (क्योंकि उसमें दीर्घ नहीं होता) केकार के ६१ भेद हैं ॥ ९७ ॥

तथाविधाश्च कोकारा योगिभिः सङ्ख्यया स्मृताः ।
स्तब्धस्वार्थोऽयमित्येवं कैकारो योगिभिः स्मृतः ॥ ९८ ॥

योगियों ने कोकार की भी उतनी ही (६१) सङ्ख्या कही है । योगियों ने कैकार को स्तब्ध और स्वार्थ कहा है ॥ ९८ ॥

कौकाराश्च तथासङ्ख्याः सप्त संहत्य ते पुनः ।
देहोऽर्थः सङ्ग इत्येवं सङ्ख्याताः परमर्षिभिः ॥ ९९ ॥
वेगव्यञ्जनसङ्ख्यैव देहोऽर्थः साङ्गभेदिताः ।
नीतिमत्प्रतिभा हेति सङ्ख्यया जायते मुने ॥ १०० ॥

कौकार की सङ्ख्या ७ जोड़कर ६८ कही गई है । महर्षियों द्वारा देहार्थ सङ्ग से इतनी सङ्ख्याओं को कहा है । वेग एवं व्यञ्जन के सङ्ख्याओं को ही देह एवं अर्थ से अङ्ग के सहित भेदित किया है । हे मुने ! नीतिमत्, प्रतिभा और हेति सङ्ख्या होती है ॥ ९९-१०० ॥

स्वरव्यञ्जनसंयोगादियं सङ्ख्या समीरिता ।
एकद्वित्र्यादिसंयोगैर्व्यञ्जनानां क्रमात् क्रमात् ॥ १०१ ॥
केवलानां सस्वराणां ततः सङ्ख्याविधिः स्मृतः ।

वर्णमातृकाया भगवच्छक्तिप्रोतत्वम्

पदवाक्यप्रमाणादिनानाकोरकशालिनी ॥ १०२ ॥

वर्णस्तम्बा ज्ञानमूला शब्दशक्तिर्हि वैष्णवी।
विष्णुना देवदेवेन तेन शक्तिमता स्वयम्॥ १०३ ॥
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन प्रोतेयं वर्णसन्ततिः ।

यह सङ्ख्या हमने स्वर और व्यञ्जन के संयोग से होने वाली कही है। एक दो और तीन व्यञ्जन वर्णों के संयोग से व्यञ्जन की सङ्ख्या अनन्त है। इसलिए केवल स्वरयुक्त वर्णों की सङ्ख्या की गणना कही गई। इस वैष्णवी शब्द शक्ति की पद, वाक्य तथा प्रमाणादि (व्याकरण, मीमांसा और न्यायवैशेषिक आदि) नाना प्रकार की कलिकायें हैं। इसके वर्ण ही स्तम्ब (गुच्छे) हैं तथा ज्ञान ही इसका मूल (जड़) है। यह वर्णसङ्गति शक्तिमान् देवाधिदेव विष्णु के साथ स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों से गुँथी हुई है॥ १०१-१०४ ॥

भगवदाज्ञया रुद्रांशस्यापि वर्णमातृकाधिष्ठातृत्वम्

तदाज्ञयास्मदंशैश्च रुद्रैर्नानाविधैरियम्।
मन्त्रयोनिरियं देवी मातृकाधिष्ठिता सदा॥ १०४ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां वर्णोत्पत्तिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १०४ ॥

* * *

ये मातृकायें ही उन विष्णु की आज्ञा से हमारे (अहिर्बुध्न्य के) अंश वाले नाना प्रकार के रुद्रों से अधिष्ठित हैं और यही मातृका देवी सभी मन्त्रों की योनि (उत्पत्ति स्थान) भी है॥ १०४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के वर्णोत्पत्तिनिरूपण नामक सोलहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई॥ १६ ॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

वर्णसंज्ञानिरूपणम्

ध्यायिनां सुखदं नित्यं ज्वालाजटिलकुन्तलम् ।
सुदर्शनाख्यं तद्दिव्यं महः किमपि धीमहि ॥

ध्यान करने वालों को सर्वदा सुख देने वाले और अपने प्रचण्ड तेज की ज्वाला से जटिल कुन्तल वाले सुदर्शन नामक किसी महान् दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ ।

वर्णमातृकाधिष्ठातृरूपप्रश्नः

नारदः—

नमस्ते शर्व सर्वज्ञ सर्वासुरनिबर्हण ।
स्थूलसूक्ष्मपरैर्भावैर्यथा वर्णा अधिष्ठिताः ॥ १ ॥
विष्णुना देवदेवेन रुद्रैश्च भवदंशकैः ।
तथा तं मे परं भावं वक्तुमर्हसि शङ्कर ॥ २ ॥

वर्णसंज्ञानिरूपण—श्रीनारद ने कहा—हे सम्पूर्ण असुरों का वध करने वाले ! हे सर्वज्ञ ! हे शर्व ! आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! ये वर्ण जिस प्रकार देवाधिदेव विष्णु से तथा आप के अंशभूत रुद्रों से एवं स्थूल, सूक्ष्म एवं पर भावों से जिस प्रकार अधिष्ठित हैं । हे शङ्कर ! मुझसे उस परभाव का वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

विष्णुशक्तिमया वर्णा विष्णुसङ्कल्पजृम्भिताः ।
अधिष्ठिता यथा भावैस्तथा तन्मे निशामय ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ये वर्ण विष्णुशक्तिमय हैं तथा विष्णु के सङ्कल्प द्वारा उत्पन्न होते हैं । ये जिस प्रकार के भावों से अधिष्ठित हैं वह मुझसे सुनिए ॥ ३ ॥

वर्णाधिष्ठातृवैष्णवरूपाणि

प्रथमश्चाप्रमेयश्च व्यापकोऽकार उच्यते ।
आनन्द आदिदेवश्च गोपनश्चाः स्मृतो बुधैः ॥ ४ ॥

प्रथम अप्रमेय और व्यापक इन शब्दों से अकार कहा जाता है। बुद्धिमानों ने आनन्द आदिदेव तथा गोपन शब्द से आकार का बोध कहा है ॥ ४ ॥

इष्ट इद्धश्च रामश्च इकारः परिपठ्यते।
विष्णुश्च पञ्चबिन्दुश्च माया ईकार उच्यते॥ ५ ॥

इष्ट, इद्ध तथा राम शब्द से इकार पढ़ा जाता है, इसी प्रकार विष्णु, पञ्चबिन्दु तथा माया से दीर्घ ईकार का बोध होता है ॥ ५ ॥

उकार उदयश्चापि ह्युद्दामो भुवनाह्वयः।
प्रज्ञाधारश्च लोकेश ऊर्ज ऊकार उच्यते॥ ६ ॥

उदय, उद्दाम तथा भुवन ये ह्रस्व उकार के नाम हैं। प्रज्ञाधार, लोकेश और ऊर्ज इनसे दीर्घ ऊकार का बोध होता है ॥ ६ ॥

ऋकार ऋतधामा च सत्यश्चाङ्कुश एव च।
ज्वाला प्रसरणश्चैव ॠकारो विष्टराह्वयः॥ ७ ॥

ऋतधाम, सत्य और अङ्कुश इनसे ह्रस्व ऋ का बोध होता है। ज्वाला, प्रसरण तथा विष्टर ये दीर्घ ॠकार के नाम हैं ॥ ७ ॥

ऌकारस्तारकः प्रोक्तो लिङ्गात्मा भगवानिति।
ॡकारो दीर्घघोणश्च देवदत्तस्तथा विराट्॥ ८ ॥

ऌकार को तारक, लिङ्गात्मा और भगवान् कहा जाता है। दीर्घघोण, देवदत्त तथा विराट् ये दीर्घ ॡकार के नाम हैं ॥ ८ ॥

एकारस्तु जगद्योनिस्त्र्यक्षो विग्रह एव च।
ऐकारश्च तथैश्वर्यं योगी ह्यैरावणस्तथा॥ ९ ॥

जगद्योनि, त्र्यक्ष और विग्रह ये एकार के नाम हैं। ऐश्वर्य, योगी एवं ऐरावण ये ऐकार के नाम हैं ॥ ९ ॥

ओदनश्चौतदेवश्च विक्रम्योकार उच्यते।
और्वो भूधरसंज्ञश्चाप्यौः स्मृतो ह्यौषधात्मकः॥ १० ॥

ओदन, ओतदेव तथा विक्रम्य इन शब्दों से ओकार कहा जाता है। और्व, भूधर और औषध ये औकार के नाम है ॥ १० ॥

त्रैलोक्यैश्वर्यदो व्यापी व्योमेशौंकार एव च।
अङ्कारः सृष्टिकृत् प्रोक्तो विसर्गः परमेश्वरः॥ ११ ॥

त्रैलोक्यैश्वर्यद, व्यापी और व्योम ये ॐकार के नाम हैं। अङ्कार को सृष्टिकृत् से कहा जाता है तथा विसर्ग (अः) परमेश्वर शब्द से कहा गया है ॥ ११ ॥

ककारः कमलश्चैव करालः प्रकृतिः परा।
खकारः खर्वदेहश्च वेदात्मा विश्वभावनः॥ १२ ॥

कमल, कराल तथा परा, प्रकृति ये ककार के नाम हैं। खर्वदेह, वेदात्मा तथा विश्वभावन इनसे खकार का बोध होता है ॥ १२ ॥

गकारस्तु गदध्वंसी गोविन्दश्च गदाधरः ।
घकारस्त्वथ घर्मांशुस्तेजस्वी दीप्तिमांस्तथा ॥ १३ ॥

ङकार एकदंष्ट्राख्यो भूतात्मा भूतभावनः ।
चन्द्रांशुश्चंचलश्चक्री चकारः परिकीर्त्यते ॥ १४ ॥

गदध्वंसी, गोविन्द और गदाधर ये गकार के नाम हैं। घर्मांशु, तेजस्वी तथा दीप्तिमान् ये घकार के नाम हैं। एकदंष्ट्र, भूतात्मा और भूतभावन ये ङकार के नाम हैं। चन्द्रांशु और चलचक्री इन शब्दों से चकार कहा जाता है ॥ १३-१४ ॥

छन्दःपतिश्छलध्वंसी छकारश्छन्द एव च ।
अजितो जन्महन्ता च जकारः शाश्वतः स्मृतः ॥ १५ ॥

छन्द:पति, छलध्वंसी और छन्द ये छकार के नाम हैं। अजित, जन्महन्ता तथा शाश्वत ये जकार के नाम हैं ॥ १५ ॥

झकारो झषसंज्ञस्तु सामगः सामपाठकः ।
ञकार उत्तमाख्यश्च ईश्वरस्तत्त्वधारकः ॥ १६ ॥

झष, सामग तथा सामपाठक नाम से झकार कहा गया है उत्तम, ईश्वर तथा तत्त्वधारक से ञकार का बोध होता है ॥ १६ ॥

विश्वाप्यायकरश्चन्द्री ट आह्लाद उदीरितः ।
धाराधरो नेमिसंज्ञष्ठकारः कौस्तुभो मतः ॥ १७ ॥

विश्वाप्यायकर, चन्द्री और आह्लाद ये टकार के नाम हैं। धाराधर, नेमि तथा कौस्तुभ इनसे ठकार का बोध होता है ॥ १७ ॥

मौसलो दण्डधारश्च डकारोऽखण्डविक्रमः ।
ढकारो विश्वरूपश्च दृढकर्मा प्रतर्दनः ॥ १८ ॥

मौसल, दण्डधार और अखण्डविक्रम ये डकार के नाम हैं। विश्वरूप, दृढ़कर्मा और प्रतर्दन ये ढकार के नाम हैं ॥ १८ ॥

णकारोऽभयदः शास्ता वैकुण्ठः परिकीर्तितः ।
तकारस्ताललक्ष्मा च वैराजः स्रग्धरस्तथा ॥ १९ ॥

अभयद, शास्ता तथा वैकुण्ठ से णकार को कहा गया है।ताललक्ष्मा, वैराज तथा स्रग्धर ये तकार के नाम हैं ॥ १९ ॥

धन्वी भुवनपालश्च थकारः सर्वधारकः ।
दत्तावकाशो दमनो दकारः शान्तिदः स्मृतः ॥ २० ॥

धन्वी, भुवनपाल तथा सर्वधारक इन पदों से थकार का बोध होता है और दत्तावकाश, दमन तथा शान्तिद इनसे दकार का बोध होता है ॥ २० ॥

धकारः शार्ङ्गधृग्धामा माधवश्च प्रकीर्तितः ।
नरो नारायणः पन्था नकारः समुदाहृतः ॥ २१ ॥

शार्ङ्गधृक्धाम और माधव ये धकार के नाम हैं । नर, नारायण और पन्था ये नकार के नाम है ॥ २१ ॥

पकारः पद्मनाभश्च पवित्रः पश्चिमाननः ।
फकारः फुल्लनयनो लाङ्गली श्वेतसंज्ञितः ॥ २२ ॥

पद्मनाभ, पवित्र और पश्चिमानन ये पकार के नाम हैं । फुल्लनयन, लाङ्गली तथा श्वेत इन शब्दों से फकार का बोध होता है ॥ २२ ॥

बकारो वामनो ह्रस्वः पूर्णाङ्गः स च कथ्यते ।
भल्लातको भकारश्च ज्ञेयः सिद्धिप्रदो ध्रुवः ॥ २३ ॥

वामन, ह्रस्व और पूर्णाङ्ग इनसे बकार का बोध होता है । भल्लातक, भकार सिद्धिप्रद तथा ध्रुव ये भकार के नाम जानना चाहिए ॥ २३ ॥

मकारो मर्दनः कालः प्रधानः परिपठ्यते ।
चतुर्गतिर्यकारश्च सुसूक्ष्मः शङ्ख उच्यते ॥ २४ ॥

मर्दन, काल और प्रधान ये मकार के नाम पढ़े गए हैं । चतुर्गति, सुसूक्ष्म और शङ्ख ये यकार के नाम हैं ॥ २४ ॥

अशेषभुवनाधारो रोऽनलः कालपावकः ।
लकारो विबुधाख्यश्च धरेशः पुरुषेश्वरः ॥ २५ ॥

अशेषभुवनाधार, कालपावक और अनल ये र के नाम हैं । विबुध, धरेश और पुरुषेश्वर ये लकार के नाम कहे गए हैं ॥ २५ ॥

वराहश्चामृताधारो वकारो वरुणः स्मृतः ।
शकारः शङ्करः शान्तः पुण्डरीकः प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥

वराह, अमृताधार और वरुण शब्द से वकार जानना चाहिए । शङ्कर, शान्त और पुण्डरीक ये शकार के नाम है ॥ २६ ॥

नृसिंहश्चाग्निरूपश्च षकारो भास्करस्तथा ।
सकारस्त्वमृतस्तृप्तिः सोमश्च परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

नृसिंह, अग्निरूप तथा भास्कर ये षकार के नाम हैं । अमृत, तृप्ति और सोम इन पदों से सकार का बोध होता है ॥ २७ ॥

सूर्यो हकारः प्राणस्तु परमात्मा प्रकीर्तितः ।
अनन्तेशः क्षकारस्तु वर्गान्तो गरुडः स्मृतः ॥ २८ ॥

प्राण, परमात्मा तथा सूर्य ये हकार के नाम हैं । अनन्तेश, वर्गान्त तथा गरुड़ ये क्षकार के नाम से कहे जाते हैं ॥ २८ ॥

बिन्दुः संहार इत्युक्तो विसर्गः सृष्टिरुच्यते ।
विष्णुशक्तिमया एते स्थूलसूक्ष्मपरात्मकाः ॥ २९ ॥
अप्रमेयादयो भावाः शतं सार्धमुदीरिताः ।

बिन्दु से संहार तथा विसर्ग से सृष्टि का बोध होता है । ये सभी वर्ण स्थूल, सूक्ष्म तथा परात्मक हैं तथा विष्णु शक्तिमय कहे गए हैं । इस प्रकार अप्रमेयादिभाव सार्धशत (१५०) की सङ्ख्या में कहे गए है ॥ २९-३० ॥

वर्णाधिष्ठातृरौद्ररूपाणि

अहिर्बुध्न्यः—

वर्णास्तेऽधिष्ठिता यैस्तैर्मदंशै रुद्रसंज्ञितैः ॥ ३० ॥
तान्निबोध महाभागानक्षरस्थान् महामुने ।
श्रीकण्ठानन्दसूक्ष्मेशास्त्रिमूर्तिरमरेश्वरः ॥ ३१ ॥
अङ्घ्रीशो भारभूतिश्च तिथिः स्थाणुर्भवाह्वयः ।
चण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः ॥ ३२ ॥
अक्रूरश्च महासेनः स्युरेताः स्वरमूर्तयः ।
ततः क्रोधीशचण्डीशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः ॥ ३३ ॥
तथैकरुद्रः कूर्मैकनेत्राह्वचतुराननाः ।
अजेशः शर्वसोमेशौ लाङ्गली दारिकस्तथा ॥ ३४ ॥
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढदण्डिनौ ।
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा ॥ ३५ ॥
चलगण्डद्विगण्डौ च समहाकालवालिनौ ।
भुजङ्गेशः पिनाकी च खड्गीशश्च बकस्तथा ॥ ३६ ॥
श्वेतो भृगुर्वकुलीशः संवर्तक इतीरितः ।
रुद्रमूर्तय उद्दिष्टा मदीया वर्णपालिकाः ॥ ३७ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महाभाग ! हे नारद ! अब जिस प्रकार वर्ण मेरे अंश वाले रुद्रों में अधिष्ठित हैं उनके नामों को सुनिए । श्रीकण्ठ, आनन्द, सूक्ष्मेश, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अङ्घ्रीश, भारभूति, तिथि, स्थाणु, भव, चण्डीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर एवं महासेन इतनी षोडश स्वरों की मूर्तियाँ हैं । इसके अनन्तर क्रोधीश, चण्डीश, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, चतुरानन, अजेश, शर्व, सोमेश, लाङ्गली, दारिक, अर्द्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढ़, दण्डी, अत्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, चलगण्ड, द्विगण्ड, महाकाल, वाली, भुजङ्गेश, पिनाकी, खड्गीश, बकेश श्वेत, भृगु, वकुलीश और संवर्त्तक ये (३४) इतनी रुद्रमूर्तियाँ कही गई हैं । जो वर्णों पर अधिष्ठित रहकर उनका पालन करती हैं ।

विमर्श—श्रीकण्ठ आदि नामों में जहाँ ईश पद नहीं कहा गया है, वहाँ सर्वत्र ईश पद जोड़ना चाहिए। द्र० मन्त्रमहोदधि: (२१.१००) ॥ ३०-३७ ॥

वर्णचक्रपद्मनिरूपणम्

तथा वर्णमयं चक्रं पद्मं चापि निबोध मे।
प्रणवोऽक्षः समुद्दिष्टः शक्तिर्नाभिरुदीरिता ॥ ३८ ॥

वर्णचक्रपद्म का वर्णन—अब वर्णमय चक्र तथा उसमें रहने वाले वर्णमय पद्म का वर्णन मुझसे सुनिए। प्रणव चक्र का अक्ष है और शक्ति उसकी नाभि है ॥ ३८ ॥

अकचाष्टतपाश्चैव सवर्ग्या अरपद्धतिः।
यादयो नेमिरुद्दिष्टा गरुडः प्रधिरुच्यते ॥ ३९ ॥

अ क च ट त प वर्गों के सहित ये अराओं की पद्धतियाँ हैं। यादि नेमि कही गई है क्ष उसकी प्रधि कही गई है ॥ ३९ ॥

प्रणवः कर्णिका प्रोक्ता शक्तिः केसरपद्धतिः।
स्वरद्विरष्टकं वर्गा अन्तःस्था ऊष्मभिः सह ॥ ४० ॥
पत्राष्टकमिदं प्रोक्तं गरुडो दीप्तिरुच्यते।
इति चक्राब्जमध्यस्था मातृकावर्णमालिनी ॥ ४१ ॥

वर्णमय पद्म का वर्णन—प्रणव उसकी कर्णिका है। शक्ति केसर-पद्धति है। १६ स्वर वर्ग वाले वर्ण (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग), ऊष्मा श ष स ह के साथ अन्तःस्थ वर्ण (य र ल व) ये उसके आठ पत्ते हैं और गरुड़ (क्षकार) उसकी दीप्ति है। इस प्रकार चक्र और पद्म के मध्य में रहने वाले वर्णमालिका का निरूपण हमने किया ॥ ४०-४१ ॥

वर्णमातृकात्मकवैष्णवशक्तिस्वरूपवर्णनम्

मन्त्रयोनिर्महादेवी वैष्णवी षड्गुणात्मिका।
आदिवर्णप्रक्लृप्ताङ्गा वर्गाभरणभूषिता ॥ ४२ ॥
पद्मगर्भप्रतीकाशा शङ्खपङ्कजधारिणी।
प्रणवेनाथ शक्त्या च श्रिया संक्लृप्तदेहिका ॥ ४३ ॥

वर्णमातृकात्मकवैष्णवशक्ति का प्रतिपादन—जो मातृकायें सभी मन्त्रों की योनि (उत्पत्ति स्थान) तथा षड्गुणयुक्त वैष्णवी महादेवी के रूप में कही गई हैं, उन वर्णमातृका वैष्णवी शक्ति का अङ्ग अकारादि वर्णों से विरचित हैं। वह वर्ग (क वर्गादि) रूप आभरण से आभूषित तथा कमलगर्भ के समान स्वच्छ है तथा शङ्ख पङ्कज धारण करने वाली हैं, प्रणव शक्ति तथा श्री से उनके शरीर की रचना हुई है ॥ ४२-४३ ॥

स्वरसम्पूर्णवदना कचक्लृप्तकरद्वया।
टतक्लृप्तपदद्वन्द्वा पादिक्लृप्तोदरा शुभा ॥ ४४ ॥

सम्पूर्ण स्वर उनके मुख हैं । क वर्ग और च वर्ग उनके दोनों हाथ हैं । ट वर्ग और त वर्ग ये दोनों उनके दो पैर हैं और प वर्ग से उनका उदर निर्मित है ॥ ४४ ॥

यरप्राणोष्मका देवी लकारवरहारिणी ।
वकारकाञ्चीसुभगा शषकुण्डलधारिणी ॥ ४५ ॥

उन वर्णमातृका देवी के य र ये प्राणोष्मा हैं । वह लकार की सुन्दरमाला धारण किये हुये हैं और वकार काञ्ची है तथा श ष रूप कुण्डल को धारण किये हुये हैं ॥ ४५ ॥

सहृत्का हान्तरात्मा च क्षप्रभा वर्णमालिनी ।
पाशाङ्कुशकराग्रा च वाणी ध्येया विपश्चिता ॥ ४६ ॥

सकार उनका हृदय है, हकार उनकी अन्तरात्मा है और क्ष उनकी प्रभा है । इस प्रकार की वर्णमालिनी वाणी का ध्यान विद्वज्जनों को करना चाहिए, जिनके हाथ के अग्रभाग में पाश और अङ्कुश विराजमान हैं ॥ ४६ ॥

प्रथमं वैष्णवशक्त्याराधनम्

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पुरैवाराधयेद्गिरम् ।
लब्धानुज्ञस्ततो देव्या गुरुपङ्क्तिं समर्च्य च ॥ ४७ ॥
गणेशमभिपूज्याथ मन्त्रानिष्टान् समुद्धरेत् ।

सर्वप्रथम आगे कहे जाने वाले मन्त्र से वाणी का ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर देवी से आज्ञा लेकर गुरुपङ्क्ति (गुरु-गुरु के गुरु और दादा गुरु) की अर्चना करनी चाहिए । फिर गणेश की पूजा कर इष्ट मन्त्रों का उद्धार करना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

वैष्णवरूपैरेव वैष्णवमन्त्रोद्धरणम्

अप्रमेयादिभिर्भावैर्वैष्णवानुद्धरेत् सुधीः ॥ ४८ ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि वह अप्रमेयादि भावों से वैष्णव मन्त्र का उद्धार करे ॥४८॥

रौद्रमन्त्राणां रौद्ररूपैरुद्धरणम्; शक्तिमन्त्राणां शक्तिरूपैः

रौद्रान् रुद्रैस्ततः शाक्तान् भारत्यंशैः समुद्धरेत् ।

इसी प्रकार रुद्र शक्ति की आराधना कर रुद्रमन्त्रों की तथा सरस्वती के अंश से शाक्त मन्त्रों का उद्धार करे ॥ ४९ ॥

यद्यपि व्यापका मन्त्रा नित्यं सिद्धा महामुने ॥ ४९ ॥
स्युः शक्तिशालिनो मन्त्रा एवं सृष्टिविचिन्तनात् ।

उक्तक्रमोल्लङ्घने प्रत्यवायः

उज्झित्वोक्तक्रमं यो हि मन्दात्मा मन्त्रमुद्धरेत् ॥ ५० ॥
भवन्ति शापदा मन्त्रास्तस्य शास्त्रातिवर्तिनः ।

हे महामुने ! भले ही वे मन्त्र व्यापक तथा नित्य सिद्ध क्यों न हों । सृष्टि (वाणी)

का ध्यान कर तदनन्तर मन्त्रोद्धार करने से मन्त्र शक्तिशाली होते हैं। किन्तु जो मन्दात्मा ऊपर कहे गए क्रमों का उल्लङ्घन कर मन्त्रों का उद्धार करता है उस शास्त्र उच्छृङ्खल के उद्धृत मन्त्र विपत्ति प्रदान करते हैं ॥ ४९-५१ ॥

अनुल्लङ्घनेऽभ्युदयः

अनुज्झित्वा क्रमं सर्वं यः सुधीर्मन्त्रमुद्धरेत्।
तस्याध्ययनमात्रेण मन्त्रः सिद्धिं प्रयच्छति ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां वर्णसंज्ञा-निरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १०५५ ॥

* * *

जो बुद्धिमान् पुरुष क्रम का उल्लङ्घन किये बिना मन्त्रोद्धार करता है उसके अध्ययन मात्र से मन्त्र उसे सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के वर्ण संज्ञा निरूपण नामक सत्रहवें अध्यांय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

* * *

अथाष्टादशोऽध्यायः

मन्त्रोद्धारः

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़-पापसमूहों को नष्ट करता है । हम सुदर्शन के उस दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

शक्तिमन्त्रोद्धारः

अहिर्बुध्न्यः—

शक्तिं समुद्धरेत् पूर्वमग्नीषोमात्मना स्थिताम् ।
विष्णुस्थां परमात्मस्थां स्पृशन्तीं व्यापिनीं पुनः ॥ १ ॥

साधक सर्वप्रथम अग्नि (र) और सोमात्मक (स्) रूप से स्थित रहने वाली शक्ति का उद्धार करे । जो विष्णु में तथा परम आत्मा में स्थित है, पुनः जो सर्वथा स्पर्श करने वाली है तथा सर्वत्र व्याप्त रहने वाली है ॥ १ ॥

वाणीं हृदयमादाय योजयेदन्तरात्मना ।
हृदा पुनः समायोज्य योजयेदूष्मणो द्वयम् ॥ २ ॥
पञ्चबिन्दुं महाशक्तिं स्मरेदथ तदासनाम् ।
व्योमेशमाश्रयन्तीं तां स्मरेदथ धिया पुनः ॥ ३ ॥

साधक बोली जाने वाली अपनी वाणी को हृदय में सोच कर उसे अन्तरात्मा से युक्त करे, फिर उसे हृदय से युक्त कर दोनों ऊष्मा से संयुक्त करे । इसके बाद उसकी आसनभूता पञ्चबिन्दु (ईकार रूपा माया) का स्मरण करे । पुनः व्योमेश (ॐ कार) का आश्रय लेटी हुई (ॐ ई) उसका बुद्धि से स्मरण करे ॥ २-३ ॥

संक्षेपतस्तत्प्रभावः

इयं दिव्या महाशक्तिः सोमसूर्याग्निभूषणा ।
माया नाम तनुर्विष्णोस्त्रैलोक्यैश्वर्यदोज्ज्वला ॥ ४ ॥
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन शक्तिरेषा निदर्शिता ।

सौदर्शनानां मन्त्राणामियं योनिर्महामुने ॥ ५ ॥
विष्णुसङ्कल्परूपाणां ये चान्ये वैष्णवा भुवि ।
इयं सा परमा शक्तिरहन्तेयं हरेः परा ॥ ६ ॥
विचित्रानेकशब्दार्थतत्तत्सङ्कल्पकोरका ।

यही दिव्य महाशक्ति है जो सोम (स्), सूर्य (ह) तथा अग्नि (र) रूप भूषण धारण करने वाली है । माया इसका नाम है और यही विष्णु का शरीर है । त्रैलोक्य का ऐश्वर्य देने वाली तथा प्रकाश से सम्पन्न है, पूर्व में हम स्थूल एवं सूक्ष्म भेद से शक्ति के दो स्वरूप कह आये हैं (द्र० ३.२-३८) । सुदर्शन के सभी मन्त्रों की तथा विष्णु के सभी मन्त्रों की यही जननी है । इतना ही नहीं जो भूमि पर अन्य समस्त वैष्णव हैं, हे महामुने ! उनकी तो यह परमा शक्ति है । किं बहुना, यही विष्णु की अहन्ता है (विष्णु को इसी का अभिमान है) । विचित्र अनेक शब्दार्थों वाले तत्तत्सङ्कल्पों (वेद) की यह कोरका (जन्मदात्री) है ॥ ४-७ ॥

युग्मान्तैरादिभिः षड्भिराद्यन्तस्वरषट्कयोः ॥ ७ ॥
अङ्गक्लृप्तिः समुद्दिष्टा शक्त्या मेलितया स्वया ।

यही सुदर्शन की शक्तिभूता दशाक्षरी महाविद्या है जो स्थूलपरा तथा सूक्ष्मपरा आकार वाली है और विष्णुसङ्कल्परूपिणी है । यह तत्तद् विचित्र सङ्कल्पों के सद्भावों तथा असद्भावो की जन्मदात्री है । विष्णु की यह सर्वश्रेष्ठ सुदर्शनचक्र में रहने वाली स्थिति (शक्ति) सभी पदार्थों में अनुस्यूत है । आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जितने भी ऐश्वर्यों के भेद है उनमें रहने वाली है । सुदर्शन की सूक्ष्म रूपा शक्ति कार्यों के कारणादि का आदि और अन्त के ६, ६ स्वरों (आदि के ६ स्वर अ आ इ ई उ ऊ तथा अन्त के छः स्वर ए ऐ ओ औ अं अः) में शक्ति ने अपने को मिलाकर अपने शरीर की रचना की है—ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥ ७-८ ॥

मनसाभ्यस्य तां शक्तिं सन्तोषावधि वैष्णवीम् ॥ ८ ॥
समुद्धरेन्महामन्त्रं सौदर्शनमनन्यधीः ।

साधक सर्वप्रथम वैष्णवी शक्ति का (द्र० १७.४-२९) अप्रमेय से विष्णु शक्तिमय मन से तब तक अभ्यास करे जब तक सन्तोष न हो जावे । इसके बाद पूर्ण अभ्यास हो जाने पर एकाग्रचित्त हो सुदर्शन महामन्त्र का इस प्रकार उद्धार करे ॥ ८-९ ॥

सुदर्शनदशाक्षरमन्त्रोद्धारः

अमृतं शक्तिहृद्भूतमप्रमेयेन वर्णयेत् ॥ ९ ॥
दिव्यं तदन्तरात्मानं परमात्मानमञ्जसा ।
योजयेत् प्रथमेनैव तत्स्थां तृप्तिं तु केवलाम् ॥ १० ॥
केवलं तत्स्थितं सोमं तत्स्थितं च स्मरेत् सुधीः ।
अशेषभुवनाधारं तत्स्थमानन्दमेव च ॥ ११ ॥
कालपावकमादाय दुष्टपापेन्धनानलम् ।
योजयेद् व्यापकेनैव नानाविधविभाविना ॥ १२ ॥

सुदर्शनदशाक्षर मन्त्रोद्धार—शक्ति के हृदय से उत्पन्न अमृत (स द्र० १७.२७) को अप्रमेय (अ द्र० १७.४) से कल्पित करे। तदनन्तर दिव्य आत्मस्वरूप परमात्मा (हकार द्र० १७.२९) को अञ्जस प्रथम (अ द्र० १७.४) से युक्त करे। फिर उसमें रहने वाली केवल तृप्ति (स, द्र० १७.२७) तथा उसमें रहने वाले सोम (स द्र० १७.२७) का सुधी साधक स्मरण करे। फिर अशेषभुवनाधार ('र' द्र० १७.२५) तथा उसमें रहने वाले आनन्द (आ द्र० १७.४) का स्मरण करे। तदनन्तर दुष्ट पापरूप इन्धन को जलाने वाले कालपावक ('र' द्र० १७.२५) को लेकर अनेक प्रकार की विधि उत्पन्न करने वाले व्यापक (अ द्र० १७.४) से युक्त करे॥ ९-१२॥

विमर्श—चतुरक्षरी कूट—स ह अ सह त्र्यक्षर कूट स् र आ = स्रा

दशाक्षरी महाविद्या—स् अ ह् अ स् स् र् आ र् अ = सहस्रार॥ ९-१२॥

संक्षेपतस्तत्प्रभाववर्णनम्

दशाक्षरी महाविद्या शक्तिः सौदर्शनी त्वियम्।
स्थूलसूक्ष्मपराकारा विष्णुसङ्कल्परूपिणी॥ १३॥
तत्तद्विचित्रसङ्कल्पसदसद्भावभाविनी।
सर्वभावानुगा विष्णोः परा सौदर्शनी स्थितिः॥ १४॥
आकाशादिपृथिव्यन्तभूतिभेदानुयायिनी।
सूक्ष्मा सौदर्शनी शक्तिः कारणादिविभागिनी॥ १५॥

संक्षेप में दशाक्षरी मन्त्र का प्रभाव—यही सुदर्शन की शक्तिभूता दशाक्षरी महाविद्या है जो स्थूलपरा तथा सूक्ष्मपरा आकार वाली है। विष्णु संकल्परूपिणी है। तत्तद् विचित्र संकल्पों के सद्भावों तथा असद् भावों की जन्मदात्री है। विष्णु की यह सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन चक्र में रहने वाली स्थिति (शक्ति) सभी पदार्थों में अनुस्यूत है आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जितने भी ऐश्वर्यों के भेद हैं उनमें रहने वाली है। सुदर्शन की सूक्ष्मरूपा शक्ति कार्यों के कारणादि का विभाग करने वाली है॥ १३-१५॥

तत्तद्दुरितदैत्यौघतमोविध्वंसनात्मिका।
स्थूलचक्रस्वरूपाढ्या विष्णोः साङ्कल्पिकी स्थितिः॥ १६॥
स्वरव्यञ्जनकूटस्थैः पूर्णेयं चतुरक्षरी।
निदानं सर्वसिद्धीनामपदं लोभनाशयोः॥ १७॥
कूटे त्र्यर्णमये त्वस्याः परतः प्रायशः स्थितेः।
याभ्यां षडक्षरी सैषा विद्या भुवनकारिका॥ १८॥

इसके अतिरिक्त तद्‌तद् पाप रूपी दैत्य समूहों का तथा तमोगुणों की विध्वंसनात्मिका शक्ति स्थूलचक्र स्वरूपा है। दोनों ही विष्णु के सङ्कल्पात्मक स्थिति वाली है। ऊपर कहे गए दशाक्षरी महाविद्या के स्वर व्यञ्जन के कूटस्थ (मिला देने पर स ह) हो जाने पर सुदर्शन की चतुरक्षरी महाविद्या बन जाती है जो सभी सिद्धियों के प्रदान में कारण है। इसी दशाक्षरी महाविद्या के तीन वर्ण वाले कूट (समूह स्रा) की स्थिति में साधक को न

लोभ होता है न उसकी किसी वस्तु का विनाश ही होता है । उपर्युक्त त्र्यक्षरी कूट के दो बार उच्चारण से षडक्षरी महाविद्या बन जाती है जो (द्र० स्त्रा स्त्रा) सारे भुवनों की रचना करती है ॥ १६-१८ ॥

त्रेधा पञ्चमबीजकथनम्

परमात्मानमादाय योजयेदुदयेन तु ।
प्रधानं संस्पृशेद्भूयः परं बीजं तु पञ्चमम् ॥ १९ ॥

अब तीन प्रकार से होने वाले पञ्चम बीज को कहते हैं—परमात्मा (ह द्र० १७.२८) को लेकर उदय (उ द्र० १७६) से युक्त करे । फिर प्रधान (म० द्र० १७.२४) को स्पर्श करे (हुँ) । यह सर्वश्रेष्ठ पञ्चम बीज कहा गया है ॥ १९ ॥

सूर्यमुद्दामकालाढ्यं सूक्ष्मं तद्बीजमुच्यते ।
सप्राणं भुवनाधारं रक्षोदुरितमर्दनम् ॥ २० ॥
स्थूलं तु पञ्चमं बीजं सौदर्शनमनुत्तमम् ।

सूर्य (ह, द्र० १७.२८) को उद्दाम (उ, द्र० १७.४) काल से (र, द्र० १७.२५) युक्त करे तो वह सूक्ष्म पञ्चम बीज होता है (सूं) प्राण (ह, द्र० १७.२८) को भुवनाधार (र द्र० १७.२५) से युक्त करे तो वह राक्षसों तथा पापों का विनाश करने वाला स्थूल पञ्चम बीज ह्रँ कहा गया है । ये सभी सुदर्शन के उत्तम बीज कहे गए हैं ॥ २०-२१ ॥

यत्तत् साङ्कर्षणं घोरं लाङ्गलं परमायुधम् ॥ २१ ॥
योजयेदप्रमेयेण चन्द्रिकाकेवलेन च ।
परं तत् परमं षष्ठं दीप्तिशालि सुदर्शने ॥ २२ ॥

अब तीन प्रकार से होने वाले षष्ठ बीज को कहते हैं—जो सङ्कर्षण का सर्वश्रेष्ठ और महाघोर आयुधलाङ्गल (फ, द्र० १७.२२) है । उसे अप्रमेय (अ, द्र० १७.२४) से तथा केवल चन्द्रिका से (फँ फं) युक्त करे तो वह सर्वश्रेष्ठ दीप्तशाली सुदर्शन का षष्ठबीज बन जाता है ॥ २१-२२ ॥

सर्वशास्त्रार्थकूटस्थमिति तेजोऽप्रमेयकम् ।
षष्ठे परा स्थितिर्बीजे सेयं नारद दर्शिता ॥ २३ ॥

सभी शास्त्रों के अर्थ में कूटस्थ एवं अप्रमेय तेज स्वरूप (अकार द्र० १७.४) षष्ठ बीज (अं) में परा रूप से स्थित है । हे नारद ! इस प्रकार मैंने षष्ठ बीज कहा ॥ २३ ॥

तत् फुल्लनयनाकारं फुल्लैर्यन्नयनैर्वृतम् ।
प्रथितं प्रथमाक्रान्तं विश्वाप्ययकृदुज्ज्वलम् ॥ २४ ॥
सूक्ष्मं षष्ठं समुद्दिष्टं बीजं सौदर्शनं परम् ।
यस्मान्नयति सन्मार्गं छित्त्वाघं बाह्यमान्तरम् ॥ २५ ॥
प्रथते च मुहुर्वृद्ध्या विश्वमाप्याययत्यपि ।
इयं ते मध्यमावस्था सूक्ष्मा षष्ठी प्रदर्शिता ॥ २६ ॥

जो विकसित नेत्रों से आवृत्त तथा फुल्लनयनाकार (फ, द्र० १७.२२) स्वरूप है तथा प्रथम (अ, द्र० १७.४) से आक्रान्त होकर लोक में प्रसिद्ध है । फ विश्व का संवर्धन करने वाला तथा प्रकाश स्वरूप है वह सुदर्शन का सूक्ष्म षष्ठ बीज है । वह वाहरी तथा भीतरी समस्त पापों का प्रक्षालन कर सन्मार्ग में साधक को ले जाता है तथा धीरे-धीरे उसे वृद्धि से संयुक्त करता है और विश्व का आप्यायन करता है । इस प्रकार, हे नारद ! मैंने आपसे मध्यमावस्था (द्वितीयावस्था) में रहने वाले सूक्ष्म षष्ठ बीज का उपदेश किया ।। २४-२६ ।।

श्वेताख्या व्यापकाक्रान्ता आह्लादेन तु केवलम् ।
षष्ठी स्थूला समुद्दिष्टा त्रिधा नारद ते मुने ।। २७ ।।

हे नारद ! श्वेत (फ द्र० १७.२२) कहा जाने वाला व्यापक (अ, द्र० १७.४) से आक्रान्त केवल आह्लाद (ट्, द्र० १७.१७) अर्थात् 'फट्' यह सुदर्शन का षष्ठ स्थूल बीज कहा जाता है । इस प्रकार, हे मुने ! श्रीनारद षष्ठ बीज को तीन प्रकार से हमने आपसे कहा ।। २७ ।।

स्थाणुं छित्त्वा यथा दग्ध्वा पूर्वं केदारकारकः ।
फलप्रापणबीजानि प्रथयित्वा च वारिणा ।। २८ ।।
आप्याय्य शान्तसन्तापो व्याप्नुवन् विविधं फलम् ।
आह्लादं लभतेऽतीव सेयं षष्ठी परा मुने ।। २९ ।।
इति ते दर्शिता शश्वच्छक्तिः सा षोडशाक्षरी ।

जिस प्रकार धान की क्यारी बनाने वाला कृषक सर्वप्रथम खेत में रहने वाले निरर्थक वृक्षों को काट कर उसे जला देता है, फिर उसे जल से सिञ्चन कर फल प्राप्त कराने वाले उत्तम बीजों को बो देता है, फिर धीरे-धीरे उसे बढ़ाकर अनेक प्रकार के फलों की प्राप्ति कर अपना श्रम दूर कर देता है तथा प्रसन्नता प्राप्त करता है, उसी प्रकार, हे मुने ! यह षष्ठ बीज सर्वोत्कृष्ट है । इस प्रकार मैंने आपसे निरन्तर शक्ति से परिपूर्ण षोडशाक्षरी बीज का वर्णन किया ।। २८-३० ।।

सुदर्शनगायत्री

स्वशक्त्या तु समाक्रान्ता गायत्री सेयमीरिता ।। ३० ।।

अपनी शक्ति से समाक्रान्त इसी षोडशाक्षरी को सुदर्शन गायत्री कहा जाता है ।।३०।।

पुनः शक्तिमन्त्रवैभवः

एषा सौदर्शनी शक्तिर्भवबीजक्षयङ्करी ।
जप्तार्चिता हुता ध्याता तारयत्येव साधकम् ।। ३१ ।।

यह षोडश अक्षरों वाली सुदर्शन की शक्ति संसार के बीज को क्षय करने वाली है । इसका जप करने से, अर्चन करने से, होम करने से तथा ध्यान करने से साधक मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।। ३१ ।।

अस्याः प्रातिस्विकं बीजं चतुर्थं कूटमुत्तमम् ।
स्मृता प्रातिस्विकी शक्तिस्तृप्तिः सोमामृतात्मिका॥ ३२ ॥

इसका प्रातिस्विक् चतुर्थ कूट सर्वश्रेष्ठ है, (स ह) यह प्रातिस्विकी शक्तितृप्ति करने वाली (स, द्र० १७.२७) सोम का आप्यायन करने वाली (स, द्र० १७.२७) तथा अमृतात्मिका (स, द्र० १७.२७) अमृतस्वरूपा है ॥ ३२ ॥

शक्तिमन्त्रस्य प्रथमद्वितीयाक्षराभ्यां पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोराविर्भावः

अक्षरादादिमादस्याः सूक्तं पौरुषमुद्गतम् ।
द्वितीयाक्षरसम्भूतं श्रीसूक्तं नाम यन्मुने॥ ३३ ॥

हे मुने ! इस शक्ति के आदि अक्षर स से सहस्रशीर्षा इत्यादि पुरुषसूक्त तथा द्वितीयाक्षर ह से हिरण्यवर्णामित्यादि श्रीसूक्त का अविर्भाव हुआ है ॥ ३३ ॥

संक्षेपतो मन्त्रार्थवर्णनम्

सहयोर्यत् स्मृतं ज्ञानं तत् सहस्रारमुच्यते ।
सहो बलं समाख्यातं तत् स्रवत्यखिलेन यत्॥ ३४ ॥
तत् सहस्रं समाख्यातमनन्तं प्राणनं च तत् ।
अरं ज्ञानं समाख्यातं नित्यशुद्धं निरञ्जनम्॥ ३५ ॥

स तथा ह इन दो अक्षरों से जो ज्ञान होता है वही सहस्रार कहा जाता है । 'सह' का अर्थ बल है । वह बल समस्त सृष्टि से स्रवित होता है । इसलिए उसी को सहस्र कहते हैं । वही अनन्त तथा प्राणियों में प्राणन करता है । अर का अर्थ—अर् ज्ञान को कहते हैं वह नित्यशुद्ध तथा निरञ्जन है ॥ ३४-३५ ॥

ज्ञानक्रियात्मिका शक्तिरिति सौदर्शनी कला ।
सम्प्राप्योदयमुद्दामं भुवनस्य कृते स्वयम्॥ ३६ ॥
प्राणसूर्यात्मिका भूत्वा परमात्मस्वरूपिणी ।
निहत्य दुरितं शश्वद्विश्वमाप्याययन्त्यपि ॥ ३७ ॥
श्वेता प्रसन्नभूयिष्ठा स्वयमानन्दते मुहुः ।
संहतैर्विगृहीतैश्च वाक्यैर्वर्णैः पदैरपि ॥ ३८ ॥
लेशतोऽर्थगतिः प्रोक्ता विस्तृत्या नैव शक्यते ।

ज्ञानात्मिका शक्ति तथा क्रियात्मिका शक्ति यह दो सुदर्शन की कलायें हैं । यही कलायें भुवन के निर्माण के लिए स्वयं उद्दाम (उ) रूप से उदय (उ) को प्राप्त कर, प्राणसूर्यात्मिका (हकार) होकर परमात्मस्वरूपिणी बन जाती हैं तथा समस्त पापतापों को विनष्ट कर विश्व का आप्यायन करती हैं । श्वेता (फ) रूपा शक्ति अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वयं विश्व को आनन्दित करती है । इस प्रकार हमने समूह रूप से तथा अलग-अलग रूपों से वाक्य, वर्ण एवं पदों द्वारा सहस्रार शब्द का अर्थ नाम मात्र वर्णन किया । बहुत विस्तारपूर्वक इसका अर्थ करना सम्भव नहीं है ।

विमर्श—सहस्रार—स् अ ह् अ् स् र् आ र् अ इन वर्णों का अर्थ (द्र० १७ अध्याय)। सह का अर्थ (द्र० १८.३४) स्र का अर्थ स्रवित होना (द्र० १८.३४) अर का अर्थ (द्र० १८.३५)। यहाँ पद रूप से इसका अर्थ किया गया है। सहस्रार का अर्थ सहस्रों अरों वाला यह वाक्यार्थ है। इस प्रकार वर्ण, पद तथा वाक्य से निष्पन्न होने वाला अर्थ किया गया (द्र० १८.३६+३९) है ॥ ३६-३९ ॥

सुदर्शनसप्ताक्षरी

प्रणवेन समाक्रान्ता सेयं सप्ताक्षरी स्मृता ॥ ३९ ॥

प्रणव लगा देने पर यह षष्ठाक्षरी शक्ति ही सप्ताक्षरी बन जाती है ॥ ३९ ॥

सुदर्शनाष्टाक्षरी

स्वशक्त्या च समाक्रान्ता सेयमष्टाक्षरी स्मृता ।

सुदर्शननवाक्षरी

श्रिया समेता भूयोऽपि स्मृता सैषा नवाक्षरी ॥ ४० ॥

अपनी शक्ति (ह्रीं) को सुदर्शन सप्ताक्षरी में मिला देने से सुदर्शन अष्टाक्षरी विद्या बन जाती है ॥ ४० ॥

सुदर्शन नवाक्षरी ॐ स्रीं स्रां स्रा प्रिया अष्टाक्षरी मन्त्र में श्रीं लगा देने से सुदर्शन की नवाक्षरी (ॐ ह्रीं श्रीं स्रा स्रां) प्रिया बन जाती है ॥ ४० ॥

अथाङ्गसिद्ध्यर्थाङ्गमन्त्रः

अथास्या अङ्गसिद्ध्यर्थमेकमङ्गं निशामय ।
चन्द्रांशुमुद्धरेत् पूर्वमप्रमेयेण भूषयेत् ॥ ४१ ॥

हे नारद ! अब अङ्ग की शुद्धि के लिए इसके एक अङ्ग को श्रवण करिए। सर्वप्रथम चन्द्राशु (चकार, द्र० १७.१४) फिर अप्रमेय (अ, द्र० १७.१४) से उसे भूषित करे ॥ ४१ ॥

अशेषभुवनाधारं परप्रकृतिसंयुतम् ।
आनन्देन समाक्रान्तं द्वितीयं कूटमुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

अशेषभुवनाधार (र, द्र० १७.२५) को आनन्द (आ, द्र० १७.४) से आक्रान्त करे और उसे पर प्रकृति से संयुक्त मिला देवे (रा)। इस प्रकार द्वितीय कूट का उद्धार करे ॥ ४२ ॥

चतुर्गतिमथादाय ह्यप्रमेयेण भूषयेत् ।
ततोऽमृतमुपादायाप्यमृताधारभूषितम् ॥ ४३ ॥
आनन्दयोजितं पश्चात् परमात्मानमुद्धरेत् ।
आनन्दपूरितः सोऽयं मन्त्रः सर्वाङ्गमन्त्रराट् ॥ ४४ ॥

चतुर्गति (यकार द्र० १७.२४) को लेकर अप्रमेय (अ द्र० १७.४) य स्वा से भूषित करे (य) इसके बाद अमृत (सकार) उसे अमृताधार (व) से भूषित सा करे। फिर

उसमें आनन्द (आ द्र० १७.४) मिला देवे । स्वा फिर परमात्मा (सकार द्र० १७.२८) लगाकर उद्धार करे । पश्चात् आनन्द (आ० १७.४) से युक्त करे (सा) तो वह मन्त्र सभी अङ्गमन्त्रों का राजा बन जाता है ॥ ४३-४४ ॥

अतिचञ्चलदीप्ताग्निः फुल्लत्कमलसंनिभः ।
सूर्यानलसहस्राभ आदिदेवसमद्युतिः ॥ ४५ ॥
नित्यतृप्तश्च मन्त्रात्मा सूक्ष्मावस्थ उदाहृतः ।
करालाकारवर्णाभा स्फुरच्चक्रायुतान्विता ॥ ४६ ॥
निहत्य दुरितं सर्वं प्राणेन स्वेन तेजसा ।
सोमसूर्यात्मिका भूत्वा गोपायति जगत्त्रयम् ॥ ४७ ॥

अत्यन्त चञ्चल प्रदीप्त अग्नि तथा फूले हुये कमल एवं सहस्रों सूर्य की आभा के समान, आदिदेव महादेव के समान तेजस्वी तथा नित्य तृप्त रहने वाले इस मन्त्रात्मा की सूक्ष्मावस्था का यही स्वरूप कहा गया है । यह कराल आकार के वर्ण की आभा से तथा चलते हुये चक्र से युक्त मन्त्र अपने तेज से तथा अपने प्राण से समस्त पापों का क्षय कर सूर्यात्मक रूप से तीनों जगत् की रक्षा करता है ॥ ४५-४७ ॥

इति स्थूला गतिर्दिव्या चक्रमन्त्रस्य दर्शिता ।
इदं नानाविधैर्बीजैर्हृदयाद्यङ्गसन्ततौ ।
योजयेच्चक्रमन्त्रं तु यथा तन्मे निशामय ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मन्त्रोद्धारो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ११०३ ॥

* * *

हे नारद ! इस प्रकार हमने चक्र की स्थूल गति तथा दिव्य गति आपसे कही । हृदयादि अङ्गो में अनेक प्रकार के बीजों से इस चक्र मन्त्र का, जिस प्रकार न्यास करना चाहिए, उसे मै कह रहा हूँ आप सुनिए ॥ ४८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मन्त्रोद्धार नामक अट्ठारहवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

* * *

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अङ्गोपाङ्गमन्त्रोद्धारः

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म-जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पाप समूहों को नष्ट कर देता है । हम उन सुदर्शन देवता के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

हृदयमन्त्रः

अहिर्बुध्न्यः—

यत्तज्ज्ञानमयं दिव्यं गुणानां प्रकृतिः परा ।
पञ्चानां तु बलादीनां नित्यशुद्धं निरञ्जनम् ॥ १ ॥
तन्नाम हृदयं मन्त्रं स षाड्गुण्यमयो यतः ।
तस्य वाचकमाकारमुद्धरेन्मनसा सुधीः ॥ २ ॥
ज्ञानत्वादप्रमेयश्च प्रथमो व्यापकः स्मृतः ।
आनन्द आदिदेवश्च गोपनश्चेति षड्विधाः ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जो दिव्य हृदय मन्त्र नित्यशुद्ध निरञ्जन है, ज्ञानमय है तथा पाँचों बल आदि गुणों की परा प्रकृति की परा प्रकृति है उसका नाम ही हृदय मन्त्र है, क्योंकि वह षाड्गुण्यमय है । उसके वाचक आकार का सुधी साधक मन से उद्धार करे । वह ज्ञान स्वरूप होने से अप्रमेय, प्रथम, व्यापक, आनन्द, आदिदेव तथा गोपन इस प्रकार ६ भेदों वाला है ॥ १-३ ॥

क्रमात् संहत्य तज्ज्ञानं साङ्कर्षणमनुत्तमम् ।
तत्तद्विशेषसंयोगाद्विशेष्यस्तन्मयः सदा ॥ ४ ॥
इत्याभावसमायोगाज्ज्ञानात्मा मन्त्रराट् स्वयम् ।
हृदयाय नमः पश्चाद्व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

इस प्रकार सङ्कर्षण सम्बन्धी उस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को क्रमशः एकत्रित कर तत्तद्विशेष्य के संयोग से विशेषित कर तन्मय हो जावे । इस प्रकार आभाव के समायोग से वही

आकार स्वयं ज्ञानात्मा तथा मन्त्रराज है । उसी की अभिव्यक्ति के लिए 'आ हृदयाय नमः' ऐसा उच्चारण कर हृदय में न्यास करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

शिरोमन्त्रः

रमणीया समिद्धा च येच्छा देवस्य शाश्वती ।
सर्वत्राप्रतिघा दिव्या ह्यमृताधारभेदिता ॥ ६ ॥

उस देव की शाश्वती इच्छा रमणीय है । सर्वतोभावेन जाज्वल्यमाना सर्वत्र अप्रतिहता, दिव्या तथा अमृताधार (व द्र० १७.२६) का भी भेदन करने वाली है ॥ ६ ॥

वीति बीजेन निर्दिष्टा तच्चैश्वर्यं महद्धरेः ।
ऐश्वर्यं च शिरःस्थाने यत्तत् सर्वोपरि स्थितम् ॥ ७ ॥
अविघातात्मकं यत्तदिच्छाया रूपमुत्तमम् ।
समिद्धं रमणीयं तदमृतस्याश्रयः परः ॥ ८ ॥
वीति तद्द्योतकं बीजं तेन संयोजयेच्छिरः ।

वही इच्छा 'वी' इस बीज से कही जाती है जो परमात्मा का महान् ऐश्वर्य है । ऐश्वर्य सर्वोपरि होने से शिरः स्थानीय है । अविघातात्मक है । इच्छा का उत्तम स्वरूप समिद्ध, रमणीय एवं अमृत का सर्वश्रेष्ठ आश्रय है । अतः उसके 'वी' द्योतक बीज को शिर से संयुक्त करना चाहिए ॥ ७-९ ॥

तेन संयोजितश्चक्रमन्त्र ऐश्वर्यबृंहितः ॥ ९ ॥
इच्छामिन्धान एवास्य मन्त्रिणः सम्प्रकाशते ।
ततस्तच्छिरसे स्वाहा व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

'वी' इस बीज से संयुक्त किया गया चक्रमन्त्र ऐश्वर्य को बढ़ाता है और मन्त्रज्ञ की इच्छा को बढ़ाते हुये सम्प्रकाशित करता है । इसलिए उसकी अभिव्यक्ति के लिए 'वी' शिरसे स्वाहा कह कर शिर में न्यास करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

शिखामन्त्रः

अमृता सोमरूपा च या सा तृप्तिमयी परा ।
जगत्प्रकृतिरीशाना विष्णुशक्तिः परावरा ॥ ११ ॥
तस्या यो भुवनाकार उद्दाम उदयोऽमलः ।
सु इत्येवं समाख्याता शक्तिस्तेनोदिता सती ॥ १२ ॥
विशेषयति रूपेण चक्रमन्त्रं सनातनम् ।
तया स भेदितः शक्त्या शक्त्यात्मा सम्प्रकाशते ॥ १३ ॥
या सा कुण्डलिनी शक्तिर्हृदयस्था समीरिता ।
योगिभिर्या शिखा तस्या दिव्या दीपाकृतिः परा ॥ १४ ॥
प्रसरत्यूर्ध्वभागे तु शिखास्थाने विराजते ।
अतः शक्तेः शिखास्थाने न्यासस्तस्यास्ततः स्मृतः ॥ १५ ॥

शिखायै वषडित्येवं व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ।

जो अमृता, सोमरूपा तृप्तिमयी, जगत्प्रकृति, सबकी अधीश्वरी, विष्णुशक्ति एवं परावरा है अर्थात् 'स्' स्वरूपा द्र० १७.२७, उसका जो उद्दाम उदय तथा अमल (स्वच्छ रहने वाला) का आकार है, उकार (वह द्र० १७.६) । इस प्रकार जो शक्ति 'सु' नाम से विख्यात है, उसका उच्चारण सनातन चक्रमन्त्र को रूप से विशिष्ट बनाता है, उसी शक्ति से भेदन किये जाने के कारण चक्रशक्ति की आत्मा, जिसे योगी जन हृदय में रहने वाली कुण्डलिनी शक्ति भी कहते हैं, वह प्रकाशित होती है । उस कुण्डलिनी की परा दीप की आकृति वाली शिखा शरीर के ऊर्ध्वभाग में रहने वाले शिखास्थान में ऊपर की ओर वर्धमान होकर फैलती है । अत: 'सु' इस शक्ति से शिखा स्थान में न्यास करना कहा गया है । उसी की अभिव्यक्ति के लिए 'सु शिखायै वषड्' ऐसा प्रयोग करना चाहिए ॥ ११-१५ ॥

कवचमन्त्रः

ऊर्जो नाम समुद्दिष्टो बलं विष्णोः स्वमूर्जितम् ॥ १६ ॥
प्रज्ञाधारणसामर्थ्यं नित्यतृप्तिमयं परम् ।
सर्वकार्यैः समुद्युक्तः श्रमाभावे हि तृप्यति ॥ १७ ॥
अशेषभुवनाधारस्तद्बलं परिगीयते ।
बले बलं धारणेद्धा बिभर्ति सकलं जगत् ॥ १८ ॥
चतुर्गतिमयं यत्तत् प्राणानां परिगीयते ।
व्यानापानादिका सा च प्रोक्ता गतिचतुष्टयी ॥ १९ ॥
चतुर्गतिमयः प्राणो बलं तत् परिगीयते ।
अजितो भगवान् येन जयत्यखिलमच्युतः ॥ २० ॥

विष्णु का सर्वसमृद्ध अपना बल 'ऊर्ज' नाम से कहा जाता है । उसी में प्रज्ञा धारण करने की सामर्थ्य है वही नित्यतृप्त तथा सर्वोत्कृष्ट है । उसी बल का उपयोग समस्त कार्यों में उपयुक्त होने से किया जाता है । उस बल को कभी थकान नहीं होता अत: थकान न होने के कारण वह सर्वदा तृप्त रहता है । वही बल अशेषभुवनाधार (र द्र० १७.२५) के रूप में कहा जाता है और बल में बल धारण करने से बढ़ा हुआ वही बल समस्त संसार को धारण करता है । वही व्यान अपानरूप से कहा जाता है । जिसकी चार प्रकार की गति कही जाती है, य बीज रूप द्र० १७.२४ । अत: प्राण को चारगतियों वाला बताया गया है । इसी प्राणरूप बल से भगवान् अच्युत किसी से जीते नहीं जाते । वे अजित हैं ॥ १६-२० ॥

एतैर्गुणैः समायुक्तं बलं तद्वैष्णवं महत् ।
अप्रमेयमनाद्यं तत् सूर्यशब्देन गीयते ॥ २१ ॥

इन गुणों (द्र० १९.१७) से युक्त रहने के कारण वह महान् वैष्णव बल अप्रमेय है, अनादि है और उसे सूर्य शब्द से कहा जाता है ॥ २१ ॥

बलेन भेदितो मन्त्रो बलात्मा व्यवतिष्ठते ।
बलं चाखिलगात्रेषु मूर्छितं विपुलं महत् ॥ २२ ॥

अंसयोस्तदभिव्यक्तिरतस्तत्रैव विन्यसेत् ।
कवचाय हुमित्येव व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

बल से भेदन किया गया मन्त्र भी बलात्मा रूप से स्थित रहता है । यह महान्, विपुल बल सारे शरीर में फैला हुआ है । किन्तु उसकी अभिव्यक्ति दोनों कन्धों में होती है । इसलिए उसकी अभिव्यक्ति के लिए दोनों कन्धों में ही 'सूर्य कवचाय हुँ' मन्त्र से न्यास करना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

अस्त्रमन्त्रः

महत्ता न्यूनताभावः स च स्यादविकारिता ।
अव्याहतस्वसङ्कल्पः सुशब्दार्थो निरूपितः ॥ २४ ॥

न्यूनता का जहाँ अभाव है उसे ही महान् कहा जाता है वह सर्वदा विकार रहित रहता है । पहले हम कह आये हैं कि अव्याहत सङ्कल्प यही 'सु' शब्द का अर्थ है ॥२४॥

चेतनाचेतनं विश्वं स्वसङ्कल्पेन भावयन् ।
यः स्यादविकृतः सोऽस्य भावो माहासुदर्शनः ॥ २५ ॥
तद्वीर्यं तच्च शास्त्रोक्तं यद् दुष्टदमनात्मकम् ।
शान्तिदं सर्वपापानां शङ्करं जगतामपि ॥ २६ ॥
विकारविरहो दैत्यमर्दिनः परमात्मनः ।
महासुदर्शनेत्येवं तद्वीर्यं बहुधोच्यते ॥ २७ ॥
वीर्येण भेदितो मन्त्रो वीर्यात्मा व्यवतिष्ठते ।
तस्य हस्ततलं स्थानं ततस्तत् तत्र विन्यसेत् ॥ २८ ॥
ततोऽस्त्राय फडित्येवं व्यक्त्यर्थं सम्प्रयोजयेत् ।

जो चेतना-चेतनात्मक इस जगत् को अपने सङ्कल्प से उत्पन्न करता है और इतना करने पर भी विकाररहित रहता है । उसी की क्रिया महासुदर्शन रूप से अभिव्यक्त होती है । उस सुदर्शन का वीर्य दुष्टदमनात्मक है—ऐसा शास्त्रों में कहा गया है । वह शान्ति प्रदान करता है तथा सभी पापों से रक्षा कर सारे जगत् का कल्याण करता है । दैत्य के मर्दन करने वाले उस परमात्मा में किसी भी प्रकार के विकार की सम्भावना नहीं है । बहुधा उसी के वीर्य को महासुदर्शन नाम से अभिहित किया जाता है । यतः बल से भेदन किया गया मन्त्र भी वीर्यात्मा रूप से स्थित होता है अतः उस सुदर्शन का स्थान हाथ में है, इसलिए दोनों हाथों में ही उससे न्यास करना चाहिए । उसकी अभिव्यक्ति के लिए 'महासुदर्शन अस्त्राय फट्' ऐसा कह कर दोनों हाथों में मन्त्रन्यास का प्रयोग करना चाहिए ॥ २५-२९ ॥

नेत्रमन्त्रः

अन्तर्बोधस्वरूपो यः प्राकृतध्वान्तनाशनः ॥ २९ ॥
सूर्यवत् तपतस्तस्य या ज्वालाप्यूर्ध्वगामिनी ।
पुरुषाणामशेषाणामैश्वर्यान्निरपेक्षता ॥ ३० ॥
अमृताधाररूपत्वमनिशं जन्मघातकम् ।

नैरपेक्ष्येण यत् तस्य तत् तेजः समुदाहृतम् ॥ ३१ ॥
ज्वालाशब्देन तत् तेजो वैष्णवं बहुधेर्यते ।
तेजसा भेदितो मन्त्रस्तेजोरूपोऽवतिष्ठते ॥ ३२ ॥
तेजसो नयनं स्थानमतस्तत् तत्र विन्यसेत् ।
वौषण्नेत्रत्रयायेति व्यत्यासाद् व्यक्तये पठेत् ॥ ३३ ॥

जो अन्तःकरण के ज्ञान का स्वरूप हैं तथा प्रकृतिजन्य अन्धकार का विनाशक, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य के समान जिसकी ज्वाला ऊपर की ओर उठ रही है, जो सम्पूर्ण पुरुषों के ऐश्वर्य से सर्वथा निरपेक्ष है, जिसका स्वरूप अमृताधार (त्र द० १७.२६) है जो निरन्तर जन्म का विघात करने वाला है, जो सर्वथा किसी की अपेक्षा नहीं रखता, उसी वैष्णव तेज को बहुधा लोग ज्वाला शब्द से अभिहित करते हैं । तेज से भेदन किया गया मन्त्र भी तेज रूप में स्थित हो जाता है । उस तेज का मुख्य स्थान नेत्र है । अतः तेज का न्यास नेत्र में ही करना चाहिए । उसी की अभिव्यक्ति के लिए 'तेजः नेत्रत्रयाय वौषट्' ऐसा पढ़ना चाहिए ॥ २९-३३ ॥

इति षाड्गुण्यरूपेयं दर्शिता तेऽङ्गसन्ततिः ।
उपाङ्गसन्ततिश्चैव न्यसनीया विपश्चिता ॥ ३४ ॥

हे नारद ! इस प्रकार हमने (पूर्वोक्त १९.१-३३) वीर्य, ऐश्वर्य, शक्तिबल, सुदर्शन, तेज) भगवान् के षड्गुण स्वरूपों से अङ्गन्यास का प्रकार कहा । इसके बाद बुद्धिमान् साधकों को उपाङ्ग द्वारा भी न्यास करना चाहिए । 'ॐ मनसा सह ज्ञानाय नमः शं कुक्षौ न्यस्यामि' आदि ॥ ३४ ॥

उपाङ्गमन्त्रः

कुक्षिपृष्ठांसयुग्मोरुजानुपादयुगेषु च ।
शाद्यर्णान् व्यापिसंयुक्तान् ज्ञानाद्यैर्नमसा सह ॥ ३५ ॥
विन्यसेत् षड्गुणात्मैव मन्त्रिदेहः प्रजायते ।

कुक्षि, पृष्ठ, दोनों कन्धा, दोनों ऊरु, दोनों जानु तथा दोनों पैरों में व्यापी (ॐ) से संयुक्त ज्ञानादि के साथ मन से शादिवर्णों (श ष स ह क्ष त्र) का न्यास करे । ये वर्ण उपर्युक्त षड्गुणों की आत्मा ही है, इनके द्वारा न्यास करने से साधक का शरीर मन्त्रमय हो जाता है ॥ ३५-३६ ॥

अप्रमेयो गदध्वंसी पन्थाः स्वर्गापवर्गयोः ॥ ३६ ॥
इच्छामयो हि यो भावो विष्णुसङ्कल्पजृम्भितः ।
अशेषदुरितप्लोषात् सोऽग्निरित्युच्यते बुधैः ॥ ३७ ॥
अग्निना भेदितो मन्त्रस्त्वग्न्यात्मा व्यवतिष्ठते ।
प्राकारं कल्पयेत् तेन परितः पावकाकृतिम् ॥ ३८ ॥
अग्निप्राकारमध्यस्थो दुर्निरीक्षोऽभिजायते ।
संस्मरंश्चक्रगायत्रीं परितश्चक्रमुद्रया ॥ ३९ ॥

ऊर्ध्वाधस्तिर्यगाकारं मुद्रयेदात्मनो बहिः ।
अग्निप्राकारतः पूर्वं चक्रमुद्राथवा भवेत् ॥ ४० ॥

अप्रमेय (अ), गदध्वंसी (ग्), स्वर्ग तथा अपवर्ग का पन्था (न), इच्छामय (इ), इसका जो भाव (अर्थात् अग्नि) यह विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न हुआ है । समस्त पापों को नष्ट करने के कारण बुद्धिमान् लोग उस भाव को अग्नि शब्द से अभिधान करते हैं । अग्नि से भेदित मन्त्र भी अग्न्यात्मा रूप से स्थित रहता है । उसी अग्नि से निर्मित अग्निमय प्राकार की कल्पना भी अपने शरीर में करनी चाहिए । क्योंकि चारों ओर चंक्रमण से अग्नि प्राकार के मध्य में रहने वाले संयुक्त चक्र गायत्री का स्मरण करता हुआ साधक सर्वथा दुर्निरीक्ष्य हो जाता है । वह अपने से बाहर, ऊपर, नीचे और तिरछे के सभी स्थानों को बन्द कर अपना आकार सुरक्षित रखता है अथवा अग्नि प्राकार में स्थित रहने से पूर्व साधक चक्रमुद्रा धारण कर लेवे । इससे भी सुरक्षा सम्भव है ॥ ३६-४० ॥

चक्रगायत्री

हृदयं चाथ चक्राय विद्महेपदमादिमम् ।
मन्त्रनाथस्य नेत्रादिपदं सूक्ष्मोऽथ धीमहि ॥ ४१ ॥
गायत्र्या आद्यनवमे ततश्चैवानिवारितः ।
ततः समस्तरूपं तु गायत्र्या दशमं पदम् ॥ ४२ ॥
उदिता चक्रगायत्री सप्तविंशतिकीर्तिता ।

'हृदयं चाथ चक्राय' इसके बाद 'विद्महे' यह चक्र गायत्री का आदि पद है, इसके बाद 'मन्त्रनाथस्य नेत्रादिपदं सूक्ष्मोऽथ धीमहि' यह पद है । गायत्री के आदि पद के अनन्तर नवम अक्षर का आरम्भ त से आरम्भ कर 'ततश्चैवानिवारितः' यह पद कहे । फिर दशम पद पढ़कर समस्त गायत्री पढ़े । इस प्रकार २७ अक्षरों की गायत्री हमने कहा । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—हृदयं चाथ चक्राय विद्महे मन्त्रनाथस्य नेत्रादिपदं सूक्ष्मोऽथ धीमहि ॥ ४१-४३ ॥

चक्राद्यस्त्रमन्त्राः

अथ सौदर्शनास्त्राणां मन्त्रानेतान् निबोध मे ॥ ४३ ॥
ओं नमो भगवन् विष्णो सर्वेषामादिमं समम् ।
चक्रमूर्तिधरेत्येवं गदामूर्तिधरेति च ॥ ४४ ॥
शार्ङ्गमूर्तिधरेत्येवं खड्गमूर्तिधरेति च ।
चक्राद्यस्त्रचतुष्कं तु ततः सेनापतेपदम् ॥ ४५ ॥
सर्वत्र सममुच्चार्य वदेत् प्रातिस्विकं ततः ।
मन्त्रनाथो भवेच्चक्रे षड्वर्णोऽथ गदादिषु ॥ ४६ ॥
कौमोदकि महाशार्ङ्ग महाखड्गेत्युदीरयेत् ।
वर्मास्त्रे च ततो युञ्ज्यादेष मौनविधिक्रमः ॥ ४७ ॥

चक्राद्यस्त्रमन्त्र—हे नारद ! अब सुदर्शन के अस्त्रों एवं मन्त्रों को मुझसे सुनिए ।

आगे कही जाने वाली आसनमन्त्र की चार गायत्री में सभी के आदिपद में 'ॐ नमो भगवन् विष्णो' इतना उच्चारण करना चाहिए । इसके बाद 'चक्रमूर्तिधर, गदामूर्तिधर, शार्ङ्गमूर्तिधर एवं खड्‌गमूर्तिधर उच्चारण करना चाहिए । इन चार चक्रादि अस्त्र के बाद तुल्य रूप से 'सेनापते' पद कहकर 'प्रतिस्विक' कहे । इस प्रकार छ: वर्णों से गदा आदि अस्त्रों में एवं चक्र में रहने वाली मन्त्रनाथ गायत्री होती है । फिर कौमोदकि, महाशार्ङ्ग, महाखड्‌ग का उच्चारण करे । फिर कवच का अस्त्रों में संयोजन करे । यही चार गायत्री हैं, जिनका उच्चारण मौन होकर करे ।

विमर्श—१. चक्रमूर्तिधरगायत्री 'ॐ नमो भगवन् विष्णो चक्रमूर्तिधर सेनापते प्रातिस्विकम् (कवचाय हुं) । **२. गदामूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो कौमोदकि सेनापते प्रातिस्विकम् (कवचाय हुम्) । **३. शार्ङ्गमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो महाशार्ङ्गी सेनापते (कवचाय हुं) । **४. महाखड्‌गगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो महाखड्‌ग सेनापते प्रातिस्विकम् (कवचाय हुं) ॥ ४४-४७ ॥

इमाश्चतस्रो गायत्र्यश्चक्रादीनामुदीरिताः ।
शङ्खादीनां चतुर्णां तु मन्त्रानेतान्निबोध मे ॥ ४८ ॥

हे नारद ! इस प्रकार हमने चारों अस्त्र की गायत्री का वर्णन किया । अब शङ्खादि चारों की मन्त्रगायत्री मुझसे सुनिए ॥ ४८ ॥

ओं नमो भगवन् विष्णो सर्वेषामादितः समम् ।
शङ्खमूर्तिधरेत्येवं हलमूर्तिधरेति च ॥ ४९ ॥
मुसलमूर्तिधरेत्येवं शूलमूर्तिधरेति च ।
सेनापतेपदं पश्चात् सर्वेषां तुल्यमुच्चरेत् ॥ ५० ॥
महाथ पाञ्चजन्याय स्वाहेत्येकाधिको मनुः ।
महाहलाय स्वाहेति मन्त्रोऽप्येकाधिकः स्मृतः ॥ ५१ ॥
महा च मुसलायाथ स्वाहेत्यभ्यधिको मनुः ।
महाशूलाय स्वाहेति स चाप्यभ्यधिको मनुः ॥ ५२ ॥

शङ्खादि चारों की मन्त्रगायत्री—आगे कही जाने वाली समस्त गायत्री के पूर्व सभी के आदि में 'ॐ नमो भगवन् विष्णो' यह उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर शङ्खमूर्ति गायत्री में शङ्खमूर्तिधर, हलमूर्तिगायत्री में हलमूर्तिधर, मुशलगायत्री में मुसलमूर्तिधर और शूलमूर्तिगायत्री में शूलमूर्तिधर ऐसा उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर सर्वत्र समान रूप से 'सेनापते पाञ्चजन्याय स्वाहा' आदि पद का उच्चारण करना चाहिए ।

विमर्श—१. शङ्खमूर्तिगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो शङ्खमूर्तिधर सेनापते महापाञ्चजन्याय स्वाहा । **२. हलमूर्तिगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो हलमूर्तिधर सेनापते महाहलाय स्वाहा । **३. मुसलमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो मुसलमूर्तिधर सेनापते महामुसलाय स्वाहा । **४. शूलमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो शूलमूर्तिधर सेनापते महाशूलाय स्वाहा ॥ ४९-५२ ॥

इमाश्चतस्रो गायत्र्यः शङ्खादीनां प्रदर्शिताः ।
दण्डादीनामथाष्टानामिमान् मन्त्रान् निबोध मे ॥ ५३ ॥

हे नारद ! इस प्रकार मैंने शङ्खादि की चार गायत्री का वर्णन किया । अब दण्डादि आठ अस्त्रों की आगे कही जाने वाली आठ गायत्रियों को मुझसे सुनिए ॥ ५३ ॥

दण्डाद्यस्त्रमन्त्राः

ओं नमो भगवन् विष्णो सर्वेषामादितः समम् ।
दण्डमूर्तिधरेत्येवं कुन्तमूर्तिधरेति च ॥ ५४ ॥
शक्तिमूर्तिधरेत्येवं पाशमूर्तिधरेति च ।
अङ्कुशमूर्तिधराय कुलिशमूर्तिधरेति च ॥ ५५ ॥
परशुमूर्तिधरायाथ ततः शतमुखेति च ।
अनलमूर्तिधरेत्येवं प्रातिस्विकपदक्रमः ॥ ५६ ॥
सेनापतेपदं पश्चात् सर्वेषां सममुच्चरेत् ।
महादण्डायाथ नमो मन्त्र एवाधिकः स्मृतः ॥ ५७ ॥
महाकुन्तायाथ नमो मन्त्रोऽप्येकोऽधिकः स्मृतः ।
महाशक्तये च नमो मन्त्रोऽप्येकोऽधिकः स्मृतः ॥ ५८ ॥
महापाशायाथ नमो मन्त्रोऽप्येकोऽधिकः स्मृतः ।
महाङ्कुशाय नम इत्येषोऽप्यधिक उच्यते ॥ ५९ ॥
महा च कुलिशायाथ नम इत्यपि तादृशः ।
महापरशवे चाथ नम इत्यपि तादृशः ॥ ६० ॥
महाशतमुखेत्येवमनलाय ततो नमः ।
अयं मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशद्वर्णो वह्न्ययुतप्रभः ॥ ६१ ॥
इत्यस्त्राणामिमे मन्त्रा रूपतस्ते निदर्शिताः ।

दण्डादि आठ गायत्री के प्रथमतः सर्वत्र 'ॐ नमो भगवन् विष्णो' ऐसा उच्चारण करना चाहिए । फिर क्रमशः दण्डमूर्तिधर, कुन्तमूर्तिधर, शक्तिमूर्तिधर, पाशमूर्तिधर, अङ्कुशमूर्तिधर, कुलिशमूर्तिधर, परशुमूर्तिधर एवं शतमुख-अनलमूर्तिधर प्रातिस्विक क्रम से इतना उच्चारण करना चाहिए । फिर 'सेनापते महादण्डाय नमः, महाकुन्ताय नमः, महाशक्तये नमः, महापाशाय नमः, महाङ्कुशाय नमः, महा कुलिशाय नमः, महापरशवे नमः और महाशतमुखानलाय नमः पद का उच्चारण करना चाहिए । यह आठवाँ मन्त्र ३३ वर्णों का है जो १० हजार अग्नियों के समान तेजस्वी है । हे नारद ! इस प्रकार हमने अस्त्रों के इन मन्त्रों का आपको निदर्शन कराया ॥ ५४-६२ ॥

विमर्श—१. दण्डमूर्तिधरगायत्री—ॐ नमो भगवन् विष्णो दण्डमूर्तिधर सेनापते महादण्डाय नमः । **२. कुन्तमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो कुन्तमूर्तिधर सेनापते महाकुन्ताय नमः । **३. शक्तिमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो शक्तिमूर्तिधर सेनापते महाशक्तये नमः । **४. पाशमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो पाशमूर्तिधर

सेनापते महापाशाय नमः । ५. **अङ्कुशमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो अङ्कुशमूर्तिधर सेनापते महाङ्कुशाय नमः । ६. **कुलिशमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो कुलिशमूर्त्तिधर सेनापते महाकुलिशाय नमः । ७. **परशुमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो परशुमूर्तिधर सेनापते महापरशवे नमः । ८. **महाशतमुखअनलमूर्तिधरगायत्री**—ॐ नमो भगवन् विष्णो शतमुखअनलमूर्तिधर सेनापते महाशतमुखानलाय नमः ।

अत्रानुक्तस्य संहितान्तरात् ग्रहणम्

आधाराद्यासनाकारो द्वारपर्यन्तपूजनम् ॥ ६२ ॥
मुद्रा च विविधाकारा यस्य यस्य च यादृशी ।
अभिषेकविधिश्चैव दीक्षानियम एव च ॥ ६३ ॥
भूतशुद्धिविधिश्चैव ध्यानानि विविधानि च ।
सर्वं जयाश्रुतं कार्यं तत्तद्वैशेषिकं विना ॥ ६४ ॥

जो यहाँ नहीं कहे गए उन्हें अन्य संहिताओं से जानना चाहिए । इन मन्त्रों का आधार आदि, आसन, आकार द्वारपर्यन्तपूजन जिस-जिस मन्त्र की जैसी-तैसी अनेक प्रकार की मुद्राये, अभिषेक विधि, दीक्षा नियम, भूतशुद्धि तथा अनेक प्रकार के ध्यान जयाख्य संहिता ग्रन्थ में वर्णित रीति से करना चाहिए । उसमें अपनी तरफ से कोई विधि न करे ॥६२-६४॥

अमुद्राणामिहास्त्राणां दण्डादीनां महामुने ।
कार्या समन्विता दिव्या शक्तिमुद्रास्त्रमुद्रया ॥ ६५ ॥
इति ते लेशतः प्रोक्तः सौदर्शनविधिक्रमः ।
ग्रहणादिप्रकारोऽयं वक्ष्यते शृणु तं मुने ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायाम् अङ्गोपाङ्ग-
मन्त्रोद्धारो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ११६९ ॥

* * *

हे महामुने ! मैं तो कहता हूँ कि यहाँ पर दण्डादि इन महान् अस्त्रों की गायत्री बिना अन्य मुद्रा किये केवल शक्तिमुद्रा से ही सारा दिव्य कार्य सम्पन्न करे । हमने,, हे नारद ! सुदर्शन की विधि का क्रम यहाँ लेशमात्र वर्णन किया । अब इसके ग्रहणादि का प्रकार आगे के अध्याय में कहूँगा, उसे सुनिए ॥ ६५-६६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अङ्गोपाङ्ग-
मन्त्रोद्धार नामक उन्नीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १९ ॥

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

मन्त्रग्रहणादिदीक्षाविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जो एक बार ध्यान करने मात्र से संसार के करोड़ों पापसमूहों को नष्ट कर देता है। हम उन सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं।

आचार्यलक्षणम्

अहिर्बुध्न्यः—

वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो विद्यास्थानविचक्षणः ।
ऊहापोहविधानज्ञो दैवपित्र्यक्रियापरः ॥ १ ॥
अवक्ता चापवादानामकर्ता पापकर्मणाम् ।
अमत्सरी परोत्कर्षे परदुःखे घृणापरः ॥ २ ॥
दयावान् सर्वभूतेषु हृष्टः परसुखोदये ।
पुण्येषु मुदितायुक्त उपेक्षावान् कुबुद्धिषु ॥ ३ ॥
तपःसन्तोषशौचाढ्यो योगस्वाध्यायतत्परः ।
पाञ्चरात्रविधानज्ञस्तन्त्रान्तरविचक्षणः ॥ ४ ॥
तन्त्राणामन्तरज्ञश्च मन्त्राणां कृत्यतत्त्ववित् ।
पदवाक्यप्रमाणज्ञो हेतुवादविचक्षणः ॥ ५ ॥
सामान्यस्यापवादस्य वेत्ता यन्त्रविचक्षणः ।
कुण्डमण्डलभेदज्ञः क्रियाकारविचक्षणः ॥ ६ ॥
अध्यात्मज्ञानकुशलः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ।
सदन्ववायसम्भूत आचार्यो नाम वैष्णवः ॥ ७ ॥

मन्त्रग्रहण, दीक्षाविधि और आचार्य के लक्षण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—वेदवेदान्त का तत्त्वज्ञ, विद्या स्थान में विचक्षण, ऊहापोह (तर्क) शास्त्र में विशारद, सर्वदा देवकार्य तथा पितृकार्य करने वाला, किसी की निन्दा न करने वाला, पाप ताप न करने वाला,

दूसरे के अभ्युदय से न जलने वाला, दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाला, समस्त प्राणियों पर दया करने वाला, दूसरे के अभ्युदय से प्रसन्न, पुण्यात्माओं को देख कर मुदितायुक्त, मूर्खों की उपेक्षा करने वाला, तप, सन्तोष तथा शौचाचार का धनी, योग एवं स्वाध्याय में तत्पर, पाञ्चरात्र के विधान को जानने वाला तथा अन्यान्य तन्त्रों में विचक्षण, तन्त्रों में परस्पर होने वाले अन्तर का जानकार, मन्त्रों की ठीक-ठीक क्रिया जानने वाला, पद, वाक्य तथा प्रमाण (व्याकरण, मीमांसा, न्याय) को जानने वाला, तर्कशास्त्र में गति रखने वाला, सामान्य तथा अपवाद शास्त्रों को जानने वाला, यन्त्र निर्माण में निपुण, कुण्ड तथा मण्डल के भेदों को जानने वाला, क्रिया (शिल्प) शास्त्रों में निपुण, अध्यात्मवेत्ता, शान्त, दान्त, विद्वान्, जितेन्द्रिय और उत्तम वंश में जन्म लेने वाला विशेष कर वैष्णव ये आचार्य के लक्षण हैं ॥ १-७ ॥

शिष्यलक्षणम्

आचार्यमाश्रयेच्छिष्यः श्रेयोऽर्थी सुसमाहितः ।
विनयव्रतशाली च द्विजातिः संस्कृतः शुचिः ॥ ८ ॥
ब्रह्मचर्यपरो धीमान् स्वदारनिरतोऽथवा ।
अच्छलेन यथावत् स्वकृताकृतनिवेदकः ॥ ९ ॥
संसाराङ्गारमध्यस्थः पच्यमानः स्वकर्मभिः ।
भवन्तं शरणं प्राप्त उपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ १० ॥
इत्येवं प्रतिपद्येत शिष्य आचार्यसत्तमम् ।

शिष्य के लक्षण—अपना कल्याण चाहने वाला शिष्य एकाग्र हो उत्तम प्रकार के आचार्य का आश्रय ले । विनयी, द्विजाति, संस्कारवान्, पवित्र, ब्रह्मचारी, बुद्धिमान् अथवा मात्र अपनी स्त्री से रति करने वाला, बिना कपट के अपने कृत्य तथा अकृत्य को गुरु से निवेदन करने वाला ऐसा शिष्य संसार रूपी अङ्गार के मध्य में रहकर तथा अपने कर्म वश ताप प्राप्त होने पर श्रेष्ठ आचार्य के पास जावें और निवेदन करे कि 'महाराज मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे उपदेश कीजिये' ॥ ८-११ ॥

दीक्षाक्रमः

इत्येवं सम्प्रपन्नाय शिष्यायाच्छलवादिने ॥ ११ ॥
प्रत्यक्षाभिः परोक्षाभिरुपाधिभिरनेकधाः ।
शोधितायैकरूपाय रहस्याम्नायगोपिने ॥ १२ ॥
अशठायानसूयाय लोभमोहाद्यसेविने ।
संवत्सरं परीक्ष्यैवं परितः परितो धिया ॥ १३ ॥
निष्कम्पाय वदेद्विद्यां यावती यादृशी च सा ।

दीक्षा विधान—इस प्रकार शरण में प्राप्त हुये निष्कपट रूप से अपना दुःख निवेदन करने वाले शिष्य को अपनी शरण में आया देख कर आचार्य परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से अनेक प्रकार से उसकी धर्म परीक्षा एक संवत्सर पर्यन्त करे । जब उसे शुद्ध, अपने में

अनन्य भक्ति रखने वाला, गुप्ततत्त्वों का सङ्गोपन करने वाला, कोई दुराव न रखने वाला, किसी की निन्दा न करने वाला, लोभ एवं मोह से विवर्जित आदि गुणों से युक्त देखे और सब प्रकार से बुद्धि में पारङ्गत देखे तब ऐसे दृढ़ भक्त शिष्य को जैसी और जितनी भी विद्या हो उसका उपदेश करे ॥ ११-१४ ॥

अङ्गन्यासकरन्यासौ

मातृकामादितो देवीं विन्यसेद्वपुषि स्वके ॥ १४ ॥
अङ्गन्यासकरन्यासौ मन्त्रवर्णैः समाचरेत् ।
मृजेत् प्रकोष्ठमेकैकं त्रिर्मन्त्रेण त्रिरूपिणा ॥ १५ ॥
एवं पाणितलद्वन्द्वमङ्गुलीष्वथ विन्यसेत् ।
उभाभ्यां मध्यमाग्राभ्यामुभयस्मिंस्तलद्वये ॥ १६ ॥
तारकं तारिकां लक्ष्मीं प्रणवाद्यन्तगां न्यसेत् ।
प्रणवाद्यन्तगं सोमं मध्यमेऽङ्गुष्ठपर्वणि ॥ १७ ॥
सबिन्दुं विन्यसेत् प्राणमेवं तर्जनि पर्वणि ।
न्यसेद्वर्णांस्तृतीयादीनङ्गुल्यन्तरपर्वसु ॥ १८ ॥
लाङ्गलं परमास्त्रं तु न्यसेदूर्ध्वांगुलीष्वथ ।

अङ्गन्यास एवं करन्यास—सर्वप्रथम अपने शरीर में मातृकाओं द्वारा देवी का न्यास करे । जिस मन्त्र की दीक्षा देनी हो उस मन्त्र के वर्ण से अङ्गन्यास तथा करन्यास करे । तीन रूप वाले मन्त्र से तीन-तीन वार अपने प्रकोष्ठ को शुद्ध करे । इसी प्रकार दोनों हाथ के तलवे तथा अङ्गुलियों का भी न्यास करे । दोनों हाथ की मध्यमा अङ्गुलियों से दोनों हाथ के तलवे में, आदि तथा अन्त में प्रणव लगा कर तारक (ॐकार) तारिका और लक्ष्मी (श्री) से न्यास करे । तदनन्तर प्रणव को आदि में तथा अन्त में लगा कर सोम (सकार द्र० १७.२७) से अङ्गुष्ठ के मध्य में रहने वाले पर्व का न्यास करे । इसी प्रकार बिन्दु सहित प्राण (हकार द्र० १७.२८) वाले मन्त्र से तर्जनी के पर्व का तथा तृतीयादि वर्णों (स्रा र) का अन्य अङ्गुलियों के पर्वों में न्यास करे । लाङ्गल परमास्त्र (फट् द्र० १७.२२) से अङ्गुलियों के ऊपरी भाग में न्यास करे ॥ १४-१९ ॥

ऋष्यादीनां स्थानभेदः

ऋषिं शिरसि विन्यस्येच्छन्दो वदनगोचरम् ॥ १९ ॥
नारायणमनाद्यन्तं देवतां हृदये स्मरेत् ।

ऋष्यादि के न्यास का स्थान—इसके बाद मन्त्र के ऋषि से शिर का न्यास, मन्त्र के छन्द से मुख का न्यास तथा मन्त्र के देवता स्वरूप अनाद्यन्त नारायण के नाम से हृदय का न्यास करे ॥ १९-२० ॥

परसूक्ष्मस्थूलमन्त्राणामृषयः

पराकारस्य मन्त्रस्य परमात्मा ऋषिः स्मृतः ॥ २० ॥
सङ्कर्षणस्तु सूक्ष्मस्य स्थूलस्याहमृषिः स्मृतः ।

पर, सूक्ष्म एवं स्थूल मन्त्र के ऋषि—पराकार (निर्गुण ब्रह्म) मन्त्र के परमात्मा ऋषि हैं, सूक्ष्म मन्त्र के सङ्कर्षण ऋषि हैं तथा स्थूल मन्त्र का मैं अहिर्बुध्न्य ऋषि हूँ ॥ २०-२१॥

सुदर्शनमन्त्रस्याथर्वणवेदसारतमत्वम्

अथर्वाङ्गिरसो नाम पञ्च शाखा महामुने ॥ २१ ॥
तासु त्वन्तर्हितो दिव्यः कृतान्तो मन्त्रराट् स्वयम् ।

सुदर्शन मन्त्र का आथर्वणवेद साररूपत्व—हे महामुने ! अथर्वाङ्गिरस की पाँच शाखायें हैं उसमें यह दिव्य कृतान्त मन्त्रराज (सुदर्शन) सार रूप से निहित है ॥२१-२२॥

सङ्कर्षणाज्ञया अहिर्बुध्न्येन तदुद्धरणम्

मया त्रेतायुगादौ तु तप्त्वा वर्षायुतं तपः ॥ २२ ॥
दिव्यात् सङ्कर्षणादेशात् परमेण समाधिना ।
सर्व आथर्वणो वेदो मथितस्तु शनैः शनैः ॥ २३ ॥
मथ्यमानात् ततस्तस्माद् दध्नो घृतमिवोद्धृतः ।
मन्त्रोऽयं सपरीवारः साङ्गोपाङ्गः सनातनः ॥ २४ ॥
स्थूलस्य मन्त्रनाथस्य ततो मामृषिमूचिरे ।
दैवी ब्राह्मी तथार्षी च गायत्री छन्द उच्यते ॥ २५ ॥
परः सूक्ष्मस्तथा स्थूलः परमात्मा च देवता ।

भगवान् सङ्कर्षण की आज्ञा से अहिर्बुध्न्य द्वारा मन्त्रोद्धार—मैंने त्रेतायुग के आदि में दस हजार वर्ष तक घोर तपस्या की । इस प्रकार समाधि में लीन होकर मैंने दिव्य देवता सङ्कर्षण देव के आदेश से धीरे-धीरे अथर्ववेद का मन्थन किया । इस प्रकार मन्थन करते-करते जिस प्रकार दही से घृत प्राप्त होता है, उसी प्रकार यह सनातन मन्त्र भी परिवार के साथ साङ्गोपाङ्ग प्राप्त हुआ । तभी से लोगों ने मुझे इस स्थूल मन्त्रराज का गुरु कहना प्रारम्भ कर दिया । दैवी, ब्राह्मी तथा आर्षी गायत्री इस मन्त्र का छन्द है और पर, सूक्ष्म तथा स्थूल परमात्मा इस मन्त्र के देवता हैं ॥ २२-२६ ॥

देहे संहारन्यासक्रमः

विन्यसेदथ गात्रेषु मन्त्रनाथं सनातनम् ॥ २६ ॥
परसूक्ष्मादिभावेन सोमार्कानलदीधितिम् ।
प्रणवादित्रयं मूर्ध्नि ललाटे सोममेव च ॥ २७ ॥
आस्ये सूर्यं गले स्त्रां च हृदि रं नाभिगं तु हुं ।
मूलाधारे तु फट्कारं तारादित्रितयं हृदि ॥ २८ ॥
नाभौ समूलगं हं च पादयोः स्त्रां च रं हृदि ।
हुं वक्त्रे फट् शिरोदेशे ततः सर्वात्मना क्रिया ॥ २९ ॥

इस सनातन मन्त्रराज से गुरु अपने शरीर का न्यास करे । पर, सूक्ष्म तथा स्थूल इसके भेद हैं । सोम, सूर्य तथा अग्नि ये उसकी दीप्तियाँ हैं । प्रणव लगाकर आदि के

तीन अक्षर (?) से शिर में, सोम (सकार द्र० १७.२७) से ललाट में, सूर्य (हकार द्र० १७.२८) से मुख में, 'स्त्रा' से हृदय में, 'रं' से नाभि में, 'हु' से मूलाधार में और पुनः 'हुं फट्' से मूलाधार में न्यास करे। पुनः तारादि त्रितय (तार 'ॐ', तारिक 'ह्रीं' एवं लक्ष्मी 'श्रीं') से हृदय में, 'स' से नाभि में, 'हं' से तथा 'स्त्रां' से पैर में, 'रं' से हृदय में, 'हुं' से मुख में तथा 'फट्' से शिरो देश में न्यास करे। इसके बाद सम्पूर्ण मन्त्र से सारे अङ्गों में न्यास करे ॥ २६-२९ ॥

अङ्गोपाङ्गन्यासः

हृदयादीन्यथाङ्गानि स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत्।
उपाङ्गेषु तथा न्यासं मान्त्रैर्वर्णैः समाचरेत् ॥ ३० ॥

हृदयादि अङ्गों का अपने स्थान पर ही न्यास करे, पुनः मन्त्र के तत्तद् वर्णों से उपाङ्ग का न्यास करे ॥ ३० ॥

देहस्य त्रेधा विभावनम्

स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन देहं विद्यात् ततस्त्रिधा।
अङ्गप्रत्यङ्गकोशाढ्यं प्रत्यक्षं स्थूलमुच्यते ॥ ३१ ॥
पुर्यष्टकं तु सूक्ष्माख्यं परमाणव उच्यते।
वह्न्यर्ककोटिसङ्काशज्वालाकोलाहलाकुले ॥ ३२ ॥
त्रिविधे मन्त्रनाथेऽस्मिंस्त्रिविधं भावयेद्वपुः।
तेजो दिव्यं महच्छुभ्रं मनःस्थं हृत्स्थमव्ययम् ॥ ३३ ॥
नारायणमयं ध्यायेदात्मानं ज्योतिषां पतिम्।

न्यास कर लेने के अनन्तर देह के स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भेद से तीन प्रकार की भावना करे। जिसमें अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा कोश हों एवं जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, वह बना हुआ स्थूल देह है, आठ पुरियां वाला सूक्ष्म देह है और परमाणु वाला पर देह है। तदनन्तर करोड़ों सूर्य के समान ज्वालाओं के कोलाहल से आकुलित त्रिविध मन्त्रराज में तीनों प्रकार के देह की भावना करे। तदन्तर अपनी आत्मा का ध्यान दिव्य तेज समन्वित महान् उज्ज्वल मन तथा हृदय में रहने वाले सभी ज्योतियों के पति नारायणमय स्वरूप में ध्यान करे ॥ ३१-३४ ॥

ततस्तच्चक्रमध्याक्षसोमसूर्यानलात्मनि ॥ ३४ ॥
मज्जयित्वा स्वमात्मानं निर्वासनमथोद्धरेत्।

तदनन्तर चक्र के मध्य में रहने वाले अक्ष में, जो सोम, सूर्य तथा अग्न्यात्मक आत्मा वाला है, उसमें अपनी आत्मा को स्नान करावें। फिर विना वस्त्र के उसे वहाँ वाहर करे और पूर्व शरीर को त्याग देवे ॥ ३४-३५ ॥

सृष्टिन्यासः

ततः परादिभावस्थान् मन्त्रनाथान् सनातनान् ॥ ३५ ॥
तेनैव क्रमयोगेन तनूस्ता विसृजेत् पुनः।

तासु प्रवेश्य चात्मानं पुनर्न्यासं समाचरेत् ॥ ३६ ॥
हस्तदेहादिगो न्यासो यावत् पूर्वमुदाहृतः ।

सृष्टिन्यास—इसके बाद पर, सूक्ष्म तथा स्थूल भाव में रहने वाले सनातन मन्त्रराज में उसी क्रम से अपनी आत्मा को प्रवेश कराकर जैसा कि पूर्व में कहा गया है उसी प्रकार हाथ तथा शरीर में पुनः न्यास करे (द्र० २०. २६-३०) ॥ ३५-३७ ॥

शिष्यावेक्षणम्

अथ मन्त्रतनुर्दिव्यो मन्त्रात्मा मन्त्रसारथिः ॥ ३७ ॥
विष्णुसङ्कल्पजं रूपं वहन् सौदर्शनं वपुः ।
नेत्रैः शिष्यमवेक्षेत वह्न्यर्केन्दुमयैः क्रमात् ॥ ३८ ॥

शिष्य का गुरु द्वारा अवेक्षण—इस प्रकार अपने को मन्त्रात्मक शरीर, मन्त्रात्मा तथा मन्त्र सारथि के रूप में विष्णु के सङ्कल्प से उत्पन्न सुदर्शन रूप को धारण कर वह आचार्य, अग्नि, सूर्य तथा सोमात्मक नेत्रों से क्रमशः शिष्य को देखे ॥ ३७-३८ ॥

शिष्यस्य संहारन्यासः

अथ स्थूलादिभावेन दहेन्मन्त्रेण तद्धिया ।
पूर्वोक्तक्रमयोगेन शिष्यात्मानं परात्मनि ॥ ३९ ॥
निमज्जयित्वेत्याद्यं तु क्रमं सर्वं समाचरेत् ।

फिर स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भाव से अपने में सुदर्शन बुद्धि करते हुये । पूर्वोक्त क्रम से शिष्य की आत्मा को उसका पूर्व पापमय शरीर जलाकर परमात्मा में स्नान कर पूर्वोक्त सभी क्रम करे ॥ ३९-४० ॥

सृष्टिन्यासः

मनसा शुष्कदग्धोत्थे शिष्यदेहे तथा तथा ॥ ४० ॥
विन्यसेत् क्रमयोगेन मन्त्रन्यासं धिया ततः ।

इस प्रकार मन से शिष्य के देह को उस-उस क्रम से जलाकर नवीन शरीर वाला बनावे और उसके शरीर में पूर्वोक्त क्रम योग से बुद्धि द्वारा मन्त्र-न्यास करे ॥ ४०-४१ ॥

मन्त्रोपदेशः

अथ तस्योपदेष्टव्यः सहाङ्गो मन्त्रनायकः ॥ ४१ ॥
सार्थः सप्रतिपत्तिश्च यो यो भावः पुरोदितः ।
एवं गृहीतमात्रे तु मन्त्रनाथे सनातने ॥ ४२ ॥
उत्पद्यते स्वयं चित्ते प्रत्ययो देवनिर्मितः ।

मन्त्रोपदेश—ऐसा कर लेने के अनन्तर शिष्य को अङ्ग सहित अर्थ, ज्ञान तथा माहात्म्य सहित भाव जैसा कि पूर्व में कहा गया है इस प्रकार मन्त्रराज का उपदेश करे । इस प्रकार शिष्य के उपर्युक्त विधि से सनातन इस मन्त्रराज को ग्रहण कर लेने पर उसके चित्त में स्वयं एक दैवी चमत्कार उत्पन्न हो जाता है ॥ ४१-४३ ॥

शिष्यकृत्यम्

सम्यगित्थं गृहीतेन मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ४३ ॥
कृतार्थं मन्यमानः स्वं गुरवेऽथ निवेदयेत् ।
आत्मानमथ चात्मीयं यत् किंचिदुत विद्यते ॥ ४४ ॥
विना पापमनिष्टं च सर्वं तस्मै निवेदयेत् ।
एवं निवेद्य मन्वीत कृतार्थोऽहमिति स्वयम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार मन्त्रशास्त्र का विद्वान् शिष्य जब अपने गुरु से मन्त्र ग्रहण कर लेवे तब अपने को कृतार्थ मान कर गुरु को अपनी आत्मा तथा जो कुछ भी आत्मीय (आत्मसम्बधित) पदार्थ है सब निवेदन कर दे । किन्तु अपना पाप और अनिष्ट निवेदन न करे । तदनन्तर अपना सर्वस्व गुरु को दे कर मैं अब कृतार्थ हो गया ऐसी भावना करे ॥ ४३-४५ ॥

एवं धियो ह्यच्छलेन मन्त्रः स्वेन प्रकाशते ।
भावस्य तारतम्येन तत्तद्दीक्षादिसाधनम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार की बुद्धि से बिना छल के मन्त्र लेने वाले शिष्य के हृदय में मन्त्र स्वयं प्रकाश उत्पन्न करता है । भाव की तारतम्यता से (अर्थात् भावों के नीचा ऊँचा होने के कारण) दीक्षादि साधन भी उसी-उसी प्रकार फल प्रदान करते हैं ॥ ४६ ॥

दीक्षया दीक्षयित्वाथ पात्रयित्वाथवा धिया ।
संस्कारेणाथर्वणेन यद्वा संस्कृत्य मन्त्रतः ॥ ४७ ॥
मन्त्रोऽयमुपदेष्टव्यो गुरुणा गुरुसेविनः ।

उपर्युक्त क्रम की दीक्षा से दीक्षित कर तन्त्र बुद्धि से उसे मन्त्र का पात्र बनाकर अथर्ववेद में कहे गए मन्त्र से संस्कार द्वारा संस्कृत कर तब गुरु उस गुरुसेवी शिष्य को मन्त्र का उपदेश करे ॥ ४७-४८ ॥

क्षुद्रार्थं मन्त्रो न प्रयोज्यः

इत्थं ग्रहणसिद्धेन साधनेनाथ वाग्यतः ॥ ४८ ॥
मन्त्रेणानेन सिद्धेन कुर्याल्लोकहितं सुधीः ।
न जातु यस्य कस्यापि क्षुद्रस्यात्मन एव वा ॥ ४९ ॥
लौकिकेऽर्थे विधिः कार्यः क्षुद्रकृत्यं हि तत् स्मृतम् ।

इस प्रकार मन्त्र ग्रहण से सिद्ध साधन द्वारा (वाग्यत:) वाणी पर संयम रखने वाला बुद्धिमान् शिष्य इस सिद्ध मन्त्र से लोक कल्याण करे । कभी भी जिस किसी क्षुद्र मनुष्य के लिए अथवा अपने हित के लिए अथवा लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इस मन्त्र का प्रयोग न करे क्योंकि यह सब क्षुद्र कार्य हैं ॥ ४८-५० ॥

मन्त्रप्रयोगविषयाः

त्रैलोक्यस्याथ रक्षायै भुवश्चक्रस्य वा कृते ॥ ५० ॥

राष्ट्रस्य वाथ राज्ञो वा राजमात्रस्य वा कृते ।
भावायैव विधिः कार्यो नैवाभावाय कर्हिचित् ॥ ५१ ॥

त्रैलोक्य की रक्षा के लिए, भूचक्र के कल्याण के लिए, राष्ट्र, राजा अथवा अनेक राज समूहों के कल्याण के लिए इसका प्रयोग करे । किन्तु किसी के अभाव (विनाश) के लिए इसका अनुष्ठान कदापि न करे ॥ ५०-५१ ॥

पुरश्चरणार्थप्रदेशविधिः

पर्वताग्रे नदीतीरे विष्णोरायतनेऽपि वा ।
ऋषीणामाश्रमे वापि सिद्धानामालयेऽपि वा ॥ ५२ ॥
गवामायतने वापि वह्न्यायतन एव वा ।

पर्वत के ऊपर, नदी के तट पर अथवा विष्णुमन्दिर में अथवा ऋषियों के आश्रम में अथवा किसी सिद्ध स्थान में अथवा गोष्ठ में अथवा अग्निहोत्र वाले घर में इससे अनुष्ठान करे ॥ ५२-५३ ॥

कृच्छ्रादिभिः शरीरशोधनम्

त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशोध्य स्वं गायत्रीनियुतेन वा ॥ ५३ ॥
त्रिभिर्वा ब्रह्मकूर्चोत्थैः स्नानैः सात्त्वतचोदितैः ।

पुरश्चरणाङ्गनियमाः

अहरेकं हरेर्बिम्बमापादमवलोकयेत् ॥ ५४ ॥

चन्द्रायण आदि तीन कृच्छ्र व्रतों से अथवा दस लाख गायत्री जप से अथवा तीन ब्रह्मकूर्च से उत्पन्न स्नान से जैसा कि सात्वत शास्त्र में कहा गया है शुद्ध होकर एक दिन पर्यन्त विष्णु की प्रतिमा का पादान्त दर्शन करे ॥ ५३-५४ ॥

ततो भैक्षहविष्याशी यावकेनोत वर्तयेत् ।
पयोव्रतो हविष्याशी यथा वा शक्नुयान्नरः ॥ ५५ ॥
जपेल्लक्षाणि षण्मन्त्री जुहुयाच्चायुतानि षट् ।
तावच्च तर्पयेत् तोयैर्ब्राह्मणानथ तर्पयेत् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर भिक्षा अथवा हविष्याशी अथवा यावक गोमूत्र में पकाए गए जव से अथवा दूध पीकर अथवा हविष्यान्न खा कर अथवा जैसी शक्ति हो उसके अनुसार शरीर का निर्वाह करते हुये, मन्त्रज्ञ पुरुष इस मन्त्र का छः लाख जप करे और साठ हजार मन्त्र से हवन करे । तदनन्तर उतने ही मन्त्र से देवता का तर्पण कर ब्राह्मण भोजन करावें ॥ ५५-५६ ॥

मन्त्रसिद्धिः, तेन लोकसंरक्षा

अच्छलेनेतिवृत्तस्य मन्त्रनाथः प्रसीदति ।
प्रसन्नेनाथ मन्त्रेण रक्षा लोकानुकम्पया ॥ ५७ ॥
राजार्थितेन वै कार्या नार्थकार्पण्यतः क्वचित् ।

इति ते दर्शितः सम्यङ् मन्त्रनाथस्य विस्तरः ।

मन्त्रसिद्धि और उससे लोकरक्षा—इस प्रकार बिना छल की वृत्ति से निर्वाह करने वाले भक्त पर मन्त्रराज स्वयं कृपा करते हैं और मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर लोक के कल्याण की कामना से रक्षा करे । इस मन्त्रराज का अनुष्ठान राजा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर करे । अर्थ कार्पण्य (सङ्कट) से कदापि न करे । इस प्रकार, हे नारद ! मैंने आपको मन्त्रराज का विस्तार प्रदर्शित किया ॥ ५७-५८ ॥

मन्त्रानधिकारिणः

नादान्तैः श्रावणीयोऽयं नैव यादृशतादृशैः ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मन्त्रग्रहणादि-दीक्षाविधानं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ आदितः श्लोका १२२७ ॥

* * *

मन्त्र के अनधिकारी—इसे अदान्त (अजितेन्द्रिय) को कभी न देना चाहिए अथवा जैसे-तैसे कहीं भी किसी को नहीं देना चाहिए ॥ ५८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मन्त्र-ग्रहणादि दीक्षाविधान नामक बीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २० ॥

* * *

अथैकविंशोऽध्यायः

ज्योतिर्मयरक्षानिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पाप समूहों को नष्ट कर देता है । हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

रक्षाप्रकारप्रश्नः

नारदः—

नमो निखिलगीर्वाणगणश्रेयोविधायिने ।
नमस्ते त्रिपुराराते भूयो गौरीगुरो नमः ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—समस्त देवसमूहों के कल्याण करने वाले अहिर्बुध्न्य ! आपको नमस्कार है । त्रिपुरासुर का वध करने वाले आपको नमस्कार है । गौरी के पूज्य आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

अत्यद्भुतमिदं दिव्यं वेदान्तेष्वपि दुर्लभम् ।
श्रुतं भगवतो वाक्यं कृतार्थोऽहमनेन वै ॥ २ ॥

यह बात जो आपने कही यह अत्यन्त अद्भुत तथा दिव्य है । यह ज्ञानवेदान्त ग्रन्थों में भी दुर्लभ है । आपकी इन बातों का हमने श्रवण किया इससे हम कृतार्थ हो गए ॥ २ ॥

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि त्वद्वाक्यामृतमुत्तमम् ।
का रक्षा कीदृशी चैव कार्या मन्त्रेण मन्त्रिणा ॥ ३ ॥

हे देव ! अब मैं आपके वाक्यरूपी उत्तम अमृत को पुनः सुनना चाहता हूँ । वह रक्षा क्या है? कैसी है? मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र से किस प्रकार अपनी रक्षा करनी चाहिए ।

रक्षाया द्वैविध्यम्

अहिर्बुध्न्यः—

रक्षा तु द्विविधा मान्त्री मन्त्रनित्येन धीमता ।
कार्या ज्योतिर्मयी पूर्वं पश्चात् तत्र च वाङ्मयी ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—मन्त्र से की जाने वाली रक्षा दो प्रकार की होती है । मन्त्र का नित्य अनुष्ठान करने वाले बुद्धिमान् साधक को सर्वप्रथम ज्योतिर्मयी रक्षा करनी चाहिए इसके बाद वाङ्मयी रक्षा करनी चाहिए ॥ ४ ॥

अक्षकल्पनम्

यत् तद् दिव्यं महज्ज्योतिरक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
सूर्यस्य यः परः सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रस्य यः परः ॥ ५ ॥
अग्नेरग्निः परो दीप्तेस्तेजस्तत्तेजसामपि ।
नित्यतृप्तं सदानन्दमुदयास्तमयोज्झितम् ॥ ६ ॥
तदक्षं कल्पयेद् दिव्यमथ नाभिं स्मरेद् बुधः ।

जो वह महान् दिव्य ज्योति अक्षर एवं शाश्वत ब्रह्म कही जाती है, जो सूर्य से भी परे सूर्य है, चन्द्रमा से परे चन्द्रमा है, जाज्वल्यमान अग्नि से परे अग्नि है, किं वहुना जो समस्त तेजों का तेज है । वह ज्योति नित्य तृप्त है और सदा आनन्द स्वरूप है । जिसका उदय एवं अस्त कभी होता ही नहीं । उसी में अक्ष की कल्पना करनी चाहिए । इसके बाद उसकी नाभि की कल्पना करनी चाहिए ॥ ५-७ ॥

नाभिकल्पनम्

तद्धर्मधर्मिणीं शक्तिं ब्रह्मणोऽनपगामिनीम् ॥ ७ ॥
अनाकारामनौपम्यां लक्षयन्तीं सदा जगत् ।

पूर्वोक्त ब्रह्म (द्र० २१.५) में रहने वाले धर्म के समान धर्मवाली उसकी शक्ति में नाभि की कल्पना करनी चाहिए । जो कभी ब्रह्म से अलग नहीं होती । उसका कोई आकार नहीं है । उसकी बराबरी का भी कोई नहीं है और सारा जगत् उसी से प्रकाशित होता है ।

शक्तेः श्रीशब्दवाच्यत्वं तन्निर्वचनं च

श्रयन्तीं श्रीयमाणां च शृणन्तीं शृण्वतीमपि ॥ ८ ॥
महानन्दां महाभासां निर्विकारां निरेषणाम् ।

जो शक्ति सबकी आश्रयभूता है । जिससे सब अपना आश्रय चाहते हैं, जो सबके कर्मों का परिपाक करती हैं । किं बहुना सभी बातों को जो सुन लेती है, जो महान् आनन्द से परिपूर्ण है । महा प्रकाशशीला वह सभी प्रकार के विकारों से रहित एवं इच्छा से रहित हैं ॥ ८-९ ॥

श्रियः षाड्गुण्यपूर्णता

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजः प्रभावतीम् ॥ ९ ॥
अनन्तानन्तरूपां तामभेद्यां सर्वभेदिनीम् ।
नन्दां भद्रां जयां पूर्णां रिक्ता चैवामृतां हराम् ॥ १० ॥

जो शक्ति ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज से उद्भासित हो रही है । जो अनन्त अनन्त स्वरूप वाली है। वह स्वयं अभेद्य है किन्तु सबका भेदन करने वाली भी

है। (तिथियों के रूप में) वही नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, रिक्ता, अमृता तथा हरा नाम वाली है ॥ ९-१० ॥

त्रिरूपामत्रिरूपां च सर्वप्रत्यक्षसंमताम् ।
निषेधैरनिषेध्यां तामविधेयां विधिक्रमैः ॥ ११ ॥
अवाच्यां वाचिकां नित्यां गौरीं लक्ष्मीं सरस्वतीम् ।

गौरी, लक्ष्मी एवं सरस्वती इन तीन रूपों में होती हुई भी वह इन तीनों से परे भी हैं । परोक्ष होते हुये भी सबके सामने प्रत्यक्ष रहने वाली है । किसी भी प्रकार का निषेध उसे निषिद्ध नहीं बना सकता । सब प्रकार के विधिक्रमों से वह अविधेय (स्वतन्त्र) है, वह सबका वाचक हो कर भी सबसे अवाच्य है ॥ ११-१२ ॥

अरकल्पनम्

अराणि पञ्च कृत्यानि शक्तेस्तस्याः प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
तिरोभावं सृजिं चैव स्थितिं संहृत्यनुग्रहौ ।

उस शक्तिस्वरूपा लक्ष्मी के अरकल्पना रूप पञ्चकृत्य में ही उस सुदर्शन के पाँच अरे की कल्पना करनी चाहिए (द्र० १४-१५) । वे पञ्चकृत्य तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, निग्रह तथा अनुग्रह हैं ॥ १२-१३ ॥

नेमिकल्पनम्

व्यूहं व्यूहान्तरं चैव नेमिभावं प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥
सच्चिदानन्दसंदोहमस्पन्दस्पन्दलक्षणम् ।
सर्वक्रियास्पदं शुद्धमक्रियास्पदसेवितम् ॥ १४ ॥
उदयास्तमयस्थं तदुदयास्तमयोज्झितम् ।
अवस्थाविधुरं नित्यं शश्वच्चतुरवस्थितम् ॥ १५ ॥
अपदं चाक्रमं चैव क्रमास्थितचतुष्पदम् ।
अनायुधमसंरम्भं सर्वायुधसमन्वितम् ॥ १६ ॥
शास्त्रशास्त्रार्थतद्भेदं फलक्लृप्तिविचक्षणम् ।
चन्द्रार्काग्निसहस्रौघकोटिकोट्यर्बुदोपमैः ॥ १७ ॥
स्वभासां निचयैर्ध्वस्तसमस्तदुरितोदयम् ।

व्यूह तथा व्यूहान्तर में नेमि की कल्पना करनी चाहिए (द्र० अ० ५, १०) । वह नेमि सच्चिदानन्दसन्दोह, अस्पन्द तथा स्पन्द लक्षणों वाला है । वह शुद्ध सम्पूर्ण क्रियाओं का आस्पद होते हुये अक्रिया का भी आस्पद है । उदय एवं अस्तमय में स्थित हो कर भी उदय अस्तमय से वर्जित है । निरन्तर चारों अवस्था (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय) में होते हुये भी किसी अवस्था में न रहने वाला है । क्रम में स्थिति तथा चतुष्पाद हो कर भी पद से तथा क्रम से रहित है । सभी प्रकार के आयुधों से युक्त होकर भी अनायुध एवं निष्क्रिय है । शास्त्र तथा अशास्त्र दोनों ही उसके भेद हैं, फिर भी वह फल देने में अत्यन्त पटु है । सहस्रसमूह वाले करोड़ों तथा करोड़ों अर्बुद वाले चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि के

समान अपने प्रकाश समूहों से वह समस्त उत्पन्न तथा आगे उत्पन्न होने वाले पाप समूहों को विनष्ट करने वाला है ॥ १३-१८ ॥

विभवेशादीनां नेमिबाह्यस्थानकल्पनम्

नेमिबाह्यस्थितान् ज्वालान् विभवेशाननुस्मरेत् ॥ १८ ॥
चन्द्रार्काग्निसहस्राभान् संविदानन्दलक्षणान् ।
सर्वाकारान् निराकारान् सर्वाभीष्टफलप्रदान् ॥ १९ ॥
कान्तिज्वालाकुलालीढरक्षोदैत्येन्द्रदानवान् ।
धूम्रां ज्वालाकुलोत्थां च सृष्टिं शुद्धेतरां स्मरेत् ॥ २० ॥
त्रैलोक्यं धरणीं चक्रं मण्डलं वा तदीश्वरम् ।
अक्षस्थं कल्पयेत् तस्य यदीच्छेद्रक्षितुं धिया ॥ २१ ॥

उन विभवेशादिकों की नेमि के बाहर कल्पना—ज्वालायुक्त उन विभवेशादिकों (द्र० ५) की नेमि से बाहर कल्पना करनी चाहिए, जो सहस्रों चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि के समान आभा वाले हैं। जो ज्ञान तथा आनन्द लक्षणों से युक्त हैं। अनेक आकार के होने पर भी जो निराकार हैं और सभी अभीष्टफलों को देने वाले हैं। जो अपनी कान्ति की ज्वालाओं से राक्षसेन्द्र, दैत्येन्द्र तथा समस्त दानवों को ग्रस्त कर रहे हैं। जो धूम्र वर्ण के हैं तथा ज्वालासमूहों से व्याप्त है। फिर विभवेशादिकों की कल्पना के बाद अपनी रक्षा के लिए शुद्धेतर सृष्टि, त्रैलोक्य धरणीचक्र, मण्डल तथा मण्डलेश्वरों की अक्ष में कल्पना करनी चाहिए ॥ १८-२१ ॥

एवं ध्यायिन आनुषङ्गिकं फलम्

इत्थं विचिन्तयेद् यत्र मन्त्री मन्त्रार्थतत्परः ।
तत्र नश्यन्ति पाप्मान आधयो व्याधयोऽपि वा ॥ २२ ॥
ईतयोऽरातयश्चैव न क्लेशा दधते पदम् ।
राजा विजयते नित्यं शश्वत् स्निह्यन्ति मन्त्रिणः ॥ २३ ॥
नित्यं माद्यन्ति मित्राणि सुख्यन्ति सुहृदस्तथा ।
बध्नन्ति बान्धवाः प्रीतिं सन्तः सन्ति च सन्ततम् ॥ २४ ॥
पोष्याः पुष्यन्ति चार्थानां श्रयन्ति श्रिय एव च ।
ऋध्नुवन्ति प्रजा नित्यं प्रसीदन्त्यः परस्परम् ॥ २५ ॥
कामैर्धर्मान् निबध्नन्ति धर्मैरर्थाननेकशः ।
अर्थैः कामान् निबध्नन्ति तथा धर्मानशेषतः ॥ २६ ॥
धर्मैरर्थान् निबध्नन्ति तथा कामानशेषतः ।
धर्मार्थाभ्यां तथा कामं कामार्थाभ्यां तथेतरम् ॥ २७ ॥
अर्थं च धर्मकामाभ्यां सञ्चिन्वन्ति सदा नराः ।

इस प्रकार अक्ष नाभि अर तथा नेमि की कल्पना करने वाले साधकों के आनुषङ्गिक फल का प्रतिपादन—मन्त्र के अर्थो को जानने वाले मन्त्रज्ञ साधक के इस प्रकार की

कल्पना से सब प्रकार के पाप, आधियाँ (दैवी विपत्ति), व्याधियाँ, ईति (मानसिक दु:ख) और अराति (शत्रु) तो नष्ट हो ही जाते हैं किसी प्रकार के क्लेश भी उसे नहीं सताते। इसका ध्यान करने वाला राजा सर्वत्र विजय प्राप्त करता है। मन्त्री सर्वथा उससे प्रेम करने लग जाते हैं। मित्र सर्वदा उसे हर्षित करते हैं। उसके सुहृदगण उसे सर्वदा सुखी बनाने की चेष्टा करते हैं। बन्धुगण उसमें सर्वदा प्रीति रखते हैं। किं बहुना सन्त लोग उसे सर्वदा प्राप्त होते हैं। उसके पोष्य वर्ग उसे अर्थ से पुष्ट करते रहते हैं। श्री सर्वदा उसके आश्रय में रहती है। प्रजा एक दूसरे को प्रसन्न करती हुई उसे समृद्ध बनाती रहती है तथा सम्पूर्ण कामनाओं द्वारा धर्म का निबन्धन होता है। उसके राज्य में रहने वाले लोग काम से धर्म का, धर्म से अनेक प्रकार के अर्थों का, अर्थ से काम का तथा सम्पूर्ण धर्म का सञ्चय करते हैं। इसी प्रकार धर्म तथा अर्थ से काम का, काम एवं अर्थ से धर्म का, धर्म और काम से अर्थ का सञ्चय करते हैं ॥ २२-२८ ॥

मुख्यफलकथनम्

सर्वे स्वधर्मनिरतास्तथा कल्याणभागिनः ॥ २८ ॥
सम्प्राप्य भगवज्ज्ञानं प्राप्नुवन्ति परं पदम्।

मुख्यफल कथन—उस राजा के राज्य के सभी लोग अपने-अपने धर्म में निरत होकर कल्याण के भागी होते हैं। किं बहुना सम्पूर्ण प्रजा ज्ञान प्राप्त कर पर पद (मोक्ष) प्राप्त कर लेती है ॥ २८-२९ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

इति ज्योतिर्मयी रक्षा लेशतस्ते निदर्शिता।
रक्षां तु वाङ्मयीं प्रोक्तां गृणतो मे निशामय ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ज्योतिर्मयरक्षा-निरूपणं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १२५६ ॥

* * *

इस अध्याय के निष्कर्ष का कथन—हे नारद! इस प्रकार हमने आपसे लेशमात्र ज्योतिर्मयी रक्षा का वर्णन किया। अब जिस प्रकार वाङ्मयी रक्षा का स्वरूप होता है उसे मेरे द्वारा श्रवण कीजिए ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ज्योतिर्मयी-रक्षानिरूपण नामक बीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २१ ॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मन्त्रमयरक्षानिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस अरे का मात्र एक वार किया गया ध्यान साधक के जन्म जन्मान्तरों के करोड़ पापसमूहों का विनाश करता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

तत्रादौ चतुःब्रह्मचक्रम्

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु मन्त्रमयीं रक्षां वाङ्मयी या निगद्यते ।
यस्मिन् विश्वमिदं प्रोतं सदेवासुरमानुषम् ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अव उस मन्त्रमयी रक्षा को सुनिए जिसे वाङ्मयी रक्षा कहते हैं । जिसमें देवता, असुर तथा मानव सम्वन्धी समस्त विश्व अनुस्यूत है ॥ १ ॥

मन्त्रनाथः पुरा यो हि षड्वर्णः समुदाहृतः ।
कामधुक् साधकेन्द्राणामचिन्त्याश्चर्यबृंहितः ॥ २ ॥

पूर्व में हमने जो छः वर्णों वाला मन्त्र नाथ कहा है (द्र० १८.१८) वह श्रेष्ठ साधकों के लिए समस्त कामनाओं को देने वाला है, अचिन्त्य है तथा आश्चर्य से परिपूर्ण है ॥ २ ॥

तं तारशक्तिश्रीबीजैर्ग्रथितं कल्पयेन्मनुम् ।
तारेण वेष्टयेत् त्रिस्तं तथा शक्त्या तथा श्रिया ॥ ३ ॥

उस मन्त्र को तार एवं शक्ति (ॐ ह्रीँ) तथा श्री बीज से युक्त कर विशेष मन्त्र की कल्पना करनी चाहिए । फिर उसे तार (ॐ) से तीन वार वेष्टित करना चाहिए । फिर उसे शक्तिमन्त्र (ह्रीँ) से तथा पुनः श्रीवीज (श्रीँ) से घेर देवे ॥ ३ ॥

विलिखेत् परितो भूयः सहग्रथितमातृकम् ।
परितो विलिखेद् बाह्ये साध्यनाम विदर्भितम् ॥ ४ ॥
मन्त्रेश्वरं बहिर्भूयस्तारशक्तिश्रियो लिखेत् ।
अक्षक्लृप्तिरियं दिव्या देवैरपि सुदुर्लभा ॥ ५ ॥

स्त्राकारं कल्पयेन्नाभिं शक्तिश्रीकारलोलितम् ।
स्त्राकारग्रथितेनैव मन्त्रनाथेन वेष्टयेत् ॥ ६ ॥
शक्तिश्रीतारग्रथितां मातृकां बहिरालिखेत् ।
अप्रमेयं ततस्तारं प्रथमं शक्तिमप्यतः ॥ ७ ॥
व्यापकं च श्रियं चेति क्रमात् पूर्वमरं लिखेत् ।
अप्रमेयेण ग्रथितं पार्श्वयोर्मन्त्रमालिखेत् ॥ ८ ॥

इसके बाद उसके चारों ओर सह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखना चाहिए । इसके बाद उसके बाहर चारों ओर साध्य नाम (जिसके रोग-शोक को हरण करने के लिए यन्त्र का निर्माण करना हो) ग्रथित कर मन्त्रेश्वर (द्र० १८.१८) लिखे । फिर तार (ॐ) शक्ति (ह्रीँ) फिर श्री (श्रीँ) लिख । इस प्रकार के अक्ष का निर्माण देवताओं के लिए भी दुर्लभ है । इसके बाद शक्ति (ह्रीँ) श्री (श्रीँ) सम्पुट 'स्त्रा' लिखकर नाभि की कल्पना करनी चाहिए । फिर 'स्त्रा' से ग्रथित मन्त्रनाथ लिखकर उसे वेष्टित करे । उसके बाहर शक्ति (ह्रीँ) श्री (श्रीँ) तार (प्रणव ॐ) से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । उसके बाद बाहर अप्रमेय (अकार द्र० १७.४) इसके बाद तार (ॐ), इसके बाद प्रथम (अ, द्र० १७.४) इसके बाद शक्ति (ह्रीँ) लिखे । इसके बाद व्यापक (अ, द्र० १७.४), फिर श्री (श्रीँ) पूर्व के अरे पर लिखे उसके दोनों ओर अप्रमेय (अ, द्र० १७.४) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे ॥ ४-८ ॥

उद्दामादिक्रमेणैव दक्षिणं चारमालिखेत् ।
प्रासादादिक्रमेणैव पश्चिमं चारमालिखेत् ॥ ९ ॥
व्योमेशादिक्रमेणैवमुत्तरं चारमालिखेत् ।
इयं चतुररी दिव्या सुरैरपि सुपूजिता ॥ १० ॥

इसके बाद उद्दाम (उकार द्र० १७.६) आदि के क्रम से दक्षिण अरे पर लिखे । प्रासादादि? (ऐं) (ॐ श्री) पश्चिम अरे पर तथा व्योमेश (औं) आदि क्रम से उत्तर दिशा के अरे पर लिखे । इस प्रकार चार अरों वाला यह दिव्य चक्र देवगणों से भी पूज्य होता है ॥ ९-१० ॥

आद्यन्तयोरराणां च रेफं मन्त्राक्षरं लिखेत् ।
कालानलसमज्योतिर्भवेदरचतुष्टयम् ॥ ११ ॥

अरों के आदि तथा अन्त में रेफ लिखकर फिर मन्त्राक्षरों को लिखे । इस प्रकार निर्माण किया गया चार अरों वाला यह दिव्य चक्र कालानल के समान प्रकाशयुक्त होता है ॥ ११ ॥

परितः कल्पयेन्नेमिं वैष्णवं तु षडक्षरम् ।
शक्तितारमाबीजैर्ग्रथितं वर्मवेष्टितम् ॥ १२ ॥

पुनः उसके चारों ओर शक्ति (ह्रीँ) तथा (ॐ) रमा बीज (श्रीँ) से ग्रथित वर्म

(कवचाय हुं) से वेष्टित छः अक्षरों वाले वैष्णव मन्त्र को लिख कर नेमि की कल्पना करे ॥ १२ ॥

शक्तितारमाश्चैव परितस्त्रिस्त्रिरालिखेत् ।
फट्कारशक्तितारश्रीग्रथितां मातृकां पुनः ॥ १३ ॥
प्रधिभूमौ लिखेच्चक्रमेतच्चतुररं स्मृतम् ।

उसके चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) तथा रमा (श्रीँ) लिखे । इस मन्त्र को तीन-तीन बार लिखे । फिर फट्कार, तदनन्तर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), श्री (श्रीँ) से ग्रथित मातृका वर्णों को प्रधि में लिखे । इसी को चार अरों वाला चक्र कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

षडरविष्णुचक्रम्

तारकात्मकमेतत्तु चक्रमक्षं प्रकल्पयेत् ॥ १४ ॥
तारशक्तिरमाबीजैर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
परितो विलिखेच्चक्रं पूर्वमक्षीकृतं हि यत् ॥ १५ ॥
नामवर्णान् लिखेद् बाह्ये तारादित्रयदर्भितान् ।
वैष्णवेन षडर्णेन ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ १६ ॥
परितो विलिखेद् बाह्ये तद्बहिः सहदर्भिताम् ।
मातृकां विलिखेत् सर्वमिदमक्षं विचिन्तयेत् ॥ १७ ॥

षडक्षरों वाले विष्णु चक्र का निर्माण—इस षडरों वाले चक्र का तारकात्मक (ॐ स्वरूप) अक्ष निर्माण करे । पहले जिस अक्ष का निर्माण किया गया है, उसके चारों ओर तार (ॐ), शक्ति (ह्रीँ), रमा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्र नायक लिखे । इसके बाद तारादि त्रय (ॐ श्रीँ ह्रीँ) से दर्भित साध्य के नाम वाले वर्णों को लिखे । उसके बाद चारों ओर वैष्णव षडर्ण से ग्रथित मन्त्रनायक (ॐ सहस्रार ईं नमः) लिखे । उसके बाद सह से दर्भित मातृका वर्णों को लिखे । यह सारी क्रिया उसी अक्ष में करे ॥ १४-१७ ॥

वैष्णवेन षडर्णेन शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्राकारं परमाद्भुतम् ॥ १८ ॥
स्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
रेफं च प्रणवं रेफं प्रणवं शक्तिमेव च ॥ १९ ॥
रेफं च प्रणवं पश्चाच्छ्रियं पश्चान्महामुने ।
रेफं चेति लिखेत् पूर्वमरं कालानलद्युतिम् ॥ २० ॥

शक्ति (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ), तारक (ॐ) से ग्रथित छः अक्षरों वाले वैष्णव मन्त्र से परमाद्भुत नाभि की कल्पना करे । उसके चारों ओर (स्राकार से ग्रथित मातृका) औं को लिखे । हे महामुने ! रेफ प्रणव, इसके बाद रेफ प्रणव और शक्ति (ह्रीँ), फिर रेफ प्रणव, इसके बाद श्री (श्रीँ), फिर रेफ लिखे । इस प्रकार कालानल के समान प्रकाश वाले पूर्व के अरे का निर्माण करे ॥ १८-२० ॥

प्रणवालोलितं मन्त्रमाग्नेयमरमालिखेत् ।
रेफं विं प्रणवं रेफं विं शक्तिं रेफमेव च ॥ २१ ॥
विं श्रियं रेफमित्येवं दक्षिणं चारमालिखेत् ।
रेफं ष्णं प्रणवं रेफं ष्णं शक्तिं रेफमेव च ॥ २२ ॥
ष्णं (श्रियं रेफमित्येवं नैर्ऋतं चाप्यरं लिखेत् ।
रेफं वें प्रणवं रेफं वें शक्तिं रेफमेव च ॥ २३ ॥
वें श्रियं) रेफमित्येवं वारुणं चाप्यरं लिखेत् ।
रेफं नं प्रणवं रेफं नं शक्तिं रेफमेव च ॥ २४ ॥
नं श्रियं रेफमित्येवं वायव्यं चारमालिखेत् ।
रेफं मों प्रणवं रेफं मों शक्तिं रेफमेव च ॥ २५ ॥
मों श्रियं रेफमित्येवमैशानं चाप्यरं लिखेत् ।
तत्तदक्षरसंदिष्टं मन्त्रं तत्पार्श्वयोर्लिखेत् ॥ २६ ॥

इसके बाद प्रणव से आलोलित मन्त्र आग्नेय अरे में लिखे । रेफ विं प्रणव, रेफ विं शक्ति (ह्रीँ), रेफ विं श्री (श्रीँ), फिर रेफ, इस प्रकार दक्षिण के अरे पर लिखे । तदनन्तर रेफ-ष्ण श्री (श्रीँ), तदनन्तर पुनः रेफ, इस प्रकार नैर्ऋत्य के अरे पर लिखे । रेफ वें प्रणव, रेफ वें शक्ति (ह्रीँ), फिर रेफ वें श्री (श्रीँ), तदनन्तर रेफ, यह पश्चिम के अरे पर लिखे । रेफ नं प्रणव, रेफ नं शक्ति, फिर रेफ नं श्री (श्रीँ), इसके पश्चात् रेफ, इस प्रकार वायव्य अरे पर लिखे । रेफ मों प्रणव, रेफ मों शक्ति (ह्रीँ), रेफ मों श्री (श्रीँ), फिर रेफ, यह ईशान कोण के अरे पर लिखे । उन-उन अक्षरों से ॐ ह्रीं श्रीं रे से संयुक्त ॐ विष्णवे नमः इस मन्त्र को अरे के दोनों पार्श्वभाग में लिखे ॥ २१-२६ ॥

दशाक्षराण्यराणि स्युः प्रत्येकं षडिमानि तु ।
इयं हि षडरी दिव्या देवैरपि सुपूजिता ॥ २७ ॥

ये छः वैष्णवाक्षर उक्त प्रकार प्रत्येक दश-दश अक्षरों से युक्त (द्र० २२.१९-२६) हो जाते हैं । यही षडक्षरी महाविद्या है जो देवताओं से भी पूजित है ॥ २७ ॥

परितो विलिखेन्नेमिं मन्त्रमष्टाक्षरं बुधः ।
हङ्कारं विलिखेन्नेमिं शक्तिश्रीतारलोलितम् ॥ २८ ॥

बुद्धिमान् साधक इसके अनन्तर नेमि का निर्माण करे । उसके चारों ओर अष्टाक्षर मन्त्र लिखे । नेमि पर शक्ति (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) तथा तार (प्रणव) से लोलित 'हं' लिखे ॥ २८ ॥

शक्तितारस्रमास्त्रिस्त्रिरालिखेत् परितो बहिः ।
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ २९ ॥
एतत्तु षडरं चक्रं षड्विंशार्णविनिर्मितम् ।

उसके बाद बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), रमा (श्रीँ) इन बीज मन्त्रों को तीन-तीन बार लिखे । उसके बाहर प्रधि पर फट्कार युक्त मातृका वर्णों को लिखे । यही षडक्षर चक्र है जो २६ अक्षरों से बना हुआ है (द्र० २२.२७ कुल योग १६ इसके बाद द्र० २२.२८, कुल योग २४, हुं फट् = २६) ॥ २९-३० ॥

अष्टारनारायणचक्रम्

षडरं कल्पयेच्चक्रमक्षमेतन्महाद्युति ॥ ३० ॥
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण चक्रमष्टारमालिखेत् ।
महाबलं महाभीमं कालानलसमद्युति ॥ ३१ ॥
विधानमस्य चक्रस्य यथावदवधारय ।
विलिखेत् परितो मन्त्रं तारादित्रयलोलितम् । ३२ ॥

सर्वप्रथम अत्यन्त तेजस्वी छः अरों वाले अक्ष सहित चक्र की कल्पना करे । इसके बाद अष्टाक्षर मन्त्र से आठ अरों वाला चक्र बनावे । यह अष्टारचक्र महाबलवान् एवं कालानल के समान महाभयङ्कर है । हे नारद ! अब इस अष्टारचक्र को मैं जिस प्रकार कहता हूँ उसे सुनिए । सर्वप्रथम तार (ॐ), शक्ति (ह्रीँ) इन तीनों से संयुक्त अष्टाक्षर मन्त्र को चारों ओर लिखे ॥ ३०-३२ ॥

नामवर्णान् लिखेद्बाह्ये तारादित्रयलोलितान् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ ३३ ॥
परितो विलिखेद् बाह्ये तद्बहिः सहदर्भिताम् ।
मातृकां विलिखेत् सर्वमिदमक्षं विचिन्तयेत् ॥ ३४ ॥

उसके बाहर तारादित्रय (ॐ ह्रीँ श्रीँ) से संयुक्त साध्य के नाम वर्णों को लिखे । उसके बाहर चारों ओर अष्टाक्षर मन्त्र से संयुक्त मन्त्रराज (ॐ सहस्रार ई नमः) लिखे । फिर उसके भी बाहर चारों ओर स ह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यह सब अक्ष पर ही लिखना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ३५ ॥

इसके बाद शक्ति (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ), तारक (ॐ) से संयुक्त अष्टाक्षर मन्त्र से ग्रथित स्रा से परमाद्भुत नाभि की कल्पना करे ॥ ३५ ॥

स्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा बहिरष्टाक्षरं लिखेत् ॥ ३६ ॥
रेफं च प्रणवं तारं रेफं तारं च तारिकाम् ।
रेफं तारं श्रियं चैव रं चेति प्रागरं लिखेत् ॥ ३७ ॥

उसके चारों ओर 'स्रा' से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे, यही नाभि कही जाती है। उसके बाद अष्टाक्षर मन्त्र लिखे । फिर रेफ, प्रणव (ॐ), तार, फिर रेफ तार

तारिका? (ह्रीँ), फिर रेफ तार श्री (श्रीँ), फिर रं इतने अक्षरों को पूर्व के अरे पर लिखे ॥ ३६-३७ ॥

रेफं नं तारकं रेफं न शक्तिं रेफनौ तथा ।
श्रियं रेफमिति प्राज्ञोऽप्याग्नेयं कल्पयेदरम् ॥ ३८ ॥

रेफ नं तारक (ॐ), रेफ नं शक्ति (ह्रीँ), रेफ नं श्री (श्रीँ), फिर रेफ इतने अक्षर आग्नेय अरे पर बुद्धिमान् साधक लिखे ॥ ३८ ॥

रेफं मों तारकं रेफं मों शक्तिं रेफमोंद्वयम् ।
श्रियं रेफं च मतिमानरं याम्यं क्रमाल्लिखेत् ॥ ३९ ॥

रेफ मों तारक (ॐ), रेफ नां शक्ति (ह्रीँ), रेफ ॐ इन दोनों के बाद श्री (श्रीँ), फिर रेफ इतने अक्षरों को मतिमान् साधक दक्षिण अरे पर लिखे ॥ ३९ ॥

रेफं नां तारकं रेफं नां शक्तिं रेफमेव च ।
नां श्रियं रेफमित्येवं नैर्ऋतं च लिखेदरम् ॥ ४० ॥

रेफ नां तारक (ॐ), रेफ नां शक्ति (ह्रीँ), रेफ नां श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इस प्रकार नैर्ऋत अरे की कल्पना करे ॥ ४० ॥

रेफं रां तारकं रेफं रां शक्तिं रेफमेव च ।
रां श्रियं रेफमित्येवं वारुणं च लिखेदरम् ॥ ४१ ॥

फिर रेफ रां तारक (ॐ), रेफ रां शक्ति (ह्रीँ), रेफ रां श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इन अक्षरों को पश्चिम के अरे पर लिखना चाहिए ॥ ४१ ॥

रेफं यं तारकं रेफं यं शक्तिं रेफमेव च ।
यं श्रियं रेफमित्येवं वायव्यं च लिखेदरम् ॥ ४२ ॥

रेफ यं तारक (ॐ), रेफ यं शक्ति (ह्रीँ), रेफ यं श्री (श्रीँ), फिर रेफ, इन अक्षरों को वायव्य कोण पर लिखना चाहिए ॥ ४२ ॥

रेफं णां तारकं रेफं णां शक्तिं रेफमेव च ।
णां श्रियं रेफमित्येवं कौबेरं च लिखेदरम् ॥ ४३ ॥

रेफ णां तारक (ॐ), रेफ णां शक्ति (ह्रीँ), रेफ णां श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इन अक्षरों को उत्तर दिशा के अरे पर लिखना चाहिए ॥ ४३ ॥

रेफं यं तारकं रेफं यं शक्तिं रेफमेव च ।
यं श्रियं रेफमित्येवमैशानं च लिखेदरम् ॥ ४४ ॥

रेफ यं तारक (ॐ), रेफ यं शक्ति (ह्रीँ), रेफ यं श्री (श्रीँ), फिर रेफ—इतने अक्षर ईशान कोण के अरे पर लिखना पड़ता है ॥ ४४ ॥

तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ।
अष्टारीयं महापुण्या सुरासुरनमस्कृता ॥ ४५ ॥

इसी प्रकार उन-उन अक्षरों (ॐ ह्री श्रीँ रं) से संयुक्त ॐ नमो नारायणाय इस मन्त्र को अरे के दोनों पार्श्वभाग पर लिखना चाहिए । यह आठ अरों वाला महाचक्र महापुण्यदायक है । इसे देवता तथा असुर दोनों ही नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

परित: कल्पयेन्नेमिं द्वादशाक्षरमद्भुतम् ।
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ॥ ४६ ॥

इसके चारों ओर द्वादशाक्षर से संयुक्त अत्यन्त अद्भुत नेमि की कल्पना करनी चाहिए । तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित 'हुं' बाहर लिखे ॥ ४६ ॥

शक्तितारस्मास्त्रिस्त्रि: परितो बहिरालिखेत् ।
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ ४७ ॥
नारायणं महाचक्रमेतन्नारायणेरितम् ।
अक्षं कृत्वा चक्रमेतद् द्वादशारं बहिर्लिखेत् ।
वासुदेवं महाचक्रं विधिं तस्य निशामय ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मन्त्रमयरक्षा-
निरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्याय: ॥ २२ ॥
॥ आदित: श्लोका: १३०४ ॥

* * *

उसके बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), रमा (श्रीँ) इनको तीन-तीन बार लिखे । उसके बाहर फट् से संयुक्त मातृका वर्णों को प्रधि पर लिखे । यही नारायण महाचक्र है, जिसे नारायण ने स्वयं अपने मुख से कहा है । इसी चक्र को अक्ष बनाकर बाहर १२ अरों वाला चक्र निर्माण करे । इसे वासुदेव चक्र कहते हैं । अब इसकी विधि हे नारद ! सुनिए ॥ ४७-४८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मन्त्रमय रक्षानिरूपण नामक बाइसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २२ ॥

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

वासुदेवादियन्त्रनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापसमूहों को विनष्ट करता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

द्वादशारचक्रम्

अहिर्बुध्न्यः—

द्वादशारस्य चक्रस्य क्रमोऽयं परिगीयते ।
पाप्मानो विप्रदूयन्ते यस्य स्मरणमात्रतः ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिस द्वादशारचक्र के स्मरण मात्र से पाप बहुत दूर भाग जाते हैं उसके निर्माण का क्रम इस प्रकार है ॥ १ ॥

नारायणाह्वयं चक्रं यत् पूर्वं समुदीरितम् ।
तदक्षं कल्पयेन्मन्त्री वक्ष्यमाणविधानतः ॥ २ ॥

हमने जिस नारायण चक्र का पूर्व में वर्णन किया हैं (द्र० २२.३०-४६) उसके अक्ष की रचना आगे कही जाने वाली विधि से करनी चाहिए ॥ २ ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
परितो विलिखेद् बाह्ये चक्रान्नारायणाह्वयात् ॥ ३ ॥
नामवर्णान् लिखेद् बाह्ये तारादित्रयलोलितान् ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ ४ ॥

नारायण नामक चक्र के बाहर चारों ओर तार (ॐ), तारा (ह्रीं) तथा अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे । फिर उसके बाहर तार शक्ति एवं श्री (ॐ ह्रीं श्रीं) से ग्रथित साध्यनाम लिखे । उसके भी बाहर द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से ग्रथित मन्त्रनायक लिखे ॥ ३-४ ॥

परितो विलिखेद् बाह्ये तद्बहिः सहदर्भिताम् ।
मातृकां विलिखेत् सर्वमेतदक्षं विचिन्तयेत् ॥ ५ ॥

उसके भी बाहर स् ह् से दर्भित मातृका वर्णों को लिखे । इस प्रकार इन सभी वर्णों से अक्ष की कल्पना करनी चाहिए ॥ ५ ॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितां कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ६ ॥

शक्ति (ह्रीँ), श्री (श्रीँ) तथा तार (ॐ) से ग्रथित द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा अत्यन्त अद्भुत स्त्रा के आकार में नाभि की कल्पना करे ॥ ६ ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा द्वादशाराण्यथो लिखेत् ॥ ७ ॥

इसके वाद चारों ओर स्त्राकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे इस प्रकार नाभि की रचना करे । तदनन्तर द्वादश अरों का इस प्रकार निर्माण करे ।

दिक्षु द्वे द्वे अरे लिख्याद्विदिक्ष्वेकैकमप्युत ।
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारिके ॥ ८ ॥
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ।
अराणि द्वादशैवं च द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ९ ॥

चारों दिशाओं में दो-दो अरे (कुल ८), इसके बाद चारों कोनों में एक-एक (कुल चार योग १२) अरे का निर्माण करे । रेफ, मन्त्र का एक अक्षर, तार, फिर रेफ, मन्त्र का एक दूसरा अक्षर, तार (ॐ) फिर रेफ, मन्त्र का तीसरा मन्त्राक्षर, फिर लक्ष्मी (श्रीँ), फिर रेफ, इस क्रम से द्वादशाक्षर विद्या के सभी मन्त्रों को द्वादशार पर लिखे ॥ ८-९ ॥

प्रागादीशानपर्यन्तं कल्पयेन्मन्त्रवित्तमः ।
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ॥ १० ॥
द्वादशारी महाविद्या सेयं सर्वेश्वरप्रिया ।
परितः कल्पयेन्नेमिं जितन्ताख्यमहामनुम् ॥ ११ ॥
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ।
शक्तिताररमास्त्रिस्त्रिरालिखेत् परितो बहिः ॥ १२ ॥
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ।
वासुदेवाह्वयं चक्रमेतद् देवैरभिष्टुतम् ॥ १३ ॥
अस्य चक्रस्य माहात्म्यं वक्तुं शक्यं न मादृशैः ।

मन्त्रवेत्ता ऊपर कहा गया क्रम पूर्व दिशा से आरम्भ कर ईशान कोण में समाप्त करे। इसके वाद उसके दोनों पार्श्व भाग में उन-उन अक्षरों से संयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्र लिखे । इस प्रकार द्वादश अरों वाली महाविद्या की रचना करे ।

वासुदेव चक्र—यही सर्वेश्वर भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय है । इसके बाद नेमि की कल्पना करे । उसके चारों ओर—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ लक्ष्मीतन्त्र २४.६९

इस जितन्ता नामक महामन्त्र को लिखे । उसके भी बाहर तार (ॐ) तारा (ह्रीँ) अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित हुं को लिखे, उसके भी बाहर शक्ति (ह्रीँ) तार (ॐ) रमा (श्रीँ) इस बीज मन्त्र को तीन-तीन बार लिखे । इसके बाद बाहर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही वासुदेव नामक चक्र है । जिसकी देवता लोग भी प्रशंसा करते हैं । इसका माहात्म्य मेरे जैसे लोगों के द्वारा अवर्णनीय है ॥ १०-१४ ॥

अजिताख्यद्वात्रिंशदरचक्रम्

अक्षं कृत्वा चक्रमेतद् द्वात्रिंशदरमालिखेत् ॥ १४ ॥

अक्ष बना कर इस चक्र में ३२ अरों का निर्माण करना चाहिए ॥ १४ ॥

अजिताख्यमिदं चक्रं सुरासुरनमस्कृतम् ।
अस्य चक्रस्य विधिवद् विधानमुपदिश्यते ॥ १५ ॥

अजित नाम से कहा जाने वाला यह चक्र देवता तथा असुरों से भी नमस्कार किया जाता है । हे नारद ! अब इस चक्र का विधान कर रहा हूँ ॥ १५ ॥

वासुदेवाह्वयं चक्रमस्याक्षं परिकल्पयेत् ।
यथा तथा विधानेन विधानं शृणु साम्प्रतम् ॥ १६ ॥

वासुदेव नामक चक्र को इस अजित चक्र का अक्ष बनाना चाहिए । जिस जिस विधान से इसका निर्माण किया जाता है, हे नारद! अब उसके विधान को सुनिए ॥ १६ ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
परितो विलिखेन्मन्त्री वासुदेवाह्वयाद् बहिः ॥ १७ ॥
तारादिग्रथितान् साध्यनामवर्णान् लिखेद्बहिः ।
जितन्ताग्रथितं मन्त्रं परितो बहिरालिखेत् ॥ १८ ॥
मातृकां विलिखेद् बाह्ये सहद्वन्द्वविदर्भिताम् ।
विद्यादजितचक्रस्य सम्यगक्षमिदं बुधः ॥ १९ ॥
जितन्ताख्येन मन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ २० ॥

वासुदेव नामक चक्र के बाहर चारों ओर साधक तार (ॐ) तारा (ह्रीँ) अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे । उसके भी बाहर तार, तारा एवं अनुतारा से ग्रथित साध्य नाम (जिसके लिए यन्त्र का निर्माण करना है) वाले वर्णों को लिखे । सह इन दो अक्षरों से अनुस्यूत मातृका वर्णों को उसके भी बाहर लिखे । बुद्धिमान् साधक इसी को अजित चक्र का उत्तम अक्ष समझे । फिर शक्ति बीज (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) एवं तारक (ॐ) ग्रथित जितन्ता ('जितं ते पुण्डरीकाक्ष' द्र० लक्ष्मीतन्त्र २४.६९) मन्त्र से स्त्र के आकार वाले परमाद्भुत नाभि की रचना करे ॥ १७-२० ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा पुण्डरीकाक्षसंमता ॥ २१ ॥
द्वात्रिंशतमराण्यस्य परितो नाभिमालिखेत् ।
दिक्षु चत्वारि चत्वारि लिखेदष्टसु वै क्रमात् ॥ २२ ॥
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारिके ।
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ॥ २३ ॥
द्वात्रिंशतमराण्येवं लिखेत् सम्यग्जितंतया ।
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ॥ २४ ॥

फिर उसके बाहर चारों ओर स्त्राकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही इसकी नाभि कही जाती है । जिसे भगवान् विष्णु भी स्वीकार करते हैं । इसके बाद नाभि के चारों ओर ३२ अरों की रचना करे । तदनन्तर आठों दिशाओं में क्रमशः चार-चार के क्रम से रेफ, मन्त्राक्षर, तार, फिर रेफ, मन्त्राक्षर, तारिका (ह्रीँ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी, फिर रेफ, इस प्रकार चार-चार वर्णों को आठों दिशाओं में लिखे । तदनन्तर ३२ अरों पर—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ लक्ष्मीतन्त्र २४.६९

इस जितन्ता मन्त्र के ३२ अक्षरों को भली-भाँति लिखे । उसके दोनों पार्श्वभाग में तत्तदक्षरसंयुक्त मन्त्र को लिखे ॥ २१-२४ ॥

सा द्वात्रिंशदरी दिव्या देवदेवजयप्रदा ।
परितः कल्पयेन्नेमिं नृसिंहानुष्टुभं पराम् ॥ २५ ॥
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ।
शक्तितारमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत् ॥ २६ ॥
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ।
अजिताख्यमिदं चक्रं पुण्डरीकाक्षसम्मतम् ॥ २७ ॥
येनाद्य पुण्डरीकाक्षो दैत्यान् विजयतेऽखिलान् ।
एतदत्यद्भुतं चक्रं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥ २८ ॥
नित्ययुक्तोऽत्र सन्मन्त्री जगद्विजयतेऽखिलम् ।

वही द्वात्रिंशदरी महाविद्या है जो देवाधिदेव विष्णु को जय प्रदान करती है । उसके चारों ओर नृसिंह के अनुष्टुप् छन्द वाले मन्त्र से उत्कृष्ट नेमि की रचना करे । उसके बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ), अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित हुं लिखे । उसके भी बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ), रमा (श्रीँ) तीन-तीन बार लिखे । इसके बाद उसके बाहर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही अजित नामक चक्र है । जिसे भगवान् विष्णु भी स्वीकार करते हैं । इसी चक्र के प्रभाव से भगवान् विष्णु समस्त दैत्यों पर विजय प्राप्त करते हैं । यह अत्यन्त अद्भुत चक्र विष्णु के यश का विस्तार

करता है । इसका नित्य पूजन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक समस्त जगत् पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ २५-२९ ॥

नारसिंहद्वात्रिंशदरचक्रम्

अक्षीकृत्यैतच्चक्रं तु चक्रमन्यत् प्रवर्तते ॥ २९ ॥
महाविष्णुमयं घोरं भद्रं मृत्युविमर्दनम् ।
विधानं शृणु तस्येदं कथ्यमानं मयानघ ॥ ३० ॥

अजित नामक इस चक्र को अक्ष बनाकर अन्य चक्र प्रवृत्त होते है । वह चक्र महाविष्णुमय है, घोर है और भद्र करने वाला एवं मृत्यु का भी मर्दन करने वाला है । अब उस चक्र का हे नारद ! मैं वर्णन करता हूँ उसे सुनिए ॥ २९-३० ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
अजिताख्यान्महाचक्रात् परितो बहिरालिखेत् ॥ ३१ ॥
तारादिग्रथितान् साध्यनामवर्णान् बहिर्लिखेत् ।
उग्रवीरादिमन्त्रेण ग्रथितं मन्त्रनायकम् ॥ ३२ ॥
परितो विलिखेद् बाह्ये सहग्रथितमातृकम् ।
महाविष्णुमयं ह्येतदक्षं चक्रस्य शोभनम् ॥ ३३ ॥

अजित नाम वाले इस चक्र के बाहर चारों ओर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ), अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित मन्त्रराज को लिखे । इसके बाद बाहर तार-तारा तथा अनुतारा से ग्रथित साध्य नाम (जिस कार्य के लिए यन्त्र का निर्माण किया जा रहा हो) लिखे । फिर उग्र वीरादि इस मन्त्र से ग्रथित मन्त्रराज लिखे । उसके भी बाहर चारों ओर सह से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यह नारसिंह नामक चक्र का अत्यन्त शोभनीय महाविष्णुमय अक्ष है ॥ ३१-३३ ॥

उग्रवीरादिमन्त्रेण शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्त्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ३४ ॥

इसके बाद शक्ति बीज (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) तथा तार (ॐ) से ग्रथित स्त्रा के आकार में परमाद्भुत नाभि की कल्पना करे ॥ ३४ ॥

स्त्राकारग्रथितां चापि मातृकां परितो लिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा महाविष्णुमयी परा ॥ ३५ ॥

उसके बाहर चारों ओर स्त्राकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे । यही नारसिंह चक्र की नाभि कही जाती है जो सर्वोत्कृष्ट एवं महाविष्णुमयी है ॥ ३५ ॥

द्वात्रिंशतमराण्यस्य परितो नाभिमालिखेत् ।
दिक्षु चत्वारि चत्वारि लिखेदष्टसु वै क्रमात् ॥ ३६ ॥
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारके ।
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ॥ ३७ ॥

इसके बाद नाभि के चारों ओर ३२ अरों की रचना करे । इसके बाद आठों दिशाओं में चार-चार के क्रम से रेफ, मन्त्राक्षर, तार (ॐ), रेफ, मन्त्राक्षर, तारक (ह्रीँ), रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी तथा तार इस क्रम से लिखे ॥ ३६-३७ ॥

द्वात्रिंशतमराण्येवं नृसिंहानुष्टुभा लिखेत् ।
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ॥ ३८ ॥
सा द्वात्रिंशदरी विद्या दुष्टदैत्यनिबर्हणी ।
अस्य चक्रस्य नेमिं तु त्रीणि छन्दांसि कल्पयेत् ॥ ३९ ॥
गायत्रीं त्रिष्टुभं चैव तथानुष्टुभमेव च ।
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ॥ ४० ॥
शक्तितारमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत् ।
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ ४१ ॥
एतदत्यद्भुतं घोरं दुष्टदानवसूदनम् ।
नारसिंहं महाचक्रं मृत्युञ्जयमिति श्रुतम् ॥ ४२ ॥
प्रेतापस्मारकूष्माण्डदैत्यदानवराक्षसाः ।
डाकिन्यो भूतयोगिन्यो याश्चान्याः क्रूरजातयः ॥ ४३ ॥
स्मरणादस्य चक्रस्य विनश्यन्त्येव सर्वदा ।

नृसिंह के अनुष्टुप् छन्द वाले श्लो० 'उग्रं वीरं महामत्यु'मित्यादि को ३२ अरों पर लिखे । दुष्टों तथा दैत्यों का विनाश करने वाली ३२ अरों वाली वही द्वात्रिंशदरी विद्या है । इस चक्र की नेमि पर गायत्री त्रिष्टुप तथा अनुष्टुप छन्दों को लिखना चाहिए । इसके बाद तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) तथा अनुतारा (श्रीं) से ग्रथित हुं बाहर लिखना चाहिए । उसके बाद भी बाहर चारों ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) तथा रमा (श्रीँ) तीन-तीन बार लिखना चाहिए । इसके भी बाहर प्रधि में फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखना चाहिए । यह नरसिंह चक्र अत्यद्भुत है । यह महाभयानक है तथा दुष्टों एवं दानवों का विनाश करने वाला है । किं बहुना मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कराने वाला है, ऐसा हमने सुना है । इस चक्र के स्मरण मात्र से प्रेत, अपस्मार (मृगी), कूष्माण्ड, दैत्य, दानव, राक्षस, डाकिनी, भूत, योगिनी तथा अन्य क्रूर जातियाँ सर्वदा के लिए नष्ट हो जाती हैं ॥ ३८-४४ ॥

शतारज्योतिश्चक्रम्

अक्षीकृत्यैतच्चक्रं तु ज्योतिश्चक्रं प्रवर्तते ॥ ४४ ॥
ज्योतींषि त्रीणि च्छन्दांसि गायत्र्यादीन्यसंशयम् ।
विधिज्ञैस्तस्य चक्रस्य विधानं विहितं शृणु ॥ ४५ ॥
यदेतत् प्रथितं ज्योतिर्दिवि प्रत्यक्षमुत्तमम् ।
एषा तदिति गायत्री वेदानां जननी परा ॥ ४६ ॥
यदेतदग्निहोत्रस्थं ज्योतिर्वहति वै हुतम् ।
जातवेदस इत्येषा त्रिष्टुबग्निमयी तनुः ॥ ४७ ॥

रसैः पुष्णाति यद्विश्वं ज्योतिर्नयननन्दनम् ।
तत् त्रियम्बकमित्येषानुष्टुबिन्दुमयी तनुः ॥ ४८ ॥

इस नरसिंह चक्र को अपना अक्ष बनाकर ज्योतिश्चक्र प्रवृत्त होता है । ज्योतिश्चक्र में गायत्री, त्रिष्टुप् एवं अनुष्टुप् इन तीन छन्दों का नि:सन्देह निवास है । विधिज्ञों ने इस चक्र का जैसा विधान कहा है, हे नारद ! अब उसे सुनिए । आकाश में सर्वप्रसिद्ध उत्तम जो यह ज्योतिश्चक्र दिखाई पड़ रहा है, यही वह गायत्री है । जो सारे वेदों की जननी है । अग्निहोम से उठने वाली ज्योति, जो हवि का वहन करती है तथा जिसे जातवेदा कहते हैं, यह त्रिष्टुप् रूपा अग्निमयी उस ज्योति का शरीर है । जो अपने रसों से विश्व का पोषण करती है तथा नेत्रों में आह्लाद उत्पन्न करती है और जो तीन नेत्रों वाली त्रियम्बक है वह उस ज्योति का अनुष्टुप् तथा चन्द्रमय शरीर है ॥ ४४-४८ ॥

ज्योतिर्भिर्धार्यते विश्वं बोधतापनहर्षणैः ।
विरुद्धोपक्रमैर्विश्वं भोक्तृभोग्यमयात्मभिः ॥ ४९ ॥
यत् पूर्वमुदितं चक्रं महाविष्णुमयं महत् ।
तदक्षं कल्पयेन्मन्त्री त्रिभिर्ज्योतिर्भिरुत्तमैः ॥ ५० ॥
छन्दोभिः कल्पयेदक्षं तारादिग्रथितं पुरा ।
महाविष्णुमयाद् बाह्ये विलिखेन्मन्त्रनायकम् ॥ ५१ ॥
तारादिग्रथितांश्चापि साध्यवर्णान् लिखेद् बहिः ।
छन्दोभिर्ग्रथितं मन्त्रं मन्त्री तद्बहिरालिखेत् ॥ ५२ ॥
मातृकां विलिखेद् बाह्ये सहद्वयविदर्भिताम् ।
एतदक्षं समुद्दिष्टं ज्योतिश्चक्रस्य नारद ॥ ५३ ॥

ये सभी ज्योतियाँ बोध, ताप तथा हर्ष से विश्व को धारण करती हैं । विरुद्धोपक्रम से यह सारा विश्व भोक्तृत्व तथा भोग्यात्मक रूप वाला है । हमने पूर्व में जिस महान् विष्णु स्वरूप चक्र का वर्णन किया है (द्र० २३.२९.४३) इन तीन उत्तम ज्योतियों से उसी चक्र द्वारा अक्ष का निर्माण करना चाहिए । इस प्रकार छन्दों से अक्ष का निर्माण कर महाविष्णुमय चक्र से बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ), अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्रराज लिखना चाहिए । फिर उसके भी बाहर तारादि से ग्रथित साध्य वर्ण लिखना चाहिए । फिर उसके भी बाहर स ह इन दो अक्षरों से अनुस्यूत मातृका वर्णों को लिखे । हे नारद ! यही उस ज्योतिष्चक्र का अक्ष कहा जाता है ॥ ४९-५३ ॥

त्रिभिस्तदाद्यैश्छन्दोभिः शक्तिश्रीबीजतारकैः ।
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्राकारं परमाद्भुतम् ॥ ५४ ॥
स्राकारग्रथितां चापि मातृकां बहिरालिखेत् ।
एषा नाभिः समुद्दिष्टा वेदवेदान्तपूजिता ॥ ५५ ॥
अराणि शतमस्य स्युर्विधानं तस्य मे शृणु ।

इसके बाद शक्ति बीज (ह्रीँ), श्री बीज (श्रीँ) एवं तारक (ॐ) से ग्रथित आदिभूत

उन तीन छन्दों से स्रकार रूप परमाद्भुत नाभि की रचना करे। उसके बाहर चारों ओर स्रकार से ग्रथित मातृका वर्णों को लिखे। इसे ही शतार चक्र की नाभि कहते हैं जो वेद तथा वेदान्त से पूजित है। इस नाभि में १०० अरे बनाये जाते हैं, हे नारद ! अब उसका विधान सुनिए ॥ ५४-५६ ॥

वायुतो वह्निपर्यन्तं रक्षसः शर्वगोचरम् ॥ ५६ ॥
सूत्रद्वयं पातयित्वा चतुर्धा प्रविभज्य तु ।
अराणि पञ्च पञ्चैव क्षेत्रमेकैकमालिखेत् ॥ ५७ ॥
अराणि शतमेवं स्युर्विधानं तस्य मे शृणु ।

वायु कोण से आग्नेय कोण तक तथा नैर्ऋत्य से ईशानकोण पर्यन्त दो रेखा बना कर उसे चार भागों में प्रविभाग कर पाँच-पाँच अरों का एक क्षेत्र बनाना चाहिए। इस प्रकार १०० अरों का निर्माण हो जाता है। हे नारद ! अब उसका विधान सुनिए ॥ ५६-५८ ॥

गायत्र्यादीनि यानि स्युस्तत्र च्छन्दस्त्रयं लिखेत् ॥ ५८ ॥
रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारके ।
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ॥ ५९ ॥
विलिखेदरगायत्रीं गायत्र्यादौ समाहितः ।
अराणां त्रिष्टुभं चैव त्रिष्टुभैव समालिखेत् ॥ ६० ॥
अनुष्टुभमराणां चानुष्टुभैव समालिखेत् ।
प्रागादिक्रमयोगेन यावदीशानगोचरम् ॥ ६१ ॥
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चाप्यरपार्श्वयोः ।
शतारीयं महापुण्या सा ब्रह्मास्त्रमयी परा ॥ ६२ ॥

गायत्री त्रिष्टुप् अनुष्टुप् ये जो तीन छन्द हैं, उन्हें रेफ, मन्त्राक्षर एवं तार (ॐ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर तारा (ह्रीँ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी, फिर रेफ इस क्रम से लिखे। इस प्रकार समाहित चित्त हो आदि गायत्री के अरे पर गायत्री लिखे। इसी प्रकार त्रिष्टुप् के अरों पर त्रिष्टुप् छन्द ही लिखे। फिर अनुष्टुप् के अरे पर अनुष्टुप् ही लिखे। व्यतिक्रम न करे। क्रम पूर्व दिशा से आरम्भ कर ईशानकोण पर्यन्त लिख कर समाप्त करना चाहिए। फिर उसके दोनों पार्श्वभाग में तत्तदक्षर संयुक्त मन्त्र लिखना चाहिए। यह शतारी महाविद्या महापुण्यदायिनी है और परा ब्रह्मास्त्रमयी है ॥ ५८-६२ ॥

पादैः पदैरक्षरैश्च त्रिधैव प्रतिलोमया ।
ब्रह्मदण्डब्रह्मशिरो ब्रह्मास्त्रमयतेजसा ॥ ६३ ॥
आन्तरं नेमिभागं तु गायत्र्या कल्पयेत् सुधीः ।
आग्नेयास्त्रस्वरूपिण्या त्रिष्टुभा प्रतिलोमया ॥ ६४ ॥
मध्यमं नेमिभागं तु कल्पयेन्मन्त्रवित्तमः ।
अनुष्टुभा तृतीयं तु नेमिभागं प्रकल्पयेत् ॥ ६५ ॥

त्रैयम्बकास्त्ररूपिण्या वर्णशः प्रतिलोमया ।
विलिखेत् प्रतिलोमास्ता मन्त्रेण ग्रथिताः सुधीः ॥ ६६ ॥
तारतारानुताराभिर्ग्रथितं हुं बहिर्लिखेत् ।
शक्तितारमास्त्रिस्त्रिः परितो बहिरालिखेत् ॥ ६७ ॥
फट्कारग्रथितां बाह्ये मातृकां प्रधिमालिखेत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिज्योतिश्चक्रमुत्तमम् ॥ ६८ ॥
नानास्त्रग्रामसम्भिन्नं ब्रह्मज्योतिरनामयम् ।

इन छन्दो के पाद पद तथा अक्षरो के तीन प्रकार से विलोम लिखने पर ये ही ब्रह्मदण्ड, ब्रह्मशिर तथा ब्रह्मास्त्र के तेज से युक्त हो जाते है । सुधी साधक इस चक्र के भीतर रहने वाले नेमि को गायत्री से लिख कर रचना करे । आग्नेयस्वरूपिणी प्रतिलोम त्रिष्टुप् छन्द लिख कर मध्यम नेमि की रचना करे । इसके बाद अनुष्टुप् छन्द द्वारा तृतीय नेमि की रचना करे । आग्नेयास्त्ररूपिणी इस शक्ति का एक-एक वर्ण प्रतिलोम रूप से मन्त्र के एक-एक अक्षर से ग्रथितकर सुधी साधक लिखे । फिर उसके बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (क्लीँ) से ग्रथित 'हुँ' लिखे । उसके भी बाहर चारो ओर शक्ति (ह्रीँ), तार (ॐ) एवं रमा (श्रीँ) इस मन्त्र को तीन-तीन बार लिखे । उसके बाहर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृका वर्णो को लिखे । यह सर्वश्रेष्ठ त्रिज्योति चक्र तीनो लोकों में प्रसिद्ध है और अनेक अस्त्रसमूहों से मिश्रित अनामय ब्रह्मज्योति है ॥ ६३-६९ ॥

ब्रह्मचक्रम्

अस्माच्चक्राद् बहिः पञ्च होतारः सग्रहाः स्मृताः ॥ ६९ ॥
सम्भाराः पत्नयश्चैव दक्षिणा हृदयानि च ।
तद्बहिः शतरुद्राणि पञ्च ब्रह्माणि तद्बहिः ॥ ७० ॥
त्वरितां तद्बहिश्चैव सूक्तं पौरुषमेव च ।
श्रीसूक्तं तद्बहिश्चैव गायत्रीं व्याहृतित्रयम् ॥ ७१ ॥
प्रणवं चेति परितः पङ्क्तीरेताः क्रमाल्लिखेत् ।
एतद् ब्रह्ममयं चक्रं सर्वच्छन्दोविनिर्मितम् ॥ ७२ ॥
सर्वदुःखोपशमनं सर्वपापनिबर्हणम् ।
स्मृतिमात्रेण सर्वेषामभीष्टार्थप्रदं सदा ॥ ७३ ॥

इस चक्र से बाहर ग्रहों से संयुक्त पाँच होता कहे गए हैं और इसकी यज्ञ सामग्री (सम्भार, पत्नियाँ) दक्षिणा तथा हृदय होते हैं । उसके बाहर सौ रुद्र, उसके भी बाहर पाँच ब्रह्मा, उसके भी बाहर त्वरिता शक्ति, उसके भी बाहर पौरुष सूक्त, उसके बाहर श्रीसूक्त, उसके भी बाहर तीन व्याहृतियों से संयुक्त गायत्री मन्त्र, फिर प्रणव, तदनन्तर चारों ओर पङ्क्ति बना कर रेखा क्रमशः लिखे, यही ब्रह्ममय चक्र है जो समस्त छन्दों से निर्मित है । यह सारे दुःखों से मुक्त करने वाला है । सभी पाप-तापों का विनाशक है । किं बहुना, स्मरण मात्र से सभी प्रकार का अभीष्ट प्रदान करने वाला है ॥ ६९-७३ ॥

सहस्रारमातृकाचक्रम्

बहिः प्रवर्तते चास्मान्मातृकाचक्रमुत्तमम् ।
सोमसूर्यौर्वबिन्दूनां कूटं तु परितो लिखेत् ॥ ७४ ॥

इसके भी बाहर सर्वश्रेष्ठ मातृका चक्र की प्रवृत्ति कही गई है । इसके चारों ओर सोम, सूर्य तथा और्वर (अग्नि) के बीज का कूट लिखे ॥ ७४ ॥

तारतारानुताराभिर्ग्रथितं मन्त्रनायकम् ।
तद्बहिर्विलिखेन्मन्त्री तारादिग्रथितान् पुनः ॥ ७५ ॥
नामवर्णान् लिखेद् बाह्ये तद्बहिर्मन्त्रमिश्रितान् ।
मातृकां विलिखेद् बाह्ये सहग्रथितमातृकाम् ॥ ७६ ॥

उसके बाहर तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्रराज लिखे इसके बाद पुनः तार, तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से ग्रथित मन्त्र से मिश्रित साध्य के नाम वर्णो को लिखे । उसके भी बाहर सह से ग्रथित मातृका वर्णो को लिखे ॥ ७५-७६॥

एतदक्षं समुद्दिष्टं मातृकाचक्रसम्भवम् ।
तारतारानुताराभिर्वर्णमातृकयापि च ॥ ७७ ॥
ग्रथितं कल्पयेन्नाभिं स्राकारं परमाद्भुतम् ।
स्राकारग्रथितां चापि मातृकां बहिरालिखेत् ॥ ७८ ॥

मातृका चक्रों से उत्पन्न यही सहस्रार मातृका का अक्ष कहा जाता है । इसके बाद तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतारा (श्रीँ) से संयुक्त मातृका वर्णों से ग्रथित स्रकार लिख कर अत्यन्त अद्भुत नाभि की रचना करे । उसके बाहर स्रकार से ग्रथित मातृका वर्णो को लिखे ॥ ७७-७८ ॥

एषा नाभिः समुद्दिष्टा शब्दब्रह्ममयी परा ।
अराण्यस्य सहस्रं स्युस्तद्विधानमिदं शृणु ॥ ७९ ॥

यही परा शब्दब्रह्ममयी नाभि कही जाती है । इसमें सहस्र अरे होते है । उसका विधान हे नारद ! सुनिए ॥ ७९ ॥

पूर्वादिषु विभक्तेषु सूत्रैः क्षेत्रेषु पूर्ववत् ।
पञ्च पञ्चाशतं कुर्यादराणि प्रतिभागशः ॥ ८० ॥
पञ्चाशद्भिस्तु विंशत्या सहस्रारं भवेत् तलम् ।
तारतारानुताराभिर्वाग्भवाद्यैस्त्रिभिस्तथा ॥ ८१ ॥
चतुर्भिर्मातृकाबीजैराद्यैरौर्वान्तिमैः स्वरैः ।
आदिद्विसप्तसम्भिन्नैः काद्यैः क्षान्तैश्च वर्णकैः ॥ ८२ ॥
त्रैलोक्यैश्वर्यदोपेतैः शतैः पञ्चभिरक्षरैः ।
तावद्भिश्चैव सृष्ट्यन्तैः सहस्रेणेति संहतैः ॥ ८३ ॥
अराणि कल्पयेदेवं सहस्रं तद्विधिं शृणु ।

सूत्र के द्वारा पूर्व से पश्चिम तक पाँच रेखा निर्माण करे । फिर उसको ५० भाग में प्रविभक्त करे । उस ५० रेखा में प्रत्येक में २०-२० अरों का निर्माण करे । इस प्रकार १००० अरों के तल का निर्माण हो जाता है । इसके बाद तार (ॐ), तारा (ह्रीँ) एवं अनुतार (श्रीँ) (३) वाग्भवादि ३ (ऐं ह्रीं क्लीँ ३) आदि के चार मातृका बीजों से संयुक्त अकारादि से लेकर १४ स्वर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ) तथा क से लेकर क्ष व्यञ्जन पर्यन्तं ३४ व्यञ्जनों को लिखे । इस प्रकार कुल ५० वर्णों के एक-एक अक्षरों को एक-एक अरों पर कुल १० बार लिख कर ५०० अरों को पूरा करे । इसी प्रकार उतने ही वर्णों को सृष्ट्यन्त (संहार) क्रम से शेष अरों पर लिखकर कुल सहस्र अरों की पूर्त्ति करे । इस प्रकार अरों की रचना करे । हे नारद ! अब आगे की विधि श्रवण कीजिए ॥ ८०-८४ ॥

रेफं मन्त्राक्षरं तारं रेफं मन्त्रार्णतारके ॥ ८४ ॥
रेफं मन्त्रार्णलक्ष्म्यौ च रेफमित्यनया दिशा ।
प्रागादिक्रमयोगेन लिखेदरसहस्रकम् ॥ ८५ ॥
सहस्रारीयमुद्दिष्टा शब्दब्रह्ममयी परा ।
ऐश्वर्यं बिन्दुसंयुक्तं वाग्भवं सम्प्रचक्षते ॥ ८६ ॥
करालविबुधाख्यस्था माया व्यापिसमन्विता ।
कामराजमयं बीजं सोमौर्वव्यापिसंयुता ॥ ८७ ॥
बीजं सारस्वतमिदं वाग्भवाद्या इमे त्रयः ।
कालानलस्थकमलभास्करानिलगामिनी ॥ ८८ ॥

रेफ, मन्त्राक्षर, तार, रेफ, मन्त्राक्षर, तारा (ह्रीँ), फिर रेफ, मन्त्राक्षर, लक्ष्मी (श्रीँ) फिर रेफ इस क्रम से पूर्वादिदिशा के क्रम से उन सभी सहस्र अरों पर लिखे । यही सहस्रारीय महाविद्या है, जिसे परा शब्द ब्रह्ममयी भी कहते है । बिन्दु से संयुक्त माया (ईकार) इसको व्यापी (ॐ) से समन्वित (अर्थात् क्लीँ) करे । यह कामराज बीज कहा जाता है । सोम (सकार) व्यापि से संयुक्त औं (सौं) यह सारस्वत बीज है । ये तीनों ही वाग्भवादि कहे जाते हैं । कालानल (र), कमल (क), भास्कर (ष्), अनिल (ह) में रहने वाली व्यापी (ॐ) से संयुक्त माया ईकार से संयुक्त ये सर्वश्रेष्ठ मातृका के आदि बीज हैं अर्थात् रीं, कीं, षीं, ह्रीँ ये हैं ॥ ८४-८८ ॥

माया व्यापिसमायुक्ता मातृकाबीजमादिमम् ।
अशेषभुवनाधारसूर्यानलविहारिणी ॥ ८९ ॥
पञ्चबिन्दुर्व्यापियुता द्वितीयं बीजमुच्यते ।
सोमानलस्थसूक्ष्मस्थानन्दव्यापिसमन्वयः ॥ ९० ॥
तृतीयं बीजमुद्दिष्टं चतुर्थमपि मे शृणु ।
सोमतालाङ्कसूक्ष्मस्थकालपावकगोपना ॥ ९१ ॥
कूटीकृता व्यापियुता चतुर्थं बीजमुत्तमम् ।

अशेषभुवनाधार (र), सूर्य (ह) तथा अनिल (ह) में विहार करने वाली, पञ्चबिन्दु (ई) व्यापी (ॐ) से समायुक्त मातृका के द्वितीय बीज कहे गए हैं अथात् ये रीं हीं हीं हैं । सोम (स्) अनल (ष्) में रहने वाला, सुसूक्ष्म (य) में रहने वाला आनन्द (आ) से संयुक्त व्यापी अर्थात् सां षां यां ये मातृका के तृतीय बीज कहे गए हैं । हे नारद ! अब चतुर्थ बीज को सुनिए । सोम (स्), तलाङ्क (त्), सूक्ष्मस्थ (यकार), कालपावक (र) और गोपना (आ) व्यापी से संयुक्त इनका कूट स्त्याम् मातृका का चतुर्थ बीज कहा गया है ॥ ८९-९२ ॥

बीजानीमानि चत्वारि मातृकायां महामुने ॥ ९२ ॥
तत्तदक्षरसंयुक्तं मन्त्रं चोभयपार्श्वयोः ।
अराणां विलिखेन्मन्त्री सहस्रारविधिक्रमे ॥ ९३ ॥

हे महामुने ! ये चार ही मातृका के बीज हैं । सहस्रार चक्र की विधि के क्रम में इन मातृका वर्णों से संयुक्त मन्त्र के तत्तदक्षरों को दोनों पार्श्व में लिखे ॥ ९२-९३ ॥

मन्त्रार्णग्रथितां मन्त्री मातृकां प्रतिलोमिकाम् ।
विलिखेत् परितो मन्त्री तारादिग्रथितं च हुम् ॥ ९४ ॥
बहिर्लिखेच्छक्तितारमास्त्रिस्त्रिर्विचक्षणः ।
फट्कारग्रथितां चापि मातृकां प्रधिमालिखेत् ॥ ९५ ॥
एतत् तन्मातृकाचक्रं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यद्बीजं मातृकाक्षाद्यं तद्बहिः प्रधिमालिखेत् ॥ ९६ ॥
ततश्चिन्तामणिं बाह्ये तद्बहिश्च लिखेत् पराम् ।
परावरां तद्बहिश्च तद्बहिः श्रियमालिखेत् ॥ ९७ ॥
तद्बहिस्तारिकां चैव तद्बहिस्तारकं परम् ।
तद्बहिश्चाङ्कुशांस्त्रिस्त्रिः पाशांस्त्रिस्त्रिश्च तद्बहिः ॥ ९८ ॥
आचक्रादीनि चाङ्गानि तद्बहिः परितो लिखेत् ।
तद्बहिश्चापि दिग्बन्धं तस्य रूपमिदं शृणु ॥ ९९ ॥

मन्त्र के अक्षर से ग्रथित प्रतिलोम मातृका को मन्त्रज्ञ साधक उन अरों के चारों ओर तथा तार, तारा और अनुतारा से ग्रथित हुँ लिखे । उसके बाहर विचक्षण साधक शक्ति (ह्रीं), तार (ॐ) एवं रमा (श्रीं) इन बीजाक्षरों को तीन-तीन बार लिखे । फिर प्रधि पर फट्कार से ग्रथित मातृकाओं को लिखे । यह वह मातृका चक्र है, जहाँ सब कुछ प्रतिष्ठित है । क से लेकर क्ष वर्ण पर्यन्त जो मातृका के बीज हैं, उन्हें प्रधि के बाहरी भाग पर लिखे । उसके बाहर चिन्तामणि मन्त्र लिखे । उसके बाहर पराविद्या, उसके बाहर परावरा, उसके भी बाहर श्रीं, उसके बाहर तारा (ह्रीं) और उसके भी बाहर तारक (ॐ) लिखे । उसके भी बाहर तीन-तीन अङ्कुश, उसके भी बाहर तीन-तीन पाश (आँ), उसके भी बाहर चारों ओर चक्र से आरम्भ कर उसके सभी अङ्गों को लिखे । उसके बाहर दिग्बन्धन करे । हे नारद ! अब उसका क्रम सुनिए ॥ ९४-९९ ॥

पुरुषाय ततः स्वाहा दिङ्नामामर्षणं ततः ।

सहेति च ततः पश्चाद्बन्धयामि विदिग्गतम् ॥ १०० ॥

पुरुषाय स्वाहा, इसके बाद दिशा का नाम, इसके बाद अमर्षणं, इसके बाद सह, फिर बन्धयामि अर्थात् पुरुषाय स्वाहा पूर्वां अमर्षणं सह बन्धयामि इस क्रम से लिखे। इस प्रकार दिशाओं का बन्धन करे ॥ १०० ॥

आत्मने च ततः स्वाहा विदिङ्नामाप्यमर्षणम् ।
सहेति च ततः पश्चाद्बन्धयामि विदिग्गतम् ॥ १०१ ॥
विलिखेच्चक्रगायत्रीमग्निप्राकारमन्ततः ।
आकाशमण्डलं बाह्ये तद्बीजेन समन्वितम् ॥ १०२ ॥
वायुबीजं तु तद्बाह्ये स्वबीजेन समन्वितम् ।
वह्निबीजं तु तद्बाह्ये स्वबीजेन समन्वितम् ॥ १०३ ॥
आप्यं तु मण्डलं बाह्ये स्वबीजेन समन्वितम् ।

इसके बाद चारों कोणों का दिग्बन्धन इस प्रकार करे—'आत्मने स्वाहा' इसके बाद विदिक् (कोण) का नाम, फिर अमर्षण, फिर सह, इसके बाद बन्धयामि इस प्रकार से सभी विदिक् का बन्धन करे। इसके बाद चक्रगायत्री लिखे। फिर अग्निप्राकार लिखे। फिर उसके बाहर खं बीज सहित आकाशमण्डल बनावे। इसके भी बाद स्व बीज (यं) के सहित वायु बीज यं लिखे। इसके भी बाद स्वबीज रं के साथ अग्नि बीज रं लिखे। इसके बाद जल बीज (वं) के सहित आप्यमण्डल लिखे ॥ १०१-१०४ ॥

तद्बाह्ये पार्थिवं बिम्बं स्वबीजेन समन्वितम् ॥ १०४ ॥
प्राणः सूक्ष्मोऽनलश्चैव वारुणः पुरुषेश्वरः ।
सव्यापिनः क्रमादेतद् व्योमादेर्बीजपञ्चकम् ॥ १०५ ॥

इसके भी बाहर 'ल' इसे स्वबीज लं के साथ पार्थिव मण्डल का निर्माण करे। व्यापक अ से युक्त प्राण (ह) यह आकाश बीज है, व्यापक (अ) से युक्त सूक्ष्म (य) यह वायु बीज है। व्यापी से संयुक्त अनल् (र्) यह अग्नि बीज है। व्यापि (अ) से संयुक्त वारुण (व) यह जल बीज है। व्यापी (अ) से संयुक्त पुरुषेश्वर (ल) यह पार्थिव बीज है। इस प्रकार पाँचों तत्त्वों के बीज का वर्णन किया ॥ १०४-१०५ ॥

अनलः कमलश्चैव भास्करो मर्दनस्तथा ।
अनलः सूक्ष्म औौर्वश्चाप्यूर्जः पिण्डीकृता इमे ॥ १०६ ॥
सव्यापिनः स्मृतं बीजं चिन्तामणिरिदं परम् ।

अनल (र्), सूक्ष्म (य्), औंर्व (औं) और ऊर्ज (ऊकार) इनको एक में मिला कर व्यापी से संयुक्त करे तो यह सर्वश्रेष्ठ चिन्तामणि बन जाता है। (द्र० मन्त्रमहोदधि) ॥ १०६-१०७ ॥

परा नाम महाविद्या सोमस्थौर्वस्थसृष्टिका ॥ १०७ ॥
सव्यापी सोमगो विष्णुरियं प्रोक्ता परावरा ।

सौदर्शनेन कूटेन पृथिवीं परिवेष्टयेत् ॥ १०८ ॥
योनिं सुदर्शनस्याथ वेष्टयेत् तारया बहिः ।
सोमः सूर्यस्ततः सोमः कालपावकयोर्द्वयम् ॥ १०९ ॥
सौदर्शनमिदं कूटं निरचां पञ्चकं हलाम् ।
एतत् सौदर्शनं रूपं कालानलसमद्युति ॥ ११० ॥
शमयेत् कूटमेतद्वै तारयामृतरूपया ।

सोम (स) में रहने वाली और और्व (औ) में रहने वाली सृष्टिकर्मी परा नाम की महाविद्या है । व्यापी (ॐ) के साथ सोम (स) दो कालपावक (र् र्) यह सुदर्शन कूट है । ये पाँचों हल वर्ण वाले हैं । इसमें एक भी अच् नहीं रहता । कालानल के समान प्रकाश करने वाला यह सुदर्शन का रूप है । अमृतरूपा तारा (ह्रीँ) से इस कूट का शमन करना चाहिए ॥ १०७-१११ ॥

अग्नीषोमात्मकं चक्रमेतत्ते दर्शितं मुने ।
वैष्णवं परमं तेजो ध्याहि चक्रमिदं सदा ॥ १११ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां वासुदेवादि-
यन्त्रनिरूपणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
॥ आदितः श्लोकाः १४१५ ॥

* * *

हे मुने ! इस प्रकार हमने अग्नीषोमात्मक चक्र का दिग्दर्शन आपको कराया । यह वैष्णव तेज है । अतः निरन्तर इस चक्र का ध्यान कीजिए ॥ १११ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के वासु-
देवादियन्त्रनिरूपण नामक तेइसवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी
पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

यन्त्रदेवताध्याननिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक वार ध्यान करने पर अनेक करोड़ों जन्मों के पाप-ताप को दूर कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

उक्तानामष्टानां चक्राणां संक्षेपेण फलकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

सोमसूर्यदहनप्रभोज्ज्वलं चक्रमेतदुदितं महामुने ।
वाङ्मयं सकलमन्त्रसम्मितं शब्दशब्द्यमखिलं यदुद्गतम् ॥ १ ॥

पूर्व में कहे गए आठ चक्रों का संक्षेप में फल कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महामुने नारद ! चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि का फल के समान प्रकाशमान इन आठ चक्रों का हमने वर्णन किया । ये वाङ्मय चक्र सभी मन्त्रों से सम्मित हैं, सभी शव्द से वाच्य हैं और यह सारी सृष्टि इन्हीं से प्रादुर्भूत हुई है ॥ १ ॥

ब्रह्मचक्रमुदितं यदान्तरं केवलं विमलधीप्रदं मुने ।
विष्णुचक्रमुदितं यदद्भुतं व्याप्तिकान्तिमतिविक्रमप्रदम् ॥ २ ॥

हे महामुने ! हमने इन आठ चक्रों में जो **ब्रह्मचक्र** कहा है वह केवल बुद्धि प्रदान करने वाला है । इसके बाद जो अपना अद्भुत **विष्णुचक्र** कहा है वह व्यक्ति के लिए कान्ति, सुमति तथा विक्रम (वल) प्रदान करने वाला है ॥ २ ॥

यत् तृतीयमुदितं महाद्भुतं
चक्रमुज्ज्वलयशोऽर्थदं तु तत् ।
यत्तु चक्रमुदितं तुरीयकं
मोक्षदं मुनिगणोदितं मुने ॥ ३ ॥

तीसरा जो अत्यन्त अद्भुत प्रकाशमान चक्र हमने कहा वह उज्ज्वल यश देने वाला

और अर्थ देने वाला है । हे मुने ! जो चौथा चक्र कहा है, उसका वर्णन मुनियों ने किया है और वह मोक्ष देने वाला है ॥ ३ ॥

पञ्चमं विजयदायि कीर्तिदं
षष्ठमुग्रगदमृत्युनाशनम् ।
ब्रह्मवर्चसविधायि सप्तमं
सम्पदर्थविजयार्थमष्टमम् ॥ ४ ॥

पाँचवाँ चक्र विजय देने वाला एवं कीर्त्ति प्रदान करने वाला है । छठाँ चक्र महा भयङ्कर रोगों तथा मृत्यु का विनाशक है । सातवाँ ब्रह्मवर्चस् प्रदान करने वाला तथा आठवाँ सम्पत्ति, अर्थ एवं विजय प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥

विस्तरेण तन्महिमवर्णनस्याशक्यत्वम्

एकैकशोऽल्पश इदं गदितं फलं ते
चक्राष्टके सकलयोगिमुनीन्द्रवन्द्ये ।
वर्षायुतैर्बहुभिरप्यखिलात्मकस्य
शक्त्या न विस्तृतिरमुष्य मयाभिधातुम् ॥ ५ ॥

हे नारद ! यहाँ हमने एक-एक चक्र का फल आपसे कहा—सम्पूर्ण योगीजनों एवं मुनिगणों से वन्दित इन आठ चक्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझसे १० हजार वर्षों तक भी शक्य नहीं है ॥ ५ ॥

मन्त्राक्षरप्रथितभावविभेदपूर्वं
मन्त्री यजेत विधिवन्मनुदेवतास्ताः ।
आकारशक्तिपरिवारविभूषणास्त्र-
वीर्यप्रभावविषयैश्च विचिन्तयेत् ताः ॥ ६ ॥

मन्त्रज्ञ साधक मन्त्राक्षरों में कहे गए समस्त भावों को विभेदपूर्वक तत्तन्मन्त्र देवताओं का विधिपूर्वक यजन करे । उन-उन चक्र के देवताओं के आकार, शक्ति, परिवार, भूषण, अस्त्र, वीर्य, प्रभाव तथा विषयों का यजन काल में ध्यान भी करे ॥ ६ ॥

तत्तच्चक्रदेवतास्वरूपतद्ध्यानादिप्रपञ्चनम्

आद्यं निरञ्जनमशेषजगत्प्रसूति-
त्राणप्रमाथनियमोद्यदनुग्रहस्थम् ।
सम्पूर्णशक्तिमतरङ्गमहार्णवाभं
ध्यायेद्धरिं प्रणवगोचरमादिचक्रे ॥ ७ ॥

उन-उन चक्रों के देवताओं के ध्यान का विस्तार से वर्णन—आदि चक्र में माया रहित समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले, रक्षा करने वाले एवं संहार करने वाले, नियन्त्रित करने वाले तथा उस पर अनुग्रह करने वाले, समस्त ऐश्वर्यादि शक्तियों से युक्त, शान्त, महासागर के समान स्थित, मात्र ॐकार से ज्ञात होने वाले हरि का ध्यान करे ॥ ७ ॥

श्वेतं प्रसन्नवदनं कमलायताक्षं
पीताम्बरं पृथुलवक्षसमात्मयोनिम् ।
पीनोरुदीर्घभुजवृन्दधृतारिशङ्ख-
कौमोदकीसरसिजं खलु विष्णुचक्रे ॥ ८ ॥

दूसरे चक्र में श्वेतवर्ण वाले, प्रसन्नमुख कमल के समान विशाल नेत्र वाले, पीताम्बर धारण किये हुये । परिपुष्ट वक्षःस्थल वाले, स्वयं अपने में ही रहने वाले, मोटे ऊरु वाले तथा अपने विशाल-विशाल भुजाओं में चक्र, शङ्ख, कौमोदकी एवं कमल धारण करने वाले विष्णु का ध्यान करे ॥ ८ ॥

श्यामं किरीटिनमुदारचतुर्भुजस्थ-
कौमोदकीकमलवारिजवर्यचक्रम् ।
नारायणं नयननन्दनमादिदेवं
ध्यायेच्छ्रिया सह तृतीयपदस्थचक्रे ॥ ९ ॥

तीसरे चक्र में श्याम वर्ण वाले उदार मुकुट धारण करने वाले, अपने चारों भुजाओं में कौमोदकी, गदा, कमल, शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुये, नयनाभिराम आदिदेव श्रीनारायण का लक्ष्मी सहित ध्यान करे ॥ ९ ॥

कुन्देन्दुगौरमरविन्ददलायताक्षं
शुद्धाक्षमालममलोद्यतबोधमुद्रम् ।
बाहुद्वयीविधृतचक्रविशुद्धशङ्खं
तं वासुदेवमिति चिन्तय तुर्यचक्रे ॥ १० ॥

चतुर्थ चक्र में कुन्द तथा इन्दु के समान गौर वर्ण वाले, कमलपत्र के समान विशाल नेत्रों से संयुक्त, विशुद्ध अक्ष की माला धारण किये हुये, अमल (निर्विकार), ज्ञानमुद्रा में स्थित, अपने दो बाहुओं में चक्र एवं स्वच्छ शङ्ख धारण किये हुये उन भगवान् वासुदेव का चिन्तन करे ॥ १० ॥

शङ्खारिपङ्कजगदाङ्कुशपाशशार्ङ्ग-
सौनन्दकान् दधतमष्टभिरुग्रहस्तैः ।
तार्क्ष्यस्थितं रजतशैलनिभं पुराणं
संचिन्तयेदजितचक्रगतं पुमांसम् ॥ ११ ॥

पाँचवें अजितनामक चक्र में अपने आठों हाथों में शङ्ख, चक्र, कमल, गदा, अङ्कुश, पाश, शार्ङ्ग धनुष, सौनन्दक अस्त्र धारण किये हुये गरुड़ पर स्थित चाँदी के पर्वत के समान उद्दीप्त वर्ण वाले अनिर्वचनीय पुरुष का ध्यान करे ॥ ११ ॥

क्रूरोग्रवक्रनखकोटिनिकृत्तदैत्य-
वक्षःस्थलोच्चलितशोणितदिग्धदेहम् ।

घोरप्रकारनयनत्रयदुर्निरीक्षं
षष्ठे विचिन्तय मुने नरसिंहमीशम् ॥ १२ ॥

अपने क्रूर (निर्दयी), उग्र, वक्र नखों के अग्रभाग से हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का वक्षःस्थल विदाहरण से निकलती हुई उग्रधारा से लथ-पथ शरीर वाले, अत्यन्त भयङ्कर तीनों नेत्रों से सर्वथा दुर्निरीक्ष्य नारसिंह भगवान् का षष्ठचक्र में चिन्तन करे ॥ १२ ॥

सोमाग्निसूर्यकिरणोद्गमपुञ्जकुञ्ज-
मध्यस्थितं विधृतपद्मगदारिशङ्खम् ।
छन्दःस्थितं भुवनकारणमप्रमेयं
श्रीशं विचिन्तय मुने पुरुषं पुराणम् ॥ १३ ॥

हे महामुने ! इसके बाद चन्द्रमा, अग्नि एवं सूर्य किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान निकुञ्ज पुञ्जों के मध्य में स्थित पद्म, गदा, चक्र एवं शङ्ख धारण किये हुये, छन्दःस्वरूप गरुड़ पर सवार, जगत् के कारण तथा प्रमाण से रहित भगवान् लक्ष्मीपति का सातवें एवं आठवें चक्र में ध्यान करे ॥ १३ ॥

मातृकाचक्रे लक्ष्म्या ध्येयत्वम्

गोक्षीरशङ्खहिमदीधितिदेवसिन्धु-
कुन्दप्रभाविमलपङ्कजशङ्खहस्ता ।
स्मेरप्रसन्नवदना कमलायताक्षी
ध्येया स्वचक्रभवनोपरि मातृका सा ॥ १४ ॥

गोदुग्ध, शङ्ख, चन्द्रमा, देवनदी (गङ्गा) एवं कुन्द के समान प्रभा वाली, स्वच्छ कमल एवं शङ्ख अपने हाथों में लिए हुये मन्दस्मित एवं प्रसन्न मुख वाली, कमल के समान विशाल नेत्रों वाली उन लक्ष्मी का साधक को उस मातृका चक्र में ध्यान करना चाहिए ॥ १४ ॥

आलोलशूलदशकं त्रियुगाधिकं स्वै-
र्हस्तैर्द्विरष्टभिरथो दधती जपाभा ।
चिन्तामणिस्थितिमती नयनत्रयाढ्या
शक्तिर्हरेरिति मुने मनसा विचिन्त्या ॥ १५ ॥

अपनी १६ भुजाओं में अत्यन्त चमकीले १० एवं त्रियुग (६) कुल १६ शूलों को धारण करने वाली, जपा कुसुम के समान लाल वर्ण वाली, चिन्तामणि के समान सबका अभीष्ट पूर्ण करने वाली, तीन विशाल नेत्रों वाली भगवान् विष्णु की शक्तिभूता महालक्ष्मी का मन से ध्यान करना चाहिए ॥ १५ ॥

पूर्णेन्दुशीतलरुचिर्धृतबोधमुद्रा
बाह्वन्तरस्थनिजबोधनपुस्तकाढ्या ।

देवी परा परमपूरुषदिव्यशक्ति-
श्चिन्त्याप्रसन्नवदना सरसीरुहाक्षी ॥ १६ ॥

उस मातृकाचक्र पर पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शीतल शरीर वाली, कान्ति वाली ज्ञानमुद्रा में स्थित, अपनी बाहुओं में आत्मज्ञान कराने वाली पुस्तक लिए हुये परा परमपुरुष परमात्मा की दिव्यशक्ति प्रसन्नवदना कमलायताक्षी भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १६ ॥

पद्मारुणाभयवराङ्कुशपाशहस्ता-
रक्ताम्बरा विपुलवारिजपत्रनेत्रा ।
सूक्ष्मप्रभास्थितपरावरतत्त्वजाता
चिन्त्यादिशक्तिरपि सा च परावराख्या ॥ १७ ॥

कमल के समान रक्त वर्णों वाली, अपनी भुजाओं में अभय, वर, अङ्कुश एवं पाश लिए हुये, रक्तपट धारण करने वाली, विशाल कमल सरीखे नेत्रों वाली, सूक्ष्म प्रभा में स्थित, परावर तत्त्व में उत्पन्न एवं परावरा उस आदि शक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ १७ ॥

बाहुस्थपाशवलिताखिलजीववर्गा
बन्धूकपद्मकुसुमारुणदेहकान्तिः ।
पीनस्तनी मदविघूर्णितनेत्रपद्मा
लक्ष्मीशपार्श्वनिलयाखिलदेवतेयम् ॥ १८ ॥

अपनी बाहुओं में रहने वाले पाश से समस्त जीवों को अपने वश में करती हुई वन्धूक एवं कमल के समान अरुण की कान्ति से संयुक्त देह वाली, मोटे वक्ष:स्थलों वाली, मद्य के आवेश में, अपने कमल के समान नेत्रों से घूरने वाली तथा लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के समीप में रहने वाली यह सारे संसार की देवता हैं ॥ १८ ॥

वक्राग्रनासिनिशिताङ्कुशकीलितेन
नम्रेण जीवनिकरेण समीड्यमाना ।
दिव्याङ्कुशस्थितिमती हरिशक्ति-
राद्या ध्येया समाधिनिरतेन महाप्रभावा ॥ १९ ॥

नासिका के टेढ़े अग्रभाग में अत्यन्त तीखा अङ्कुश लिए हुये महाप्रभाव वाली आद्या शक्ति का ध्यान समाधिस्थ पुरुष को करना चाहिए ॥ १९ ॥

अङ्गमन्त्रदेवतातद्ध्यानादिप्रपञ्चनम्

अङ्गं तु चक्रमयदेवसमानरूप-
माचक्रपूर्वमखिलं गदितं यदादौ ।
गायत्र्यपि ज्वलितपावकतुल्यवर्णा
चक्रेशतुल्यविभवा विपुलस्तनाढ्या ॥ २० ॥

चक्र में रहने वाले उन-उन देवताओं के अङ्गभूत परिवार भी उन्हीं के समान होते

हैं, यह बात चक्र निर्माण के पूर्व आदि में हम कह आये है। (द्र०) गायत्री भी जलती हुई अग्नि के समान वर्ण वाली है उसका भी प्रभाव चक्रेश के समान है, जिनके स्तन बहुत बड़े हैं ॥ २० ॥

ज्वालाकुलद्रुतसमस्तसुरारिवर्ग
प्राकारमग्निमयमेव वदन्ति सन्तः ।
व्योमस्थशक्तिरपि सूर्यसहस्रमाला
नीलाम्बुजद्युतिमती मनसा विचिन्त्या ॥ २१ ॥

जिसकी ज्वाला से समस्त सुरारिवर्ग भाग जाते है उस अग्निमय प्राकार को ऐसा सन्त लोग कहते हैं। आकाश में जाज्वल्यमान शक्ति भी सहस्रों सूर्यमाला के समान तेजस्विनी है जो नीले रङ्ग के प्रकाश के समान जगमगाती रहती है ऐसी शक्ति का मन से ध्यान करना चाहिए अर्थात् सहस्रों सूर्यमाला (हकार बीज वाली) व्योमस्थ शक्ति, जिसकी आभा नीले रङ्ग के कमल के समान है, उस आकाश बीज वाली (ह) शक्ति का मन से ध्यान करना चाहिए ॥ २१ ॥

मालां चतुर्गतिमयीं वपुषा दधाना
वायुस्थशक्तिरपि धूम्रतनुर्विचिन्त्या ।
कालानलाख्यतरुणार्कसहस्रमाला
तेजःस्थशक्तिरपि रक्ततनुर्विचिन्त्या ॥ २२ ॥

चतुर्गतिमयी (यकार बीज स्वरूपा) माला को शरीर से धारण करने वाली एवं धूम के समान शरीर की आभा वाली ऐसी वायु में रहने वाली शक्ति (य) का ध्यान करना चाहिए। दोपहर मे तपते हुये सहस्रों सूर्य के समान कालानल (रु) कही जाने वाली अरुण वर्ण की तेजःस्थ शक्ति (रं) का ध्यान करना चाहिए ॥ २२ ॥

पीयूषरूपरचना सलिलस्थशक्ति-
र्ध्येया वराहनियुतायुतक्लृप्तमाला ।
उत्तप्तकाञ्चनरुचिः पुरुषेश्वराढ्या
भूशक्तिरादिपुरुषस्य विचिन्तनीया ॥ २३ ॥

पीयूष रूप के समान जिसकी रचना है और जो नियुत अयुत वराह (व) की माला वाली हैं ऐसी सलिलस्थशक्ति (वं) का ध्यान करना चाहिए तथा तपाये गए सुवर्ण के समान कान्तिमती पुरुषेश्वर (लं) का ध्यान करना चाहिए ॥ २३ ॥

सुदर्शनमयसर्वचक्रकूटध्यानम्

कालानलायुतसहस्रसमानरूपं
कूटं सुदर्शनमयं मनसा विचिन्त्यम् ।
तापातुरक्वथदशेषसुरारिमेदो-
निष्यन्दमेदुरितदीप्तिशिखाजटालम् ॥ २४ ॥

हजारों कालानल के समान रूप वाले सुदर्शनमय कूट (=तेज) का मन से ध्यान करना चाहिए। जिसके चमकते हुये तेज से कराहते हुये अशेष असुरों के मेद से चूते हुये उस तेज का ध्यान करना चाहिए ॥ २४ ॥

सौदर्शनसर्वमन्त्रमूलभूतशक्तिध्यानम्

सूर्येन्दुवह्निनयना तरुणार्कवर्णा
व्याप्य स्थिता जगदशेषमशेषवन्द्या ।
चक्राणि बाहुनिवहैर्दधती सहस्रं
योनिः सुदर्शनमनोरिति चिन्तनीया ॥ २५ ॥

सूर्य-इन्द्र तथा अग्नि रूप नेत्रों वाली, दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी, जो सबको व्याप्त कर स्थित है और समस्त जगत् से वन्दना के योग्य है, जो अपने भुजा समूहों में सहस्रों चक्र धारण करती है, जो समस्त सुदर्शन मन्त्रों की जननी है। उस शक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ २५ ॥

उक्तेषु यन्त्रेषु द्विजस्यैवाधिकारः

लेशतो गदितमेतदुदारं रक्षणं सकललोकहिताय ।
भूपतेरनुमतो द्विजवर्यो भावयेदनिशमेतदतन्द्री ॥ २६ ॥

उक्त यन्त्रों में केवल ब्राह्मण का ही अधिकार है। सम्पूर्ण संसार के हित के लिए, हे नारद ! सबकी रक्षा करने वाले, परम उदार चक्ररूप यन्त्र को लेश मात्र हमने आपसे कहा। राजा की आज्ञा से ही श्रेष्ठ साधक, किन्तु ब्राह्मण, सावधानी से निरन्तर इसका प्रयोग करे ॥ २६ ॥

उक्तयन्त्राणामानुषङ्गिकफलपूर्वकमुक्तिरूप-परमफलसाधनत्वम्

नाद्रवन्ति दुरितानि कदाचि-
द्विद्रवन्ति निखिला ग्रहरोगाः ।
वर्धते वसुमती बहुसस्या
न त्रिवर्गविहतिर्मनुजानाम् ॥ २७ ॥

इन यन्त्रों का फल यह है कि पाप-ताप कभी नहीं आते। ग्रहों से उत्पन्न होने वाले रोग बहुत दूर भाग जाते हैं। पृथ्वी धन धान्य से समृद्ध रहती है। किं बहुना, मनुष्यों के त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को कभी आघात नहीं प्राप्त होता ॥ २७ ॥

धर्मार्थकामबहुलाश्चिरजीविनश्च
हीनाश्च पाप्मभिरुदारयशःप्रतापाः ।
आराध्य शास्त्रनिरता विहितक्रियाभि-
रन्ते विशन्ति विमलाः परमं पुमांसम् ॥ २८ ॥

शास्त्रों में लगे हुये विद्वज्जन उक्त विहित क्रियाओं के अनुसार सुदर्शन चक्र की

आराधना कर धर्म, अर्थ एवं काम से परिपूर्ण हो कर चिरजीवी हो जाते हैं । पापों से रहित होकर उदार यश एवं प्रताप से युक्त हो जाते हैं । इसके बाद विमल मति होकर परम पुरुष में मिल जाते हैं ॥ २८ ॥

सौदर्शनमन्त्रेष्वभिक्रमनाशाद्यभावः

दिव्यो विधिः कथित एष मुने समस्तो
विप्रैर्नृपैर्धृतसमाधिभिरत्र भाव्यम् ।
अस्मिन् समाधिविरही ललितक्रियोऽपि
यत्लोचितं लभत एव फलं मनुष्यः ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां यन्त्रदेवता-ध्याननिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १४४४ ॥

*

सुदर्शन मन्त्रों में अभिक्रमण से कभी विनाश की सम्भावना नहीं—हे मुने ! इस प्रकार हमने सुदर्शन की दिव्य विधि कही । ब्राह्मणों को, राजाओं को तथा योगिजनों को इसमें प्रवेश करना चाहिए । समाधि न जानने वाला, किन्तु उत्तम सदाचार वाला मनुष्य भी इसमें प्रवेश कर अपने यन्त्र के अनुसार फल प्राप्त करता है ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के यन्त्रदेवता-ध्याननिरूपण नामक चौबीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

*

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सुदर्शनयन्त्रवैभववर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का किया गया एक वार भी ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ पापों के समूह को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

यन्त्रवैभवं प्रदर्शयितुमुक्तार्थानुवादः

नारदः—

भगवन् सम्यगाख्यातं विस्तरेण यथातथम् ।
यत्कारणं यदाधारं यत्प्रमाणमिदं जगत् ॥ १ ॥
तथा धर्मार्थकामानां स्वरूपं साधनं तथा ।
परविद्या तथा विद्या तथा चाध्यात्मसंज्ञिता ॥ २ ॥
मुक्तिश्च परमा प्रोक्ता बन्धस्तत्साधनं तथा ।
वर्णाश्रमविभागश्च तद्धर्माश्च विशेषतः ॥ ३ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां राज्ञां रक्षाविधिस्तथा ।
राज्ञां तु रक्षणविधिर्दिव्योऽयं वर्णितस्तथा ॥ ४ ॥
कथं किल कलौ प्राप्ते राज्ञां रक्षाविधिर्भवेत् ।

मन्त्र वैभव प्रकाशित करने के लिए ऊपर कहे गए समस्त विषयों का अनुवाद—

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् आपने विस्तारपूर्वक यथार्थरूप से इस जगत् के जितने कारण, आधार और इसका जितना प्रमाण है उसे कहा । धर्म, अर्थ और काम के स्वरूपों को, उसके साधनों को, पर विद्या, अपरा विद्या, अध्यात्मसंज्ञक विद्या, वर्णाश्रमविभाग, उनके धर्म, सभी वर्णों की रक्षा की विधि के साथ-साथ राजाओं के रक्षा की विधि तथा दिव्य रूप से राजाओं की रक्षा विधि का वर्णन किया । किन्तु यह बताइये कि कलियुग प्राप्त होने पर राजाओं की रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए ॥ १-५ ॥

संक्षेपतः कलिस्वरूपकथनम्

न यक्ष्यन्ति न दास्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः ॥ ५ ॥
न सर्वे स्वेषु धर्मेषु करिष्यन्ति मतिं कलौ ।
शक्तयः सर्वमन्त्राणां प्रयास्यन्ति तिरस्कृतिम् ॥ ६ ॥
निर्वीर्याश्च भविष्यन्ति राजानः सत्त्ववर्जिताः ।
निर्धना हृतराज्याश्च दस्युभिः परिपीडिताः ॥ ७ ॥

कलिस्वरूपनिरूपण—श्रीनारद ने कहा—द्विजाति लोग कलि प्राप्त होने पर न तो यज्ञ करेंगे, न दान करेंगे और न हवन करेंगे। वे अपने-अपने धर्म कर्मों में बुद्धिपूर्वक ध्यान नही देंगे। सभी मन्त्रों की शक्तियाँ विलुप्त हो जाएँगी। राजागण सत्त्व से रहित होकर निर्बल हो जाएँगे। जिससे वे निर्धन, हृतराज्य एवं चोर डाकुओं से पीड़ित रहेंगे ॥ ५-७ ॥

अल्पक्षीरा भविष्यन्ति गावः प्राप्ते कलौ युगे ।
प्रजाः क्षुधार्ताश्च कलाववग्रहनिपीडिताः ॥ ८ ॥
पाषण्डधर्मनिरता भगवन्तं जनार्दनम् ।
निन्दनादीन् करिष्यन्ति तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥ ९ ॥

कलि प्राप्त होने पर गायें स्वल्पदुग्ध प्रदान करेंगी, इस कलि में रोग शोक करादि से पीड़ित प्रजा क्षुधार्त्त रहेंगी और पाषण्ड में निरत रहेंगी तथा भगवान् जनार्दन की निन्दा करेंगी। वह अत्यन्त तमोगुण तथा अज्ञान से युक्त रहेंगी ॥ ८-९ ॥

तादृशे कलौ राज्ञां रक्षाविध्युपायप्रश्नः

इत्थं दोषास्पदे काले राज्ञां रक्षाविधिः कथम् ।
सम्पत्स्यते शक्तिहीनैर्द्विजैः सत्त्वविवर्जितैः ॥ १० ॥

ऐसे कलि के प्राप्त होने पर राजाओं के रक्षा विधि का प्रश्न—इस प्रकार के दोषावह कलि में राजाओं की रक्षा का उपाय सत्त्वहीन एवं शक्तिहीन द्विजों द्वारा किस प्रकार सम्पन्न होगा? ॥ १० ॥

येनोपायेन रक्षा स्यात्तं मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।
सर्वज्ञ त्वदृते वक्तुं कः शक्नोति महेश्वर ॥ ११ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! जिस प्रकार राजाओं की सुनिश्चित प्रकार से रक्षा हो सके उसे आप हमें बताइये। हे महेश्वर! आप सर्वज्ञ हैं। आपको छोड़कर और कौन इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ हो सकता है ॥ ११ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

साधु साधु यदेतत् त्वं पृष्टवानसि नारद ।
सत्यमेतत् कलौ रक्षाविधिर्मन्त्रैर्न युज्यते ॥ १२ ॥
तथापि भक्त इति ते कथयामि शृणुष्व तम् ।

सर्वेषामेव भूतानां राज्ञां चैव विशेषतः ॥ १३ ॥
रक्षाविधिं परं गुह्यं तन्त्राणां सारमुत्तमम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आपने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है । यह तो सत्य है कि रक्षा की विधि मन्त्र द्वारा करना सम्भव नही । फिर भी आप भक्त हैं इसलिए आपसे उसका उपाय कहता हूँ, श्रवण करिए । यह रक्षा विधि सभी प्राणियों के लिए विशेष कर राजाओ के लिए समस्त तन्त्रों का सार है और अत्यन्त गुह्य है ॥ १२-१४ ॥

स्वकृतपितामहशिरश्छेदमहापापप्रशमाय नारायणात् सुदर्शनयन्त्रप्राप्तिकथनम्

मम नारायणेनोक्तं पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ १४ ॥
पितामहशिरश्छेदमहापातकशान्तये ।
सर्वबाधाप्रशमनं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १५ ॥

यह रक्षा विधि नारायण ने मुझे पुण्य बदरिकाश्रम में ब्रह्मदेव के शिरश्छेद से उत्पन्न महापाप की शान्ति के लिए कही थी । यह समस्त बाधाओं को शान्त करने वाली तथा सभी दुःखों का निवारण करने वाली है ॥ १४-१५ ॥

तन्महिमसंक्षेपः

सर्वसिद्धिप्रदं सर्वसम्पदामेककारणम् ।
पराभिचारशमनं परराज्यप्रदं शुभम् ॥ १६ ॥
कलिदोषापहरणं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
यस्य संस्मरणेनैव नृणां नश्यन्ति शत्रवः ॥ १७ ॥

यह सुदर्शन यन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है, सभी प्रकार की सम्पत्ति में कारण है । दूसरों के द्वारा किये गए मारण को शान्त करने वाला है । कलि के दोषों को दूर करने वाला तथा समस्त शत्रुओं का विनाशक है । इसके स्मरण मात्र से ही साधकजनों के शत्रुओं का विनाश हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

दस्यवो नष्टविषया विद्रवन्ति दिशो दश ।
यन्त्रं यस्य गृहे न्यस्तं तस्य सर्वं प्रसिध्यति ॥ १८ ॥
यो राजा यन्त्रमेतत्तु सादरं कारयेद् गृहे ।
तस्य भूमण्डलं सर्वं भवेद् वश्यं न संशयः ॥ १९ ॥
सौदर्शनस्य यन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितं मया ।

डाकू देश से भाग कर दशों दिशाओं में चले जाते हैं । जिसके घर में यह यन्त्र रहता है उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । जो राजा इस यन्त्र को अपने घर में स्थापित करता है, सारा भूमण्डल उसके वश में हो जाता है । इसमें संशय नहीं । यहाँ तक हमने सुदर्शन यन्त्र का माहात्म्य कहा ॥ १८-२० ॥

सुदर्शननारसिंहयन्त्रफलप्रदर्शनम्

सुदर्शनेन युक्तस्य नारसिंहस्य यन्त्रकम् ॥ २० ॥
यः कारयति तस्यान्यो लोको वश्यो भवेदपि ।
एतल्लेखनमात्रेण सर्वं सम्पद्यते नृणाम् ॥ २१ ॥

सुदर्शन यन्त्र के साथ नारसिंह यन्त्र की रचना जो लोग करते हैं सारा लोक उनके वश में हो जाता है । इसके लिखने मात्र से साधक जनों को सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥ २०-२१ ॥

विष्णुपञ्जरयन्त्रफलप्रदर्शनम्

विष्णुपञ्जरयन्त्रस्य करणेनैव देवताः ।
सर्वाः प्रसीदन्ति सदा किं पुनर्मनुजादयः ॥ २२ ॥

विष्णुपञ्जर यन्त्र के करने से समस्त देवता सदैव प्रसन्न हो जाते हैं फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? ॥ २२ ॥

समुदितयन्त्रत्रयफलस्याशक्यवर्णनत्वम्

एषां त्रयाणां यन्त्राणां समाहारफलं मया ।
वक्तुं न शक्यते सर्वं सर्वज्ञेनापि नारद ॥ २३ ॥

तीनों यन्त्र का एकत्र निर्माण करने का फल वर्णन अशक्य है—

हे नारद ! इन तीनों यन्त्रों को एक में मिलाकर निर्माण करने का फल सर्वज्ञ होने पर भी मुझसे कहना सम्भव नहीं ॥ २३ ॥

महासुदर्शनयन्त्रफलम्

महासुदर्शनस्येह यन्त्रस्य करणाद् द्विजः ।
त्रैलोक्यं समवाप्नोति किं पुनर्मण्डलं भुवः ॥ २४ ॥

महासुदर्शन यन्त्र का फल—ब्राह्मण महासुदर्शन यन्त्र के निर्माण करने मात्र से त्रिलोकी प्राप्त कर लेता है । फिर केवल इस भूमण्डल की बात ही क्या? ॥ २४ ॥

एकत्र कल्पितसुदर्शननारसिंह-
मन्यत्र केवलसुदर्शनमुज्ज्वलाङ्गम् ।
सङ्कल्पितोभयमुखं घटितास्त्रजालं
श्रीविष्णुपञ्जरगतं युतमन्त्रजालम् ॥ २५ ॥

एक जगह सुदर्शन नारसिंह इन दोनों यन्त्रों का निर्माण करे । अन्यत्र केवल उज्वल अङ्ग वाले सुदर्शन यन्त्र का निर्माण करे । अस्त्र जाल से युक्त सङ्कल्पित उभयमुख वाला यह यन्त्र श्रीविष्णुपञ्जर के मन्त्र के जाल से घटित होना चाहिए ॥ २५ ॥

माहासुदर्शनमपुण्यकृतां जनाना-
मप्राप्यमाश्रितसुखप्रदमेकयन्त्रम् ।

तेजोमयं सकललोकनमस्कृतं यत्
तत् कारयेत् सकललोकजयं यदीच्छेत् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनयन्त्रवैभववर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १४७० ॥

⁂

यह महासुदर्शन यन्त्र पापी जनों के लिए सर्वथा अप्राप्य है । यह महाश्रेष्ठ यन्त्र अपने आश्रितों को महान् सुख देने वाला है और तेजोमय तथा सफल लोक नमस्कृत है । यदि सारे लोकों के जय की इच्छा हो तो इसका निर्माण अवश्य कराना चाहिए ॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शनयन्त्र वैभव वर्णन नामक पचीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

⁂

अथ षड्विंशोऽध्यायः

महासुदर्शनयन्त्रलक्षणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का मात्र एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पाप तापों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते है ।

विस्तरेण महासुदर्शनयन्त्रलक्षणप्रश्नः

नारदः—

विस्तरेणास्य यन्त्रस्य संस्थानं लक्षणं तथा ।
श्रोतुमिच्छामि भगवंस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १ ॥

नारद ने कहा—हे भगवन् ! मैं इस यन्त्र के संस्थान (प्रतिष्ठापन) तथा लक्षण को सुनना चाहता हूँ । अतः मुझ प्रश्नकर्त्ता को इसके समाधान से सन्तुष्ट कीजिये ॥ १ ॥

तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि स्वरूपं लक्षणं तथा ।
अस्य यन्त्रस्य देवर्षे तन्मे कथयतः शृणु ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे देवर्षे ! सुदर्शन यन्त्र के स्वरूप तथा लक्षण को विस्तार पूर्वक कह रहा हूँ आप इसे सुनिए ॥ २ ॥

यन्त्रनिर्माणद्रव्याणि

रजतेन सुवर्णेन लोहैर्वा शिलयापि वा ।
यथाधिकारं यन्त्रस्य कुर्यादर्चां तु साधकः ॥ ३ ॥

साधक अपनी शक्ति के अनुसार चाँदी, सुवर्ण, लोहा अथवा पत्थर से बने हुये यन्त्र की अर्चा करे ॥ ३ ॥

यन्त्रलेखनसाधनद्रव्याणि

धातुचन्दनकर्पूरकुङ्कुमागुरुजै रसैः ।
सुवर्णसूच्या यदि वा यन्त्रमेतल्लिखेत् पटे ॥ ४ ॥

धातु, चन्दन, कर्पूर, कुङ्कुम तथा अगुरु के द्वारा बनाये गए रसों से कपड़े पर सुवर्ण की लेखनी द्वारा इस यन्त्र को लिखना चाहिए ॥ ४ ॥

यन्त्रतमध्ये सौदर्शनपुरुषलेखनम्

चन्द्रमण्डलमध्ये तु तारं कुर्यात् समाहितः ।
तस्य मध्ये लिखेद् देवं रक्तवर्णं सुदर्शनम् ॥ ५ ॥

चन्द्रमण्डल के सदृश गोलाकार बनाकर सावधानी से उसमें ॐकार लिखे । उस ॐ के मध्य में लाल वर्ण के सुदर्शन देव की आकृति का निर्माण करे ॥ ५ ॥

तत्स्वरूपवर्णनम्

पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशाढ्यं रक्ताम्बरधरं विभुम् ।
युक्तं षोडशभिर्हस्तैरष्टाभिर्वा महाद्युतिम् ॥ ६ ॥

पीले-पीले नेत्रों वाले, पीले-पीले केशों से युक्त, रक्त वर्ण का वस्त्र धारण किये हुये, १६ अथवा आठ भुजा वाले, महातेजस्वी एवं विभु सुदर्शन के स्वरूप का निर्माण करे ॥ ६ ॥

पाशाङ्कुशाब्जमुसलधनुःशङ्खगदारिभिः ।
भीषणैरायुधवरैरुपेतं जयिनां वरम् ॥ ७ ॥
तद्विष्णोः परमं रूपं नित्यं तैजसविग्रहम् ।
दंष्ट्रानिष्ठ्यूतसप्तार्चिर्ज्वालापल्लवितामनम् ॥ ८ ॥
भूषणैर्भूषितं चित्रैर्भीषणं रोमहर्षणम् ।

विजय करने वाले, सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन के हाथों में पाश, अङ्कुश, कमल, मुशल, धनुष, शङ्ख, गदा, अरि (सुदर्शन चक्र) आदि भीषण आयुधों से युक्त करना चाहिए । तैजस शरीर धारण करने वाले उन विष्णु का यही नित्य स्वरूप है । दाँढ़ से सप्तार्चि की निकलती हुई ज्वाला से उनका मुख ज्यादा होना चाहिए । नाना प्रकार के विचित्र आभूषणों से उनका विग्रह भूषित होना चाहिए । इस प्रकार रोमहर्षण भाषित उनके स्वरूप का निर्माण करना चाहिए ॥ ७-९ ॥

स्वतेजसा जगत् सर्वं पूरयन्तं महाबलम् ॥ ९ ॥
निर्भिद्यमानदैतेयशोणिताशनलम्पटम् ।
उद्यत्प्रद्योतनशतप्रख्यं विख्यातपौरुषम् ॥ १० ॥
मनस्तत्त्वेन सततं संश्रितं वेगवत्तया ।
नारायणकराम्भोजसेवारसविशारदम् ॥ ११ ॥
जवेन विष्णुचिन्तायाः परमं मार्गदर्शिनम् ।

स्मृत्यैव स्वानुरक्तानां दृष्टादृष्टार्थसाधनम् ॥ १२ ॥
स्वभक्तप्रत्यनीकानां मारणं सुरपूजितम् ।
संस्तूयमानचरितं सिद्धगन्धर्वदानवैः ॥ १३ ॥

अपने तेज से सारे जगत् को व्याप्त करते हुये, महाबलवान् विष्णु के स्वरूप का निर्माण करना चाहिए । अपने द्वारा मारे गए दैत्यों के शोणित के भोजन में लम्पट, उदीयमान सैकड़ों सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, महापौरुष सम्पन्न, वेग में मनस्तत्त्व से सर्वदा युक्त, नारायण कर कमलों की सेवा के रस में विशारद, विष्णु को चिन्तितावस्था में देख कर वेग से उनके मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुये, स्मरण मात्र से अपने भक्तों के दृष्ट तथा अदृष्ट का साधन बनने वाले, अपने भक्तों के शत्रुओं का मारण करने वाले, देव पूजित, सिद्ध, गन्धर्व तथा दानवों द्वारा संस्तूयमान चरित वाले सुदर्शन चक्र के स्वरूप का निर्माण करना चाहिए ॥ ९-१३ ॥

तस्य सर्वशरण्यत्वं निर्दोषत्वं कल्याणगुणाकरत्वं च

भक्तारिभञ्जनपरं शरण्यं शरणार्थिनाम् ।
नित्यनिःसीमनिदोर्षकल्याणगुणसागरम् ॥ १४ ॥

सबको शरण देने वाले निर्दोष एवं कल्याणकारी स्वरूप का वर्णन—सुदर्शन का यह स्वरूप भक्तों के भय को दूर करने वाला । शरणार्थियों को शरण देने वाला नित्य सर्वथा निर्दोष एवं कल्याणगुण का सागर है ॥ १४ ॥

तत्पादप्रान्ते साधकनामलेखनम्

एवंभूतं समालिख्य सदानन्दं सुदर्शनम् ।
तत्पादपद्मपर्यन्ते साधकं नाम विन्यसेत् ॥ १५ ॥

सर्वदा आनन्द देने वाले सुदर्शन के इस प्रकार के स्वरूप का निर्माण कर उसके चरणकमल के नीचे साधक का नाम लिखना चाहिए ॥ १५ ॥

ततः पर्यन्ते षट्कोणचक्रलेखनम्

इन्दुबिम्बस्य पर्यन्ते षट्कोणं चक्रमालिखेत् ।
आग्नेयममितप्रख्यममोघं सर्वसाधकम् ॥ १६ ॥

उसके चारों ओर षट्कोण चक्र का लेखन—चन्द्रमण्डल के समान बनाये गए उस गोले के चारों ओर षट्कोण चक्र लिखना चाहिए । यह षट्कोण चक्र अग्नि देवता वाला, अमोघ तथा सर्वसाधक है । जिसे अमित नाम से कहा जाता है ॥ १६ ॥

तत्र षडक्षरविन्यासः

प्राच्यादिदिक्षु कोणेषु षड्वर्णान् विन्यसेन्मनोः ।

अङ्गमन्त्रन्यासः

षट्सु कोणान्तरालेषु त्वङ्गमन्त्रान् न्यसेत् क्रमात् ॥ १७ ॥

पूर्व आदि दिशाओं के कोणों में सुदर्शन मन्त्र के छ: वर्णों का उल्लेख करे और (द्र स् र् अ स र) छ: कोनों के बीच में क्रमश: अङ्गमन्त्रों को लिखे ॥ १७ ॥

ततश्चतुर्दलपद्मलेखनम्

अस्मादबहिस्तथा पद्मं चतुर्दलसमन्वितम् ।

तत्र न्यसनीया वर्णाः

सबिन्दुवर्म फट् चास्य दलेष्वेषु क्रमान्यसेत् ॥ १८ ॥

अन्तरालेष्वन्तःस्थवर्णविन्यासः

दलान्तरालेष्वन्तःस्थान् विन्यसेत् साधकस्तथा ।

उसके भी बाहर चारपत्रों वाले पद्म का निर्माण करे । उस पद्म के चारों दलों पर प्रत्येक में सविन्दु वर्म (कवचाय हुँ) ऐसा क्रमश: लिखे । उन दलों के बीच-बीच में साधक अन्त:स्थ (य र ल व) वर्णों को लिखे ॥ १८-१९ ॥

ततः षोडशकेसराष्टदलपद्मलेखनम्

बाह्ये तत्राष्टपत्राब्जमन्तः षोडशकेसरम् ॥ १९ ॥

इसके बाद सोलह केशरों वाले अष्टदल पद्म का निर्माण—उसके भी बाहर आठ पत्र वाले कमल का जिनमें सोलह केशर हों उसका निर्माण करे ॥ १९ ॥

केसरेषु षोडशस्वरविन्यासः

केसरेषु क्रमादस्य विलिखेत् षोडश स्वरान् ।

दलेष्वष्टाक्षरमन्त्रन्यासः

अष्टाक्षरं महामन्त्रं दलेष्वस्य समालिखेत् ॥ २० ॥

केशरों पर १६ स्वरों का लेखन—इस पद्म केशरों पर क्रमश: १६ स्वरों को लिखे । पद्म के आठ दलों पर अष्टाक्षर मन्त्र का लेखन करे । (ॐ ह्रीँ स् र आ स् र् आ)? ॥२०॥

द्वात्रिंशत्केसरषोडशदलपद्मलेखनम्

द्वात्रिंशत्केसरं चास्य बहिः षोडशपत्रकम् ।

केसरेषु कादिसान्तवर्णविन्यासः

ककारादि सकारान्तं केसरेष्वस्य चालिखेत् ॥ २१ ॥

इसके बाद बाहर ३२ केशरों से युक्त १६ पत्तों वाले पद्म दल का निर्माण करे । केशरों पर क से लेकर स पर्यन्त (ककारादि वर्ग २५ + य आदि ७ कुल योग = ३२) वर्णों को लिखे ॥ २१ ॥

दलेषु षोडशार्णमन्त्रवर्णन्यासः

दलेष्वस्य लिखेन्मन्त्रं षोडशार्णं तु वैष्णवम् ।

द्वात्रिंशत्केसरदलपद्मलेखनम्

द्वात्रिंशत्केसरदलं बाह्ये तस्य समालिखेत् ॥ २२ ॥

इसके दलों पर १६ अक्षरों वाला वैष्णव मन्त्र लिखे? उसके भी बाहर ३२ दलों वाले तथा ३२ केसरों वाले पद्मदल की रचना करे ॥ २२ ॥

केसरेषु वाराहनुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः

केसरेष्वस्य पद्मस्य प्राच्यादिषु यथाक्रमम् ।
मन्त्रमानुष्टुभं सम्यग्वाराहं विलिखेत् परम् ॥ २३ ॥

३२ केशरों पर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से ३२ अक्षरों वाले श्रेष्ठ वाराह अनुष्टुप् मन्त्र को सम्यक् रूप से लिखे ॥ २३ ॥

दलेषु नारसिंहानुष्टुभमन्त्रवर्णन्यासः

द्वात्रिंशति दलेष्वस्य नारसिंहं क्रमाल्लिखेत् ।
आनुष्टुभं महामन्त्रममोघं सर्वसाधकम् ॥ २४ ॥

चतुःषष्टिदलपद्मलेखनम्

तस्य बाह्ये लिखेत् पद्मं चतुःषष्टिदलैर्युतम् ।

तद्दलेषु पातालनारसिंहमन्त्रन्यासः

पातालनारसिंहाख्यं तद्दलेषु न्यसेन्मनुम् ॥ २५ ॥

३२ दलों पर अमोघ सर्वसाधक नारसिंह अनुष्टुप् (मुखम् उग्र वीरज्वलन्तसर्वत नृसिंहं भीषण भद्र मृत्युमुत्यु नमाम्यहम्) मन्त्र लिखे । उसके बाद ६४ दलों से युक्त पद्म का निर्माण करे, जिसके दलों पर पाताल नारसिंह नामक मन्त्र का लेखन करे ॥२४-२५॥

पुनरष्टदलपद्मलेखनम्

पुनश्च पद्मं विन्यस्य दलैरष्टभिरावृतम् ।

तद्दलेष्वष्टाक्षरनारसिंहमन्त्रन्यासः

अष्टाक्षरं नारसिंहं तद्दलेषु समालिखेत् ॥ २६ ॥

इसके बाद बाहर पुनः अष्टदल कमल का निर्माण करे । उसके प्रत्येक दलों पर नरसिंह के आठ अक्षरों वाले मन्त्र को लिखे ॥ २६ ॥

तद्वहिर्माहेन्द्रमण्डलकल्पनम्

तद्बाह्ये मण्डलं कुर्यान्माहेन्द्रं वज्रभूषितम् ।
जाज्वल्यमानं स्वेनैव सर्वालङ्कारमण्डितम् ॥ २७ ॥

उसके भी बाहर वज्र से विभूषित, सर्वालङ्कार मण्डित, स्वतेज से जाज्वल्यमान माहेन्द्र (इन्द्र सम्बन्धी) मण्डल का निर्माण करे ॥ २७ ॥

तद्वहिः साधकनाम्ना सह तद्वीजन्यासः

तस्य बाह्ये महादिक्षु प्रागादिषु यथाक्रमम् ।
तद्बीजं विन्यसेद्धीमान्निजनाम्ना समन्वितम् ॥ २८ ॥

उसके भी बाहर पूर्वादि दिशाओं में क्रमानुसार साधक अपने नाम से समन्वित नारसिंह बीज (क्ष्रौं) का विन्यास करे ॥ २८ ॥

बहिष्कोणेष्वन्तःस्थवर्णन्यासः

बहिष्कोणेषु चतुर्षु तथान्तःस्थान् प्रकल्पयेत् ।

कोणान्तरालेषु तद्बीजन्यासः

कोणाभ्यन्तरभागेषु तद्बीजं विन्यसेत् पुनः ॥ २९ ॥

उसके भी बाहर रहने वाले चतुष्कोण में चार अन्त:स्थ वर्णों (य र ल व) को लिखे । इसके बाद उन कोणों के भीतरी भाग में पुनः नारसिंह बीज क्ष्रौं को लिखे ॥२९॥

तत्परितः स्वराणां प्रातिलोम्येन विन्यासः

परितस्तत् स्वरान् सर्वान् प्रातिलोम्येन चालिखेत् ।

तत्परितः सादिकान्ताक्षरविन्यासः

सकारादि ककारान्तं विन्यसेत् परितस्तथा ॥ ३० ॥

उसके बाद चारों ओर १६ स्वरों को प्रातिलोम्यक्रम (अः अं औ ओ इत्यादि) से लिखे । उसके भी बाहर 'स' से आरम्भ कर ककारादि ३२ व्यञ्जनों को लिखे ॥ ३० ॥

स्वनाम्ना पाशाङ्कुशाभ्यां चावेष्टनम्

विदर्भितं स्वनाम्नैव परितोऽन्त्ययुगं न्यसेत् ।
पाशेनावेष्टयेदेतदङ्कुशेन तथातुरः ॥ ३१ ॥

इसके बाद साधक अपने नाम से अनुस्यूत अन्त के दो वर्णों (ह क्ष) को लिखे । फिर पाश तथा अङ्कुश से उसे आवेष्टित करे ॥ ३१ ॥

भूपुरकल्पनम्

पुटितं भूपुरं तस्य बाह्ये कुर्यादतन्द्रितः ।

समन्तात् केशवादिमूर्तिन्यासः

केशवादीन् मूर्तिमतः समन्तादस्य विन्यसेत् ॥ ३२ ॥

इसके बाद बाहर उसके चारों ओर बड़ी सावधानी से सम्पुटित दो भूपुर का निर्माण करे । उसके चारों ओर केशवादि मूर्तियों का मूर्तिमान् स्वरूप इस प्रकार लिखे ॥ ३२ ॥

केशवस्वरूपवर्णनम्

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
अपारकरुणं पद्मशङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ३३ ॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ।
हारकेयूरकटककुण्डलैरुपशोभितम् ॥ ३४ ॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं प्रसन्नवदनं विभुम् ।
प्रागादि विन्यसेद् देवं केशवं क्लेशनाशनम् ॥ ३५ ॥

तपाये हुये सुवर्ण के समान देदीप्यमान नेत्र कमल वाले, विशाल, अपार करुणा से परिपूर्ण, पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा लिए हुये, पिताम्बर पहने, वनमाला से विभूषित, हार, केयूर, कटक एवं कुण्डलादि आभूषणों से संयुक्त, चार बाहुओं वाली, उदार अङ्ग वाली एवं प्रसन्नमुख—ऐसी क्लेशनाशक केशव की मूर्ति का पूर्व दिशा में लेखन करना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

नारायणस्वरूपवर्णनम्

शङ्खपद्मगदाचक्रधरं नीलाम्बुदच्छविम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं कुर्यान्नारायणं ततः ॥ ३६ ॥

इसके अनन्तर शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र लिए हुये, नीले मेघ के समान शोभा वाले, सर्वालङ्कार संयुक्त नारायण की मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ३६ ॥

माधवस्वरूपवर्णनम्

पद्मकौमोदकीशङ्खचक्रधारिणमव्ययम् ।
देवमिन्दीवरश्यामं माधवं भावयेत् ततः ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर साधक को पद्म कौमोदकी गदा, शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुये सर्वथा विकाररहित इन्दीवर के समान श्याम वर्ण वाले माधव मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ३७ ॥

गोविन्दस्वरूपवर्णनम्

चक्रकौमोदकीशङ्खपद्मायुधविराजितम् ।
इन्दुबिम्बनिभं कुर्याद् गोविन्दममितौजसम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद चक्र, कौमोदकी गदा, शङ्ख एवं पद्म धारण किये हुये चक्र विम्ब के समान स्वच्छ, शीतल, आह्लादक एवं महान् तेजस्वी गोविन्द की मूर्ति का लेखन करना चाहिए ॥ ३८ ॥

विष्णुस्वरूपवर्णनम्

गदाब्जशङ्खचक्रास्त्रधरं परमभूषितम् ।
विष्णुं विश्वपतिं कुर्यात् पद्मकिञ्जल्कसन्निभम् ॥ ३९ ॥

इसके बाद गदा, कमल, शङ्ख तथा चक्रास्त्र धारण किये हुये कमल केशर के समान कोमल विश्वपति विष्णु की मूर्ति का लेखन करे ॥ ३९ ॥

मधुसूदनस्वरूपवर्णनम्

चक्रशङ्खाम्बुजगदाधारिणं करुणानिधिम् ।
रक्तपद्मदलप्रख्यं भावयेन्मधुसूदनम् ॥ ४० ॥

इसके बाद चक्र, शङ्ख, कमल एवं गदा धारण किये हुये करुणा के सागर, लाल कमल के समान अरुणवर्ण वाले मधुसूदन को लिखे ॥ ४० ॥

त्रिविक्रमस्वरूपवर्णनम्

चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खसेवितमीश्वरम् ।
उज्ज्वलत्कनकप्रख्यं तं कुर्वीत त्रिविक्रमम् ।। ४१ ।।

इसके बाद चक्र, कौमोदकी गदा, पद्म तथा शङ्ख से सेवित देदीप्यमान सुवर्ण के समान जाज्वल्यमान ईश्वर त्रिविक्रम को लिखे ।। ४१ ।।

वामनस्वरूपवर्णनम्

शङ्खचक्रगदापद्मधरं परमभूषितम् ।
तरुणादित्यसङ्काशं वामनं भावयेत् ततः ।। ४२ ।।

इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुये, बहुमूल्य आभूषणों से भूषित, दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी वामन को लिखे ।। ४२ ।।

श्रीधरस्वरूपवर्णनम्

पद्मचक्रगदाशङ्खधरं सद्गुणसागरम् ।
पुण्डरीकनिभं देवं श्रीधरं परिकल्पयेत् ।। ४३ ।।

इसके बाद पद्म, चक्र, गदा एवं शङ्ख धारण किये हुये, सद्‌गुणों के समुद्र, कमल के समान विकसित श्रीधर की मूर्ति का लेखन करना चाहिए ।। ४३ ।।

हृषीकेशस्वरूपवर्णनम्

गदासुदर्शनयुते शङ्खपद्मे च बिभ्रतम् ।
विद्युत्प्रभं हृषीकेशं कुर्वीत कमलेक्षणम् ।। ४४ ।।

इसके बाद गदा सुदर्शन तथा शङ्ख एवं पद्म धारण किये हुये बिजली के समान आभा वाले, कमलनेत्र हृषीकेश का उल्लेख करे ।। ४४ ।।

पद्मनाभस्वरूपवर्णनम्

शङ्खपद्मे गदाचक्रे तथा बिभ्राणमुज्ज्वलम् ।
सहस्रादित्यसङ्काशं पद्मनाभं तु कारयेत् ।। ४५ ।।

इसके बाद शङ्ख, पद्म, गदा, चक्र धारण किये हुये प्रकाशमान सहस्रों आदित्य के समान तेजस्वी पद्म की मूर्ति का लेखन करे ।। ४५ ।।

दामोदरस्वरूपवर्णनम्

पद्मशङ्खगदाचक्रधरं बन्धूकसन्निभम् ।
भक्त्येकसुलभं देवं दामोदरमथ स्मरेत् ।। ४६ ।।

इसके बाद पद्म, शङ्ख, गदा एवं चक्र धारण किये हुये बन्धूक पुष्प के समान रक्तवर्ण वाले, मात्र भक्ति से सुलभ होने वाले दामोदर का उल्लेख करे ।। ४६ ।।

नमोऽन्तानां तत्तन्नाम्नामपि लेखनम्

एवं क्रमेण न्यस्यैतानेषां नामानि च न्यसेत् ।

नमोऽन्तान्यमुकं रक्ष रक्षेति च समन्ततः ॥ ४७ ॥

इस क्रम से इनका न्यास कर इनके नामों का भी नमोऽन्त अमुकं रक्ष-ग्क्ष इस प्रकार चारों ओर न्यास करे । नाम न्यास प्रकार—यथा—केशवाय नमः देवदत्तं रक्ष-रक्ष इत्यादि ॥ ४७ ॥

प्रागादिषु प्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः

यं शं रं षं तथा लं सं वं हं चेति द्वयं द्वयम् ।
प्राच्यादिषु महादिक्षु प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥ ४८ ॥

इसके बाद पूर्वादि दिशाओं में यं शं रं षं लं सं वं हं इन आठ अक्षरों में दो-दो के क्रम से प्रदक्षिण क्रम से न्यास करे ॥ ४८ ॥

ऐशान्यादिष्वप्रादक्षिण्येन बीजाक्षरन्यासः

यं शं रं षं तथा लं सं वं हं चेति युगं युगम् ।
ऐशान्यादिषु कोणेषु विन्यसेदप्रदक्षिणम् ॥ ४९ ॥

इसके बाद ईशान आदि कोणों में यं शं रं षं लं सं वं हं इन आठ अक्षरों में दो-दो के क्रम से बाईं ओर से न्यास करे ॥ ४९ ॥

पुनः पाशाङ्कुशाभ्यां वेष्टनम्

पाशेन तु समावेष्ट्य अङ्कुशेनापि वेष्टयेत् ।
सर्वमेतत् सबीजेन हृल्लेखमनुना वृतम् ॥ ५० ॥

इसके बाद पाश (आँ) से वेष्टित कर पुनः उसे अङ्कुश (ॠ) से वेष्टित करे । इन सभी को हृल्लेखामन्त्र (ह्लीँ) से परिवेष्टित करे ॥ ५० ॥

प्रागादिचतुर्दिक्षु विष्णुविन्यासस्तेषामायुधानि च

प्रागादिषु चतुर्दिक्षु विन्यसेद् विष्णुमव्ययम् ।
चक्रकौमोदकीशार्ङ्गखड्गैर्युक्तं यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥
साधारणौ च सर्वेषां शङ्खचक्रौ वरायुधौ ।

पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः चक्र, कौमोदकी, शार्ङ्ग तथा खड्ग धारण किये हुये एक-एक आयुध सहित विष्णु का न्यास करे । ऐसे तो साधारणतया उक्त केशवादि विष्णु के स्वरूपों के शङ्ख, चक्र श्रेष्ठ आयुध कहे गए हैं ॥ ५१-५२ ॥

आग्नेयादिकोणेषु हृषीकेशन्यासः

आग्नेयादिषु कोणेषु हृषीकेशं ततो न्यसेत् ॥ ५२ ॥

आग्नेयादि चारों कोणों में हृषीकेश का न्यास करे ॥ ५२ ॥

तेषामायुधविशेषाः

शङ्खं हलं च मुसलं शूलं चैतेषु धारयेत् ।

कोणान्तरालेष्वष्टसु जनार्दनविन्यासः

विकोणेष्वष्टसु तथा जनार्दनमथो न्यसेत् ॥ ५३ ॥

तेषामायुधविशेषाः

दण्डं कुन्तं तथा शक्तिं पाशमङ्कुशमेव च ।
वज्रं तथैव परशुं तथा शतमुखानलम् ॥ ५४ ॥
करेष्वमीषामेतानि विलिखेत्तु यथाक्रमम् ।

उन चारों कोनों में न्यस्त चारों हृषीकेश के आग्नेयादि कोण के क्रम से एक-एक हाथों में क्रमशः शङ्ख, हल, मुशल एवं शूल धारण कराना चाहिए । इसके बाद आठों कोणों के बीच-बीच में जनार्दन का न्यास करे । एक-एक कोण के जनार्दन के हाथों में क्रमशः दण्ड, कुन्त, शक्ति, पाश, अङ्कुश, वज्र, परशु तथा शतमुख नामक अग्नि धारण कराना चाहिए ॥ ५३-५५ ॥

तत्तत्पार्श्वेषु तत्तत्परिवारलेखनम्

प्रत्येकं परिवारांस्तु तेषां पार्श्वेषु विन्यसेत् ॥ ५५ ॥

उनमें प्रत्येक के परिवार भी उन्हीं के पार्श्वभाग में न्यस्त करे ॥ ५५ ॥

ततो भूमौ भूम्या सह पुरुषोत्तमस्मरणम्

वराहरूपिणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
भूमौ च सहितं भूम्या संस्मरेत् पुरुषोत्तमम् ॥ ५६ ॥

इसके बाद भूमि के सहित शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुये पुरुषोत्तम वराहदेवता का भूमि में न्यास करे ॥ ५६ ॥

अम्बरे नरसिंहस्मरणम्

अम्बरे नारसिंहं तु चिन्तयेदमितौजसम् ।
भीषणं घटितानेकभूषणं दारितासुरम् ॥ ५७ ॥

आकाश में महा भीषण, अनेक भूषणों से सुसज्जित और असुरों का दारण करने वाले श्रीनृसिंह का स्मरण करना चाहिए ॥ ५७ ॥

प्रागादिषु चक्रगदाशार्ङ्गखड्गस्मरणम्

प्राच्यां दिशि महाज्वालागतं चक्रं स्मरेद्‌बुधः ।
दक्षिणस्यां दिशि तथा स्मरेज्ज्वालागतां गदाम् ॥ ५८ ॥
प्रतीच्यां शार्ङ्गमत्युग्रज्वालामध्यगतं स्मरेत् ।
उत्तरस्यां दिशि तथा स्मरेत् खड्‌गं सुदारुणम् ॥ ५९ ॥

इसके बाद पुनः पूर्व दिशा में महाज्वाला के मध्य में स्थित चक्र का बुद्धिमान् साधक स्मरण करे । दक्षिणदिशा में ज्वाला के मध्य में संस्थित गदा का स्मरण करे । पश्चिम दिशा में अत्यन्त उग्र ज्वाला के मध्य में शार्ङ्ग धनुष का स्मरण करे और उत्तर दिशा में अत्यन्त निर्दयी खड्‌ग का स्मरण करे ॥ ५८-५९ ॥

अस्य यन्त्रस्यापराङ्गकल्पनाय मध्ये चतुर्विंशत्यरचक्रकल्पनम्

अपराङ्गेऽथ यन्त्रस्य मध्ये चक्राब्जसंस्थितम् ।
चतुर्विंशत्यरं चक्रं सुनेमि रुचिराकृति ॥ ६० ॥

इस यन्त्र के अपराङ्ग के मध्य में चक्र रूपी कमल में स्थित सुन्दर नेमि से संयुक्त अत्यन्त मनोहर आकृति वाले चौबीस अरों से युक्त चक्र का निर्माण करना चाहिए ॥६०॥

तन्मध्ये द्वादशदलपद्मलेखनम्

मध्येचक्रं न्यसेत् पद्मं युक्तं द्वादशभिर्दलैः ।

तत्कर्णिकायामाग्नेयमण्डलन्यासः

चक्राब्जकर्णिकास्थाने न्यसेदाग्नेयमण्डलम् ॥ ६१ ॥

इसके बाद उस चक्र के मध्य में बारह दलों वाले पद्म का निर्माण करना चाहिए । उस चक्राब्ज कर्णिका के स्थान में आग्नेय मण्डल का निर्माण करना चाहिए ॥ ६१ ॥

तन्मध्ये योगनृसिंहलेखनम्

तन्मध्ये योगपट्टेन पिनद्धाङ्गं सनातनम् ।
नारसिंहं चतुर्बाहुं चतुश्चक्रधरं परम् ॥ ६२ ॥
समासीनमशोकस्य मूले कालानलद्युतिम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वभक्तार्तिहारिणम् ॥ ६३ ॥
अपारसङ्ख्यकल्याणगुणपूर्णमहार्णवम् ।
भक्तानुकम्पिनं नित्यं सर्वलोकैकनायकम् ॥ ६४ ॥

उस आग्नेय मण्डल के मध्य में योग पट्ट से पिनद्ध अङ्ग वाले, सनातन, अपने चारों बाहुओं में चार चक्र धारण किये हुए परदेवता स्वरूप ऐसे श्रीनृसिंह का स्मरण करना चाहिये जो अशोक के मूल में बैठे हुये हैं, जिनके शरीर से कालाग्नि के समान प्रकाश निर्गत हो रहा है, जो सभी आभरणों से भूषित हैं और अपने भक्तों के सभी प्रकार का आर्त्तिहरण करने वाले हैं । वह असङ्ख्य कल्याण गुणों से परिपूर्ण महार्णव हैं और भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले तथा समस्त लोकों के नायक हैं ॥ ६२-६४ ॥

तत्पादपर्यन्ते द्वयोस्तद्भृत्ययोर्विन्यासः

एवं विन्यस्य तत्पादपर्यन्ते विन्यसेदुभौ ।
तदाज्ञाकारिणौ भीमौ नीलनीरदविग्रहौ ॥ ६५ ॥
उदग्रकायौ भीमाक्षौ भीमायुधधरौ वरौ ।
दंष्ट्राकरालवदनौ विन्यसेद् वृत्तलोचनौ ॥ ६६ ॥

इस प्रकार न्यास कर श्रीनृसिंह के पैरों के पास उनकी आज्ञा करने वाले, नीले जलधर के समान दो भीमों (भृत्यों) का न्यास करे, जो शरीर में डील-डौल से बहुत ऊँचे हैं, जिनकी आँखें अत्यन्त भयावह हैं, जो महा भयानक अस्त्र धारण किये हुये हैं, जिनका मुख भयानक दाढों से अत्यन्त कराल है तथा जिनके नेत्र वृत्ताकार हैं ॥ ६५-६६ ॥

चक्रस्य प्रागादिष्वष्टशक्तिध्यानम्

चिन्तयेदथ चक्रस्य समन्तादष्ट योषितः ।
ऊर्ध्वमाबद्धकेशाढ्यास्तच्छक्तीः प्राप्तयौवनाः ॥ ६७ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्ता द्विभुजा माल्यधारिणीः ।

इस प्रकार निर्माण किये गए चक्र के पूर्वादि आठ दिशाओं में उनकी आठ शक्तियों का निर्माण करे जो युवावस्था से सम्पन्न हैं, जिनके केश ऊपर की ओर बँधे हुये हैं, जो सभी अलङ्कारों से सुसज्जित, दो भुजाओ वाले तथा माला धारण किये हुये हैं ॥ ६७-६८ ॥

प्राच्यां दिशि जयां देवीं पीतवर्णां विचिन्तयेत् ॥ ६८ ॥
आग्नेय्यां मोहिनीं देवीं श्यामलामायतेक्षणाम् ।
याम्यामनुस्मरेद् देवीं विजयां कृष्णरूपिणीम् ॥ ६९ ॥
रक्तवर्णां तथा देवीं नैर्ऋत्यां ह्लादिनीं तथा ।
अजितां पीतवर्णां तु प्रतीच्यां संस्मरेत् पराम् ॥ ७० ॥
वायव्यां दिशि मायां तु कृष्णवर्णां सनातनीम् ।
उदीच्यां रक्तवर्णां तामाशायामपराजिताम् ॥ ७१ ॥
ऐशान्यां संस्मरेत् सिद्धिं धूम्रवर्णामतः परम् ।

चक्र के पूर्व दिशा में पीत वर्ण वाली जया का, आग्नेय कोण में विशाल नेत्रों वाली एवं शरीर से श्याम वर्ण वाली मोहिनी का, दक्षिण दिशा में काले वर्ण की विजया का, नैर्ऋत्य कोण में रक्त वर्ण वाली ह्लादिनी का, पश्चिम दिशा में परा स्वरूपा पीतवर्णा अजिता का, वायव्य दिशा में सनातनी कृष्णवर्णा माया का, उत्तर दिशा में रक्तवर्ण वाली अपराजिता का तथा ईशान कोण में धूम्रवर्ण वाली सर्वोत्कृष्ट सिद्धि का स्मरण करे ॥ ६८-७२ ॥

यथोक्तलक्षणयन्त्रमहिमा

एवमेतन्महायन्त्रं महापातकनाशनम् ॥ ७२ ॥
आयुरारोग्यधनदं पुत्रमित्रकलत्रदम् ।
सर्वविघ्नोपशमनं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ ७३ ॥
यो यदर्थी लिखेद्यन्त्रं तत् तदस्य प्रयच्छति ।
मणिविद्रुममुक्ताढ्यं कुर्याद् यन्त्रं हिरण्मयम् ॥ ७४ ॥
राजा चेद्राज्यमाप्नोति निष्कण्टकमनामयम् ।

इस प्रकार का निर्माण किया गया यह यन्त्र महापातकों का नाश करने वाला है । आयु, आरोग्य, धन, पुत्र, मित्र एवं कलत्र प्रदान करने वाला है । समस्त विघ्नों का शमन करने वाला एवं समस्त दुष्टों को भगाने वाला है । जो कोई जिस कामना से इस यन्त्र को लिखता है, यह यन्त्र उसकी उस कामना को पूर्ण करता है । मणि विद्रुम मोती से जड़े हुये

सोने के यन्त्र का निर्माण यदि राजा करे तो वह निष्कण्टक निरामय राज्य अवश्य प्राप्त करता है ॥ ७२-७५ ॥

भूर्जपत्रलिखितस्यापि यन्त्रस्य सर्वफलसाधनता

भूर्जपत्रे लिखित्वैतत् कुङ्कुमैश्चन्दनेन तु ॥ ७५ ॥
यो मर्त्यः शिरसा धत्ते तस्य स्यात्सर्वमीप्सितम् ।
पिशाचोरगरक्षांसि क्षिप्रं नश्यन्ति तस्य वै ॥ ७६ ॥

भोजपत्र पर इस यन्त्र को कुङ्कुम अथवा चन्दन से लिख कर जो साधक उसे अपने शिर पर धारण करता है उसका सारा मनोरथ पूर्ण हो जाता है । ऐसे पुरुष के सामने पिशाच, सर्प और राक्षस शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ७५-७६ ॥

एतद्यन्त्रशिलाप्रतिष्ठाया मुक्तिसाधनत्वम्

शिलाप्रतिष्ठां यः कुर्यादेतस्य जगतीतले ।
सर्वान् कामानिहावाप्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७७ ॥

जो इस यन्त्र को शिला पर लिखवा कर उसकी प्रतिष्ठा करता है वह इस संसार में अपनी सारी कामनायें पूर्णकर विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ७७ ॥

लोहादिभिर्यन्त्रप्रतिमानिर्माणफलम्

लोहैर्वा रजतेनाथ यः कुर्यात् प्रतिमां बुधः ।
त्रिवर्गफलमाप्नोति निर्वाणमचिरात् पुनः ॥ ७८ ॥

जो बुद्धिमान् साधक लोहे पर अथवा चाँदी पर प्रतिमा बनवाता है वह धर्म, अर्थ एवं काम तो प्राप्त करता ही है शीघ्र मुक्त भी हो जाता है ॥ ७८ ॥

कर्षणादिप्रतिष्ठान्तायतननिर्माणफलम्

कर्षणादि प्रतिष्ठान्तं कुर्यादायतनं च यः ।
आप्नुवन्ति च तद्वंश्याः पुण्यलोकाननुत्तमान् ॥ ७९ ॥

यन्त्र के लेखन से आरम्भ कर प्रतिष्ठा पर्यन्त जो इस यन्त्र का आयतन (मन्दिर) निर्माण करता है उसके वंश में उत्पन्न होने वाले सभी लोग पुण्यलोक को प्राप्त करते हैं ।

भयादिषु यन्त्रस्मरणे फलम्

भयागमे च संग्रामे वादे वा यः स्मरेदिदम् ।
विजयस्तस्य हस्तस्थो नात्र कार्या विचारणा ॥ ८० ॥

भय प्राप्त होने पर अथवा संग्राम में अथवा वाद विवाद में जो इस यन्त्र का स्मरण करता है उसके हाथ में विजयलक्ष्मी निवास करती है इस विषय में संशय नहीं करना चाहिए ॥ ८० ॥

त्रिसन्ध्यं यन्त्रार्चनं मुक्तिसाधनम्

अर्चयेद्यस्त्रिसन्ध्यं वै यन्त्रमेतदनुत्तमम् ।

तापत्रयविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ८१ ॥

जो इस श्रेष्ठ यन्त्र की तीनो कालों में अर्चना करता है वह तीनों तापों से मुक्त हो जाता है। किं बहुना विष्णुलोक में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥ ८१ ॥

रक्षाविधौ राज्ञां वैशेषिकविध्यारम्भः

राज्ञां रक्षाविधाने तु विशेषं शृणु नारद।
राज्यार्थी हृतराज्यो वा परिभूतोऽथवा नृपैः ॥ ८२ ॥

तत्र प्रथममाचार्यपूजाविधिः

सौदर्शनस्य यन्त्रस्य प्रदातारं गुरुं परम्।
सर्वेभ्यो ह्यधिकं मत्वा तमभ्यर्च्य महाधनैः ॥ ८३ ॥

हे नारद! अब आप राजाओं की रक्षा विधि में विशेष विशेष बातें सुनिए। राज्य चाहने वाला अथवा नष्ट राज्य वाला अथवा अन्य नृपों से पराभूत राजा सुदर्शन यन्त्र के देने वाले अपने श्रेष्ठ गुरु को सर्वश्रेष्ठ मानकर पर्याप्त धन से उनकी अर्चना करे ॥ ८२-८३ ॥

ततो भगवदाराधनविधिः

ततो नारायणं देवं पुण्डरीकायतेक्षणम्।
श्यामलं पीतवसनं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ८४ ॥
आराधयेच्चतुर्बाहुमाचार्योक्तविधानतः ।

ततो यन्त्रनिर्माणम्

तप्तजाम्बूनदमयं मणिविद्रुमचित्रितम् ॥ ८५ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं कारयेद्यन्त्रमुत्तमम्।

यन्त्रनिर्माणस्य राज्यप्राप्तिहेतुत्वम्

एतत्करणमात्रेण राज्यमाप्नोत्यनामयम् ॥ ८६ ॥

तदनन्तर गुरु के उपदेशानुसार कमल के समान विशाल नेत्र वाले श्याम वर्ण, पीताम्बर धारण किये हुये, सर्वाभरणभूषित, चतुर्बाहु युक्त नारायण की आराधना करे। इसके बाद मणि एवं विद्रुमजटित देदीप्यमान सुवर्ण पर सर्वालङ्कारभूषित इस मन्त्र का लेखन करवावे। मात्र केवल इतना करने से ही वह अपना निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ८४-८६ ॥

प्रतिष्ठापूर्वकार्चनस्य सप्तद्वीपान्तभूमिप्राप्तिहेतुत्वम्

प्रतिष्ठाप्यार्चयेदेतत् सादरं सर्वसिद्धिदम्।
ततो भूमिमवाप्नोति सप्तद्वीपां सपत्तनाम् ॥ ८७ ॥

सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करने वाले इस यन्त्र की प्रतिष्ठा कर जो साधक उसकी अर्चना करता है वह नगर समेत सप्तद्वीपा वसुमती प्राप्त कर लेता है ॥ ८७ ॥

अन्ततस्त्रैलोक्यपालयितृत्वसिद्धिः

वश्या भवन्ति सततं सिद्धगन्धर्वदानवाः ।
त्रैलोक्यराज्यमखिलं पालयत्यवनीतले ॥ ८८ ॥

सिद्ध, गन्धर्व एवं दानव सर्वदा के लिए उसके वश में हो जाते हैं और वह इस पृथ्वी में समस्त त्रिलोकी का राज्य पालन करने में समर्थ हो जाता है ॥ ८८ ॥

परकृताभिचारपरावर्तनसिद्धिः

अभिचाराः परकृताश्चैनमप्राप्य भीषिताः ।
प्रविशन्ति प्रयोक्तारमापगेवाचलाहता ॥ ८९ ॥

शत्रुओं के द्वारा किये जाने वाले मारण प्रयोग ऐसे साधक को नहीं प्राप्त होते । वे स्वयं भयभीत होकर लौटकर प्रयोग करने वाले के पास इस प्रकार चले आते हैं जिस प्रकार नदी पहाड़ से टक्कर खाकर पीछे की ओर मुड़ जाती है ॥ ८९ ॥

अवग्रहादिपरिहारसिद्धिः

अवग्रहाश्च नश्यन्ति शत्रवो विद्रवन्ति च ।
अपमृत्युमृगव्यालचोररोगादिभिर्भयम् ॥ ९० ॥
न तस्य राज्ये भवति विद्यते तत्कुले बलम् ।

उसकी सारी बाधायें नष्ट हो जाती हैं । शत्रुगण वहुत दूर भाग जाते हैं । अपमृत्यु, सिंह, सर्प, चोर तथा रोगादि का भय उसके राज्य में नहीं होता और उसका कुल सर्वदा वल सम्पन्न रहता है ॥ ९०-९१ ॥

सर्वेषां स्वधर्मप्रवृत्तिसिद्धिः

सर्वे स्वेष्वेव धर्मेषु प्रवर्तन्ते सदा मुने ॥ ९१ ॥

ऐसे राजा के राज्य में, हे महामुने! सभी अपने-अपने धर्म में निरत रहते हैं ॥९१॥

दुर्वाससा शात्पस्येन्द्रस्य यन्त्रेणानेन पुनः स्वपदप्राप्तिः

पुरा दुर्वाससः शापाद्धृतराज्ये शचीपतौ ।
एतत्प्रसादादखिलं पुनः प्राप त्रिविष्टपम् ॥ ९२ ॥

पूर्वकाल में जव दुर्वासा के शाप से इन्द्र का राज्य असुरों ने ले लिया, तव इस मन्त्र के प्रताप से उन्हें स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति हुई ॥ ९२ ॥

चतुर्मुखस्य भवत्सकाशाद्यन्त्रप्राप्तिः

एतत् पुरा महायन्त्रं ब्रह्मणे प्रोक्तवान् हरिः ।

चतुर्मुखेन विश्वकर्मणा यन्त्रविमानयोर्निर्मापणम्

ब्रह्मा च विश्वकर्माणमाहूयैतदकारयत् ॥ ९३ ॥
विमानं च तदारभ्य देवगन्धर्वदानवाः ।

तदा प्रभृति यन्त्रस्यैव रक्षासाधनत्वम्

अनेन रक्षणविधिं चक्रुः पूर्वे नृपास्तथा ।
तस्माद्राज्ञां च सर्वेषामेष रक्षाविधिः परः ॥ ९४ ॥

भगवान् विष्णु ने पूर्वकाल में इस यन्त्र का उपदेश ब्रह्मदेव को किया था । उन्होंने विश्वकर्मा को बुलवा कर उनसे इस यन्त्र का निर्माण कराया । उसी समय देव, गन्धर्व एवं दानवों ने चक्र का विमान निर्माण करवाया । तदनन्तर पूर्व के राजाओं ने भी इसी यन्त्र से अपनी रक्षा की । इसलिए यह राजाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ रक्षा विधि है ॥ ९३-९४ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

अभिनवदिननाथप्रोज्ज्वलद्बिम्बतुल्यं
कमलभवमुखाद्यैः संश्रितं देववृन्दैः ।
परिगतमपि भूतैः पञ्चभिः सेव्यमानं
प्रकृतिमहदहङ्कारैः स्मरेद्यन्त्रराजम् ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां महासुदर्शनयन्त्रलक्षणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १५६५ ॥

⁂

उदीयमान एवं जाज्वल्यमानसूर्य बिम्ब के समान इस यन्त्र को ब्रह्मदेवादि के उपदेश से देवगणों ने इस यन्त्र का आश्रय लिया । पञ्चभूतों में सर्वत्र व्याप्त होते हुये भी इस यन्त्रराज की सेवा प्रकृति, महत्तत्त्व एवं अहङ्कार करते हैं । अतः इस यन्त्र का साधक को अवश्य स्मरण करना चाहिए ॥ ९५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के महासुदर्शनयन्त्र लक्षण वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २६ ॥

⁂

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

धारकयन्त्रनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरा का मात्र एक बार किया गया ध्यान अनेक जन्म के करोड़ों अघ समूहों को नष्ट करता है । हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

वृत्तानुवादपूर्वकं धारकयन्त्रविषयकः प्रश्नः

नारदः—

कथितो यन्त्रराजस्य देवदेवस्य विस्तरः ।
स्वरूपं साधनं चास्य प्रकारश्च फलं तथा ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने देवाधिदेव स्वरूप इस यन्त्रराज का स्वरूप, साधन, प्रकार तथा फल एवं विस्तार वर्णन किया ॥ १ ॥

अद्येदं श्रोतुमिच्छामि भगवन् परमेश्वर ।
एतदत्यद्भुतं दिव्यं ध्रियते केन भूषणम् ॥ २ ॥

हे भगवन् ! परमेश्वर ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इस अद्भुत एवं दिव्य भूषण को कौन धारण करता है ॥ २ ॥

न चास्य धारणे शक्ति कस्यचित् कलयाम्यहम् ।
अतिशक्तितयास्येमं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

इस यन्त्रराज के अत्यन्त शक्तिमान् होने के कारण किसी में भी धारण करने की शक्ति मुझे दिखाई नहीं पड़ती । अतः आप मेरे इस संशय को दूर कीजिये ॥ ३ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

सत्यं न केनचिद्धर्तुं पार्यते तन्महाद्युति ।
ऋते यन्त्रान्तरादस्माद् देवर्षे शक्तिशालिनः ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप सत्य कहते हैं । यह यन्त्रराज बड़ा ही प्रभावशाली है । मात्र उसी में इसके धारण करने की क्षमता है जो इससे कहीं अधिक शक्तिशाली हो ॥ ४ ॥

शृणु तस्य मुनिश्रेष्ठ स्वरूपं वीर्यमद्य वै ।

प्रथमं माहेन्द्रमण्डलनिर्माणम्

प्रथमं मण्डलं कृत्वा माहेन्द्रं वसुधात्मकम् ॥ ५ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं यन्त्रलाञ्छनलाञ्छितम् ।

तत्कोणेषु भूबीजाक्षरन्यासः

भौममेतस्य कोणेषु विन्यसेद् बीजमुत्तमम् ॥ ६ ॥
शेषाद्यैरष्टभिर्नागैर्धार्यमाणं समन्ततः ।

हे मुनिश्रेष्ठ ! अब उस मन्त्रराज के स्वरूप तथा प्रभाव को सुनिए । सर्वप्रथम पृथ्वी के आकार का माहेन्द्र मण्डल निर्मित करे । उसे सभी प्रकार के अलङ्कारों से संयुक्त करे । फिर आगे कही विधि के अनुसार उसमें यन्त्र का निर्माण करे । सर्वप्रथम इसके कोनों पर भौम बीज (लं) लिखे । जिसे आठों कोनों पर शेषादि आठ नाग चारों ओर से धारण किये हों । उसकी विधि इस प्रकार है ॥ ५-६ ॥

मण्डलप्राग्भागे शेषगुलिकयोर्न्यासः

प्राग्भागे मण्डलस्यास्य भीषणौ भीमलोचनौ ॥ ७ ॥
विलिखेच्छेषगुलिकौ लोकयन्तौ परस्परम् ।

दक्षिणभागे वासुकिशङ्खयोः

वासुकिं शङ्खपालं च वीक्षमाणौ परस्परम् ॥ ८ ॥
दक्षिणस्यां दिशि तथा विन्यसेदस्य साधकः ।

इस मण्डल के पूर्वभाग में भीषण तथा भीम नेत्र वाले शेष एवं गुलिक नामक दो नागों को लिखे जो परस्पर एक दूसरे को आमने-सामने देख रहे हों । फिर साधक मण्डल की दक्षिण दिशा में वासुकि एवं शङ्खपाल को लिखे जो परस्पर एक दूसरे को देख रहे हों ॥ ७-९ ॥

पश्चिमे तक्षकमहाम्बुजयोः

पश्चिमायां लिखेदेवं तौ तक्षकमहाम्बुजौ ॥ ९ ॥

उत्तरभागे कार्कोटकाम्बुजयोः

कार्कोटकं चाम्बुजं च लिखेदुत्तरतो मुने ।
तस्य मध्ये महाज्वालामालावर्तविराजितम् ॥ १० ॥

मध्ये वह्निमण्डलकल्पना

कोणषट्कयुतं वह्निमण्डलं बीजसंयुतम् ।

तन्मध्ये वायुमण्डलविन्यासः

समालिख्य च तन्मध्ये वायव्यं मण्डलं लिखेत्॥ ११ ॥
वर्तुलं बिन्दुसंयुक्तं तद्बीजेन समन्वितम्।

तन्मध्ये दशारचक्रलेखनम्

तन्मध्ये चक्रमतुलं प्रोज्ज्वलन्नेमिमण्डलम्॥ १२ ॥
अरैर्दशभिराकीर्णं विन्यसेदरिमर्दनम्।

इसी प्रकार पश्चिम दिशा में तक्षक और महाम्वुज तथा उत्तर दिशा में काकोंटक और अम्बुज (पद्म) नामक नागों को लिखे। तदनन्तर मण्डल के मध्य में महाज्वाला की लपटों से विराजमान छः कोणों वाले वह्निमण्डल का रं बीज युक्त लेखन करे। फिर अग्नि से युक्त कर मण्डल के मध्य में गोले को बिन्दु संयुक्त कर उसके बीज (य) से युक्तकर वायु मण्डल बनावे, उसके मध्य में देदीप्यमान नेमि मण्डल से युक्त, जिसमें शत्रुमर्दक दश अरे लगे हों, ऐसे महान् तेजस्वी चक्र का निर्माण करे॥ ९-१३ ॥

अरेषु सुदर्शननारसिंहमन्त्रन्यासः

मन्त्रं सौदर्शनस्यास्य नारसिंहस्य विन्यसेत्॥ १३ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु वर्णाभ्यामरेषु नवसु क्रमात्।
दशमे हनशब्दं तु विन्यसेदरकेऽस्य वै॥ १४ ॥

फिर नव अरों में दो-दो वर्ण से युक्त सुदर्शन मन्त्र तथा नरसिंह का मन्त्र लिखे। फिर दसवें अरे में हन शब्द लिखे॥ १३-१४ ॥

चक्रमध्ये अष्टदलपद्मलेखनम्

चक्रमध्ये न्यसेत् पद्मं दलैरष्टभिरन्वितम्।
कर्णिकाघटितं रम्यं केसरैरुपशोभितम्॥ १५ ॥

फिर उस चक्र के मध्य में कर्णिका एवं केसर से युक्त अष्ट दल कमल का निर्माण करे॥ १५ ॥

कर्णिकायां प्रणवन्यासः

तत्कर्णिकायां विलिखेत् तारं संसारतारकम्।

तत्रैवाभीष्टार्थसाध्यनाम्नोर्विलेखनम्

अभीष्टमर्थं साध्यस्य नामधेयमतः परम्॥ १६ ॥

उसकी कर्णिका में संसार को पार लगाने वाला प्रणव लिखे और साध्य अभीष्ट प्रयोजन तथा जिसका प्रयोजन हो उसका नाम भी लिखे॥ १६ ॥

एवंभूतेन धारकयन्त्रेण सकलार्थसिद्धिः

तदेतत् परमं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम्।
पवित्राणां पवित्रं च चोरपीडानिवारणम्॥ १७ ॥

सर्वार्थसाधकं घोरं विश्ववन्द्यमनुत्तमम् ।

इस प्रकार से लिखा हुआ यह परम दिव्य यन्त्र सभी मङ्गलों का मङ्गल है । पवित्र को भी पवित्र करने वाला है । चोरजन्य भय को तो दूर करता ही है, सर्वार्थ साधक, अद्वितीय एवं विश्ववन्द्य भी है ॥ १७-१८ ॥

यन्त्रेणानेनेन्द्रस्य शत्रुजयप्राप्तिः

पुरा देवेषु दैतेयैरभिभूतेषु वासवः ॥ १८ ॥
बृहस्पतिं समाहूय प्रोवाचेदं वचस्तदा ।
बाधन्ते नितरामस्मानिमे दैतेयदानवाः ॥ १९ ॥
केनोपायेन भगवन् विजेष्यामो महासुरान् ।
बलहानिः कथं वैषां भविता भगवन् वद ॥ २० ॥

पूर्व काल में जब दैत्यों के द्वारा देव लोग पराजित होने लगे तब इन्द्रदेव ने बृहस्पति को बुला कर ऐसा वचन कहा—हे भगवन् ! ये दैत्य एवं दानव हम लोगों को बहुत दुःख दे रहे हैं । अतः किस प्रकार इन महान् असुरों पर हम लोग विजय प्राप्त करें? तथा इनकी बलहानि किस प्रकार हो? उसका उपाय हमें बताइये ॥ १८-२० ॥

एवं मघवता प्रोक्तः प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ।
सौदर्शननृसिंहस्य यन्त्रस्य करणादिह ॥ २१ ॥
नश्यन्ति शत्रवः सर्वे सुराणां बलसूदन ।
इत्युक्त्वा स्थापयामास यन्त्रं मघवतः पुरे ॥ २२ ॥

इन्द्र द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर बृहस्पति ने कहा—हे बलशत्रो इन्द्र ! सुदर्शन एवं नृसिंह के यन्त्र के निर्माण से असुरों के द्वारा किए गए सारे उपद्रव नष्ट हो जावेंगे । ऐसा कह कर उन्होंने इन्द्र के सामने ही उस यन्त्र को लिख कर स्थापित कर दिया ॥ २१-२२ ॥

मणिविद्रुममुक्ताढ्यं सौवर्णममितप्रभम् ।
ततः प्रभृति दैतेया नष्टश्रीका हतत्विषः ॥ २३ ॥
पराजिता विद्रवन्ति दिशो नष्टनिकेतनाः ।
तदेतदतिवीर्यं तु यन्त्रं सुरसुपूजितम् ॥ २४ ॥

मणि, विद्रुम, मोती तथा सुवर्ण निर्मित वह यन्त्र उस अतुलनीय प्रभा से युक्त था, जिसके प्रभाव से सारे के सारे दैत्यों की श्री विनष्ट हो गई और वे हतप्रभ से हो गए । वे दैत्य अपना घर छोड़कर जैसे-तैसे जहाँ-तहाँ पलायित हो गए । इस प्रकार देवताओं से पूजित यह यन्त्र बड़ा प्रभावशाली है ॥ २३-२४ ॥

अस्यैव यन्त्रस्य पूर्वोक्तमहासुदर्शनयन्त्रधारकत्वम्

तदेतेनैव यन्त्रेण यन्त्रं सौदर्शनं परम् ।
धार्यते तत् सुरमुने विचित्रं विष्टरात्मना ॥ २५ ॥

यन्त्रमेतन्मयाख्यातमेवं माहासुदर्शनम् ।
धृतं यन्त्रेण वीर्यात्तु सुदर्शननृसिंहयोः ॥ २६ ॥

हे देवर्षे ! इसीलिए अन्य यन्त्रों की अपेक्षा यह सुदर्शन यन्त्र बड़ा विचित्र है । जो देवताओं के द्वारा भी धारण किया गया है । इस प्रकार सुदर्शन तथा श्रीनृसिंह के महावीर्य (महामन्त्र) से लिखे गए इस महासुदर्शन यन्त्र का आख्यान मैंने आपसे कहा ॥ २५-२६ ॥

राजन्वद्देशस्यैव यथोक्तयन्त्रभरणक्षमत्वम्

एतस्य तु विशिष्टस्य भरणे सैव भूः क्षमा ।
यस्याः पालयिता राजा धार्मिको दृढविक्रमः ॥ २७ ॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजकः परमास्तिकः ।

राज्ञो नित्यमेतदभ्यर्चनविधिः

एतदभ्यर्चयेद्राजा चक्राकारमतन्द्रितः ॥ २८ ॥
पुरुषाकारमपि वा तथैवोभयतोमुखम् ।

एतन्मन्त्रप्रदातुर्विशेषतः पूज्यत्वम्

एतन्मन्त्रप्रदातारं विशिष्टं पूजयेद् बुधः ॥ २९ ॥

इस विशिष्ट यन्त्र के भरण में वही पृथ्वी सक्षम है, जिसका पालन करने वाला राजा धार्मिक, पराक्रमी, देवता, ब्राह्मण, गौ तथा विद्वानों की पूजा करने वाला एवं परम आस्तिक हो । इस चक्राकार यन्त्र की पूजा राजाओं को आलस्यरहित होकर करनी चाहिए चाहे वह पुरुषाकार हो, अथवा चक्राकार हो, अथवा उभयाकार हो बुद्धिमान् राजा इस मन्त्र देने वाले पुरोहित की विशिष्ट पूजा करे ॥ २७-२९ ॥

एतन्मन्त्रविधिना कर्षणादिप्रतिष्ठान्तकर्मविधिः

कर्षणादीनि कर्माणि प्रतिष्ठान्तान्यमुष्य तु ।
एतन्मन्त्रोक्तमार्गेण कारयेन्नृपतिः स्वयम् ॥ ३० ॥

राजा स्वयं इस मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार कर्षण से लेकर प्रतिष्ठान्त कर्म करे ॥ ३० ॥

तन्त्रस्यास्य सात्त्वतादिभिरेकतन्त्रत्वम्

सात्त्वतादिषु तन्त्रेषु विहितेनैव चाध्वना ।
सुदर्शनस्य मन्त्रस्य नारसिंहस्य वा मुने ॥ ३१ ॥
कल्पप्रयुक्ता विधयः सर्वे चैतस्य सन्निधौ ।
भवन्ति सकलाश्चैतत्प्रभावेण प्रयोजिताः ॥ ३२ ॥
तस्माद्यथोक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्यैतदर्चयेत् ।

राज्ञामेतदर्चनेन राज्यादिलाभः

राजा राज्यं जयं भूतिमायुरारोग्यमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

हे मुने ! इस सुदर्शन मन्त्र की तथा नृसिंह मन्त्र की सभी विधियाँ कल्पोक्त हैं अथवा सात्वतादि शास्त्रों में जिस प्रकार की विधि कही गई है उसके अनुसार प्रतिष्ठा कर अर्चन करना चाहिए । ऐसा करने से राजा को राज्य, जय, भूति, आयु तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥ ३१-३३ ॥

नित्यमर्चयतः फलविशेषः

नित्यमर्चयतो राज्ञः सप्तद्वीपवती मही ।
समुद्रवसना चैषा विश्वा वश्या भविष्यति ॥ ३४ ॥

जो राजा निरन्तर इस यन्त्र की पूजा करता है, उसके वश में यह समस्त समुद्र से घिरी हुई सप्तद्वीपवती पृथ्वी हो जाती हैं ॥ ३४ ॥

होमार्थं प्रासादकुण्डयोर्निर्माणम्

प्रासादं लक्षणोपेतं विधाय परमासनम् ।
तत्रैव कारयेत् कुण्डं मन्त्रस्यास्य यथाविधि ॥ ३५ ॥

सर्वप्रथम इसकी अर्चा के लिए साधक सुलक्षण प्रासाद का निर्माण करे । फिर मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार प्रतिष्ठा योग्य पीठ निर्माण कर वहीं कुण्ड की रचना करे ॥ ३५ ॥

साधकेन तत्र होमादिनिर्वर्तनम्

भूपतेर्यानि कर्माणि साधयंस्तानि साधकः ।
मन्त्रेणानेन जुहुयादस्मिन् कुण्डे समाहितः ॥ ३६ ॥

मन्त्रवेत्ता साधक को राजा के तत्तदभिलषित पदार्थों की सिद्धि के लिए उपर्युक्त कुण्ड में समाहित चित्त से इस मन्त्र द्वारा हवन करना चाहिए ॥ ३६ ॥

वैकल्पिकप्रदेशान्तरविधिः

अनेनैव तु मन्त्रेण राज्ञो रक्षाविधिर्यदि ।
विष्णोरायतने रम्ये मण्डपे मण्डितेऽथवा ॥ ३७ ॥
कृत्वैतत् कुण्डमत्रैव राजाभ्यर्च्य महाधनैः ।
एतन्मन्त्रप्रदातारं स्वकर्माण्येव कारयेत् ॥ ३८ ॥

अथवा यदि मन्त्र से राजा को अपनी रक्षा करनी हो तो वह राजा पर्याप्त धन से इस मन्त्रज्ञ की पूजा कर कुण्ड निर्माण करवा कर उसी से अपना कर्म करावे ॥ ३७-३८ ॥

पुनर्यन्त्रार्चनफलविशेषकथनम्

अनेन कृतकृत्यस्तु राजा राज्यमवाप्नुयात् ।
नीरोगो निःसपत्नश्च दीर्घायुश्च भविष्यति ॥ ३९ ॥

नागैरनेकसाहस्रैरसङ्ख्येयैश्च वाजिभिः ।
स्यन्दनैर्नरवर्यैश्च पूर्णा तस्य पुरी भवेत् ॥ ४० ॥

राजा इस मन्त्र से कृतकृत्य होकर राज्य प्राप्त करने में समर्थ होता है । वह निरोग एवं निष्कण्टक रहकर दीर्घायु प्राप्त करता है ! इतना ही नहीं, उसकी वह नगरी, जिसमें वह निवास करता है, अनेक सहस्र हाथियों, असङ्ख्य घोड़ों, असङ्ख्य रथों तथा असङ्ख्य मनुष्यों से परिपूर्ण रहती है ॥ ३९-४० ॥

यश्चैनमर्चयेद्राजा यन्त्रराजमनुत्तमम् ।
सर्वमन्त्रविशिष्टत्वादर्चितास्तेन देवताः ॥ ४१ ॥

जो राजा इस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमन्त्र विशिष्ट इस यन्त्रराज की पूजा करता है मानो उसने समग्र देवताओं की पूजा कर ली ॥ ४१ ॥

यदर्थं योऽर्चयेदेनमात्मार्थे यतते परम् ।
सर्वेषामेव भूतानां राज्ञश्च कुरुते हितम् ॥ ४२ ॥

जो कोई भी साधक जिस किसी प्रयोजन के लिए इस यन्त्र की पूजा करता है वह मानो आत्म कल्याण करता है और सभी प्राणियों का तथा राजा का मानो हित करता है ॥ ४२ ॥

अस्मिन् मन्त्रे यन्त्रे च राज्ञामेवाधिकारः

अयं मन्त्रश्च यन्त्रं च राज्ञामेव विधीयते ।
सर्वसाधारणार्थानि मन्त्रजातानि नारद ॥ ४३ ॥

हे नारद ! यह मन्त्र और यन्त्र केवल राजाओं के लिए विहित है । अन्य समस्त मन्त्रजात सर्वसाधारण के लिए है ॥ ४३ ॥

एतदभ्यर्चनपरा मन्त्रिणो यस्य भूपतेः ।
अभिरक्षन्ति राजानमरिष्टमुखतोऽपि ते ॥ ४४ ॥

जिस राजा का मन्त्री इस यन्त्र के पूजन में निरत रहता है, वह उसके समस्त दुर्भाग्य का नाश कर उसकी रक्षा करता है ॥ ४४ ॥

एतत्प्रणामादीनामपि तत्तत्फलसाधनत्वम्

एतत्प्रणामेन समर्चनेन
सङ्कीर्तनेन स्मरणेन वाऽपि ।
सन्तोषयेत् सन्ततमस्य सर्वं
मनीषितं हस्तगतं प्रपश्येत् ॥ ४५ ॥

इस यन्त्रराज को प्रणाम करने से, पूजा करने से, सङ्कीर्त्तन करने से अथवा स्मरण करने से तथा सन्तुष्ट करने से उसके हाथ में सारे अभिलषित अपने आप दिखाई पड़ने लगते हैं ॥ ४५ ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

इति निगदितमेतद्यन्त्ररूपं समन्त्रं
सकलदुरितभेदव्यापृतं संश्रितानाम् ।
तदिह कृतविधेयो भूपतिः पूर्णकामो
भुवनतलमशेषं प्राप्नुयाच्चक्रवर्ती ।। ४६ ।।

।। इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां धारकयन्त्रनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

।। आदितः श्लोकाः १६११ ।।

* * *

इस प्रकार हमने मन्त्र के सहित इस यन्त्रराज का निरूपण किया, जो अपने आश्रितों के समस्त पापों को नष्ट करता है और जो राजा इस लोक में इसका विधेय (आज्ञाकारी) बन जाता है वह पूर्णकाम हो जाता है तथा वह चक्रवर्त्ती होकर सारी पृथ्वी का लाभ करता है ।। ४६ ।।

।। इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के धारकयन्त्र निरूपण नामक सत्ताइसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ।। २७ ।।

* * *

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

भगवदाराधनविधिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरा का मात्र एक वार किया गया ध्यान अनेक जन्म के करोड़ों पाप समूह का विनाश करता है, हम उन चक्रसुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

आराधनविधिनिरूपणारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

आराधनविधिं वक्ष्ये समासेनैव नारद ।
आयुरारोग्यविजयभूप्रदं धनधान्यदम् ॥ १ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब मैं भगवदाराधन की विधि संक्षेप में कहता हूँ जो आयु, आरोग्य, विजय, भूमि तथा धन धान्यादि प्रदान करता है ॥ १ ॥

तस्यैहिकामुष्मिकफलसाधनत्वम्

पुत्रपश्वन्नकामानां तंतत्साधनमुत्तमम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं शान्तं पराभिभवकारणम् ॥ २ ॥

यह भगवदाराधन पुत्र, पशु तथा अन्न चाहने वालों के लिए तत्तत् उत्तम साधन है जो भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करता है । यह उपद्रव तो शान्त करता ही है, शत्रुओं का विनाश भी करता है ॥ २ ॥

तत्रादौ स्नानविधिः

तीर्थं गत्वा शुचौ देशे मृदमादाय मन्त्रतः ।
द्विधा कृत्वैकभागेन कुर्याद् देहस्य शोधनम् ॥ ३ ॥
स्नात्वाचम्य गृहीत्वान्यं मृद्भागं विन्यसेत् त्रिधा ।
वामे पाणौ दिशाबन्धं विदध्यादेक भागतः ॥ ४ ॥
गात्रालेपं ततः कुर्यादन्येनांशेन नारद ।
सङ्कल्पयेत् तृतीयांशं तीर्थपीठमतःपरम् ॥ ५ ॥

सर्वप्रथम किसी पवित्र देश के तीर्थ में जाकर मन्त्रपूर्वक (= उद्धृतासि वराहेण) वहाँ की मिट्टी ग्रहण करे और उसके दो भाग कर प्रथम भाग को शरीर में लगा कर शुद्ध करे। फिर दूसरे भाग को तीन भागों में प्रविभक्त करे। जिसमें एक भाग को बायें हाथ में लेकर दिग्बन्धन करे। फिर दूसरे भाग से शरीर में लेप करे। फिर तीसरे भाग को लेकर तीर्थ पीठ का सङ्कल्प करे ॥ ३-५ ॥

गङ्गां तत्र स्मरेद्विष्णोर्वामपादविनिःसृताम् ।
अर्घ्यमस्यै निवेद्याथ ततो हृत्वा जलाञ्जलिम् ॥ ६ ॥
स्वमूर्ध्नि सिञ्चेत् त्रिस्तावत्सप्तकृत्वोऽभिमन्त्रितम् ।
निमग्नस्तत्र देवस्य पादाब्जन्यस्तमस्तकः ॥ ७ ॥
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं तस्य ध्यानपरायणः ।

सर्वप्रथम विष्णु के वाम पाद से निकलने वाली गङ्गा का स्मरण करे। तदनन्तर उन्हें अर्घ्य प्रदान कर जलाञ्जली हाथ में लेकर सात बार उसका अभिमन्त्रण करे। तीन बार उस जल से शिर का अभिषेक करे। तदनन्तर जल में डुबकी लगाकर भगवान् के चरण कमलों में शिर नवाकर उसी ध्यान में निमग्न हो यथाशक्ति मन्त्र का जप करे ॥ ६-८ ॥

तत उत्तीर्य चाचम्य धृत्वा वस्त्रोत्तरीयके ॥ ८ ॥
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः स्वाचान्तो देवादीनच्युतात्मकान् ।
ध्यात्वा सन्तर्पयेदन्यदाह्निकं विधिवच्चरेत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर जल से बाहर निकलकर वस्त्र और उत्तरीय धारण कर आचमन करे। आचमन के अनन्तर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे और सभी देवों में अच्युत की भावना करे। इस प्रकार ध्यान करते हुये देवताओं का सन्तर्पण करे तथा अपना सभी आह्निक कृत्य सम्पादन करे ॥ ८-९ ॥

यागभूमिमथागम्य क्षालिताङ्घ्रिकरो वशी ।

आराधनोपक्रमः

आचम्य वाग्यतो भूत्वा प्रारभेत समर्चनम् ॥ १० ॥
चतुर्द्वारयुतं रम्यं गत्वा शरणमात्मवान् ।
द्वाःस्थानशेषानभ्यर्च्य ततो मण्डपमाश्रयेत् ॥ ११ ॥

पुनः यज्ञभूमि में जाकर हाथ पैर धो कर जितेन्द्रिय होकर आचमन करे और मौन ग्रहण कर भगवदर्चन आरम्भ करे। जिसमें चारों ओर द्वार हों, ऐसे यज्ञमण्डप के पास जाकर सर्वप्रथम द्वारपालों की पूजा कर पश्चात् मण्डप में प्रवेश करे ॥ १०-११ ॥

मण्डपवर्णनम्

तुङ्गं मङ्गलसंयुक्तं मणिकुट्टिमभूषितम् ।
सौवर्णैर्बहुभिः स्तम्भैर्मणिविद्रुमभूषितैः ॥ १२ ॥
उपेतं दीपिकाजालैर्जातरूपमयैर्वृतम् ।

विचित्राभिः पताकाभिस्तोरणैरुपशोभितम् ॥ १३ ॥
मणिकिङ्किणिजालैश्च वितानैः क्षौमकल्पितैः ।
विराजमानं सर्वत्र मणिपीठविराजितम् ॥ १४ ॥

वह यज्ञमण्डप ऊँचा एवं माङ्गलिक वस्तुओं (ध्वज, तोरण आदि) से युक्त हो । उसका फर्श मणि जटित कर बनाया गया हो । जगह-जगह मणियों और विद्रुमों से जड़े हुये सुवर्ण के बहुत से खम्भे जिसमें लगे हों, जो सुवर्ण निर्मित दीपकों से जगमगा रहा हो तथा विचित्र विचित्र पताकाओं और तोरणों से जो सुशोभित हो, जिसमें रेशमी चँदवाँ लगा हो और मणिनिर्मित घुँघुरुओं के समूह से जो सुशोभित हो, जहाँ स्थान-स्थान पर मणिनिर्मित आसन रखे गए हों ॥ १२-१४ ॥

तत्र वेदिकानिर्माणम्

तस्य मण्डपरत्नस्य मध्ये परमभास्वराम् ।
पद्मरागमयैः स्तम्भैश्चतुर्भिरुपशोभिताम् ॥ १५ ॥
मुक्तामयवितानेन युक्तां रत्निचतुष्किकाम् ।
वैडूर्यघटितोत्तुङ्गवेदिकां दीपिकायुताम् ॥ १६ ॥
एवं कर्तुमशक्तश्चेदेवं ध्यायीत पूजकः ।

उस रत्न खचित मण्डप के मध्य में जहाँ वैदूर्यजटित वेदी प्रकाश से जगमगा रही हो, जिसके चारों ओर चार पद्मराग के खम्भे लगे हों, जिस पर मोतियों का वितान (= चँदोवा) लगा हो, जिसका प्रमाण चार रत्नि हों तथा जिस पर दीपक जल रहा हो वहाँ पर जावें यदि ऐसी वेदी का निर्माण कर न सके तो साधक उसका ध्यान मात्र कर लेवे ॥ १५-१६ ॥

तत्र सपरिवारभगवद्ध्यानम्

एवं चतुष्किकामध्ये चक्राब्जमयविष्टरे ॥ १७ ॥
आधारशक्तिकमठानन्तधर्मादिधारिते ।
पद्मे सोमरविज्योतिः सत्त्वादिपरिवारिते ॥ १८ ॥
एवमुक्तप्रकारेण परिवारैर्निषेवितम् ।
वेदैर्मन्त्रैस्तथा शस्त्रैरस्त्रैः शक्तिभिरावृतम् ॥ १९ ॥
ध्यायेत् तदासने देवं समासीनः समासने ।

इस प्रकार की वेदी के ऊपर रखी गयी चौकी पर जहाँ चक्रमय पद्म का विष्टर (आसन) बनाया गया है तथा जिसकी चारों ओर की आधार शक्ति कमठ, अनन्त एवं धर्म द्वारा धारण की गई हो, उस पीठ पर बने हुये कमलरूप आसन पर, जिसके चारों ओर सोम, रवि, अग्नि तथा सत्त्वादि का परिवार हो, ऐसे परिवार मण्डलों से निषेवित वेद मन्त्रों अस्त्र-शस्त्रों तथा शक्तियों के सहित देवाधिदेव का ध्यान साधक अच्छी तरह से बैठकर करे ॥ १७-२० ॥

भगवत्प्रार्थना

अर्चयामि त्वदीयोऽहं त्वद्दत्तैरौपचारिकैः ॥ २० ॥
सांस्पर्शिकैरिति ब्रूयाद् देवमाभ्यवहारिकैः ।

ध्यान करने के अनन्तर प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! मैं आपका भक्त हूँ । आपके द्वारा प्रदत्त सामग्री से आपकी अर्चना करता हूँ और यदि भोजन करना हो तो कहे कि हे भगवन् ! मैं आपके द्वारा संस्पृष्ट भोजन करता हूँ । इसके बाद भूतशुद्धि इस प्रकार से करे ॥ २०-२१ ॥

भूतशुद्धिक्रमः

संहरेद् देहतत्त्वानि प्रतिसञ्चरवर्त्मना ॥ २१ ॥
ततः स्थूलमिदं देहं शोषयित्वाथ संदहेत् ।
प्राणायामेन चाद्येन मन्त्रं नाभ्यां तु विन्यसेत् ॥ २२ ॥
तदुद्भूतेन नादेन सुषुम्नामध्यवर्तिना ।
वायुमण्डलमभ्येत्य तदुत्थेनैव वायुना ॥ २३ ॥
संशोषयेदिमं देहं स्थूलं सुरमुने ततः ।
प्राणायामद्वितीयेन हृदये विन्यसेन्मनुम् ॥ २४ ॥
मन्त्रोत्थेनाग्निना देहं दहेन्मण्डलवर्तिना ।

प्रतिसञ्चर (संहार) मार्ग से देहतत्त्वों का उपसंहार करे । तदनन्तर इस स्थूल शरीर का शोषण कर उसे जलावे, इसका क्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम प्राणायाम कर नाभि में मन्त्र का न्यास करे । फिर सुषुम्नामध्यवर्त्ती मन्त्र से उठे हुये नाद के द्वारा मन्त्र को वायुमण्डल में ले जाकर उसकी उठी हुई वायु से इस स्थूल शरीर का शोषण करे । फिर दूसरा प्राणायाम कर मन्त्र को हृदय में सन्निविष्ट करे और गोलमण्डल के मध्य में रहने वाले मन्त्रोत्स्थित अग्नि से उस स्थूल शरीर को जला डाले ॥ २१-२५ ॥

तृतीयेन स्वमात्मानं प्राणायामेन देशिकः ॥ २५ ॥
अधो निवेशयन् विष्णोर्वामपादाम्बुजस्य वै ।
स्वं तदङ्गुष्ठनिष्ठ्यूतपीयूषाप्लावितं स्मरेत् ॥ २६ ॥

फिर आचार्य तृतीय प्राणायाम से अपने को विष्णु पादकमल के नीचे ले जाकर, उनके नखाङ्गुष्ठ से चूते हुये पीयूषामृत से आप्लावित होने का स्मरण करे ॥ २५-२६ ॥

पञ्चौपनिषदैर्मन्त्रैस्ततः सञ्जातविग्रहः ।
न्यस्ताङ्गो मन्त्रविन्मन्त्रैश्चिन्तयित्वा सुदर्शनम् ॥ २७ ॥
आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्यमण्डलात् ।
प्रारभेत ततः पूजां करन्यासं विधाय वै ॥ २८ ॥

फिर उपनिषदों में कहे गए पाँच मन्त्र (तत्त्वमसि सोऽहं ब्रह्म इत्यादि) से अपने को नया शरीर धारण किया समझे । इस प्रकार मन्त्रवेत्ता वह साधक मन्त्र से शरीर का न्यास

कर सुदर्शन का ध्यान करे। पुनः हृदय रूपी कमल में सूर्यमण्डल से ब्रह्मरन्ध्र द्वारा भगवान् का आवाहन करे। फिर करन्यास कर पूजा कार्य प्रारम्भ करे ॥ २७-२८ ॥

हृद्यागं प्रथमं कुर्यान्नियतेन्द्रियमानसः।
आत्मनो दक्षिणे पार्श्वे वासितैः पावनैर्जलैः ॥ २९ ॥
पूरितं स्थापयेत् पात्रं मूलमन्त्रेण मन्त्रितम्।
वामपार्श्वे तथा सर्वं विन्यसेत् साधनान्तरम् ॥ ३० ॥

सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों को वश में कर हृदय में यज्ञ करे और अपने दाहिने भाग में शुद्ध पवित्र जल से पूर्ण पात्र को मूलमन्त्र पढ़ते हुये स्थापित करे। तदनन्तर अपनी बाईं ओर पूजा की शेष सामग्री स्थापित करे ॥ २९-३० ॥

ततो विस्तीर्य पुरतः शाटिकामतिनिर्मलाम्।
तस्यामाग्नेयदिग्भागे विन्यसेदर्घ्यपात्रकम् ॥ ३१ ॥
पाद्यपात्रमथो न्यस्येत् कोणे दक्षिणपश्चिमे।
पात्रमाचमनीयस्य विन्यसेत् पश्चिमोत्तरे ॥ ३२ ॥
स्नानीयपात्रं दिग्भागे विन्यसेच्छाङ्करे ततः।

तदनन्तर अपने आगे अत्यन्त शुद्ध तथा स्वच्छ वर्ण की साड़ी फैला दें। उस साड़ी के आग्नेय कोण में अर्घ्य पात्र स्थापित करे और दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) के कोने में पाद्य (पैर को धोने वाला) पात्र भी स्थापित करे। पश्चिमोत्तर (वायव्य) कोण में आचमनीय पात्र तथा ईशान कोण में स्नानीय (स्नान के लिए जल युक्त) पात्र स्थापित करे ॥ ३१-३३ ॥

अर्घ्यादिषु प्रक्षेप्यद्रव्याणि

सिद्धार्थमक्षतं चैव कुशाग्रं तिलमेव च ॥ ३३ ॥
यवं गन्धं फलं पुष्पमष्टाङ्गं चार्घ्यमुच्यते।
दूर्वा च विष्णुपर्णी च श्यामाकं पद्ममेव च ॥ ३४ ॥
पाद्यद्रव्याणि चत्वारि सोदकानि प्रकल्पयेत्।
लवङ्गजातीतक्कोलद्रव्याण्याचमनीयके ॥ ३५ ॥
सिद्धार्थकादि स्नानीये पूर्ववत् कल्पयेद् बुधः।

सिद्धार्थक (पीली सरसों), अक्षत, कुशाग्र, तिल, यव, गन्ध, फल तथा पुष्प यह अष्टांग अर्घ्य कहा गया है। दूर्वा, विष्णुपर्णी, श्यामाक और पद्म ये चार जलयुक्त करने से पाद्य द्रव्य कहे गए हैं। लवङ्ग, जाती तथा तक्कोल ये जल मिश्रित होने पर आचमनीय द्रव्य कहे जाते हैं। पूर्व में कहे गए सिद्धार्थकादि द्रव्यों (द्र० २८.३३) को स्नान वाले पात्र में डालकर स्नानीय जल का निर्माण करे ॥ ३३-३६ ॥

तत्र मन्त्रासनं प्रथमम्

अर्घ्यं सङ्कल्पयामीति स्पृशेज्जप्त्वार्घ्यमादितः ॥ ३६ ॥
पाद्यपात्रादिकेष्वेवं ब्रूयात् सुरमुने क्रमात्।

गन्धतोयेन सम्पूर्य पात्राण्येतानि सर्वशः ॥ ३७ ॥

सर्वप्रथम 'अर्घ्यं समर्पयामि' इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्यपात्र का स्पर्श करे । इसी प्रकार हे नारद ! 'पाद्यं समर्पयामि' इस मन्त्र को पढ़कर पाद्य समर्पण करे । इसी प्रकार गन्धजल से सम्पूरित कर अन्यत्र पात्रों में भी मन्त्रों की कल्पना करे ॥ ३६-३७ ॥

अर्घ्यात् किञ्चित् समुद्धृत्य जलं पात्रान्तरेण तु ।
देवस्य दक्षिणे पाणौ मूलमन्त्रेण विन्यसेत् ॥ ३८ ॥
पुष्पं दत्त्वाथ पाद्येन पादौ देवस्य सेचयेत् ।
वस्त्रेण मार्जयित्वाथ दद्यादाचमनीयकम् ॥ ३९ ॥

अब अर्घ्यदान की प्रक्रिया बताते हैं कि किसी दूसरे पात्र से अर्घ्य पात्र का जल निकाल कर मूलमन्त्र से देवाधिदेव को समर्पित करे । तत्पश्चात् पाद्य से पुष्प सहित जल निकाल कर देवाधिदेव के पैर को सिञ्चित करे । तदनन्तर वस्त्र से पैर पोंछकर आचमनीय प्रदान करे ॥ ३८-३९ ॥

अर्घ्यादिदत्तशिष्टानि क्षिपेत् पात्रान्तरे तदा ।
चन्दनं माल्यदानं च धूपं दीपं दिशेत् ततः ॥ ४० ॥
पुनराचमनीयं च मुखवासमतः परम् ।
ताम्बूलं च निवेद्याथ प्रणम्यात्मनिवेदनम् ॥ ४१ ॥

अर्घ्यादि देने के अनन्तर जो जल बचे उसे दूसरे पात्र में रख देना चाहिए फिर चन्दन, माल्यदान, धूप और दीप प्रदान करे । फिर आचमनीय प्रदान करे । मुख में सुगन्धित द्रव्य तथा ताम्बूल प्रदान करे । तदनन्तर प्रणाम कर आत्मनिवेदन करे । यहाँ तक अर्घ्यदान की विधि कही गई ॥ ४०-४१ ॥

स्नानासनं द्वितीयम्

विधाय स्नानपीठं तु गन्धपुष्पादिनार्चयेत् ।
विज्ञाप्य पादुके दत्त्वा देवे स्नानासनं गते ॥ ४२ ॥
वस्त्रभूषणमाल्यानि व्यपनीय ततः परम् ।
स्नानार्थं शाटिकां दद्यात् पाद्यमाचमनीयकम् ॥ ४३ ॥
पादपीठप्रदानं च दन्तकाष्ठं दिशेत् ततः ।
जिह्वानिर्लेखनं चैव मुखशोधमथो दिशेत् ॥ ४४ ॥

अब दूसरे स्नान आसन की विधि कहते हैं । भगवान् के स्नान के लिए आसन निर्माण कर उसे गन्धपुष्पादि द्वारा समर्चित करे । फिर पादुका देकर जब भगवान् स्नानासन के पास चले जावें तब उनका वस्त्र, आभूषण एवं माल्य शरीर से उतार कर स्नान के लिए धोती आदि वस्त्र समर्पित करे । फिर पाद्य, आचमनीय तथा बैठने के लिए आसन प्रदान कर दन्त काष्ठ (दतुअन) प्रदान करे । फिर जिह्वा छीलने के लिए जिह्वालेखन देकर मुख शुद्ध करने के लिए कुल्ली करावे ॥ ४२-४४ ॥

पुनराचमनीयं च तथादर्शोपदर्शनम् ।
पुनस्ताम्बूलदानं च तैलाभ्यङ्गमतः परम् ॥ ४५ ॥
उद्वर्तनविधानं च दानमामलकस्य च ।
तोयदानं ततः कुर्यात् कङ्कतप्लोतमेव च ॥ ४६ ॥
ततो विदद्याद् देवस्य देहशोधनशाटिकाम् ।
हरिद्रालेपनं कुर्यात् प्रक्षालनमतः परम् ॥ ४७ ॥

फिर आचमन के लिए जल दे कर आदर्श (शीशा) दिखावे । फिर ताम्बूल प्रदान कर तैलाभ्यङ्ग प्रदान करे और उबटन लगावे । फिर आमलक प्रदान कर जल देवे । कङ्घे से बाल झाड़े, फिर देह पोछने के लिए रूमाल या अंगोछा देवे, हरिद्रालेपन कर पुनः उसे धो देवे ॥ ४५-४७ ॥

वस्त्रोत्तरीयके दद्यादुपवीतं तथैव च ।
पाद्याचमनके कुर्याद् विचित्रं चन्दनं तथा ॥ ४८ ॥
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमाचमनं तथा ।
नृत्तवादित्रगीतादिसर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ४९ ॥
अभिषेकं ततः कुर्यान्नीराजनविधिं ततः ।
प्लोतवस्त्रोत्तरीये च उपवीतमतः परम् ॥ ५० ॥

फिर पहनने के लिए वस्त्र एवं उत्तरीय देवे तथा यज्ञोपवीत धारण करावे और पाद्य आचमनीय देकर चित्र-विचित्र चन्दन लगाये । फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं आचमन देवे । नृत्य, बाजा और सङ्गीतादि से युक्त उनका अभिषेक करे, आरती उतारे, फिर वस्त्र उत्तरीय प्रदान कर पश्चात् यज्ञोपवीत प्रदान करे ॥ ४८-५० ॥

तृतीयमलङ्कारासनम्

तत आचमनीयं च दत्त्वा देवाय देशिकः ।
अलङ्कारासनं पश्चादभ्यर्च्य प्रोक्षणादिना ॥ ५१ ॥
विज्ञाप्य पादुके दत्त्वा देवे विष्टरमाश्रिते ।
अर्घ्यादीन्यथ पात्राणि पूर्ववत् कल्पयेत् ततः ॥ ५२ ॥

फिर देशिक देवाधिदेव को आचमन देकर प्रोक्षण कर अलङ्कारासन की अर्चना करे। फिर पादुका प्रदान करे । जब भगवान् बिस्तर (आसन) पर बैठ जावें तब पुनः अर्घ्यादि पात्र पूर्ववत् स्थापित करे ॥ ५१-५२ ॥

अर्घ्यं पाद्यं ततो दद्यात् तत आचमनीयकम् ।
गन्धवच्चन्दनाद्यैश्च द्रव्यैश्चार्घ्यादिकं चरेत् ॥ ५३ ॥

फिर अर्घ्य तथा पाद्य देकर आचमन करावे । तदनन्तर सुगन्धित चन्दन एवं पूर्वोक्त द्रव्यादि युक्त (द्र० २८.३४) अर्घ्य प्रदान करे ॥ ५३ ॥

ततश्चित्राणि वासांसि प्रयच्छेद् भूषणानि च ।

यज्ञोपवीतदानं च तत आचमनीयकम् ॥ ५४ ॥

तदनन्तर विचित्र विचित्र प्रकार के वस्त्र एवं आभूषण प्रदान करे तत्पश्चात् यज्ञोपवीत तथा आचमन प्रदान करे ॥ ५४ ॥

गन्धपुष्पप्रदानं चाप्यादर्शस्य प्रदर्शनम् ।
धूपदीपौ तथा दद्यात् पुनराचमनीयकम् ॥ ५५ ॥

गन्धपुष्प देकर आदर्श प्रदर्शित करे । तदनन्तर धूप एवं दीप देकर पुनः आचमन प्रदान करे ॥ ५५ ॥

ततः स्तोत्रं जपेच्छत्रचामराणां प्रदर्शनम् ।
दर्शनं वाहनानां च ततः शङ्खरवं तथा ॥ ५६ ॥

फिर स्तोत्र का पाठ करे । छत्र चामर प्रदर्शित करे और वाहन (सवारी) दिखा कर शङ्ख ध्वनि करे ॥ ५६ ॥

वीणाकाहलभेर्यादिनिनादश्रावणं तथा ।
नृत्तवादित्रगीताद्यैरर्चयेन्मन्त्रतस्ततः ॥ ५७ ॥

वीणा, काहल (ढोल) और भेरी (नगाड़े) का शब्द सुनावे और नाच-गाना, बजाना करने के पश्चात् मन्त्र द्वारा अर्चन करे ॥ ५७ ॥

मूलमत्रेण दद्यात्तु पुष्पं देवाय देशिकः ।
पुष्पाञ्जलिं प्रतिदिशं प्रदक्षिणपुरःसरम् ॥ ५८ ॥

फिर आचार्य मूल मन्त्र पढ़कर देवाधिदेव को पुष्प प्रदान करे । पुनः प्रदक्षिण क्रम से प्रत्येक दिशाओं में पुष्पाञ्जलि प्रक्षिप्त करे ॥ ५८ ॥

दत्त्वा पुनः प्रणम्याथ स्तोत्रैर्देवं स्तुवीत वै ।
स्वमात्मानं भगवते किङ्करत्वाय वेदयेत् ॥ ५९ ॥

पुनः प्रणाम कर देवाधिदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करे और अपने को किङ्कर रूप में भगवान् को समर्पित करे ॥ ५९ ॥

ततो ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं यथाशक्ति समाहितः ।
आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैः समभ्यर्च्य मुने ततः ॥ ६० ॥
सर्वभोगैस्तु सम्पूर्णान् मन्त्रांस्तस्मै निवेदयेत् ।
मुखवासं ततो दद्यात् ताम्बूलं चार्घ्यमेव च ॥ ६१ ॥

फिर ध्यान कर एकाग्रचित्त हो यथाशक्ति मन्त्र का जप करे । तदनन्तर गन्ध पुष्पादिकों से आचार्य की अर्चना करे । फिर सम्पूर्ण भोगों से युक्त मन्त्र प्रदान कर मुखवास ताम्बूल एवं अर्घ्य समर्पित करे ॥ ६०-६१ ॥

चतुर्थं भोज्यासनम्

भोज्यासनमथाभ्यर्च्य देवं विज्ञाप्य पादुके ।

दद्यात् तत्रोपविष्टेऽस्मिन् पाद्यमाचमनं ततः ॥ ६२ ॥

अब भोज्यसान की अर्चना बतलाते हैं । भोज्य आसन (भोजन के लिए आसन पीढ़ा) की अर्चना कर भगवान् को पादुका (= पीढ़ा) प्रदान करे । जब भगवान् पीढ़ा पर बैठ जावें तब पाद्य एवं आचमन प्रदान करे ॥ ६२ ॥

अर्हणं च ततः कृत्वा दध्याज्यक्षीरमाक्षिकान् ।
गन्धं च पात्रे निक्षिप्य शोषणादिकमाचरेत् ॥ ६३ ॥
सम्प्रोक्ष्यार्घ्यजलेनैव मधुपर्कमथो दिशेत् ।
ततो दद्यात् सुवर्णं च गां च रत्नानि पूजकः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार पूजा करने के पश्चात् दधि, घृत, दूध, माक्षिक (मधु) एवं गन्ध किसी पात्र में रख कर शोषण आदि क्रिया करे । तदनन्तर अर्घ्य जल से उसे धोकर भगवान् को मधुपर्क निवेदन करे । तदनन्तर सुवर्ण, गाय और रत्न समर्पित करे ॥ ६३-६४ ॥

हविर्निवेदनम्

सुसंस्कृतान्नमाज्यं च दधिक्षीरमधूनि च ।
मूलानि मोदकान् स्निग्धान् व्यञ्जनानि फलानि च ॥ ६५ ॥
यानि कालोपपन्नानि शुचीनि गुणवन्ति च ।
स्वादिष्टानि प्रभूतानि हृद्यान्यन्यानि यानि च ॥ ६६ ॥
विशोध्य शोषणाद्यैस्तु सम्प्रोक्ष्यार्घ्यजलेन तु ।
विधाय रक्षामस्त्रेण हविरर्हणपूर्वकम् ॥ ६७ ॥
मुद्रां तु सुरभिं कृत्वा देवायैतन्निवेदयेत् ।
अनुवासं ततो दद्याद् दर्पणं च ततः परम् ॥ ६८ ॥
दद्यादाचमनीयं च हस्तमार्जनचन्दनम् ।
मुखवासं च ताम्बूलं प्रदायास्मै प्रणम्य च ॥ ६९ ॥

अच्छी तरह से पकाया हुआ अन्न, घृत, दधि, क्षीर, मधु, कन्दमूल, मोदिक चिकने-चिकने व्यञ्जन, उत्तम फल, इसके अतिरिक्त उन-उन ऋतुओं में प्राप्त होने वाले पवित्र गुणकारक, स्वादिष्ट एवं हृद्य तथा अन्यान्य हविष्य पदार्थ भी शोषणादि क्रिया से शुद्धकर अर्घ्य जल से प्रोक्षित कर अस्त्र मन्त्र (हुं फट्) मन्त्र से रक्षा कर सुरभी मुद्रा दिखा कर भगवान् को निवेदित करे । फिर अनुवासन देकर दर्पण दिखावे, आचमन करा कर हाथ घुमावे और चन्दन मुखवास और ताम्बूल देकर उन्हें प्रणाम करे ॥ ६५-६९ ॥

पुनर्मन्त्रासनं पञ्चमम्

अथ मन्त्रासनं न्यस्य कूर्चेन परिमृज्य च ।
गन्धपुष्पादिनाभ्यर्च्य दद्याद् विज्ञाप्य पादुके ॥ ७० ॥
तथाधिरूढे देवेशे माल्यादिकमपोह्य तु ।
पाद्याचमनके दत्त्वा ततो धूपं निवेदयेत् ॥ ७१ ॥

इसके अनन्तर कूर्च (कुशों) के समूह से मन्त्रासन का न्यास करे। फिर गन्ध पुष्पादि द्वारा अर्चना कर पादुका सामने रखे। जब भगवान् इस प्रकार मन्त्रासन पर अधिरूढ़ हो जावें तब उनके माल्यादि को उतार कर पाद्य आचमनीय प्रदान कर धूप निवेदन करे॥ ७०-७१॥

स्वादिष्ठानि फलान्यस्मै दद्यात् ताम्बूलमेव च।
गीतवादित्रनृत्ताद्यैर्देवमभ्यर्चयेत् ततः॥ ७२॥
प्रदक्षिणं विधायास्मै प्रणमेद् दण्डवत् ततः।

पुनः स्वादिष्ट फल देकर ताम्बूल दे और सङ्गीत, बाजा तथा नाच द्वारा उनका अर्चन कर प्रदक्षिणा कर साष्टाङ्ग दण्डवत् करे॥ ७२-७३॥

षष्ठं पर्यङ्कासनम्

अथ पर्यङ्कमभ्यर्च्य देवं विज्ञापयेत् ततः॥ ७३॥
ततः पादप्रदानेन देवे पर्यङ्कमास्थिते।
पाद्यमाचमनीयं च पुनर्दत्त्वा समाहितः॥ ७४॥

इसके बाद पर्यङ्क (शय्या) की पूजा कर देवाधिदेव को निवेदन करे। तदनन्तर (पादुका) प्रदान से जब भगवान् पर्यङ्कासन पर आसीन हो जावें तब एकाग्रचित्त हो पाद्य और आचमनीय प्रदान करे॥ ७३-७४॥

माल्यभूषणकादीनि व्यपनीय महामते।
शयनोचितमाल्यानि भूषणान्यंशुकानि च॥ ७५॥
सुखस्पर्शानि चान्यानि दद्याद्यज्ञोपवीतकम्।
दद्यादाचमनीयं च गन्धं पुष्पमथो दिशेत्॥ ७६॥

तदनन्तर, हे महामते नारद! पूर्वधारित भगवान् के माल्य एवं आभूषणादिकों को दूर कर शयनोचित्त माल्य जो स्पर्श में सुखदायक हों, उन्हें समर्पित करे और साथ में यज्ञोपवीत भी दे। पुनः आचमन कराकर गन्ध तथा पुष्प प्रदान करे॥ ७५-७६॥

मुखवासं च ताम्बूलं दत्त्वा स्तोत्रैः स्तुवीत तम्।
अष्टाङ्गेन प्रणामेन प्रणम्य शरणं व्रजेत्॥ ७७॥
प्रदक्षिणसमेतेन देवं योगासनस्थितम्।
मनोबुद्ध्यभिमानेन सह न्यस्य धरातले॥ ७८॥
कूर्मवच्चतुरः पादाञ्छिरस्तत्रैव पञ्चमम्।

मुखवास दान के पश्चात् ताम्बूल देकर अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति करे। पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनकी शरण में जावे। योगासन पर स्थित भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करने की विधि इस प्रकार है—पहले प्रदक्षिणा करे। फिर मन, बुद्धि तथा अभिमान के साथ दोनों हाथ तथा दोनों पैरों को कछुए के समान पृथ्वी पर रख कर शिर सहित भगवान् को प्रणाम करे॥ ७७-७९॥

दास्यप्रार्थना

अज्ञानादथवा ज्ञानादशुभं यत् कृतं मया ॥ ७९ ॥
क्षन्तुमर्हसि तत् सर्वं दास्येन च गृहाण माम् ।
एवमाराधनं कुर्यादुभयत्र मुखे हरिम् ॥ ८० ॥

पश्चात् प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! ज्ञान से अथवा अज्ञान से जो पाप कर्म मैंने किया है आप उसे क्षमा करे और मुझे अपना दास समझ कर अनुगृहीत करे । इस प्रकार उभयत्र (नृसिंह एवं विष्णु) रूप वाले श्रीहरि की आराधना करे ॥ ७९-८० ॥

एवमनुष्ठितस्याराधनस्य मोक्षसाधनत्वम्

सुदर्शनं नृसिंहं च विष्णुरूपं सुदर्शनम् ।
समाराधयतस्त्वेवमेकाहमपि नारद ॥ ८१ ॥
मुक्तिः करे स्थिता तस्य सर्वे कामाश्च किं पुनः ।

हे नारद ! सुदर्शन युक्त नृसिंह की अथवा विष्णु रूप मात्र सुदर्शन की जिसने इस प्रकार एक दिन पर्यन्त भी आराधना की उसके हाथ में मुक्ति स्थित हो जाती है । अन्य कामनाओं की तो बात ही क्या है? ॥ ८१-८२ ॥

आनुषङ्गिकफलसाधनत्वं कैमुतिकम्

अनेन लोकपालाश्च सर्वे देवगणास्तथा ॥ ८२ ॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च नागाश्चाप्सरसां गणाः ।
सर्वे वश्या भवन्तीह किं पुनर्भुवि मानवाः ॥ ८३ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डाश्च विनायकाः ।
प्रेष्यास्तस्य भविष्यन्ति साधकस्य महात्मनः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार की आराधना से सभी लोकपाल एवं सभी देवगण, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, नाग एवं अप्सराओं के समूह भी वशीभूत हो जाते हैं फिर पृथ्वी में रहने वाले मनुष्यों की बात ही क्या? भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड तथा विनायक सभी उस महात्मा साधक के किङ्कर बन जाते हैं ॥ ८२-८४ ॥

परिवाराद्यर्चनविधिः

तथास्य परिवाराणां देवानां शक्तियोषिताम् ।
मन्त्राणामस्त्रशस्त्राणां स्वैः स्वैर्नामभिरर्चनम् ।
नमोऽन्तैरुपचारैश्च कुर्यात् षोडशभिः क्रमात् ॥ ८५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां भगवदाराधनविधिनिरूपणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १६९६ ॥

⁂

इसी प्रकार भगवान् के मन्त्र, अस्त्र तथा शस्त्रों की भी पूजा, उनके नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति लगा कर और अन्त में नमः शब्द का उच्चारण कर षोडशोपचारों के साथ, क्रमशः करे ॥ ८५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के भगवदाराधन विधि निरूपण नामक अट्ठाइसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २८ ॥

* * *

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

काम्याराधनविधिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम्।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापसमूहों को नष्ट कर देता है। हम उन सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं।

भगवदाराधनस्यानुषङ्गिकफलसाधनत्वकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

एतदाराधनैः कस्य कथं देवादयः सुराः।
अन्ये चोक्ता वशं यान्ति तन्मे ब्रूहि यथातथम्॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—किसके द्वारा और किस प्रकार की आराधना से देवतादि सुरगण वशीभूत हो जाते हैं? हे अहिर्बुध्न्य! उसे यथार्थ रूप से मुझसे कहिये॥ १ ॥

तत्प्रतिवचनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

क्षत्रियस्य विशेषेण जयार्थित्वान्महामुने।
येनार्चनविशेषेण विश्वे वश्या भवन्ति हि॥ २ ॥
शृणुष्व तं समासेन कथयामि यथातथम्।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महामुने! जय की इच्छा करने वाले क्षत्रिय का ही उसमें विशेष अधिकार है। उन्हीं के विशेष आराधन से सारा विश्व वशीभूत हो जाता है। अब उस अर्चाविधि को आप सुनिए। मैं जैसी विधि है उसी प्रकार से संक्षेप में कह रहा हूँ॥ २-३ ॥

तत्तदाराधनविशेषाणां तत्तद्दिग्विजयसाधनत्वम्

यदीच्छेद्विजयं दिक्षु सर्वासु च महीपतिः॥ ३ ॥
आराधनविशेषैस्तु तत्तद्विजयमाप्नुयात्।

यदि राजा सभी दिशाओं में अपनी विजय चाहता है तो वह तत्तद्दिशाओं के विजय के लिए विशेष-विशेष आराधन कर विजय प्राप्त कर लेता है॥ ३-४ ॥

तत्र प्राचीदिग्विषये

नृपेभ्यो विजयाकाङ्क्षी प्राच्येभ्यश्चेन्महीपतिः ॥ ४ ॥
आराधयेद्विशिष्टैस्तु द्रव्यैर्देवं सुदर्शनम् ।
सितपुष्पैः सितैर्वस्त्रैरङ्गरागैः सितैरपि ॥ ५ ॥
शाल्योदनैश्च दध्याढ्यैरर्चयित्वा सुदर्शनम् ।
मण्डपे मण्डिते शुद्धे पूर्वोक्ते देवसन्निधौ ॥ ६ ॥
प्रासादलक्षणे कुण्डे चतुष्कोणपरिस्तृते ।
तत्र वह्निमथादाय काष्ठैः प्रज्वाल्य बैल्वकैः ॥ ७ ॥
आसीनः प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिस्तत्र समाहितः ।
तस्मिन् फलानि बैल्वानि सर्पिःसिक्तानि नारद ॥ ८ ॥
नियुतं मूलमन्त्रेण जुहुयाज्ज्वलितेऽनले ।
होमैरेभिः समुद्रान्ता प्राची वश्या भवेन्मही ॥ ९ ॥

यदि राजा पूर्व दिशा के राजाओं पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो वह विशिष्ट द्रव्यों से सुदर्शन की आराधना करे । इस प्रकार सफेद पुष्पों, सफेद वस्त्रों, सफेद अङ्गरागों एवं दधि से युक्त शालिधान्य के ओदनों से सुदर्शन की अर्चना करे । पूर्वोक्त क्रम से कहे गए महामण्डित शुद्ध मण्डप में, जहाँ देवता का स्थापन किया गया हो, ऐसे प्रासाद में वनाये गए चतुष्कोण युक्त कुण्ड में अग्नि स्थापन करे । विल्व की लकड़ी से उसे प्रज्वलित करे । इसके वाद अत्यन्त पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख बैठ कर उस कुण्ड में घृत से संसिक्त बिल्वफलों से मूल मन्त्र द्वारा जलती हुई अग्नि में दश लाख होम करे । इस प्रकार के होम से पूर्व दिशा की समुद्रान्ता सारी मही उसके वश में हो जाती है ॥ ३-९ ॥

फलानां कोटिहोमेन बैल्वानां वशमेष्यति ।
प्लक्षद्वीपस्य देशस्तु प्राच्यः सह महीपतिः ॥ १० ॥
कोटिद्वयेन चैतेषां शाल्मलो वशमेष्यति ।
देशः प्राच्यः सभूपालः स्वदेश इव नारद ॥ ११ ॥
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करद्वीपसंज्ञितः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्कैः प्राच्याः क्रमेण वै ॥ १२ ॥
कोटीनां फलहोमानां वशं यास्यन्ति भूपतेः ।
द्वीपानामपि चैतेषां प्राची माघवती पुरी ॥ १३ ॥
दशकोट्या तु होमानां वशं यास्यति सा ध्रुवम् ।
पालनार्थं तु लोकानामेकेनांशेन वासवः ॥ १४ ॥
तत्रैव वर्तते सोऽपि साहाय्यं तस्य यास्यति ।

बिल्व फलों द्वारा किये गए करोड़ों होम से प्लक्ष का देश राजा सहित साधक के वश में हो जाता है । राज्य से क्रमशः, हे नारद ! पूर्व के जितने भी देश कुश, क्रौञ्च, शाक एवं पुष्कर द्वीप हैं ये सभी एक, दो, तीन-चार, पाँच और छः करोड़ की सङ्ख्या में

होम से स्वदेश के समान उस राजा के वश में हो जाते हैं। इन सभी द्वीपों से पूर्व में रहने वाली इन्द्र की पुरी दश करोड़ सङ्ख्याक बिल्व होम से निश्चय ही वशीभूत हो जाती है। इन लोकों को पालन करने के लिए वासव भी, जो वहीं विद्यमान है वह, अपने एक अंश में रह कर उस राजा की सहायता करने वाले बन जाते हैं ॥ १०-१५ ॥

स्त्रीभिरन्नैश्च पानैश्च वाजिभिः परमैर्गजैः ॥ १५ ॥
यथा स्वस्मिन् पुरे राजा विहरत्यविशङ्कया ।
चिन्तितोपनतैरेव तैर्द्रव्यै रंस्यते नृपः ॥ १६ ॥
अस्य प्रभावतः सर्वे विष्टब्धाः सर्वसागराः ।
गन्तुं योग्या भविष्यन्ति स्यन्दनेन यथा स्थली ॥ १७ ॥
हारं च वासवस्तस्य चक्रवर्तित्वलक्षणम् ।
सर्वरत्नमयं दिव्यमुपनेष्यति च स्वयम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार राजा अपने नगर में स्त्रियों के साथ अन्न से, पान से, घोड़े एवं हाथियों से युक्त होकर निःशङ्क विहार करता है उसी प्रकार वह राजा भी वहाँ अपने मनोऽभिलषित द्रव्यों को प्राप्त कर हर्षित होता है। इसके प्रभाव से समस्त सागर स्थिर हो जाते हैं और वे इस प्रकार उसके गमन के लिए सुलभ हो जाते हैं जैसे रथ द्वारा स्थल में रहने वाले सुलभ हो जाते हैं। स्वयं इन्द्र चक्रवर्तित्व लक्षण युक्त सम्पूर्ण रत्नों से जटित दिव्य हार उसे उपहार में समर्पित करते हैं ॥ १५-१८ ॥

दक्षिणदिग्विषये

दक्षिणाशाजयाशा चेदजनिष्ट महीपतेः ।
पूर्वोक्ते मण्डपे देवं दक्षिणाभिमुखं नयेत् ॥ १९ ॥
रक्तमाल्याम्बरधरं रक्तचन्दनरञ्जितम् ।
रक्ताम्बरधरं देवमभ्यर्च्योक्तेन वर्त्मना ॥ २० ॥
गुडौदनं हविस्तस्मै निवेद्य तिलमिश्रितम् ।
अर्धचन्द्रोपमं कुण्डं कृत्वा प्रासादलक्षणम् ॥ २१ ॥
कुशैः पुष्पैश्च लाजैश्च परिष्कृतमविक्षतम् ।
दक्षिणाभिमुखस्तत्र समासीनोऽग्रतो विभोः ॥ २२ ॥

यदि साधक राजा को दक्षिण दिशा जीतने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो तो पूर्वोक्त मण्डप में देवाधिदेव सुदर्शन को दक्षिणाभिमुख स्थापित करे। रक्त वर्ण की माला एवं रक्त चन्दन से संरञ्जित तथा रक्ताम्बर धारण किये हुये उन सुदर्शन देव का पूर्वोक्त विधान से पूजन करे। तिलमिश्रित गुड और ओदन का उन्हें नैवेद्य निवेदित करे। फिर प्रासादलक्षण युक्त अर्धचन्द्र कुण्ड का निर्माण करे। उसे कुशा, पुष्प एवं लावा से विशुद्ध कर पूर्ण बनावे। फिर उन विभु के सामने दक्षिणाभिमुख बैठ जावे ॥ १९-२२ ॥

मन्त्रेण वह्निमादाय काष्ठैः प्रज्वाल्य खादिरैः ।
पद्मानां चैव रक्तानां नियुतैर्होममाचरेत् ॥ २३ ॥

ततः सा दक्षिणा पृथ्वी सागरान्ता वशा भवेत् ।
सोपहाराश्च राजानस्तत्रत्या द्वारि वारिताः ॥ २४ ॥
प्रतीक्षमाणाः स्थास्यन्ति कालं तस्य महात्मनः ।
ततो दक्षिणदिग्भागे षट्सु द्वीपेषु सम्मताः ॥ २५ ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्वश्याः सभूभुजः ।
रक्तपद्माहुतीनां च कोटीनां तु यथाक्रमम् ॥ २६ ॥
एषा दक्षिणतो रम्या याम्या संयमिनी पुरी ।
सा रक्तपद्महोमानां दशकोट्या वशा भवेत् ॥ २७ ॥

फिर मन्त्र द्वारा अग्नि स्थापित करे । खैर की लकड़ी से उसे प्रज्वलित करे । तदनन्तर घृताक्त १० लाख लाल कमलों का होम करे । ऐसा करने से सागरान्त दक्षिण दिशा की पृथ्वी वशीभूत हो जाती है । उस दिशा के समस्त राजा उस महात्मा के काल (=यम) का उपहार ले कर उस विजयी राजा के द्वारा ठुकराये जाने पर भी प्रतीक्षा करते हुये द्वार पर खड़े रहते हैं । इस दक्षिण दिशा के भाग क्रमशः छः द्वीपों को एक, दो, तीन, चार, पाँच और छः करोड़ रक्त पद्मों की आहुतियाँ देकर साधक राजा उन सभी द्वीपों के राजाओं को वश में कर लेता है । दक्षिण दिशा में विद्यमान सर्वतोरम्य संयमिनी पुरी दश करोड़ रक्तपद्मों के होम से वश में आ जाती है ॥ २३-२७ ॥

यमोऽपि तस्य भावेन प्रसन्नः प्रीतमानसः ।
राज्ञो मनीषितं यत् तन्नान्यथा वर्तयिष्यति ॥ २८ ॥
अकालमरणं किञ्चित् तद्देशे न भविष्यति ।
ये पुर्यां संयमिन्यां च यमस्य वशवर्तिनः ॥ २९ ॥
ते सर्वे तस्य वशगा भविष्यन्ति न संशयः ।
दिव्ये रक्ताङ्गदे रम्ये सार्वभौमत्वलक्षणे ॥ ३० ॥
यमस्तु स्वयमादाय प्रीतस्तस्मै प्रयच्छति ।

स्वयं यमराज भी उस विजयी राजा के घर प्रसन्नतापूर्वक रहकर उसकी सारी अभिलाषायें पूर्ण करते हैं । उसके विरुद्ध कुछ भी व्यवहार नहीं करते । उसके राज्य में कभी किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती । यमराज के वशवर्त्ती उस संयमिनी पुरी के जितने लोग हैं वे सभी उसके वश में हो जाते है इसमें संशय नहीं । स्वयं यमराज भी प्रसन्नतापूर्वक उस विजयी राजा को सार्वभौमत्व लक्षण वाले दिव्य दो रक्ताङ्गद उपहार में प्रदान करते हैं ॥ २८-३१ ॥

पश्चिमदिग्विषये

पश्चिमाशां प्रति यदा जिगीषुर्नृपतिस्तदा ॥ ३१ ॥
मण्डपेऽलङ्कृते देवं पश्चिमाभिमुखं नयेत् ।
चित्रमालाधरं चित्रैरंशुकैः समलङ्कृतम् ॥ ३२ ॥
चित्राङ्गरागैश्चित्राभिर्भूषाभिरुपशोभितम् ।

मध्वोदनं हविः कृत्वा देवायैतन्निवेदयेत् ॥ ३३ ॥

जब राजा को पश्चिम दिशा जीतने की इच्छा हो तब सब प्रकार से अलङ्कृत मण्डप मे सुदर्शन देवता को पश्चिमाभिमुख स्थापित करे। वे देव चित्रमाला धारण करने वाले चित्र वस्त्र पहने हुये चित्रवर्ण का अङ्ग राग तथा चित्र वर्ण के अलङ्कारों से सुसज्जित होकर, उनको मधु संयुक्त ओदन बना कर भोग लगावे ॥ ३१-३३ ॥

पद्मोपमानं प्रासादं कुण्डं कृत्वास्वलङ्कृतम् ।
तत्राधायाग्निमासित्वा देवस्य पुरतो वशी ॥ ३४ ॥
काष्ठैः शमीमयैरग्निं प्रज्वाल्याथ समाहितः ।
मध्वक्तैः करवीरैस्तु नियुतं जुहुयान्मनुम् ॥ ३५ ॥
ततः ससागरा पृथ्वी जम्बूद्वीपस्य पश्चिमा ।
वर्तिष्यते वशे तस्य राज्ञः सनृपतिस्तदा ॥ ३६ ॥
करवीराहुतीनां च कोट्या कोटिद्वयेन च ।
कोटित्रयचतुःपञ्चषट्कैस्ते च यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥
षड् द्वीपखण्डाः पाश्चात्त्या वशं यास्यन्ति भूपतेः ।

पद्म के आकार का कुण्ड बना कर उसे सब प्रकार से अलङ्कृत करे। उस कुण्ड में अग्नि स्थापित कर उन देव के सामने बैठ जावे। पुनः शमी के काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित कर समाहित हो मधु में डुबोये हुये करवीर पुष्पों की समन्त्रक १० लाख आहुती देवे। ऐसा करने से सागर समेत जम्बूद्वीप की पश्चिम दिशा की पृथ्वी तथा उसके राजा सभी उस साधक राजा के वश में हो जाते हैं। इसी प्रकार करवीर पुष्पों की एक करोड़ दो करोड़, तीन करोड़, चार करोड़, पाँच करोड़ एवं छः करोड़ की आहुतियाँ देने से उपर्युक्त छः द्वीपों के पश्चिमी भाग के सारे भूभाग उस राजा के वश में हो जाते हैं ॥ ३४-३८ ॥

सुखाख्या वारुणी रम्या पुरी परमभास्वरा ॥ ३८ ॥
सदा सन्निहितैर्भोज्यैर्लेह्यैः पेयैश्च पूरिता ।
दिव्यपादपसंयुक्तैर्नन्दनैरुपशोभिता ॥ ३९ ॥
सदोत्फुल्लाम्बुजाढ्याभिः सरसीभिः परिष्कृता ।
आक्रीडपर्वतैर्युक्ता नानारत्नविभूषितैः ॥ ४० ॥
प्रासादैर्मण्डपैस्तुङ्गैर्मण्डिता सा हिरण्मयैः ।
एवंविधा पुरी तस्य राज्ञो भोग्या भविष्यति ॥ ४१ ॥
वरुणोऽपि स्वयं छत्रं मणिविद्रुमभूषितम् ।
मुक्तादामभिराकीर्णममृतस्यन्दि वन्दितम् ॥ ४२ ॥
चिह्नं तच्चक्रवर्तीनां राज्ञे प्रीतः प्रदास्यति ।

उसी दिशा में सुख नाम वाली परम मनोहर प्रकाश युक्त वरुण की नगरी है। वह सभी प्रकार के भोज्य, लेह्य एवं पेय पदार्थों से परिपूर्ण रहती है। नन्दन वन से जहाँ अनेक प्रकार के दिव्य पादप हैं उससे शोभित है। फूले हुये कमलों से समृद्ध वहाँ की

नदियाँ हैं । नाना रत्न विभूषित क्रीड़ा स्थलों वाले पर्वतों से परिपूर्ण, सुवर्ण निर्मित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद एवं मण्डपों से मण्डित हैं । इस प्रकार की वह वारुणी पुरी उस राजा के भोग्य हो जाती है । वरुण भी मणि विद्रुम विभूषित मोतियों की माला से व्याप्त अमृत विन्दु की वर्षा करने वाले छत्र को, जो चक्रवर्त्तियां का चिह्न है, प्रसन्न होकर उसे दे देते हैं ।। ३८-४३ ।।

उत्तरदिग्विषये

उदीचीं दिशमुद्युक्तो जेतुं यदि महीपतिः ।। ४३ ।।
चक्राब्जविष्टरे देवमुत्तराभिमुखं नयेत् ।
पीताम्बराणि बिभ्राणं पीतपुष्पैरलङ्कृतम् ।। ४४ ।।
विद्रुमाभरणैर्युक्तं कुङ्कुमक्षोदरञ्जितम् ।
घृतौदनं हविः कृत्वा तेनाभ्यर्च्य सुदर्शनम् ।। ४५ ।।

यदि राजा उत्तर दिशा को जीतने के लिए उद्यत है तो चक्र कमल के विष्टर पर देवता को उत्तराभिमुख स्थापित करना चाहिए जो पीत परिधान धारण किये हुये, पीत-पुष्पों से अलङ्कृत, विद्रुम निर्मित आभूषण धारण किये हुये तथा कुङ्कुम के अङ्गराग से रञ्जित हों । ऐसे देवता को घी तथा भात का नैवेद्य निवेदन कर उन सुदर्शन की अभ्यर्चना करे ।। ४३-४५ ।।

कुर्यात् तस्याग्रतः कुण्डं वृत्तप्रासादलक्षणम् ।
उदङ्मुखोऽग्निमाधाय कुण्डे मण्डपसंश्रिते ।। ४६ ।।
काष्ठैरौदुम्बरैर्वह्निं प्रज्वाल्य ज्वलितेऽनले ।
नन्द्यावर्तप्रसूनैस्तु नियुतं जुहुयात् पुरः ।। ४७ ।।
तेनेदं भारतं वर्षं काञ्चनाचलसंयुतम् ।
सराजकं तस्य वशे भविष्यति न संशयः ।। ४८ ।।
लक्षद्वयेन होमानां वर्षं किंपुरुषाह्वयम् ।
सभूपं भूपतेस्तस्य वशमेष्यत्यसंशयम् ।। ४९ ।।
लक्षत्रयेण वश्यं स्याद्धरिवर्षं सराजकम् ।
होमलक्षचतुष्केण भद्राश्वं वशमेष्यति ।। ५० ।।

फिर उनके आगे गोलाकार प्रासाद लक्षण कुण्ड का निर्माण कर उत्तराभिमुख हो अग्नि स्थापन करे । फिर मण्डप के मध्य में बने उस कुण्ड में गूलर के काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित कर जलती हुई अग्नि में नन्द्यावर्त के फूलों से १० लाख प्रथम होम करे । ऐसा करने से यह भारत वर्ष सुवर्ण शृङ्ग वाला सुमेरुपर्वत सहित उन-उन देशों के राजा के साथ वश में आ जाता है इसमें संशय नहीं । दो लाख की आहुति देने से राजा सहित किंपुरुष नामक वर्ष उस राजा के वश में हो जाता है इसमें संशय नहीं । तीन लाख के होम से राजा सहित हरिवर्ष उस राजा के अधीन हो जाता है और ४ लाख की सङ्ख्या में होम करने से भद्राश्व वर्ष उनके वश में हो जाता है ।। ४६-५० ।।

पञ्चषट्सप्तभिर्होमलक्षाणां पृथिवीपतेः ।
इलावृतं केतुमालं रम्यकं च वशे भवेत् ॥ ५१ ॥
हिरण्मये मेरुवर्षे अष्टाभिर्नवभिस्तथा ।
वशे भविष्यतो होमलक्षाणां समहीश्वरे ॥ ५२ ॥
षण्णां प्लक्षमुखानां तु द्वीपानां भोगभूमयः ।
उक्तसङ्ख्यायुतैर्होमैर्वशमेष्यन्ति नारद ॥ ५३ ॥

पाँच लाख की आहुति से इलावृत वर्ष, छः लाख की आहुति से केतुमाल और ७ लाख की आहुति से रम्यक वर्ष राजा समेत उस राजा के अधीन हो जाते हैं । हिरण्मय और मेरुवर्ष आठ तथा नव लाख की क्रमशः आहुति देने से राजा समेत उसके वश में हो जाते हैं । इसी प्रकार प्लक्षादि छः द्वीपों की उत्तर दिशा की भूमि, उक्त सङ्ख्या से युक्त होम से, हे नारद ! उस साधक राजा के वश में हो जाती है ॥ ५१-५३ ॥

सर्वेषां द्वीपवर्षाणामुत्तरत्र पुरी वरा ।
विभावरीति विख्याता सोमस्य परमाद्भुता ॥ ५४ ॥
दशकोट्या वशे तस्य होमानां सा भविष्यति ।
ये तस्यां देवतावर्गाः सोमस्य वशवर्तिनः ॥ ५५ ॥
ते सर्वे भूपतेस्तस्य वर्तिष्यन्ते वशे मुने ।
तस्य प्रभावतः सोमः स्वयमादाय चामरे ॥ ५६ ॥
स्वज्योत्स्नासञ्चयप्रख्ये रत्ननालसमन्विते ।
विश्वाधिराज्यचिह्ने ते शुभ्रे शीतलदर्शने ॥ ५७ ॥
प्रीतः प्रदास्यति श्रीमानस्मै विस्मितकर्मणे ।

विदिशां विषये

महादिशां जयात् सिद्धो विदिशां वशिनो जयः ॥ ५८ ॥
उपहारान् प्रदास्यन्ति तत्तद्दिक्पालकाः परे ।

सभी द्वीपों एवं सभी वर्षों के उत्तर में सोम राजा की विभावरी नाम की परमाद्भुत एवं श्रेष्ठ नगरी है । वह पुष्पों द्वारा दश करोड़ आहुति देने से उस साधक राजा के वश में हो जाती है । उस नगरी में सोम के वशवर्त्ती जितने भी देवगण हैं । हे मुने ! वे सभी उस राजा के वशवर्त्ती हो जाते हैं । उस राजा के प्रभाव से स्वयं श्रीमान् सोम राजा दोनों चामरों को लेकर, जिसमें उनकी अपनी समस्त किरणें सञ्चित रूप से स्थित हैं, जिसमें रत्नों का दण्ड लगा हुआ है, जो विश्वाधिराज का चिह्न है ऐसे शुभ्रवर्ण वाले दर्शन से शीतलता प्रदान करने वाले, उन दोनों चामरों को प्रसन्न होकर कर्म से आश्चर्य चकित कर देने वाले उस राजा को स्वयं प्रदान करते हैं । इस प्रकार महादिशाओं के जीत लेने के बाद वह वशी विदिशाओं (चारों कोणों) को विजित कर लेता है । इस कारण उन उन दिशाओं के दिक्पाल उसे उपहार समर्पण करते हैं ॥ ५४-५९ ॥

ऊर्ध्वलोकस्य विषये

ऊर्ध्वलोकजयोद्योगो यद्यवर्तिष्ट भूपतेः ॥ ५९ ॥
देवं मण्डपरत्ने तु प्राङ्मुखासनमर्हयेत् ।
गन्धवन्माल्यसंवीतं मुक्ताभूषणभूषितम् ॥ ६० ॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं क्षौमैः कल्पितवाससम् ।
एवमभ्यर्च्य विधिना पायसं खण्डसंमितम् ॥ ६१ ॥
आज्याढ्यं हविरावेद्य सर्वपक्वफलान्वितम् ।
प्रासादकुण्डमष्टाश्रं सर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ६२ ॥
कारयित्वास्त्रमन्त्रेण वह्निमादाय मन्त्रवित् ।
कृष्णागुरुमयैः काष्ठैर्ज्वलयेज्जातवेदसम् ॥ ६३ ॥
तत्राज्यहोमं कुर्याद्वै शतकोटिसमन्वितम् ।
अन्तरिक्षं ततस्तेन होमेन वशमेष्यति ॥ ६४ ॥

विजिगीषु राजा को ऊर्ध्वलोक के विजय की इच्छा हो तो वह ऐसा उद्योग करे कि सुदर्शन देव को पूर्वभिमुख रत्न मण्डप में आसन देकर पधरावे जो गन्धयुक्त माल्यो को धारण किये हों और मोती के आभूषण से अलङ्कृत हों । दिव्य चन्दन जिनके श्रीअङ्गों में अनुलिप्त हो, जो रेशमी परिधान धारण किये हों, इस प्रकार उनकी अर्चना कर खण्ड एवं घृतमिश्रित हवि एवं सभी प्रकार के पके फलों का नैवेद्य समर्पित करे । फिर आठ कोणों वाले सम्पूर्ण मङ्गल द्रव्यों से सुसज्जित कुण्ड का निर्माण करवा कर अस्त्र मन्त्र (हुं फट्) द्वारा अग्नि स्थापन कर काले अगुरु द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित करे । फिर उसमें १०० करोड़ की सङ्ख्या में आहुति देवे । ऐसा करने से समस्त अन्तरिक्ष उस राजा के वश में हो जाता है ॥ ५९-६४ ॥

तल्लोकवासिनः सर्वे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
यक्षाः किंपुरुषाश्चैव चारणाः साङ्गनागणाः ॥ ६५ ॥
वीणावेणुमृदङ्गैश्च वाद्यैस्तालैश्च सर्वशः ।
तस्यापदानचरितगर्भा भोगवलीः पराः ॥ ६६ ॥
गायन्तः परिवार्यैनं हर्षयिष्यन्ति भूपतिम् ।
कोटिकोट्या तु होमानां स्वर्गो वश्यो भविष्यति ॥ ६७ ॥
तत्र देवैर्महेन्द्रोऽपि देव्या शच्या समन्वितः ।
आरुह्यैरावतं नागमप्सराणां गणैः सह ॥ ६८ ॥
तमभ्येत्य महात्मानमवरुह्य मुदान्वितः ।
मणिपीठं समारोप्य वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ ६९ ॥

उस लोक में रहने वाले सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष एवं किंपुरुष और चारण गण अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वीणा वेणु मृदङ्गादि वाद्यों से नाना प्रकार के सभी विजयी तालों से उसके निर्दोष चरित्र से युक्त (भोगबली ?) सर्वोत्कृष्ट का गान करते हुये उस

राजा को हर्षित करते रहते हैं। करोड़ का करोड़ आहुतियों के प्रदान से स्वर्ग भी उसके वश में हो जाता है। वहाँ महेन्द्र देवताओं एवं अपनी स्त्री शची के साथ नागों एवं अप्सरागणों को साथ में लेकर ऐरावत पर सवार हो उसकी अगवानी करने के लिए प्रसन्नता पूर्वक ऐरावत से स्वयं उतर कर मणिमय आसन पर उसे बिठा कर उसके लिए मङ्गल पाठ करवाते हैं ॥ ६५-६९ ॥

नृत्तैर्गीतैश्च वाद्यैश्च दिव्यदुन्दुभिनिस्वनैः ।
शङ्खकाहलनादैश्च सह तीर्थाहृतैर्जलैः ।
वासवश्चक्रवर्तित्वे राजानमभिषेक्ष्यति ॥ ७० ॥
मणिमुकुटमथास्मै वारणं दिव्यमेकं
हयमनिलसमानं पुष्पकाभं विमानम् ।
सरसिजपरिक्लृप्तां काञ्चनीं दिव्यमाला-
मपि च हरुषजुष्टो दास्यति स्वात्मसाम्यम् ॥ ७१ ॥
हयमेधशतेन याजयित्वा
नृपतिं सर्वमहीपतिं विधाय ।
शतमप्सरसः प्रदाय तस्मै
त्रिदिवं यास्यति वृत्रहा सदेवः ॥ ७२ ॥

तदनन्तर नृत्य, गीत, वाजे, नगाड़े के शब्दों शङ्ख, मृदङ्ग के नादों के साथ तीर्थों द्वारा लाये गए जल से उसका चक्रवर्तित्व पद पर अभिषेक करते हैं। फिर उसे मणिजटित मुकुट, दिव्य हाथी, वायु के समान वेगवान् घोड़ा, पुष्पक के समान विमान, कमलों से अलङ्कृत काञ्चनी दिव्यमाला (हरुषजुष्ट ?) देकर उसे अपने समान बना देते हैं। फिर उससे १०० अश्वमेध यज्ञ कराकर सबका राजा बना कर १०० अप्सरायें उसे भेंट करते हैं। ऐसा कर वे वृत्र का वध करने वाले इन्द्र स्वर्ग लौट जाते हैं ॥ ७०-७२ ॥

नागलोकस्य विषये

नागलोकेषु जाता चेज्जिगीषा चक्रवर्तिनः ।
पद्मरागमयैर्दिव्यैर्भूषणैरुपशोभितम् ॥ ७३ ॥
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं देवं पद्मैः समर्चयेत् ।
पिष्टौदनं गुडाढ्यं च हविस्तस्मै निवेद्य च ॥ ७४ ॥
प्रासादलक्षणे कुण्डे षट्कोणे ज्वलितानले ।
अपूपानां तु कोटीनां कोट्या होमं समाचरेत् ॥ ७५ ॥
तेन तक्षकमुख्यानां नागानां परमा पुरी ।
वश्या भवेद्भोगवती स्वपुरीवास्य भूपतेः ॥ ७६ ॥

चक्रवर्तित्व पद पर स्थित उस राजा के मन में यदि नागलोक के विजय की इच्छा हो तो पद्मराग मणियों से निर्मित दिव्य भूषणों से सुसज्जित, रक्तचन्दन से अनुलिप्त देवाधिदेव सुदर्शन की कमलों से पूजा कर उन्हें गुड़ से मिश्रित, पिष्ट ओदन का नैवद्य

समर्पित करे। फिर प्रासाद लक्षण के षट्कोण कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर करोड़ अपूपों की करोड़ सङ्ख्या में आहुति प्रदान करे। ऐसा करने से मुख्य तक्षक नागों की सर्वोत्कृष्ट भोगपुरी उसके वश में होकर अपनी पुरी के समान हो जाती है ॥ ७३-७६ ॥

तस्य प्रभावमवलोक्य स नागराजो
रत्नानि भास्वरतराणि महान्ति भान्ति।
द्वे कुण्डले मणिमये च सहाङ्गनाभि-
रादाय सत्यमुपयास्यति सार्वभौमम् ॥ ७७ ॥

उसकी तेजस्विता देख कर वहाँ के राजा नागराज अत्यन्त चमकदार, दीप्तियुक्त, नाना प्रकार के रत्नों के सहित, मणिमय दो कुण्डलों की एवं स्त्रियों सहित उस सार्वभौम लक्षण युक्त राजा की अगवानी कर उपहार में सत्यतः उसे भेंट दिया करते हैं ॥ ७७ ॥

सामान्यपरिभाषा

उक्तानामप्यनुक्तानां शृणु नारद लक्षणम्।
सामान्यं येन सिद्धिः स्यादीप्सितार्थस्य मन्त्रिणः ॥ ७८ ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टनवात्मकाः।
विहारास्त्रिचतुःपञ्च समुखान्तायतोच्छ्रिताः ॥ ७९ ॥
दिग्विदिक्षु तथा मध्ये नवकाः परिकीर्तिताः।
दिक्षु मध्ये तथा पञ्च शेषाः प्राङ्मुखपङ्क्तयः ॥ ८० ॥

हे नारद ! जिसे हमने कहा है और जिसे नहीं कहा है तथा मन्त्रज्ञ साधक की जिससे सिद्धि होती है, उसके सामान्य लक्षणों को सुनिए। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ एवं नौ विहार (परिक्रमा स्थान) की रचना करनी चाहिए अथवा तीन, चार, एवं पाँच की रचना करनी चाहिए, जिनके मुख (अग्रभाग) सुन्दर हों जो लम्बे तथा ऊँचे हों। दिशाओं में एवं उनके कोणों ८वाँ तथा ९ वाँ मध्य में बनवाना चाहिए अथवा दिशाओं के मध्य में पाँच शेष चार पूर्वाभिमुख पड़ीरूप में होना चाहिए ॥ ७८-८० ॥

एकद्व्यादियुगाश्चैव शान्तिपुष्ट्योः प्रकीर्तिताः।
एकत्र्याद्ययुजश्चैव क्षुद्रेषु नवकं विना ॥ ८१ ॥
पलाशौदुम्बराश्वत्थखदिराद्याश्च यज्ञियाः।
दूर्वाद्याश्च तिलाद्याश्च प्रशस्ताः शुभकर्मणि ॥ ८२ ॥
कारस्करादयः क्षुद्रे कटुबीजादयस्तथा।
सहस्राद्या लक्षमध्याः कोट्यन्ता होमजातयः ॥ ८३ ॥
एको द्वौ बहवो वापि यथदर्ध्या ऋत्विजः स्मृताः।
एकस्मिन् वह्निकुण्डे चेज्जुहुयुः प्रागुदङ्मुखाः ॥ ८४ ॥
वासुदेवालयोद्यानमन्दिरेषु शुभा क्रिया।
अशुभा तु श्मशानादावथ कालविधिक्रमः ॥ ८५ ॥
युक्षु कुर्याद् दिनर्क्षेषु शुभामन्यामथान्यथा।

व्यस्तैरथ समस्तैर्वा यद्वा कामविकल्पितैः ॥ ८६ ॥

शान्ति एवं पुष्टिकर्म में एक-एक के बाद दो-दो सम सङ्ख्या में बनवाना चाहिए। क्षुद्र कर्म में नव को छोड़कर १, ३ आदि विषम सङ्ख्या में बनवाना चाहिए। पलाश, उदुम्बर, अश्वत्थ तथा खदिरादि वृक्षों के काष्ठ यज्ञिय कहे गए हैं। दूर्वादि एवं तिलादि शुभ कर्म में प्रशस्त कहे गए हैं। क्षुद्र कार्य के लिए कारस्करादि वृक्ष, जो कटुबीज वाले हैं, वे ग्राह्य है। एक-एक सहस्र का सामान्य होम, एक लक्ष का मध्य होम और एक करोड़ का होम उत्कृष्ट होम हैं। एक दो अथवा तीन अथवा जैसी समृद्धि हो उसके अनुसार उससे भी अधिक ऋत्विक वरण का विधान है। ये सभी एक वह्निकुण्ड में पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर हवन कर सकते हैं। शुभ कार्य के लिए विष्णु मन्दिर, विष्णवालय या विष्णु उद्यान के स्थान प्रशस्त कहे गए हैं। अशुभ कार्यों के लिए श्मशानादि स्थान का विधान है। इसी प्रकार शुभ कार्य शुभ दिनों में तथा अशुभ कार्य क्रूर दिनों में करने का विधान है। कार्य के गौरव और लाघव के अनुसार उसे बृहत् तथा संक्षेप रूप में करना चाहिए। इस प्रकार काम को विकल्प के अनुसार प्रयोग व्यस्त (बड़ा) और समस्त (संक्षेप) में करना चाहिए ॥ ८१-८६ ॥

समिदाज्यादिभिर्लक्षकोटिहोमादयः स्मृताः ।
एवमभ्यूह्य कुर्वीत मन्त्रेणेष्टस्य साधनम् ॥ ८७ ॥
अनुक्तमिव यत् किंचित् तान् स्वगृह्योक्तमाचरेत् ।
अपूर्वो वा भवेद्धोमो नाघारादिसमन्वितः ॥ ८८ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां काम्याराधनविधिनिरूपणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
॥ आदितः श्लोकाः १७८४ ॥

⁂

समिधा तथा घी की आहुति सङ्ख्या में लक्ष होने पर लक्ष होम और करोड़ सङ्ख्या में होने पर कोटि होम कहा जाता है। साधक अपने मन से इन सब बातों का विचार कर मन्त्र द्वारा इष्टसाधन करे। जो बात यहाँ नहीं कही गई है उसे अपने गृह्यसूत्र के अनुसार आचरण करे क्योंकि अपूर्व होम आघार की आहुति के बिना नहीं करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के काम्याराधनविधिनिरूपण नामक उन्तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २९ ॥

⁂

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अस्त्राणां जन्मनामनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक वार ध्यान करते ही अनेक जन्मों के करोड़ो पापपुञ्जों को विनष्ट करता है हम सुदर्शन देव के उन अरों का ध्यान करते हैं ।

ब्राह्माद्यस्त्राणां देवपरिवारत्वकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

कथं ब्रह्मास्त्रमुख्यानां महतां शक्तिशालिनाम् ।
अस्त्राणामप्रमेयाणां देवस्य परिवारता ॥ १ ॥

तेषां जन्मनामप्रश्नः

कस्मादेतानि जातानि महास्त्राणि महेश्वर ।
अमीषां कानि नामानि तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! अत्यन्त शक्तिशाली महान् से महान् अप्रमेय बल वाले ब्रह्मास्त्रादि अस्त्रों को भगवान् की परिवारता किस प्रकार हुई ? फिर हे महेश्वर ! ये महान् अस्त्र किससे उत्पन्न हुये और उनके नाम क्या-क्या हैं? उसे मैं आपसे पूछ रहा हूँ कृपा कर बताइये ॥ १-२ ॥

तत्प्रतिवचनार्थमाख्यायिकारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

पुरा नारायणो देवः स्वयमेव व्यवस्थितः ।
प्राक् सृष्टेर्न रतिं लेभे लीलोपकरणादृते ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—पूर्व काल में भगवान् नारायण देव अकेले ही थे । सृष्टि न थी । इसलिए किसी लीलोपकरण के रहने से उन्हें आनन्द नहीं हुआ ॥ ३ ॥

लीलार्थं भगवतो बहुभवनम्

ततो लीलार्थमात्मानं बह्वकल्पयदीश्वरः ।

पुरुषाधिष्ठितप्रधानसृष्टिः

अथ प्रधानमसृजत् पुरुषाधिष्ठितं स्वतः ॥ ४ ॥

फिर उन ईश्वर ने लीला के लिए अपने को बहुत रूपों में निर्मित किया । उन्होंने स्वतः अपने से ही पुरुषाधिष्ठित प्रधान तत्त्व की रचना की ॥ ४ ॥

प्रधानान्महतः सृष्टिः

ततो महान्तमव्यक्ताज्जनयामास नारद ।

महतोऽहङ्कारसृष्टिः

गुणत्रयात्मकं तस्मादहङ्कारमतः परम् ॥ ५ ॥

फिर, हे नारद ! उन्होंने उस अव्यक्त से महत्तत्त्व की रचना की । फिर उस महत्तत्त्व से गुणत्रयात्मक अहङ्कार की रचना की ॥ ५ ॥

सात्त्विकाहङ्कारादेकादशेन्द्रियसृष्टिः

इन्द्रियाणि दशैतानि ज्ञानकर्मात्मकानि वै ।
मनश्च सात्त्विकात् तस्मादहङ्कारादजीजनत् ॥ ६ ॥

फिर उन्होंने उस सात्त्विक अहङ्कार से पाँच ज्ञानेन्द्रियों की और पाँच कर्मेन्द्रियों की तथा मन की रचना की ॥ ६ ॥

तामसाहङ्कारात् भूतसूक्ष्माणां भूतानां च सृष्टिः

भूतानि भूतसूक्ष्माणि दशैतानि महामुने ।
असृजत् तामसात् तस्मादहङ्काराज्जनार्दनः ॥ ७ ॥

फिर, हे महामुने ! उन्होंने उस तामस अहङ्कार से पञ्चमहाभूतों की और पञ्चतन्मात्राओं की उत्पत्ति की ॥ ७ ॥

सप्तावरणवेष्टिताण्डसृष्टिः

महदादिविशेषान्तैरेतैरण्डमजीजनत् ।
दशोत्तरैरावरणैः सप्तभिः परिवेष्टितम् ॥ ८ ॥

इन महदादि विशेषान्त रूप दश आवरणों से तथा सप्त आवरणों से परिवेष्टित इस अण्ड की उन्होंने रचना की ॥ ८ ॥

अण्डे चतुर्मुखसृष्टिः

तस्मिन्नण्डे स्वयं विष्णुः प्रजापतिमथाकरोत् ।
उच्चावचानां भूतानां कर्तारं निजशक्तिभिः ॥ ९ ॥

उस अण्ड में विष्णु ने स्वयं प्रजापति (ब्रह्मदेव) का निर्माण किया, जिन्होंने अपनी शक्तियों की सहायता से ऊँचे नीचे भूतों की सृष्टि की ॥ ९ ॥

भगवच्छक्तिभूतस्य कालस्य सृष्टौ सहकारित्वम्

हरिः स्वशक्तिरूपेण कालेन च समन्वितः ।
महदादिषु सृज्येषु सृष्टिं चक्रे जगन्मयः ॥ १० ॥

जगन्मय भगवान् विष्णु ने अपने शक्तिरूप भूतकाल को सहकारी कारण बना कर महदादि सृज्यमान पदार्थों से स्वयं सृष्टि की ॥ १० ॥

चतुर्मुखव्याजेन भगवत एव विचित्रजगत्स्रष्टृत्वम्

विष्णुर्ब्रह्मापदेशेन चिदचिन्मिश्रितं जगत् ।
विचित्रं जनयामास तत्तच्छक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥

स्वयं विष्णु ही ब्रह्मा बन कर तत्तच्छक्तियों से युक्त हो कर चेतन एवं अचेतनात्मक मिश्रित इस विचित्र जगत् के स्रष्टा बने ॥ ११ ॥

वेदशब्देभ्य एव देवादीनां नामरूपव्याकरणम्

वेदानालोच्य भूतानां देवादीनां यमः प्रभुः ।
नामरूपे च विविधे यथापूर्वमकल्पयत् ॥ १२ ॥

सबके नियन्ता उन ब्रह्मदेव प्रभु ने वेदों की आलोचना कर अनेक प्रकार के नाम रूपों वाली सृष्टि, जैसी पूर्व कल्प में था उसको बनाया ॥ १२ ॥

आप्तकामस्यापि स्रष्टृत्वोपपत्तिः

सर्वदावाप्तसकलकामोऽपि परमेश्वरः ।
जन्तुभिर्निजसृष्टैश्च लीलारसमथान्वभूत् ॥ १३ ॥

सर्वदा अवाप्ता सकल पूर्ण काम परमेश्वर ने अपने द्वारा सृष्ट जगत् के जन्तुओं से लीलारस का अनुभव किया ॥ १३ ॥

भगवत एव पालकत्वम्

अनालोच्यैव जगतां त्रातारमपरं हरिः ।
स्वयमेवांशरूपेण पालयत्यखिलं जगत् ॥ १४ ॥

जब भगवान् ने देखा कि मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा इस जगत् का पालन करने में समर्थ नहीं है तब उन्होंने स्वयं ही अपने अंश से इस सृष्टि का पालन किया ॥ १४ ॥

दुष्टनिरसनं विना पालनस्याशक्यत्वम्

दैतेयानां दानवानामन्तरेण निबर्हणम् ।
न शक्यते पालयितुं सदेवासुरमानवम् ॥ १५ ॥

दुष्टनिवर्हणाय भगवत एव चक्रात्मनावस्थानम्

अतश्च भगवान् विष्णुश्चक्ररूपी व्यवस्थितः ।
हन्यन्ते तेन चक्रेण विश्वे दैतेयदानवाः ॥ १६ ॥

फिर उन्होंने जब देखा कि दैत्य और दानवों के विनाश के बिना देव, असुर एवं मानव की इस सृष्टि का पालन बहुत असम्भव कार्य है तब उन्होंने चक्र सुदर्शन का स्वरूप धारण किया, जिस चक्र से समस्त दैत्य और दानवों का वध होता है ॥ १५-१६ ॥

देवादीनां सुदर्शनधारणासामर्थ्यम्

देवादीनां सुराणां च विशेषाच्च महीक्षिताम् ।
न शक्यते धारयितुं सुदर्शनमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

भगवान् को स्वयं चक्र रूप में अवतरित होने से देवता, सुर तथा विशेष कर के राजाओं को भी उसके धारण करने की शक्ति नहीं है ॥ १७ ॥

शस्त्रास्त्ररूपेण तस्य विभागः

अतस्तेषां विभक्तानि विविधानि बहूनि च ।
अस्त्राणि शस्त्रजातानि शत्रुनाशाय नारद ॥ १८ ॥

हे नारद ! इसलिए भगवान् ने उनके धारण करने के लिए अनेक प्रकार के और बहुत से अस्त्र शस्त्रों के समूह शत्रुनाश के लिए प्रविभक्त किये ॥ १८ ॥

भगवदात्मकात् सुदर्शनादस्त्राणामुत्पत्तिः

अस्त्राणि तानि निर्जग्मुर्विष्णुरूपात् सुदर्शनात् ।
अमोघानिततोऽस्त्राणि भीषणानि महान्ति च ॥ १९ ॥
प्रजाः स्त्रष्टुं मनश्चक्रे चक्ररूपी जगत्पतिः ।
स्त्रष्टुमस्त्राणि सर्वाणि स्वस्माद्रूपान्महामुने ॥ २० ॥

इस प्रकार विष्णु रूप सुदर्शन से अत्यन्त भीषण एवं महान् तथा अमोध अस्त्रों की उत्पत्ति हुई । हे महामुने ! जगत्पति जनार्दन ने चक्र रूप अपने स्वरूप से वहाँ भी सम्पूर्ण अस्त्र रूप प्रजा की सृष्टि की इच्छा की ॥ १९-२० ॥

तस्माद्देवो भीममापद्य चोग्रं रूपं पिङ्गं पिङ्गलावृत्तनेत्रम् ।
दंष्ट्रानिर्यत्पावकप्लुष्टकाष्ठं भीमं केशैःपिङ्गलैर्विद्युदाभैः ॥ २१ ॥

इस कारण उन देवाधिदेव ने भीम, उग्र तथा पिङ्गल वर्ण का रूप धारण किया उनके नेत्र पीले थे । उनके दाँतों से निकलती हुई अग्नि काष्ठ को भस्म करने में समर्थ थी । विद्युत् के समान पीतवर्ण के केशों से वे महाभयानक प्रतीत हो रहे थे ॥ २१ ॥

तत्र मुखजातान्यस्त्राणि

नारायणं पाशुपतं ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम विष्णुचक्रं च जृम्भणम् ॥ २२ ॥
कालपाशमथाग्नेयमस्त्रं हयशिरस्तथा ।
प्रस्वापनं तापसं च कालास्त्रममितप्रभम् ॥ २३ ॥
दण्डचक्रं कालचक्रं धर्मचक्रं तथैव च ।
शैवं शूलं रौद्रमस्त्रं त्रिशूलं घोरमेव च ॥ २४ ॥
अस्त्राण्येतानि मुख्यानि मुखतो जज्ञिरे विभोः ।

नारायण, पाशुपत, ब्राह्म, ब्रह्मशिर, विष्णुचक्र, जृम्भण, कालपाश, आग्नेयास्त्र, हयशिर, प्रस्वापन, तापस, अमित तेजस्वी कालास्त्र, दण्डचक्र, कालचक्र, धर्मचक्र, शैवास्त्र, शूल, रौद्रास्त्र और घोर त्रिशूल इतने नाम वाले मुख्य-मुख्य अस्त्र उन भगवान् के मुख से उत्पन्न हुये ॥ २२-२५ ॥

वक्षोजातान्यस्त्राणि

सम्मोहनं तथैषीकमैन्द्रं चक्रं महाद्युति ॥ २५ ॥

अशनी द्वे च शुष्कार्द्रासंज्ञितं सर्वभीषणे ।
पैनाकमस्त्रं कङ्कालं कापालमतिदारुणम् ॥ २६ ॥
सौर्यं वारुणपाशं च सन्तापनमरिंदमम् ।
अस्त्रं वारुणमत्युग्रं धर्मपाशं तथैव च ॥ २७ ॥
एतान्यस्त्राणि देवस्य निर्जग्मुर्वक्षसस्तथा ।

सम्मोहन, ईषीक, ऐन्द्र, देदीप्यमान चक्र, अशनी, महाभयानक शुष्क संज्ञक एवं आर्द्र संज्ञक ये दोनों पैनाकास्त्र, कङ्काल, अत्यन्त भयानक कापालास्त्र, सौर्यास्त्र, वारुणपाश, शत्रुओं को नष्ट करने वाला सन्तापन अस्त्र, अत्यन्त उग्र वारुणास्त्र तथा उसी प्रकार का धर्म पाश ये सभी उन देवाधिदेव के वक्षःस्थल से उत्पन्न हुये ॥ २५-२८ ॥

ऊरुजातान्यस्त्राणि

शक्तिद्वयं च वायव्यमस्त्रं मौसलमेव च ॥ २८ ॥
गान्धर्वं दर्पणं चास्त्रं शोषणं परदारणम् ।
तेजःप्रभं च पैशाचमैन्द्रमस्त्रं सुदारुणम् ॥ २९ ॥
याम्यं विलापनं चास्त्रं वैद्याधरममित्रहम् ।
कङ्कणीं मोदकीं चैव शिखरं क्रौञ्चमेव च ॥ ३० ॥
एतानि जनयामास निजोर्वोरुरुविक्रमः ।

दो प्रकार की शक्तियाँ, वायव्यास्त्र, मौसलास्त्र, गान्धर्व दर्पण, शोषण, परदारण, तेजःप्रभ, पैशाच एवं अत्यन्त दारुण ऐन्द्रास्त्र, याम्य, विलापन, वैद्याधर, अमित्रहन्, कङ्कणी, मोदकी, शिखर एवं क्रौञ्च इन अस्त्रों को प्रचण्ड पराक्रम वाले भगवान् ने अपने दोनों ऊरुओं से उत्पन्न किया ॥ २८-३१ ॥

पादजातान्यस्त्राणि

असिरत्नं प्रशमनं कन्दर्पदयितं तथा ॥ ३१ ॥
मदनं सौमनं चास्त्रं सत्यं संवर्तनं तथा ।
मायाधरं च सोमास्त्रं त्वाष्ट्रं शीतेषुमेव च ॥ ३२ ॥
भगास्त्रमस्त्राण्येतानि पद्भ्यां जातानि नारद ।

असिरत्न, प्रशमन, कन्दर्पदयित, मदन, सौमन, सत्य, संवर्त्तन, मायाधर, सोमास्त्र, त्वाष्ट्र, शीतेषु (ठण्डे बाण) और भगास्त्र, हे नारद ! ये अस्त्र भगवान् के पैर से उत्पन्न हुये ।

अपराङ्गजातान्युपसंहारास्त्राणि

संदामनं सत्यवन्तं धरणं धृष्टमेव च ॥ ३३ ॥
भृशाश्वतनयं चैव सत्यकीर्तिं तथैव च ।
मोहनं रभसास्त्रं च सर्वनाहं पराङ्मुखम् ॥ ३४ ॥
जृम्भकं प्रतिहारं च तथा वरणमुत्तमम् ।
अवाङ्मुखं धनं धान्यं वृषाक्षं कामरूपकम् ॥ ३५ ॥

दृढनाहं कामरुचिं सुनाभं मकरं तथा ।
दशाक्षं वृत्तिमन्तं च दशवक्त्रं तथापरम् ॥ ३६ ॥
रुचिरं दशशीर्षं च योगन्धरममित्रहम् ।
अनिद्रं मकरं चैव भोक्तारं कङ्कणीं तथा ॥ ३७ ॥
शतोदरं सौमनसं पद्मनाभं तथैव च ।
महानाभं प्रमथनं ज्यौतिषं क्रथनं तथा ॥ ३८ ॥
त्रैराशिं सार्चिमालिं च विमलां धृतिकां तथा ।
सृष्टिं तथा विषामास्त्रं सुध्याताहं तथैव च ॥ ३९ ॥
विधूतं कृशनं चैव लक्षाक्षं कर्शनं तथा ।
उपसंहाररूपाणि सर्वाण्यस्त्राण्यमूनि वै ।
जनयामास देवोऽसौ स्वापराङ्गात् परन्तपः ॥ ४० ॥

संदामन, सत्यवान्, धरण, धृष्ट, भृशाश्वतनय, सत्यकीर्त्ति, मोहन, रभसास्त्र, सर्वनाह, पराङ्मुख, जृम्भक, प्रतिहार, वरण, अवाङ्मुख, धन, धान्य, वृषाक्ष, कामरूप, दृढ़नाह, कामरुचि, सुनाभ, मकर, दशाक्ष, वृत्तिमान् तथा अन्य दशवक्त्र, रुचिर, दशशीर्ष, योगन्धर, अमित्रहम्, अनिद्र, मकर, भोक्ता, कङ्कणी, शतोदर, सौमनस, पद्मनाभ, महानाभ, प्रमथन, ज्यौतिष, क्रथन, त्रैराशि, सार्चिमाली, विमला, धृतिका, सृष्टि, विषामास्त्र, सुध्याताह, विधूत, कृशन, लक्षाक्ष तथा कर्शन इतने उपसंहार रूप वाले अस्त्रों को परन्तप भगवान् ने अपने अपर अङ्ग से उत्पन्न किया ॥ ३३-४० ॥

अध्यायार्थनिगमनम्

एवमुक्तानि नामानि जन्मान्यपि च नारद ।
अस्त्राणामपि माहात्म्यं यन्त्रस्यास्य समासतः ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां अस्त्राणां जन्मनामनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ आदितः श्लोकाः १८२५ ॥

* * *

हे नारद ! इस प्रकार हमने उन-उन अस्त्रों के नाम तथा जन्म स्थान और इस यन्त्र का माहात्म्य भी संक्षेपतः वर्णन किया ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों के जन्मनामनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३० ॥

* * *

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

योगाङ्गयमनियमासननिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक वार ध्यान करने से अनेक जन्म के करोड़ों समूहों के पाप को नष्ट करता है, हम उस सुदर्शन देव के तेज का ध्यान करते हैं ।

हृद्यागस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

प्रथमं बाह्ययागस्य हृदयाराधनं परम् ।
उक्तं त्वया तत्स्वरूपं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आप ने पहले कहा था कि बाह्य याग से पहले हृदय याग करना आवश्यक है (द्र० २८-२९) इसलिए उसका स्वरूप मुझसे कहिये ॥ १ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

साधु पृष्टं त्वया तस्य स्वरूपं शृणु नारद ।
येन प्रीणाति भगवान् सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आपने अच्छी बात मुझसे पूछी । अब उसका स्वरूप सुनिए जिसके करने से सर्वलोक से नमस्कृत भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

हृद्यागलक्षणम्

यैर्बाह्ययागः क्रियते साधनैस्त्रिविधैरिह ।
सङ्कल्पसिद्धैस्तैरेव देवं प्रति समर्चनम् ॥ ३ ॥
हृदयाराधनं प्रोक्तमेतत् सर्वार्थसाधनम् ।

जिन तीन प्रकार के साधनों से इस लोक में बाह्य याग किया जाता है उन्हीं साधनों से अपने सङ्कल्प के द्वारा देवाधिदेव का अर्चन करना सर्वोत्कृष्ट हृदयाराधन नामक यज्ञ है, जिससे सारे अर्थों की सिद्धि होती है ॥ ३-४ ॥

आत्मसमर्पणस्य हृद्यागतुल्यत्वम्

यद्वा भगवते तस्मै स्वकीयात्मसमर्पणम् ॥ ४ ॥
वियुक्तं प्रकृतेः शुद्धं दद्यादात्महविः स्वयम् ।
विशिष्टदैवतायास्मै चक्ररूपाय मन्त्रतः ॥ ५ ॥

उन भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण करना ही हृद्याग है, जिस हृद्याग में अपनी प्रकृति से वियुक्त हुये विशुद्ध आत्मा की चक्ररूप विशिष्ट देवता के लिए मन्त्र द्वारा और स्वयं के द्वारा आहुति दी जाती है ॥ ४-५ ॥

प्रकृतिवियुक्तात्मस्वरूपविषयकः प्रश्नः

नारदः—

वियुक्तं प्रकृते रूपमात्मनो वक्तुमर्हसि ।
केनोपायेन तत्प्राप्तिस्तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ ६ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! अपनी प्रकृति से विच्युत आत्मा किस उपाय से अपने प्रकृति को प्राप्त करता है, उसे निश्चयपूर्वक कहिए ॥ ६ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु तत् परमं सूक्ष्मं सर्वगं सर्वभृत् तथा ।
ज्ञानरूपमनाद्यन्तमविकारि निरामयम् ॥ ७ ॥
अचक्षुःश्रोत्रमस्पर्शमपाणिचरणं ध्रुवम् ।
नामजात्यादिरहितमवर्णमगुणं त्वपि ॥ ८ ॥
विश्वश्रवो विश्वचक्षुर्विश्वपाणिपदं परम् ।
असक्तमचरं शान्तं स्वयंज्योतिरनौपमम् ॥ ९ ॥
दूरस्थमन्तिकचरं ज्ञानगम्यं निरञ्जनम् ।
भूतभर्तृ समज्योतिर्ज्योतिषां तमसः परम् ॥ १० ॥
अक्षरं सर्वभूतस्थं तद्विष्णोः परमं पदम् ।

योगकर्मणोर्विविक्तात्मस्वरूपप्राप्तिसाधनता

तत्प्राप्तिसाधनं योगः कर्म च श्रुतिचोदितम् ॥ ११ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! आप आत्मा के प्रकृति प्राप्ति का उपाय सुनिए—

परम, सूक्ष्म, सर्वग, सर्वभृत, ज्ञानरूप, आदि अन्त से रहित, अविकारी, निर्भय, अचक्षुः, अश्रोत्र, अस्पर्श, अपाणिपाद एवं नामजाति से रहित अवर्ण अगुण विश्वश्रव, विश्वचक्षु, विश्वपाणि पाद, सबसे परे, असक्त, अचर, शान्त स्वयंज्योति अनुपम दूर तथा अन्तिम सर्वत्र व्याप्त ज्योतियों की ज्ञानगम्य, मायारहित, प्राणियों का पोषण करने वाला समज्योति, तम से परे, अक्षर एवं सर्व भूतस्थ ऐसी प्रकृति वाले आत्मरूप विष्णु के

परम पद स्वरूप को प्राप्त करने के साधन को योग कहा जाता है। वह कर्म वेद में विहित है ॥ ७-११ ॥

तद्विषयकः प्रश्नः

नारदः—

कीदृशं कर्म विज्ञेयं योगः कीदृश उच्यते।
याभ्यां सम्प्राप्यते चात्मा केवलं प्रकृतेः परः ॥ १२ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! वह कर्म कैसा है? किसे योग कहते हैं? जिससे प्रकृति से परे आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणुष्व प्रथमं कर्म द्विविधं तदिहोच्यते।

कर्मणां द्वैविध्यम्

एकं प्रवर्तकं प्रोक्तं निवर्तकमथापरम् ॥ १३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! सर्वप्रथम कर्म किसे कहते हैं? उसे सुनिए। यह दो प्रकार का कहा गया है, प्रथम प्रवर्त्तक तथा दूसरा निवर्त्तक ॥ १३ ॥

प्रवर्तकनिवर्तककर्मणोः क्रमादभ्युदय-निःश्रेयससाधनत्वम्

प्रवर्तकं च स्वर्गादिफलसाधनमुच्यते।
निवर्तकाख्यं देवर्षे विज्ञेयं मोक्षसाधनम् ॥ १४ ॥

हे देवर्षे! स्वर्गादि फल उत्पन्न करने वाला साधन प्रवर्त्तक कर्म है और मोक्ष का साधनभूत निवर्त्तक कर्म कहा जाता है, ऐसा समझना चाहिए ॥ १४ ॥

जीवपरसंयोगस्याष्टाङ्गयोगशब्दार्थता

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।
अष्टाङ्ग एष कथितो येनात्मा दृश्यतां गतः ॥ १५ ॥

जीवात्मा तथा परमात्मा का संयोग योग कहा जाता है। इस योग के आठ अङ्ग हैं, जिनसे आत्मा का साक्षात्कार होता है ॥ १५ ॥

योगाङ्गपरिगणनम्

अष्टाङ्गान्यस्य वक्ष्यामि पृथक् तानि निशामय।
यमश्च नियमश्चैवमासनं तदनन्तरम् ॥ १६ ॥
प्राणायामस्ततः प्रोक्तः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं तथा समाधिश्चाप्यङ्गान्येतानि नारद ॥ १७ ॥

अब मैं उस योग के आठ अङ्गों का पृथक्-पृथक् वर्णन करता हूँ, आप उसे सुनिए। यम, नियम, आसन, उसके बाद प्राणायाम, फिर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि, हे नारद ! यही योग के आठ अङ्ग है ॥ १६-१७ ॥

यमस्वरूपनिरूपणम्

सत्यं दया धृतिः शौचं ब्रह्मचर्यं क्षमार्जवम्।
मिताहारस्तथास्तेयमहिंसेति यमा दश ॥ १८ ॥

सत्य, दया, धैर्य, शौच, ब्रह्मचर्य, क्षमा, आर्जव, मिताहार, अस्तेय और अहिंसा—ये दश यम कहे जाते है ॥ १८ ॥

सत्यादीनां स्वरूपनिरूपणम्

हितरूपं वचः सत्यं यथादृष्टार्थगोचरम्।
दया दुःखासहिष्णुत्वं सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ १९ ॥
आपद्यपि स्वकार्येषु कर्तव्यत्वस्थितिर्धृतिः।
शौचं सर्वेन्द्रियाणां च वैधकर्मसु योग्यता ॥ २० ॥
ब्रह्मचर्यं स्वयोषित्सु भोग्यताबुद्धिवर्जनम्।
अविकारमनस्त्वं तु क्षमा विकृतिहेतुषु ॥ २१ ॥
वाङ्मनःकायवृत्तीनामेकरूपत्वमार्जवम्।
मिताहारस्त्वाश्रमिणां श्रुतिचोदितभोजनम् ॥ २२ ॥
अस्तेयमस्पृहान्येषां वित्ते वाक्कायमानसैः।
अहिंसा वाङ्मनःकायैः परपीडानिवर्तनम् ॥ २३ ॥

सत्यादि यमों का लक्षण—प्राणियों का जिससे हित हो ऐसे वचन को सत्य कहते हैं। अथवा जैसा देखा या सुना हो उसे उसी रूप में कहना **सत्य** है—सर्वदा सभी प्राणियों के दुःख को न सह सकने का नाम **दया** है। आपत्ति आने पर भी अपने कर्त्तव्य कार्य से विचलित न होने का नाम **धृति** है। वैध कर्म के लिए सभी इन्द्रियों में योग्यता सम्पादन का नाम **शौच** हैं। अन्यों की तो क्या अपनी स्त्री में भी भोग्यता बुद्धि का न होना **ब्रह्मचर्य** है। विकार हेतु के उपस्थित होने पर भी मन में विकार न होने का नाम **क्षमा** हैं। जो वाणी, मन तथा शरीर की एक रूपता का नाम **आर्जव** है। आश्रमियों के लिए वेदविहित भोजन का नाम **मिताहार** हैं। दूसरों के द्वारा अर्जित धन में वाणी, शरीर तथा मन के द्वारा किसी भी प्रकार अपनी इच्छा को उत्पन्न न होने देना **अस्तेय** हैं। वाणी मन तथा शरीर से दूसरे को पीड़ा उत्पन्न न करना **अहिंसा** है। ये दश यम के लक्षण कहे गए ॥ १९-२३ ॥

नियमस्वरूपनिरूपणम्

सिद्धान्तश्रवणं दानं मतिरीश्वरपूजनम्।
सन्तोषस्तप आस्तिक्यं ह्रीर्जपश्च तथा व्रतम् ॥ २४ ॥

एते तु नियमाः प्रोक्ता दश योगस्य साधकाः ।

सिद्धान्त श्रवण, दान, मति, ईश्वर पूजन, सन्तोष, तप, आस्तिक्य, ह्री (लज्जा) जप तथा व्रत ये दश नियम कहे गए हैं जो योग के साधक हैं ॥ २४ ॥

सिद्धान्तश्रवणादीनां स्वरूपनिरूपणम्

सिद्धान्तश्रवणं प्रोक्तं वेदान्तश्रवणं बुधैः ॥ २५ ॥
दानं न्यायार्जितार्थस्य सत्पात्रे प्रतिपादनम् ।
विहिते कर्मणि श्रद्धा मतिरित्यभिधीयते ॥ २६ ॥
यथाशक्त्यर्चनं भक्त्या विष्णोरीश्वरपूजनम् ।
सन्तोषोऽलमनेनेति प्रीतिर्यादृच्छिकेन वै ॥ २७ ॥
कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैश्च तपो देहविशोषणम् ।
आस्तिक्यमस्ति वेदैकगम्यं वस्त्विति निश्चयः ॥ २८ ॥
निषिद्धकर्मकरणे व्रीडा ह्रीः प्रोच्यते बुधैः ।
गुरूपदिष्टस्वाध्यायमन्त्राभ्यासो जपः स्मृतः ॥ २९ ॥
सदाचार्योपदिष्टेषूपायत्वप्रग्रहो व्रतम् ।

बुद्धिमानों ने वेदान्तश्रवण को **सिद्धान्त श्रवण** कहा है । न्यायपूर्वक अर्जित धन का सत्पात्र में प्रतिपादन **दान** कहा है । वेदविहित कर्म में श्रद्धा रखना **मति** है । विष्णु की भक्तिपूर्वक यथाशक्ति अर्चना करना **ईश्वर पूजन** है, यदृच्छा से प्राप्त होने वाले धन में प्रीति रखना और जो प्राप्त हुआ है उसे अधिक न चाहने का नाम **सन्तोष** है । कृच्छ्र चान्द्रायणादि के द्वारा देह का शोषण करना **तप** है । वेद में ऐसी बात कही गई है, इसलिए उस पर श्रद्धा रखना **आस्तिक्य** है और निषिद्ध कर्म करने में लज्जा करना इसी को बुद्धिमानों ने **ह्री** कहा है । गुरु के द्वारा उपदिष्ट स्वाध्याय तथा मन्त्राभ्यास **जप** है । सर्वदा आचार्य से उपदिष्ट उपाय का अवलम्बन करते रहना **व्रत** है ॥ २५-३० ॥

अथासनानां स्वास्थ्यहेतुत्वम्

आसनानि प्रवक्ष्यामि मुख्यानि विविधानि च ॥ ३० ॥
आस्थायैषामन्यतमं योगिनो यान्ति निर्वृतिम् ।

मुख्यासनपरिगणनम्

चक्रं पद्मासनं कूर्मं मायूरं कौक्कुटं तथा ॥ ३१ ॥
वीरासनं स्वस्तिकं च भद्रं सिंहासनं तथा ।
मुक्तासनं गोमुखं च मुख्यान्येतानि नारद ॥ ३२ ॥

हे नारद ! अब मैं मुख्य मुख्य आसन, जो अनेक प्रकार के हैं, उनका वर्णन करता हूँ । उनमें से किसी एक आसन का अभ्यास करने से योगी जन सुख प्राप्त करते हैं । चक्र, पद्मासन, कूर्म, मायूर, कौक्कुट, वीरासन, स्वस्तिक, भद्र, सिंहासन, मुक्तासन तथा गोमुख, हे नारद ! मुख्य रूप से इतने आसन कहे गए हैं ॥ ३०-३२ ॥

चक्रासनम्

सव्योरुं दक्षिणे गुल्फे दक्षिणं दक्षिणेतरे ।
निदध्यादृजुकायस्तु चक्रासनमिदं परम् ॥ ३३ ॥

वायें ऊरु को दाहिने गुल्फ पर और दाहिने ऊरु को वायें गुल्फ पर रख कर मेरुदण्ड को सीधे कर बैठने से **चक्रासन** होता है ॥ ३३ ॥

पद्मासनम्

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य उभे पादतले सुखम् ।
पद्मासनमिदं प्रोक्तं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ २९ ॥

दोनों ऊरु तलों पर दोनो पादतल सुखपूर्वक स्थापित करे तो इसे **पद्मासन** कहते हैं, जो सारे पापों को नष्ट कर देता है ॥ ३४ ॥

कूर्मासनम्

गुदं निपीड्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः ।
एतत् कूर्मासनं प्रोक्तं योगसिद्धिकरं परम् ॥ ३५ ॥

व्युत्क्रम से (उल्टे क्रम से अर्थात् बायें से दायाँ और दायें से बायाँ) एकाग्रचित्त होकर दाहिने गुल्फ से गुदा का बायाँ भाग तथा बायें गुल्फ से गुदा का दाहिना भाग दबा कर स्थापित करे तो इसे **कूर्मासन** कहते हैं । यह सर्वोत्कृष्ट योग-सिद्धिकारक आसन है ॥ ३५ ॥

मयूरासनम्

निवेश्य कूर्परौ सम्यङ् नाभिमण्डलपार्श्वयोः ।
अवष्टभ्य भुवं पाणितलाभ्यां व्योम्नि दण्डवत् ॥ ३६ ॥
समोन्नतशिरःपादो मायूरासनमिष्यते ।
एतत् सर्वविषघ्नं च सर्वव्याधिनिवारणम् ॥ ३७ ॥

दोनों कूर्परों को नाभिमण्डल के पार्श्वभाग में अच्छी प्रकार से स्थापित कर दोनों हाथ के तलवों से जमीन का आश्रय ले कर आकाश में दण्ड के समान शिर और पैर को ऊपर रखे तो इसे **मायूरासन** कहते हैं । इस आसन के करने से मलरूप विष का नाश हो जाता है और सारे रोग एवं शोक दूर हो जाते हैं ॥ ३६-३७ ॥

कुक्कुटासनम्

पद्मासनमधिष्ठाय जान्वन्तरविनिःसृतौ ।
करौ भूमौ निवेश्यैतद्व्योमस्थं कुक्कुटासनम् ॥ ३८ ॥

पद्मासन से बैठ कर जानु के भीतर से निकले हुये दोनों हाथों से पृथ्वी को थाम कर ऊपर उठ जाने का नाम **कुक्कुटासन** है ॥ ३८ ॥

वीरासनम्

एकत्रोरौ तु संस्थाप्य पादमेकमथेतरम् ।

ऊरुं पादे निवेश्यैतद्वीरासनमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

एक ऊरु पर एक पैर रखे, फिर दूसरे ऊरु को दूसरे पैर पर रखे तो इसे **वीरासन** कहा जाता है ॥ ३९ ॥

स्वस्तिकासनम्

उभे पादतले कृत्वा जानूर्वोरन्तरे दृढम् ।
ऋजुकायः समासीत स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ॥ ४० ॥

दोनो पैर के तलवों को दोनों जानु के भीतर भली प्रकार रख कर सीधे-सीधे बैठे तो उस आसन को **स्वास्तिकासन** कहते हैं ॥ ४० ॥

भद्रासनम्

सीवन्याः पार्श्वयोर्गुल्फौ निवेश्याग्रपदे दृढम् ।
बद्ध्वा कराभ्यां तत् प्रोक्तं भद्रासनमघापहम् ॥ ४१ ॥

सीवनी के दोनों पार्श्वभाग में दोनों गुल्फों को स्थापित कर दोनों पैर के अग्रभाग को दोनों हाथों से भली प्रकार बाँधे तो उसे **भद्रासन** कहते हैं । यह समस्त पापों को दूर करने वाला है ॥ ४१ ॥

सिंहासनम्

सीवन्याः पार्श्वयोर्गुल्फौ व्युत्क्रमेण निवेश्य च ।
करौ जान्वोर्निधायोभौ प्रसार्य निखिलाङ्गुलीः ॥ ४२ ॥
नासाग्रन्यस्तनयनो व्यात्तवक्त्र ऋजुः सुधीः ।
एतत् सिंहासनं प्रोक्तं सर्वदेवाभिपूजितम् ॥ ४३ ॥

सीवनी के पार्श्वभाग में व्युत्क्रम से (दाहिने से बायाँ और बायें से दाहिना) दोनों गुल्फ स्थापित कर दोनों हाथों को, जिसमें अङ्गुलियाँ फैली रहे, दोनों जानुओं पर स्थापित करे । नासाग्र भाग में नेत्र स्थापित कर सिंह के समान मुख खोलकर सीधे-सीधे बैठना यह **सिंहासन** कहा गया है । सभी देवगण इस आसन की प्रशंसा करते हैं ॥ ४२-४३ ॥

मुक्तासनम्

मेढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यगुल्फमिहेतरम् ।
गुल्फं विन्यस्य पाणी चाप्यङ्कमध्ये निवेश्य च ॥ ४४ ॥
मुक्तासनमिदं प्रोक्तं स्थिता यत्र मुमुक्षवः ।

दाहिने अण्डकोश पर बायाँ गुल्फ और बायें पर दाहिना गुल्फ स्थापित कर दोनों हाथों को ठीक अपने अङ्कमध्य में स्थापित करे तो उसे **मुक्तासन** कहते हैं । मुमुक्षु लोग इसी आसन से बैठते हैं ॥ ४४-४५ ॥

गोमुखासनम्

उभयोर्गुल्फयोः कृत्वा पृष्ठपार्श्वावुभावपि ॥ ४५ ॥

व्युत्क्रमेणाथ पाणिभ्यां विन्यस्ताभ्यां विगृह्य च ।
पृष्ठगाभ्यां पदाङ्गुष्ठावेतद् गोमुखमुच्यते ॥ ४६ ॥

दोनों गुल्फों पर दोनों पृष्ठ और पार्श्वभाग स्थापित कर दोनों हाथों को व्युत्क्रम के अनुसार फैला कर पीछे रहने वाले पादाङ्गुष्ठ को पकड़ना इसे **गोमुख आसन** कहते हैं ॥ ४५-४६ ॥

प्राणायामसिद्धये नाडीशुद्ध्यावश्यकता

प्राणायामप्रसिद्ध्यर्थं नाडीशुद्धिमनन्तरम् ।
देहस्थवायुभिः कुर्यात् साग्निभिश्च तपोधन ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां योगाङ्गयमनियमासन-निरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १८७२ ॥

* * *

प्राणायाम की सिद्धि के लिए प्रथम नाड़ी शुद्धि कर ले । फिर साधक देह अग्नि के सहित देहस्थ वायु के द्वारा प्राणायाम करे ॥ ४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के योगाङ्ग यम नियम आसन निरूपण नामक इकतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३१ ॥

* * *

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

नाडीशुद्धिवायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने पर संसार के करोड़ों पापसमूहों को नष्ट करता है, हम उस चक्र सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

नाडीसङ्ख्यास्थानादिप्रश्नः

नारदः—

नाडयः कति तिष्ठन्ति कीदृश्यः किंप्रमाणकाः ।
क्व वर्तन्ते शरीरेऽस्मिन् कथमासां विशोधनम् ॥ १ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् कितनी नाड़ियाँ हैं । उनका स्वरूप कैसा है ? तथा उनका प्रमाण क्या है? इस शरीर में वे कहाँ-कहाँ रहती हैं और किस प्रकार उनकी शुद्धि की जाती है ॥ १ ॥

वायुसङ्ख्यादिप्रश्नः

वायवः कति तिष्ठन्ति किंनामानश्च कीदृशाः ।
कानि कर्माण्यमीषां तु तत् सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

इस शरीर में कितने वायु हैं? उनके नाम क्या हैं? और वे कैसे हैं? तथा इनके क्या कार्य हैं? वह सब हमें बताइये ॥ २ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् परमं गुह्यं शृणुष्वानन्यमानसः ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ये सभी बातें बड़ी गोपनीय हैं । सावधान होकर सुनिए ॥ ३ ॥

शरीरस्य षण्णवत्यङ्गुलपरिमाणत्वम्

शरीरं सर्वजन्तूनामङ्गुलीभिरनामयम् ॥ ३ ॥
स्वाभिः स्वाभिः सुरमुने षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् ।

शरीरमध्यभागनिर्णयः

शरीरमध्यः क इति शुश्रूषा चेन्महामुने ॥ ४ ॥
श्रूयतां पायुदेशात्तु द्व्यङ्गुलात् परतः परम् ।
मेढ्रदेशादधस्तात्तु द्व्यङ्गुलान्मध्य उच्यते ॥ ५ ॥

हे नारद ! सभी जन्तुओं का शरीर स्वस्थ रहने पर उनकी-उनकी अङ्गुलियों के प्रमाणानुरूप अङ्गुल का मान होता है । हे महामुने ! यदि आपको इस बात की शुश्रूषा (= सुनने की इच्छा) हो कि शरीर का मध्य भाग कहाँ है? तो उसे सुनिए । पायु स्थान से दो अङ्गुल परे और मेढ्र स्थान से दो अङ्गुल नीचे शरीर का मध्यस्थान माना गया है ॥ ३-५ ॥

शरीरस्थवह्निमण्डलस्वरूपम्

चतुष्कोणं त्रिकोणं तद् वृत्तमाग्नेयमण्डलम् ।
चतुष्पदां नृणां चैव विहङ्गानां यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

चतुष्पदों (जानवरों) का आग्नेयमण्डल चतुष्कोण, मनुष्यों का आग्नेयमण्डल त्रिकोण तथा पक्षियों का आग्नेयमण्डल वृत्ताकार होता है ॥ ६ ॥

नाडीमूलस्थानम्

मेढ्रान्नवाङ्गुलादूर्ध्वं नाडीनां कन्द उच्यते ।
चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम् ॥ ७ ॥
अण्डाकारं परिवृतं मेदोमांसास्थिशोणितैः ।

नाभिचक्रस्थानम्

तत्रैव नाभिचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥
शरीरं ध्रियते येन तस्मिन् वसति कुण्डली ।

मेढ्र से नव अङ्गुल ऊपर सभी नाड़ियों का कन्द है । जिसकी ऊँचाई चार अङ्गुल तथा लम्बाई भी चार अङ्गुल तथा मोटाई भी चार अङ्गुल है । वह मेद, मांस अस्थि तथा शोणित से परिपूर्ण है तथा अण्डे के आकार में स्थित है । उसी में १२ अरों वाली नाभिचक्र प्रतिष्ठित है । उसी के द्वारा शरीर धारण किया गया है । उसी में कुण्डली निवास करती है ॥ ७-९ ॥

नाभिचक्रस्यारेषु सुदर्शनमन्त्रवर्णन्यासः

सौदर्शनस्य मन्त्रस्य यानि वर्णानि सन्ति वै ॥ ९ ॥
विभज्य तानि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरांस्तथा ।
चक्रेऽस्मिन् विन्यसेत् तानि प्राच्याद्यारेषु च क्रमात् ॥ १० ॥

शिष्टाक्षराणां चक्रमध्ये न्यासः

शेषाणि विन्यसेन्मध्ये चक्रस्यास्य समाहितः ।

नाभिचक्रं परितः कुण्डल्यवस्थितिः

वर्तते परितश्चक्रमष्टवक्त्राथ कुण्डली ॥ ११ ॥

सुदर्शन मन्त्र में जितने भी वर्ण कहे गए हैं, उन्हीं स्वर व्यञ्जन वर्णों को प्रविभक्त कर इस चक्र के पूर्वादि स्थित अरों में क्रमशः विन्यस्त करे तथा जो शेष रहे उसे चक्र के मध्य में समाहित चित्त हो विन्यस्त करे। ऐसे चक्र के चारों ओर आठ मुख वाली कुण्डली का निवास है ॥ ९-११ ॥

अष्टप्रकृतिरूपेण भोगेनावेष्ट्य वैष्णवी ।
ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्नायाः पिदधाति मुखेन वै ॥ १२ ॥

यह विष्णु देवताक कुण्डली आठ प्रकृति वाले भोग (= फन) से उस चक्र को घेरकर सुषुम्ना से जाने वाले ब्रह्मरन्ध्र को अपने मुख से आच्छादित किये हुये है ॥ १२ ॥

चक्रमध्ये अलम्बुसासुषुम्नयोः स्थितिः

अलम्बुसा सुषुम्ना च मध्ये चक्रस्य तिष्ठतः ।

अन्यासां द्वादशनाडीनां स्थानभेदाः

अरे प्राच्ये सुषुम्नायाः कुहूर्नाडी वसत्यसौ ॥ १३ ॥
अनन्तरारयुग्मे च वारुणा च यशस्विनी ।
दक्षिणारे सुषुम्नायाः पिङ्गला वर्तते क्रमात् ॥ १४ ॥
तदनन्तरयोः पूषा वर्तते च पयस्विनी ।
सुषुम्नापश्चिमे चारे स्थिता नाडी सरस्वती ॥ १५ ॥
शङ्खिनी चैव गान्धारी तदनन्तरयोः स्थिते ।
उत्तरे च सुषुम्नाया इडाख्या निवसत्यरे ॥ १६ ॥
अनन्तरं हस्तिजिह्वा ततो विश्वोदरा स्थिता ।
प्रदक्षिणक्रमेणैव चक्रस्यारेषु नाडयः ॥ १७ ॥
वर्तन्ते द्वादशस्वेता द्वादश ब्रह्मणः सुताः ।

अलम्बुसा और सुषुम्ना ये दो नाड़ियाँ चक्र के मध्य में रहती हैं। सुषुम्ना के तथा पूर्व वाले के मध्य अरों में कुहू नामक नाड़ी का निवास है। उसके बाद वाले अरे में यशस्विनी एवं वारुणा नाड़ी का निवास है। सुषुम्ना तथा दक्षिण वाले अरे में क्रमशः पिङ्गला का निवास है। पुनः उसके वाद वाले दो अरे में पयस्विनी तथा पूषा का निवास है। सुषुम्ना तथा पश्चिम वाले अरे के मध्य में सरस्वती नाड़ी का निवास है। उसके वाद दो अरों में शङ्खिनी तथा गान्धारा नाड़ी का निवास है। सुषुम्ना तथा उत्तर के अरे के मध्य में इड़ा नाम की नाड़ी है। उसके अनन्तर वाले अरे में हस्तिजिह्वा तथा विश्वोदरा का निवास है। इस प्रकार चक्र के द्वादशारों में दाहिने क्रमानुसार ये वारह नाड़ियाँ जो ब्रह्मदेव की कन्यायें कही जाती हैं स्थित हैं ॥ १३-१८ ॥

मुख्यानां चतुर्दशनाडीनां नामानि

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च सरस्वती ॥ १८ ॥
कुहूः पयस्विनी चैव वारुणा च यशस्विनी ।

विश्वोदरा हस्तिजिह्वा गान्धारी शङ्खिनी तथा ॥ १९ ॥
अलम्बुसा च पूषा च मुख्यास्त्वेताश्चतुर्दश ।

देहवर्तिनाडीसङ्ख्या

द्विसप्ततिसहस्त्राणि नाडीनां देहवर्तिनाम् ॥ २० ॥

मुख्यास्तिस्त्रो नाड्यः

तासु तिस्त्रो मुख्यतमाः सुषुम्नेडा च पिङ्गला ।

इड़ा, पिङ्गला सुषुम्ना, सरस्वती, कुहू, पयस्विनी, वारुणा, यशस्विनी, विश्वोदरा, हस्तिजिह्वा, गान्धारी, शङ्खिनी, अलम्बुसा तथा पूषा ये १४ नाड़ियाँ मुख्य नाड़ियाँ कही गई हैं । ऐसे तो शरीर में रहने वाली कुल ७२ हजार नाड़ियाँ कही गई हैं । जिसमें सुषुम्ना, इड़ा और पिङ्गला ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं ॥ १८-२१ ॥

तास्वपि सुषुम्ना मुख्यतमा

तासां सुषुम्ना मुख्या स्यादामूर्धान्तं व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

जीवस्य नाडीचक्रे भ्रमणम्

प्राणारूढो भवेज्जीवश्चक्रेऽस्मिन् भ्रमते सदा ।
ऊर्णनाभिर्यथा तन्तुपञ्जरान्तर्व्यवस्थितः ॥ २२ ॥

इन तीनों में भी सुषुम्ना मुख्य हैं जो मूर्धान्त चली गई है । यह जीव प्राणवायु पर सवार होकर इसी चक्र में सर्वदा घूमा करता है । जैसे मकड़ी अपने तन्तुपञ्जर में नियमतः चलती रहती है ॥ २१-२२ ॥

सुषुम्नाया मध्यमरन्ध्रस्य कुण्डल्या पिधानम्

पञ्चरन्ध्र्याः सुषुम्नायाश्चत्वारो रक्तपूरिताः ।
कुण्डल्या पिहितं शश्वद् ब्रह्मरन्ध्रं तु मध्यमम् ॥ २३ ॥

सुषुम्ना में पाँच छिद्र हैं जिसमें चार तो रक्त से परिपूर्ण हैं । बीच का छिद्र जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं वह कुण्डली से आच्छादित है ॥ २३ ॥

नाडीनां परिमाणनिरूपणम्

प्राच्यः पार्श्वः सुषुम्नाया ललाटान्तं समुच्छ्रितः ।
प्रतीच्यः कन्धरान्तस्तु द्वौ पार्श्वौ सव्यदक्षिणौ ॥ २४ ॥
आ पार्श्वशिरसः प्राप्तौ गुह्यमेतदुदाहृतम् ।

सुषुम्ना का पूर्वभाग ललाटान्त ऊँचा चला गया है । पश्चिमी भाग कन्धे के अन्त तक चला गया है । बायाँ और दाहिना भाग दोनों बगल से शिर पर्यन्त चला गया है । यह हमने गुह्य (गोपनीय) बात कही ॥ २४-२५ ॥

अलम्बुसाख्या नाडी स्यादापादान्तं व्यवस्थिता ॥ २५ ॥
आमेढ्रान्तं कुहूः प्राप्ता वारुणा विश्वदेहगा ।

आदक्षिणपदाङ्गुष्ठं सम्प्राप्ताथ यशस्विनी ॥ २६ ॥
प्राप्ता दक्षिणनासान्तं पिङ्गलाख्या तु नाडिका ।
पूषा पयस्विनी चैव दक्षिणाक्षिश्रुती गते ॥ २७ ॥

अलम्बुसा नाम की नाड़ी पैर के अन्त तक चली गई है । कुहू मेढ्रान्त तक तथा वारुणा चारों ओर शरीर में फैली है । यशस्विनी दाहिने पैर के अङ्गूठे तक और पिङ्गला नामक नाड़ी नासिका के दाहिने भाग तक एवं पूषा तथा पयस्विनी दाहिनी आँख तथा दाहिने कान तक गई हैं और सरस्वती नामक नाड़ी जिह्वा के मूलभाग पर्यन्त गई है ॥ २५-२८ ॥

जिह्वामूलमभिप्राप्ता नाडी नाम्ना सरस्वती ।
शङ्खिनी वामकर्णं च गान्धारी वामलोचनम् ॥ २८ ॥
वामघ्राणं गता नाडी इडा नाम्नेति विश्रुता ।
प्राप्ता वामपदाङ्गुष्ठं हस्तिजिह्वा तु नाडिका ॥ २९ ॥
विश्वोदरोदरं प्राप्ता प्रोक्ता नाडीगतिर्मया ।

शङ्खिनी बायें कान तक तथा गान्धारी बाईं आँख तक गई है । इडा नाम से प्रसिद्ध नाड़ी बाईं नासिका तक गई हुई है । हस्तिजिह्वा नामक नाड़ी बायें पैर के अङ्गूठे तक तथा विश्वोदरा उदर भाग तक गई हैं यहाँ तक हमने नाड़ियों की गति का वर्णन किया ॥ २८-३० ॥

इडापिङ्गलयोश्चन्द्रसूर्यावस्थितिः

इडायां वर्तते चन्द्रः पिङ्गलायां प्रभाकरः ॥ ३० ॥
द्वावेव कुरुतः कालं भुङ्क्ते तं ब्रह्मनाडिका ।

शारीरवायुवृत्तान्तकथनम्

श्रूयतां वायुवृत्तान्तः शरीरान्तरवस्थितः ॥ ३१ ॥

इड़ा में चन्द्रमा का निवास है तथा पिङ्गला मे सूर्य का निवास है । यही दो समय का निर्माण करते हैं और ब्रह्मनाड़ियाँ उसका भोग करती हैं । अब शरीर के भीतर रहने वाले वायु का वृत्तान्त सुनिये ॥ ३०-३१ ॥

शरीरे दश वायवः

प्राणापानसमानाश्चाप्युदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ३२ ॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय ये दश वायु शरीर के भीतर सञ्चरण करते हैं ॥ ३२ ॥

प्राणादिवायूनां स्थाननिरूपणम्

सदा निवसति प्राणो नाभिचक्रे समीरणः ।
आस्यनासिकयोर्मध्ये हृदि प्राणः प्रकाशते ॥ ३३ ॥

अपानो वसति प्रायो गुदमेढ्रोरुजानुषु ।
उदरे वृषणे कट्यां जङ्घानाभ्योः प्रदीपवत् ॥ ३४ ॥
गुदाग्न्यगारयोस्तिष्ठन् मध्येऽपानः प्रकाशते ।

प्राणवायु नियमतः नाभिचक्र में निवास करता है । वह मुख, दोनों नासिका तथा हृदय मे प्रकाशित होता है । गुदा, मेढ्र, दोनों ऊरु तथा दोनों जानुओं में अपान का निवास है जो उदर, वृषण, कटि, जङ्घा तथा नाभि स्थान में प्रदीपवत् प्रकाश करता है । गुदा तथा उदराग्नि में रहता हुआ अपान मध्य में प्रकाश फैलाता है ॥ ३३-३५ ॥

व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च कृकाट्यां गुल्फयोरपि ॥ ३५ ॥
घ्राणे गले च स्फिग्देशे वसत्यत्र न संशयः ।
उदानः सर्वसंधिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि ॥ ३६ ॥
समानः सर्वगात्रेषु सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः ।

व्यान श्रोत्र तथा आँख के मध्य में, कृकाटी, दोनों गुल्फ, घ्राण, गला तथा स्फिग (नितम्ब) देश में निवास करता है, इसमें संशय नहीं । समस्त पैर और हाथ की सन्धियों में उदान रहता है । समान सारे शरीर को व्याप्त कर व्यवस्थित रूप में निवास करता है ॥ ३५-३७ ॥

प्राणादीनां वृत्तिनिरूपणम्

निश्वासोच्छ्वासकादीनि प्राणकर्म इतीष्यते ॥ ३७ ॥
हानोपादानकर्मैव व्यानकर्मेति चेष्यते ।
उदानकर्म तत् प्रोक्तं देहस्योन्नयनादिकम् ॥ ३८ ॥
पोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्तितम् ।
उद्गारादिगुणो यस्तु नागकर्मेति चेरितम् ॥ ३९ ॥

निश्वास (श्वास का नीचे आना) उच्छ्वास (श्वास का ऊपर जाना) ये प्राण के कर्म हैं । ग्रहण तथा त्याग व्यान के कर्म हैं । उदान का कर्म वह है जिससे शरीर चलता है ऊपर उठता है । शरीर पोषणादि समान कर्म है । उद्गार आदिगुण (डकार निकालना) यह नाग कर्म कहा गया है ॥ ३७-३९ ॥

निमीलनादि कूर्मस्य क्षुतं कृकरकस्य च ।
देवदत्तस्य देवर्षे तन्द्रीकर्मेति चेरितम् ॥ ४० ॥
धनञ्जयस्य शोफादि सर्वकर्म प्रकीर्तितम् ।
एवं वायुगतिः सर्वा कर्म तेषां च कीर्तितम् ॥ ४१ ॥

निमीलन (बन्द करना) यह कूर्म का कार्य है तथा छींकना कृकर का काम है । देवदत्त का काम जँभाई लेना है । धनञ्जय का काम शरीर में शोफ उत्पन्न करना है । इस प्रकार सभी वायु का कार्य हमने कहा । साथ ही साथ वायु जिस प्रकार शरीर में चलते हैं, उसे भी कहा ॥ ४०-४१ ॥

नाडीशोधनविधिः

ततश्च सर्वनाडीनां कुर्याच्छोधनमात्मवान् ।

तच्छोधनप्रकारः

इडया वायुमापूर्य बाह्य षोडशमात्रकैः ॥ ४२ ॥
धारयन्नुदरे वायुं मात्रा द्वात्रिंशतं ततः ।
स्मरेत् स्वमण्डले वह्निं तत्र रेफं सबिन्दुकम् ॥ ४३ ॥
नासाग्रे शशिनो बिम्बं स्मरेत् पीयूषवर्षिणम् ।
स्मृत्वा चन्द्रे वकारं च सबिन्दुं रेचयेत् ततः ॥ ४४ ॥
पुनः पिङ्गलयापूर्य यथोक्तेनैव वर्त्मना ।
धृत्वा च मातरिश्वानमिडया रेचयेत् पुनः ॥ ४५ ॥
एवं त्रिसन्ध्यां त्रिः कृत्वा कुर्यान्नित्यं समाहितः ।

उक्तक्रमेण शोधयतो मासत्रयेण नाडीशुद्धिसिद्धिः

एवं नियमयुक्तस्य कुर्वतः सर्वनाडयः ॥ ४६ ॥
मासत्रयेण शुद्धाः स्युरिति योगविदो विदुः ।

इसलिए आत्मावान् पुरुष को उचित है कि वह अपनी सभी नाडियों का शोधन करे। उनकी शुद्धि का प्रकार इस प्रकार है—पोडश मात्रात्मक वाह्य वायु द्वारा इडा नाड़ी को परिपूर्ण करे। फिर ३२ मात्रात्मक काल पर्यन्त उस वायु को उदर में धारण करे और अग्निमण्डल मे 'रं' इस अग्नि बीज का स्मरण करे। फिर नासाग्रभाग में पीयूषवर्षी चन्द्र विम्ब का स्मरण कर 'वं' इस बीज का जप करते हुये उस वायु का त्याग कर देवे। फिर उसी प्रकार कही गई विधि के अनुसार पिङ्गला से पूर्ण कर उतने ही काल तक उसे भीतर रख कर ईडा नाड़ी द्वारा उसे त्याग देवे। इस प्रकार तीनों सन्ध्या काल में तीन-तीन प्राणायाम समाहित चित्त से करे। इस प्रकार नियमपूर्वक ऐसा करने वाले पुरुष की समस्त नाडियाँ तीन मास में शुद्ध हो जाती है, ऐसा योगियों का कहना है ॥ ४२-४७ ॥

ततो वायुजयः

ततश्च मरुतां कुर्युर्विजयं देहवर्तिनाम् ॥ ४७ ॥

वायुजयान्मनसः स्थैर्यम्

ततश्च वायवो देहे यत्र यत्र वसन्ति वै ।
तत्र तत्र मनःस्थैर्यं वह्निना सह नारद ॥ ४८ ॥

इसके बाद शरीर में रहने वाले वायु पर विजय प्राप्त करे। उसकी विधि इस प्रकार है—इस शरीर में जहाँ-जहाँ वायु का निवास कहा गया है, हे नारद ! वहाँ पर अग्नि बीज (रं) का स्मरण करते हुये मन को स्थिर रखने का प्रयास करे ॥ ४७-४८ ॥

प्राणायामविधिः

प्राणायामं ततः कुर्यात् सर्वपापप्रणाशनम् ।

शिखादिस्थानेषु मनोः षडक्षरन्यासः

शिखास्थाने नाभिचक्रे हृदयाम्बुरुहे ततः ॥ ४९ ॥
कण्ठकूपे भ्रुवोर्मध्ये जिह्वामूले तथैव च ।
मनोः षडक्षराण्येषु क्रमेणैव विचिन्तयेत् ॥ ५० ॥

इसके बाद सारे पापों का नाश करने वाले प्राणायाम को प्रारम्भ करे । शिखास्थान में, नाभिचक्र में, हत्कमल में, कण्ठकूप में, दोनों भ्रुवों में तथा जिह्वा के मूल में इन छः स्थानों में षडक्षर मन्त्र का क्रमशः स्मरण करे ॥ ४९-५० ॥

प्राणायामप्रकारः

वायुं षोडशमात्राभिरिडयापूर्य चिन्तयेत् ।
हृन्मध्ये परमात्मानं चक्ररूपिणमव्ययम् ॥ ५१ ॥
यावच्छक्ति जपेन्मन्त्रमिमं सौदर्शनं स्मरन् ।
पुनः षोडशमात्राभी रेचयेत् पिङ्गलाह्वया ॥ ५२ ॥
अनया पुनरारोप्य धृत्वा चेतरया त्यजेत् ।
पूरणे कुम्भके चैव रेचने प्रणवं जपेत् ॥ ५३ ॥
दश पञ्चाशतं चैव चतुर्दश शतं क्रमात् ।
गायत्रीं यदि वा जप्त्वा कुर्यादुक्तेन वर्त्मना ॥ ५४ ॥
एवं प्रतिदिनं कुर्यात् प्राणायामांस्तु षोडश ।
एते पुनन्ति मासेन महापातकिनं नरम् ॥ ५५ ॥

षोडश मात्रात्मक काल पर्यन्त वायु को ईडा से परिपूर्ण कर हृदय के मध्य में अव्यम चक्र स्वरूप परमात्मा का स्मरण करे और अपनी शक्ति के अनुसार इस सुदर्शन मन्त्र का जप करे । तदनन्तर षोडशमात्रात्मक काल पर्यन्त पिङ्गला नाडी द्वारा उसे छोड़ता रहे । इसी प्रकार पिङ्गला से वायु पूर्ण कर ईडा नाडी से उसे त्यागे । वायु को पूर्ण करते समय एवं उसे रोकते समय तथा रेचन करते समय प्रणव का जप करे । प्राणायाम की यह क्रिया पाँच सौ अथवा चौदह सौ गायत्री जप करने के पश्चात् उक्त प्रकार से करे । इस प्रकार प्रतिदिन १६-१६ प्राणायाम करे । तो साधक कृत ये प्राणायाम एक महीने के भीतर महापातकी मनुष्यों को भी पवित्र कर देते हैं ॥ ५१-५५ ॥

प्रत्याहारनिरूपणम्

प्रत्याहारं ततः कुर्यादङ्गैः पञ्चभिरन्वितम् ।
स्वभावेनेन्द्रियार्थेषु प्रवृत्तं मानसं बुधैः ॥ ५६ ॥
तद्दोषदर्शनात् तेभ्यः समाहृत्य बलेन तु ।
निवेशनं भगवति प्रत्याहार इति स्मृतः ॥ ५७ ॥

प्राणायाम के अनन्तर पाँच अङ्गों से युक्त प्रत्याहार करे । बुद्धिमान् पुरुष स्वभाव से इन्द्रियार्थों में (इन्द्रियों के तत्तद्विषय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) प्रवृत्त मन को उन

विषयों में दोष दर्शन करते हुये उससे अलग हटावे। इस प्रकार विषयों से मन को पृथक् हटा कर उसे भगवान् में लगाना ही प्रत्याहार है ॥ ५६-५७ ॥

धारणानिरूपणम्

विषयेषु च वैराग्यादभ्यासाद् गुणदर्शनात्।
परमात्मनि संरोधो मनसो धारणा स्मृता ॥ ५८ ॥

मन से विषयों में वैराग्य का अभ्यास करे। परमात्मा में गुणदर्शन करे। तदनन्तर उसे परमात्मा में लगावे तब मन की इसी प्रक्रिया को विद्वज्जन धारणा कहते हैं ॥ ५८ ॥

ध्याननिरूपणम्

तदेवं धृतचित्तस्तु चक्ररूपं जनार्दनम्।
ध्यायीत नियतस्तस्मिन् युञ्जानः प्रथमं मनः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार धारणा द्वारा चक्ररूपी भगवान् जनार्दन को स्मरण करते हुये पहले उसमें अपना मन लगाकर नियमपूर्वक ध्यान करे ॥ ५९ ॥

वर्णाश्रमधर्माणां ध्यानेतिकर्तव्यतात्वम्

रमणीये शुचौ देशे विविक्ते सजले वने।
वर्णाश्रमोचिते धर्मे वर्तमानः प्रसन्नधीः ॥ ६० ॥
शान्तः सर्वगुणोपेतः सममासनमास्थितः।
ऋजुकायः स्वनासाग्रन्यस्तदृग् भक्तिमान् हरौ ॥ ६१ ॥
प्राणायामोत्थितेनैव वायुना साग्निना मुखम्।
कुण्डल्यास्तु विनिर्भिद्य सुषुम्नामध्यवर्तिना ॥ ६२ ॥
विकास्य हृदयाम्भोजे तदाकाशे शिखास्पदे।
स्फुरद्वह्निशिखामध्ये चिन्तयेदद्भुताकृतिम् ॥ ६३ ॥

अब परमात्मा के ध्यान की विधि कहते हैं—रमणीय पवित्र स्थान में जहां बिल्कुल एकान्त हो अथवा किसी जलाशय के सन्निकट अथवा वन में वर्णाश्रमोचित धर्म में स्थित रहने वाला प्रसन्न चित्त, शान्त तथा सभी गुणों से संयुक्त रहने वाला साधक सम आसन पर बैठकर शरीर के मेरु दण्ड को बिल्कुल सीधा रख कर विष्णु में भक्ति रखते हुये अपने नेत्रों को नासाग्रभाग में लगावे। फिर प्राणायाम के द्वारा उठे हुए अग्नि सहित वायु से जो सुषुम्ना के मध्य भाग से बह रहा हो उससे कुण्डलिनी का मुख भेदन करे पुनः उसे फैला कर अग्निज्वाला से देदीप्यमान हृत्कमल रूपी आकाश में अद्भुत आकृति का ध्यान करे। अब उस ध्येय के अद्भुत आकार का वर्णन करते हैं ॥ ६०-६३ ॥

ध्यानालम्बनभूतध्येयस्वरूपनिरूपणम्

पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशाढ्यं ज्वलज्ज्वलनतेजसम्।
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीभीमदर्शनम् ॥ ६४ ॥
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशैरूर्ध्वकेशैर्विराजितम्।

विचित्रानन्दमाणिक्यमुक्ताढ्यमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ६५ ॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशमणिताटङ्कमण्डितम् ।
भुजाभिरष्टभिर्युक्तं रत्नाम्बरधरं विभुम् ॥ ६६ ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गमुसलैः परमायुधैः ।
पाशाङ्कुशाम्बुजैरन्यैरुपेतं परदारुणैः ॥ ६७ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यचन्दनचर्चितम् ।
हारकेयूरकटककाञ्चीमञ्जीरमण्डितम् ॥ ६८ ॥
अन्यैश्च विविधैश्चित्रैर्भूषणैरुपशोभितम् ।
पद्मासनस्थं भक्तानां विश्वेषामभयप्रदम् ॥ ६९ ॥
एवं ध्यायन् विमुच्येत मुक्तः सकलकिल्बिषैः ।

पीले-पीले आँखों वाले और पीले-पीले केशों वाले, जलती हुई अग्नि के समान तेज वाले, बड़े-बड़े दाँतों से भयङ्कर मुख वाले, भृकुटी की कुटिलता से महाभयङ्कर दिखाई पड़ने वाले, बिजली के समान पीले-पीले ऊपर की ओर उठे हुये केशों से विराजमान, विचित्रानन्द से परिपूर्ण, मुक्ता और मणियों से जटित मुकुट धारण किये हुये, पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मणि का कुण्डल धारण किये हुये, आठ भुजाओं से युक्त एवं रक्त वर्ण का वस्त्र धारण किये, शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग एवं मुशल आदि श्रेष्ठ आयुधों से तथा शत्रु विनाशकारी पाश, अङ्कुश एवं कमल से युक्त दिव्य माल्याम्बर धारण किये हुये, दिव्य चन्दन चर्चित, हार, केयूर, कटक, काञ्ची तथा मञ्जीर से मण्डित और इसी प्रकार अन्यान्य अनेक विचित्र आभूषणों से विभूषित पद्मासन से विराजमान अपने समस्त भक्तो को अभय प्रदान करने वाले ऐसे चक्राकार विष्णु का ध्यान कर मनुष्य अपने समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है ॥ ६४-७० ॥

समाधिनिरूपणम्

तदेवं स्मृतिसन्तानजनितोत्कर्षणं क्रमात् ॥ ७० ॥
अर्थमात्रावभासं तु समाधिं योगिनो विदुः ।

इस प्रकार के निरन्तर स्मरण से क्रमशः उत्कर्ष प्रदान करने वाला तथा अर्थ मात्र से अवभासित होने वाला विशेष ध्यान समाधि कहा जाता है, ऐसा योगियों ने कहा है ॥ ७०-७१ ॥

समाधिनिष्ठस्य महिमानुवर्णनम्

ततः समाधिमास्थाय तन्मयत्वमुपागतः ॥ ७१ ॥
तस्य प्रभावमखिलमश्नुते शक्तिशालिनः ।
अणिमादिगुणाः सर्वे भवन्त्यस्य महात्मनः ॥ ७२ ॥

समाधिनिष्ठ साधक की महिमा—इस प्रकार समाधि में लीन हो कर तन्मयता को प्राप्त हुआ साधक उस शक्तिशाली चक्र के सम्पूर्ण प्रभावों का भोक्ता बन जाता है और उस महात्मा में अणिमादि गुण अपने आप आ जाते हैं ॥ ७१-७२ ॥

निःसहायः सपत्नानामनीकानि बहून्यपि ।
हिनस्त्येष यथा चक्रं चक्रं दैतेयरक्षसाम् ॥ ७३ ॥
मनीषितानि सर्वाणि स्वयमस्योपयान्ति वै ।
सिद्धा विद्याधरा यक्षाः कैंकर्यं तस्य कुर्वते ॥ ७४ ॥
देवाश्च ऋषयः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
तदाज्ञाकारिणः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ७५ ॥
निखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गैकहेतु-
र्भवति सकलवेत्ता सर्वदृक् सर्वशक्तिः ।
अभिमतबहुरूपो दैत्यरक्षांसि निघ्नन्
परिहृतपरिवारो वर्तते पूर्णकामः ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नाडीशुद्धिवायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः १९४८ ॥

* * *

बिना किसी की सहायता के अपने शत्रुओं की बहुत सी सेना का विनाश कर देता है जिस प्रकार अकेला चक्र अनेक दैत्यों एवं राक्षसों का विनाश कर देता है । ऐसे समाधिनिष्ठ पुरुष के सभी अभिलषित पदार्थ स्वयं उपस्थित हो जाते हैं । सिद्ध, विद्याधर तथा यक्ष उसके आज्ञाकारी हो जाते हैं । सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराओं के समूह, पिशाच, उरग और राक्षस भी उसके वशवर्त्ती हो जाते हैं । वह सारे संसार को जन्म देने वाला, उसे विनष्ट करने वाला, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् हो जाता है । सारे लोग उसके अनुरूप हो जाते हैं तथा वह दैत्यों एवं राक्षसों का विनाश कर डालता है । उसका कोई परिवार तो नहीं होता पर वह पूर्णकाम अवश्य बन जाता है ॥ ७१-७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नाडीशुद्धि-वायुजययोगाङ्गप्राणायामादिनिरूपण नामक बत्तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३२ ॥

* * *

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मणिशेखरोपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का मात्र एक बार ध्यान करने पर अनेक जन्म के करोड़ पाप समूह विनष्ट हो जाते हैं, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

उक्तार्थानुवादः

नारदः—

भगवन् कथितं सर्वं स्वरूपं च गुणास्तथा ।
परिवारास्तथा मन्त्राः शस्त्रैरस्त्रैश्च दैवतैः ॥ १ ॥
शक्तिभिर्मण्डलैश्चित्रैः पद्मैर्बहुविधैरपि ।
एतैर्विशिष्टमाख्यातं यन्त्ररूपमनुत्तमम् ॥ २ ॥
सर्वेषामेव जन्तूनां वर्णानां परमेश्वर ।
क्षत्रियस्य विशेषेण रक्षार्थं यन्त्रमीरितम् ॥ ३ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने सुदर्शन का स्वरूप, गुण, परिवार मन्त्र तथा शस्त्रास्त्र देवता शक्ति मण्डल से विचित्र एवं अनेक प्रकार के पद्मों से युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ यन्त्र का आख्यान किया । इतना ही नहीं, हे परमेश्वर ! आपने सभी जन्तुओं के लिए विशेष कर क्षत्रिय जाति की रक्षा के लिए उत्तम यन्त्र का निरूपण किया ॥ १-३ ॥

सुदर्शनप्रभावविषयकस्त्रिधा प्रश्नः

एतस्य यन्त्रराजस्य महिमा कथितः पुरा ।
प्रभावश्चक्ररूपस्य देवस्य किमयं स्मृतः ॥ ४ ॥
सुदर्शननृसिंहस्य किमु किं परिवारजः ।
तमिमं संशयं छिन्धि सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो ॥ ५ ॥

आपने पहले इस यन्त्रराज की महिमा कही है । क्या यह चक्र सुदर्शन देव का प्रभाव है? अथवा सुदर्शन नृसिंह दोनों का प्रभाव है? अथवा समस्त परिवार समूह का प्रभाव है? हे प्रभो ! यतः आप सर्वज्ञ हैं अतः मेरे इस संशय को दूर करिए ॥ ४-५ ॥

विस्तरेण तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

सुदर्शनप्रभावोऽयं संक्षेपात् कथितो मया।
विस्तारमस्य देवर्षे कथ्यमानमिमं शृणु॥ ६ ॥
सा भूमानं प्रति प्रायो महतां परिवारता।
न चेद्भूमास्य नास्त्येव परिवार्यत्वसम्भवः॥ ७ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—मैंने संक्षेप में कहा है कि यह सब सुदर्शन का प्रभाव है। अब हे देवर्षे! मैं उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ आप उसे सुनिए॥ ६ ॥

जो भूमा होता है उसी के प्रति समस्त महान् परिवार बन जाते है। यदि कोई भूमा नही है तो उसके परिवारता की सम्भावना भी नहीं है॥ ७ ॥

सर्वस्यापि सुदर्शनात्मकत्वम्

ततश्चक्रमयं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।

सुदर्शनस्यैव कालचक्रात्मकत्वम्

चक्रात्मानमनाद्यन्तं कालं प्रथमतः शृणु॥ ८ ॥

इसलिए जगत् के सभी स्थावर जङ्गम चक्रमय हैं। उनमें भी कालचक्र सर्वश्रेष्ठ है, अनादि है और अनन्त है उसे सुनिए॥ ८ ॥

कालचक्रस्वरूपनिरूपणम्

त्रिनाभियुक्तं षण्नेमि पञ्चारं चक्रमव्ययम्।
संवत्सरमयं यत् तत् कालचक्रमिति स्मृतम्॥ ९ ॥

तीन नाभि वाला छः नेमियों से युक्त और पाँच अरों वाला चक्र अव्यय (अविकारी) हैं। संवत्सरमय होने के कारण उसे कालचक्र भी कहते हैं॥ ९ ॥

सर्वस्यापि कालचक्रवशवर्तित्वम्

तद्वशे वर्तते विश्वं चेतनाचेतनात्मकम्।

परमात्मा कालचक्रप्रवर्तकः

परिवर्तयते देवस्तदेतच्चक्ररूपधृत्॥ १० ॥

यह सारा चेतना चेतनात्मक जगत् उसी काल चक्र के आधीन है। वही काल चक्र का रूप धारण कर संसार को ऊपर नीचे परिवर्त्तित करता रहता है॥ १० ॥

जगच्चक्रनिरूपणम्

अव्यक्तादिविशेषान्ततत्त्वरूपैररैर्वृतम्।
चतुर्विंशतिसङ्ख्याकैः पुरुषात्मकनेमियुक्॥ ११ ॥

परमात्मनस्तत्प्रेरकत्वम्

जगच्चक्रमिति ख्यातं तच्च प्रेरयति स्वयम्।

परमात्मनो नाभिचक्रप्रेरकत्वम्

स्थीयते द्वादशारेण नाभिचक्रेण देहिनः ॥ १२ ॥
शरीरं तच्च तेनैव प्रेर्यते चक्ररूपिणा ।

अव्यक्त से लेकर विशेष पर्यन्त २४ तत्त्वात्मक अरों से युक्त जो पुरुषात्मकनेमि से जुड़े हुये हैं वह दूसरा संसार चक्र है । इस जगच्चक्र को स्वयं परमात्मा प्रेरित करते हैं । वह समस्त प्राणियों में द्वादशार युक्त नाभिचक्र के रूप में प्रतिष्ठित है, जो जीवमात्र के शरीर में बारह अरों वाले नाभिचक्र के रूप में प्रतिष्ठित है, वही परमात्मा स्वरूपी चक्र सारे शरीर का प्रेरक है ॥ ११-१३ ॥

परमात्मनः सर्वप्रेरकत्वनिगमनम्

अतः प्रेरयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः ॥ १३ ॥
सुदर्शनवपुः श्रीमाननादिप्रभवाप्ययः ।

इसलिए वह परमात्मा जनार्दन ही सुदर्शन रूप शरीर से इस जगत् के स्रष्टा, स्थापक तथा संहारकर्त्ता बनकर सबको प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं ॥ १३-१४ ॥

तस्यैव जगत्सर्गस्थितिसंहारहेतुत्वम्

ज्ञानस्वरूपो भगवान् पूर्णषाड्गुण्यविग्रहः ॥ १४ ॥
स एव सर्वभूतानां स्रष्टा पालयितान्तकः ।

तस्यैव शिवरूपधरस्य शैवैराराध्यत्वम्

स एव शिवरूपेण शैवैराराध्यते प्रभुः ॥ १५ ॥

वही भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं, पूर्णषाड्गुण्य विग्रहवान् हैं, वही समस्त प्राणियों के स्रष्टा, पालन करने वाले एवं संहारकर्त्ता हैं और वही भगवान् शिवरूप में शैवों के द्वारा आराधित किये जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

तस्यैव ब्रह्मरूपेण जगत्स्रष्टृत्वम्

स एव ब्रह्मरूपेण सृजत्येतच्चराचरम् ।

तस्यैव स्वांशरूपेण जगत्पालकत्वम्

स एव पालयत्येतद् विष्णुर्भूत्वा जनार्दनः ॥ १६ ॥

वही प्रभु ब्रह्म बन कर इस चराचर जगत् की सृष्टि करते हैं और वही जनार्दन विष्णु बन कर इसका पालन करते हैं ॥ १६ ॥

तस्यैव रुद्ररूपेण संहर्तृत्वम्

स एव रुद्ररूपेण संहरत्यखिलं जगत् ।

तस्यैव बुद्धरूपत्वम्

बुद्धात्मना च बौद्धानां स एव जगति स्थितः ॥ १७ ॥

वही रुद्र बनकर सारे संसार के संहारकर्त्ता हैं और बौद्धों के लिए बुद्ध बनकर इस जगत् में स्थित रहते हैं ॥ १७ ॥

तस्यैव दिगम्बररूपत्वम्

स एव शाम्बराणां च निरावरणरूपधृत् ।

तस्यैव जिनरूपत्वम्

स एव चार्वाकमते जिनेश्वरवपुर्धरः ॥ १८ ॥

वही शाम्बरों के लिए आवरणरहित नङ्गे रूप को धारण करता हैं और वही चार्वाकों के मत से जिनेश्वर का रूप धारण कर स्थित हैं ॥ १८ ॥

तस्यैव यज्ञपुरुषरूपत्वम्

स एव याज्ञिकानां च यज्ञपूरुषसंज्ञकः ।
मीमांसकैः स एवायमुपास्यत्वेन चोद्यते ॥ १९ ॥

याज्ञिकों के लिए वही यज्ञस्वरूप हैं जो मीमांसकों के मत से सर्वथा उपास्य हैं ॥ १९ ॥

कापिलमते तस्यैव पुरुषरूपत्वम्

कापिलैः पुरुषत्वेन स एवाख्यायते विभुः ।

सर्वस्वरूपत्वात् तस्यैव सर्वफलप्रदत्वम्

उपास्यत्वेन ये प्राहुर्यं यं तत्तद्वपुर्धरः ॥ २० ॥
तेषां मनीषितं सर्वं स एवाशु प्रयच्छति ।

देवादिरूपधारणादपि चक्ररूपधारणं भगवतः प्रियतमम्

एतेषामेव देवानां स्वतनूनां जनार्दनः ॥ २१ ॥
परं प्रीणाति भगवांश्चक्ररूपधरो हरिः ।

तत्र हेतुनिरूपणम्

स्वसमाश्रितरक्षायां परेषां च निबर्हणे ॥ २२ ॥

कपिल (सांख्य) मत वाले उसी को पुरुष रूप में प्रतिपादन करते हैं । इस प्रकार एक उसी तत्त्व को भिन्न-भिन्न रूपों से लोगों ने अपना उपास्य स्वीकार किया है और वही उपास्य रूप से तत्तच्छरीर धारण कर अपने उपासकों के सारे मनोरथ को पूर्ण करते हैं । किन्तु इन-इन देवताओं की अपेक्षा उन जनार्दन को चक्ररूप धारण कर अपने आश्रितों की रक्षा तथा शत्रुओं के निबर्हण (= दमन) करने में उन्हें अतीव प्रसन्नता होती है ॥ २०-२२ ॥

इदमेव वपुर्धत्ते सुदर्शनमयं हरिः ।
रहस्यमेतत् कथितं भक्तोऽसीति तपोधन ॥ २३ ॥

हे तपोधन ! विष्णु को सुदर्शनमय स्वरूप धारण करने का यही रहस्य है । आप हमारे भक्त हैं इसलिए यह सारा रहस्य हमने आपसे कहा ॥ २३ ॥

तत्रेतिहासोदाहरणम्

पुरावृत्तं सुरमुने शृणुष्व गदतो मम ।
दुर्धर्षो नाम राजर्षिर्धार्मिको दृढविक्रमः ॥ २४ ॥

अब हे मुने ! मैं पूर्व का जो इतिहास आपसे कह रहा हूँ उसे सुनिए । दुर्धर्ष नाम के एक राजर्षि थे जो बड़े धार्मिक और पराक्रमी थे ॥ २४ ॥

प्रमगन्दसुतः श्रीमान्नैचाशाखपुरे वसन् ।
धर्मतः पालयामास सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ २५ ॥

उनके पिता का नाम प्रमगन्द था, वह नैचाशाख पुर में रहते हुये धर्मपूर्वक सप्तद्वीपवती पृथ्वी का पालन करते थे ॥ २५ ॥

वत्सला नाम तस्याभून्महिषी वरवर्णिनी ।
सा तस्य जनयामास मणिशेखरमात्मजम् ॥ २६ ॥

उन दुर्धर्ष की पत्नी का नाम वत्सला था जो अत्यन्त रूपवती थी उसने दुर्धर्ष द्वारा मणिशेखर नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २६ ॥

सोऽप्यवस्थामतिक्रम्य प्रथमां मणिशेखरः ।
रमणीयाकृतिः शूरः प्राप्तविद्यः परंतपः ॥ २७ ॥
सम्प्राप्तयौवनः श्रीमान् प्राचीं भार्यामविन्दत ।
सर्वलोकाधिपत्यार्हमेनं दुर्धर्षणः सुतम् ॥ २८ ॥
निधाय राज्ये तत्रैव जगाम तपसे वनम् ।
पितेव पालयामास स समुद्रवतीं महीम् ॥ २९ ॥

धीरे-धीरे वह मणिशेखर अपनी बाल्यावस्था का अतिक्रमण कर आकृति से सुन्दर, वीर, विद्वान् तथा शत्रुओं को जीतने वाला हुआ ॥ २७ ॥

युवावस्था प्राप्त कर उसने प्राची नाम की भार्या प्राप्त की । तदनन्तर दुर्धर्ष अपने पुत्र को राज्य पालन के योग्य देख कर उसे सारा राज्य प्रदान कर स्वयं तपस्या के लिए वन चले गये । मणिशेखर भी जिस प्रकार पिता पुत्र का पालन करता है उसी प्रकार अपनी प्रजाओं का पालन करने लगा ॥ २८-२९ ॥

प्राच्यां पुत्राः समभवंस्तस्य सप्त महात्मनः ।
पालयत्यवनीं तस्मिन् निखिलां मणिशेखरे ॥ ३० ॥
तस्मिन् काले समभवत् सर्वप्राणिभयङ्करः ।
विकटाक्ष इति ख्यातो ब्रह्मदत्तवरो बली ॥ ३१ ॥
महासुरेण तेनैव पीडिता सकला मही ।
तत्पुत्रैस्तस्य पौत्रैश्च प्रपौत्रैः पूरिता मही ॥ ३२ ॥

उस महात्मा राजा को प्राची नामक पत्नी से सात पुत्र उत्पन्न हुये। इस प्रकार मणिशेखर के सारी पृथ्वी के पालन करने में संलग्न रहने पर, सम्पूर्ण प्राणियों को भय देने वाला, ब्रह्मदेव द्वारा वरदान प्राप्त कर, महा बलवान् विकटाक्ष नामक महान् असुर हुआ, जो सारी पृथ्वी को दुःख देने लगा। उसके पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रों से पृथ्वी परिपूर्ण हो गयी ॥ ३०-३२ ॥

तेऽसुराः सर्वभूतानि पीडयन्ति स्म भीषणाः।
विकटाक्षसमाज्ञप्ता भीमरूपाः सहस्रशः॥ ३३ ॥
कांश्चिद्विद्रावयन्ति स्म कांश्चिज्जघ्नुस्तपस्विनः।
द्विजातीनां मुनिश्रेष्ठ यज्ञव्यासेधमाचरन्॥ ३४ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां तत्तदाश्रमवासिनाम्।
अबाधिषत कर्माणि विहितानि यथातथम्॥ ३५ ॥

वे सभी असुर महा भयानक थे और सारे प्राणिमात्र को दुःख देते रहते थे इस प्रकार विकटाक्ष की आज्ञा से सहस्रों राक्षस महाभयानक रूप धारण कर किसी को अपने स्थान से भगा देते थे। किसी का वध कर देते थे। द्विजातियों के यज्ञ के प्रारम्भ होने पर अधम आचरण करते थे। सभी वर्णों के सभी आश्रमवासियों के तत्तद्विहित कर्मों में बाधा करते रहते थे ॥ ३३-३५ ॥

पृथिव्यां यानि रत्नानि धनानि विपुलानि च।
स्वस्मै प्रदापयामास विकटाक्षो महासुरः॥ ३६ ॥

पृथ्वी मण्डल में जितने भी रत्न और जितने भी विपुल धन थे उन्हें आहृत कर वह विकटाक्ष अपने सगे सम्बन्धियों को प्रदान कर देता था ॥ ३६ ॥

ततः सम्पीडिताः सर्वाः प्रजास्तेन दुरात्मना।
व्यजिज्ञपंस्तद् वृत्तान्तं मणिशेखरभूभुजे॥ ३७ ॥

तदनन्तर उस दुरात्मा द्वारा सतायी जा रही सभी प्रजाओं ने अपना सारा दुःख मणिशेखर राजा से निवेदन किया ॥ ३७ ॥

क्रोधेन महताविष्टो राजा राजीवलोचनः।
अभियोद्धुं मनश्चक्रे विकटाक्षं महासुरम्॥ ३८ ॥

यह सुनकर कमलनेत्र महात्मा मणिशेखर राजा ने क्रोध में भरकर महाभयानक उस विकटाक्ष महासुर से युद्ध करने का विचार किया ॥ ३८ ॥

समानीय ततः सर्वान् सैनिकान् समनह्यत।
तस्य सन्नाहमालोक्य मन्त्रिणस्तस्य सङ्गताः॥ ३९ ॥

उस राजा ने अपने सारे सैनिकों को बुलाया और सबको युद्ध में तैयार होने की आज्ञा दी। उसकी इस प्रकार की युद्ध की तैयारी देखकर मन्त्रीगण वहाँ उपस्थित हो गए ॥ ३९ ॥

इदमूचुरवध्यत्वं तस्य सेनाभियोगतः ।
पुरा दुरात्मावृणुत तपःसन्तोषिताद्विधेः ॥ ४० ॥
ये मामभिमुखायाताः शत्रवस्तैरवध्यताम् ।
एवमस्त्विति तेनोक्ते विकटाक्षोऽतिदर्पितः ॥ ४१ ॥

उन लोगों ने राजा के पास जाकर सेना के द्वारा उसका अवध्यत्व सूचित किया और यह भी कहा कि उस दुरात्मा ने तपस्या द्वारा ब्रह्मदेव को प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त किया है कि जो भी शत्रु युद्धस्थल में मेरे सामने आवे, उससे मेरा वध न हो । ब्रह्मदेव के द्वारा 'एवमस्तु' ऐसा कहे जाने पर वह विकटाक्ष अत्यन्त अहङ्कार से परिपूर्ण हो गया है ॥ ४०-४१ ॥

ततः प्रभृत्यजय्योऽभूच्छत्रुभिः सम्मुखागतैः ।
तस्मात् त्वमपि संनाहमुपसंहर तं प्रति ॥ ४२ ॥

उसी वरदान के प्रभाव से वह सामना करने वाले अपने शत्रुओं के द्वारा अजेय है । इसलिए हे राजन् ! आप भी उससे लड़ने की सारी रण सज्जा बन्द करिए ॥ ४२ ॥

ततः स शुश्रुवान् वाक्यं मन्त्रिभिः समुदीरितम् ।
ततः संग्रामसंनाहाद् विरराम महीपतिः ॥ ४३ ॥

जब मन्त्रियों के द्वारा राजा ने सारी बातें सुन लीं, तब वह अपनी सारी युद्ध की तैयारी से विरत हो गया ॥ ४३ ॥

ततः क्रतुं समाहूय पुरोधसमनागसम् ।
मन्त्रयामास नृपतिस्तेन मन्त्रविदा समम् ॥ ४४ ॥

फिर उसने अपने पुण्यकर्मा पुरोहित जिसका नाम क्रतु था, उन्हें बुलाया और उन मन्त्रवेत्ता के साथ एकान्त में मन्त्रणा करने लगा ॥ ४४ ॥

विकटाक्षस्य वृत्तान्तं सर्वमाख्याय तत्त्वतः ।
परैरजय्यतां चास्य युद्धे सम्मुखवर्तिभिः ॥ ४५ ॥

राजा ने विकटाक्ष का वह सारा वृत्तान्त पुरोहित से निवेदन किया जिस प्रकार वह सामने से लड़ने वाले शत्रुओं से अजेय बना था ॥ ४५ ॥

येनोपायेन भगवन् जेष्यामस्तं दुरासदम् ।
ब्रूहि तं सकलाः स्वस्था भवेयुर्मामिकाः प्रजाः ॥ ४६ ॥

हे भगवन् ! हम किस प्रकार उस महासुर पर विजय प्राप्त करें, जिससे यह हमारी सारी प्रजा उसके उपद्रव से रहित हो जावे, वह मुझसे कहिए ॥ ४६ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन भूभुजा स पुरोहितः ।
चिन्तयित्वा चिरायैतदुवाच मणिशेखरम् ॥ ४७ ॥

राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पुरोहित ने बहुत देर तक सोच-विचार करने के पश्चात् राजा मणिशेखर से कहा ॥ ४७ ॥

सत्यं न शक्यते जेतुं युद्धे स वरदर्पितः ।
भगवन्तमृते विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ४८ ॥

महाराज ! आप ठीक कह रहे हैं । वह वर प्राप्ति से अभिमानी सचमुच युद्ध में अपराजेय है । उसे जीतने वाले शङ्खचक्रगदाधारी एकमात्र विष्णु ही है ॥ ४८ ॥

नीलजीमूतसङ्काशं पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
अप्रमेयं जगन्नाथमाश्रितार्तिविनाशनम् ॥ ४९ ॥
उत्तुङ्गमङ्गलगुणं दैत्यचक्रप्रमर्दनम् ।
नास्त्युपायान्तरं लोके तत्समं जगतीपते ॥ ५० ॥
अतस्तं शरणं गच्छ सर्वभावेन भूपते ।
चक्ररूपधरं देवं भक्तरक्षणदीक्षितम् ॥ ५१ ॥
तत्प्राप्त्युपायं जानाति दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
तत्प्रसादात् तमसुरं संहर्तुं सकलं क्षमम् ॥ ५२ ॥
तमृषिं सर्वभूतानां भीषणं गच्छ साम्प्रतम् ।

नीलमेघ के समान श्याम, कमल के समान विशाल नेत्र, अप्रमेय, संसार के स्वामी, अपने आश्रितों की पीड़ा को दूर करने वाले, सर्वथा उत्कृष्ट मङ्गलगुणों से युक्त तथा दैत्य समुदाय का वध करने वाले उन विष्णु के समान और कोई देव इस जगत् में नहीं है । अत: हे जगतीपते ! आप सर्वात्मना उन विष्णु के शरण में जाइये क्योंकि उस दैत्य के विनाश का कोई और उपाय नही है । वे देवचक्र सुदर्शन का रूप धारण करने वाले हैं जो अपने भक्त की पीड़ा को दूर करने का व्रत लिए हुये हैं । उन चक्र सुदर्शन रूपधारी विष्णु की प्राप्ति का उपाय एकमात्र मुनिसत्तम दुर्वासा जानते हैं । आप उन विष्णु को प्रसन्न करिए । फिर तो सारे असुर समूह के नाश में आप समर्थ हो जाएंगे । अत:, हे राजन् ! आप समस्त प्राणियों के लिए महाभयङ्कर उन महर्षि दुर्वासा के पास शीघ्रातिशीघ्र जाइए ॥ ४९-५३ ॥

एवमेवेति निश्चित्य राजा परमधार्मिकः ॥ ५३ ॥

राजा भी बड़ा धार्मिक था । उसने भी निश्चय कर लिया कि ऐसा ही करना चाहिए ॥ ५३ ॥

निर्जगाम पुरात् तस्मात् सार्धं तेन पुरोधसा ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्यन्तं महामुनिम् ॥ ५४ ॥
वसानं वल्कले शुभ्रे शुभ्रयज्ञोपवीतिनम् ।
जटाजिनधरं शान्तं ज्वलत्पावकसंनिभम् ॥ ५५ ॥
तं तथावस्थितं राजा जगाम सपुरोहितः ।

स मुनिस्तौ मुनिश्रेष्ठो दृष्ट्वा राजपुरोहितौ ॥ ५६ ॥
तौ समभ्यर्च्य विधिना स्वागतं व्याजहार ह ।
इमं देशमनुप्राप्तौ किमर्थं वनगोचरम् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर राजा अपने पुरोहित को साथ लेकर अपने नगर से वाहर हिमालय पहाड़ के शिखर पर चल पड़ा जहाँ वे महामुनि शुभ्र वल्कल एवं शुभ यज्ञोपवीत धारण किये तपस्या कर रहे थे । वे जटा तथा अजिन धारण किये हुये थे । वह परम शान्त थे और देदीप्यमान अग्नि के समान भासित हो रहे थे । उस अवस्था में उन्हें तपस्या करते देख राजा अपने पुरोहित के साथ वहाँ जा पहुँचे । तदनन्तर उन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा मुनि ने राजा और पुरोहित को अपने आश्रम में आया देख सविधि उनकी अर्चना की और उनका स्वागत किया । फिर पूछा आप लोगों ने इस घोर जङ्गल के इस प्रदेश में क्यों पदार्पण किया है ॥ ५४-५७ ॥

भवन्तौ लक्षये साक्षाद् ब्रह्मक्षत्रे सविग्रहे ।
प्रमगन्दसुतं वीरं जाने त्वां मणिशेखरम् ॥ ५८ ॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी तव वश्येति शुश्रुम ।
सर्वेष्वङ्गादिधर्मेषु भवतः किमनामयम् ॥ ५९ ॥
प्रजाः पालयसे सर्वाः स्वधर्मस्था महीपते ।
क्रतुं पुरोहितं लब्ध्वा भवतः किं न सेत्स्यति ॥ ६० ॥

मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ब्रह्म और क्षत्र दोनों तेज शरीर धारण किये यहाँ आये हैं । ये प्रमगन्द के पुत्र दुर्धर्ष के लड़के मणिशेखर हैं । इन्हें मैं भली प्रकार जानता हूँ । मैंने सुना है कि यह सप्त द्वीपवती पृथ्वी इनके वश में है । अच्छा राजन् आपका शरीरादि तथा धर्म उपद्रवरहित तो है न? हे राजन् ! क्या आप अपनी प्रजाओं को धर्म मार्ग में रखकर उनका ठीक-ठीक पालन तो करते हैं? अथवा क्रतु जैसे पुरोहित को प्राप्त कर आपकी कौन सी मनोकामना है जो पूर्ण न हो? ॥ ५८-६० ॥

अनूचानो मुनिः श्रेयान् सर्वेषां च तपस्विनाम् ।
शान्तो दान्तः शुचिः श्रीमान् सत्यवादी दृढव्रतः ॥ ६१ ॥
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञः सर्वकर्मसु कोविदः ।
कर्मठः शीलसम्पन्नो यायजूको निरामयः ॥ ६२ ॥
कृपानुरक्तः सर्वेषु समबुद्धिः समाधिमान् ।
दैष्टिकः परमोदारो धृतिमान् राजसत्कृतः ॥ ६३ ॥
सर्वैरनुमतः शश्वद् भक्तिमान् पुरुषोत्तमे ।
षण्णां समयधर्माणामभिज्ञो नयकोविदः ॥ ६४ ॥
दयालुरभिजातश्च साधकः सर्वमन्त्रवित् ।
अन्यैश्च सद्गुणैर्युक्तः पुरोहित इति स्मृतः ॥ ६५ ॥

ईदृशोऽयं क्रतुः साक्षाद् बृहस्पतिरिवापरः ।
अनेन सर्वकार्याणि कुरुष्व मणिशेखर ॥ ६६ ॥
तथापि कैश्चिदरिभिः परिभूत इवागतः ।
आख्याहि सर्वं नृपते किमागमनकारणम् ॥ ६७ ॥

वेदज्ञ, सभी तपस्वियों का श्रेय चाहने वाला, मुनिवृत्ति का आश्रय लेने वाला, शान्त, दान्त-शुचि, श्रीमान्, सत्यवादी दृढ़व्रत धर्मज्ञ, सर्वशास्त्रज्ञ, सभी कर्मों में निपुण, कर्मठ, शीलवान्, याज्ञिक, निर्दोष, कृपाशील, समदर्शी, समाधि लगाने वाला अतीतानागत का वक्ता, परमोदार, धैर्यवान्, राजसत्कृत, सबसे पूजित, पुरुषोत्तम में भक्ति रखने वाला, छः प्रकार के सन्धिविग्रहादि को जानने वाला, नीतिज्ञ, दयालु, उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाला, साधक, मन्त्रवेत्ता इसी प्रकार के अन्यान्य सद्गुणों से युक्त पुरोहित को होना चाहिए । ये क्रतु इस प्रकार के सभी गुणों से युक्त तो है ही बुद्धि में भी वृहस्पति के समान हैं । अतः हे राजन् ! मणिशेखर ! आप इनकी सहायता से अपना सारा कार्य सम्पादन करिए । फिर भी हे राजन् ! आप अपने किसी शत्रु से पराभूत हो गए हैं ऐसा मुझे मालूम पड़ रहा है । अच्छा अब अपने आगमन का कारण बताइए कि यहाँ आप कैसे पधारे हैं? ॥ ६१-६७ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा विरराम तपोधनः ।
अथ क्रतुर्मुनिश्रेष्ठः प्राह दुर्वाससं प्रति ॥ ६८ ॥

इतना कह लेने के पश्चात् महातेजस्वी, तपोधन, दुर्वासा शान्त हो गए । तब मुनिश्रेठ क्रतु ने दुर्वासा से कहा ॥ ६८ ॥

राजकार्यमशेषेण समागमनकारणम् ।
स्वराज्यं विकटाक्षेण पीड्यमानं दुरात्मना ॥ ६९ ॥
बलं महासुरस्यास्य दुर्जयत्वमरातिभिः ।
प्रजापतेर्वरप्राप्तिं तत्सन्ततिविजृम्भणम् ॥ ७० ॥

हम लोगों का कुछ राजकार्य है, उसी के लिए आपके यहाँ आना हुआ है । दुरात्मा विकटाक्ष के कारण इनका स्वराज्य पीड़ित हो रहा है । यह महान् असुर बहुत ही बलवान् हैं । वह अपने शत्रुओं के द्वारा दुर्जय है । उसे प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा अवध्यत्व का वरदान प्राप्त है तथा उसकी पुत्र पौत्रादि सन्ततियों का अत्यधिक अभ्युदय भी है ॥ ६९-७० ॥

एवं बहुविधं तस्य चेष्टितं लोकगर्हितम् ।
व्याहृत्य प्रणिपत्यैनमुवाच विनयान्वितः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार वह राक्षस (वरोत्सिक्त तथा वंशवृद्धि के कारण) सारे लोक को पीड़ित कर रहा है । इतना कह कर क्रतु ने महामुनि दुर्वासा को प्रणाम किया फिर विनयपूर्वक कहा ॥ ७१ ॥

ब्रूहि तस्य जयोपायं त्वामयं शरणं गतः ।

त्वमापदः परित्राहि राजानं धर्मवत्सलम् ॥ ७२ ॥

हे महाराज ! उस विकटाक्ष के विजय का उपाय आप बताइये । ये राजा एतदर्थ आपकी शरण में आए हैं । ये राजा बड़े ही धर्मवत्सल हैं । अतः इस आपत्ति से आप इन राजा की रक्षा करें ॥ ७२ ॥

परित्रातान्यनेनैव भुवनानि तपोधन ।
एवमुक्त्वा मुनिवरं प्रणिपत्य पुरः स्थितौ ॥ ७३ ॥

हे तपोधन ! इन राजा ने भुवन का परित्राण किया है । इतना कह लेने के पश्चात् दोनों ही दुर्वासा के सामने चुप-चाप स्थित हो गए ॥ ७३ ॥

कृपया परया वीक्ष्य षड्वर्णं मन्त्रमुत्तमम् ।
सौदर्शनं तयोः प्रादाच्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ७४ ॥

तब दुर्वासा ने अत्यन्त कृपापूर्वक उनकी ओर देख कर छः वर्णों वाला (ॐ श्रीं सहस्रार) सुदर्शन का उत्तम मन्त्र राजा को प्रदान किया, जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाला है । मन्त्र देने के पश्चात् दुर्वासा ने राजा से इस प्रकार कहा ॥ ७४-७५ ॥

अनेन साधयाभीष्टमेतेनैव पुरोधसा ।
पुरोधा एव राज्ञां हि दृष्टादृष्टार्थसाधकः ॥ ७५ ॥

हे राजन् ! आप अपने इन पुरोहित की सहायता लेकर अपना अभीष्ट साधन करिए । क्योंकि पुरोहित ही राजा के दृष्टार्थ तथा अदृष्टार्थ का साधक होता है ॥ ७५ ॥

विशेषेणास्य देवस्य प्रतिष्ठाराधनादिषु ।
वैगुण्यमस्य तत् सर्वमपराधात् पुरोधसः ॥ ७६ ॥

विशेष कर इन सुदर्शन देव के प्रतिष्ठा और आराधना आदि कार्यों में पुरोहित ही सभी अपराध तथा वैगुण्य से राजा का रक्षक होता है ॥ ७६ ॥

तथा साद्गुण्यमस्यैव राज्ञः कार्येषु भूपते ।
अन्यैः पौरोधसैः कार्यं कार्यमेतस्य तच्च वै ॥ ७७ ॥

इसी प्रकार सद्गुण युक्त अन्यान्य राजाओं की रक्षा अन्य उनके पुरोहितों को भी करनी चाहिए क्योंकि यही उनका कार्य है ॥ ७७ ॥

इत्युक्त्वा तौ तदा प्राह पुरावृत्तं महामुनिः ।
वाराहं रूपमास्थाय भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ७८ ॥
उज्जहार भुवं कल्पे वाराहे सलिलात् ततः ।
तदाह परमप्रीता देवं देवी वसुन्धरा ॥ ७९ ॥

इतना कह कर महामुनि दुर्वासा ने पूर्वकाल में होने वाली घटना का वर्णन किया कि भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु ने जब वराहावतार धारण किया था, तब उन्होंने उस वराह

रूप से इस पृथ्वी का उद्धार जल से बाहर निकाल कर किया था। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर देवी वसुन्धरा ने वराहरूपधारी भगवान् विष्णु से कहा ॥ ७८-७९ ॥

प्रियार्थमनुरक्तानां सदा भूमण्डले त्वया।
वर्तितव्यं जगन्नाथ प्रियां तनुमुपेयुषा ॥ ८० ॥

हे जगन्नाथ ! आप इस भूमण्डल में अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए उनको प्रिय लगने वाला शरीर धारण कर उनका प्रिय करते रहना ॥ ८० ॥

एवमुक्तस्तया देव्या तदा प्रभृति केशवः।
सालग्रामाह्वये पुण्ये न्यवसन्मण्डले भुवः ॥ ८१ ॥

उन देवी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उसी समय से भगवान् केशव इस पृथ्वी मण्डल के सालग्राम नामक पवित्र स्थान में निवास करते है ॥ ८१ ॥

सुदर्शनवपुः श्रीमान् भगवान् भक्तवत्सलः।
अद्यापि देशमाहात्म्याद् भक्तानामनुकम्पया ॥ ८२ ॥

वे भक्त वत्सल भगवान् आज भी उस देश के माहात्म्य को बढ़ाने के लिए तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए श्रीमान् सुदर्शन का रूप धारण कर वहाँ निवास करते हैं ॥ ८२ ॥

भुवः प्रार्थनया तत्र नित्यं संनिहितो हरिः।
अत्र तप्तं तपो यत् तत् सहस्रगुणितं भवेत् ॥ ८३ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार पृथ्वी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उस शालग्राम नामक स्थान में भगवान् सन्निहित हैं, जहाँ की गई तपस्या सहस्रगुनी फलवती होती है ॥ ८३ ॥

मनुष्याः पशवस्तत्र क्रिमयश्च पतत्त्रिणः।
ये मृताः शङ्खचक्राङ्कास्ते भवन्ति न संशयः ॥ ८४ ॥

वहाँ पर मरने वाले मनुष्य, पशु, क्रिमि तथा पक्षीगण भी शङ्ख, चक्र के चिह्न से संयुक्त हो जाते है इसमें संशय नहीं ॥ ८४ ॥

भगवान् पुण्डरीकाक्षः सुदर्शनवपुर्धरः।
संनिधत्ते सदा तत्र सन्मङ्गलगुणार्णवः ॥ ८५ ॥

वहाँ स्वयं सन्मङ्गलरूप गुणों के समुद्र भगवान् पुण्डरीकाक्ष सुदर्शन रूप धारण कर निवास करते हैं ॥ ८५ ॥

तद्देशवासिनो मर्त्याः सुरास्तिर्यञ्च एव च।
तरवश्चाचलाः सर्वे चक्रमुद्राङ्किितास्तदा ॥ ८६ ॥

उसी समय से उस स्थान में रहने वाले मनुष्य, देवता, पक्षीगण, वृक्ष एवं सभी (पर्वत आदि) अचल पदार्थ भी चक्रमुद्रा से अङ्कित रहते हैं ॥ ८६ ॥

सरस्वत्यास्तटे पुण्ये सालग्रामे जनार्दनम्।

चक्ररूपं समाराध्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ८७ ॥

हे राजन् ! पुण्य सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले उस सालग्राम नामक स्थान में पूर्वोक्त विधि से आप भी उन चक्ररूपी जनार्दन की आराधना करिए ॥ ८७ ॥

तत्प्रसादात् सपत्नांस्त्वं जहि दुष्टविचेष्टितान् ।
ततो निष्कण्टकां भूमिं पालयैनां पुरा यथा ॥ ८८ ॥

आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्न कर आप अपने दुष्ट चेष्टा वाले शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त करिए । फिर जैसे पहले पालन करते थे, उसी प्रकार इस निष्कण्टक पृथ्वी का पालन करिए ॥ ८८ ॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो राजानं सपुरोहितम् ।
उपारराम भगवान् दुर्वासा यमिनां वरः ॥ ८९ ॥

संयमशीलों मे सर्वश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ भगवान् दुर्वासा, पुरोहित तथा राजा से इतना कह कर चुप हो गए ॥ ८९ ॥

ततः प्रणम्य तं राजा पुरोधाश्चापि जग्मतुः ।
जैत्रं विमानमारुह्य नैचाशाखपुरं प्रति ॥ ९० ॥

फिर पुरोहित एवं राजा दोनों दुर्वासा को प्रणाम कर अपने विजयशील विमान पर चढ़कर नैचाशाख पुर में चले आये ॥ ९० ॥

सालग्रामं ततो गत्वा भगवन्तं जनार्दनम् ।
सम्भृत्य सर्वसम्भारांश्चक्ररूपं जगत्पतिम् ॥ ९१ ॥
पुरोधसैव नृपतिरर्चयामास मन्त्रतः ।

फिर वहाँ से चक्ररूपी जनार्दन की आराधना के योग्य समस्त अर्चा सामग्री ले कर सालग्राम नामक स्थान में जा कर राजा ने पुरोहित के द्वारा मन्त्रपूर्वक सालग्राम की आराधना की ॥ ९१-९२ ॥

अर्चनेन जपेनैव ध्यानेन च महीपतिः ॥ ९२ ॥
तोषयामास मासेन भक्त्या परमया हरिम् ।
आविर्बभूव स तदा चक्ररूपी महीपतेः ॥ ९३ ॥

वहाँ जगतीपति उस राजा ने अर्चना से, जप से तथा ध्यान से मात्र एक महीने में ही अपनी उत्कट भक्ति के द्वारा हरि को प्रसन्न कर लिया । फिर प्रसन्न हुये भगवान् जनार्दन राजा के सामने साक्षात् चक्ररूप में प्रकट हो गए ॥ ९२-९३ ॥

गदामुसलशङ्खारिधनुःपाशाङ्कुशाम्बुजान् ।
अष्टाभिर्बाहुभिर्दिव्यैर्बिभ्रत् पिङ्गललोचनः ॥ ९४ ॥

गदा, मुशल, शङ्ख, अरि, धनुष, पाश, अङ्कुश तथा कमल उनके आठ दिव्य बाहुओं में विराज रहा था, उनके नेत्र पीले वर्ण के थे ॥ ९४ ॥

ऊर्ध्वपिङ्गलकेशाढ्यो रक्तवर्णो महाद्युतिः ।
दंष्ट्राकरालवदनः पङ्कजासनसंश्रितः ॥ ९५ ॥

उनके पिङ्गल वर्ण के केश ऊपर की ओर उठे हुये थे । शरीर का वर्ण रक्त था, जिससे महान् प्रकाश प्रगट हो रहा था । उनका मुख भीषण दाँतों के कारण बड़ा भयानक लग रहा था तथा वे कमल के आसन पर बैठे हुये थे ॥ ९५ ॥

रक्ताम्बरधरो दृप्तः सर्वभूषणभूषितः ।
दिव्यमालाधरोरस्कः सस्मितं समुदैक्षत ॥ ९६ ॥

लाल वर्ण का अम्बर धारण किये हुये वे गर्व से परिपूर्ण लग रहे थे और सर्वाभरणभूषित थे । उनके वक्षःस्थल पर दिव्य माला विराज रही थी और वे सस्मित देख रहे थे ॥ ९६ ॥

समुदियाय ततो हरिवक्षसः
प्रतिहताखिललोकविलोचनम् ।
वलयिताचिररोचिरिवाम्बरात्
परमचक्रमथैन्द्रमतिद्युति ॥ ९७ ॥

इस प्रकार के रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल से समस्त लोक की दृष्टियों को प्रतिहत करने वाला, इन्द्र धनुष के समान अमित प्रभावशाली, परम चक्र इस प्रकार प्रकट हुआ, जिस प्रकार आकाश से अत्यन्त देदीप्यमान गोलाकार विद्युत्पुञ्ज उत्पन्न हो रहा हो ॥ ९७ ॥

प्रथममेकमथो दश तच्छतं
दशशतक्रमतो नियुतायुते ।
भवदथो बहुधा सकलं नभः
कलितचक्रमभूदतिभीषणम् ॥ ९८ ॥

पहले तो वह एक, फिर दश, फिर सौ, फिर दस सौ, फिर लाख, फिर दस लाख, इस प्रकार क्रमशः उत्पन्न होने वाले चक्रों से सारा आकाश मण्डल परिपूर्ण होकर भयानक दिखाई पड़ने लगा ॥ ९८ ॥

युगपद् विकटाक्षदानवं
विनिहत्याखिलबान्धवैः सह ।
तदिहाविषयं व्यतिष्ठत
क्षणमाप्लुत्य ययौ सुदर्शनः ॥ ९९ ॥

फिर वह चक्र उत्पन्न होते ही विकटाक्ष दानव तथा उसके समस्त परिवार का एक साथ वध कर क्षणभर आकाश में दिखाई पड़ा पश्चात् अन्तर्धान हो गया ॥ ९९ ॥

शशास पृथ्वीं ससमुद्रकाननां
जिताखिलद्वीपवतीं सपत्तनाम् ।

यथा शचीशस्त्रिदिवं सदैवतं
पवित्रकीर्तिर्मणिशेखरस्तथा ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मणिशेखरोपाख्यान-निरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २०४८ ॥

* * *

बन्धु बान्धव सहित विकटाक्ष दानव के मारे जाने पर पवित्र कीर्त्ति वह राजा मणिशेखर समुद्र कानन युक्त तथा नगरों से युक्त पृथ्वी का पालन इस प्रकार करने लगे जिस प्रकार इन्द्रदेव देवताओं के सहित स्वर्ग का पालन करते हैं ॥ १०० ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मणिशेखरोपाख्याननिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३३ ॥

* * *

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म-जन्मान्तरों के अनेक करोड़ों पापों को नष्ट कर देता है हम उन सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वलोकनमस्कृत ।
उक्तं चक्राद्विनिष्क्रान्तमस्त्रजातमिह प्रभो ॥ १ ॥
तेषां स्वरूपं मन्त्राणां सर्वेषां वक्तुमर्हसि ।
विना त्वां न हि पश्यामि वेत्तारं कमपीश्वर ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे सर्व धर्मज्ञ ! हे सर्वलोकनमस्कृत ! हे भगवन् ! हे प्रभो ! आप पहले कह आये हैं कि समस्त अस्त्रसमूह सुदर्शन चक्र से उत्पन्न हुये हैं । अब उन सभी अस्त्रों के सभी मन्त्रों का मुझे निर्देश कीजिये क्योंकि, हे ईश्वर ! आपको छोड़कर अन्य कोई इन मन्त्रों का ज्ञाता नहीं है ॥ १-२ ॥

तदुत्तरकथनाय तेषां गुह्यतमत्वाख्यानम्

अहिर्बुध्न्यः—

महर्षे यत् त्वया पृष्टमेतद् गुह्यतमं परम् ।
सुदुर्लभमनाख्येयं कस्मैचित् सर्वसाधकम् ॥ ३ ॥
तथापि तव वक्ष्यामि भक्तोऽसीति महामुने ।
त्वयाप्येतन्न दातव्यं सुरासुरसमर्चितम् ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महर्षे ! आप ने जो पूछा है—वह अत्यन्त गोपनीय है । अत्यन्त दुर्लभ है । सर्वसाधक उन मन्त्रों को किसी से कहना भी नहीं चाहिए तथापि हे

महामुने ! आप मेरे भक्त हैं, इसलिए आपसे कहता हूँ । किन्तु आपको भी देवता एवं असुरों से समर्चित इन मन्त्रों को किसी से नहीं कहना चाहिए ॥ ३-४ ॥

१. ब्रह्मास्त्रम्

फान्तं वह्निसमायुक्तं व्योम हालासमन्वितम् ।
मेषद्वयं दन्तयुतं हालाहलमतः परम् ॥ ५ ॥
घनाद्यं वायुपूर्वं च दन्तयुक्तमथान्तिमम् ।
सरसं चर्क्षपर्यायं भान्तं भृगुमतः परम् ॥ ६ ॥
अम्बरं वायुसंयुक्तमरिमर्दनमप्यतः ।
प्रदीप्तमथ वक्तव्यं परमं च पदं ततः ॥ ७ ॥
तत्ते पदे प्रयोक्तव्ये गायत्र्या मध्यमं ततः ।
पदत्रयं प्रयोक्तव्यमेतद् ब्रह्मास्त्रमीरितम् ॥ ८ ॥

वह्नि (र) से समायुक्त फान्त (प) व्योम (ह) जो हाला समन्वित हो इसके बाद दन्त (ओ) से संयुक्त दो मेष (त्र) इसके बाद हालाहल, इसके बाद ...प्रदीप्तं, इसके बाद परमं तत्ते भर्गो देवस्य धीमहि—यह ब्रह्मास्त्र कहा गया है ॥ ८ ॥

२. दण्डचक्रम्

जीवः पञ्चमवर्गादिश्चतुर्थाद्योऽन्तिमान्वितः ।
भृगुः सदीर्घो दण्डाद्यो मेषो यष्ट्यपराह्वयः ॥ ९ ॥
आत्मने च पदं तत्र चक्रायेति पदं ततः ।
वर्मान्त एष मन्त्रस्तु दण्डचक्रमितीष्यते ॥ १० ॥

'आत्मने चक्राय कवचाय हुं'—यह दण्डचक्र है ॥ ९-१० ॥

३. कालचक्रम्

वारुणं मायया युक्तं वान्तं वारुणसंयुतम् ।
यूपान्तं वह्निना युक्तं मोऽथ साग्निरथात्रियुक् ॥ ११ ॥
धान्तं कालात्मनेत्येतच्चक्रायेति पदं ततः ।
फडन्त एष मन्त्रस्तु कालचक्रः प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥

माया (ई) से संयुक्त वारुण (व), वारुण (व) से संयुक्त वान्त (ल), वह्नि (र) से युक्त यूप (?) अग्नि (रं) अभि (द) से युक्त म धान्त (न) फिर कालात्मने चक्राय नमः ॥ ११-१३ ॥

४. धर्मचक्रम्

मोन यक्राच नेत्मर्मा तथा ध नमयेति च ।
निलखीत्यपिचाकारो व्युत्क्रमेण प्रदृश्यते ॥ १३ ॥
धर्मचक्रमिमं मन्त्रं विदुः पूर्वे महर्षयः ।

तेरहवें श्लोक को व्युत्क्रम से पढ़ने पर 'पाति अखिल नियमन धर्मात्मने चक्राय नमः' यह धर्मचक्र मन्त्र बनता है जिसे प्राचीन महर्षियों ने कहा है ॥ १३-१४ ॥

५. विष्णुचक्रम्

तारपूर्वं च हृदयं भगाद्यन्तौ वनादिमः ॥ १४ ॥
चण्डीशयुक्त आषाढस्तीव्रतेजस इत्यपि ।
पर्यायं लक्षसङ्ख्याया आरेति च पदं ततः ॥ १५ ॥
परमत्र प्रयोक्तव्यं भिन्धीति च पदं ततः ।
भीषयेत्यपि वक्तव्यं विष्णुचक्रमिदं विदुः ॥ १६ ॥

पूर्व में तार (ॐ), तदनन्तर हृदय (नमः) भगादि अन्त में व, फिर चण्डीश (ए) से युक्त आषाढ (त), फिर तीव्रतेजसे, फिर लक्षसङ्ख्या का पर्याय शतसहस्र, फिर आर, फिर परं, फिर भिन्धि, फिर भीषय पद यह विष्णुचक्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप—'ॐ नमः भगवते तीव्रतेजसे शतसहस्रार परं भिन्धि भीषय' ॥ १४-१६ ॥

६. इन्द्रचक्रम्

यषशो कं तथा नीवानदा वन्नपिरूमहि ।
मिन्नेलज्वेति तारं च इन्द्रचक्रमिदं स्मृतम् ॥ १७ ॥

सत्रहवें श्लोक को उल्टा पढ़ने से इस प्रकार इन्द्रचक्र मन्त्र बनता है—'ॐ ज्वलन्नेमि हिमरूपिन् अवदानवान् कं शोषय' ॥ १७ ॥

७. वज्रास्त्रम्

तारं चतुर्मुखः स्वङ्गनाथवान् दीर्घसंयुतः ।
पिनाकी दीर्घसंयुक्तो जलाद्यं मायि सोमराट् ॥ १८ ॥
फलान्तं भीषणपदं दम्भोले इत्यपि क्रमात् ।
वर्मास्त्रयुक्तं विज्ञेयं वज्रास्त्रमिदमुत्तमम् ॥ १९ ॥

तारं (ॐ) चतुर्मुख (ज) दीर्घ (आ) से संयुक्त स्वङ्ग नाथ, फिर दीर्घ संयुक्त पिनाकी (ल) फिर जलाद्यं (?) मायि (ई) सोमराट् जो फलान्त (प) हो, इसके बाद भीषण दम्भोले कवचाय हुं ॥ १८-१९ ॥

८. त्रिशूलम्

हृत्पूर्वं वह्निमायायुगाषाढो मायया बकः ।
वह्निर्भृगुः सचण्डीशः प्रयोक्तव्यस्ततः परम् ॥ २० ॥
अथ शूलवरायेति भीमरूपपदं तथा ।
दारयेति पदं तत्र मारयेति पदं ततः ॥ २१ ॥
भीषयेति शिरोऽन्तं च त्रिशूलमिदमीरितम् ।

पूर्व में हृदय (नमः), फिर वह्नि माया से युक्त आषाढ़ (त) फिर माया (इ) से युक्त बक (श) फिर वह्नि (र) चण्डीश (ए) से युक्त भृगु (स), फिर शूलवराय, फिर भीमरूप,

फिर दारय, तदनन्तर मारय भीषय, तदनन्तर 'शिर (नमः) पद का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र का स्वरूप—'शूलवराय भीमरूप दारय मारय भीषय नमः'। यह त्रिशूलास्त्र कहा गया है ॥ २०-२२ ॥

९. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्

क्रोधी दण्डी च चण्डीशवीरान्तं वृश्चिकादिमम् ॥ २२ ॥
आषाढयुक् सचण्डीशो हुं फड् ब्रह्मशिरः स्मृतम् ।

क्रोधी (क), दण्डी (न), फिर वृश्चिक, फिर वीरान्त चण्डीश आषाढ़ (त) से युक्त चण्डीश (ख), फिर हुं फट् ॥ २२-२३ ॥

१०. ऐषीकास्त्रम्

हास्वा पक्षि यवद्रावि न्यंसैरप मरेति च ॥ २३ ॥
पकारं व्युत्क्रमेणेदमैषीकं परमं स्मृतम् ।

परम परमैन्यं विद्रावय क्षिप स्वाहा—यह श्रेष्ठ ऐषीकास्त्र कहा गया है ॥२३-२४॥

११. मोदकी

भृगुः क्रोधी पिनाकी च सानन्तो मित्र इत्यपि ॥ २४ ॥
सन्तापनान्ते माया स्यान्मोदकान्ते च तां न्यसेत् ।
कवचास्त्रयुतो मन्त्रो मोदकी स्याद् गदाह्वया ॥ २५ ॥

भृगु (स), क्रोधी (क) एवं अनन्त (आ) के सहित पिनाकी (ल), फिर मित्र, इसके बाद सन्तापन, फिर मोदक, उसके अन्त में माया (ह्रीं), फिर कवचास्त्र (कवचाय हुं) यह गदा मोदकी नामक अस्त्र है ॥ २४-२५ ॥

१२. शिखरी

लोहितश्च भुजङ्गेशो भृगुर्भौतिकसंयुतः ।
मुण्डः सवाली खड्गीशो दीर्घयुक्तश्च पावकः ॥ २६ ॥
उमेशो मायया युक्तः शिखरीति पदं ततः ।
ततो भेदिनि फट् चैव शिखरी स्याद् गदाह्वया ॥ २७ ॥

लोहित 'प', फिर भुजङ्गेश (र), फिर भौतिक ऐ से संयुक्त भृगु (स), मुण्ड (न), वाली (य), दीर्घयुक्त खड्गीश, फिर पावक (र), इसके बाद माया (इ) से युक्त उमेश (ण), इसके बाद 'शिखरि' पद, फिर 'भेदिनि', तदनन्तर हुं फट् यह गदा शिखरी नामक अस्त्र है ॥ २६-२७ ॥

१३. धर्मपाशास्त्रम्

वप्रान्तमाद्यं चण्डस्य मण्डपे मध्यमं ततः ।
दुर्वृत्तेति पदं तत्र गजपर्यायमप्युत ॥ २८ ॥
द्विरावृत्तं बन्धयेति धर्मपाशमिदं विदुः ।

आदि में चण्डस्य, इसके बाद वप्रान्त मण्डपे मध्यमपद, इसके बाद 'दुर्वृत्त' पद, इसके बाद गजपर्याय 'करिण', फिर बन्धय पद की दो बार आवृत्ति यह धर्मपाश अस्त्र है ॥ २८ ॥

१४. कालपाशास्त्रम्

अत्रिर्मायान्वितः श्वेतः ससूक्ष्मेशोऽथ पावकः ॥ २९ ॥
षष्ठस्वरसमायुक्तो लोहितश्च ततः क्रमात् ।
विष्टम्भयेति पदं द्विरावृत्तमतः परम् ॥ ३० ॥
वर्मान्त एष मन्त्रस्तु कालपाश इतीरितः ।

माया (इ) से समन्वित अत्रि (द), फिर श्वेत (फ), सूक्ष्मेश (य) से संयुक्त पावक (र), तदनन्तर षष्ठ स्वर (ऊ) से समायुक्त लोहित (प), इसके बाद 'विष्टम्भय' पद की दो बार आवृत्ति अन्त में वर्म कवचाय हुं यह कालपाश नामक अस्त्र है । मन्त्र का स्वरूप—'दिफयत्र(?) रिपु विष्टम्भय विष्टम्भय कवचाय हुं ॥ २९-३१ ॥

१५. वरुणपाशास्त्रम्

तुन्दिलेति पदं पूर्वं सर्वेति च पदं ततः ॥ ३१ ॥
वारणेति ततो घोररूपेति च पदं क्रमात् ।
वर्म फट् चेति मन्त्रोऽयं वारुणं पाशमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

पूर्व में 'तुन्दिल' पद, इसके बाद 'सर्व' पद, फिर 'वारण', फिर 'घोररूप' पद के बाद कवचाय हुं, यह मन्त्र सर्वश्रेष्ठ वारुण पाश कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप—तुन्दिल सर्व वारण घोररूप कवचाय हुं ॥ ३१-३२ ॥

१६. आद्योऽशनिः

लोहितश्चैव वह्निश्च कूर्मः साषाढकं विषम् ।
भारभूतियुतः क्रोधी ततश्च मतिपश्चिमः ॥ ३३ ॥
अथ हस्तापरं नाम शोषयेति द्विरुच्चरेत् ।
अशनिद्वितयादाद्यमिमं मन्त्रं विदुर्बुधाः ॥ ३४ ॥

लोहित (प), वह्नि (र), कूर्म (च), आषाढ़ (त) के सहित विष (ळ), भारभूति (ऋ) से युक्त क्रोधी (क), इसके बाद 'मतिपश्चिम' पद, इसके बाद हस्त का अन्य नाम (कर), फिर दो बार शोषय, दो अशनिमन्त्रों में यह प्रथम अशनिमन्त्र है, ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप—परतळकृ मतिपश्चिम कर शोषय शोषय ॥ ३३-३४ ॥

१७. अन्योऽशनिः

यषभी णरदानोमरप इत्यपरोऽशनिः ।

'पर मनोदारण भीषय' यह द्वितीय अशनि नामक अस्त्र है ॥ ३५ ॥

१८. पैनाकास्त्रम्

अमरेशोऽथ खान्तोऽग्निसंयुक्तो दण्ड इत्यपि ॥ ३५ ॥

अङ्कुशो भिन्धि भिन्धीति पैनाकममितद्युति ।

अमरेश (ॐ), खान्त (क), जो अग्नि (र) से संयुक्त हो, फिर दण्ड (न) जो अङ्कुश (ॠ) से संयुक्त हो और इसके वाद भिन्धि भिन्धि । यह महातेजस्वी पैनाकास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ कर नृ भिन्धि भिन्धि' ॥ ३५ ॥

१९. नारायणास्त्रम्

विष्णुर्दण्डी पुनश्चाद्यो भुजङ्गो दीर्घसंयुतः ॥ ३६ ॥
आषाढो मायया युक्तः सुदर्शनपराह्वयः ।
दारणेति पदं तत्र विश्वमूर्ते इति क्रमात् ॥ ३७ ॥
वर्मास्त्रे च तथा ज्ञेये नारायणमिदं स्मृतम् ।

विष्णु (अ), दण्डी (न), फिर आद्य (अ), फिर दीर्घ से संयुक्त भुजङ्ग (र), फिर माया (इ) से युक्त आषाढ़ (व), फिर सुदर्शन पर पद, तदनन्तर दारण पद, फिर विश्वमूर्त्तें कवचाय हुं फट् यह नारायणास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'अन अरा इव सुदर्शन पर दारण विश्वमूर्त्तें कवचाय हुं फट्' ॥ ३६-३७ ॥

२०. पाशुपतास्त्रम्

सपिनाकी बको बिन्दुर्महामायासमन्वितः ॥ ३८ ॥
लोहितोऽथ बकश्चायं पञ्चमस्वरसंयुतः ।
कवचास्त्रे प्रयोक्तव्ये एतत् पाशुपतं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

पिनाकी (ल) के सहित बक (श), जो बिन्दु एवं महामाया (ई) से समन्वित हो । इसके वाद लोहित (प), फिर पञ्चम स्वर (उ) से समन्त्रित बक (श)। इसके वाद 'कवचास्मया फट्' यह पाशुपतास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ल शीं पशु कवचाय हुँ फट्' ॥ ३८-३९ ॥

२१. आग्नेयास्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं बहुवर्णाय चेत्यथ ।
वृत्तपिङ्गलशब्दं च लोचनेति ततः क्रमात् ॥ ४० ॥
विश्वामित्रपदं चापि तथा प्रशमनेति च ।
दहेति शोषयेत्येवं प्रयुञ्ज्याद् भीषयेति च ॥ ४१ ॥
एतदाग्नेयमत्युग्रं सुरासुरसुपूजितम् ।

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), फिर बहुवर्णाय यह पद, फिर वृत्तपिङ्गललोचन विश्वामित्र प्रशमन दह शोषय भीषय । यह अत्यन्त उग्र आग्नेयास्त्र है जो देवों एवं असुरों से पूजित हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः बहुवर्णाय वृत्तपिङ्गललोचन विश्वामित्र प्रशमन दह शोषय भीषय' ॥ ४०-४१ ॥

२२. दयितास्त्रम्

बकश्च सूक्ष्मश्चण्डश्च भुजङ्गो दीर्घदण्डवान् ॥ ४२ ॥

व्योम खड्गीशसंयुक्तं वाली प्रक्षेपणेति च ।
वर्मान्तमेतं मन्त्रं तु दयितं परिचक्षते ॥ ४३ ॥

बक (श), सूक्ष्म (य), चण्ड (ख), दीर्घ दण्ड (न) से युक्त भुजङ्ग (र), खड्गीश (व) से युक्त व्योम (ह), फिर वाली (य), इसके बाद 'प्रक्षेपण' पद, अन्त में वर्मान्त (कवचाय हुम्) कहे यह दयित मन्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'श य ख ना र व ह य प्रक्षेपण कवचाय हुँ ॥ ४२-४३ ॥

२३. वायव्यास्त्रम्

वालिनं दण्डसहितं त्रिरावृत्तं विनिर्दिशेत् ।
यक्षरक्षःपदे चैव पिशाचादीनिति क्रमात् ॥ ४४ ॥
अमित्रांश्चेति च पदं ब्रूयाद् दूरमतः परम् ।
द्विरावृत्तं ततः कुर्यादुत्सारयपदं क्रमात् ॥ ४५ ॥
वायव्यमेतद् विख्यातं त्रैलोक्ये सर्ववन्दितम् ।

दण्ड (न) के सहित वाली (य), इसकी ३ आवृत्ति । यक्षरक्षः पिशाचादीन् अमित्रांश्च दूरमुत्सारय-उत्सारय, यह वायव्यास्त्र है जो त्रैलोक्य वन्दित है । मन्त्र का स्वरूप—'नय नय नय यक्षरक्षः पिशाचादीन् अमित्रांश्च दूरमुत्सारय उत्सारय ॥ ४४-४५ ॥

२४. हयशिरोऽस्त्रम्

व्योम दण्डयुतं व्योम वाली शीताद्यमक्षरम् ॥ ४६ ॥
श्वेतो वह्नियुतो दीर्घो भुजङ्गो दीर्घसंयुतः ।
आषाढोऽथ महामायासंयुतो मुण्डमण्डितः ॥ ४७ ॥
कवलीकुर्विति ब्रूयादयं हयशिरोमनुः ।

दण्ड (न) से युक्त व्योम (ह), व्योम (ङ) फिर फिर शीताद्यम् वह्नि (र) से युक्त दीर्घ श्वेत (र्ष), दीर्घ से संयुक्त भुजङ्ग र महामाया (इ) से मण्ड (न्) संयुक्त से आषाढ़ (त), इसके बाद 'कवली कुरु' यह हयशिरा नामक मन्त्र है ॥ ४६-४८ ॥

२५. क्रौञ्चास्त्रम्

नपन्तासरपेत्येष फडन्तः क्रौञ्च ईरितः ॥ ४८ ॥

व्याकुलिताक्षर में मन्त्र प्रतिपादित है—'पर सन्तापन हुँ फट्' यह क्रौञ्च संज्ञक मन्त्र कहा गया है ॥ ४८ ॥

२६. प्रथमा शक्तिः

णिरदाविरप तेंमूप्तदी व्युत्क्रमतो मनुः ।
वर्मान्त एष शक्तिभ्यामाद्यः सर्वारिभीषणः ॥ ४९ ॥

व्याकुलिताक्षर में मन्त्र प्रतिपादित है—'दीप्तमूर्ते·परविदारणि कवचाय हुँ' यह सभी शत्रुओं को मार डालने वाला आद्यशक्ति मन्त्र कहा गया है ॥ ४९ ॥

२७. द्वितीया शक्तिः

नेसेतप्रो र्णिककुशं र्तेमूत्रव इतीरितः ।
व्युत्क्रमेण हुमन्तोऽयं शक्तिभ्यामपरो मनुः ॥ ५० ॥

व्याकुलिताक्षर में मन्त्र प्रतिपादित है—'वज्रमूर्त्ते शङ्कुकर्णि प्रोतसेने कवचाय हुँ' यह समस्त अरियों को कँपा देने वाला द्वितीय शक्ति मन्त्र है ॥ ५० ॥

२८. कङ्कालास्त्रम्

शिवोत्तमः सबिन्दुश्च क्रोधी दीर्घान्वितोऽनलः ।
भान्तो दीर्घसमायुक्तो वाली फडिति चान्ततः ॥ ५१ ॥
कङ्काल एष कथितो मन्त्रः सर्वभयङ्करः ।

शिवोत्तम (घ) जो सबिन्दु हो, इसके बाद क्रोधी क, फिर दीर्घयुक्त अनल र, फिर दीर्घ समायुक्त भान्त (मा), फिर वाली (य), इसके बाद फट् यह कङ्काल नामक सर्वभयङ्कर अस्त्र है ॥ ५१ ॥

२९. मुसलास्त्रम्

चण्डाद्यन्तौ क्रमात्र्यस्य रूपाद्यन्तौ ततः परम् ॥ ५२ ॥
आवर्तयेद् घातयेति तदेतन्मुसलं स्मृतम् ।

'चण्डरूप चण्डरूप घातय घातय' यह मुसलास्त्र है ॥ ५२ ॥

३०. कापालास्त्रम्

चण्डो भुजङ्गश्चात्रिश्च बको वह्निसमायुतः ॥ ५३ ॥
मुण्डो द्विगण्डो मायी मा मेषद्वयमतः परम् ।
खड्गीशो भौतिकयुतो वह्निश्चण्डीशसंयुतः ॥ ५४ ॥
अस्त्रान्त एष मन्त्रः स्यात् कापालमतिभीषणम् ।

चण्ड (ख), भुजङ्ग (र), अत्रि (द), वक (श), वह्नि (र) से समायुक्त मुण्ड (न्), माया (ई) से युक्त द्विगण्ड (भ), फिर मेष द्वय (मम), भौतिक ऐ से युक्त खड्गीश (व), चण्डीश (ख) से युक्त वह्नि (र) अस्त्राय फट् यह कापालकास्त्र है ॥ ५३-५५ ॥

३१. कङ्कणी

अत्रिः सदीर्घो वह्निश्च मायया तु समन्वितः ॥ ५५ ॥
आषाढोऽनन्तसहितो वह्निर्दीर्घसमन्वितः ।
आद्यश्चतुर्थवर्गस्य चण्डीशेन समन्वितः ॥ ५६ ॥
दमयेति द्विरावृत्त्या मनुरेष तु कङ्कणी ।

दीर्घ के सहित अत्रि (द), माया (इ) से संयुक्त वह्नि (र), अनन्त (आ) से युक्त आषाढ (त), फिर दीर्घ से युक्त अग्नि (र), इसके बाद चतुर्थ वर्ग का आदि (त) जो चण्डीश (ए) से युक्त हो इसके बाद 'दमय' पद की दो आवृत्ति—यह कङ्कणी अस्त्र है ॥ ५५-५६ ॥

३२. वैद्याधरास्त्रम्

हृदयं प्रथमं न्यस्य भगेति च पदं ततः ॥ ५७ ॥
वतीत्येतदपि ब्रूयान्महामाये इति क्रमात् ।
कवचास्त्रे प्रयोक्तव्ये एतद्वैद्याधरं परम् ॥ ५८ ॥

प्रथम हृदय (नमः) का उच्चारण करे, फिर 'भग' पद का, इसके बाद 'वति' पद का, तदनन्तर महामाये, फिर कवचायास्त्राय फट् यह विद्याधरास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'नमः भगवति महामाये कवचायास्त्राय फट्' ॥ ५७-५८ ॥

३३. असिरक्तास्त्रम्

खण्डिताद्यरिपर्यायं पदं शक्ते इति क्रमात् ।
वर्मान्तमसिरक्ताख्यमस्त्रमेतदुदाहृतम् ॥ ५९ ॥

'खण्डित' इसके बाद अरि का पर्याय (शत्रु), फिर शक्ते इस क्रम से पढ़ने के बाद वर्मान्त (कवचाय हुं) यह असिरक्ताख्य नामक अस्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'खण्डितशत्रुशक्ते कवचाय हुँ' ॥ ५९ ॥

३४. गान्धर्वास्त्रम्

क्रोधी पिनाकिसंयुक्तो दण्डभौतिकसंयुतः ।
मोहयेति द्विरभ्यस्य मनुर्गान्धर्व इष्यते ॥ ६० ॥

पिनाकी (ल) से संयुक्त क्रोधी (क), फिर दण्ड (न) जो कि भौतिक (ऐ) से संयुक्त हो, इसके बाद 'मोहय' पद का दो बार उच्चारण करना चाहिए । यह गान्धर्व मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'कलने मोहय मोहय' ॥ ६० ॥

३५. प्रस्थापनास्त्रम्

पञ्चान्तकः सदण्डः स्यादथो गणपते अपि ।
लोकेत्यनन्तरं ब्रूयादमित्रानित्यनन्तरम् ॥ ६१ ॥
प्रस्थापयेत्यथाभ्यस्य प्रस्थापनमुदाहृतम् ।

दण्ड (न) के सहित पञ्चान्तक (ग), इसके बाद गणपते, फिर 'लोके', फिर अमित्रान् प्रस्थापय प्रस्थापय । यह प्रस्थापनास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'गन गणपते लोके अमित्रान् प्रस्थापय प्रस्थापय' ॥ ६१ ॥

३६. प्रशमनास्त्रम्

लोहितः सानलो जीवो महामायासमन्वितः ॥ ६२ ॥
अत्रिर्द्विरण्डः पञ्चारिर्लान्तो मायी तलादिमः ।
मायारूपिणि चेत्येतत् पदमन्ते प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥
एतत् प्रशमनं नाम सर्वशत्रुनिवारणम् ।

अनल (र) के सहित लोहित (प), इसके बाद जीव, इसके बाद महामाया (ई) से

संयुक्त अत्रि (द), फिर द्विरण्ड, पञ्चारि, लान्त (व), मायी (ई), इसके बाद तल, फिर मः, इसके बाद मायारूपिणी पद का प्रयोग करना चाहिए। यह प्रशमनास्त्र है जो समस्त शत्रुओं का विनाशक है ॥ ६३ ॥

३७. सौर्यास्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं परायेति पदं ततः ॥ ६४ ॥
परेति पदमुच्चार्य तेजःपदमनन्तरम् ।
निबर्हणाय चेत्येतत् फडन्तं सौर्यमुच्यते ॥ ६५ ॥

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), इसके बाद 'पराय' पद, फिर पर शब्द का उच्चारण कर 'तेजः' का उच्चारण करे, फिर 'निबर्हणाय', इसके बाद हुं फट् । यह सौर्यास्त्र है ॥ ६४-६५ ॥

३८. दर्पणास्त्रम्

अत्रिर्दण्डी च खड्गीशो मायया च समन्वितः ।
अत्रिः सदीर्घो वह्निश्च मायी चाषाढकः स्मृतः ॥ ६६ ॥
अत्रिर्लोहितयुक्तश्च वह्निर्वर्म च फट् ततः ।
दर्पणास्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वारिबलमर्दनम् ॥ ६७ ॥

अत्रि (द), दण्डी (न), खड्गीश (व) जो माया (ई) से समन्वित हो, अत्रि (द) जो दीर्घ वह्नि (र) हो, इसके बाद (र) माया (इ) से युक्त आषाढ (त), फिर अत्रि (द) जो लोहित (प) एवं वह्नि र से युक्त हो, इसके बाद वर्म (कवचाय), इसके बाद (हुं फट्) यह सर्वारिबल मर्दन नामक अस्त्र है ॥ ६६-६७ ॥

३९. शोषणास्त्रम्

बको दन्ती च शुक्राद्यो मायायुक्तस्तलादिमः ।
वैरीति मानसेत्येतत् प्रयोज्यं वर्म चान्ततः ॥ ६८ ॥
एतच्छोषणमित्युक्तं विश्वारातिक्षयङ्करम् ।

बक (श), दन्ती (ओ), शुक्राद्य (ष) माया (ई) से युक्त तलादि मः, फिर वैरी मानस, अन्त में वर्म (कवचाय हुं) इसे शोषणास्त्र कहा जाता है, जो समस्त बैरियों का क्षय करने वाला है ॥ ६८ ॥

४०. सन्तापनास्त्रम्

आषाढो दीर्घसंयुक्तो लोहितो माययान्वितः ॥ ६९ ॥
आषाढो लोहितो वह्निर्भृगुर्भौतिकसंयुतः ।
मुण्डयुक्तं सवालि स्याद् भृगुराकाश एव च ॥ ७० ॥
स्त्रमूर्ते इति च न्यस्य सन्तापयपदं ततः ।
आवर्तयेदिमं मन्त्रं सन्तापनमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥

दीर्घ से संयुक्त आषाढ (त), माया (इ) से युक्त लोहित (प), फिर आषाढ़ (त), फिर लोहित (प), तदनन्तर वह्नि (र), फिर भौतिक (ऐ) से संयुक्त भृगु (स), फिर मुण्डयुक्त वाली (य), फिर भृगु, तदनन्तर आकाश (ह), फिर समूर्त्तें फिर दो बार सन्तापय पद । इसे सन्तापनास्त्र कहते हैं ॥ ६९-७१ ॥

४१. विलापनास्त्रम्

भृगुर्भौतिकसंयुक्तः सवह्निर्दण्डसंयुतः ।
महाकालः सदीर्घः स्याद् वाली दीर्घान्वितस्ततः॥ ७२ ॥
आत्मने तु पदं पश्चात् फडन्तः स्याद्विलापनम् ।

भृगु (स) जो भौतिक (ऐ) से युक्त वह्नि (र) तथा दण्ड (न) से युक्त हो, इसके बाद दीर्घ युक्त महाकाल (मा), फिर दीर्घयुक्त वाली (य), फिर आत्मने, फिर हुं फट्—यह विलापनास्त्र है ॥ ७२ ॥

४२. मदनास्त्रम्

हुं येमाहामरर्वादु व्युत्क्रान्तं मदनं स्मृतम्॥ ७३ ॥

'दुर्वार महामाये हुम्' यह मदनास्त्र है ॥ ७३ ॥

४३. कंदर्पदयितास्त्रम्

चलगण्डमथो व्योम सामराधीश्वरं ततः ।
महाकालः सदन्तः स्याद् व्योम मेषस्ततः परम्॥ ७४ ॥
मायाविन्निति च ब्रूयादस्त्रायेति पदं ततः ।
फडन्त एष मन्त्रस्तु कंदर्पदयितं स्मृतम्॥ ७५ ॥

चलगण्ड (व) व्योम (ह) अमराधीश्वर (ऊ) के सहित हो, सदन्त (ओ) के सहित महाकाल (म), फिर व्योम (ह) फिर मेष (न) इसके बाद मायाविन् फिर अस्त्राय फट्, यह कन्दर्पदयितास्त्र है ॥ ७४-७५ ॥

४४. पैशाचास्त्रम्

निहमोरप इत्येष व्युत्क्रान्तः सशिरोमनुः ।
पैशाचमिदमाख्यातमखिलारिविमर्दनम् ॥ ७६ ॥

'परमोहनि नमः' यह पैशाचास्त्र है जो समस्त शत्रुओं का मर्दन करने वाला है ।

४५. तामसास्त्रम्

अजेश्वरं त्रिरावृत्तं सदण्डं प्रथमं पठेत् ।
तिमिरेति पदं ब्रूयाद्ध्वस्तपर्यायमेव च॥ ७७ ॥
प्रतिसैन्यं पदं पश्चात् संवृण्विति समभ्यसेत् ।
एतत् तामसमित्युक्तमस्त्रं सर्वारिमोहनम्॥ ७८ ॥

दण्ड (न) के साथ अजेश्वर की तीन आवृत्ति (झं झं झं) फिर 'तिमिर' पद इसके

बाद हस्त का पर्याय (कर), इसके बाद 'प्रतिसैन्य' पद, इसके संवृणु पद की आवृत्ति यह तामसास्त्र है। जिससे सारे शत्रु मोहित हो जाते हैं ॥ ७७-७८ ॥

४६. सौमनास्त्रम्

विष्णुर्दन्ती महाकालः शिवोत्तममतः परम्।
शक्ते इति पदं पश्चात् परस्तम्भन इत्यतः ॥ ७९ ॥
वर्मास्त्रे च ततो ब्रूयादेतत् सौमनमुच्यते।

विष्णु (अ) दन्ती (ओ) के सहित महाकाल (म), फिर शिवोत्तम (द्य), फिर शक्ते परस्तम्भन कवचाय हुं अस्त्राय फट् यह सौमनास्त्र है ॥ ७९ ॥

४७. संवर्तास्त्रम्

भुजङ्गो दण्डवान् पश्चाद्रिपूनिति पदं वदेत् ॥ ८० ॥
क्षिपेति द्विः शिरोऽन्तं स्यात् संवर्तमिदमुत्तमम्।

भुजङ्ग (र) जो दण्डवान् (न्) से युक्त हो, इसके पश्चात् (रिपून्), फिर क्षिप की दो बार आवृत्ति (क्षिप क्षिप), इसके बाद शिर (नमः) यह संवर्त्तास्त्र है ॥ ८० ॥

४८. मौसलास्त्रम्

तिग्मेति वृत्ते इति च पदे पूर्वं पठेत् क्रमात् ॥ ८१ ॥
भिन्धीति च द्विरभ्यस्तं शिरोऽन्तं मौसलं स्मृतम्।

'तिग्म' इसके बाद 'वृत्ते' इन दो पदों को क्रमशः पढ़ लेने के बाद 'भिन्धि' इस पद का दो बार उच्चारण करे। फिर नमः कहे। यह मौसलास्त्र है ॥ ८१ ॥

४९. सत्यास्त्रम्

तारं प्रणामपर्यायं परमार्थाय इत्यथ ॥ ८२ ॥
रिपूनिति पदं ब्रूयाज्जहीत्येतद् द्विरभ्यसेत्।
सत्यमस्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ ८३ ॥

तार (ॐ), फिर प्रणाम का पर्याय (नमः), इसके बाद 'परमार्थाय' पद, फिर 'रिपून्' पद, तदनन्तर 'जहि' इसको दो बार पढ़े। यह सत्यास्त्र है। जो समस्त शत्रुओं का विनाशक है ॥ ८२-८३ ॥

५०. मायाधरास्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं देवायेति पदं वदेत्।
मायात्मने इति पदं पठित्वा तदनन्तरम् ॥ ८४ ॥
फडन्त एष मन्त्रस्तु मायाधरमुदीरितम्।

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), इसके बाद 'देवाय' यह पद, फिर 'मायात्मने' पढ़ कर 'हुं फट्' यह मायाधरास्त्र कहा जाता है ॥ ८४ ॥

५१. घोरास्त्रम्

शिवोत्तमः सदण्डश्च पुनश्चायं सदन्तकः ॥ ८५ ॥
वह्निस्ततो भुजङ्गः स्यादङ्घ्रीशेन च संयुतः ।
लोहितो दीर्घयुग्वाली चण्डायेति पदं वदेत् ॥ ८६ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु घोरमस्त्रमुदीरितम् ।

शिवोत्तम (घ) सदण्ड (न) के साथ, फिर सदन्त (ओ) के सहित, फिर वह्नि (र), भुजङ्ग (र), जो अङ्घ्रीश (ऊ) से समन्वित हो, फिर दीर्घयुग् लोहित (प), फिर वाली (य), तदनन्तर 'चण्डाय' यह पद, तदनन्तर 'नमः' पद का उच्चारण करे । यह घोरास्त्र कहा जाता है ॥ ८५-८६ ॥

५२. रत्यस्त्रम्

भृगुरौद्रद्विकं रेफं द्विः कृत्वा प्रादिकान् पुनः ॥ ८७ ॥
शिवोत्तमं ससत्यं च भुजङ्गेशस्ततः परम् ।
आषाढोऽमरयुङ्मेषं रत्यस्त्रं च पवित्रकम् ॥ ८८ ॥

भृगु (स) रौद्रद्विक् ङ को दो बार, फिर दो र को उच्चारण करे, फिर प्रादिक, फिर शिवोत्तम घ्, जो ससत्य (ऋ) हो, इसके बाद भुजङ्गेश (र), इसके बाद अमरेश, उनसे युक्त आषाढ़ (त) । यह परम पवित्र रत्यस्त्र कहा गया है ॥ ८७-८८ ॥

५३. अघोरास्त्रम्

चटं वीप्स्य पुनः प्रादिं क्रोधीशं व्योम चाभ्यसेत् ।
वारुणं च तथा कालं द्विर्वामनसबिन्दुकम् ॥ ८९ ॥
मीनमावृत्य मेषं च आषाढं लोहितं पुनः ।
शक्त्याधिकमघोरास्त्रं वर्मास्त्रान्तमुदीरितम् ॥ ९० ॥

च ट को दो-दो बार उच्चारण करे, फिर प्रादि, तदनन्तर क्रोधीश (क), फिर व्योम (ह), फिर वारुण (व), फिर काल (म) दो बार बिन्दु सहित, वामन (व), फिर मीन (ध) की आवृत्ति, तदनन्तर मेष न, आषाढ़ (त), फिर लोहित (प), तदनन्तर 'शक्त्यात्मक', फिर वर्मान्त (कवचाय हुम्) यह अघोरास्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'चट चट (?प्रादि) क ह व मं मं वध वध न त प शत्त्यात्मक कवचाय हुँ' ॥ ८९-९० ॥

५४. सौमास्त्रम्

भृगुं सानुग्रहाधीशं दण्डिनं प्रथमं पठेत् ।
द्विषन्तं पदमुच्चार्य तत उद्वेजयेति च ॥ ९१ ॥
अन्त्यं द्विरभ्यसेदेतत् सौमास्त्रमिदमीरितम् ।

भृगु (स), फिर अनुग्रह (ओ) के सहित दण्डी (न), फिर 'द्विषन्त' पद, तदनन्तर उद्वेजय पद की दो बार आवृत्ति । यह सौमास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सनो द्विषन्त उद्वेजय उद्वेजय' ॥ ९१ ॥

५५. त्वाष्ट्रास्त्रम्

प्रणवं हृदयं पूर्वं भृगुस्तेनैव संयुतः ॥ ९२ ॥
क्रोधी पिनाकी मेषश्च मायया च समन्वितः ।
महाकालद्वयं साग्निदीर्घयुक्तं ततः परम् ॥ ९३ ॥
भारभूतियुगाषाढो मीनो दीर्घसमन्वितः ।
धाम्ने इति पदं ब्रूयात् परायेति पदं ततः ॥ ९४ ॥
एतत् त्वाष्ट्रं समाख्यातं सर्वलोकनमस्कृतम् ।

प्रथम प्रणव (ॐ), फिर हृदय (नमः), फिर उसी से संयुक्त भृगु (स), फिर क्रोधी (क), पिनाकी (ल), फिर माया (इ) से समन्वित मेष (न), इसके वाद दो महाकाल (म), अग्नि जो दीर्घ से संयुक्त हो, फिर भारभूति (ऋ) से युक्त आषाढ़ (त), तदनन्तर दीर्घ से समन्वित मीन (छ), फिर 'धाम्ने' यह पद, इसके बाद 'पराय'। यह त्वाष्ट्र मन्त्र कहा जाता है जो सर्वलोक से नमस्कृत है ॥ ९२-९४ ॥

५६. दारुणास्त्रम्

विष्णुर्दण्डी पुनश्चाद्यो भुजङ्गो दीर्घसंयुतः ॥ ९५ ॥
आषाढो मायया युक्तो ज्वलनो बिन्दुसंयुतः ।
चतुर्मुखश्च क्रोधीशः फडन्तः स्यात्तु दारुणम् ॥ ९६ ॥

विष्णु (इ), दण्डी (न), फिर आद्य (अ), फिर दीर्घ से संयुक्त भुजङ्ग (र), फिर माया (इ) से संयुक्त आषाढ़ (त), फिर बिन्दु से संयुक्त ज्वलन, फिर चतुर्मुख (ज), फिर क्रोधीश (क), फिर 'हुं फट्' यह दारुणास्त्र है ॥ ९५-९६ ॥

५७. भगास्त्रम्

विपक्षादिममध्यान्तान् पठेद् विभजनेति च ।
प्रवृत्तायेति च पदं भगेति तदनन्तरम् ॥ ९७ ॥
आत्मने इति निर्दिश्य भगास्त्रं तत् फडन्तिमम् ।

आदि में, विपक्ष मध्य में, मध्यान्त, इसके बाद विभजन, फिर प्रवृत्ताय भगात्मने, उसके अन्त में फडन्त (हुं फट्) यह भगास्त्र कहा जाता है ॥ ९७ ॥

५८. शीतेष्वस्त्रम्

वकस्त्रिमूर्तिसहित आषाढश्च शिखी ततः ॥ ९८ ॥
पिनाकी खड्गिको मायी लोहितश्च तथोपरि ।
संवर्तकः सदण्डश्च क्षिपेति द्विः पठेत् ततः ॥ ९९ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु शीतेषुरभिधीयते ।

वक (श) जो त्रिमूर्ति (ई) से युक्त हो, इसके बाद आषाढ (व), फिर शिखी (फ), फिर पिनाकी (ल), खड्गिक (व) माया से संयुक्त लोहित (प), फिर संवर्त्तक क्ष जो

सदण्ड (न) के साथ हो इसके वाद दो बार क्षिप पद, अन्त में शिर नमः पढ़े । यह शीतेषु अस्त्र है ॥ ९८-९९ ॥

५९. मानवास्त्रम्

लोहितश्च भुजङ्गश्च दीर्घो वाल्यथ लोहितः ॥ १०० ॥
अग्निर्भान्तश्च वाली च सवह्निर्दीर्घसंयुतः ।
अत्रिर्दीर्घसमायुक्तो भेदिने इति च क्रमात् ।
भीमरूपाय चेत्युक्त्वा नमोऽन्तं मानवं स्मृतम् ॥ १०१ ॥

लोहित (प), भुजङ्ग (र) जो दीर्घ हो, इसके बाद वाली (य), फिर लोहित (प) फिर अग्नि (र), फिर भान्त (म), फिर वह्नि और दीर्घ से समन्वित वाली (य), तदनन्तर दीर्घ से युक्त अत्रि (द), इसके बाद 'भेदिने' यह पद, फिर 'भीमरूपाय' कह कर अन्त में नमः कहे । यह मानव मन्त्र कहा गया है ॥ १००-१०१ ॥

६०. रौद्रास्त्रम्

दहेति द्विरभ्यस्य पूर्वं प्रचण्ड-
प्रयोगं विधायाथ रूपेति पश्चात् ।
ततो रुद्रधाम्ने इति न्यस्य पश्चा-
च्छिरोवृत्तमेतत् परं रौद्रमाहुः ॥ १०२ ॥

'दह' पद का दो बार उच्चारण करे, इसके बाद पूर्व 'प्रचण्ड' पद का प्रयोग कर 'रूप' पद कहे, फिर 'रुद्रधाम्ने' ऐसा कहकर शिरोवृत्त (नमस्कार) कहे । यह रौद्रास्त्र कहा जाता है ॥ १०२ ॥

६१. प्रस्वापनास्त्रम्

अत्रिस्त्रिमूर्तिसहितोऽथ शिवोत्तमश्च-
साग्निर्भृगुस्त्वमरनायकसप्रयुक्तः ।
सुप्त्यन्तिमः करिपदं च ततः प्रयोज्यं
मायात्मिके इति फडन्तमसौ मनुः स्यात् ॥ १०३ ॥
प्रस्वापनं तदिदमाहुरशेषवैरि
सेनासमस्तपरिमोहनकारि मुख्यम् ।
इत्थं समस्तपरमास्त्रसमुद्धृतिस्तु
तत्त्वान्मया विरचिता परमेष्ठिसूनो ॥ १०४ ॥

अत्रि (द) जो त्रिमूर्ति (इ) से युक्त हो, इसके वाद शिवोत्तम घ, फिर अग्नि (र) के सहित भृगु (स), इसके बाद अमरनायक (ऊ), सुप्तिकारि, फिर मायात्मिके (ह्रीं), तदनन्तर हुं फट् । इसे प्रस्वापन मन्त्र कहते हैं । जो समस्त वैरियां की सेना को मोहन करने वाले मन्त्रों में प्रमुख है । हे श्रीनारद ! इस प्रकार मैंने तत्त्वों से पूर्ण समस्त परमास्त्रों का उद्धार विरोचित कर कहा ॥ १०४ ॥

तारं सद्योजातमाषाढमन्ते
खड्गेशानं भौतिकेनैव युक्तम्।
वह्निं मायासंवृतं तत्र चोक्त्वा
हृत्पर्यायं वर्म फट् चान्ततः स्यात्॥ १०५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २१५३ ॥

⁂

तार (ॐ) इसके बाद 'सद्योजात' (ज्ञों) से संयुक्त आषाढ़ (त), फिर भौतिक (ऐ) से संयुक्त खड्गेशान (व), माया (इ) से युक्त वह्नि (र) इतना कह कर हृदय का पर्याय (नमः) कहे, इसके अन्त में हुं फट् कहे ॥ १०५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ब्रह्मास्त्रादि-मन्त्र स्वरूप निर्णय नामक चौंतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३४ ॥

⁂

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

संहारास्त्रस्वरूपनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म-जन्मान्तरों के अनेक करोड़ों पापों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

संहारास्त्रस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

भगवन् पूर्वमाख्यातं संहारास्त्राण्यशेषतः ।
सुदर्शनस्यापराङ्गान्निर्जग्मुरिति चेश्वर ॥ १ ॥
तेषां स्वरूपविज्ञाने वर्तते मे कुतूहलम् ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण यदि सानुग्रहो मयि ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आप पहले कह चुके हैं कि समस्त संहारास्त्र सुदर्शन के अपराङ्ग से उत्पन्न हुये हैं । हे ईश्वर ! उनके स्वरूप को जानने के लिए मुझे बहुत कुतूहल हो रहा है । अत: यदि आप मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं तो उन सभी के स्वरूपों का वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् परमं गुह्यं पुरा नारायणेरितम् ।
भक्तोऽसीति तव स्नेहाद् वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! यह प्रश्न तो बहुत गोपनीय है । इसे तो श्रीनारायण ने मुझे बताया है । आप मेरे भक्त हो अत: स्नेह वश आपसे कहता हूँ ॥ ३ ॥

१. सत्यवदस्त्रम्

लोहितोऽग्निसमायुक्तः खड्गीशो भारभूतिमान् ।

आषाढयुग्मं मुण्डश्च मायी स्यात् खड्गनायकः ॥ ४ ॥
साग्न्याषाढयुगं पश्चात् क्रोधीशं निर्दिशेत् ततः ।
परमेष्ठिन्निति ब्रूयादथो ऋतमिति क्रमात् ॥ ५ ॥
पिबेति सशिरोमन्त्रः सत्यवानिति विश्रुतः ।

लोहित (प) जो अग्नि (र) से संयुक्त हो खड्गीश (व) भारभूतिमान् (ऋ) आषाढ़ युग्म (त्त जो) मुण्ड (न) मायी (इ) से संयुक्त हो (व) खड्गनायक (?) अग्नि (रेफ) सहित आषाढ़युक् (त), इसके बाद क्रोधीश (क), इसके बाद 'परमेष्ठिन्' ऋतं पिव' शिर (नमः) के सहित यह मन्त्र सत्यवान् कहा जाता है ॥ ४-६ ॥

२. सत्यकीर्त्यस्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं सत्यधाम्न इति क्रमात् ॥ ६ ॥
शमयेति द्विरावृत्तं सत्यकीर्तिरिति स्मृतम् ।

तार (ॐ), के बाद हृदय (नमः), फिर 'सत्यधाम्ने', फिर 'शमय' पद की दो आवृत्ति (शमय शमय) । यह सत्यकीर्त्ति मन्त्र है ।

मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः सत्यधाम्ने शमय शमय' ॥ ६ ॥

३. धृष्टास्त्रम्

अत्रिः सामरनाथश्च साग्निः पञ्चान्तकः स्मृतः ॥ ७ ॥
महाकालश्च मज्जा च साग्निश्चोमापतिस्तथा ।
प्रसादयेत्यथाभ्यस्तं धृष्टमस्त्रमिदं विदुः ॥ ८ ॥

अत्रि (द) जो अमरनाथ (इ) से युक्त हो, अग्नि (र) के सहित पञ्चान्तक (ग), इसके बाद महाकाल (म), इसके बाद मज्जा (?), फिर अग्नि (र) के सहित उमापति (ण), इसके बाद 'प्रसादय प्रसादय' कहे । यह धृष्टमन्त्र कहा गया है ॥ ७-८ ॥

४. रभसास्त्रम्

क्रोधी पिनाकी मायी स्यात् खड्गी मायासमन्वितः ।
अत्रिः पिनाकी मुण्डश्च दीर्घयुक्तो रसस्तथा ॥ ९ ॥
अग्निर्द्विरण्डश्च भृगुर्दीर्घो वाली ततः परम् ।
नमोऽन्त एष मन्त्रस्तु रभसः परिकीर्तितः ॥ १० ॥

क्रोधी (क) पिनाकी (ल) जो मायी (इ) से युक्त हो, खड्गी (?), माया (ई) के सहित (व), फिर अत्रि (द), फिर पिनाकी (ल), फिर मुण्ड फिर दीर्घयुक्त रस (?), अग्नि (र) द्विरण्ड (?) फिर भृगु (स जो) दीर्घ के सहित हो, फिर वाली (य) इसके अन्त में नमः यह रभस मन्त्र कहा जाता है ॥ ९-१० ॥

५. प्रतीहारतरास्त्रम्

तारं शिरोयुतं मन्त्रं प्रतीहारतरं विदुः ।

६. पराङ्मुखास्त्रम्

लोहितो वह्निसंयुक्तः स्तुतेति च पदं ततः ॥ ११ ॥
स्तोभात्मने इति ब्रूयात् पराङ्मुख इति क्रमात् ।
आयेति च हृदन्तं तु पराङ्मुखमुदाहृतम् ॥ १२ ॥

तार (ॐ) शिरो युतं (नमः) यह प्रतीहारास्त्र मन्त्र कहा जाता है । लोहित (प) जो वह्नि (र) से संयुक्त हो, इसके बाद 'स्तुत' पद, फिर 'स्तोभात्मने', फिर 'पराङ्मुखाय नमः' । यह पराङ्मुखास्त्र कहा जाता है ॥ ११-१२ ॥

७. अवाङ्मुखास्त्रम्

अमरेशस्तथात्रिश्च सवाल्याषाढनायकः ।
विद्रावणायेति पदमवेति तदनन्तरम् ॥ १३ ॥
नतेति च प्रयोक्तव्यं फलाय तदनन्तरम् ।
शिरोयुक्तमिमं मन्त्रं मन्त्रिणोऽवाङ्मुखं विदुः ॥ १४ ॥

अमरेश (उ), अत्रि (द), वाली (य) के सहित आषाढ़ नायक (त), इसके बाद 'विद्रावणाय' यह पद, इसके बाद 'अव', फिर 'नत' इस पद का प्रयोग करना चाहिए, फिर 'फलाय' पद, इसके बाद शिरोयुक्त (नमः) कहना चाहिए । इस मन्त्र को अवाङ्मुख मन्त्र कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

८. लक्षाक्षास्त्रम्

नियुतापरपर्यायं भेदिने इत्यनन्तरम् ।
निरासकेति चावृत्तं पदमायेति चेत्यथ ॥ १५ ॥
हृदयान्तमिमं मन्त्रं लक्षाक्षं परिचक्षते ।

नियुत का अपर पर्याय (दशलक्ष), इसके बाद 'भेदिने', फिर 'निरासकाय' पद की दो आवृत्ति (निरासकाय निरासकाय), इसके बाद हृदयान्त (नमः) यह पद उच्चारण करना चाहिए । इस मन्त्र का नाम 'लक्षाक्ष' कहा जाता है ॥ १५ ॥

९. विषमास्त्रम्

खड्गीशो मायया युक्तः कूर्मो मायासमन्वितः ॥ १६ ॥
आषाढो वह्निसहितो लोहितश्चाग्निसंयुतः ।
भृगुः सदीर्घो वह्निश्च मर्षयेति द्विरभ्यसेत् ॥ १७ ॥
एतद्विषममित्युक्तमस्त्रं परमदुर्जयम् ।

खड्गीश (व) जो माया (ई) से संयुक्त हो, इसके बाद कूर्म (च) जो माया (ई) से संयुक्त हो । फिर आषाढ़ (त) जो वह्नि (र) से संयुक्त हो । इसके बाद लोहित (प) जो अग्नि (र) से संयुक्त हो, इसके बाद भृगु (स) जो दीर्घ हो, इसके बाद अग्नि (र), इसके अनन्तर 'मर्षय' पद दो बार (मर्षय मर्षय) कहना चाहिए । इसे विषमास्त्र कहते हैं जो परम दुर्जय है ॥ १६-१७ ॥

१०. दृढनाभास्त्रम्

शान्तिं पदं न्यसेत् पूर्वं कुर्वित्येतदतः परम्॥ १८ ॥
निबिडेति ततो न्यस्य गात्रशब्दं ततः परम्।
विष्कम्भेति शिरोऽन्तं च दृढनाभमुदाहृतम्॥ १९ ॥

प्रथम 'शान्ति' पद का उच्चारण करे। इसके अनन्तर 'कुरु' शब्द का, पुनः 'निविड', तदनन्तर 'गात्र', इसके बाद 'विष्कम्भ' शब्द का, तदनन्तर शिरोऽन्त (नमः) शब्द का उच्चारण करे। इसे 'दृढनाभ' अस्त्र कहते हैं॥ १८-१९ ॥

११. संहारकास्त्रम्

हास्वा यक्राचतसृवि मोन ओं व्युत्क्रमो मनुः।
संहारकमिदं चास्त्रं विदुः पूर्वे महर्षयः॥ २० ॥

'ॐ नमो विसृतचक्राय स्वाहा' पूर्व के महर्षियों ने इसे संहारास्त्र कहा है॥ २० ॥

१२. दशाक्षास्त्रम्

खड्गीशो मायया युक्तस्तेन युक्तो बकस्तथा।
वान्तो दीर्घसमायुक्त आषाढो मुण्ड एव च॥ २१ ॥
दीर्घी खड्गेश्वरो वह्निरुमेशो दीर्घसंयुतः।
वाली हृदन्तो मन्त्रोऽयं दशाक्षः परिपठ्यते॥ २२ ॥

माया (ई) से युक्त खड्गीश (व) तथा उससे भी संयुक्त वक (श), इसके बाद वान्त (ल) वर्ण, इसके बाद दीर्घ से समायुक्त आषाढ़ (त), इसके बाद 'मुण्ड' पद, फिर दीर्घ वर्ण से संयुक्त खड्गेश्वर (व) और 'वह्नि' (र), फिर दीर्घ संयुक्त उमेश (ण), इसके बाद वाली (य), तदनन्तर हृत (नमः) कहना चाहिए। यह मन्त्र दशाक्ष के नाम से पढ़ा जाता है॥ २१-२२ ॥

१३. दशशीर्षास्त्रम्

तारपूर्वं च हृदयं चलगण्डं ततो न्यसेत्।
अम्बरं सामराधीशं वक्त्रायेति पदं ततः॥ २३ ॥
वज्रवारणशब्दौ च आयान्तं शतवक्त्रकम्।
शिवोत्तमः सदन्तः स्यादग्निदीर्घसमन्वितः॥ २४ ॥
भृगुराषाढवान् साग्निः कर्त्तनायेति विन्यसेत्।
दशेति च पदं पश्चाच्छीर्षायेति पदं ततः॥ २५ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु दशशीर्षमुदाहृतम्।

तारपूर्व हृदय् (ॐ नमः) इसके बाद चलगण्ड (ब), इसके बाद अम्बर (ह), जो अमराधीश (उ) से युक्त हो, इसके बाद 'वक्त्राय' यह पद, फिर 'वज्र वारण' शब्द, फिर 'आयान्तं शतवक्त्रकम्', फिर सदन्त ओ से युक्त शिवोत्तम (द्य), फिर दीर्घसमन्वित्

अग्नि (र), फिर अग्नि (रेफ) सहित भृगु (स) जो आषाढ़वान् (त) से युक्त हो, फिर 'कर्त्तनाय' यह पद, इसके बाद 'दशशीर्षाय', फिर शिरोन्त (नमः)। यह मन्त्र 'दशशीर्ष' कहा जाता है ॥ २३-२५ ॥

१४. शतोदरास्त्रम्

तारं प्रणामपर्यायं लुप्तास्त्रेति पदं ततः ॥ २६ ॥
जालायेति प्रयोक्तव्यं बहूदरपदं ततः ।
आयेत्यन्ते प्रयोक्तव्यं शतोदरमिदं विदुः ॥ २७ ॥

तार (ॐ), इसके बाद प्रणाम का पर्याय (नमः), इसके बाद 'लुप्तास्त्र' पद, फिर 'जालाय', तदनन्तर 'बहूदराय' यह पद प्रयोग करना चाहिए। इसे लोग शतोदरास्त्र कहते हैं ॥ २६-२७ ॥

१५. पद्मनाभास्त्रम्

लोहितः पावकश्चैव नकुलीशस्ततः परम् ।
आषाढो मायया युक्तः प्रवृत्त इति च क्रमात् ॥ २८ ॥
नाशनायेत्यथाभ्यस्तं स्वस्त्यन्तं पद्मनाभकम् ।

लोहित (प), पावक (र), इसके बाद नकुलीश (ह), इसके बाद माया (ई) से युक्त आषाढ़ (त), इसके बाद 'प्रवृत्तनाशनाय' इस पद को दो बाद उच्चारण कर अन्त में 'स्वस्ति' पद कहे। यह पद्मनाभास्त्र मन्त्र है ॥ २८ ॥

१६. महानाभास्त्रम्

महाकालोऽम्बरं दीर्घं लोहितो दीर्घसंयुतः ॥ २९ ॥
बकः खड्गीश्वरो मायी नाशनायेति च न्यसेत् ।
चक्रात्मन इति ब्रूयात् स्वस्त्यन्तो मन्त्रनायकः ॥ ३० ॥
महानाभमिदं प्राज्ञा वदन्त्यखिलसाधकम् ।

महाकाल (म), तदनन्तर दीर्घ अम्बर (ह), फिर दीर्घ संयुत लोहित (प), फिर बक (श), खड्गीश्वर (व) जो माया (ई) से युक्त हो, इसके बाद 'चक्रात्मने' पद, इसके अन्त में 'स्वस्ति' पद का उच्चारण करे। इस मन्त्र नायक को प्राज्ञ लोग महानाभास्त्र मन्त्र कहते हैं जो समस्त कार्यों का साधक है ॥ २९-३० ॥

१७. दुन्दुनाभास्त्रम्

बकश्चैव महाकालो मायी चाषाढनायकः ॥ ३१ ॥
शूलायेति प्रयोक्तव्यं चण्डनाभाय चेत्यतः ।
स्वस्ति चैव द्विरभ्यस्तं दुन्दुनाभमिदं विदुः ॥ ३२ ॥

बक (श), माया (ई) से युक्त महाकाल (म), इसके बाद आषाढ़ नायक (त), फिर 'शूलाय', फिर 'चण्डनाभाय', इसके बाद दो बार 'स्वस्ति' पद का प्रयोग करना चाहिए। वह दुन्दुनाभास्त्र मन्त्र कहा गया है ॥ ३१-३२ ॥

१८. धृतिमाल्यस्त्रम्

मेषो मायी च साङ्घ्रीशो भृगुश्चैवात्रिरेव च ।
मायायुक्तस्तथाषाढो दीर्घदण्डसमन्वितः ॥ ३३ ॥
क्रोधी च सामरेशः स्याद् बको दीर्घसमन्वितः ।
वाली दीर्घसमायुक्तो निवारितपदं ततः ॥ ३४ ॥
तेजसे इति च ब्रूयात् स्वस्त्यन्तोऽयं महामनुः ।
धृतिमालीति विख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ ३५ ॥

माया (इ) से संयुक्त मेष (न), अङ्घ्रीश (ऊ) के सहित भृगु (स), फिर अत्रि (द) जो माया (इ) से युक्त हो, इसके बाद आषाढ (त) जो दीर्घ दण्ड (थ) से समन्वित हो, तदनन्तर अमरेश (उ) के सहित क्रोधी (क), फिर दीर्घसमन्वित बक (श), फिर दीर्घयुक्त वाली (य), इसके बाद 'निवारित' पद, फिर 'तेजसे' पद, उसके अन्त में स्वस्ति उच्चारण करे । यह महामन्त्र धृतिमाली नाम से विख्यात है जो सर्वत्र पूजित है ॥ ३३-३५ ॥

१९. रुचिरास्त्रम्

संवर्तकः सामरेशो मीनो बिन्दुसमन्वितः ।
मायी च क्षामयेत्येतदावृत्तं वृत्तिमान् मनुः ॥ ३६ ॥
द्विरावृत्तः प्रहरणं शं तनोतु पदं ततः ।
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु रुचिरः परिकीर्तितः ॥ ३७ ॥

अमरेश (उ) के सहित संवर्त्तक (क्ष), विन्दु से युक्त मीन (द्यं), इसके बाद मायी (ई), फिर दो बार 'क्षामय' यह पद, इसके बाद दो बार 'प्रहरण' शब्द, इसके बाद 'शं तनोतु' पद के अन्त में शिर (नमः) कहे । यह रुचिर मन्त्र कहा जाता है ॥ ३६-३७ ॥

२०. पितृसौमनसास्त्रम्

लोहितो मायया युक्त आषाढो भारभूतिमान् ।
देवसारेत्यतः पाठ्यं सर्वाभयपदं ततः ॥ ३८ ॥
प्रदेत्येतत् प्रयोक्तव्यं सर्वशान्तिकराय च ।
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु पितृसौमनसं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

माया (इकार) से युक्त लोहित (प), पुनः भारभूति (ऋ) से युक्त आषाढ़ (त), इसके बाद 'देवसार' पद, फिर 'सर्वाभय' पद, फिर 'प्रद', इसके बाद 'सर्वशान्तिकराय', इसके अन्त में शिर (नमः) । यह पितृसौमनस नामक मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'पितृदेवसार सर्वाभयप्रद सर्वशान्तिकराय नमः' ॥ ३८-३९ ॥

२१. विधूतास्त्रम्

तारं तथा च हृदयं खड्गीशो मायया युतः ।
मीनश्चाङ्घ्रीशसंयुक्तं आषाढो दीर्घसंयुतः ॥ ४० ॥
चण्डो मायी पिनाकी चाप्याषाढो दीर्घसंयुतः ।

लोहितश्च करायेति पदं तत उदीर्य च ॥ ४१ ॥
परमेत्यथ धाम्ने च विधूतमिदमुत्तमम् ।

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), माया (इकार) से युक्त खड्गीश (व), अङ्घ्रीश (ऊ) से युक्त मीन (ध), फिर दीर्घ से संयुक्त आषाढ़ (त), फिर माया (इ) से युक्त चण्ड (ख), फिर पिनाकी (ल), तदनन्तर दीर्घसंयुक्त आषाढ़ (त), फिर लोहित (प), फिर 'कराय' पद का उच्चारण कर 'परमधाम्ने' यह उच्चारण करना चाहिए । इस उत्तम मन्त्र का नाम विधूतास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः विधूताखिलतापकराय परमधाम्ने' ॥ ४०-४१ ॥

२२. मकरास्त्रम्

नमस्त्रुटितशब्दौ च पठित्वा प्रथमं ततः ॥ ४२ ॥
शस्त्रास्त्रशब्दौ चोच्चार्य शक्तये इत्यनन्तरम् ।
शक्तिशालिन इत्युक्त्वा मकरायेति च क्रमात् ॥ ४३ ॥
प्रवृत्तास्त्रपदे चैव महार्णवपदं ततः ।
विभेदिन इति ब्रूयादेतन्मकरमुत्तमम् ॥ ४४ ॥

सर्वप्रथम 'नमस्त्रुटित' इन दो पदों को पढ़कर फिर 'शस्त्रास्त्र' शब्द का उच्चारण कर 'शक्तये', इसके अनन्तर 'शक्तिशालिने' पद, फिर 'प्रवृत्तास्त्रमहार्णव पद', फिर 'विभेदिने' पद कहे । यह सर्वोत्तम मकरास्त्र मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'नमस्त्रुटितशस्त्रास्त्रशक्तये शक्तिशालिने मकराय प्रवृत्तास्त्रमहार्णवविभेदिने' ॥ ४३-४४ ॥

२३. करवीरसमास्त्रम्

तारपूर्वं नमश्चोक्त्वा तिरस्कृतपदं ततः ।
गदाशब्दं समुच्चार्य वीर्यायेति ततः पठेत् ॥ ४५ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु करवीरसमं स्मृतम् ।

पूर्व में तार (ॐ) और नमः इतना कह कर 'तिरस्कृत' पद, फिर 'गदा' शब्द का उच्चारण कर 'वीर्याय' इतना पढ़े, अन्त में शिर (नमः) पढ़े । यह करवीरसमास्त्र मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः तिरस्कृत गदावीर्याय नमः' ॥ ४५ ॥

२४. धनास्त्रम्

तारं प्रणामपर्यायं लोहितं वह्निसंयुतम् ॥ ४६ ॥
आषाढोऽनन्तसंयुक्तो लोहितो मीन एव च ।
मुण्डः शिवं कुरुपदं द्विरावृत्तं धनं स्मृतम् ॥ ४७ ॥

तार (ॐ) फिर प्रणामपर्याय (नमः), फिर वह्नि (र) से संयुक्त लोहित (प), तदनन्तर अनन्त (आ) से संयुक्त आषाढ़ (त), तदनन्तर लोहित (प), फिर मीन (ध), फिर मुण्ड (न), फिर 'शिवं कुरु' को दो बार पढ़ना चाहिए । 'ॐ नमः प्रतापधन शिवं कुरु शिवं कुरु'—यह धनास्त्र मन्त्र है ॥ ४७ ॥

२५. धान्यास्त्रम्

वेतवाजीर्तरापेति व्युत्क्रमेण समीरितम् ।
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु धान्यमित्युच्यते बुधैः ॥ ४८ ॥

व्युत्क्रम करके पठित 'परार्त्तजीवातवे नमः'—इस मन्त्र को बुद्धिमान् लोग धान्यास्त्र मन्त्र कहते हैं ॥ ४८ ॥

२६. ज्यौतिपास्त्रम्

लोहितो वह्निसंयुक्तश्चण्डाद्यन्तौ ततः क्रमात् ।
बको मुण्डः समायी स्यात् सवह्निर्लोहितस्तथा ॥ ४९ ॥
बको विषं ततो मुण्डो मायी प्रकटितेति च ।
अथ विश्वं पदं चोक्त्वा ततः प्रशमयेति च ॥ ५० ॥
द्विरभ्यस्तमिमं मन्त्रं ज्यौतिषं परिचक्षते ।

वह्नि (र) से संयुक्त लोहित (प), इसके बाद चण्डादि (क) अन्त में, फिर बक (श) मायी (ई) से युक्त मुण्ड, वह्नि (र) के साथ लोहित (प), बको (श), विषं (?), 'मुण्डो मायी प्रकटित' (?) फिर विश्वं पद कहकर 'प्रशमय' पद का दो बाद उच्चारण करे, इसको ज्यौतिषास्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'प्रचण्ड चण्ड प्रकटित(?)विश्वं प्रशमय प्रशमय' ॥ ४९-५१ ॥

२७. कृशनास्त्रम्

क्रोधी पिनाकी मायी स्यादाषाढं च ततः परम् ॥ ५१ ॥
क्रोधी चानन्तसहितो बकयुग् दीर्घमग्निमत् ।
मुण्डो वाली शिरोऽन्तश्च कृशनं समुदाहृतम् ॥ ५२ ॥

क्रोधी (क), पिनाकी (ल), मायी (ई), इसके बाद आपाढ़ (त), फिर अनन्त (आ) सहित क्रोधी (क), फिर दो बार बक (श) जो दीर्घ एवं अग्नि (र) से युक्त हो, फिर मुण्ड (न), फिर वाली (य), इसके बाद शिरोऽन्त (नमः) । यह कृशन मन्त्र कहा गया है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'कलिताकाशशरानय नमः' ॥ ५१-५२ ॥

२८. नैराश्यास्त्रम्

मायी खड्गी शिखी चैव महामायी पिनाकवान् ।
कृतचक्रेति शब्दौ च चक्रायेति च निर्दिशेत् ॥ ५३ ॥
वषडन्तमिमं मन्त्रं नैराश्यं परिचक्षते ।

मायी (इ), खड्गी (व), शिखी (फ), इसके बाद महामायी (ई), पिनाकी (ल), सहित 'कृतचक्र', फिर 'चक्राय' उच्चारण कर अन्त में 'वषट्' शब्द का उच्चारण करे, इसे नैराश्यास्त्र मन्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'विफलीकृतचक्र चक्राय वषट्' ॥ ५३-५४ ॥

२८. विमलास्त्रम्

खड्गेशः प्रथमं मायी चाषाढो दीर्घवह्निमान् ॥ ५४ ॥
भृगुश्च मायासंयुक्त आषाढो दीर्घसंयुतः ।
मायी चण्डः पिनाकी च सानन्तोऽतः परं क्रमात् ॥ ५५ ॥
भृगुः साषाढदीर्घाग्निर्वाली च तदनन्तरम् ।
विमलायेति चोच्चार्य शिरोऽन्तं विमलं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

प्रथम माया (ई) से युक्त खड्गेश (व), दीर्घ वह्नि (र) से युक्त आषाढ़ (त), माया (ई) से संयुत भृगु (स), दीर्घ से युक्त आषाढ़ (त), फिर माया (इ) से संयुक्त चण्ड (स्व), अनन्त (आ) के सहित पिनाकी (ल), इसके बाद भृगु (स), फिर आषाढ़ (त) और दीर्घाग्नि (र), फिर वाली (य), फिर 'विमलाय' का उच्चारण कर अन्त में शिर (नमः) का उच्चारण करे । यह विमलास्त्र मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'वित्रासिताखिलासत्राय विमलाय नमः' ॥ ५४-५६ ॥

३०. योगन्धरास्त्रम्

भृगुर्लान्तः सवह्निश्च मायाशब्दं पठेत् ततः ।
मयास्त्रायेति च पदं तमोबर्हण इत्यपि ॥ ५७ ॥
मूर्तये इति निर्दिश्य योगं चेति ततः पठेत् ।
धरायेति पदं चापि महते इत्यनन्तरम् ॥ ५८ ॥
भीषणायेति च ब्रूयादभ्यस्तं हृदयं ततः ।
योगन्धरमिदं प्रोक्तमस्त्रं निखिलवन्दितम् ॥ ५९ ॥

भृगु (स), सवह्नि लान्त (वर), फिर माया शब्द, फिर 'मयास्त्राय' 'तमोबर्हण' पद, फिर 'मूर्त्तये' का उच्चारण कर 'योगन्धराय' पद, इसके बाद 'महते' पद, फिर 'भीषणाय' यह पढ़े, इसके बाद हृदय को दो बार (नमो नमः) पढ़े । इसे योगन्धरास्त्र मन्त्र कहते हैं जो सबसे वन्दित है ।

मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्वमायी मयास्त्राय तमोबर्हणमूर्त्तये योगन्धराय महते भीषणाय नमो नमः' ॥ ५७-५९ ॥

३१. विनिद्रास्त्रम्

मुण्डो मायी तथाकाश आषाढश्च ततः परम् ।
मेषो मायायुतोऽत्रिश्च सदीर्घाग्निस्ततः परम् ॥ ६० ॥
मुद्रायेति शिरोऽन्तोऽयं विनिद्रमभिधीयते ।

मुण्ड (?), मायी (ईकार के सहित) आकाश (ह), इसके बाद आषाढ़ (त), फिर मेष (न) जो माया (ई) से युक्त हो, अत्रि (द) जो दीर्घ सहित अग्नि (र) से युक्त हो, फिर 'मुद्राय' इसके अन्त में शिर (नमः) । इसे विनिद्रास्त्र मन्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'निहतनिद्रा मुद्राय नमः' ॥ ६० ॥

३२. नैद्रास्त्रम्

विषमग्न्यनिलोपेतं सषष्ठस्वरबिन्दुकम् ॥ ६१ ॥
पिण्डमेतच्छिरोऽन्तं च नैद्रमस्त्रविदो विदुः ।

अग्नि (र), अनिल (य) से युक्त विष (?), विन्दु के सहित षष्ठस्वर (ॐ), फिर 'पिण्डम्' अन्त में शिर 'नमः' कहे । इसे नैद्रास्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'रय ? ॐ पिण्डं नमः' ॥ ६१ ॥

३३. प्रमथनास्त्रम्

प्रथमं तारमुच्चार्य हृदयं च ततः परम् ॥ ६२ ॥
विषं ततश्च दण्डीशं मायया च समन्वितम् ।
आषाढं च बकं चैव पठित्वा तदनन्तरम् ॥ ६३ ॥
ततः क्रोधी च साषाढश्चण्डीशेन समन्वितः ।
प्रसादयेत्यथावृत्तमस्त्रं प्रमथनं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

प्रथम तार (ॐ) उच्चारण कर फिर हृदय 'नमः' का उच्चारण करे । फिर विष् इसके वाद माया (ई) संयुक्त दण्डीश (न), फिर आषाढ़ (त) फिर वक (श) पढ़ने के बाद चण्डीश (ए) से संयुक्त आषाढ़ (त) सहित क्रोधी (क) इसके वाद दो वार प्रसादय पद । यह 'ॐ नमः विषधीत शतेक्त प्रसादय प्रसादय' प्रमथनास्त्र मन्त्र है ॥ ६२-६४ ॥

३४. सार्चिर्मल्यस्त्रम्

वरुणेन समायुक्तो दीर्घयुक्तश्चतुर्मुखः ।
ततः पिनाकी सानन्तो लान्तो मायी ततः परम् ॥ ६५ ॥
ज्वालान्तो मायया युक्तः पिनाकी च ततः परम् ।
आद्यं चतुर्थवर्गस्य महासीति पठेत् ततः ॥ ६६ ॥
शक्त इत्यपि वक्तव्यं महामहस इत्यपि ।
मर्षयेति द्विरभ्यस्तं सार्चिर्मालिरयं मनुः ॥ ६७ ॥

वरुण (व) से युक्त दीर्घयुक्त चतुर्मुख (ज), इसके बाद अनन्त (आ) से युक्त पिनाकी (ल), माया (ई) से युक्त लान्त (व), फिर ज्वाला (?) इसके बाद माया (ई) से युक्त पिनाकी (ल), इसके बाद चतुर्थवर्ग का आदि (त), फिर महासीति फिर शक्त, फिर महामहस । फिर दो बाद 'मर्षय', यह सार्चिमाली अस्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'वाजालवी?लीत महासीति शक्त महामहसे मर्षय मर्षय ॥ ६५-६७ ॥

३५. कामरूपास्त्रम्

हास्वा नञ्जभरञ्चासरपत्तवृप्र इत्यपि ।
रस्वा इति व्युत्क्रमेण कामरूपमिदं स्मृतम् ॥ ६८ ॥

व्युत्क्रम से पठित 'स्वारप्रवृत्त परसञ्चार भञ्जन स्वाहा' यह कामरूपास्त्र है ॥ ६८ ॥

३६. कामरुच्यस्त्रम्

ओं नमो इत्युपक्रम्य मुण्डो मायासमन्वितः ।
तृतीयस्वरसंयुक्तश्चण्डो रान्तस्ततः परम् ॥ ६९ ॥
कबन्धेति पदं ब्रूयात् सन्धानायेति चान्ततः ।
शिखान्तोऽयं कामरुचिर्मन्त्रः पूर्वैः समीरितः ॥ ७० ॥

नमो से आरम्भ कर माया समन्वित मुण्ड (न), फिर तृतीय स्वर (इ) से संयुक्त चण्ड (ख), इसके बाद रान्त (ल), फिर 'कवन्ध' पद, तब अन्त में 'सन्धानाय', फिर शिखान्त (शिखायैं वौषट्) लगावे । इसे पूर्व के लोगों ने कामरुचि नामक अस्त्र मन्त्र कहा है ।

मन्त्र का स्वरूप—'नमो निखिल कवन्ध सन्धानाय शिखायैं वौषट्' ॥ ६९-७० ॥

३७. मोहनास्त्रम्

भौतिकं दण्डसंयुक्तमङ्कुशं च ततो वदेत् ।
मोहवारिणिशब्दं च शिरोऽन्तं मोह उच्यते ॥ ७१ ॥

भौतिक (ऐ) जो दण्ड (थ) से संयुक्त हो, इसके बाद अङ्कुश (?) कहे । इसके बाद 'मोहवारिणि', इसके अन्त में शिर (नमः) कहे । यह मोहनास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ऐंक्रौंमोहवारिणि नमः' ॥ ७१ ॥

३८. आवरणास्त्रम्

खड्गीशो दीर्घसंयुक्तो वह्निर्मायासमन्वितः ।
आषाढश्च महाकालो व्योम दीर्घान्वितं ततः ॥ ७२ ॥
महाकालश्च सानन्तो वाली चण्डीशसंयुतः ।
शिरोऽन्तोऽयं महामन्त्रः प्रोक्तमावरणं बुधैः ॥ ७३ ॥

दीर्घ से संयुक्त खड्गीश (ध), माया (इ) से समन्वित वह्नि (र), फिर आषाढ़ (त), महाकाल (म), तदनन्तर दीर्घयुक्त व्योम (ह), इसके बाद अनन्त (आ) के सहित महाकाल (म), चण्डीश (ए) से संयुक्त वाली (य), इसके अन्त में शिर (नमः) कहे । इसको बुद्धिमानों ने आवरण नामक महामन्त्र कहा है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'धारित महामाये नमः' ॥ ७२-७३ ॥

३९. जृम्भकास्त्रम्

द्विरण्डौ द्वौ क्रमाज्ज्यस्य सदण्डौ चतुराननम् ।
मुण्डमुच्चार्य परतः स्वस्तीति पदमुद्धरेत् ॥ ७४ ॥
शिरोऽन्तोऽयं महामन्त्रो जृम्भकः परिकीर्तितः ।

दण्ड (ञ) के सहित दो द्विरण्ड (भ ?) का क्रमशः उच्चारण कर चतुरानन (ज), इसके बाद 'मुण्ड' का उच्चारण करे । तदनन्तर 'स्वस्ति' पद का उच्चारण कर अन्त में

शिर (नमः) कहे । इसे जृम्भक नामक महामन्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'भञ्ज भञ्जन स्वस्ति नमः' ॥ ७४ ॥

४०. सर्वनाभकास्त्रम्

चण्डोऽनन्तसमायुक्तो मायी चात्रिस्ततः परम् ॥ ७५ ॥
आद्यश्चतुर्थवर्गस्य सेनापदमनन्तरम् ।
जीवातव इति ब्रूयाच्छिरोऽन्तं सर्वनाभकम् ॥ ७६ ॥

अनन्त (आ) से संयुक्त चण्ड (ख), इसके बाद माया (ई) से संयुक्त अत्रि (द), फिर चतुर्थवर्ग का आद्यक्षर (त), इसके बाद सेना पद, फिर 'जीवातवे' इस पद को कह कर अन्त में शिर (नमः) का उच्चारण करे । यह सर्वनाभक नामक मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'खादीत सेना जीवातवे नमः' ॥ ७६ ॥

४१. भृशाश्वतनयास्त्रम्

वेगाद्यन्तौ क्रमादुक्त्वा विश्वाद्यं च ततः परम् ।
जितशब्दमथोच्चार्य वैनतेयाय इत्यपि ॥ ७७ ॥
शिरोऽन्तोऽयं मनुः प्रोक्तो भृशाश्वतनया इति ।

आदि अन्त में क्रमशः वेग शब्द का उच्चारण कर इसके बाद 'विश्वाद्यं' पद, फिर 'जित' शब्द का उच्चारण कर 'वैनतेयाय' पद का उच्चारण करे । इसके अनन्तर शिर (नमः) पद का । यह भृशाश्वतनय नामक अस्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'वेग विश्वाद्यं वेगजित वैनतेयाय नमः' ॥ ७७ ॥

४२. सन्धानास्त्रम्

भृगुश्च वरुणः साग्निर्मुण्डो मायी ततः क्रमात् ॥ ७८ ॥
खड्गीशः साग्निदीर्घश्च लोहितोऽथ उमापतिः ।
शं कुर्विति द्विरभ्यस्तो मन्त्रः सन्धानमुच्यते ॥ ७९ ॥

भृगु (स), अग्नि (र) के सहित वरुण (व), फिर माया (इ) से युक्त मुण्ड (न), फिर खड्गीश (व) जो अग्नि (र) तथा दीर्घ से युक्त हो, उसके बाद लोहित (प), फिर उमापति (ण) इसके बाद दो बार 'शं कुरु' कहे । यह मन्त्र सन्धानास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्व निर्वापण शं कुरु शं कुरु' ॥ ७८-७९ ॥

४३. वारुणास्त्रम्

भृगुर्लान्तोऽग्निसहितो दण्डेन च समन्वितः ।
भृगुर्व्योमाथ जीवश्च वरुणेन समन्वितः ॥ ८० ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु वारुणं परिकीर्तितम् ।

भृगु (स) जो लान्त (व) और अग्नि (र) से तथा दण्ड (अनुस्वार) संयुक्त हो, फिर भृगु (स), व्योम (ह), वरुण (व) से समन्वित जीव (?), इसके अन्त में शिर (नमः) पद

का उच्चारण करे । यह मन्त्र वारुणास्त्र नाम से प्रसिद्ध है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्वं सह .... नमः' ॥ ८० ॥

अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वजिज्ञासया नारदेनाहिर्बुध्न्यस्तुतिः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश सर्वलोकनमस्कृत ॥ ८१ ॥
सर्वाध्यक्षाप्रमेयात्मन्नचिन्त्यज्ञानगोचर ।
त्वामाश्रित्य सुराः सर्वे लभन्ते काङ्क्षितं फलम् ॥ ८२ ॥
त्वत्तः सर्वं समुद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
त्वयैव पालितं सर्वं संहृतं च महेश्वर ॥ ८३ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! हे देवेश! हे लोकनमस्कृत! हे सर्वाध्यक्ष! हे अप्रमेयात्मन्! हे अचिन्त्यज्ञानगोचर! आपका आश्रय प्राप्त कर सभी देवता अपना अभीष्ट प्राप्त करते हैं । हे भगवन्! यह समस्त स्थावरजङ्गमात्मक जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है । हे महेश्वर! यह जगत् आप ही से पालित है और आप ही से संहार को प्राप्त होता है ॥ ८१-८३ ॥

त्वमादिः सर्वजगतामनादिस्त्वं जगन्मय ।
पुरुषस्त्वं त्वमव्यक्तो व्यक्तस्त्वं विश्वभावन ॥ ८४ ॥
यज्ञस्त्वमिज्यो यष्टा त्वमग्नयस्त्वं त्वमाहुतिः ।
वषट्कारस्त्वमोंकारो वेदवेद्यस्तथा भवान् ॥ ८५ ॥
त्वत्त एव च भूतानि प्रवर्तन्ते महेश्वर ।
करणं कारणं कर्ता कार्यं कर्म फलं विभो ॥ ८६ ॥
त्वमेव भूतं भव्यं च भवच्च परमेश्वर ।
निर्गुणस्त्वं जगत्सृष्टौ जुषमाणो गुणानसि ॥ ८७ ॥
अणीयसामणीयांस्त्वं महांश्च त्वं महीयसाम् ।
अनुरक्तस्त्वयीशान प्रयाति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥
अपरक्तो व्रजत्येव निरयं विकृतिर्न ते ।
कलाकाष्ठामुहूर्तादिकालश्च त्वं कलात्मकः ॥ ८९ ॥

हे जगन्मय! आप इस जगत् के आदि हैं, परन्तु स्वयं अनादि हैं । आप ही अव्यक्त पुरुष हैं और हे विश्वभावन! आप ही अग्नियाँ है, आप ही आहुति हैं, आप ही वषट्कार और ओङ्कार हैं तथा वेदवेद्य भी आप ही हैं । हे महेश्वर! समस्त जीव आप ही से प्रेरणा प्राप्त करते हैं । हे विभो! आप ही करण, कारण, कर्त्ता, कार्य और कर्मफल भी हैं। हे परमेश्वर! आप ही भूत, भव्य तथा भवत् हैं और आप निर्गुण भी हैं । किन्तु जगत् की सृष्टि में प्रवृत्त होने से सगुण भी हैं । आप अणुओं में परमाणु हैं, महत्तरों से भी महान् हैं । हे ईशान! जो लोग अनुरागपूर्वक आपकी भक्ति करते हैं वे मोक्ष प्राप्त कर

लेते हैं । किन्तु जो आप में अनुरागपूर्वक भक्ति नहीं करते वे घोर नरक में जाते हैं । हे देव ! आप में कोई विकार नहीं है । आप ही कला, काष्ठा एवं मुहूर्तादि काल हैं और कलात्मक हैं ॥ ८४-८९ ॥

सर्वदा सर्वभूतेषु निवसन्नपि शङ्कर ।
न लिप्यसे तद्विकारैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ९० ॥
करामलकवत् सर्वं सर्वदा कलयस्यतः ।
प्रोक्तवानसि सर्वास्त्रस्वरूपं पृच्छतो मम ॥ ९१ ॥

हे शङ्कर ! आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में सर्वदा निवास करते हुये भी उसके विकार से उसी प्रकार लिप्त नहीं होते जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता । आपको सारा ज्ञान करामलकवत् भासित होता है । मैंने जो पूछा था कि सर्वास्त्र का स्वरूप क्या है उसका उत्तर आपने दिया ॥ ९०-९१ ॥

अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वप्रश्नः

किमेषां मूर्तयः सन्ति किं वामूर्तान्यमूनि वै ।
छेत्तुमर्हसि देवेश तमिमं संशयं विभो ॥ ९२ ॥

अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन अस्त्रों की कोई मूर्ति है अथवा ये सभी बिना मूर्ति के हैं? हे विभो ! आप मेरे इस संशय को दूर करे ॥ ९२ ॥

तेषां मूर्तत्वप्रतिपादनम्

अहिर्बुध्न्यः—

तेषां भवन्ति गात्राणि भीमरूपाणि नारद ।
वक्रभीषणदंष्ट्रोग्रमुखत्रस्तजनानि वै ॥ ९३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! उन अस्त्रों के शरीर महा भयानक होते हैं । टेढे एवं भयावने दाँतों के कारण उनके उग्रमुख से त्रस्त हुए जन भयान्वित हो जाते हैं ॥ ९३ ॥

भीषिताघूर्णितारक्तवृत्तनेत्रयुतानि वै ।
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशकेशभीमानि नारद ॥ ९४ ॥
कानिचिद्धूम्रवर्णानि भास्कराभानि कानिचित् ।
कानिचिच्छुक्लवर्णानि वह्निकल्पानि कानिचित् ॥ ९५ ॥
महापरिघसङ्काशभीमरूपैः करैः परैः ।
यथास्वं धृतशस्त्राणि महान्ति बलवन्ति च ॥ ९६ ॥
वेगवन्ति प्रमाथीनि वैरिदर्पद्रुहाणि च ।
उपासितानि सततं सुरासुरवरैरपि ॥ ९७ ॥
एवंभूतान्यधिष्ठाय गात्राण्यस्त्राणि नारद ।
विचरन्ति यथाकाममकुतोभीतिमन्ति च ॥ ९८ ॥

वे भयदायी घूरते हुये रक्त वर्ण वाले गोले गोले नेत्रों से युक्त रहते हैं । हे नारद !

उनके केश भयानक और विद्युत्पुञ्ज के समान चमकीले होते हैं । किसी का शरीर धूम्रवर्ण तो किसी का शरीर सूर्य के समान रक्त वर्ण होता है । किसी का शरीर शुक्ल वर्ण तो किसी का शरीर अग्नि के वर्ण का होता है । वे अपने परिघा के समान विशाल विशाल भयानक हाथों में स्वयं महान् एवं बलवान् ऐसे शस्त्र धारण किये रहते हैं जो वेगवान्, प्रमाथी एवं शत्रुओं के दर्प का विनाश करने वाले होते हैं । बड़े-बड़े देवता तथा असुर के द्वारा जिनकी उपासना की जाती है । हे नारद ! वे अस्त्र इस प्रकार के शरीर धारण कर अपनी इच्छानुसार घूमते रहते हैं । उनको किसी का भय नहीं रहता (= अकुतोभय) है ॥ ९८ ॥

अकलितमहिमानि भीषणानि
ज्वलितवपूंषि समुद्यतायुधानि ।
अविहतगमनानि चास्त्रमुख्या-
न्यनवरतं भुवनेषु सञ्चरन्ति ॥ ९९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां संहारास्त्रस्वरूप-
निरूपणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्याय: ॥ ३५ ॥

॥ आदित: श्लोका: २२५२ ॥

* * *

हे नारद ! उनकी महिमा को कोई कह नहीं सकता । वे महा भयानक होते हैं । आयुधों से समुद्यत रहने के कारण उनका शरीर देदीप्यमान रहता है । उन अस्त्रमुख्यों का गमन बेरोक-टोक अप्रतिहत गति से चलता रहता है और वे निरन्तर सारे जगत् में घूमते हैं ॥ ९९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के संहारास्त्र
निरूपण नामक पैंतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३५ ॥

* * *

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

राज्ञां सुदर्शनयन्त्राराधनविधानकेशवादि-गुणप्रधानभावव्यवस्थापनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का मात्र एक बार किया गया ध्यान साधक के जन्म-जन्मान्तर में किये गए अनेक करोड़ो पाप समूहों को नष्ट करता है, हम सुदर्शन के उस दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

सौदर्शनयन्त्रस्य पूर्वापराङ्गध्यानार्चनप्रकारप्रश्नः तदुत्तरकथनम्

नारदः—

भगवन् कथिताः सर्वे सर्वास्त्राणां महौजसाम् ।
प्रवर्तकास्तथा मन्त्रास्तथैव च निवर्तकाः ॥ १ ॥
एतच्च कथितं सर्वं सर्वज्ञेन त्वया पुरा ।
सौदर्शनं महायन्त्रमर्चनीयं महात्मभिः ॥ २ ॥
उक्तेनैव प्रकारेण चतुर्वर्गफलार्थिभिः ।
राजा चेदर्चयेदेतत् सौदर्शनमुखं परम् ॥ ३ ॥
उभयं चास्य यन्त्रस्य मुखमाराधयेदिति ।
कथमस्यापराङ्गं च ध्यायेत् कुर्याच्च वा कथम् ॥ ४ ॥
छेत्तुमर्हसि सन्देहमिमं मम महेश्वर ।

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! आपने समस्त तेजस्वी अस्त्रों के प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक अस्त्रों को कहा । इतना ही नहीं प्रसङ्गतः आपने यह भी कहा कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चतुर्वर्ग चाहने वाले महात्माओं को सुदर्शन महायन्त्र की उक्त विधि से अर्चना करनी चाहिए । राजा को सौदर्शन मुख नामक यन्त्र की अर्चना करनी चाहिए अथवा इस यन्त्र के उभयमुख की आराधना करनी चाहिए । अतः हे भगवन्! इस मन्त्र का अपराङ्ग क्या है? कैसे इसे बनाना चाहिए? और किस प्रकार इसका ध्यान एवं अर्चना करनी चाहिए? मेरे इस सन्देह को, हे महेश्वर! आप निवृत्त करे ॥ १-४ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

एवं ध्यात्वार्चयेद्राजा यन्त्रमेतन्महाद्युति ॥ ५ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! राजा इस प्रकार ध्यान कर महातेजस्वी इस यन्त्र की अर्चना करे ॥ ५ ॥

तत्र पूर्वाङ्गे यन्त्रमध्ये सुदर्शनध्यानम्

यन्त्रमध्ये महात्मानं पुरुषं भीमलोचनम् ।
ऊर्ध्वपिङ्गलकेशाढ्यं ज्वलद्दंष्ट्रोज्ज्वलाननम् ॥ ६ ॥
तिष्ठन्तमष्टभिर्युक्तं भुजैः परमशोभनैः ।
चक्राब्जमध्ये [५] तिष्ठन्तमवष्टभ्य महद्धनुः ॥ ७ ॥
समभङ्गमुदाराङ्गं रक्ताम्बरधरं विभुम् ।
शङ्खचक्राब्जमुसलपाशाङ्कुशगदाधरम् ॥ ८ ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं पुष्पमालाविभूषितम् ।

जिनके केश ऊपर की ओर उठे तथा पिङ्गल वर्ण के हैं, चमकते जाज्वल्यमान दाँतों से ज्वाला युक्त मुख वाले, अत्यन्त शोभायुक्त आठ हाथों वाले अपने महान् धनुष् को पृथ्वी पर टेक कर उसके सहारे चक्र कमल के मध्य खड़े, उदार अङ्गों वाले रक्ताम्बर धारण किये हुये शङ्ख, चक्र, कमल, मुसल, पाश, अङ्कुश और गदा अपने हाथों में लिए सर्वाभरणभूषित, पुष्पमाला से विभूषित, पूर्वाङ्ग वाले, यन्त्र के मध्य में भयानक नेत्र वाले ऐसे महात्मा पुरुष सुदर्शन का ध्यान करे ॥ ६-८ ॥

परितः केशवादिद्वादशमूर्तिध्यानम्

सुदर्शनमिमं ध्यात्वा परितश्चिन्तयेत् ततः ॥ ९ ॥
तिष्ठतो यदि वासीनान् केशवादीन् सविग्रहान् ।
उक्तेनैव प्रकारेण भूषणैरायुधैर्युतान् ॥ १० ॥
प्रधानभूतान् परमान् यथाकामनिवेशितान् ।

इस प्रकार सुदर्शन के स्वरूप का ध्यान कर उसके चारों ओर खड़े-खड़े अथवा बैठे हुये विग्रह युक्त ऊपर कहे गए भूषणां एवं आयुधों से युक्त केशवादि का ध्यान करे (द्र० २६-४६) । ये सभी यन्त्र के प्रधान भूत हैं और यथाकाम तत्तत्स्थानों पर निविष्ट किये गए हैं ॥ ९-११ ॥

ततो विष्ण्वादिषोडशमूर्तिध्यानम्

ततः षोडशभिर्देवैर्विष्ण्वाद्यैरायुधान्वितैः ॥ ११ ॥
मूर्तिमद्भिश्च सोद्योगैः सर्वाभरणसंयुतैः ।
एतैः पञ्जरितं ध्यायेद्यन्त्रराजमनुत्तमम् ॥ १२ ॥

विष्णु आदि षोडश मूर्तियों का ध्यान—इसके बाद विग्रहवान् उद्योग में सर्वदा निरत, सर्वाभरणभूषित, षोडश देवताओं से युक्त विष्णु आदि का ध्यान करे । इन सभी के भीतर सर्वश्रेष्ठ यन्त्रराज का ध्यान करना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

परितो मूर्तिमत्संहारास्त्रध्यानम्

परितस्तान्यपि ध्यायेन्मूर्तिमन्ति महान्ति च ।
संहारास्त्राणि सर्वाणि साञ्जलीन्यद्भुतानि च ॥ १३ ॥
अकुतोभयशालीनि शक्तिमन्ति समन्ततः ।

इसके बाद चारों ओर मूर्ति धारण करने वाले महान् संहार कारक अद्भुत उन सभी संहारास्त्रों का ध्यान करे जो अञ्जलि बाँधे हुये हैं और अकुतोभय तथा सर्वशक्तिमान् है ॥ १३-१४ ॥

ततो मूर्तिमत्प्रवर्तकास्त्रध्यानम्

ततः प्रवर्तकान्येवं ध्यायीतास्त्राणि नारद ॥ १४ ॥
मूर्तान्यत्तुमिवाशेषभुवनान्युज्ज्वलानि च ।

हे नारद ! उन संहारास्त्रों के बाद प्रवर्त्तक अस्त्रों का ध्यान करे । जो विग्रह धारण किये हुये, सारे भुवनों को लीलने के लिए उद्यत के समान हैं और स्वप्रकाश युक्त हैं ।

ततो नारसिंहध्यानम्

एवं चक्रक्रमेणैतदभिध्यायोपरि स्मरेत् ॥ १५ ॥
दधानं नारसिंहस्य वपुर्नारायणं परम् ।
मूलकोशं परं देवमधोभागेऽथ चिन्तयेत् ॥ १६ ॥
यन्त्रं चक्राकृति श्रीमद् दीप्तनेमिसमन्वितम् ।
नेमेरस्य चतुर्दिक्षु महाज्वालां विचिन्तयेत् ॥ १७ ॥
चक्रकौमोदकीशार्ङ्गखड्गहस्तान् स्मरेत् क्रमात् ।
एवमेकमुखं ध्यायेद्यन्त्रस्यास्य महाद्युतेः ॥ १८ ॥

इस प्रकार चक्र के क्रम से इतने का ध्यान कर सबसे ऊपर नृसिंह रूप धारण किये हुये नारायण का स्मरण करे, जो सृष्टि के मूलकोश देवता हैं । इसके बाद उनके अधोभाग में अत्यन्त श्रीसंयुक्त दीप्त नेमि वाले चक्राकृति यन्त्र का स्मरण करे । इस चक्र की नेमि के चारों ओर जलती हुई महती ज्वाला का स्मरण करे, इसके बाद चक्र, कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग एवं खड्ग हाथों में लिए आयुध पुरुषों का स्मरण करे । इस प्रकार परम प्रकाशक इस यन्त्र के एक मुख का ध्यान करना चाहिए ॥ १५-१८ ॥

अपराङ्गध्यानम्

अपराङ्गं महामन्त्रैः सर्वतः समलङ्कृतम् ।
अन्तस्तारं समारभ्य यदि वा विष्णुपञ्जरम् ॥ १९ ॥
पूर्वोक्तं तद्विना मूर्तेस्तत्तन्मन्त्रसमुच्चयम् ।

इसके बाद महामन्त्रों से समलङ्कृत अपराङ्ग का ध्यान करना चाहिए । अन्तः तार (ॐ) से आरम्भ कर विष्णुपञ्जर पर्यन्त मन्त्र पहले कहा जा चुका है जो मूर्ति के बिना केवल तत्तन्मन्त्रों का समुच्चय मात्र है ॥ १९ ॥

अपराङ्गे सर्वास्त्राणां मन्त्रमात्रध्यानम्

यथास्थानं स्मरेत् तस्य पर्यन्ते चिन्तयेत् ततः ॥ २० ॥
सर्वसंहरणास्त्राणां मन्त्रानेव च केवलम् ।
तदनन्तरमन्येषामस्त्राणां च प्रवर्तकम् ॥ २१ ॥
मन्त्रजालमभिध्याय सुनेमि सुरपूजितम् ।
महायन्त्रं महाशक्ति चक्ररूपमनुत्तमम् ॥ २२ ॥
उक्तैर्विशेषणैर्जुष्टं सर्वकामैकसाधनम् ।
अस्य चक्रस्य मध्ये यद्वर्तते पुरुषः परः ॥ २३ ॥
तस्मान्निगद्यते लोके चक्रवर्तीति सूरिभिः ।

तदनन्तर उस अपराङ्ग में जिसका जहाँ स्थान है उस स्थान पर चारों ओर सभी संहार कारक मन्त्रों का केवल स्मरण करे । इसके बाद अन्य अस्त्रों के प्रवर्त्तक मन्त्र का स्मरण करे । इस प्रकार तत्तन्मन्त्र समूहों का ध्यान कर सुन्दर नेमि वाले महाशक्तिमान् चक्ररूपधारी सर्वश्रेष्ठ यन्त्र का स्मरण करे जो उक्त विशेषण से विशिष्ट एवं सभी कामनाओं की प्राप्ति का एकमात्र साधन है । ऐसे चक्र रूप यन्त्र के मध्य में उस सर्वश्रेष्ठ पुरुष का निवास है इसलिए विद्वान् लोग उन्हें चक्रवर्त्ती कहते हैं ॥ २०-२३ ॥

एतद्यन्त्राभ्यर्चनाद्राज्ञां चक्रवर्तित्वलाभः

तस्मादभ्यर्चयेदेतद्यो राजा भक्तिसंयुतः ॥ २४ ॥
सोऽचिरेणैव कालेन चक्रवर्तित्वमाप्नुयात् ।

इस कारण जो राजा भक्ति से संयुक्त होकर इस यन्त्र की पूजा करता है वह अल्प काल में ही चक्रवर्त्तित्व प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

अन्यैरपि राजहितैषिभिरेतदर्चनं कार्यम्

राजा वा राजभृत्या वा मन्त्रिणो वाथवा परे ॥ २५ ॥
राज्ञां हितैषिणः सर्वे पूजयेयुरिदं परम् ।

चाहे राजा हो चाहे राजा का भृत्य हो चाहे राजा का मन्त्री हो राजा के हित की इच्छा करने वाले सभी को इस यन्त्र का पूजन करना चाहिए ॥ २५ ॥

अन्येषामपि श्रीकामानामेतदभ्यर्चनम्

अन्ये च ये तु विपुलां श्रियमिच्छन्ति मानवाः ॥ २६ ॥
तैर्नित्यमर्चनीयं स्यादिदं सर्वार्थसाधकम् ।
राज्ञामेव विशेषेण यदेतत् समुदीरितम् ॥ २७ ॥
तद्राजव्यतिरेकेण ये निर्दिष्टास्तु मानवाः ।
तेषां विभूतिर्महती राज्ञा सम्पत्स्यते ध्रुवम् ॥ २८ ॥
लोहैर्वा शिलया वापि यो हि निर्माय पूजयेत् ।
विपुलां श्रियमाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ २९ ॥

आरोग्यं चाश्नुते सर्वे तद्वंश्या दीर्घजीविनः ।

जो मनुष्य महाश्री की इच्छा करते हैं उन्हें इस मन्त्र का अर्चन करना चाहिए, क्योंकि यह सर्वार्थसाधक है । मैंने पूर्व में जो कहा है कि राजा को ही विशेष रूप से इसकी अर्चना करनी चाहिए उसका अर्थ यह है कि जिसका राज्य चला गया हो वे मानव यदि इसकी पूजा करे तो उन राजाओं को अवश्य ही महती विभूति प्राप्त होती है । जो लोहे अथवा पत्थर से इस यन्त्र का निर्माण कर इसका पूजन करता है उसे महान् लक्ष्मी तो प्राप्त होती ही है वह दीर्घायुष्य तथा आरोग्य भी प्राप्त करता है । उसके वंश में होने वाले सभी दीर्घजीवी होते हैं ॥ २६-३० ॥

द्विमुखयन्त्रार्चने मन्त्रोपदेष्टुर्ब्राह्मणस्यैवाधिकारः

परं मन्त्रोपदेष्टैव ब्राह्मणो द्विमुखं यजेत् ॥ ३० ॥
ज्ञानेन तपसा शक्त्या सोढुं तस्योभयात्मनः ।
स एव शक्नुयात् तस्य प्रभावं परमं मुने ॥ ३१ ॥

हे महामुने ! दूसरों को इस मन्त्र का उपदेश करने वाला ही इस द्विमुख यन्त्र की उपासना करे क्योंकि इस उभयात्मा यन्त्र के परम प्रभाव को वही अपने ज्ञान से, अपनी तपस्या से और अपनी शक्ति से सहन करने में समर्थ है ॥ ३०-३१ ॥

आदित्यमण्डलाक्ष्यादिस्थानां पुरुषाणामभिन्नत्वम्

योऽसावादित्यबिम्बस्थः पुरुषो दृश्यते परः ।
हिरण्मयो य एवान्तरक्षिण्यपि च दृश्यते ॥ ३२ ॥
सोऽप्ययं नाभिचक्रस्य मध्ये यो वर्तते पुमान् ।

आदित्य मण्डल रूप बिम्ब में रहने वाला जो हिरण्मय पर पुरुष दिखाई पड़ता है, जो नेत्र के भीतर भी प्रकाश रूप से विद्यमान् है, वही पर पुरुष परमात्मा नाभिचक्र के मध्य में विद्यमान् है ॥ ३२-३३ ॥

तस्यैव कालचक्रादिप्रवर्तकत्वम्

योऽयं कालाख्यचक्रस्य प्रेरकः पुरुषोऽव्ययः ॥ ३३ ॥
युगचक्रस्य नेतारमेनमेव विदुर्बुधाः ।
एनं महर्षयोऽप्याहुर्जगच्चक्रप्रवर्तकम् ॥ ३४ ॥

जो अव्यय पुरुष कालनामक चक्र का प्रेरक है । वही इस युगचक्र का भी वहन करने वाला है बुद्धिमान् लोग ऐसा ही कहते हैं । महर्षिगण भी इन्हें ही जगच्चक्र का प्रवर्त्तक कहते हैं ॥ ३३-३४ ॥

विमाने संस्थाप्य तस्यैव समभ्यर्चनमैहिकामुष्मिकफलसाधकम्

सर्वलोकैककर्तारं सर्वलोकैकसाक्षिणम् ।
एनं विमाने संस्थाप्य चक्रवर्तिनमव्ययम् ॥ ३५ ॥
यः पूजयति तस्यायं लोकश्चामुष्मिको भवेत् ।

सभी लोक के निर्माता, सभी लोक के साक्षी एवं अव्यय इन चक्रवर्त्ती पुरुष को विमान पर स्थापित कर जो साधक पूजा करता है उसके लिए यही लोक स्वर्ग जैसा हो जाता है ।। ३५ ।।

विमानकरणारम्भस्यापि महाफलकत्वम्

सुदर्शनविमानं यः प्रारभेत महामुने ।। ३६ ।।
इह सर्वानवाप्यार्थान् विष्णुलोकं स यास्यति ।

हे महामुने ! जो सुदर्शन विमान का निर्माण करता है वह इस लोक के समस्त अर्थों को प्राप्त कर बाद में विष्णु लोक को प्राप्त करता है ।। ३६ ।।

विमानकरणार्थस्य कर्षणस्यापि सर्वसम्पत्साधनत्वम्

सुदर्शनविमानस्य कर्षणं यः करोति वै ।। ३७ ।।
तस्यामित्रा विनश्यन्ति सन्ति सर्वाश्च सम्पदः ।

जो सुदर्शन विमान को खीचता है । उसके सारे शत्रु विनष्ट हो जाते है तथा उसे सारी सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है ।। ३७ ।।

आरब्धापरिसमाप्तस्यापि विमानकरणस्यान्ततो मुक्तिसाधनता

अरभ्यायतनं मध्ये विच्छित्त्या विघ्नितो यदि ।। ३८ ।।
स सार्वभौमः सकलान् भुक्त्वा भोगान् महीतले ।
पुनश्च भक्तश्चक्रस्य शेष निर्वर्तयिष्यति ।। ३९ ।।
अन्ते वैकुण्ठमासाद्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

जो सुदर्शन के आयतन का आरभ कर विच्छित्ति (= आलस्य) वशात् विघ्न में पड़ जाता है वह इस पृथ्वी में सभी भोगों को भोगने वाला सार्वभौम हो जाता है । इसके बाद पुनः जन्म लेकर सुदर्शन का भक्त हो चक्र के शेष भाग को पूर्ण करता है और अन्त में वह वैकुण्ठ पुरी प्राप्त कर विष्णु सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।। ३८-४० ।।

साङ्गप्रतिष्ठादिकर्तुः फलपरम्परानिरूपणम्

विमानं परमं कृत्वा प्रतिष्ठाप्य सुदर्शनम् ।। ४० ।।
ब्राह्मणान् वेदविदुषो वैष्णवान् द्वादशावरान् ।
तच्छेषभूतांस्तत्रैव प्रतिष्ठाप्य च शक्तितः ।। ४१ ।।
पर्याप्तजीवनान् कृत्वा दत्त्वा भूमिमठादिकान् ।
नित्यं योऽभ्यर्चयत्येनं देवं भूतिसमन्वितम् ।। ४२ ।।
तस्य प्रतिदिनं भूतिरमर्यादा विवर्धते ।
नीरोगता दीर्घमायुर्लभ्यते नात्र संशयः ।। ४३ ।।
जन्मान्तरे सार्वभौमो जनित्वा सकलां भुवम् ।
भुक्त्वा कालेन महता तदनन्तरजन्मनि ।। ४४ ।।

त्रिविष्टपपतिर्भूत्वा भुङ्क्ते चैन्द्रपदं चिरम् ।
ततः क्रमेण लब्ध्वायं तत्तल्लोकेशतां गतः ॥ ४५ ॥
तदन्ते परमं धाम वैष्णवं प्रतिपद्यते ।

जो मनोहर विमान निर्माण कर उसमें सुदर्शन देव को प्रतिष्ठित करता है इतना ही नही वेदज्ञ विष्णु दीक्षा सम्पन्न बारह से अधिक ब्राह्मणों को और उनके शेषभूतों (सेवक गणो) को भी अपनी शक्ति के अनुसार वहाँ स्थापित कर उनके जीवन संरक्षण के लिए भूमि एवं मठ आदि का दान करता है और अपने वैभव के अनुसार नित्य सुदर्शन देव की अभ्यर्चना करता है उसका ऐश्वर्य निःसीम होकर प्रतिदिन बढ़ता रहता है । वह नीरोगता तथा दीर्घायुष्य प्राप्त करता है इसमें संशय नहीं । फिर जन्म लेकर वह सार्वभौम होता है और सारी पृथ्वी का बहुत काल तक भोग कर उसके बाद वाले जन्म में स्वर्ग का मालिक बन कर इन्द्रपद का उपभोग करता है । इस प्रकार क्रमशः तत्तल्लोकों का ईश्वर बनकर अन्त में वैष्णव धाम चला जाता है ॥ ४०-४६ ॥

सुदर्शनपुरुषमनाराधयतो नृपत्वं दुर्लभम्

देवमेनमनाराध्य न कश्चिज्जायते नृपः ॥ ४६ ॥

बिना सुदर्शन की आराधना किये कोई राजा नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥

एतदाराधनतारतम्यात् फलतारतम्यम्

एतदाराधनस्यैव तारतम्येन नारद ।
भोगायुषोस्तारतम्यमश्नुते नृपतिर्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

राजा इन्हीं चक्रसुदर्शन की तारतम्य रूप से आराधना कर तारतम्य से प्राप्त होने वाले भोग एवं आयुष्य का उपभोग करता है यह निश्चित है ॥ ४७ ॥

तस्माद्राज्ञामन्येषां चैतदाराधनावश्यकता

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन राजैवैनं समर्चयेत् ।
जात्यायुर्भोगकामाश्च ये चान्ये भुवि मानवाः ॥ ४८ ॥
तेऽप्येतत्पूजया सर्वं काङ्क्षितं प्राप्नुवन्ति च ।

इसलिए केवल राजा ही अपनी सारी शक्ति लगा कर इन सुदर्शन देव की आराधना करे, जिससे उन्हें उत्तमोत्तम जाति, आयु, भोग तथा काम प्राप्त होता रहे । इसके अतिरिक्त पृथ्वी में जो अन्य मानव हैं वे भी इनकी पूजा से अपना अभिलषित प्राप्त करते हैं ॥४८॥

शेषिणः केशवादेः शेषभूतं सुदर्शनं प्रति परिवारतादिकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

सिद्धं सुदर्शनं विष्णोः शेषमायुधसंज्ञितम् ॥ ४९ ॥
कथमस्य परीवाराः केशवाद्याः समीरिताः ।
विष्ण्वाद्या मूर्तिभेदाश्च कथं वा पञ्जरीकृताः ॥ ५० ॥

कथं वा भगवन्मन्त्राः परिवारत्वमागताः ।
इमं च संशयं देव च्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ ५१ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे महाराज ! जब यह विष्णु का आयुधभूत उनका शेष (सेवक) सुदर्शन सिद्ध है । तब आप केशवादि को उनका परिवार कैसे कहते हैं? उनके विष्णु आदि मूर्ति भेद किस प्रकार उन्हें अपने में पञ्जरित करते हैं? इतना ही नहीं, हे भगवन् ! मुझे बताइये कि ये मन्त्र किस प्रकार उनके परिवार कोटि में आते हैं? हे देव ! इस समय हमारे इस संशय को दूर कीजिये ॥ ४९-५१ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु तात महाप्राज्ञ रहस्यमिदमुत्तमम् ।
त्वदृते शक्नुयात् प्रष्टुमिममर्थं न कश्चन ॥ ५२ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे तात ! हे महाप्राज्ञ ! यह बहुत बड़ा रहस्य है । आपके अतिरिक्त और कोई ऐसा प्रश्न करने में समर्थ नहीं है, अतः इस रहस्य को सुनिए ॥५२॥

भगवत इव तत्सङ्कल्परूपस्य सुदर्शनस्याप्यनादित्वापरिच्छेद्यत्वे

यथा नारायणो देवः पुरुषः पुष्करेक्षणः ।
अनादिरपरिच्छेद्यस्तथायमपि नारद ॥ ५३ ॥

हे नारद ! जिस प्रकार कमलनयन महापुरुष नारायण देव अनादि एवं अपरिच्छेद्य हैं उसी प्रकार यह सुदर्शन भी अनादि अपरिच्छेद्य है ॥ ५३ ॥

तदुपपादनाय परमात्मशक्तेर्द्वेधा विभागः

द्वे शक्ती तस्य विद्येते विष्णोः सर्वार्थसाधने ।
प्रधानभूते याभ्यां तु वहत्येष जगद्धुरम् ॥ ५४ ॥

विष्णु के सभी कार्यों को पूर्ण करने के लिए प्रधानभूत दो ही शक्तियाँ हैं जिससे वे संसार की धुरी का सञ्चालन करते हैं ॥ ५४ ॥

तत्रेच्छारूपिण्याः शक्तेर्लक्ष्मीरूपत्वम्

एका त्विच्छात्मिका तस्य तथान्या तु क्रियात्मिका ।
प्रथमा परमा लक्ष्मीर्जगत्त्रातुः कुटुम्बिनी ॥ ५५ ॥

एक उनकी इच्छात्मिका शक्ति है तथा दूसरी क्रियात्मिका शक्ति है । जगत् का त्राण करने वाले उन महाविष्णु की कुटुम्बिनी महालक्ष्मी उनकी प्रथमा इच्छात्मिका शक्ति हैं ।

क्रियारूपायाः शक्तेः सुदर्शनरूपत्वम्

तत्त्वविद्भिरिदं प्रोक्तं द्वितीयेह सुदर्शनम् ।

इसके वाद इन सुदर्शन को तत्त्ववेत्ता लोग उनकी क्रियात्मिका दूसरी शक्ति कहते हैं ॥ ५६ ॥

ताभ्यां शक्तिभ्यां विना भगवतोऽप्य-किञ्चित्करत्वम्

तस्माल्लक्ष्म्या विना देवः सङ्कल्पेन प्रभुर्हरिः ॥ ५६ ॥
अनेनापि विना कर्तुं किञ्चिन्नार्हति केशवः ।

यद्यपि समर्थ भी हरि लक्ष्मी के बिना संकल्प से सृष्टि कर सकते हैं । किन्तु इनके बिना केशव सृष्टि नहीं करते ॥ ५६-५७ ॥

तस्य शक्तिद्वयस्य सृष्टिस्थितिसंहाराद्युपकरणत्वम्

अनेन सर्वं सृजति देवोऽनेनैव पाति च ॥ ५७ ॥
अनेन संहृतिं देवो विश्वस्यान्ते करोति च ।
अनेन दानवान् दैत्यान्निहन्ति मधुसूदनः ॥ ५८ ॥
क्रियतेऽनेन तत्कर्म सर्वं सर्वगतेन वै ।

रक्षकं परमात्मानं प्रति शक्तिद्वयस्यापि रक्ष्यकोट्यन्तर्भावः

तस्मात् सर्वात्मना चैनं स्वबुद्ध्या परिरक्षति ॥ ५९ ॥

देवदेव विष्णु इन महालक्ष्मी रूप शक्ति से जगत् की सृष्टि करते हैं । उसका पालन करते हैं तथा अन्त में इसका संहार करते हैं । दूसरी शक्ति चक्रसुदर्शन से वे मधुसूदन दैत्यों का विनाश करते हैं । किं बहुना सब में व्याप्त रहने वाले इस सुदर्शन से वे सारा कार्य सम्पादन करते हैं ।

इसलिए परमात्मा विष्णु रक्षक रूप से सब प्रकार इन दोनों शक्तियों की अपनी बुद्धि के अनुसार रक्षा करते हैं ॥ ५९ ॥

विशिष्य लक्ष्म्या अपि रक्ष्यकोट्यन्त-र्भावप्रतिपादनम्

यथा स्वं स्वामिना रक्ष्यं रक्ष्यते स्वयमेव हि ।
एवं सर्वस्य जननीं लक्ष्मीं लक्ष्मीधरः स्वयम् ॥ ६० ॥
चतुर्धा व्यूह्य चात्मानं स्वभूतां परिरक्षति ।

जिस प्रकार स्वामी द्वारा रक्षा योग्य सम्पत्ति का संरक्षण स्वयं स्वामी द्वारा ही किया जाता है उसी प्रकार जगन्माता लक्ष्मी की स्वयं लक्ष्मीधर रक्षा करते हैं । वे अपने को चार व्यूह में विभक्त कर अपनी सम्पत्ति की रक्षा करते हैं ॥ ६० ॥

अतः केशवादीनां परिवारत्वादिकल्पनाया युक्तत्वम्

तत् केशवादिमूर्तीनां परिवारत्वकल्पना ॥ ६१ ॥
विष्णवादीनां च मूर्तीनां पञ्जरत्वं च युज्यते ।

सर्वेषामपि मन्त्राणां रक्षकत्वं च साम्प्रतम् ॥ ६२ ॥

इसी प्रकार सुदर्शन की रक्षा के लिए भी केशवादि मूर्तियों के परिवारत्व की कल्पना है और विष्ण्वादि मूर्तियों के भी पञ्जरत्व की कल्पना युक्त ही है। इसी प्रकार सभी मन्त्र भी उनके रक्षक हैं ॥ ६१-६२ ॥

प्रकारान्तरेणापि गुणप्रधानभावोपपादनम्

अथवा भगवानेव स्वयं चक्रस्वरूपधृत्।
अवस्थित इति प्राज्ञैः कथ्यते पुरुषोत्तमः ॥ ६३ ॥

अथवा स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ही चक्ररूप धारण कर स्थित हैं ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥ ६३ ॥

प्रतित्रेतायुगं देवः साधुत्राणकृते हरिः।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताद्यात्मना स्वयम् ॥ ६४ ॥
चतुर्धावस्थितस्तद्वच्चक्रात्मा हरिरेव हि।
गुणप्रधानभावस्तु रामादेरिव युज्यते ॥ ६५ ॥

वे भगवान् ही प्रत्येक त्रेतायुग में साधुओं की रक्षा के लिए राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न एवं भरतादि रूपों में अपने को चार विभाग में विभक्त कर अवतरित होते हैं। उसमें चक्रात्मा स्वयं भगवान् विष्णु हैं। इनमें जैसे राम प्रधान हैं शेष क्रमशः गौण हैं इसी प्रकार यहाँ पर भी विष्णु प्रधान हैं एवं केशवादि गुणप्रधान हैं ॥ ६४-६५ ॥

तदात्मनैव चात्मानं रक्षत्येव जनार्दनः।
स्वमूर्तिरक्षणे स्वेन विनान्यत्र भवेद्यतः ॥ ६६ ॥

एतद्रहस्यश्रवणादेरपि क्रमशः परमपुरुषार्थसाधनत्वम्

य इदं शृणुते परिपृच्छति वा
पठति स्मरतीह नरः सततम्।
विपुलामिह भूतिमवाप्य परा-
मथ याति पदं परमं स हरेः ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां राज्ञां सुदर्शनयन्त्राराधनविधानकेशवादिगुणप्रधानभावव्यवस्थापनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २३१९ ॥

* * *

भगवान् जनार्दन अपनी रक्षा अपने से ही करते हैं। अपनी मूर्ति की रक्षा में उनके विना अन्य कोई समर्थ नहीं है ॥ ६६ ॥

जो सतत् इसका श्रवण करता है, पूछता है, पढ़ता है, स्मरण करता है, वह साधक पुरुष इस लोक में सर्वथा निष्कलङ्क सर्वश्रेष्ठ विभूति प्राप्त कर अन्त में विष्णु पद में मिल जाता है ॥ ६७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के राजाओं के सुदर्शन यन्त्राराधन का विधान एवं केशवादि गुणप्रधान भाव व्यवस्थापन नामक छत्तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३६ ॥

* * *

अथ सप्तत्रिंशोऽध्याय:

न्यासापरपर्यायप्रपत्तिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

विनायकं वाग्देवीं च नत्वा विद्येश्वरं गुरुम् ।
अहिर्बुध्न्यसंहितायाः कुर्वे टीकां मनोरमाम् ॥

जिसके अग्र का एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूह को नष्ट कर देता है हम उन सुदर्शन चक्र के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते है ।

उक्तानुवादपूर्वकं सुदर्शनस्य षोडशभुजत्वप्रयोजनादिप्रश्नः

नारदः—

आख्यातं भवता सर्वं भगवन् परमेश्वर ।
सौदर्शनस्य यन्त्रस्य मन्त्रस्य स्वस्य च प्रभो ॥ १ ॥
अस्त्राणां चापि माहात्म्यं स्वरूपं लक्षणं तथा ।
आराधनं च योगश्च स्वभावश्च विशेषतः ॥ २ ॥

प्रथम अध्याय में कहे गए श्लोक का अनुवादपूर्वक सुदर्शन के १६ भुजाओं के प्रयोजन का जिज्ञासा विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे परमेश्वर ! हे प्रभो ! आपने सुदर्शन से सम्बन्धित यन्त्र-मन्त्र और स्वयं उससे उत्पन्न अस्त्रों का माहात्म्य स्वरूप एवं लक्षण का वर्णन किया तथा साथ ही उसके आराधन की विधि, योग तथा विशेष रूप से स्वभाव का भी वर्णन किया ॥ १-२ ॥

भुजैः षोडशभिर्वेति प्रोक्तं रूपोपवर्णने ।
तत् कदा केन कर्तव्यं किमर्थं कीदृशं वद ॥ ३ ॥

सुदर्शन के स्वरूप का वर्णन करते हुये आपने पूर्व में यह भी कहा कि उनकी १६ भुजायें है तो बताइये कि उनका निर्माण कब, किसके द्वारा, किस प्रकार और किसलिए करना चाहिए? ॥ ३ ॥

राज्ञामत्याहितादिनिवारणं षोडशभुजत्वस्य प्रयोजनम्

अहिर्बुध्न्यः—

परैरभिभवे प्राप्ते राज्ञां बलसमन्वितैः ।
नगरेषु प्रदग्धेषु राज्ञां विद्राविते बले ॥ ४ ॥

सोलह भुजाओं का प्रयोजन—अहिर्वुध्न्य ने कहा—अत्यन्त वलवान् शत्रु से जव राजा पराभव प्राप्त करे । उसका नगर जला दिया जाय अथवा उसकी सेना शत्रु द्वारा भगा दी जाय ॥ ४ ॥

उपरुद्धेषु भोगेषु तत्तद्विषयवासिनाम् ।
पीड्यमाने परबलैरित्थं राष्ट्रे महामुने ॥ ५ ॥
स्थितावनुपपन्नायां राज्ञोऽव्युच्छिन्नवैरिणः ।
कारयेत् षोडशभुजं सुदर्शनमवारितम् ॥ ६ ॥

उसके राज्य में रहने वाली प्रजाओं की जव भोग सामग्री (अन्न पानादि) रोक दी जाय । हे महामुने ! इस प्रकार जव शत्रुओं के द्वारा राष्ट्र पीड़ित होने लगे और भयङ्कर स्थिति के कारण जव राजा अपने शत्रु का पराभव करने में असमर्थ हो जाये तव स्थिति को विगड़ती देख, विना कुछ सोचे वह राजा निश्चित रूप से षोडश भुजा युक्त सुदर्शन यन्त्र का निर्माण करे ॥ ५-६ ॥

षोडशभुजसुदर्शनविग्रहवर्णनम्

अपारमपरिच्छेद्यमवाङ्मनसगोचरम् ।
रक्तवर्णमुदाराङ्गं पीतकौशेयवाससम् ॥ ७ ॥
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशैः केशैरूर्ध्वमुखैर्युतम् ।
पिङ्गलाघूर्णमानोग्रनेत्रत्रितयभीषणम् ॥ ८ ॥
दष्टाधरस्फुटालक्ष्यदंष्ट्रानिष्ठ्यूतपावकम् ।
क्वणत्किङ्किणिजालेन काञ्चीदाम्ना विराजितम् ॥ ९ ॥
नितम्बलम्बिनोपेतं ज्वलत्कौक्षेयकेण च ।
दधानं किङ्किणीमालां त्वलिमालानिनादिताम् ॥ १० ॥
आपादलम्बिनीं दिव्यां मुक्तारत्नाचितां तथा ।
झणज्झणितमञ्जीरशोभमानपदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

सोलह भुजा युक्त सुदर्शन के विग्रह (शरीर) का वर्णन—हे नारद ! यद्यपि सुदर्शन का विग्रह अपार, अपरिच्छेद्य तथा वाणी एवं मन से अगोचर हैं । फिर भी उसके विग्रह का वर्णन करता हूँ । जिनके शरीर का वर्ण रक्त एवं कोमल है और पीताम्बर से सुशोभित हैं । विद्युत समूहों के समान ऊपर की ओर उठे हुये पीले-पीले चमकदार जिनके केश हैं । अत्यन्त भयङ्कर पीले-पीले अपने तीनों उग्र नेत्रों से जो शत्रुओं की ओर घूर-घूर कर देख रहे हैं । अपनी दाँतों से अधर को दवाये हुये वह स्पष्ट रूप से अग्नि की ज्वाला उगल रहे

हैं। क्षुद्र घण्टिकायें जिसमें वज रही हैं, ऐसा काञ्चीदाम जिनके कटिभाग में विराज रहा है। जलती हुई कौक्षेय (तलवार) जिनके शरीर में नितम्बपर्यन्त लटक रही है। जिस पर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं ऐसी किङ्किणी की माला जिन्होंने धारण कर रखी है। इसी प्रकार मोतियों एवं रत्नों से गूँथी गई दिव्य माला जिनके पैरों तक लटक रही है। जिनके चरण कमलों में मञ्जीर का झण-झण शब्द हो रहा है॥ ७-११ ॥

हारकेयूरताटङ्कमुकुटैरुपशोभितम् ।
अन्यैर्मणिमयैश्चित्रैर्भूषणैः समलङ्कृतम्॥ १२ ॥
क्रमेण चक्रपरशुकुन्तदण्डाङ्कुशानि च ।
शस्त्राणि शतवक्त्राणि खड्गशक्ती च बिभ्रतम्॥ १३ ॥
करैरूर्ध्वमुखैर्दीर्घैर्दक्षिणैरष्टभिः परैः ।
वामैः शङ्खधनुःपाशहलवज्राणि च क्रमात्॥ १४ ॥
गदामुसलशूलानि भीमान्येतानि बिभ्रतम् ।
स्वसमाश्रितशत्रूत्थक्रोधेन महतावृतम्॥ १५ ॥
भुग्नभ्रूकुटिलं वक्त्रं धारयन्तं विभीषणम् ।
प्रत्यालीढविशेषेण तिष्ठन्तं दीप्तिमालिनम्॥ १६ ॥
कालाग्निरुद्ररूपेण संहरन्तमिदं जगत् ।
एवं सुदर्शनं ध्यायेत् कालात्मानं महाद्युतिम्॥ १७ ॥

हार, केयूर, कर्णफूल मुकुट तथा अन्य प्रकार के मणिमय चित्र-विचित्र भूषणों से जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुशोभित हो रहे हैं। जो अपनी ऊपर की ओर उठी हुई विशाल-विशाल दाहिनी आठ भुजाओं में क्रमशः १. चक्र, २. परशु, ३. कुन्त, ४. दण्ड, ५. अङ्कुश, ६. शतमुख वाले शस्त्र, ७. खड्ग तथा ८. शक्ति धारण किए हैं। इसी प्रकार ऊपर की ओर उठाये गए अपनी वाम आठ भुजाओं में क्रमशः १. शङ्ख, २. धनुष, ३. पाश, ४. हल, ५. वज्र, ६. गदा, ७. मुसल और ८. शूल धारण किये हुये हैं। अपने शरणागत भक्तों के शत्रु पर जो महान् क्रोध की मुद्रा में स्थित हैं। क्रोध से टेढ़ी भ्रुकुटी होने के कारण जिनका मुख-मण्डल अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ रहा है। जो प्रत्यालीढ (वीरता की एक विशेष मुद्रा) मुद्रा में अत्यन्त तेजस्वी हो रहे हैं तथा कालाग्नियुक्त अपने रुद्र रूप से जगत का संहार कर रहे हैं (ऐसे सुदर्शन) के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए॥ १२-१७ ॥

यथोक्तसुदर्शनध्यानस्य निःसापत्न्यसाधनता

राजा तद्ध्यानमात्रेण निःसपत्नो भवेत् क्षणात् ।
न क्वाप्युपस्थितिस्तेषां सपत्नानां महीतले॥ १८ ॥
नश्यन्ति शत्रवस्तत्र यत्र यत्र च विद्रुताः ।

राजा द्वारा इस प्रकार उपर्युक्त कालात्मा एवं महातेजस्वी सुदर्शन यन्त्र का ध्यान करना—उनके ध्यान मात्र से ही वह राजा क्षणमात्र में शत्रु से रहित हो जाता है। बहुत

क्या पृथ्वी मण्डल में कहीं भी उसके शत्रु टिक नहीं सकते । सभी जहाँ-तहाँ भाग जाते हैं और विनष्ट हो जाते हैं ॥ १८-१९ ॥

सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां शत्रुपराभवादिः

एवमेनमनाराध्य राजानोऽमितविक्रमाः ॥ १९ ॥
सपत्नैरभिभूयन्ते निःश्रीकाश्च भवन्ति वै ।

अत्यन्त पराक्रमी राजा भी यदि इस प्रकार के सुदर्शन की आराधना न करे तो वह राजा शत्रुओं से पराभूत तो होता ही है वह शोभा एवं लक्ष्मी से भी विहीन हो जाता है ॥ १९-२० ॥

योगेन न्यासेन वा सुदर्शनाराधनस्यैहिकामुष्मिकफलसाधनता

य एनं पूजयेद्भक्त्या पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ २० ॥
बाह्येन चान्तरेणापि योगाख्येन महामुने ।
न्यासेन वा सुखी सोऽत्र परत्र च न संशयः ॥ २१ ॥

हे महामुने ! जो भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त कही गई विधि से बाह्य एवं आन्तरिक योग रूप कर्म से सुदर्शन की पूजा करते हैं अथवा उनमें अपने को न्यास (धरोहर) रूप में स्थित कर देते हैं वे इस लोक और परलोक में सुखी हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ २०-२१ ॥

उक्तानुवादपूर्वकं न्यासाख्यप्रपत्तिस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

बाह्य आभ्यन्तरश्चापि मम योगः पुरोदितः ।
न्यासाख्यं साधनं प्रोक्तं तन्मे ब्रूहि महेश्वर ॥ २२ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने पूर्व में बाह्य तथा आन्तरिक योग के स्वरूप का वर्णन किया । इसके अतिरिक्त जो आपने न्यास रूप साधन की बात कही है उसका विधान मुझे बताइये ॥ २२ ॥

न्यासस्य परमरहस्यत्वख्यापनम्

अहिर्बुध्न्यः—

एतन्महोपनिषदं देवानां गुह्यमुत्तमम् ।
अभीष्टार्थप्रदं सद्यः सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २३ ॥
अवाच्यमेतत् सर्वस्मै नाभक्ताय कदाचन ।
भक्तोऽसि मे स्थिरश्चेति वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ २४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह न्यास बहुत बड़ा उपनिषद् है । इसे देवतागण भी नहीं बताते, गुप्त रखते हैं । यह सद्यः मनोरथ की पूर्ति करता है और सारे पापों को विनष्ट कर देता है । इसे जैसे-तैसे सभी से नहीं कहना चाहिए । विशेषकर जो अपना भक्त न हो

उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिए। आप हमारे निश्चित रूप से भक्त हैं इसलिए हित की कामना से आपसे न्यास का वर्णन कर रहा हूँ ॥ २३-२४ ॥

न्यासस्य सर्वफलसाधनत्वोपपादनम्

यद्येन कामकामेन नासाद्यं साधनान्तरैः ।
मुमुक्षुणा यत् सांख्येन योगेन न च भक्तितः ॥ २५ ॥
प्राप्यते परमं धाम यतो नावर्तते पुनः ।
तेन तेनाप्यते तत्तन्न्यासेनैव महामुने ॥ २६ ॥
परमात्मा च तेनैव साध्यते पुरुषोत्तमः ।

जव मनोरथकर्त्ता को अपने मनोरथ की पूर्ति साधनान्तर से असम्भव दिखाई पड़े तव जो परमधाम मुमुक्षु लोग ज्ञान, योग तथा भक्ति से प्राप्त करते हैं और जहाँ जा कर पुनः जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं, हे महामुने ! वह धाम उन-उन न्यासों के द्वारा साधक स्वयं प्राप्त कर लेता है। किं वहुना? परमात्मा पुरुषोत्तम भी उसी न्यास के द्वारा प्राप्त हो जाते हैं ॥ २५-२७ ॥

प्रपत्तेः षडङ्गानि

षोढा हि वेदविदुषो वदन्त्येनं महामुने ॥ २७ ॥
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥ २८ ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ।

हे महामुने ! इस प्रपत्ति (= शरणागति) को वेदज्ञ लोग छः भेद वताते हैं। (१) अनुकूल रहने का सङ्कल्प, (२) प्रतिकूल का वर्जन, (३) रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास, (४) वे ही हमारे रक्षक हैं, ऐसी दृढ़ भावना, (५) आत्मनिक्षेप (अपने को उसी में समर्पण कर देना) और (६) कार्पण्य (दैन्य)—यही छः शरणागति के भेद है ॥ २७-२९ ॥

न्यासप्रकरणे शरणशब्दस्य
साधनवाचित्वम्

उपाये गृहरक्षित्रोः शब्दः शरणमित्ययम् ॥ २९ ॥
वर्तते साम्प्रतं चैष उपायार्थैकवाचकः ।

यद्यपि शरण शब्द (१) उपाय (२) गृह (३) रक्षक अर्थ का वाचक है किन्तु न्यास के विषय में यह एक मात्र उपाय (साधन) का ही वाचक है ॥ २९-३० ॥

प्रपत्तिलक्षणम्

अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः ॥ ३० ॥
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः ।
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम् ॥ ३१ ॥

हे प्रभो ! मैं सभी प्रकार के अपराधों का आलय (स्थान) हूँ, अकिञ्चन हूँ और

अगति हूँ। अत: आप ही उपाय बन कर मेरा उद्धार कीजिये। इस प्रकार की प्रार्थना बुद्धि शरणागति कही गई है। इसी प्रकार की शरणागति बुद्धि का इन सुदर्शन में प्रयोग करना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

सुदर्शनप्रपत्तौ मन्त्रविशेषकथनम्

भगवन् सर्वविजयिसहस्त्रारापराजित।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि श्रीकरं श्रीसुदर्शनम् ॥ ३२ ॥

हे भगवन्! हे सर्वविजयि! हे सहस्रार! हे अपराजित! आप महालक्ष्मी देने वाले हैं और श्रीसम्पन्न एवं सुदर्शन हैं। मैं आपके शरणागत हूँ ॥ ३२ ॥

अनेन मन्त्रेण प्रपन्नस्य फलोत्पत्तिप्रतिबन्धकसकलदुरितनिवृत्तिः

अनेनैव प्रपन्नस्य भगवन्तं सुदर्शनम्।
तस्यानुबन्धाः पाप्मानः सर्वे नश्यन्त्यसंशयम् ॥ ३३ ॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर सुदर्शन की शरण में गए हुये शरणागत के समस्त प्रतिबन्धक पाप अपने आप नष्ट हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥

प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वम्

कृतान्यनेन सर्वाणि तपांसि तपतां वर।
सर्वे तीर्थाः सर्वयज्ञाः सर्वदानानि च क्षणात् ॥ ३४ ॥
कृतान्यनेन मोक्षश्च तस्य हस्ते न संशयः।

हे तपस्वियों में श्रेष्ठ श्रीनारद! जो साधक सुदर्शन का शरणागत हो गया उसने सभी तप कर लिए। सभी तीर्थों एवं सभी यज्ञों का सम्पादन कर लिया। किं बहुना? क्षण मात्र में सभी प्रकार के दान भी कर लिए और मोक्ष तो उसके हस्तगत हो ही गया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४-३५ ॥

न्यासमात्रेण तपोयज्ञादिसिद्धिकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

कथं तपांसि यज्ञाश्च तीर्थदानानि सर्वशः ॥ ३५ ॥
तस्यैव न्यासमात्रेण सिध्यन्ते तद्वद प्रभो।

श्रीनारद ने कहा—हे प्रभो! सुदर्शन में अपने को न्यस्त कर देने मात्र से किस प्रकार सभी प्रकार के तप, यज्ञ और तीर्थ एवं दानों का फल प्राप्त हो जाता है? उसे आप हमें बताइये ॥ ३५-३६ ॥

तदुत्तरकथने न्यासस्य सर्वतपोऽतिरिक्ततपस्त्वकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

यानि निःश्रेयसार्थानि चोदितानि तपांसि वै ॥ ३६ ॥

तेषां तु तपसां न्यासमतिरिक्तं तपः श्रुतम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—परलोक फल वाले जितने भी तप श्रुति में कहे गए है उनसे कहीं अधिक फल देने वाला यह न्यास रूप तप है जो सर्वापेक्षया अधिक श्रेष्ठ है ।। ३६-३७ ।।

नमःशब्देन कृतात्मन्यासस्य स्वध्वरत्वोपपादनम्

समित्साधनकादीनां यज्ञानां न्यासमात्मनः ।। ३७ ।।
नमसा योऽकरोद् देवे स स्वध्वर उदीरितः ।

समिधादि से अनुष्ठीयमान सभी यज्ञों का फल तो उस पुरुष को उसी समय प्राप्त हो जाता है जब वह सुदर्शन में शरणागत होकर एक बार 'नमः' शब्द का प्रयोग कर देता है इसी को स्वध्वर भी कहते हैं ।। ३७-३८ ।।

न्यासस्य परमधर्मत्वे प्रमाणप्रदर्शनम्

यागसाधनभूतेन स्वात्मना वेद्यमीश्वरम् ।। ३८ ।।
अयजत् तानि धर्माणि प्रथमानीति नः श्रुतम् ।

यज्ञ रूप साधन से साध्य रूप ईश्वर वेद्य है । किन्तु जिसने अपने को ही परमात्मा में न्यस्त कर यज्ञ अनुष्ठित किया, वही सबसे वड़ा धर्म है क्योंकि 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' ऐसा श्रुति भी कहती है ।। ३८-३९ ।।

न्यासस्य सर्वयज्ञसमत्वम्

यज्ञरूपधरं देवं यजते स्वात्मनैव यः ।। ३९ ।।
तेन सर्वे कृता यज्ञा भवन्तीह महात्मना ।

जिस महात्मना ने अपने आपको समर्पित कर यज्ञरूपधारी देव की आराधना की, उस महात्मा ने सभी यज्ञ अनुष्ठित कर लिए ।। ३९-४० ।।

न्यासस्य यज्ञत्वनिर्वहणाय यज्ञाङ्गपौष्कल्यनिरूपणम्

यज्ञरूपधरस्यास्य शरीरं वेदिरिष्यते ।। ४० ।।
आस्यमाहवनीयाग्निर्हृदयं दक्षिणानलः ।
अथास्य गार्हपत्याग्निरुदरं श्रुतिचोदितम् ।। ४१ ।।
यजमानो मनस्तत्त्वं बुद्धिः पत्नी प्रकीर्तिता ।
स्वाश्रितप्रत्यनीका ये पशवस्ते प्रकीर्तिताः ।। ४२ ।।
लोमानि बर्हिषस्त्वस्य जीवं हव्यं प्रचक्षते ।
सवनानि शिरोमध्यगात्रपादाः प्रकीर्तिताः ।। ४३ ।।
दश यज्ञायुधान्यस्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यपि ।
ऋत्विजः षोडश भुजा देवस्यास्य महामुने ।। ४४ ।।

भक्तरक्षणसङ्कल्पो दीक्षा देवस्य नारद ।
ऋग्यजुःसामघोषोऽस्य भूषणाराव इष्यते ॥ ४५ ॥
सदस्या भूषणान्यस्य दया देवस्य दक्षिणा ।

न्यास के यज्ञत्व के निर्वाह के लिए सुदर्शन में समस्त यज्ञाङ्गों की स्थिति का रूपक द्वारा विस्तार पूर्वक वर्णन—यज्ञरूप धारण करने वाले इस सुदर्शन की शरीर वेदी है । मुख आहवनीयाग्नि है, हृदय दक्षिणाग्नि है, उदर श्रुति प्रतिपादित गार्हपत्याग्नि है । मनस्तत्त्व यजमान है, बुद्धि यजमानपत्नी है । अपने आश्रित रहने वाले जितने भी भक्त हैं वे ही यज्ञपुरुष के पशु हैं । इसके समस्त लोम (= बाल) कुशा हैं । जीव द्रव्य कहा गया है । सुदर्शन के शिर मध्यगात्र तथा पाद यज्ञ के सवन हैं । पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ यज्ञपुरुष के दश आयुध हैं । हे महामुने ! उसकी सोलह भुजायें ऋत्विज हैं, भक्तों की रक्षा का सङ्कल्प उसकी दीक्षा है । उसके भूषण से होने वाले शव्द ऋग्यजुः तथा सामवेद के उद्घोष हैं, समस्त आभूषण यज्ञपुरुष के सदस्य हैं और उसकी दया ही दक्षिणा है ॥ ४०-४६ ॥

जुहूर्ध्रुवा स्रुवश्चैव प्राशित्रहरणं तथा ॥ ४६ ॥
मेक्षणोपभृतौ वेद इडापात्री तथैव च ।
दारुपात्रं च योक्त्रं च चमसः सृष्टिरेव च ॥ ४७ ॥
पिष्टोद्वपन्याज्यस्थाल्याविध्मप्रव्रश्चनं तथा ।
मदन्तीत्यस्य शस्त्रेषु चक्राद्येषु समाश्रिताः ॥ ४८ ॥

जुहू, ध्रुवा और स्रुवा तथा प्राशित्रहरण, मेक्षण, उपभृत स्नान, इडापात्री, दारुपात्र, योक्त्र, चमस और सृष्टि, पिष्टोद्वपनी, आज्यस्थाली तथा इध्मप्रव्रश्चन, मदन्ति—इन शस्त्रों में चक्रादि समाश्रित है ॥ ४६-४८ ॥

प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वनिगमनम्

एवं रूपं तमभ्यर्च्य प्रक्षीणाशेषपातकः ।
अनुष्ठितक्रतुशतो भवेदेष न संशयः ॥ ४९ ॥

प्रपन्न के सर्वथा कृतकृत्य का निगमन—इस प्रकार के यज्ञरूप सुदर्शन की आराधना से प्रपन्न पुरुष का पातक प्रक्षीण हो जाता है । फिर उसे सैकड़ों यज्ञों के अनुष्ठान का फल अपने आप प्राप्त हो जाता है इसमें संशय नहीं ॥ ४९ ॥

यथोक्तक्रमेण सुदर्शनमनाराधयतां क्लेशप्राप्तिनिगमनम्

एवं बहुविधै रूपैरुपेतं तं सुदर्शनम् ।
कृत्वा तमप्रतिष्ठाप्य राजानो मन्त्रिणोऽपि वा ॥ ५० ॥
विनष्टसम्पदः सद्यः परिभूताश्च शत्रुभिः ।
अर्चनाभावतो राज्याद् भ्रष्टाश्चिरमुपद्रुताः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार से बहुत रूपां (मन्त्र-यन्त्र एवं शस्त्र को धारण कर) से युक्त उन सुदर्शन की प्रतिष्ठा न करने से राजा अथवा उसके मन्त्रीगण सद्यः शत्रु से पराभूत होकर दरिद्र हो जाते हैं और विपत्ति से बहुत काल तक उपद्रुत रहते है ॥ ५०-५१ ॥

सुदर्शनमनाराधयतां राज्ये
ब्रह्महत्यादिदोषोत्पत्तिः

स्वराज्यं ब्रह्महत्यादिदोषैर्दुष्येन्महामुने ।
समिदित्यस्य ऋग्वेदश्रुतिराह दयावती ॥ ५२ ॥

हे महामुने ! सुदर्शन की आराधना न करने वाले राजाओं का अपना राज्य ब्रह्महत्यादि दोष से दूषित हो जाता है (यहाँ ५२वें श्लोक का उत्तरार्ध ३७ श्लोक) पूर्वार्ध के रूप में मुद्रित करना चाहिए—जिसका अर्थ इस प्रकार है—यज्ञ की समिधा साधन होती है प्रकृत यज्ञ मे आत्मनिवेदन ही समिधा है । इस प्रकार की समिधा की बात को दयावती ऋग्वेद की ऋचा भी प्रतिपादन करती है शेष ३७ श्लोक मे देखिये ॥ ५२ ॥

सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां
प्रजानुरागाभावः

अनभिध्यानतो ह्यस्य विश्वे विषयवासिनः ।
अपरक्ताश्च जायन्ते महाराजे कृतागसि ॥ ५३ ॥

सुदर्शन का ध्यान न करने वाले राजा के राज्य में रहने वाली प्रजायें उसके इस प्रकार के अपराध से उसमें अनुराग नहीं करतीं ॥ ५३ ॥

राज्ये सुदर्शनानाराधनात् प्रजानामपि
बहुदुःखभागिता

अश्रद्दधानाश्चैतस्मिन्निह जन्मनि दुःखिनः ।
प्रेत्याधोऽधः पतन्त्येव नाप्नुवन्ति सुखं क्वचित् ॥ ५४ ॥

सुदर्शन में श्रद्धा न रखने वाली प्रजायें इस लोक में दुःख तो प्राप्त करती ही हैं, मरने के बाद भी वे नरक में जाती हैं और कहीं भी उन्हें सुख नहीं प्राप्त होता ॥ ५४ ॥

सुदर्शनसमाराधनस्य सर्वफलावाप्तिसाधनतानिगमनम्

तद्यज्ञरूपं सुसमाश्रितानां
रक्षाविधाने कृतदीक्षमीशम् ।
सुभीषणं षोडशबाहुयुक्तं
स्वशत्रुपक्षक्षपणप्रवृत्तम् ॥ ५५ ॥
यथोक्तरूपं धृतसर्वशस्त्र-
मुपेतमस्त्रैरपि मूर्तिमद्भिः ।
पटे लिखित्वा शिलयाथवार्चां
विधाय लोहैरुत बिम्बमस्य ॥ ५६ ॥

समर्चयेद्यो नृपतिः प्रतिष्ठां
विधाय भक्त्याथ सुदर्शनेशम् ।
क्षणेन सिध्यन्ति मनीषितानि
विपक्षनाशश्च भवेदमुष्य ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां न्यासापरपर्यायप्रपत्तिनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २३७६ ॥

* * *

अपने आश्रित भक्तों की रक्षा करने का दीक्षा ग्रहण करने वाले, यज्ञरूप धारण करने वाले, षोडश बाहुओं से युक्त, अत्यन्त भीषण तथा अपने शत्रु पक्ष के विनाश में प्रवृत्त रहने वाले, उपर्युक्त (३७.७.१६) स्वरूपों वाले सम्पूर्ण मूर्तिमान शस्त्रों और अस्त्रों को धारण करने वाले, भगवान् सुदर्शन को वस्त्र पर, शिला अथवा लोहे से लिख कर उनके बिम्ब की प्रतिष्ठा कर जो राजा उनकी भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं उनके सभी मनोरथ क्षण भर में पूर्ण हो जाते हैं तथा उनके सम्पूर्ण शत्रुओं का नाश हो जाता है ॥ ५५-५७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के न्यासापरपर्यायप्रपत्ति निरूपण नामक सैंतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३७ ॥

* * *

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

ज्वरादिरोगनिवृत्त्युपायविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने पर साधक के अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूह को नष्ट कर देता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

उक्तानुवादपूर्वकं रोगमोचनोपायप्रश्नः

नारदः—

आख्यातं भवता राज्ञां परेभ्यो रक्षणं परम् ।
तथैव सर्वे सर्वज्ञ पुरुषार्थाः समीरिताः ॥ १ ॥
तत्साधनानि चान्यच्च प्रसङ्गात् समुदीरितम् ।
इदं त्विदानीं भगवन् व्याख्याहि मम पृच्छतः ॥ २ ॥
राज्ञां तत्सचिवानां च तथान्येषां नृणामपि ।
रोगाः क्रूरतरास्तेषां पुरुषार्थविरोधिनः ॥ ३ ॥
सम्भवन्ति हि तेषां तु मोचनं केन सिध्यति ।

ऊपर कहे गए कथनों का अनुवाद करते हुये रोगों से छुटकारा पाने के विषय में श्रीनारद का प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने शत्रुओं से राजाओं की रक्षा का उपाय कहा । हे सर्वज्ञ ! उसी प्रकार आपने सभी पुरुषार्थों का भी निरूपण किया । प्रसङ्ग से प्राप्त होने वाले पुरुषार्थों के साधन तथा अन्य भी बातें कहीं । अव हे भगवन् ! मैं जो पूछ रहा हूँ उसकी व्याख्या कीजिये । राजाओं के एवं उनके मन्त्रियों के तथा अन्य मनुष्यों के पुरुषार्थ के शत्रु और अत्यन्त कष्टकारक जो रोग होते हैं उनसे छुटकारा पाने का उपाय क्या है? ॥ १-४ ॥

रोगोत्पत्ति तद्विनाशकारणकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

साधु पृष्टं मुने रोगा जायन्ते येन दुःसहाः ॥ ४ ॥

श्रृणु येनैव नश्यन्ति तद् वक्ष्यामि तवाधुना ।

रोगों की उत्पत्ति तथा उनसे छुटकारा पाने का उपाय—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुने ! आप ने यह उचित प्रश्न किया है । अब जिस कारण से मनुष्यों को दुःसह रोग उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार उनका विनाश होता है उसको सुनिए । मैं आपसे अभी कह रहा हूँ ॥ ४-५ ॥

प्राकृतप्रलये एकाकिनः परमपुरुषस्य रमणाभावः

प्राकृते सर्वलोकस्य सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ॥ ५ ॥
ब्रह्मायुषि परिक्षीणे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
सर्वभूतेषु भूतादौ प्रलीनेषु महामुने ॥ ६ ॥
भूतादाविन्द्रियादौ च तैजसे महति स्थिते ।
ततो महति याते तु प्रकृतिं बुद्धिलक्षणे ॥ ७ ॥
तथा च पुरुषे तस्यां प्रलीने पञ्चविंशके ।
तस्यामपि प्रलीनायां पुरुषे पुष्करेक्षणे ॥ ८ ॥
स एव सर्वं संहृत्य स्वस्मिन् परमपूरुषः ।
भगवान् पुण्डरीकाक्षः परमात्मा जगन्मयः ॥ ९ ॥
एकाकी स तदा नैव रमते स्म सनातनः ।

प्राकृत प्रलयकाल में अकेले होने से परमात्मा का मनोरञ्जन नहीं हो पाया इसका कथन—सम्पूर्ण लोकों का जब प्राकृत प्रलय प्राप्त हो गया । ब्रह्मा की आयु बीत गई । स्थावरजङ्गमात्मक सारा जगत् नष्ट हो गया । हे महामुने ! उस समय सारे प्राणिसमूह पञ्चमहाभूत में, पञ्चमहाभूत इन्द्रियों में, इन्द्रियाँ बुद्धि में बुद्धि महत्तत्व में, महत्तत्व प्रकृति में तथा २५ तत्त्वों वाली प्रकृति पुरुष में लीन हो गई । तदनन्तर परमात्मा जगन्मय पुण्डरीकाक्ष सनातन परम पुरुष भगवान् सबको अपने में समेट लेने के कारण अकेला रहा और अकेले रहने के कारण उसका मनोरञ्जन नहीं हुआ ॥ ५-१० ॥

लीलार्थं पुनः सृष्टिः

स लीलार्थं पुनश्चेदमसृजत् पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥

लीला के लिए पुनः सृष्टि—तब कमलनेत्र उन परमात्मा ने अपनी लीला (मनोरञ्जन) के लिए पुनः इस विश्व की सृष्टि की ॥ १० ॥

नामरूपव्याकरणम्

स पूर्वं नामरूपाणि चक्रे सर्वस्य सर्वगः ।

नामरूपात्मक सृष्टि का निर्माण—उन सर्वात्मा ने सर्वप्रथम नामरूपात्मक सृष्टि का निर्माण किया ॥ ११ ॥

लीलोपकरणभूतप्रकृत्या परमात्मनो रमणम्

लीलोपकरणां देवः प्रकृतिं त्रिगुणात्मिकाम् ॥ ११ ॥

मायासंज्ञां पुनः सृष्ट्वा तया रेमे जनार्दनः ।

तदनन्तर लीलोपकरणभूत प्रकृति में परमात्मा का रमण । फिर उन देवाधिदेव जनार्दन ने लीलोपकरणभूत त्रिगुणात्मिका प्रकृति की, जिसको माया भी कहते हैं, सृष्टि की और उसी में रमण किया ॥ ११-१२ ॥

प्रकृत्या जीवपरयोः स्वरूपप्रच्छादनम्

सा तु सर्वाणि भूतानि तत्तच्छक्तिसमन्विता ॥ १२ ॥
मोदयन्ती च तन्वाना स्वस्यां भोग्यधियं तथा ।
वर्तते जीवपरयोः स्वरूपाच्छादनाय सा ॥ १३ ॥

प्रकृति के द्वारा जीव और परमात्मा का स्वरूप प्रच्छादन—उन-उन शक्तियों से समन्वित होकर वह प्रकृति (माया) सभी प्राणियों को अपने शरीर में भोग्य बुद्धि उत्पन्न कर उसी से उन्हें प्रसन्न करने लगी । इस प्रकार जीव और परमात्मा के स्वरूप को उसने प्रच्छादित कर लिया ॥ १२-१३ ॥

प्रकृतिपारवश्याज्जीवस्य संसरणम्

तया विवशमेतत्तु संसरत्यखिलं जगत् ।

उस प्रकृति के कारण ही जीव को शरीर में आत्मा का भ्रम हो जाता है ॥ १४ ॥

प्रकृतेर्देहात्मभ्रमहेतुत्वम्

तयैव प्रथमं देहे करोत्यात्मधियं नरः ॥ १४ ॥

प्रकृति के कारण ही जीव को शरीर में आत्मा का भ्रम हो जाना—जीव को प्रकृति के कारण ही देह में सर्वप्रथम आत्मा का भ्रम पैदा होता है ॥ १४ ॥

ततः शरीरसम्बन्धिपुत्रादौ ममतां गतः ।

पुनः उसी का अपने स्व आत्मीय पुत्रादि में ममता उत्पन्न करना—फिर उसी के द्वारा ममत्व उत्पन्न होने के कारण वह शरीर सम्बन्धी पुत्रादि में स्वत्व की भावना करता है ॥ १५ ॥

अहङ्कारममकारोत्थवासनादार्ढ्यम्

ततोऽहङ्कारजास्तस्य ममतोत्थाश्च वासनाः ॥ १५ ॥
भवन्ति देहे पुत्रादौ दृढबद्धाश्चिरं मुने ।

जीव में अहङ्कार तथा ममता की वासना का दृढ होने लगना—इस प्रकार शरीर में अहङ्कार तथा पुत्रादि में ममत्व के कारण जीव में अहङ्कार तथा ममता की वासना दृढ़ होने लगती है । तदनन्तर हे मुने ! अहङ्कार एवं ममता से उत्पन्न हुई वासनायें देह में एवं पुत्रादि में दृढ़ता के साथ आवद्ध हो जाती हैं । इस प्रकार अहङ्कार एवं ममता से उत्पन्न वासनायें राग तथा द्वेष के कारण पुण्य और पाप का हेतु बन जाती हैं ॥ १५-१६ ॥

तदुत्थवासनानां रागद्वेषद्वारा पुण्यपापहेतुत्वम्

ततः स्वदेहे पुत्रादावुपकार्यपकारिषु ॥ १६ ॥

रागद्वेषौ च भवतस्ताभ्यां सर्वं विचेष्टते ।
कपूयरमणीये च तदुत्थे संचिनोत्ययम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार अहङ्कार एवं ममता से उत्पन्न वासनाओं का राग तथा द्वेष के कारण-पुण्य और पाप का हेतु बन जाना—तदनन्तर स्वदेह में, स्वपुत्र में, उपकारी में और अपकारी में राग-द्वेष उत्पन्न होने लगता है । उसी कारण जीव कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और पुण्य एवं पाप उसी के फलस्वरूप अर्जित करता है ॥ १६-१७ ॥

ततो जात्यायुर्भोगरूपकर्मविपाकप्राप्तिः

तद्विपाकानथाप्नोति जात्यायुर्भोगलक्षणान् ।

पुण्य और पाप के फलस्वरूप जीव को जाति, आयु और भोग लक्षण कर्म विपाक प्राप्त होता है—उसी पुण्य पाप कर्म के फलस्वरूप उसे जाति, आयु और भोग लक्षण कर्म विपाक प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

प्रारब्धकर्मफलोपभोगायैव शरीरसृष्टिः

अतः फलोपभोगार्थमुभयेषां च कर्मणाम् ॥ १८ ॥
प्रारब्धानामिदं सृष्टं शरीरं च शरीरिणः ।

प्रारब्ध कर्म के फलोपभोग के लिए ही शरीर की प्राप्ति होना—जीव के शरीर की सृष्टि पुण्य-पापात्मक प्रारब्ध कर्मोपभोग के लिए ही हुई है ॥ १८-१९ ॥

रोगाणां पापजन्यत्वम्

पाप्मभ्य एव जायन्ते प्रारब्धेष्वामयास्तनौ ॥ १९ ॥
नानाविधा दुःखवरा भुज्यन्ते देहिनापरे ।

कर्मोपभोग के लिए प्राप्त शरीर में पापकर्म से रोग का उत्पन्न होना—प्रारब्धवशात् शरीर में रोगों की उत्पत्ति पाप के कारण होती है । देही (जीव) जिसके कारण नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त करता है ॥ १८-२० ॥

तत्र प्रथमं ज्वरशान्त्युपायः

ज्वराभिभूते नृपतौ सचिवेऽन्यजनेऽथवा ॥ २० ॥
महासुदर्शनं यन्त्रं कथितं मन्त्रकोविदैः ।
गुडूचीराज्यसंसिक्ताश्चतुरङ्गुलसम्मिताः ॥ २१ ॥
मन्त्रेणानेन जुहुयात् सहस्रं ज्वलितेऽनले ।
चक्राम्बुजं च विन्यस्य स्थण्डिले शालितण्डुलैः ॥ २२ ॥
तत्र पात्रं निधायाज्यं प्रस्थपूर्णं निधाय च ।
तस्यां पलप्रमाणेषु तन्तुष्वारोप्य दीपिकाम् ॥ २३ ॥
तत्राप्येनं समावाह्य मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।
ततः पश्चिमभागे तु स्थण्डिले मण्डिते शुचौ ॥ २४ ॥
आस्तीर्य कलमांस्तत्र न्यसेन्माहेन्द्रमण्डलम् ।

तन्मध्ये षडरं चक्रं मध्ये तारं च विन्यसेत् ॥ २५ ॥
तन्तुजालेन संवेष्ट्य नवकुम्भं सुशोभनम् ।
चन्द्रचन्दनकाश्मीरमिश्रैरापूर्य वारिभिः ॥ २६ ॥
तद्बहिश्चन्दनाद्यैस्तमर्चयेदक्षतैरपि ।
रत्नानि पञ्च पद्मं च दूर्वां हाटकमेव च ॥ २७ ॥
श्यामाकं विष्णुपर्णीं च देवीं चान्तर्विनिक्षिपेत् ।
मध्ये कुम्भं समावेष्ट्य क्षौमेण नवमालया ॥ २८ ॥
तं तारमध्ये संस्थाप्य साध्यनामयुते शुभे ।
पूर्णचन्द्रमभिध्यायंस्तत्र चावाहयेत् प्रभुम् ॥ २९ ॥

अब सर्वप्रथम ज्वररोग की शान्ति का उपाय कहते हैं—जब राजा अथवा राजमन्त्री अथवा अन्य जन ज्वर से अभिभूत हों तो मन्त्रवेत्ताओं ने उसकी शान्ति के लिए महासुदर्शन यन्त्र का उपाय बताया है । चार-चार अङ्गुल की गुडूची (गुरुच) लेकर उसे घी में डुबो कर जलती हुई अग्नि में एक सहस्र बार हवन करे । फिर स्थण्डिल (= वेदी) पर शालि (साठी) धान्य से चक्राकार कमल का निर्माण करे । उसे किसी पात्र में स्थापित कर, उसमें एक प्रस्थ घी डालकर, फिर उसमें एक पल प्रमाण की बत्ती बनाकर दीपक जलावे । फिर इसी चक्रसुदर्शन मन्त्र से सुदर्शन का आवाहन करे । उसके पश्चिम भाग में अलङ्कृत तथा पवित्र उसी स्थण्डिल पर अक्षत बिछाकर महेन्द्र मण्डल का निर्माण करे । उस महेन्द्र मण्डल में छः अरों वाला चक्र तथा उसके भी मध्य में प्रणव को स्थापित करे । इसके बाद किसी नवीन घड़े को रक्षासूत्र से लपेट कर उसे कपूर, चन्दन एवं केशर मिश्रित जल से पूर्ण करे । उसके बाहर चन्दनादि एवं अक्षतादि से उसकी अर्चना करे । पुनः उस कुम्भ में पञ्चरत्न, कमल, दूर्वा, सुवर्ण, यामाक, विष्णुपर्णी एवं सहदेवी डाल देवे । कुम्भ का मध्य भाग रेशमी वस्त्र तथा नवीन माला से आवेष्टित कर देवे । फिर उसे प्रणव के बीचो-बीच स्थापित करे तथा उसके ऊपर साध्य (जिसका रोग शमन करना हो) का नाम लिखे । फिर उस कुम्भ पर पूर्ण चन्द्रमा के समान ध्यान करते हुये सुदर्शन का आवाहन करे ॥ २०-२९ ॥

तं धूपदीपमाल्याद्यैः समभ्यर्च्य यथाविधि ।
शाल्यन्नं दधिमध्वाज्यसर्वव्यञ्जनसंयुतम् ॥ ३० ॥
हृद्यं साज्यं गुडं दद्याद् देवाय हविरुत्तमम् ।
बलिं ततो हरेद् दिक्षु विदिक्षु च समाहितः ॥ ३१ ॥
शाल्यन्नैः श्वेतपुष्पैश्च धूपदीपादिभिस्तथा ।
दिक्पालानां ततो दद्यात् क्षेत्रेशायापि नारद ॥ ३२ ॥

तदनन्तर शास्त्रानुसार धूप, दीप तथा माल्यादि से उनकी पूजा कर साठी का भात, जो दही, मधु, घृत आदि सभी प्रकार के व्यञ्जनों से पूर्ण हो उसे तथा घृतमिश्रित गुड़ एवं अन्य पदार्थ देवाधिदेव को हविरूप में प्रदान करे । तदनन्तर सावधान होकर

दिशाओं एवं विदिशाओं (दिशा का मध्य भाग) में श्वेतपुष्प, धूप एवं दीपादि से युक्त शालि अन्न की बलि देवे। तदनन्तर हे नारद! दिक्पालों को तथा क्षेत्रेश (भैरव) को बलि प्रदान करे ॥ ३०-३२ ॥

आसने प्राङ्मुखं साध्यमुपवेश्याथ सज्वरम्।
दर्पणं तस्य संस्थाप्य पुरस्तात् प्रतिबिम्बितम् ॥ ३३ ॥
कुम्भमादाय मन्त्रेण दर्पणं सोऽभिषेचयेत्।
सद्य एव ज्वरान्मुक्तो भवेन्मेघादिवोडुराट् ॥ ३४ ॥
अथ द्विजेभ्यो विद्वद्भ्यो वैष्णवेभ्यो विशेषतः।
निष्कत्रयं हिरण्यस्य द्रोणं चाज्यस्य गां तथा ॥ ३५ ॥
कर्पूरं चन्दनं चापि वासांसि विमलान्यपि।
एतानि दद्यादेकस्मै मुने ब्रह्मविदेऽथवा ॥ ३६ ॥
ततः स्वस्थो भवेत् सद्यो यावज्जीवं न संशयः।
एषा चिकित्सा प्रकृतिर्व्याधीनां मात्रया भिदा ॥ ३७ ॥

तदनन्तर ज्वर वाले रोगी को पूर्वाभिमुख आसन पर बैठा कर उसके आगे शीशा इस प्रकार रखे जिसमें उसकी परछाई पड़ती रहे। फिर उस घड़े को हाथ में लेकर उसके जल से मन्त्रपूर्वक दर्पण को अभिषिक्त करे। ऐसा करने से रोगी इस प्रकार ज्वरमुक्त हो जाता है जैसे मेघमण्डल से चन्द्रमा। तदनन्तर वह रोगी ब्राह्मणों, विद्वानों एवं वैष्णवों को तीन-तीन निष्क वाली सुवर्ण की दक्षिणा और एक-एक द्रोण घी तथा गौ प्रदान करे तथा किसी एक ब्रह्मवेत्ता विद्वान् को कपूर, चन्दन एवं नाना प्रकार के श्वेत वस्त्र प्रदान करे। ऐसा करने से रोगी यावज्जीवन स्वस्थ होकर जीवित रहता है, इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु उसकी प्रक्रिया में थोड़ा-थोड़ा भेद है ॥ ३३-३७ ॥

राजयक्ष्मशान्तिः

राजयक्ष्माभिभूते तु नृपादौ मुनिसत्तम।
मध्वक्ताभिरपामार्गसमिद्भिः खादिरेऽनले ॥ ३८ ॥
मन्त्रेणानेन जुहुयात् सहस्रं मन्त्रवित्तमः।
ततः प्रतीच्ये दिग्भागे पूर्ववत् कल्पितेऽनले ॥ ३९ ॥
आढकाज्याभिपूर्णायां पात्र्यां द्विपलतन्तुषु।
आरोप्य दीपिकां पश्चाद् देवमावाह्य मन्त्रतः ॥ ४० ॥
ततः पाश्चात्त्यभागे तु भारशालिपरिष्कृते।
स्थण्डिले मण्डिते शुद्धे कृत्वा माहेन्द्रमण्डलम् ॥ ४१ ॥

राजयक्ष्मा की शान्ति का उपाय—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुनिसत्तम! जब राजा आदि राजयक्ष्मा रोग से अभिभूत हों तो मधु मिश्रित अपामार्ग (चिचिढी) की समिधा से खदिर से जलती हुई अग्नि में हवन करे। मन्त्रवेत्ता इसी मन्त्र से एक हजार आहुति प्रदान

करे। उसके पश्चिम दिशा में पूर्ववत् स्थापित अग्नि में आढक परिमाण की घृतपूर्ण पात्री में दो पल डोरे की वत्ती बनाकर दीपक जलावे। तदनन्तर मन्त्र द्वारा देव का आवाहन करे। फिर उसके पश्चिमभाग मे एक भार बिछाये गए शाली से परिष्कृत, कुङ्कुमादि से सुशोभित एवं मण्डित स्थण्डिल पर महेन्द्र मण्डल का निर्माण करे॥ ३८-४१॥

पूर्ववत् षडरं चक्रं विन्यस्यारेष्वमुष्य च।
मन्त्रवर्णानि विन्यस्य साध्यनाम च तारके॥ ४२॥
पूर्ववन्मन्त्रितं कुम्भं तत्र संस्थाप्य मण्डले।
आवाह्य देवमभ्यर्च्य पूर्ववच्चक्ररूपिणम्॥ ४३॥
हविश्च पायसं दद्यात् खण्डमध्वाज्यसंयुतम्।
बलिं च पूर्ववत् कुर्यात् पायसेन विशेषतः॥ ४४॥
गुरुक्षेत्रेशविघ्नेशदुर्गादिक्पालकान् प्रति।

उस महेन्द्र मण्डल पर छः अरों वाला चक्र स्थापित कर उसके अरों में मन्त्र के वर्णों को लिख कर प्रणव पर साध्य (रोगी) का नाम लिखे। तदनन्तर उसी मण्डल पर पूर्ववत् (द्र० ३८.२६-२८) नवीन कुम्भ स्थापित कर चक्ररूपी देवता का आवाहन कर उनकी पूजा करे। गुरु, क्षेत्रेश, विघ्नेश, दुर्गा और दिक्पालों को खाँड़, मधु एवं आज्य से संयुक्त पायस रूप हवि प्रदान करे और पूर्ववत् बलि करे, विशेष कर पायस की बलि उत्तम है॥ ४२-४५॥

प्रावृत्य कम्बलेनैनं साध्यं प्राङ्मुखमासने॥ ४५॥
आसीनं मन्त्रतः कुम्भवारिभिश्चाभिषेचयेत्।
अन्वहं दर्पणाविष्टं स्नापयेच्छायया पुनः॥ ४६॥
निष्कद्वयं हिरण्यस्य द्विनिष्कं रजतं तथा।
कम्बलं स्वधृतं वस्त्रं तिलानां द्रोणमेव च॥ ४७॥
कमण्डलुं कांस्यपात्रं छत्रं चोपानहौ तथा।
एकस्मै ब्राह्मणायैव विदुषे चास्तिकाय वै॥ ४८॥
दद्यादेतानि सर्वाणि सर्वसत्कारपूर्वकम्।
प्रयोक्तारं धनैरेवमभ्यर्च्य प्रयतो भवेत्॥ ४९॥
सद्यस्तस्मान्महारोगाद् विमुक्तो नात्र संशयः।

फिर रोगी को कम्बल ओढ़ाकर पूर्वाभिमुख आसन पर बिठावे और कलश के जल से उसे अभिषिक्त करे। फिर दर्पण में आविष्ट उसके प्रतिबिम्ब को प्रतिदिन उसकी छाया से स्नान करावे। सोने के दो निष्क तथा रजत (= चाँदी) के दो निष्क, कम्बल, स्वयं धारण किए गए वस्त्र, द्रोण परिमाण में तिल, कमण्डल, कांस्यपात्र, छत्र तथा उपानह ये सभी वस्तुयें किसी एक आस्तिक विद्वान् ब्राह्मण को सत्कारपूर्वक प्रदान करे तथा इस क्रिया के प्रयोग करने वाले ब्राह्मण को धन से सन्तुष्ट कर स्वयं नियमपूर्वक रहे। ऐसा करने से रोगी महारोग से विमुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४५-५०॥

प्रमेहरोगशान्तिः

एवं प्रमेहरोगेण गृहीते च महामुने ॥ ५० ॥
सहस्रं जुहुयान्मन्त्री मन्त्रेणानेन बैल्वकैः ।
माषौदनं हविर्दद्याद् बलिं चानेन कारयेत् ॥ ५१ ॥
अभिषेकं स्वयं कुर्यादन्यत् पूर्ववदाचरेत् ।
दद्याद् द्रोणं च माषाणां रजतं पञ्चनिष्ककम् ॥ ५२ ॥
एकं चानुडुहं सद्यो नीरोगः स्यान्महामुने ।

प्रमेह रोग की शान्ति का उपाय—हे महामुने ! प्रमेह रोग से गृहीत होने पर इसी प्रकार मन्त्रवेत्ता बिल्व की लकड़ी से एक सहस्र बार हवन करे । माष और ओदन की हवि प्रदान करे तथा इसी से बलि भी प्रदान करे । अभिषेक स्वयं करे अन्य तथा सारी विधि पूर्ववत् करे । एक द्रोण परिमाण में माष (= उरद की दाल), पाँच निष्क रजत और एक बैल का दान करे । ऐसा करने से, हे महामुने ! रोगी तत्क्षण निरोग हो जाता है ॥ ५०-५२ ॥

उदररोगशान्तिः

तथौदरैर्महारोगैर्गुल्मशूलादिभिश्चिरम् ॥ ५३ ॥
अभिभूतेषु मर्त्येषु वक्ष्ये प्रतिविधिं शृणु ।
पूर्ववत् कुम्भमभ्यर्च्य सुदर्शननिषेवितम् ॥ ५४ ॥
तत्पूर्वभागे प्रज्वाल्य ज्वलनं कुण्डमध्यमे ।
समिद्भिरार्कैर्जुहुयादाज्याक्तैर्द्विसहस्रकम् ॥ ५५ ॥
तिलैश्च जुहुयात् तद्वन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।
ततः कुम्भोदकं स्पृष्ट्वा सहस्रं च जपेन्मनुम् ॥ ५६ ॥
ततो हरेद् बलिं मन्त्री दिक्पालानां यथाक्रमम् ।
भूतप्रेतपिशाचानां क्षेत्रेशस्यापि नारद ॥ ५७ ॥
शुक्लौदनैः शुक्लपुष्पैः पिष्टैः शुक्लध्वजैरपि ।
कुम्भाधिवासितं देवं पूजयेद् विधिवत् ततः ॥ ५८ ॥
हविर्निवेदयेच्छुद्धैरोदनैः कल्पितं बहु ।
शर्करामधुदध्याढ्यं सर्वव्यञ्जनसंयुतम् ॥ ५९ ॥
ततः कुम्भोदकं किञ्चिदादायानेन मन्त्रितम् ।
पाययेद्रोगिणं मन्त्री मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥ ६० ॥

उदर रोग की शान्ति का उपाय—इसी प्रकार गुल्म शूल आदि उदर रोगों से चिरकाल तक गृहीत होने पर उसके प्रतीकार का उपाय कहता हूँ । हे महामुने ! उसे सुनिए । पूर्ववत् सुदर्शन प्रतिष्टापित कुम्भ की अर्चना करे उसके पूर्व भाग में मध्यम कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर आज्यसिक्त मन्दार की समिधा से दो सहस्र सङ्ख्या में हवन करे । फिर इसी मन्त्र से उसी प्रकार दो सहस्र की सङ्ख्या में तिल का हवन करे । फिर कुम्भ का जल स्पर्श कर एक हजार की सङ्ख्या में उसी मन्त्र का जप करे । फिर मन्त्रवेत्ता क्रमानुसार

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सर्वफलसाधनभूतमहाभिषेकविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप-समूह को नष्ट कर देता है, हम उन सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं।

केन प्रयोगेण सर्वार्थसिद्धिरिति प्रश्नः

नारदः—

भगवन् ब्रूहि सर्वज्ञ येनैकेनैव कर्मणा ।
सर्वरोगा विनश्यन्ति केन सर्वे च शत्रवः ॥ १ ॥
केन सर्वार्थसिद्धिः स्याज्जगत् केन वशं भवेत् ।
विभूतिर्विमला केन प्राप्यते कर्मणा वद ॥ २ ॥

किसी एक प्रयोग का अनुष्ठान करने से भी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं इस विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे सर्वज्ञ ! किस एक कर्म के अनुष्ठान से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं? किस एक कर्म से सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं? किस एक कर्म से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं? किस एक कर्म से सारा संसार वश में हो जाता है तथा किस एक क्रिया के अनुष्ठान से शुद्ध विभूति प्राप्त हो जाती है? उसे हमें बताइये ॥ १-२ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

श्रूयतां चावधानेन गुह्यमेतन्महामुने ।
येनैकेन प्रयोगेण सर्वार्थाः सम्भवन्ति हि ॥ ३ ॥

उक्त प्रश्न का समाधान—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महामुने ! यह बहुत रहस्य की बात है। अतः सावधान होकर इसे सुनिए। जिस एक ही कर्म के अनुष्ठान मात्र से सारे प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं उसे मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥

महाभिषेकाख्यकर्मविधिः

राज्ञश्च मन्त्रिणां चैव सर्वेषामधिकारिणाम् ।
पदात् स्वस्मादुपारोढुकामानां परमं पदम् ॥ ४ ॥
अन्येषां लौकिकानां च यत् किञ्चिद् वाञ्छतां तथा ।
कार्यं महाभिषेकाख्यं कर्म सर्वार्थसाधकम् ॥ ५ ॥

महाभिषेकाख्य कर्म के विधान का निरूपण—राजा को, मन्त्री को, सभी अधिकारियों को तथा अपने पद से समुन्नत पद पर अधिरूढ होने की इच्छा करने वालों को, इसी प्रकार अन्य लौकिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए तथा जिस किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करने वालों को महाभिषेकाख्य कर्म करना चाहिए । क्योंकि यही सर्वार्थसाधक एकमात्र उपाय है ॥ ४-५ ॥

तदङ्गतया स्थानादिविशेषविधिः

वासुदेवालयोद्यानमण्डपे मन्दिरेऽथवा ।
समे पवित्रिततले मङ्गलाष्टकसंयुते ॥ ६ ॥
विकीर्य कलमांस्तत्र नवभाराभिसम्मितान् ।
माहेन्द्रमण्डलं न्यस्य बाह्यतो जातिपुष्पकैः ॥ ७ ॥
मध्ये सौदर्शनं यन्त्रमुक्तेनैव तु वर्त्मना ।
विन्यसेद् गन्धपुष्पैश्च तन्मध्ये च सुशोभनम् ॥ ८ ॥
तन्मध्ये विन्यसेन्मन्त्री यन्त्रबिम्बमनुत्तमम् ।
तस्याग्रे मूलमन्त्रेण कुम्भं तन्तुपरिष्कृतम् ॥ ९ ॥
आवाहयेद् गन्धतोये नवरत्नसमन्वितम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरकाश्मीरक्षोदमण्डितम् ॥ १० ॥
अक्षतैश्च परिक्षिप्तं शुद्धक्षौमाभिवेष्टितम् ।
गन्धवत्कुसुमाकीर्णं धूपदीपसमन्वितम् ॥ ११ ॥
मुखान्तरे तथा कार्ये कुम्भकुण्डे स्वलङ्कृते ।
प्रतिष्ठाप्याष्टदिग्भागे पूर्णकुम्भानलङ्कृतान् ॥ १२ ॥
आचक्रायेतिमन्त्राद्यैरग्निप्राकारकान्तकैः ।
प्रागादि विन्यसेन्मन्त्रैः प्रत्येकं पूजयेत् ततः ॥ १३ ॥

सर्वप्रथम तदङ्गतया स्थानादि का निरूपण—श्रीकृष्ण के मन्दिर के उद्यानमण्डप में अथवा मन्दिर में, जहाँ की पृथ्वी समतल हो और जहाँ आठ प्रकार के मङ्गल (सवत्सा गौ आदि) विद्यमान हों वहाँ पर परिमाण में नौ बार चावल फैला कर उसको बाहर से जाती पुष्प से घेर कर उपर्युक्त रीति से महेन्द्र मण्डल के मध्य में सुदर्शन यन्त्र का गन्ध एवं पुष्प के साथ निर्माण करे । उसके मध्य में मन्त्री साधक उत्तम यन्त्रबिम्ब को बनाए और उसके आगे मूल-मन्त्र से रक्षातन्तु से परिष्कृत किये हुये कलश को

स्थापित करे । जिसमें सुगन्धित द्रव्य, जल, नवरत्न, चन्दन, अगरु, कर्पूर और केशर का चूर्ण डाला गया हो, उसके ऊपर अक्षत का पूर्णपात्र रख कर शुद्ध रेशमी वस्त्र द्वारा परिवेष्टित करे और सुगन्धित पुष्प की माला से समाकीर्ण कर धूप तथा दीप प्रदान करे। कुम्भ के मुख को अच्छी प्रकार अलङ्कृत करे । तदनन्तर उस कुम्भ के आठों दिशाओं में आठ कुम्भों को अलङ्कृत कर उसे प्रतिष्ठापित करे । अग्नि के प्राकार से मनोहर 'आचक्राय स्वाहा' आदि मन्त्रों से पूर्व दिशादि के क्रम से न्यास कर उनका पूजन करे ॥ ६-१३ ॥

प्रागादिदिक्षु मध्ये चाग्निकुण्डविधिः

सर्वत्र कुम्भप्राग्भागेष्वग्निकुण्डानि विन्यसेत् ।
प्रासादलक्षणं कुण्डं मध्ये कुर्यात् स्वलङ्कृतम् ॥ १४ ॥

प्रागादि दिशाओं में अग्निकुण्ड की विधि—सर्वत्र आठों दिशाओं में स्थापित कलशों के पूर्व भाग में अग्निकुण्ड निर्माण करावे, मध्य कलश के पूर्व भाग में प्रासाद लक्षण कुण्ड का निर्माण कर उसे अलङ्कृत करे ॥ १४ ॥

प्रागाद्यग्निकुण्डानां लक्षणकथनम्

प्राच्यां दिशि चतुष्कोणमाग्नेय्यां तु त्रिकोणकम् ।
याम्ये त्वर्धेन्दुसङ्काशं नैर्ऋत्यां योनिसन्निभम् ॥ १५ ॥
वारुण्यां पद्मसङ्काशं वायव्यामष्टकोणकम् ।
वृत्तमुत्तरदिग्भागे चैशान्यां तु षडस्रकम् ॥ १६ ॥

पूर्वादि दिशाओं में निर्माण किये जाने वाले अग्निकुण्डों के लक्षण—पूर्व दिशा में चतुष्कोण अग्निकुण्ड, आग्नेयकोण में त्रिकोण अग्निकुण्ड, दक्षिण में अर्द्धचन्द्राकार अग्निकुण्ड, नैर्ऋत्य दिशा में योनि लक्षण अग्निकुण्ड, पश्चिम दिशा में पद्माकार अग्निकुण्ड, वायव्य में अष्टकोणात्मक अग्निकुण्ड, उत्तर दिशा में वृत्ताकार अग्निकुण्ड तथा ईशान कोण में षडस्र कुण्ड का निर्माण करावे ॥ १५-१६ ॥

दिशां होमेषु वैष्णवर्त्विग्वरणम्

वैष्णवानृत्विजश्चाष्टौ दिशां होमेषु योजयेत् ।
मध्ये तु साधको मन्त्री जुहुयाज्ज्वलितेऽनले ॥ १७ ॥

होम के लिए प्रत्येक दिशा में वैष्णव ऋत्विजों का वर्णन—दिशाओं में होम के लिए आठ वैष्णव ऋत्विजों का वरण करे तथा मध्य में साधक मन्त्रवेत्ता स्वयं जलती हुई अग्नि में हवन करे ॥ १७ ॥

होमे द्रव्यसङ्ख्ययोर्विधिः

प्रत्येकं जुहुयादाज्यैरष्टोत्तरसहस्रकम् ।

होम में द्रव्य तथा सङ्ख्या का प्रमाण कथन—प्रत्येक दिशाओं में घृत से एक हजार आठ हवन करे ॥ १८ ॥

होमे मन्त्रविधिः

सर्वत्र मूलमन्त्रेण जुहुयाद् ध्यानपूर्वकम् ॥ १८ ॥

होम के लिए मन्त्र कथन—साधक सभी दिशाओं में मूल मन्त्र से ध्यानपूर्वक हवन करे ॥ १८ ॥

कुम्भाभिमन्त्रणविधिः

होमान्ते देवमभ्यर्च्य सर्वकुम्भेषु साधकः ।
स्पृष्ट्वा तु ताञ्जपेन्मन्त्रं साध्यनामपुटीकृतम् ॥ १९ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु सर्वत्र विधिवत् ततः ।
निवेशयेन्महायन्त्रसम्मुखं साध्यमासने ॥ २० ॥

कुम्भों के अभिमन्त्रण की विधि—उपर्युक्त प्रकार से हवन कर लेने के पश्चात् साधक प्रत्येक कुम्भ पर देवाधिदेव सुदर्शन का पूजन करे । फिर उसे स्पर्श कर साध्य (रोगी अथवा अन्य आपद्ग्रस्त) नाम को मन्त्र से सम्पुट कर विधानपूर्वक एक हजार आठ बार सर्वत्र प्रत्येक कुम्भों पर जप करे । तदनन्तर महायन्त्र के सामने आसन पर साध्य को बिठावे ॥ १९-२० ॥

प्रथमं प्रागादिकुम्भजलैरभिषेकः

ततो भेरीनिनादैश्च शङ्खकाहलनिस्वनैः ।
सहितं स्नापयेदेनं प्राच्याद्यैः कुम्भवारिभिः ॥ २१ ॥

क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के कलश जल से अभिषेक का कथन—तदनन्तर भेरी शब्द तथा शङ्ख ध्वनि करते हुये पूर्वादि दिशाओं में स्थित कलश के जल से साध्य को स्नान करवावे ॥ २१ ॥

ततः पूर्णकुम्भजलेनाभिषेकः

पश्चान्मध्यममादाय पूर्णकुम्भं स्वलङ्कृतम् ।
तद्वारिणाभिषिच्यान्ते मन्त्रं मन्त्री जपेत् स्वयम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर पूर्णकुम्भ के जल से अभिषेक का कथन—आठों कलश से स्नान कराने के पश्चात् अच्छी प्रकार से अलङ्कृत मध्य स्थित पूर्णकुम्भ का जल लेकर उसी से मन्त्रवेत्ता आचार्य स्वयं मन्त्र का उच्चारण करते हुये साध्य को स्नान करवावे ॥ २२ ॥

यथोक्ताभिषेकेण सर्वकामावाप्तिः

ततस्तेनाभिषेकेण निर्धूताशेषकिल्बिषः ।
राजते हिमसंरोधान्निर्मुक्त इव भास्करः ॥ २३ ॥
सर्वे तमनघं कामा वृणते स्वयमेव हि ।
विना राजानमेतेन कुर्याच्चान्याभिषेचनम् ॥ २४ ॥
एवं महाभिषेके तु कृते पूर्णे महात्मना ।

यस्य यद् वाञ्छितं तस्य हस्तस्थं तन्न संशयः ॥ २५ ॥
आयुष्कामी तथायुष्यमारोग्यार्थी तदश्नुते ।
अर्थार्थी चार्थमाप्नोति पशुकामस्तथा पशून् ॥ २६ ॥
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति निर्गुणो गुणवान् भवेत् ।
कन्यार्थी लभते कन्यां जिगीषुर्जयमश्नुते ॥ २७ ॥
स्वपदं पदहीनस्तु पदार्थी परमं पदम् ।
अन्नकामश्च बह्वन्नं यशोऽर्थी चाश्नुते यशः ॥ २८ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।
तत्तत् सद्यः समाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥

उक्त प्रकार के अभिषेक से साध्य की सारी कामनाओं का पूर्ण हो जाना—

ऊपर कही गई विधि से अभिषिक्त साध्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे कुहरे से ढका हुआ सूर्य उससे मुक्त होने पर सुशोभित होता है उसी प्रकार वह भी सुशोभित होता है। सम्पूर्ण कामनायें उस निष्पाप पुरुष को स्वयं वरण कर लेती हैं । इस प्रकार का अभिषेक राजा को छोड़कर अन्य लोगों का कहा गया है । विद्वान् पुरुष द्वारा इस प्रकार के महाभिषेक सम्पन्न कर दिये जाने पर जिसे जिस वस्तु की अभिलाषा होती है वह उसके करतल में स्वयं प्राप्त हो जाती हैं । इसमें संशय नहीं है । आयु चाहने वाला आयुष्य तथा आरोग्य चाहने वाला आरोग्य का फल भोगता है अर्थार्थी अर्थ प्राप्त करता है, पशु चाहने वाला पशु प्राप्त करता है, अपुत्र को पुत्र प्राप्त होता है, निर्गुण गुणवान् बन जाता है, कन्यार्थी को कन्या मिलती है, विजय लाभ चाहने वाले को विजय प्राप्त होती है, पदच्युत अपना पद प्राप्त करता है, परम पद चाहने वाले को परम पद मिल जाता है, अन्न चाहने वाले को पर्याप्त अन्न तथा कीर्त्ति चाहने वाले को कीर्त्ति प्राप्त होती है । इस विषय में बहुत क्या कहा जाय? मन में रहने वाले सारे मनोरथ सद्यः पूर्ण हो जाते है इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ॥ २३-२९ ॥

अन्ते साधकार्चनविधिः

एवं कृताभिषेकस्तु पूर्णकामोऽथ मानवः ।
सुवर्णैर्बहुरत्नैश्च वस्त्रैर्माल्यानुलेपनैः ॥ ३० ॥
अर्चयेत् साधकं सम्यग् दद्याद्धेनुं सवत्सकाम् ।
तस्मै शिष्टं च यद् द्रव्यमभिषेकपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥
तच्च दद्यात् तथा पात्रीं पायसेनाभिपूरिताम् ।

अन्त में साधक द्वारा अर्चन विधि का वर्णन—इस प्रकार से अभिषिक्त तथा कृतकृत्य मनुष्य सुर्वण, अनेक प्रकार के रत्न एवं वस्त्र, माला तथा चन्दन द्वारा साधक (मन्त्रवेत्ता) की अच्छी प्रकार से पूजा करे । उसे सवत्सा गौ देवे और अभिषेक की सारी सामग्री तथा यज्ञ शेष सारा द्रव्य प्रदान करे । इतना ही नहीं पायस परिपूर्ण पात्री भी उसे प्रदान करे ॥ ३०-३२ ॥

ऋत्विजां ब्राह्मणानां च परितोषणविधिः

प्रत्येकं निष्कदानेन तोषयेदृत्विजोऽखिलान् ।
तर्पयेद् ब्राह्मणानन्यान् यथाशक्ति समाहितः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सर्वफलसाधनभूत-महाभिषेकविधानं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २४८१ ॥

*

ऋत्विग् तथा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने की विधि—यजमान अपने समस्त ऋत्विजों को सुवर्ण निष्क देकर सन्तुष्ट करे । तदनन्तर समाहित होकर अन्य ब्राह्मणों का भी शक्ति के अनुसार सत्कार करे ॥ ३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों के जन्मनामनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३८ ॥

*

यस्य यद् वाञ्छितं तस्य हस्तस्थं तन्न संशयः ॥ २५ ॥
आयुष्कामी तथायुष्यमारोग्यार्थी तदश्नुते ।
अर्थार्थी चार्थमाप्नोति पशुकामस्तथा पशून् ॥ २६ ॥
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति निर्गुणो गुणवान् भवेत् ।
कन्यार्थी लभते कन्यां जिगीषुर्जयमश्नुते ॥ २७ ॥
स्वपदं पदहीनस्तु पदार्थी परमं पदम् ।
अन्नकामश्च बह्वन्नं यशोऽर्थी चाश्नुते यशः ॥ २८ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।
तत्तत् सद्यः समाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥

उक्त प्रकार के अभिषेक से साध्य की सारी कामनाओं का पूर्ण हो जाना—

ऊपर कही गई विधि से अभिषिक्त साध्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे कुहरे से ढका हुआ सूर्य उससे मुक्त होने पर सुशोभित होता हैं उसी प्रकार वह भी सुशोभित होता है। सम्पूर्ण कामनायें उस निष्पाप पुरुष को स्वयं वरण कर लेती हैं । इस प्रकार का अभिषेक राजा को छोड़कर अन्य लोगों का कहा गया है । विद्वान् पुरुष द्वारा इस प्रकार के महाभिषेक सम्पन्न कर दिये जाने पर जिसे जिस वस्तु की अभिलाषा होती हैं वह उसके करतल में स्वयं प्राप्त हो जाती हैं । इसमें संशय नहीं है । आयु चाहने वाला आयुष्य तथा आरोग्य चाहने वाला आरोग्य का फल भोगता है अर्थार्थी अर्थ प्राप्त करता है, पशु चाहने वाला पशु प्राप्त करता है, अपुत्र को पुत्र प्राप्त होता हैं, निर्गुण गुणवान् बन जाता है, कन्यार्थी को कन्या मिलती है, विजय लाभ चाहने वाले को विजय प्राप्त होती है, पदच्युत अपना पद प्राप्त करता है, परम पद चाहने वाले को परम पद मिल जाता है, अन्न चाहने वाले को पर्याप्त अन्न तथा कीर्त्ति चाहने वाले को कीर्त्ति प्राप्त होती है । इस विषय में बहुत क्या कहा जाय? मन में रहने वाले सारे मनोरथ सद्यः पूर्ण हो जाते हैं इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ॥ २३-२९ ॥

अन्ते साधकार्चनविधिः

एवं कृताभिषेकस्तु पूर्णकामोऽथ मानवः ।
सुवर्णैर्बहुरत्नैश्च वस्त्रैर्माल्यानुलेपनैः ॥ ३० ॥
अर्चयेत् साधकं सम्यग् दद्याद्धेनुं सवत्सकाम् ।
तस्मै शिष्टं च यद् द्रव्यमभिषेकपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥
तच्च दद्यात् तथा पात्रीं पायसेनाभिपूरिताम् ।

अन्त में साधक द्वारा अर्चन विधि का वर्णन—इस प्रकार से अभिषिक्त तथा कृतकृत्य मनुष्य सुर्वण, अनेक प्रकार के रत्न एवं वस्त्र, माला तथा चन्दन द्वारा साधक (मन्त्रवेत्ता) की अच्छी प्रकार से पूजा करे । उसे सवत्सा गौ देवे और अभिषेक की सारी सामग्री तथा यज्ञ शेष सारा द्रव्य प्रदान करे । इतना ही नहीं पायस परिपूर्ण पात्री भी उसे प्रदान करे ॥ ३०-३२ ॥

ऋत्विजां ब्राह्मणानां च परितोषणविधिः

प्रत्येकं निष्कदानेन तोषयेदृत्विजोऽखिलान् ।
तर्पयेद् ब्राह्मणानन्यान् यथाशक्ति समाहितः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सर्वफलसाधनभूत-महाभिषेकविधानं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २४८१ ॥

* * *

ऋत्विग् तथा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने की विधि—यजमान अपने समस्त ऋत्विजों को सुवर्ण निष्क देकर सन्तुष्ट करे । तदनन्तर समाहित होकर अन्य ब्राह्मणों का भी शक्ति के अनुसार सत्कार करे ॥ ३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों के जन्मनामनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३८ ॥

* * *

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अस्त्रस्वरूपतच्छक्तिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनंस्य तद् दिव्यं भर्गों देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी ध्यान करने से अनेक कोटि जन्मों के पाप समूह नष्ट हो जाते हैं, हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

उक्तानुवादपूर्वकमस्त्रसंस्थानतच्छक्तिस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश विश्वामरवरार्चित ।
यद्यन्मया पुरा पृष्टं तत्त्वतस्तत् तदीरितम् ॥ १ ॥
दिव्यास्त्राणां तु सर्वेषां मन्त्ररूपाश्च मूर्तयः ।
कथिता भवता सम्यक् पृच्छतो मे सविस्तरम् ॥ २ ॥
किंसंस्थानान्यथास्त्राणि किं शक्तीनि परन्तप ।
मयि सानुग्रहं चेतस्तव चेद् वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

उक्तानुवादपूर्वक अस्त्र संस्थान तथा तच्छक्ति स्वरूप विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! समस्त देववरों से पूजित ! मैंने जो-जो आपसे प्रश्न किया । आपने उन सभी प्रश्नों को समाहित किया । मैंने जैसा पूछा था वैसे ही आपने सभी दिव्यास्त्रों के मन्त्रस्वरूपों को तथा उनकी मूर्तियों का सविस्तार वर्णन किया । अब हे परन्तप ! वे अस्त्र किस प्रकार के संस्थान वाले हैं और उनमें कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं, यदि आपका मन मुझमें अनुग्रह से युक्त है तो उसे हमें बताइये ॥ १-३ ॥

तदुत्तरकथनाय तेषां परमगुह्यत्वख्यापनम्

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् परमं गुह्यमवाच्यमतिदुर्लभम् ।

उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए प्रथम वे अस्त्र परम गुह्य हैं इसका कथन—

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! इसका उत्तर अत्यन्त गुह्य है तथा अत्यन्त दुर्लभ होने के कारण वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

अस्त्राणां स्वरूपेण प्रत्यक्षागोचरता

न चाविरासन्नस्त्राणि स्वस्वरूपेण कस्यचित् ॥ ४ ॥
सुरासुरैर्नियुज्यन्ते मन्त्ररूपेण तानि वै ।

कोई भी अस्त्र स्वरूपत: प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते—आज तक कोई भी अस्त्र किसी के सामने प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हुये । देवता एवं असुर उनका मन्त्र रूप से प्रयोग करते आये हैं ॥ ४-५ ॥

देवकार्यार्थमिन्द्रं प्रति कदाचित् तेषां गोचरता

एकदा वृत्रनिधने वासवस्य स्वरूपतः ॥ ५ ॥
आविर्बभूवुरेतानि सुरकार्यमिदं त्विति ।

देवताओं के कार्य के लिए कदाचित् वे अस्त्र इन्द्र को प्रत्यक्ष होते हैं—किसी समय वृत्र के वध काल में ये अस्त्र इन्द्र को स्वरूप से प्रत्यक्ष दिखाई पड़े थे, उसका कारण यह था कि उस समय उन्हे देव कार्य निष्पन्न करना था ॥ ५-६ ॥

मन्त्ररूपेणासाध्ये विषये तेषां स्वस्वरूपाविष्करणम्

मन्त्रस्वरूपैश्चासाध्ये विषये स्वस्वरूपतः ॥ ६ ॥
आविष्कुर्वन्ति चास्त्राणि भीषणानि परं मुने ।
एषां दर्शनमात्रेण विनश्यन्त्यरिसैनिकाः ॥ ७ ॥

जब मन्त्र द्वारा कोई कार्य असम्भव हो जाता है तब वे स्वरूपत: प्रगट होते हैं—हे मुने ! जब मन्त्र स्वरूप से कोई भी कार्य असाध्य होता है तब ये भीषण अस्त्र अपने को स्वरूपत: प्रगट करते हैं । फिर तो उनके दर्शन मात्र से सारे शत्रु सैन्य विनष्ट हो जाते हैं ॥ ६-७ ॥

भगवता तेषां स्वरूपेण धारणम्

चक्रस्वरूपी भगवांस्तानि धत्ते स्वरूपतः ।

उन अस्त्रों को मात्र भगवान् ही स्वरूपत: धारण करते हैं—चक्र रूपी भगवान् ही उन्हें स्वरूपत: धारण करते हैं ॥ ८ ॥

तत्स्वरूपतच्छक्तिकथनप्रतिज्ञा

स्वरूपाणि तथा तेषां शक्तीश्च कथयामि ते ॥ ८ ॥

अब उनके स्वरूप तथा उनकी शक्ति के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं—हे नारद ! अब उनके स्वरूपों को तथा शक्तियों को मैं आपसे कहता हूँ ॥ ८ ॥

१. नारायणास्त्रम्

शृणु नारायणास्त्रस्य स्वरूपं प्रथमं मुने ।

सहस्रधारमत्युग्रं सहस्रार्कसमप्रभम् ॥ ९ ॥
तैजसं विस्तृताग्रं तन्मोहिनीकुसुमोपमम् ।

१. नारायणास्त्र—हे मुने ! सर्वप्रथम आप नारायणास्त्र के स्वरूप को सुनिए । यह नारायणास्त्र सहस्रधाराओं से युक्त, उग्र तथा सहस्र सूर्य के समान कान्ति वाला है । तैजस है, अग्रभाग में विस्तार वाला है तथा मोहिनी के फूल के समान है वही नारायणास्त्र कहा गया है ॥ ९-१० ॥

२. पाशुपतास्त्रम्

प्रतिपच्चन्द्रसङ्काशमध्याष्टास्त्रविदीपितम् ॥ १० ॥
शतधारं तडिद्दीप्तमेतत् पाशुपतं मतम् ।

२. पाशुपतास्त्र—जो प्रतिपत् के चन्द्रमा के समान अदृश्य है, मध्य में आठ अस्रों (कोणों) से दीप्तिमान् है इसमें सौ धारायें हैं, जो बिजली के समान प्रकाशित रहती हैं इसे पाशुपतास्त्र कहते हैं ॥ १०-११ ॥

३. ब्राह्मास्त्रम्

सहस्रारसमायुक्तं विद्युत्पुञ्जोपमाकृति ॥ ११ ॥
प्रस्तरप्रतिमं मुष्टिग्राह्याग्रं ब्राह्ममीरितम् ।

३. ब्रह्मास्त्र—जिस अस्त्र में एक हजार अरे हों, जिसकी आकृति विद्युत्पुञ्ज के समान हो और जो सर्वथा पत्थर के समान हो तथा जिसका अग्रभाग मुट्ठी से पकड़ने योग्य हो उसे ब्रह्मास्त्र कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

४. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्

दंष्ट्राकरालं दष्टोष्ठं पिङ्गलाक्षं विभीषकम् ॥ १२ ॥
गृहीतपिङ्गकेशाग्रमेतद् ब्रह्मशिरो मतम् ।

४. ब्रह्मशिर नामक अस्त्र—जिसके दाढ़ कराल हों, जिसने अपने दाढों से ओष्ठ को दष्ट किया हो, जिसकी आँखें पीली तथा भयानक हों, जिसने अपने मस्तक पर पीले-पीले केशों को धारण किया हो वही ब्रह्मशिर नामक अस्त्र है ॥ १२-१३ ॥

५. विष्णुचक्रास्त्रम्

विष्णुचक्रमिति ख्यातं सहस्रारं सुदर्शनम् ॥ १३ ॥

५. विष्णुचक्रास्त्र—सहस्र अरों से युक्त सुदर्शन को ही विष्णुचक्र कहा जाता है ।

६. जृम्भणास्त्रम्

जृम्भणं त्वष्टवक्राङ्गं दण्डमेवं विदुर्बुधाः ।

६. जृम्भणास्त्र—बुद्धिमान् लोग आठ स्थान से टेढ़े अङ्ग वाले दण्डाकार अस्त्र को जृम्भणास्त्र कहते हैं ॥ १४ ॥

७. कालपाशास्त्रम्

भीमाकारं पाशमेव कालपाशमिति स्मृतम् ॥ १४ ॥

७. कालपाश नामक अस्त्र—अत्यन्त भयानक पाश ही कालपाश कहा जाता है।

८. आग्नेयास्त्रम्

षट्कोणाग्रं ज्वलज्ज्वालमस्त्रमाग्नेयमुत्तमम्।

८. आग्नेयास्त्र—जो अग्रभाग में छः कोणों वाला हो तथा जिससे जलती हुई ज्वाला निकल रही हो वह उत्तम आग्नेयास्त्र कहा जाता है ॥ १५ ॥

९. हयशिरोऽस्त्रम्

ज्वालाविलं वाजिवक्त्रमस्त्रं हयशिरो मतम् ॥ १५ ॥

९. हयशिरः नामक अस्त्र—जिसका मुख घोड़े के मुख के समान है और जो अपने मुख से सर्वदा ज्वाला उगल रहा हो—वह हयशिरः नामक अस्त्र है ॥ १५ ॥

१०. प्रस्वापनास्त्रम्

प्रस्वापनं कुवलयस्तबकस्तम्बसन्निभम्।

१०. प्रस्वापनास्त्र—नीले कमल के गुच्छे के समान तथा स्तम्ब के आकार वाला प्रस्वापनास्त्र होता है ॥ १६ ॥

११. तामसास्त्रम्

सतोयतोयदप्रख्यं तामसास्त्रमुदीरितम् ॥ १६ ॥

११. तामस नामक अस्त्र—जलयुक्त बादल के समान तामसास्त्र का स्वरूप कहा गया है ॥ १६ ॥

१२. कालास्त्रम्

कालास्त्रं भीषणं दण्डं षष्टिघण्टासमाकुलम्।

१२. कालास्त्र—कालास्त्र अत्यन्त भयानक होता है। उसका आकार दण्ड के समान तथा उसमें बँधे हुये ६० घण्टे बराबर शब्द करते रहते हैं ॥ १७ ॥

१३. दण्डचक्रास्त्रम्

आद्यन्तचक्रयुग्दण्डं दण्डचक्रमिति स्मृतम् ॥ १७ ॥

१३. दण्डचक्रास्त्र—जिसके आदि तथा अन्त में दो चक्र लगे हों उसे दण्डचक्रास्त्र कहा जाता है ॥ १७ ॥

१४. कालचक्रास्त्रम्

कालचक्रं चतुष्कोणं पर्यन्तस्थितराशिमत्।

१४. कालचक्रास्त्र—कालचक्र चतुष्कोण के आकार वाला होता है। उसके अन्त में बारह राशियाँ घूमती रहती हैं ॥ १८ ॥

१५. धर्मचक्रास्त्रम्

धर्मचक्रं सुवृत्तं स्याद् दशयज्ञायुधाङ्कितम् ॥ १८ ॥

१५. धर्मचक्रास्त्र—धर्मचक्रास्त्र वृत्ताकार होता है और यज्ञ के समान ही उसके दश आयुध हैं ॥ १८ ॥

१६. शैवास्त्रम्

शैवं शतमुखाग्निस्तु दण्डवत् परिकीर्त्यते ।

१६. शैवास्त्र—जिसके सौ मुखों से अग्नि निकल रही हो और जो दण्डाकार हो उसे शैवास्त्र कहा जाता है ॥ १९ ॥

१७. शूलास्त्रम्

शूलं तु त्रिदलं प्रोक्तं तीक्ष्णधारं सुदण्डकम् ॥ १९ ॥

१७. शूलास्त्र—जिसमें तीन दल लगे हों और जिसकी धारा तीक्ष्ण हो तथा जिसका आकार दण्ड के समान हो वही शूलास्त्र कहा गया है ॥ १९ ॥

१८. परश्वस्त्रम्

परशू रौद्रमस्त्रं च तीक्ष्णधारं भयावहम् ।

१८. परशु अस्त्र—परशु रुद्र का प्रधान अस्त्र है । इसकी धारा महाभयानक और तीक्ष्ण है ॥ २० ॥

१९. त्रिशूलास्त्रम्

शूलत्रयाङ्कितमुखं त्रिशूलं दण्डवद् भवेत् ॥ २० ॥

१९. त्रिशूलास्त्र—जिसके अग्रभाग में तीन शूल लगे हों और जिसका आकार दण्ड के समान हो वही त्रिशूलास्त्र होता है ॥ २० ॥

२०. घोरास्त्रम्

घोरं नाराचरूपं स्यादस्त्रमाहुर्मनीषिणः ।

२०. घोरास्त्र—मनीषियों ने वाण के आकार वाले अस्त्र को घोरास्त्र कहा है ।

२१. अघोरास्त्रम्

कृष्णास्यं पिङ्गनयनं ज्वालाकेशोर्ध्वबन्धनम् ॥ २१ ॥
अघोरास्त्रमिदं प्रोक्तं नाम्ना चैवासिधारकम् ।

२१. अघोरास्त्र—काले वर्ण का, पीले-पीले नेत्रों वाला, केश के ऊर्ध्वभाग में ज्वाला बाँधे हुये अघोरास्त्र का स्वरूप है ॥ २१-२२ ॥

२२. सम्मोहनास्त्रम्

अस्त्रं सम्मोहनं नाम कमलं नालसंयुतम् ॥ २२ ॥

२२. सम्मोहनास्त्र—नाल (डण्डी) युक्त कमल के समान सम्मोहनास्त्र होता है ।

२३. ऐषीकास्त्रम्

ऐषीकं शरनालाभमस्त्रमाहुर्विचक्षणाः ।

२३. ऐषीकास्त्र—सरपत के नाल के समान ऐषीक अस्त्र होता है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है ॥ २३ ॥

२४. ऐन्द्रचक्रास्त्रम्

वज्राङ्कितचतुष्कोणं नटाभममितद्युति ॥ २३ ॥
ऐन्द्रचक्राख्यमस्त्रं तत् परवैरिभयङ्करम् ।

२४. ऐन्द्रचक्रास्त्र—यह चतुष्कोण होता है । प्रत्येक कोण पर वज्र लगे रहते हैं यह नाटा होता हैं । इससे वहुत प्रकाश निकलता हैं । शत्रुओं के लिए यह अत्यन्त भयानक होता है ॥ २३-२४ ॥

२५. शुष्काशन्यस्त्रम्

सदा ज्वलितसर्वाङ्गं महिषाकृति भीषणम् ॥ २४ ॥
शुष्काशनिरिदं प्रोक्तमस्त्रमङ्गारसन्निभम् ।

२५. शुष्काशनि अस्त्र—इसके अङ्ग-अङ्ग से ज्वाला निकलती रहती है । यह भैंसे के आकार वाला किन्तु अत्यन्त भीषण होता है और अङ्गारे के समान जलता रहता है यही शुष्काशनि नामक अस्त्र है ॥ २४-२५ ॥

२६. आर्द्राशन्यस्त्रम्

तादृशं शुक्लवर्णं तदार्द्राशनिरिति स्मृतम् ॥ २५ ॥

२६. आर्द्राशनि अस्त्र—ऊपर कही गई आकृति वाला किन्तु वर्ण से शुक्ल आर्द्राशनि नामक अस्त्र होता है ॥ २५ ॥

२७. पैनाकास्त्रम्

पैनाकमस्त्रं परमं धनुस्तक्षकसन्निभम् ।

२७. पैनाक अस्त्र—तक्षक नाग के समान आकृति वाले धनुष को पैनाकास्त्र कहा जाता है ॥ २६ ॥

२८. कङ्कालास्त्रम्

कङ्कालाख्यं भवेदस्त्रं पिशाचाकृति भीषणम् ॥ २६ ॥

२८. कङ्कालास्त्र—पिशाच की आकृति वाला महाभयानक कङ्काल नामक अस्त्र होता है ॥ २६ ॥

२९. कापालास्त्रम्

कपालमालिकामाहुः कापालास्त्रमनुत्तमम् ।

२९. कापालास्त्र—कपाल की माला के समान कापालास्त्र होता है । यह सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है ॥ २७ ॥

३०. सौरास्त्रम्

सौरमस्त्रं समाख्यातं सूर्यबिम्बपरम्परा ॥ २७ ॥

३०. सौरास्त्र—सूर्य बिम्ब की परम्परा जिससे हो वह सौरास्त्र कहा जाता है ।

३१. वरुणपाशास्त्रम्

अस्त्रं वरुणपाशाख्यं शीताकृति सुदारुणम् ।

३१. वरुणपाशास्त्र—जिसकी आकृति अत्यन्त शीत हो और जो महाभयानक हो वह वरुण पाश होता है ॥ २८ ॥

३२. सन्तापनास्त्रम्

लगुडं शङ्कुजालाढ्यं सन्तापनमिदं विदुः ॥ २८ ॥

३२. सन्तापनास्त्र—लोहे के कीलों से सर्वत्र व्याप्त लगुडाकार को सन्तापनास्त्र कहा गया है ॥ २८ ॥

३३. वारुणास्त्रम्

वारुणं जालकाकारं द्वात्रिंशच्छिद्रसंयुतम् ।

३३. वारुणास्त्र—छिद्रों से युक्त जाल के आकार वाला वारुणास्त्र होता है ॥२९॥

३४. धर्मपाशास्त्रम्

सर्वतत्त्वमयं दाम धर्मपाशमिति स्मृतम् ॥ २९ ॥

३४. धर्मपाशास्त्र—सभी तत्त्वों से युक्त रस्सी को धर्मपाश कहा जाता है ॥ २९ ॥

३५-३६. शक्तिद्वयास्त्रम्

शक्तिरेका प्रसिद्धैव शक्त्यन्तरमथोच्यते ।
द्विशिरस्कैकनाला च दशघण्टाविभूषिता ॥ ३० ॥

३५-३६. शक्तिद्वयास्त्र—एक शक्ति तो लोक में प्रसिद्ध ही है । अब दूसरी शक्ति कहते हैं । जिसका नाल एक हो किन्तु शिर दो हों तथा जिसमें दश घण्टे बँधे हों उसे शक्तिद्वयास्त्र कहते हैं ॥ ३० ॥

३७. वायव्यास्त्रम्

वायव्यमस्त्रं सारङ्गः सशृङ्ग इव पठ्यते ।

३७. वायव्यास्त्र—सींग से युक्त सारङ्ग (हरिण) के समान वायव्यास्त्र कहा गया है।

३८. मौसलास्त्रम्

मौसलं मुसलं प्रोक्तं विद्युद्दण्डमिवोज्ज्वलम् ॥ ३१ ॥

३८. मौसलास्त्र—मुसल को ही मौशल कहते हैं । यह बिजली के डण्डे के समान उज्ज्वल होता है ॥ ३१ ॥

३९. गान्धर्वास्त्रम्

गान्धर्वमस्त्रमादिष्टं वीणादण्डोपमाकृति ।

३९. गान्धर्वास्त्र—यह आकृति से वीणादण्ड के समान होता है ॥ ३२ ॥

४०. दर्पणास्त्रम्

दर्पणं दर्पणं प्रोक्तमस्त्रं पूर्णेन्दुसन्निभम्॥ ३२ ॥

४०. दर्पणास्त्र—दर्पण की आकृति वाला दर्पणास्त्र है, यह पूर्णचन्द्र के सदृश होता है॥ ३२ ॥

४१. शोषणास्त्रम्

शोषणं विकटं शृङ्गमस्त्रं परविशोषणम्।

४१. शोषणास्त्र—शत्रुओं का शोषण करने वाला महा विकट शृङ्ग (सींग) के आकार का शोषण अस्त्र होता है॥ ३३ ॥

४२. पैशाचास्त्रम्

पैशाचमस्त्रं परममुल्कामुखमुदाहृतम्॥ ३३ ॥

४२. पैशाचास्त्र—सर्वदा उल्का उगलने वाला तथा अत्यन्त विस्तृत पैशाचास्त्र कहा गया है॥ ३३ ॥

४३. तेजःप्रभास्त्रम्

तेजःप्रभं स्मृतं प्रासप्रतिमं परदारणम्।

४३. तेजःप्रभास्त्र—शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला प्रास (भाले) के आकार का तेजःप्रभ अस्त्र होता है॥ ३४ ॥

४४. ऐन्द्रास्त्रम्

ऐन्द्रमस्त्रं वज्ररूपं तेजसां निलयं स्मृतम्॥ ३४ ॥

४४. ऐन्द्रास्त्र—वज्र की आकृति वाले को ऐन्द्रास्त्र कहते हैं यह तेजस्विता का निधान है॥ ३४ ॥

४५. विलापनास्त्रम्

अस्त्रं विलापनं नाम धाराधरमुदाहृतम्।

४५. विलापन अस्त्र—धाराधर (बादल) को ही विलापन अस्त्र कहा गया है।

४६. वैद्याधरास्त्रम्

वैद्याधरास्त्रमाहुस्तत् पुष्पमालां तु मोहिनीम्॥ ३५ ॥

४६. वैद्याधर अस्त्र—सबको मोहित करने वाली पुष्पमाला के समान वैद्याधर अस्त्र कहा गया है॥ ३५ ॥

४७. कङ्कालास्त्रम्

अस्त्रं कङ्कालसंज्ञं स्यान्महाघण्टानिनादितम्।

४७. कङ्कालास्त्र—जिसमें महाघण्टा का शब्द निरन्तर होता रहता है वह कङ्काल अस्त्र कहा जाता है॥ ३६ ॥

४८. मोदक्यस्त्रम्

मोदकी नाम परमा वल्लरी पुष्पशालिनी ॥ ३६ ॥

४८. मोदकी अस्त्र—मोदकी नामक अस्त्र श्रेष्ठ पुष्पशालिनी लता के समान कहा गया है ॥ ३६ ॥

४९. शिखरास्त्रम्

शिखरं नाम खट्वाङ्गमायुधं परिचक्षते ।

४९. शिखरास्त्र—खट्वाङ्ग नामक आयुध को शिखरास्त्र कहा जाता है ॥ ३७ ॥

५०. क्रौञ्चास्त्रम्

क्रौञ्चमस्त्रं महत् पक्षी क्रौञ्चाकृतिरिहोच्यते ॥ ३७ ॥

५०. क्रौञ्चास्त्र—क्रौञ्च की आकृति वाला पङ्खों से युक्त अत्यन्त महान् क्रौञ्च अस्त्र कहा जाता है ॥ ३७ ॥

५१. असिरत्नास्त्रम्

असिरत्नाह्वयं दिव्यमस्त्रं खड्गो महाद्युतिः ।

५१. असिरत्न नामक अस्त्र—अत्यन्त प्रकाश देने वाला खड्ग की आकृति से युक्त असिरत्न कहा गया है । वह दिव्य तेज:सम्पन्न होता है ॥ ३८ ॥

५२. प्रशमनास्त्रम्

अस्त्रं प्रशमनं नाम प्रोच्यते ध्वजसन्निभम् ॥ ३८ ॥

५२. प्रशमन अस्त्र—ध्वज के समान आकार वाला प्रशमन अस्त्र कहा गया है ।

५३. कन्दर्पदयितास्त्रम्

कन्दर्पदयितं चास्त्रमिक्षुः परमशोभनम् ।

५३. कन्दर्पदायितास्त्र—अत्यन्त शोभायुक्त इक्षु (ईख) ही कन्दर्पदायित अस्त्र है ।

५४. मदनास्त्रम्

मदनं चामरप्रख्यमस्त्रं परभयावहम् ॥ ३९ ॥

५४. मदनास्त्र—सदैव देवतुल्य मदन अस्त्र है । यह शत्रुओं के लिए महाभयानक हैं ॥ ३९ ॥

५५. सौमनास्त्रम्

सौमनं शिबिकाभं तदस्त्रमस्त्रविदो विदुः ।

५५. सौमन अस्त्र—अस्त्रवेत्ता लोगों ने सौमन को शिविका (पालकी) की आकार वाला बताया है ॥ ४० ॥

५६. सत्यास्त्रम्

स्थूलमुक्ताक्षमालैव सत्यास्त्रं सर्वसाधकम् ॥ ४० ॥

५६. सत्यास्त्र—मोटी-मोटी मुक्ताओं से गूँथी हुई माला के समान सत्यास्त्र कहा है। यह अस्त्र सर्वार्थसाधक है ॥ ४० ॥

५७. संवर्तकास्त्रम्

अस्त्रं संवर्तकं नाम महाशङ्खः प्रकीर्त्यते।

५७. संवर्त्तक अस्त्र—महाशङ्ख के समान संवर्त्तक अस्त्र कहा जाता है ॥ ४१ ॥

५८. मायाधरास्त्रम्

मायाधराह्वयं प्राहुरस्त्रं शाखिनमेव च ॥ ४१ ॥

५८. मायाधर नामक अस्त्र—अनेक शाखायुक्त वृक्ष के समान मायाधर अस्त्र कहा गया है ॥ ४१ ॥

५९. सोमास्त्रम्

सोमास्त्रमर्धचन्द्राभं सायकं सम्प्रचक्षते।

५९. सोमास्त्र—अर्द्धचन्द्राकार वाण को सोमास्त्र कहते हैं ॥ ४२ ॥

६०. त्वाष्ट्रास्त्रम्

त्वाष्ट्रमस्त्रं चैत्यसमं सदण्डमभिधीयते ॥ ४२ ॥

६०. त्वाष्ट्र अस्त्र—दण्ड से युक्त चैत्य के समान त्वाष्ट्र नामक अस्त्र कहा गया है।

६१. शीतेष्वस्त्रम्

शीतेषुर्नाम कुम्भास्या स्त्रवन्ती सरिदुत्तमा।

६१. शीतेषु अस्त्र—कुम्भ के समान मुख वाली प्रवहमान सरित् को शीतेषु कहते हैं।

६२. भगास्त्रम्

त्रिकोणं दण्डवद् विद्याद् भगास्त्रममितद्युति ॥ ४३ ॥

६२. भगास्त्र—त्रिकोण दण्डे के समान भगास्त्र कहा गया है। इसका प्रकाश कल्पना से बाहर है ॥ ४३ ॥

६३. सदामनास्त्रम्

सदामनं समाख्यातं चक्र निररमुच्यते।

६३. सदामन अस्त्र—विना अरे वाले चक्र को सदामन अस्त्र कहा गया है ॥४४॥

६४. सत्यवदस्त्रम्

सत्यवत् तन्महाभूतं व्यात्ताननमिदं विदुः ॥ ४४ ॥

६४. सत्यवद् अस्त्र—महाभूत के समान सत्यवद् अस्त्र होता है। यह सर्वदा अपना मुख फैलाये रहता है ॥ ४४ ॥

६५. वारणास्त्रम्

वारणं नाम सर्पास्यं वारणं परमाङ्कुशम्।

६५. वारणास्त्र—साँप के मुख को वारण कहा गया है अथवा बहुत बड़े अङ्कुश को वारणास्त्र कहा गया है ॥ ४५ ॥

६६. धृष्टास्त्रम्

धृष्टं कबन्धमुदरं व्यात्ताननमुदाहृतम् ॥ ४५ ॥

६६. धृष्टास्त्र—कबन्ध एवं उदर को धृष्टास्त्र कहा गया है । यह सर्वदा अपना मुख फैलाये रहता है ॥ ४५ ॥

६७. भृशाश्वतनयास्त्रम्

भृशाश्वतनयं नाम द्विधारं क्रकचं स्मृतम् ।

६७. भृशाश्वतनयास्त्र—दोनों ओर की धारा वाले क्रकच (आरे) को भृशाश्वतनय नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ४६ ॥

६८. सत्यकीर्त्यस्त्रम्

सत्यकीर्तिस्तु मकरो व्यात्तवक्त्रोऽभिधीयते ॥ ४६ ॥

६८. सत्यकीर्त्ति अस्त्र—मुँह बाये हुये मकर को सत्यकीर्त्ति अस्त्र कहा गया है ।

६९. मोहास्त्रम्

मोहः सर्पशिरो व्यात्तवक्त्रमस्त्रं विदुर्बुधाः ।

६९. मोहास्त्र—बुद्धिमानों ने सर्पशिर को मोह कहा है । यह सर्वदा मुख फैलाये रहता है ॥ ४७ ॥

७०. रभसास्त्रम्

रभसं तारसङ्काशमस्त्रं सर्वास्त्रसादनम् ॥ ४७ ॥

७०. रभसास्त्र—सभी अस्त्रों को काट देने वाला रभस अस्त्र कहा जाता है । यह तारे की आकृति का होता है ॥ ४७ ॥

७१. सर्वनाभास्त्रम्

सर्वनाभाह्वयं चास्त्रं कमण्डलुरिहोच्यते ।

७१. सर्वनाभ अस्त्र—कमण्डलु को सर्वनाभ नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ४८ ॥

७२. पराङ्मुखास्त्रम्

पराङ्मुखाह्वयं चास्त्रं पञ्चाननशिरो विदुः ॥ ४८ ॥

७२. पराङ्मुख अस्त्र—पाँच मुख और पाँच शिर वाले अस्त्र को पराङ्मुख अस्त्र कहते हैं ॥ ४८ ॥

७३. जृम्भकास्त्रम्

जृम्भकं नाम रक्ताक्षं त्रिपञ्जरमुदीर्यते ।

७३. जृम्भण अस्त्र—जिसके नेत्र रक्त हों और जो तीन पञ्जर से जकड़ा गया हो वह जृम्भक अस्त्र कहा जाता है ॥ ४९ ॥

७४. प्रतिहारास्त्रम्

प्रतिहाराख्यमस्त्रं तु कुन्तः परमभास्वरः ॥ ४९ ॥

७४. प्रतिहार अस्त्र—अत्यन्त चमकीला कुन्त (भाला) प्रतीहार नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ४९ ॥

७५. अवाङ्मुखास्त्रम्

ऋक्षास्यं भूतमुद्दिष्टमवाङ्मुखसमाह्वयम् ।

७५. अवाङ्मुख अस्त्र—ऋक्ष के समान मुख वाले भूत को अवाङ्मुख नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ५० ॥

७६. धनास्त्रम्

धनाख्यमस्त्रं मुकुटसमानममितद्युति ॥ ५० ॥

७६. धनास्त्र—मुकुट के समान चमकीले आकार वाला धनास्त्र कहा गया है । इसका अपार प्रकाश होता है ॥ ५० ॥

७७. धान्यास्त्रम्

धान्यास्त्रमेतत् परमं शालिस्तबकबन्धनम् ।

७७. धान्यास्त्र—शाली (= धान) के गुच्छों को जिस अस्त्र में बाँधा जाता है उसे धान्यास्त्र कहा जाता है ॥ ५१ ॥

७८. महाभूतास्त्रम्

वृषाक्षं वृषवक्त्राङ्कं महाभूतं प्रचक्षते ॥ ५१ ॥

७८. महाभूतास्त्र—बैल की आँखों वाला और बैल के समान मुख वाला महाभूत अस्त्र कहा जाता है ॥ ५१ ॥

७९. कामरूपास्त्रम्

कामरूपं महास्त्रं तु प्रतिसूर्यकसन्निभम् ।

७९. कामरूप नामक अस्त्र—प्रतिसूर्यक के समान महान् कामरूप अस्त्र कहा गया है ॥ ५२ ॥

८०. दृढनाभास्त्रम्

दृढनाभाख्यमस्त्रं स्यान्नागो बहुफणान्वितः ॥ ५२ ॥

८०. दृढ़नाभ अस्त्र—अनेक फणों वाला नाग दृढ़नाभ नामक अस्त्र से पुकारा जाता है ॥ ५२ ॥

८१. कामरुच्यास्त्रम्

अस्त्रं कामरुचिर्नाम स्वस्तिकं परिचक्षते ।

८१. कामरुचि अस्त्र—स्वस्तिक की कामरुचि नामक अस्त्र संज्ञा है ॥ ५३ ॥

८२. सुनाभास्त्रम्

सुनाभं क्षुरिका तीक्ष्णा प्रोच्यतेऽस्त्रमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥

८२. सुनाभ अस्त्र—तीक्ष्ण छुरी को सुनाभ अस्त्र कहा जाता है । यह सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है ॥ ५३ ॥

८३. मकरास्त्रम्

मकरो नाम दिव्यास्त्रं दीपिकादण्डसन्निभम् ।

८३. मकर अस्त्र—दीपिका दण्ड (जिस पर दीपक रखा जाता है भाषा में उसे दीयठ कहते हैं) के समान आकृति को मकरास्त्र कहते हैं । यह दिव्य अस्त्र है ॥ ५४ ॥

८४. दशाक्षास्त्रम्

दशाक्षमेतज्जानीयात् कौक्षेयकमवारितम् ॥ ५४ ॥

८४. दशाक्ष अस्त्र—अवारित (न रुकने वाली) कौक्षेयक (तलवार) को दशाक्ष अस्त्र समझना चाहिए ॥ ५४ ॥

८५. वेतालास्त्रम्

वृत्तिमन्तं चोष्ट्रमुखं वेतालमभिधीयते ।

८५. वेताल नामक अस्त्र—ऊँट के समान मुख वाले वृत्तिमान को वेतालास्त्र कहा गया है ॥ ५५ ॥

८६. दशवक्त्रास्त्रम्

एकस्था दशवक्त्री तु दशवक्त्रमुदाहृतम् ॥ ५५ ॥

८६. दशवक्त्र अस्त्र—एक ही में दशमुख वाले को दशवक्त्र अस्त्र कहते हैं ।

८७. रुचिरास्त्रम्

रुचिराख्यं भवेदस्त्रं हलं परमदारुणम् ।

८७. रुचिरास्त्र—हल को रुचिर अस्त्र कहते हैं । सबको चीरने के कारण यह बड़ा कठोर होता है ॥ ५६ ॥

८८. दशकर्णास्त्रम्

दशवर्षा काकमुखी दशकर्णमुदीर्यते ॥ ५६ ॥

८८. दशकर्ण अस्त्र—काक के समान मुख वाली दशवर्षवयस्का को दशकर्णास्त्र कहा जाता है ॥ ५६ ॥

८९. योगन्धरास्त्रम्

योगन्धरं दिवाभीतव्यात्तवक्त्रमिति स्मृतम् ।

८९. योगन्धर अस्त्र—दिन में ही भय के लिए मुख फैलाने वाले को योगन्धर अस्त्र कहते हैं ॥ ५७ ॥

९०. वारुणास्त्रम्

अमित्रघ्नं वारुणं स्यात् परास्त्रविनिवारणम् ॥ ५७ ॥

९०. वारुणास्त्र—शत्रु को नष्ट करने वाला वारुणास्त्र कहा गया है, यह शत्रुओं के अस्त्र को रोकने वाला है ॥ ५७ ॥

९१. अनिद्रास्त्रम्

अनिद्रमस्त्रमुन्निद्रकल्पकं कथयन्ति वै ।

९१. अनिद्र अस्त्र—लोग अनिद्र उसको कहते हैं जिसका विकल्प उन्निद्र (निद्रा का अभाव) है ॥ ५८ ॥

९२. कुठारास्त्रम्

भेत्तारमस्त्रमाख्यातं कुठारं परभेदनम् ॥ ५८ ॥

९२. कुठार अस्त्र—जिस प्रकार कुठार किसी वस्तु को टुकड़े-टुकड़े कर देता है उसी प्रकार शत्रुओं का भेदन करने वाले अस्त्र को कुठारास्त्र कहा जाता है ॥ ५८ ॥

९३. शतोदरास्त्रम्

शतोदरास्त्रं भूतं स्याच्छतोदरसमन्वितम् ।

९३. शतोदर अस्त्र—जिस भूत के सौ उदर हों वह शतोदर अस्त्र के नाम से पुकारा जाता है ॥ ५९ ॥

९४. सौमनसास्त्रम्

अस्त्रं सौमनसं नाम जपाकुसुममञ्जरी ॥ ५९ ॥

९४. सौमनस अस्त्र—जपा कुसुम की मञ्जरी को सौमनस अस्त्र कहा गया है ।

९५. पद्मनाभास्त्रम्

पद्मनाभं महाभूतं पद्मालङ्कृतनाभिमत् ।

९५. पद्मनाभ अस्त्र—कमलालङ्कृत नाभि वाला महाभूत पद्मनाभ नामक अस्त्र कहा जाता है ॥ ६० ॥

९६. महानाभास्त्रम्

महानाभाख्यमस्त्रं तु बको विकटकन्धरः ॥ ६० ॥

९६. महानाभ अस्त्र—जिसका कन्धा अत्यन्त विकट हो उस प्रकार के बक को महानाभ नामक अस्त्र से पुकारा जाता है ॥ ६० ॥

९७. ज्यौतिषास्त्रम्

ज्यौतिषं नाम परमं विमानमभिधीयते ।

९७. ज्यौतिष अस्त्र—सर्वोत्कृष्ट विमान को ज्यौतिष अस्त्र कहा जाता है ॥ ६१ ॥

९८. क्षेपणास्त्रम्

क्रमणं क्षेपणं प्रोक्तं परास्त्रक्रमणं महत् ॥ ६१ ॥

९८. क्षेपणास्त्र—अतिक्रमण करने को क्षेपण कहते हैं । जो दूसरे के अस्त्रों का अतिक्रमण कर जावे वह क्षेपण अस्त्र महान् कहा जाता है ॥ ६१ ॥

९९. त्रैराशिकास्त्रम्

त्रैराशिर्वानरमुखं सपक्षं नरपादवत् ।

९९. त्रैराशिक अस्त्र—इस अस्त्र का मुख बानर के मुख के समान होता है । इसके पङ्खे होते हैं और यह मनुष्य के पैर की आकृति वाला होता है ॥ ६२ ॥

१००. सार्चिर्माल्यस्त्रम्

सार्चिर्मालि महाभूतमेकपाद् बहुहस्तकम् ॥ ६२ ॥

१००. सार्चिर्माली अस्त्र—यह अस्त्र एक प्रकार का महाभूत है । इसका एक पैर होता है किन्तु यह बहुत हाथों वाला होता है ॥ ६२ ॥

१०१. विमलास्त्रम्

विमलास्त्रमिदं विद्यात् स्फाटिकाकारडोलिकाम् ।

१०१. विमलास्त्र—विमलास्त्र स्फटिक के आकार वाली डोली (= पालकी) के समान होता है ॥ ६३ ॥

१०२. धृतिकास्त्रम्

वराहसिंहमनुजकुक्कुरेभमुखैर्युतम् ।
भूतं पुराविदो ब्रूयुर्धृतिकास्त्रं सुदारुणम् ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां अस्त्रस्वरूपतच्छक्तिनिरूपणं नाम चत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

॥ आदितः श्लोकाः २५४४ ॥

*

१०२. धृतिक अस्त्र—जो भूत वराह, सिंह, मनुष्य, कुक्कुर तथा हाथी के समान मुख वाला हो उसे पुराविदों ने धृतिकास्त्र कहा है । यह बड़ा कठोर होता है ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों के स्वरूप एवं उनकी शक्तियों का निरूपण नामक चालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४० ॥

*

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्वरूपतोऽस्त्रधारणतत्प्रयोजनप्रतिपिपादयिषया मधुकैटभसंहारवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूह नष्ट हो जाते हैं हम उन सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

भगवता अस्त्राणां स्वरूपतो धारणस्य कालविशेषप्रयोजनादिप्रश्नः

नारदः—

अस्त्राण्येतानि भगवन् कथितानि स्वरूपतः ।
तान्यधत्त स्वरूपेण देवः पूर्वमितीरितम् ॥ १ ॥
कस्मिन् कदा किमर्थं तत् कृतं विश्वेश्वर प्रभो ।
प्रश्नमेतं परिच्छिन्धि यदि सानुग्रहोऽसि मे ॥ २ ॥

भगवान् ने इन अस्त्रों को स्वरूपतः किस काल में धारण किया था और उसका प्रयोजन क्या था? एतद् विषयक श्रीनारद का प्रश्न—

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने स्वरूपपूर्वक इन अस्त्रों का वर्णन किया । आपने पूर्व मे यह कहा था कि देवाधिदेव विष्णु ने स्वरूपतः इन अस्त्रों को धारण किया था । हे विश्वेश्वर प्रभो ! अब यह बताइये कि किस समय कब और किस कारण से उन्हें ऐसा करना पड़ा? यदि आप मुझ पर अनुग्रह रखते हैं तो कृपा कर मेरे इस प्रश्न का समाधान कीजिये ॥ १-२ ॥

पृष्टस्यार्थस्य परमगुह्यत्वख्यापनमुखेन तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

परमं ते प्रवक्ष्यामि गुह्यमत्यद्भुतं महत् ।
पृच्छते भक्तियुक्ताय परमात्मनि नारद ॥ ३ ॥

पूर्व में पूछे गए प्रश्न का उत्तर परम गुह्य बताकर पुनः उसका उत्तर देने की प्रतिज्ञा—अहिर्बुध्न्य ने कहा—इसका उत्तर परम गुह्य है और अत्यन्त अद्भुत है तथा महान् है । आप परमात्मा मे भक्ति रखते है, इसलिए आपके द्वारा पूछे जाने पर मै इसका उत्तर दे रहा हूँ ॥ ३ ॥

प्रलयावसाने भगवतः सिसृक्षोदयः

पुरा कल्पावसाने तु भगवान् पुरुषोत्तमः ।
जगत्स्रष्टुं मनश्चक्रे लीलारससमुत्सुकः ॥ ४ ॥

प्रलय के बाद भगवान् को पुनः सृष्टि की इच्छा का उदय—हे नारद ! पूर्वकाल में जब प्रलय काल का अन्त हो गया । तब लीलारसबिहारी भगवान् ने पुनः जगत् की सृष्टि के लिए मन बनाया ॥ ४ ॥

प्रकृतिपुरुषमहदादिविशेषान्तजगत्सृष्टिः

प्रथमं जनयामास प्रधानपुरुषौ स्वतः ।
महदादि विशेषान्तं जनयित्वा ततो हरिः ॥ ५ ॥

प्रकृति पुरुष तथा महत्तत्त्व से लेकर विशेषान्त सृष्टि—सर्वप्रथम उन्होंने प्रधान पुरुष को स्वयं उत्पन्न किया । तदनन्तर महत्तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त उन परमात्मा ने सृष्टि की ॥ ५ ॥

अण्डोत्पादनपूर्वकं चतुर्मुखसृष्टिः

तैः सर्वैरण्डमुत्पाद्य तस्मिन् ब्रह्माणमासृजत् ।

अण्डोत्पादनपूर्वक चतुर्मुख ब्रह्मदेव की सृष्टि—उन सभी उपकरणों से अण्ड उत्पादन किया । फिर उसी में ब्रह्मदेव की सृष्टि की ॥ ६ ॥

प्रजासृष्ट्यर्थं चतुर्मुखाय वेदोपदेशः

प्रजाः सृजेति वेदांश्च तस्मै प्रादाज्जनार्दनः ॥ ६ ॥

प्रजासृष्टि के लिए ब्रह्मदेव को वेद का उपदेश—उन भगवान् जनार्दन ने ब्रह्मदेव को प्रजा की सृष्टि की आज्ञा दी और उन्हें वेद भी प्रदान किया ॥ ६ ॥

चतुर्मुखस्य प्रजासृष्ट्यारम्भः

ततः प्रजाः स विविधाः स्रष्टुं समुपचक्रमे ।

तत्र बलदर्पितमधुकैटभोत्पत्तिः

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यौ ब्रह्मसृष्टेरनन्तरम् ॥ ७ ॥
बलवन्तौ तु तस्योर्वोर्जज्ञाते मधुकैटभौ ।
मदोन्मत्तौ महाकायौ दानवौ बलदर्पितौ ॥ ८ ॥

ब्रह्मा के द्वारा प्रजासृष्टि का आरम्भ—इसके बाद ब्रह्मा ने विविध प्रकार की प्रजा सृष्टि का प्रारम्भ किया और ब्रह्मसृष्टि प्रारम्भ होने के अनन्तर मधु और कैटभ नाम के दो

महाबलवान् दैत्य उनके ऊरू से उत्पन्न हुये। बलवान् दोनों दैत्य शरीर से विशाल तो थे ही मदोन्मत्त भी थे ॥ ७-८ ॥

मधुकैटभाभ्यां चतुर्मुखाद्वेदापहरणम्

तौ दृष्ट्वा सृष्ट्युपक्रान्तं ब्रह्माणममितद्युतिम्।
प्रविश्य मायया तस्माद्वेदाञ्जगृहतुस्तदा ॥ ९ ॥

मधुकैटभ के द्वारा वेदापहरण—उन्होंने महातेजस्वी ब्रह्मदेव को सृष्टि में संलग्न देख कर माया (छल) से उनसे वेदों का अपहरण कर लिया ॥ ९ ॥

वेदापहाराच्चतुर्मुखस्य सृष्ट्यसामर्थ्यम्

ततः स्रष्टुं प्रजाः सर्वा न शशाक प्रजापतिः।

वेद का अपहरण होने से ब्रह्मदेव में सृष्टि की असमर्थता—वेदों का अपहरण हो जाने से ब्रह्मदेव सृष्टि करने में असमर्थ हो गए ॥ १० ॥

निर्विण्णस्य चतुर्मुखस्य चिन्ताप्रकारः

परं निर्वेदमापन्नो बभूवाथ प्रजापतिः ॥ १० ॥
प्रजाः सृजेति भगवान् व्यादिदेश स मां हरिः।
न शक्यते विना वेदैः स्रष्टुं नानाविधाः प्रजाः ॥ ११ ॥
दानवाभ्यामिमे वेदा हृता मत्तोऽद्य मायया।
किमन्यत् कार्यमित्येष परां चिन्तामुपेयिवान् ॥ १२ ॥

ब्रह्मदेव का दुःखी होकर चिन्ता करना—इस प्रकार ग्लानि को प्राप्त कर प्रजापति बहुत दुःखी हुये और विचार करने लगे कि विष्णु ने मुझे प्रजाओं की सृष्टि की आज्ञा प्रदान की। किन्तु वेद के बिना नाना प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि असम्भव है। इधर इन दोनों दैत्यों ने माया (छल) से वेदों का अपहरण कर लिया। अब क्या करना चाहिए? इसलिए वे अत्यन्त दुःखी हुये ॥ ११-१२ ॥

कृतनिश्चयस्य चतुर्मुखस्य क्षीराब्धिगमनम्

ततो वेधा विनिश्चित्य मनसा कार्यमात्मनः।
क्षीराब्धेरुत्तरं तीरं जगाम कमलोद्भवः ॥ १३ ॥

तदनन्तर उनका क्षीरसमुद्र में विष्णु के पास जाने का निश्चय—फिर ब्रह्मदेव ने अपने मन में कर्त्तव्य का निश्चय कर क्षीरसागर में गमन किया ॥ १३ ॥

चतुर्मुखेन भगवतः स्तुतिः

तत्र तुष्टाव देवेशं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥ १४ ॥
असीमानन्दकन्दाय भूरिभूम्ने महात्मने।
अचिन्त्यशक्तिरूपाय बिभ्रते भुवनानि ते ॥ १५ ॥

असीमैश्वर्यवीर्याय तेजसां निधये नमः ।
विश्वान्तर्यामिणे तुभ्यं शुद्धसत्त्वैकमूर्तये ॥ १६ ॥
अनवद्याखिलाधारभूषणाय नमो नमः ।
शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गायुधधराय ते ॥ १७ ॥
श्रीमते पुष्कराक्षाय पुरुषाय नमो नमः ।
विष्वक्सेनमुखैर्दिव्यैः सेव्यमानाय सूरिभिः ॥ १८ ॥
दिव्यानन्दमयव्योमनिलयाय नमो नमः ।
सर्गोपसर्गरक्षाभिः क्रीडते जगतां सदा ॥ १९ ॥
महाविभूतये तुभ्यं नमो निखिलमूर्तये ।
स्वसमाश्रितवात्सल्यकृतव्यूहविभूतये ॥ २० ॥
विश्वविद्वेषिविध्वंसकृतदीक्षाय ते नमः ।
तापत्रयाभितप्ताघनाशनस्मरणाय ते ॥ २१ ॥
नमोऽचिन्त्यस्वरूपाय विष्णवे कर्मसाक्षिणे ।

चतुर्मुख ब्रह्मा के द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति—वहाँ जाकर उन्होंने पुण्डरी-काक्ष देवाधिदेव विष्णु की स्तुति की । शुद्धज्ञान स्वरूप प्रणवस्वरूप भगवान् विष्णु को नमस्कार है । असीम आनन्दकन्द, अपनी महिमा से महान्, महान् आत्मा से महान्, अचिन्त्य शक्तिस्वरूप, चतुर्दश भुवन धारण करने वाले, वीर्य एवं ऐश्वर्य से अपरिच्छेद्य, तेजों के निधान, विश्व के अन्तर्यामी, शुद्ध, सत्त्वैकमूर्ति, अनवद्य अखिलाधारभूषण-स्वरूप, शङ्ख-चक्र-गदा-खड्ग तथा शार्ङ्ग आयुध वाले, श्रीमान् पुष्कराक्ष परम पुरुष को हमारा बारम्बार नमस्कार है । विष्वक्सेनादि प्रमुख दिव्य देवताओं से सेवित, दिव्यानन्द स्वरूप एवं व्योम में निवास करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है । आप सृष्टि के सर्ग, उपसर्ग (संहार) तथा रक्षा द्वारा क्रीडा करने वाले हैं । महाविभूति स्वरूप आपको नमस्कार हैं; निखिलमूर्ति वाले आपको नमस्कार है; भक्तवत्सल चतुर्व्यूह विभूतिस्वरूप एवं विश्व के शत्रुओं के विनाश की दीक्षा लेने वाले आपको नमस्कार हैं । तापत्रय से अभितप्त जीवों के स्मरणमात्र से उनका पाप हरण करने वाले तथा कर्मसाक्षी अचिन्त्य-स्वरूप आप विष्णु को नमस्कार है ॥ १४-२२ ॥

भगवता चतुर्मुखाय दर्शनप्रदानम्

इति तस्य स्तुतिं श्रुत्वा भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥
आविर्बभूव पुरतः प्रसन्नः पद्मलोचनः ।

भगवान् विष्णु का चतुर्मुख को दर्शन देना—चतुर्मुख द्वारा की गई स्तुति को सुन कर पुरुषोत्तम कमलनेत्र भगवान् विष्णु प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रगट हो गए ॥ २२-२३ ॥

चतुर्मुखेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम्

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रणम्य परमाद्भुतम् ॥ २३ ॥
व्यजिज्ञपदमेयात्मा स्ववृत्तं विनयान्वितः ।

चतुर्मुख द्वारा स्ववृत्तान्त निवेदन—अद्भुतस्वरूप वाले विष्णु को देख कर ब्रह्मदेव ने विनयपूर्वक प्रणाम् करके अपना वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २३-२४ ॥

भगवता मधुकैटभस्मरणम्

एतं दानवयोः श्रुत्वा व्यतिक्रममरिन्दमः ॥ २४ ॥
मन्दं प्रहस्य भगवान् सस्मार मधुकैटभौ ।

भगवान् द्वारा मधुकैटभ का स्मरण—दानवों के द्वारा इस प्रकार का व्यतिक्रम सुनकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुये भगवान् ने मधु-कैटभ का स्मरण किया ॥ २४-२५ ॥

मधुकैटभयोस्तत्रागमनम्

तौ तस्य स्मृतिमात्रेण द्वारमाजग्मतुस्तदा ॥ २५ ॥

मधुकैटभ का वहाँ पर उपस्थित होना—विष्णु के स्मरण करते ही दोनों दैत्य वहाँ उपस्थित हो गए ॥ २५ ॥

मधुकैटभौ प्रति भगवद्वचनम्

ततः समागतौ दृष्ट्वा तत्रैव बलदर्पितौ ।
मेघगम्भीरनिर्घोषमुवाच मधुसूदनः ॥ २६ ॥
युवाभ्यामाहृता वेदा मद्दत्ता ब्रह्मणो मुखात् ।
माययेति श्रुतं नैवं युज्यते कर्तुमत्र वै ॥ २७ ॥
तत् तस्मै सकला वेदा दीयन्तां परमेष्ठिने ।

मधुकैटभ से भगवान् की उक्ति—तदनन्तर उन बलवान् दैत्यों को अपने पास आया देख कर मधुसूदन ने मेघगम्भीर वाणी से उनसे कहा—'आप दोनों ने मेरे द्वारा ब्रह्मा को दिया हुआ वेद माया से चुरा लिया है, ऐसा हमने सुना है जो उचित नहीं । अतः आप लोग सारे वेदों को ब्रह्मा के पास ले जाकर वापस करिए ।'

भगवद्वचनतिरस्करणपूर्वकं मधुकैटभयोः प्रतिवचनम्

एवमुक्तौ भगवता दुर्मदान्धौ महासुरौ ॥ २८ ॥
प्रत्यूचतुरिमांस्तस्मै ददावो नैव सर्वथा ।
आवामेवाचिरात् सर्वाः स्रक्ष्यावो विविधाः प्रजाः ॥ २९ ॥
वेदैर्विनैव भगवन् किमत्र परमेष्ठिना ।

भगवान् की बातों की अवहेलना करते हुये मधुकैटभ का प्रत्युत्तर—भगवान् के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दुर्मद से अन्धे उन दोनों महान् असुरों ने कहा—'हम लोग किसी भी दशा में वेद नहीं दे सकते । हे भगवन् ! हमलोग विना वेद की सहायता के ही समस्त प्रजाओं की सृष्टि कर लेंगे । ब्रह्मा की आवश्यकता ही क्या है?' ॥ २८-३० ॥

भगवता मधुकैटभयोर्हननाय विष्वक्सेनादेशनम्

स तयोर्वचनं श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥ ३० ॥

दुरात्मानौ तु तौ हन्तुं मतिं चक्रे जगत्पतिः ।
एतौ निहत्य दुर्दान्तौ पापावद्य मदोद्धतौ ॥ ३१ ॥
आदाय वेदानेतस्मै ब्रह्मणे प्रतिपादय ।
इति शेषाशनं देवो व्यादिदेश कृताञ्जलिम् ॥ ३२ ॥

भगवान् का मधुकैटभ का वध करने के लिए विष्वक्सेन को आदेश—उनकी बातों को सुनकर भगवान् क्रोध से आग बबूला हो गए । उनके नेत्र लाल हो गए । फिर उन जगत्पति ने असुरों को मारने का निश्चय कर लिया । तदनन्तर उन्होंने विष्वक्सेन को आज्ञा दी—'आप इन दोनों दुर्दान्त मदोद्धत एवं पापी राक्षसों का वध कर इन ब्रह्मदेव को वेद प्राप्त कराओ ।' इस प्रकार उन्होंने हाथ जोड़े हुये शेषाशन को आज्ञा दी ॥ ३०-३२॥

ततः समरसंनहनम्

स तथेति समानीय सर्वाः सेनाश्च वैष्णवीः ।
निर्जगाम ततो योद्धुं सन्नद्धौ तौ च दानवौ ॥ ३३ ॥
निर्मिमाते तदा सेनां महतीं तौ च मायया ।

तदनन्तर दोनों पक्षों की युद्ध की तैयारी—विष्वक्सेन ने 'तथास्तु' कहकर सारी विष्णु सेना एकत्रित की । फिर वह युद्ध के लिए निकल पड़ा । इधर दोनों दैत्यों ने भी युद्ध की तैयारी की । उन्होंने माया से बहुत बड़ी सेना का निर्माण कर लिया ॥३३-३४॥

द्वयोः सेनयोस्तुमुलसंग्रामः

उभयोः पक्षयोर्युद्धं तुमुलं समपद्यत ॥ ३४ ॥
अदृष्टमश्रुतचरमभूत् तत् समरं तदा ।

दोनों सेनाओं का परस्पर घोर संग्राम—तदनन्तर दोनों पक्षों में घमासान लड़ाई प्रारम्भ हो गई जैसी कभी न देखी गई और न कभी सुनी गई ॥ ३४-३५ ॥

विष्वक्सेनेन भगवत्सकाशे मधुकैटभयोरजय्यत्वनिवेदनम्

चिरेणाजय्यतां ज्ञात्वा दुष्टदानवयोर्युधि ॥ ३५ ॥
विष्वक्सेनस्तु देवाय न्यवेदयदवारितः ।

विष्वक्सेन का भगवान् के समीप मधुकैटभ का बे रोक-टोक निवेदन—युद्ध में उन दोनों को अजेय जानकर पुनः विष्वक्सेन ने जाकर भगवान् से निवेदन किया ॥३५-३६॥

भगवतः सर्वास्त्राणां स्वरूपतो धारणपूर्वकं युद्धाय निर्गमनम्

ततस्तु परमक्रुद्धो निर्जगाम जनार्दनः ॥ ३६ ॥
युध्यमानौ तु तौ दृष्ट्वा चक्ररूपी स्वयं हरिः ।
बिभ्रद् द्विषष्टिभिर्हस्तैस्तस्थौ दिव्यास्त्रसंहतिम् ॥ ३७ ॥

भगवान् का स्वरूपतः सभी अस्त्रों को धारण कर युद्ध के लिए प्रस्थान—तदनन्तर क्रुद्ध हुये जनार्दन ने स्वयं प्रस्थान किया और उन दानवों को युद्ध करते देख चक्र का रूप धारण कर ६२ भुजाओं से दिव्यास्त्र धारण कर युद्ध में डट गए ॥३६-३७॥

सर्वास्त्रस्वरूपधारिभगवद्रूपवर्णनम्

तं दृष्ट्वा परमक्रुद्धं सहस्रादित्यसन्निभम् ।
ज्वलद्भिरस्त्रैर्हस्ताग्रधार्यमाणैश्च वेष्टितम् ॥ ३८ ॥
पिङ्गलोर्ध्वमुखैः केशैरुपेतमतिभीषणम् ।
अण्डान्तव्याप्तवपुषं जपाकुसुमसन्निभम् ॥ ३९ ॥
पिङ्गलाघूर्णमानोग्रवृत्तनेत्रत्रयान्वितम् ।
भुग्नभ्रुकुटिसन्नद्धभीषणाननशोभितम् ॥ ४० ॥
दष्टोष्ठमुज्ज्वलद्दंष्ट्रानिर्यत्स्खलितपावकम् ।
महाजलधिसंकाश द्विषष्टिभुजपञ्जरम् ॥ ४१ ॥
रक्ताम्बरधर भीममालीढस्थितिमण्डितम् ।
हारकेयूरताटङ्ककटकादिविभूषणैः ॥ ४२ ॥
उपेतं किङ्किणीजालक्वणत्कारनिनादितम् ।
आश्चर्यरूपमतुलमेवंभूतं महाद्युतिम् ॥ ४३ ॥

सर्वास्त्रधारी भगवान् के स्वरूप का वर्णन—दैत्यों की सेनाओं ने क्रोध में भरे हुये सहस्रों आदित्य के समान तेजस्वी अपने हाथों के अग्रभाग में जलते हुये अस्त्रों को धारण कर, उनसे परिवेष्टित, पीले-पीले ऊर्ध्वमुख केशों से सुशोभित, सर्व ब्रह्माण्ड को अपने शरीर से आच्छादित किये हुये, जपा कुसुम के सदृश पीले-पीले घूरने वाले गोलाकार उग्र नेत्रों से युक्त, टेढ़ी-टेढ़ी चढ़ी हुई भ्रुकुटी से भीषण मुख वाले, ओष्ठ प्रान्त को चबाते हुये अपनी दाढ़ों से भयानक आग उगलने वाले और समुद्र के समान विशाल-विशाल ६२ भुजाओं रूपी पञ्जर से युक्त, रक्त वस्त्र धारण किये हुये, अत्यन्त भयानक, वीरासन से मण्डित, हार, केयूर, ताटङ्क तथा कटकादि विभूषणों से विभूषित कटिभाग में बँधी हुई काञ्ची क्षुद्र घण्टिकाओं से निनादित आभूषणों को धारण करने वाले तथा आश्चर्यमय रूप धारण किये हुये अमित तेजस्वी उन विष्णु को देखा ॥ ३८-४३ ॥

तद्रूपदर्शनाद् दैत्यसैन्यानां निःशेषं विलयः

कल्पान्तजृम्भिताम्भोधिकल्पास्ते दैत्यसैनिकाः ।
नेशुर्निरीक्ष्य निःशेषं शिष्टौ तौ दानवौ परम् ॥ ४४ ॥
आगच्छन्तौ सुसम्भ्रान्तौ दृष्ट्वा तावुद्यतायुधौ ।
प्राहिणोद् भीषणं चक्रं तद्वधाय महाद्युतिः ॥ ४५ ॥

उनके उस स्वरूप को देखते ही दैत्यों की सारी सेना का विनाश—प्रलयकालीन समुद्र के समान विशाल सभी दैत्य सेना उनके स्वरूप को देखते ही विनष्ट हो गई । मात्र वे दो ही असुर शेष रहे । फिर उन्हें सशस्त्र तथा आश्चर्यचकित होकर अपनी ओर आते देख कर भगवान् ने उनका वध करने के लिए प्रकाश युक्त महाभीषण चक्र चलाया ॥ ४४-४५ ॥

चक्रेण मधुकैटभयोः शिरश्छेदः

तयोश्चिच्छेद शिरसी तत्क्षणाच्चक्रमुत्तमम् ।

ताभ्यां वेदानुपादाय देवायैतान्न्यवेदयत् ॥ ४६ ॥

चक्र द्वारा मधुकैटभ के शिरों का छेदन—तत्पश्चात् उस उत्तम चक्र ने तत्क्षण मधुकैटभ के शिरों का विच्छेदन कर दिया और उनके द्वारा चुराए गए वेदों को लेकर ब्रह्मदेव को प्रदान कर दिया ॥ ४६ ॥

ब्रह्मणे वेदप्रदानपूर्वकं भगवतस्तिरोधानम्

देवोऽपि ब्रह्मणे दत्त्वा पुनरन्तर्दधे हरिः ।

वेद प्रदान करने के पश्चात् भगवान् का तिरोधान—इस प्रकार भगवान् ने ब्रह्मदेव को वेद प्रदान किया और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गए ॥ ४७ ॥

ब्रह्मणा यथापूर्वं प्रजासृष्टिः

लब्धवेदः पुनर्धाता प्रजाश्चक्रे यथापुरम् ।

उपसंहारः

इत्थं भगवतो रूपं चक्ररूपस्य चक्रिणः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां स्वरूपतोऽस्त्रधारण-
तत्प्रयोजनप्रतिपिपादयिषया मधुकैटभसंहारवर्णनं
नाम एकचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २५९१ ॥

* * *

ब्रह्मदेव द्वारा पूर्वकल्पानुसार आनुपूर्वी सृष्टि—वेद प्राप्त करने के अनन्तर ब्रह्मदेव ने पूर्वकल्प की भाँति सृष्टि की । इस प्रकार भगवान् विष्णु के चक्ररूप का वर्णन किया गया ॥ ४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के स्वरूपतः
अस्त्र धारण, उनके प्रयोजन, प्रतिपादित विषय एवं मधुकैटभ संहार का
वर्णन नामक एकतालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४१ ॥

* * *

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

काशिराजश्रुतकीर्त्त्युपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी ध्यान अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है । हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

अङ्गमन्त्राणामुत्पत्तिदेवताप्रयोजनशक्तिध्येयप्रश्नाः

नारदः—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वभूतनमस्कृत ।
श्रोतव्यं यद्यदस्माभिः श्रुतं तत् तदशेषतः ॥ १ ॥
इदं त्विदानीं पृच्छामि शंस मे मनसि स्थितम् ।
कुतोऽमुष्याङ्गमन्त्राणामुत्पत्तिः का च देवता ॥ २ ॥
किमर्थं कीदृशी शक्तिः किं ध्येयं ब्रूहि तत्त्वतः ।

अङ्ग मन्त्रों की उत्पत्ति, देवता-प्रयोजन और शक्ति तथा ध्येय विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वभूतनमस्कृत ! हे भगवन् ! जो हमें सुनने की इच्छा थी, उसे हमने पूर्णरूप से सुना । अब मैं अपने मन में रहने वाली जिन बातों को पूछ रहा हूं उसे कहिये । इन अङ्ग मन्त्रों की उत्पत्ति कहाँ से हुई? इनके देवता कौन-कौन से हैं । इनके उत्पन्न होने का प्रयोजन क्या है? और इनकी शक्ति कैसी है? तथा ध्येय क्या है? इसे स्पष्ट रूप से कहिये ॥ १-३ ॥

पृष्टस्यार्थस्य गुह्यत्वख्यापनमुखेनोत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

श्रूयतामवधानेन तदेतद् गुह्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥

पूछे गए प्रश्नों के उत्तर को रहस्यमय बताकर उत्तर देना—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! यह यद्यपि रहस्यपूर्ण है फिर भी इसे मैं बताता हूँ, सावधानी से सुनिए ॥ ३ ॥

उत्पत्तिप्रश्नस्योत्तरम्

आथर्वणान्मया वेदान्महामन्त्रपरिष्कृतात् ।
समुद्धृतः षडर्णोऽयं कौस्तुभः सागरादिव ॥ ४ ॥
तथा तस्मादिमे मन्त्राः प्रोद्धृताः सकला मुने ।

सर्वप्रथम उत्पत्ति विषयक प्रश्न का उत्तर—महामन्त्रों से परिष्कृत अथर्ववेद से मैंने यह छः अक्षरों वाला चक्र सुदर्शन मन्त्र उसी प्रकार उद्धृत किया है, जिस प्रकार समुद्र से कौस्तुभ मणि । हे महामुने ! हमने उसी अथर्ववेद से अन्य सभी मन्त्रों को भी उद्धृत किया हैं ॥ ४-५ ॥

देवताप्रश्नस्योत्तरम्

स्वयमेवाङ्गमन्त्राणामपि देवः सुदर्शनः ॥ ५ ॥

देवता विषयक प्रश्न का उत्तर—इन सभी अङ्गमन्त्रों के देवता स्वयं सुदर्शन हैं ।

प्रयोजनशक्तिप्रश्नयोरुत्तरम्

सुदर्शनमहामन्त्रनिष्ठस्याङ्गावनं परम् ।
कार्यमेषां षडर्णेन तथामी समशक्तयः ॥ ६ ॥

प्रयोजन तथा शक्ति विषयक प्रश्न का उत्तर—षडर्ण सुदर्शन वाले महामन्त्र में निष्ठा रखने वालों के अङ्ग का संरक्षण ही इसका मुख्य प्रयोजन है तथा इनकी शक्तियाँ भी वैसी ही हैं ॥ ६ ॥

ध्येयप्रश्नस्योत्तरम्

एषामष्टभुजो देवः पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
ध्येयः सर्वं समाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७ ॥

ध्येय प्रश्न का उत्तर—इन मन्त्रों में आठ भुजा वाले सुदर्शन देव ही पूर्वोक्त विधि से ध्येय हैं । अतः आपके प्रश्नों का उत्तर बता दिया । अब क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ७ ॥

निवर्तकास्त्रप्रयोगावसरप्रश्नः

नारदः—

भगवन् परमोदार नित्यतृप्त दयानिधे ।
नित्यज्ञानक्रियैश्वर्यविश्वविज्ञानवारिधे ॥ ८ ॥
सुदर्शनमहायन्त्रमन्त्रशक्तिक्रियादिषु ।
यद् वक्तव्यं विशेषेण तदुक्तं भवता विभो ॥ ९ ॥
प्रवर्तकानामस्त्राणामुत्पत्तिः कथिता पुरा ।
स्वरूपशक्ती च तथा प्रयोगश्च महाद्युते ॥ १० ॥
निवर्तकानां तु पुनः कदा क्व विषये गुरो ।
प्रयोगः परमं मेऽत्र संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

निवर्त्तकास्त्र प्रयोग के काल के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे परमोदार ! हे नित्यतृप्त ! हे दयानिधे ! हे भगवन् ! हे नित्य-ज्ञान, क्रिया, ऐश्वर्य तथा विश्व विज्ञान के समुद्र ! आपने सुदर्शन महामन्त्र, मन्त्र-शक्ति और उसकी क्रिया (विधि) के विषय में जो कहना था उसे विशेष रूप से कहा, हे महाद्युते ! आप ने पूर्व में प्रवर्त्तक अस्त्रों की उत्पत्ति, उनका स्वरूप तथा उनकी शक्ति का भी वर्णन किया । हे गुरो ! अब निवर्त्तक अस्त्रों का प्रयोग कब और किस स्थान पर करना चाहिए । यह मेरा महान् संशय है । इसको आप दूर करने की कृपा करे ॥ ८-११ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

श्रूयतामवधानेन प्रयोगावसरं मुने ।
निवर्तकानामस्त्राणां सम्यक् कथयतो मम ॥ १२ ॥

इसका उत्तर कहने की प्रतिज्ञा—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुने ! निवर्त्तक अस्त्रों के प्रयोग का काल सावधान होकर सुनिए मैं उसे कहता हूँ ॥ १२ ॥

तत्प्रयोगावसरकथनम्

परप्रयुक्तैर्दिव्यास्त्रैरभिचारैश्च तत्कृतैः ।
महत्यभिभवे प्राप्ते तं विद्यात् तपसां निधे ॥ १३ ॥

निवर्त्तकास्त्र प्रयोग का काल कथन—जब शत्रुओं के द्वारा दिव्यास्त्र का प्रयोग किया जा रहा हो, अथवा उनके द्वारा अभिचार (मारण) का प्रयोग हो रहा हो, अथवा बहुत बड़ा पराभव प्राप्त हो, तब हे तपस्विन् ! निवर्त्तक अस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए ॥ १३ ॥

पराभिचाराभिभवज्ञानोपायप्रश्नः

नारदः—

पराभिचाराभिभवः कैर्लिङ्गैरवगम्यते ।
राज्ञां च मन्त्रिणां चैव तथान्येषां नृणामपि ॥ १४ ॥

शत्रुओं के द्वारा प्रयुक्त अभिचार (मारण) के ज्ञान के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! राजाओं को, मन्त्रियों को तथा अन्य जनों को शत्रुकृत अभिचार (मारण) का प्रयोग किन-किन लिङ्गों से ज्ञात करना चाहिए? ॥ १४ ॥

तज्ज्ञानोपायलिङ्गनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

लक्ष्यते लक्षणैरेतैर्नृपाणामाभिचारिकी ।
विकृतिः प्रस्तुताकाले दारुणा सर्वगोचरा ॥ १५ ॥
अकाण्ड एव नश्यन्ति वाजिवारणमन्त्रिणः ।
तीव्रामयपरीताङ्गः पीड्यते नृपतिः स्वयम् ॥ १६ ॥
पतन्त्यशनयस्तस्य विषये घोरदर्शनाः ।
अल्पसस्या वसुमती विनश्यन्ति गवां गणाः ॥ १७ ॥

भवन्ति तस्य विषये पुनः पुनरवग्रहाः ।
तीव्रामयगृहीताश्च महिष्यस्तस्य भूपतेः ॥ १८ ॥
प्रभवन्त्यहिवल्मीकाः प्रासादे द्वारि मण्डपे ।
निपतन्ति महोल्काश्च भृशं भीमस्वनान्विताः ॥ १९ ॥
मन्त्रिणश्च विरुध्यन्ते मत्सरेण परस्परम् ।
रजन्यां राजते भीममैन्द्रं धनुरनभ्रजम् ॥ २० ॥

अभिचार विषयक ज्ञान के लिङ्ग का निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिन-जिन लक्षणों से राजाओं को अभिचार का ज्ञान कर लेना चाहिए, वे लक्षण इस प्रकार हैं—अभिचार का समय आने पर सभी लोगों को दिखाई पड़ने वाली भयानक विकृति उत्पन्न होने लगती है । घोड़े, हाथी एवं मन्त्री अनायास अकाल में ही नष्ट होने लगते हैं । स्वयं राजा भयानक रोग से ग्रस्त होकर पीड़ा प्राप्त करने लग जाता है । उसके राज्य में भयानक विद्युत्पात होने लगता है । पृथ्वी की पैदावार कम हो जाती है । गाँओं के समूह नष्ट होने लगते हैं । उसके देश में बारम्बार अवग्रह (= अनावृष्टि) होने लगते हैं । राजा की महिषियाँ (पट्टरानियाँ) भयानक रोग से ग्रस्त हो जाती हैं । उस राजा के अट्टालिकाओं, दरवाजे तथा मण्डप में अनायास सर्प तथा वल्मीक दिखाई पड़ने लगते हैं । भयानक शब्द करती हुई महान्-महान् उल्कायें बारम्बार गिरने लगती हैं । राजा के मन्त्रीगण परस्पर मत्सरता से ग्रस्त होकर आपस में विरोध करने लगते हैं । रात के समय बिना बादल से उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष दिखाई पड़ने लगता है ॥ १५-२० ॥

इतस्ततो वह्निभयं नगरे जायते भृशम् ।
प्रविश्य गर्भभवनं क्रोष्टारश्चानिवारिताः ॥ २१ ॥
क्रोशन्ति सन्ध्ययोर्भीमा दीप्तायां दिशि विस्वरम् ।
रुन्धन्ति नगरं राज्ञः शत्रवो बलदर्पिताः ॥ २२ ॥
कृत्याकृत्यं न जानाति स्वयं स्तैमित्यमास्थितः ।
स्वप्नेऽपि पश्यत्यात्मानं मुण्डितं नीलवाससम् ॥ २३ ॥
रथेन गर्दभयुजा व्रजन्तं दक्षिणां दिशम् ।
इत्यादिलिङ्गैर्जानीयादभिचारं सपत्नजम् ॥ २४ ॥
पराभिचारजा कृत्या राजानं प्रविशेद्यदि ।
तां दृष्ट्वा क्षिप्रमेवासौ विनश्यति न संशयः ॥ २५ ॥
पुत्रांश्च मन्त्रिणश्चापि महिषीं नगरं तथा ।
ज्वालामालाविला कृत्या सर्वं नाशयति क्षणात् ॥ २६ ॥

जहाँ-जहाँ नगर में अग्नि से महान् भय होने लगता है दोनों सायङ्काल में तथा देदीप्यमान दिशाओं के रहने पर भी शृगाल प्रसूतिगृह में निर्भय होकर प्रविष्ट हो जाते हैं तथा भयानक रूप से ऊँचे-ऊँचे स्वरों में रोने लगते हैं, शत्रुगण बल से मदोद्धत होकर राजा की पुरी पर चढ़ाई कर देते हैं । वह राजा इतना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है कि उसे

कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान ही नहीं रहता। स्वप्न में वह अपने को मुण्डित तथा काला वस्त्र धारण किये हुये देखता है और गदहे जुते हुए रथ से दक्षिण दिशा की ओर जाता है। इस प्रकार के चिह्नों से राजा को शत्रु द्वारा किये गए अभिचार की आशङ्का कर लेनी चाहिए। किं बहुना शत्रु के अभिचार से उत्पन्न हुई कृत्या यदि राजा के पास आ जाती है तो राजा उसे देखते ही विनष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं अग्नि से जाज्वल्यमान कृत्या, राजपुत्र, राजमन्त्री, राजमहिषी तथा उसके सारे राष्ट्र को क्षण मात्र में जला देती है॥ २१-२६॥

पराभिचारनिवर्तनाय निवर्तकास्त्रधारिसुदर्शनप्रीणनम्

एवं पराभिचारेण पीडिते नृपतौ स्वयम्।
निवर्तकास्त्रसहितं भगवन्तं महाद्युतिम्॥ २७॥
चक्रस्वरूपिणं देवं भक्त्या सन्तोषयेत् ततः।
रजतेन सुवर्णेन शिलया ताम्रकेण वा॥ २८॥
सुदर्शनार्चां निर्माय पूजयेत् सनिवर्तकम्।
समालिख्य पटे वापि ध्यायेत् त्रैलोक्यपूजितम्॥ २९॥
एवं निर्माणतो ध्यानात् पूजया वन्दनेन वा।
प्रतिष्ठया वा स्तोत्रेण देवं सम्प्रीणयेन्नृपः॥ ३०॥
एवमन्ये तथा कुर्युरमात्या वा नरा मुने।

शत्रुजन्य अभिचार को करने हेतु भगवान् सुदर्शन को प्रसन्न करना—इस प्रकार शत्रु के अभिचार से जब राजा स्वयं पीड़ित होने लगे तब निवर्त्तकास्त्र धारण करने वाले अमित तेजस्वी चक्रस्वरूपी भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना चाहिए। रजत से, सुवर्ण से, शिला से तथा ताँबे से निवर्त्तक युक्त सुदर्शन का निर्माण कर उनकी पूजा करनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो पट्ट पर ही त्रैलोक्यपूजित सुदर्शन का निर्माण कर उनका ध्यान करे। इस प्रकार निर्माण, ध्यान, पूजा, अभिवादन, प्रतिष्ठा अथवा स्तुति से राजा उन्हें प्रसन्न करे। हे मुने! यही क्रिया अन्यों को तथा अमात्यों को भी करनी चाहिए॥ २७-३१॥

प्रीतेन सुदर्शनेन पराभिचारनिर्दहनम्

ततः प्रीतः स भगवाननादिनिधनो विभुः॥ ३१॥
अभिचारान् परकृतानाश्रितानुग्रहेण तु।
भस्मीकरोति स्मृत्यैव तत्प्रयुक्तान्यपि क्षणात्॥ ३२॥
दिव्यास्त्राण्युपसंहारैरस्त्रैर्वारयतीश्वरः।

सुदर्शन के प्रसन्न होने पर शत्रु के अभिचार का दहन—उपर्युक्त विधि से प्रसन्न हुये आदि मध्यान्तविहीन विभु सुदर्शन अपने आश्रितों पर अनुग्रह प्रदर्शित कर समस्त शत्रुजन्य अभिचारों को स्मरण मात्र से भस्म कर देते हैं। उसके दिव्यास्त्रों को अपने उपसंहारकारक अस्त्रों से दूर हटा देते हैं॥ ३१-३३॥

परप्रयुक्तकृत्यायास्तत्प्रयोक्तुश्च विनाशनम्

परप्रयुक्तां कृत्यां तु सम्प्राप्तामति भीषणाम्॥ ३३॥

स्वयं निर्गत्य देवोऽसौ चक्ररूपी जगत्पतिः ।
भस्मसात् कुरुते तं च प्रयोक्तारं ततः परम् ॥ ३४ ॥

शत्रु प्रयुक्त कृत्या तथा अभिचार करने वाले शत्रु दोनों का विनाश—अत्यन्त भीषण शत्रुप्रयुक्त प्राप्त कृत्या को चक्ररूपी विष्णु स्वयं प्रगट हो कर उसका विनाश करते हैं । तदनन्तर अभिचारकर्त्ता का भी विनाश करते हैं ॥ ३३-३४ ॥

काशीराजेतिहासोदाहरणम्

तथैव काशीराजाख्यो वाराणस्यां वसन्नृपः ।
विश्वेश्वरं महादेवमर्चयित्वा समाहितः ॥ ३५ ॥
कृष्णोद्देशेन कृत्यां वै जनयामास मोहितः ।
सा समुत्पादिता कृत्या विकटा भीमदर्शना ॥ ३६ ॥
द्वारकां समनुप्राप्य कृष्णाभ्याशं ययौ तदा ।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वालामालाविलाननाम् ॥ ३७ ॥
प्रेषयामास भगवान् सुदर्शनमनुत्तमम् ।
सा तमापतितं दृष्ट्वा सहस्रादित्यसन्निभम् ॥ ३८ ॥
यथागतं प्रदुद्राव प्रयोक्तारं भयातुरा ।
स तां निहत्य तं चापि काशीराजं पुरीं तथा ॥ ३९ ॥
आजगाम पुनश्चक्रं विष्णुपार्श्वं महाद्युतिः ।

इस विषय में काशिराज के इतिहास का उदाहरण—काशिराज नामक राजा पूर्वकाल में वाराणसी में निवास करता था । उसने बड़ी सावधानी से विश्वेश्वर महादेव की अर्चना कर मोहवश कृष्ण के विनाश के उद्देश्य से कृत्या उत्पन्न की । उसके द्वारा उत्पन्न की गई, विकट तथा भीषण रूप में दिखाई पड़ने वाली वह कृत्या द्वारका में जाकर कृष्ण के सन्निकट पहुँची । ज्वालामाला से जलती हुई मुख वाली उस कृत्या को अपनी ओर आते देख भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उस पर प्रहार किया । सहस्रादित्य सन्निभ उस सुदर्शन को आते देख वह कृत्या भयभीत होकर जैसे आई थी उसी प्रकार उल्टे पाँव प्रयोगकर्त्ता काशिराज के पास भागी । फिर तो महाद्युति सुदर्शन ने कृत्या का वध किया और फिर काशिराज का भी वध किया । तदनन्तर काशीपुरी को भी विध्वस्त कर वह विष्णु के सन्निकट चला आया ॥ ३५-४० ॥

श्रुतकीर्त्युपाख्यानोदाहरणम्

एवमन्यत् पुरावृत्तमितिहासं शृणुष्व मे ॥ ४० ॥

श्रुतकीर्त्ति के उपाख्यान का उदाहरण—हे नारद ! इसी प्रकार पूर्वकाल में हुये एक और इतिहास को मुझसे सुनिए । राजा श्रुतिकीर्त्ति धर्मपूर्वक सप्तद्वीपा वसुमती का पालन करता था ॥ ४० ॥

राज्ञा श्रुतकीर्त्तिना धर्मेण सप्तद्वीपमहीपरिपालनम्

सौराष्ट्राधिपती राजा श्रुतकीर्त्तिरिति श्रुतः ।

निवसन् भद्रशालायां नगर्यामरिमर्दनः ॥ ४१ ॥
गजाश्वरथसम्पन्नो बलवान् वासवोपमः ।
सुदर्शनमहामन्त्रनिष्ठः परमधार्मिकः ॥ ४२ ॥
सुदर्शने परां भक्तिमुद्वहन्नर्चनापरः ।
बुभुजे तत्प्रसादेन सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ ४३ ॥

सौराष्ट्र देश का अधिपति एक राजा श्रुतकीर्त्ति नाम से विख्यात था। वह प्रतापी राजा भद्रशाला नामक नगरी में निवास करता था। वह हाथी, घोड़े एवं रथ से सम्पन्न था और इन्द्र के समान बलवान् था। उस धार्मिक राजा की निष्ठा सुदर्शन मन्त्र में अधिक थी। वह उनमें पराभक्ति रखता था और उन्हीं का अर्चन करता था। उनकी कृपा से सप्तद्वीपा वसुमती का पालन करता था ॥ ४१-४३ ॥

लोकान्तरं जिगीषोस्तस्य सुदर्शनार्चनपूर्वकं स्वस्तिकाख्यगन्धर्वनगरगमनम्

जेतुं लोकान्तरं चक्रे श्रुतकीर्त्तिर्मनस्तदा ।
चतुरङ्गबलैर्युक्तः समभ्यर्च्य सुदर्शनम् ॥ ४४ ॥
कामगं स्यन्दनं चित्रमारुरोह महाबलः ।
ततः प्रतस्थे प्रथममन्तरिक्षं बलान्वितः ॥ ४५ ॥

अन्य लोकों को जीतने की इच्छा से उस राजा का सुदर्शन अर्चनपूर्वक स्वस्तिक नामक गन्धर्वनगर में गमन—तदनन्तर राजा श्रुतकीर्त्ति ने अन्य लोकों के जीतने की इच्छा की और उसने सुदर्शन की अर्चा की। फिर चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर वह महाबली मनोगामी चित्र नामक रथ पर सवार होकर सर्वप्रथम अन्तरिक्ष लोक की ओर चल पड़ा ॥ ४४-४५ ॥

स्वस्तिकनगरवर्णनम्

तत्र गन्धर्वनगरं विशालं स्वस्तिकाह्वयम् ।
वीणाविनोदनेनेत्थं पालितं परमद्युति ॥ ४६ ॥
स्वयंप्रवृत्तैः शस्त्रैश्च वार्यमाणारिसैनिकम् ।
बहिर्निरिन्धनेनैव वह्निना परिवेष्टितम् ॥ ४७ ॥
सुवर्णसालं परमं रत्नगोपुरमण्डितम् ।
मणिहर्म्यपरिक्षिप्तं गानस्वनसमाकुलम् ॥ ४८ ॥
विमानैस्तैजसैर्जुष्टं दिव्योपवनशोभितम् ।
सुवर्णपद्मसरसीसरिद्वापीनिषेवितम् ॥ ४९ ॥
सेवितं सुरनारीभिरप्सरोभिश्च सेवितम् ।
गन्धर्वैः किन्नरैः सिद्धैश्चारणैश्च सदा युतम् ॥ ५० ॥

स्वस्तिक नगर का वर्णन—उस अन्तरिक्ष लोक में स्वस्तिक नाम का एक विशाल

नगर हैं। उस परम प्रकाश युक्त नगर का वीणाविनोदन नामक राजा पालन करता था। उस नगर में शस्त्र अपने आप प्रयुक्त होकर शत्रुसेना को दूर भगा देते थे। वह नगर के बाहर से बिना इन्धन के जलने वाली अग्नि से परिवेष्टित था। उसमें सुवर्ण के सालवृक्ष थे। उसका गोपुर रत्नों से मण्डित था। माणिक्य निर्मित ऊँचे-ऊँचे भवन से युक्त तथा निरन्तर गाने के शब्दों से व्याप्त था। उसमें दिव्य तैजस विमान थे तथा दिव्योपवन से वह सुशोभित था। सुवर्ण के कमलों से युक्त वहाँ की वापियाँ, सरितायें तथा छोटी-छोटी तलैया थीं। देवाङ्गनायें एवं अप्सरायें वहाँ विहार करती थीं तथा गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध एवं चारण वहाँ निवास करते थे ॥ ४६-५० ॥

युयुत्सुना श्रुतकीर्त्तिना तन्नगरोपरोधः

एवंविधं पुरं राजा रुरोध बलदर्पितः।
वीणाविनोदनं योद्धुं महत्या सेनया तदा ॥ ५१ ॥

युद्ध की इच्छा वाले श्रुतकीर्त्ति द्वारा उस नगर का उपरोध करना—उस राजा ने बल के घमण्ड में आकर वीणाविनोदन से युद्ध करने की इच्छा से अपनी अपार सेना के साथ उस नगर को अवरुद्ध कर लिया ॥ ५१ ॥

गन्धर्वराजेन वाहिनीप्रेषणम्

श्रुत्वा गन्धर्वराजोऽपि मानुषैरुपरोधनम्।
प्रहस्य प्रेषयामास सिद्धगन्धर्ववाहिनीम् ॥ ५२ ॥

गन्धर्वराज द्वारा सेना भेजना—गन्धर्वराज ने मनुष्य द्वारा अपने नगर को अवरुद्ध होने की बात सुन कर हँसते हुये सिद्ध एवं गन्धर्वों की सेना उसका सामना करने के लिए भेजी ॥ ५२ ॥

तत्र तुमुलसंग्रामः

सा तेन बलिना राज्ञा युयुधे निशितैः शरैः।
प्रवृत्तं तन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ५३ ॥

वहाँ पर घनघोर संग्राम—वह सेना उस बलवान् राजा से तीखे-तीखे बाणों द्वारा युद्ध करने लगी। इस प्रकार लोमहर्षणकारी घनघोर संग्राम प्रारम्भ हुआ ॥ ५३ ॥

श्रुतकीर्त्तिना गन्धर्वसैन्यविद्रावणम्

ततो विद्रावयामास भूपतिर्लीलया बलम्।
गान्धर्वं तत् पुनः प्राप स्वपुरीं भयविह्वलम् ॥ ५४ ॥

श्रुतकीर्त्ति द्वारा गन्धर्व सेना का पराजय—तदनन्तर उस श्रुतकीर्त्ति ने देखते-देखते लीलापूर्वक गन्धर्वों की सेना भगा दी। जिससे भयविह्वल सभी गन्धर्व सेना अपनी पुरी को लौट आई ॥ ५४ ॥

क्रुद्धस्य गन्धर्वराजस्य स्वयं युद्धाय निर्गमनम्

तच्छ्रुत्वा परमक्रुद्धः स्वयं वीणाविनोदनः।

रथं महान्तमास्थाय निर्ययौ सह सैनिकैः ॥ ५५ ॥

क्रुद्ध हुये गन्धर्वराज का स्वयं रण के लिए प्रस्थान—अपनी सेना का पलायन सुन कर क्रुद्ध हुआ गन्धर्वराज वीणाविनोदन बहुत बड़े रथ पर सवार होकर सेना के साथ युद्ध भूमि की ओर चल पड़ा ॥ ५५ ॥

गन्धर्वराजश्रुतकीर्त्योरष्टदिनपर्यन्तं युद्धप्रवृत्तिः

ततस्तयोरभूद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
परस्परं निजघ्नुस्ते सैनिका विविधैः शरैः ॥ ५६ ॥
तत्र संछन्नमाकाशं शरौघैरुभयोरपि ।
जयः पराजयो वा स्यान्न तत्र समितौ तयोः ॥ ५७ ॥
एवमष्टदिनान्यासीदेकरूपं भयङ्करम् ।

गन्धर्वराज तथा श्रुतकीर्त्ति के बीच आठ दिन पर्यन्त निरन्तर युद्ध होना—

फिर तो उन दोनों में वृत्र और इन्द्र के समान युद्ध होने लगा । उनके सैनिक नाना प्रकार के बाणों से परस्पर प्रहार करने लगे । उभय पक्ष के सैनिकों के बाण प्रहार से सारा आकाश मण्डल आच्छन्न हो गया । उस लड़ाई में किसी की जय-पराजय नहीं हो रही थी । इस प्रकार आठ दिन तक एक रूप से भयङ्कर युद्ध चलता रहा ॥ ५६-५८ ॥

भूपतिना गन्धर्वराजस्य धनुरादिच्छेदो बलविद्रावणं च

ततो गन्धर्वराजस्य धनुश्चिच्छेद भूपतिः ॥ ५८ ॥
ध्वजच्छत्रहयांश्चापि सायकैर्नतपर्वभिः ।
दिशः प्रस्थापयामास तदीयं सकलं बलम् ॥ ५९ ॥

गन्धर्वराज का धनुष कटकर गिरना और उसकी सेना का पलायन—तदनन्तर राजा ने तीखे-तीखे बाणों को चलाकर गन्धर्वराज के धनुष, ध्वज, छत्र तथा घोड़े नष्ट कर दिये और उसकी सारी सेना जहाँ-तहाँ दिशाओं में भगा दी ॥ ५८-५९ ॥

गन्धर्वराजस्य विषादः

शस्त्रैरजय्यमालोच्य नृपं गन्धर्वराडपि ।
पराजितं तु स्वबलं मनुजैर्विषसाद ह ॥ ६० ॥

गन्धर्वराज का विषाद—इधर गन्धर्वराज भी शस्त्रों से अजेय राजा को जानकर तथा मनुष्य द्वारा पराजित अपनी सेना को देख कर बड़ा दुःखी हुआ ॥ ६० ॥

गन्धर्वराजेन मानुषबले गान्धर्वास्त्रप्रयोगः

दिव्यास्त्रैः सूदयाम्येनमिति मत्वा महाद्युतिः ।
गान्धर्वमस्त्रं चिक्षेप स तस्मिन् मानुषे बले ॥ ६१ ॥

गन्धर्वराज द्वारा मानुषी सेना पर दिव्यास्त्र का प्रयोग—तब परमप्रतापी राजा ने विचार किया कि अब इस मानुषी सेना पर दिव्यास्त्र का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने गान्धर्व अस्त्र चला दिया ॥ ६१ ॥

तेन मानुषसैन्यविमोहनम्

तेनैव मोहिता सर्वा श्रुतकीर्तिवरूथिनी।
गान्धर्वास्त्रप्रभावेण तिष्ठत्येव च संयुगे॥ ६२ ॥
सुदर्शनप्रभावेण दिव्यास्त्रं नाप तं नृपम्।

उससे मानुषी सेना का मूर्च्छित होना—उस गान्धर्व अस्त्र से सारी की सारी श्रुतिकीर्त्ति की सेना मूर्च्छित हो गई। सुदर्शन के प्रभाव से एक मात्र राजा ही मूर्च्छित नहीं हुआ और न उस पर दिव्यास्त्र का कुछ प्रभाव ही पड़ा॥ ६२-६३ ॥

तत्प्रतीकाराशक्तस्य श्रुतकीर्तेः पुरोधसि स्ववृत्तनिवेदनम्

श्रुतकीर्त्तिस्तदास्त्रेषु दिव्येष्वनभियोगतः॥ ६३ ॥
न शशाक प्रतीकर्तुं स्वपुरोधसमभ्ययात्।
वृत्तं विज्ञापयामास नृपस्तस्मै पुरोधसे॥ ६४ ॥

उसका प्रतीकार करने में असमर्थ राजा श्रुतकीर्त्ति का अपने पुरोहित से निवेदन करना—तब राजा श्रुतकीर्त्ति ने उस दिव्यास्त्र पर अपना कुछ भी प्रभाव न देख कर उसके प्रतीकार में असमर्थ हो कर अपने पुरोहित से सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ ६३-६४ ॥

पुरोधसा सुदर्शनशरणवरणोपदेशपूर्वकं निखिलास्त्रमन्त्रोपदेशनम्

सोऽभ्यभाषत धर्मज्ञः परमास्त्रविशारदः।
श्रुतकीर्तेऽत्र मा भैषीस्तमेव शरणं व्रज॥ ६५ ॥
प्रणतार्त्तिहरं देवं सुदर्शनवपुर्धरम्।
दिव्यास्त्राणामशेषाणां प्रसूतिं परमेश्वरम्॥ ६६ ॥
एवंभूते महाचक्रे चतुःषष्ट्यरसंयुते।
नेमिद्वयान्विते देवं मध्ये ध्यायस्व भूपते॥ ६७ ॥
द्विषष्टिभुजमत्युग्रं संहारास्त्रधरं परम्।
एवं ध्यात्वा च जप्त्वैतं मन्त्रं सेनां विलोकय॥ ६८ ॥
इत्यस्त्रमन्त्रानखिलांस्तस्मा उपदिदेश सः।

पुरोहित द्वारा सुदर्शन की शरण में जाने का उपाय बताकर राजा को सम्पूर्ण मन्त्रों का उपदेश करना—तदनन्तर अस्त्रशास्त्र के वेत्ता धर्मज्ञ उस पुरोहित ने कहा—'हे श्रुतकीर्त्ति! आप इस गन्धर्वराज से भयभीत मत होइए, भगवान् की शरण का सहारा लीजिए।' सुदर्शन स्वरूपधारी वे देवाधिदेव प्रणतजनों के दुःखों का हरण करने वाले

हैं, वे परमेश्वर सभी दिव्यास्त्रों के जन्मदाता हैं। महाचक्ररूपी विष्णु का स्वरूप इस प्रकार है। उसमें ६४ अरे हैं एवं दो नेमियाँ हैं। वे प्रभु अपनी ६२ भुजाओं से संहारास्त्र को धारण किये हुये हैं। उसी के मध्यभाग में विष्णु का ध्यान करिए। इस प्रकार के चक्र का ध्यान कर आप उनके मन्त्र का जप करिए। फिर अपनी सेना की ओर देखना चाहिए। पुरोहित ने इस प्रकार राजा को अखिल मन्त्रों का उपदेश भी किया ॥ ६५-६९ ॥

तेन जातबलस्य श्रुतकीर्त्तेः पुनर्युद्धायागमनम्

प्रतिगृह्याखिलान् मन्त्रान् प्रवर्तकनिवर्तकान् ॥ ६९ ॥
पुनरेत्य च संग्रामं स राजा समितिञ्जयः ।

उसके प्रभाव से सामर्थ्य प्राप्त कर राजा का पुनः युद्धभूमि में प्रस्थान—राजा ने अपने पुरोहित से सारे प्रवर्त्तक एवं निवर्त्तक अस्त्र ग्रहण कर लिए और संग्राम में विजय की इच्छा से पुनः युद्धभूमि की ओर लौट पड़ा ॥ ६९-७० ॥

तेन स्वसैनिकमोहविमोचनम्

ध्यात्वा देवं जपन् मन्त्रं स्वसेनां समलोकयत् ॥ ७० ॥
ततः संज्ञामवाप्यासौ प्रावर्तत महाहवे ।

उसके द्वारा सैनिकों की मूर्च्छा का दूरीकरण—उसने देवाधिदेव चक्ररूपधारी विष्णु का ध्यान किया। फिर मन्त्र का जप कर अपनी सेना की ओर दृष्टि डाली। तदनन्तर सेना को जीवित कर पुनः युद्ध में प्रवृत्त हो गया ॥ ७०-७१ ॥

पुनर्युद्धे श्रुतकीर्त्तेर्विजयो गन्धर्वलोकवशीकरणं च

पुनः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि ॥ ७१ ॥
दिव्यास्त्रैः समरे राजा जित्वा वीणाविनोदनम् ।
तल्लोकं स्ववशं चक्रे चक्रवर्ती बलान्वितः ॥ ७२ ॥

पुनः श्रुतकीर्त्ति की विजय और गन्धर्वलोक का वशीकरण—तदनन्तर दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। चक्रवर्त्ती उस प्रतापी राजा ने दिव्यास्त्र की सहायता से वीणाविनोदन गन्धर्वराज को जीत लिया और गन्धर्वलोक को अपने वश में कर लिया ॥ ७१-७२ ॥

ततः स्वपुरप्रत्यागमनम्

सत्कृतः सिद्धगन्धर्वैः किन्नरैश्चारणैरपि ।
भद्रशालां पुनः प्राप स्वपुरीं विजयश्रिया ॥ ७३ ॥
समेयिवाञ्शशासोर्वीं दिवं सुरपतिर्यथा ।

अपने नगर की ओर प्रस्थान—सिद्धों, गन्धर्वों, किन्नरों एवं चारणों से सत्कृत हुआ

राजा विजयश्री के साथ भद्रशाला नगरी में पुनः लौट आया और स्वर्ग में देवराज इन्द्र की तरह पृथ्वी का शासन करने लगा ॥ ७३-७४ ॥

सुदर्शनप्रभावाद्विस्मितस्य पुनः पुरोधसा सह मन्त्रणप्रकारः

सुदर्शनप्रभावस्य स्मृत्वा विस्मितमानसः ॥ ७४ ॥
पुरोधसमुपागम्य ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मन्त्रयामास तेनैवं राजा राजीवलोचनः ॥ ७५ ॥

सुदर्शन के प्रभाव से विस्मित होकर राजा का पुनः पुरोहित से मन्त्रणा करना— हे कमलनेत्र ! वह राजा उस सुदर्शन का प्रभाव देखकर आश्चर्य में पड़ गया । फिर जलती हुई अग्नि के समान प्रदीप्त पुरोहित के पास जाकर उनके साथ मन्त्रणा में लग गया ॥ ७४-७५ ॥

स्वसम्पदो भगवत्प्रसादहेतुकत्वकथनम्

देवप्रसादाज्जगती ममेयं
समुद्रनेमिर्वशमागताद्य ।
लोकान्तरं चापि तथैव मन्ये
मयि प्रसादोन्मुख एव देवः ॥ ७६ ॥

भगवान् की कृपा से सारी सम्पत्तियों का हेतुत्व—हे पुरोहितदेव ! भगवान् सुदर्शन देव की कृपा से समुद्रनेमी वाली यह सारी पृथ्वी मेरे वश में आ गई । इतना ही नहीं अन्य लोक भी मेरे वश में आ गया । इससे ज्ञात होता है कि देवाधिदेव मुझ पर प्रसन्न हैं ॥७६॥

भगवत्प्रसादात् स्वस्य मोक्षलाभे संशयाभावकथनम्

संसारभीतस्य ममापवर्गं
प्रदास्यते चक्रवपुर्धरोऽयम् ।
इत्यत्र शङ्का मम नास्ति काचि-
दतः परं देवमुपास्महे तु ॥ ७७ ॥

भगवान् की प्रसन्नता से मोक्ष लाभ—ये चक्ररूपधारी विष्णु भयानक संसार से भयभीत मुझे मोक्ष अवश्य प्रदान करेंगे । इसमें मुझे किसी प्रकार की शङ्का नहीं है । अतः मैं अब मात्र इन्हीं देव की उपासना करूँगा ॥ ७७ ॥

राजानं प्रति पुरोधसा सुदर्शनप्रतिष्ठापनाद्युपदेशः

इत्युक्तवन्तं नृपतिं पुरोधाः
कृताञ्जलिं प्राह महानुभावः ।
विमानमग्र्यं बहुवर्णकूटं
विधाय चक्रोपपदं ससाध्यम् ॥ ७८ ॥

इह प्रतिष्ठाप्य सुचक्रमध्ये
द्विषष्टिबाहुं सनिवर्तकास्त्रम् ।
यथोक्तरूपं बहुभूषणाढ्यं
सुदर्शनं पूजय सर्वसिद्ध्यै ॥ ७९ ॥

राजा को पुरोहित द्वारा सुदर्शन की प्रतिष्ठा के लिए उपदेश—हाथ जोड़े इस प्रकार राजा के निवेदन करने पर महानुभाव पुरोहित ने कहा—हे राजन् ! नाना प्रकार के वर्णों से सुचित्रित उत्तम मन्दिर का निर्माण कर उसमें साध्यनाम सहित चक्र अर्थात् सुदर्शन चक्र को ६२ भुजाओं से तथा निवर्त्तक अस्त्रों के सहित बनवा कर उनकी प्रतिष्ठा करिए और उस प्रकार के रूप को नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित कर सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए उनकी पूजा करिए ॥ ७९ ॥

राज्ञा तथैवानुष्ठानम्

इत्येवमुक्तः प्रतिगृह्य मूर्ध्ना
स तस्य वाक्यं परमार्थयुक्तम् ।
अकारयत् कारयितव्यदक्ष-
स्तथैव तस्मिन्नगरे स राजा ॥ ८० ॥

राजा का वैसा ही अनुष्ठान करना—परमार्थ युक्त उन पुरोहित के द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा ने परमार्थयुक्त उनकी आज्ञा को शिर से धारण किया और निर्माण में कुशल कारीगरों को बुलाकर पुरोहित के कथनानुसार उसी प्रकार से मन्दिर आदि का निर्माण कराया और उसमें चक्र सुदर्शन को स्थापित किया ॥ ८० ॥

तदर्थं राज्ञा द्विजानां वृत्तिप्रकल्पनम्

शतं स विंशत्यधिकं द्विजांस्तु
समन्ततो देवनिकेतनात् सः ।
ततः प्रतिष्ठाप्य धनानि दत्त्वा
बहूनि बह्वीश्च भुवः स तेभ्यः ।
विभूतिमन्तं च विधाय देवं
मुमोद राजा समवाप्तकामः ॥ ८१ ॥

राजा द्वारा ब्राह्मणों को वृत्ति प्रदान करना—मन्दिर में प्रतिष्ठा करने के अनन्तर राजा ने उस देव मन्दिर से एक सौ बीस ब्राह्मणों को बहुत साधन तथा बहुत सी भूमि प्रदान की । फिर देवाधिदेव को अनन्त ऐश्वर्य से संयुक्त कर राजा अपने को कृत-कृत्य समझने लगा और प्रसन्नता व्यक्त की ॥ ८१ ॥

ततो भगवत्प्रसादाद्राज्ञः परमपुरुषार्थलाभः

महालये तत्र समर्च्य देवं
दिने दिने प्राप्तसमस्तकामः ।

ततोऽचिरेणैव विमुक्तसङ्गः
परं पदं प्राप च तत्प्रसादात्॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां काशीराजश्रुतकीर्त्युपाख्यानवर्णनं नाम द्विचत्त्वारिंशोऽध्याय: ॥ ४२ ॥

॥ आदित: श्लोका: २६७३ ॥

* * *

भगवान् की कृपा से राजा को परमपुरुषार्थ की प्राप्ति—उस राजा ने उस विशाल मन्दिर में प्रतिदिन अर्चना करते हुये अपनी सारी कामनायें पूर्ण की । फिर कुछ ही दिन के अनन्तर सारे संसार से नाता तोड़कर भगवत्प्रसाद से परम पद प्राप्त कर लिया ॥ ८२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के काशिराज
एवं श्रुतकीर्त्ति के उपाख्यान वर्णन नामक बयालीसवें अध्याय की
शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के
द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४२ ॥

* * *

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जलन्धरवधोपायचिन्तनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक वार भी ध्यान करने से अनेक कोटि जन्म समूहों के पाप समूह को नष्ट करता है । हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

कृत्स्नस्य जगच्चक्रमयत्वकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

पृच्छामि त्वां पुनरिदं शंस मे सकलेश्वर ।
प्रोक्तमेतत् पुरा सर्वं जगच्चक्रमयं त्वया ॥ १ ॥
तत् कथं स्पष्टमाचक्ष्व कदा देवेन दर्शितम् ।
वेत्ता त्वमेव नान्योऽस्ति त्वदृते भुवनत्रये ॥ २ ॥

सारे संसार के चक्रमयत्व के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे सर्वेश्वर ! आपने जो कहा कि यह सब जगत् चक्रमय ही है, वह किस प्रकार सम्भव है? उसका स्पष्ट रूप से आख्यान कीजिए । उस जगत को चक्ररूप में भगवान् ने कब दिखाया? आप ही भुवनत्रय में इस रहस्य के ज्ञाता हैं, आपको छोड़कर कोई अन्य नहीं । इसलिए आपसे पूछ रहा हूँ ॥ १-२ ॥

अध्यायद्वयेन तदुत्तरकथनाख्यायिकाकथने प्रथमं देवादीनां धर्ममार्गप्रवर्तकत्वनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

सुराश्च मुनयः सर्वे मनुस्तत्सूनवस्तथा ।
राजानः सर्ववर्णाश्च धर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥ ३ ॥

देवताओं का धर्ममार्ग प्रवर्त्तकत्व—अहिर्बुध्न्य ने कहा—सभी देवता मुनि, मनुगण, मनुपुत्र, राजा तथा सभी लोग वर्ण धर्ममार्ग के प्रवर्त्तक हैं ॥ ३ ॥

विमर्श—दो अध्याय में उत्तर कहने के लिए आख्यायिका कथन का उपक्रम करते है।

दानवादीनां धर्मविघातकत्वम्

तथैव दानवाः सर्वे भूतवेतालराक्षसाः।
क्रूरा नराश्च पशवो भीमरूपाश्च दस्यवः॥ ४॥
तथैव चासुरीं प्राप्ता योनिमन्ये जना मुने।
एते सर्वे सदा धर्मविध्वंसं कुर्वते भृशम्॥ ५॥

दानवों का धर्म विनाशकत्त्व—सभी दानव, भूत, बेताल, राक्षस, नीच प्रकृति के पुरुष, पशु, भयानक दस्यु, उसी प्रकार, हे मुने! आसुरी योनि में जन्म लेने वाले अन्य मनुष्य—ये सभी सदैव धर्म का अत्यन्त विध्वंस करने वाले हैं॥ ४-५॥

पापिनां विनाशोपायचिन्तयाहिर्बुध्न्यस्य मेरुशिखरगमनम्

अतस्ते पापकर्माणः केन नश्येयुरित्यहम्।
परां चिन्तामुपारूढो मेरुकूटमुपागतः॥ ६॥

पापियों के नाश हेतु अहिर्बुध्न्य का मेरु शिखर पर प्रस्थान—ये पापकर्मा किस प्रकार से विनष्ट होंगे? हे नारद! इस प्रकार की चिन्ता में निमग्न हुआ मैं मेरु शिखर पर चला गया॥ ६॥

तत्र समाधिमास्थितस्य तस्य तेजोविशेषदर्शनम्

तस्मिन् समाधिमास्थाय समासीनस्य मे क्षणात्।
आविर्बभूव दुर्दर्शं महः परमभास्वरम्॥ ७॥

समाधिस्थ अहिर्बुध्न्य को तेजोविशेष का दर्शन—उस मेरुशिखर पर समाधि लग जाने पर मुझे अत्यन्त दुर्दर्श परम भास्वर एक तेज दिखाई पड़ा॥ ७॥

भीतिवशात् आथर्वणमन्त्रोच्चारणपूर्वकं पुनस्तद्दर्शनम्

ततस्तद्दर्शनान्मन्त्रमाथर्वणमुदैरयम्।
तमुच्चरन् महामन्त्रमद्राक्षं तन्महः पुनः॥ ८॥

भयवश आथर्वण मन्त्र का उच्चारण करते हुये अहिर्बुध्न्य को पुनः उसी तेज को देखना—उस तेजो विशेष को देखते ही मैं आथर्वण मन्त्र का जप करने लगा। फिर भी बारम्बार मुझे वही तेज दिखाई पड़ने लगा॥ ८॥

तेजोमध्ये सुदर्शनपुरुषसाक्षात्कारपूर्वकं प्रश्नः

तस्मिन् विदीप्ते महसि पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं सहस्रादित्यसन्निभम्॥ ९॥
सहस्रारसमायुक्तचक्रमध्यस्थितं परम्।
ज्वालामालासुदुर्दर्शं सुदर्शनमनाकुलम्॥ १०॥

दृष्ट्वा कस्त्वं कुतः कस्येत्यपृच्छमकुतोभयम् ।

तेज के मध्य में सुदर्शन पुरुष का साक्षात्कार करने पर अहिर्बुध्न्य का उस विषय में प्रश्न—उस जाज्वल्यमान तेज के मध्य में कृष्ण पिङ्गल वर्ण का एक पुरुष मुझे दिखाई पड़ा जो ऊर्ध्वरेता, विरूपाक्ष, सहस्रों आदित्य के समान तेजस्वी तथा सहस्र अरों से युक्त चक्र के मध्य में स्थित था । वह ज्वालामाला से आवृत होने के कारण सुदुर्दर्श, मनोहर तथा धैर्यशाली था । उसे देखकर मैंने निर्भीक होकर पूछा—'आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं तथा किसके क्या हैं? ॥ ९-११ ॥

प्रीतेन भगवता स्वस्वरूपख्यापनम्

ततः प्रीतः स भगवानवदत् तेजसां निधिः ॥ ११ ॥
अहं सुदर्शनो नाम्ना ख्यातोऽद्य प्रभृतीश्वर ।
दुरालोको महालोको यत् तवाहं सुदर्शनः ॥ १२ ॥

प्रसन्न हुये भगवान् का स्व-स्वरूप का आख्यापन—तब महातेजस्वी उन भगवान् ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा—'हे ईश्वर ! आज से मैं सुदर्शन नाम से पृथ्वी में ख्यात हो रहा हूं । मैं दुरालोक एवं महालोक होकर भी आपके लिए सुदर्शन हूँ ।

वैकुण्ठात् स्वागमनस्याहिर्बुध्न्यानुजिघृक्षाहेतुकत्वादिकथनम्

वैकुण्ठधामनिलयस्त्वां द्रष्टुं समुपागतः ।
त्रिभावभावनायुक्तैरदृष्टचरमद्भुतम् ॥ १३ ॥
नित्यमन्तर्हितं गुह्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
प्रमथ्य मतिमन्थानादुद्धृतं वेदसागरात् ॥ १४ ॥
पीयूषमिव दुग्धाब्धेर्यत् त्वया परमेश्वर ।
अतो मन्त्रतनुः प्राप्तो भवन्तं किं करोमि ते ॥ १५ ॥
अन्तरं नैव पश्यामि तव दामोदरस्य च ।
अतो यथात्र वर्तेय तथैव त्वयि शङ्कर ॥ १६ ॥

वैकुण्ठ से अपने आने का उद्देश्य अहिर्बुध्न्य को बताना—मैं वैकुण्ठधाम में रहने पर भी आपको देखने के लिए आया हूं क्योंकि त्रिभाव भावना वालों से भी अत्यन्त अदृष्ट, अद्भुत, नित्य अन्तर्हित, गुह्य तथा सर्वलोक नमस्कृत मेरे मन्त्र को अपने मतिरूपी मथानी से वेदसागर को मथ कर आपने इस प्रकार उद्धृत किया है, जिस प्रकार क्षीरसागर से अमृत निकाला गया था । इसी कारण मैं मन्त्रात्मक शरीर से आपके पास आया हूं । कहिये आपका क्या उपकार करुँ? मुझे आप में तथा दामोदर श्रीकृष्ण में कोई अन्तर दिखाई नहीं पड़ता । इसलिए मैं जैसे उनमें वर्ताव करता हूँ, हे शङ्कर ! उसी प्रकार आपमें भी करूँगा ॥ १३-१६ ॥

ततोऽहिर्बुध्न्येन भगवति स्वाभिप्रेतनिवेदनम्

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् सहस्रादित्यसन्निभे ।

ततोऽहं विस्मितोऽवोचं तमप्रतिमतेजसम् ॥ १७ ॥
भूयांसो भुवने पापा धर्मव्यासेध(?)कारिणः ।
तेषां निग्रहमाकाङ्क्षन्नुपायैर्नाशयाम्यहम् ॥ १८ ॥
इति चिन्तापरे योगमास्थिते मयि मन्त्रराट् ।
त्वं चाविरासीस्तत्कार्यं निर्वृत्तमिति मे मतिः ॥ १९ ॥

अहिर्बुध्न्य द्वारा भगवान् से स्वाभिप्रेत कथन—सहस्रादित्य के समान अमित तेजस्वी जब वे महापुरुष ऐसा कह कर मौन हो गए तब मैंने उनसे कहा इस जगत् में बहुत से पापी धर्म के विनाश के लिए बद्ध परिकर हो गए हैं । मैं उनके निग्रह के उपाय की आकाङ्क्षा से आपके पास आया हूँ कि किस प्रकार से उनका विनाश हो? समाधि मे स्थित हूँ, इसी अवस्था में आप मन्त्रराज का दर्शन हो गया । अब मुझे आशा हो गई कि मेरा यह कार्य सम्पन्न हो गया ॥ १७-१९ ॥

दैत्यादिविनाशनप्रार्थना

अतस्तैः पीड्यमानेषु साधुषु स्मृतिमात्रतः ।
आगन्तव्यं प्रयत्नेन साध्यं साधय च प्रभो ॥ २० ॥

अहिर्बुध्न्य द्वारा दैत्यादिकों के विनाश की प्रार्थना—अत: हे प्रभो ! उन अनधिकारियों के द्वारा सताये गए साधुओं के स्मरण करते ही आप उपस्थित हो जाँवें और अपने प्रयत्न से उनका मनोरथ पूर्ण करें ॥ २० ॥

भगवता तथेत्युक्ते स्वस्य कैलासगमनम्

तथेत्युक्त्वा गतः सोऽहमपि कैलासमन्वगाम् ।

अहिर्बुध्न्य का कैलासगमन—फिर तथास्तु कह कर भगवान् चले गए और मैं भी कैलास चला आया ॥ २१ ॥

अत्रान्तरे जलन्धरवधार्थमिन्द्रस्य मन्त्रालोचना

ततो जलन्धराख्येन दानवेन निपीडितः ॥ २१ ॥
वासवो मन्त्रयांच्चक्रे सह सर्वैर्मरुद्गणैः ।
शस्त्रैरस्त्रैरजय्यत्वं दानवस्य दुरात्मनः ॥ २२ ॥
निरीक्ष्य केन तं पापं नाशयामीत्यचोदयत् ।

जलन्धर के वध हेतु इन्द्र की मन्त्रणा—तदनन्तर जलन्धर नामक महासुर से निपीड़ित इन्द्र सभी देवताओं के साथ मन्त्रणा करने लगे । उन्होंने कहा—हे देवगणों ! यह दुरात्मा दानव सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से अजेय है । अत: किस प्रकार इसका विनाश करुँ? ॥ २१-२३ ॥

तत्र वायुना स्वाभिप्रायविनिवेदनम्

ततो वायुः समुत्थाय पुरंदरमथाब्रवीत् ॥ २३ ॥
सत्यमस्त्रैस्तथा शस्त्रैरजय्योऽयं महासुरः ।

धात्रा दत्तवरो दृप्तो बलवीर्यसमन्वितः ॥ २४ ॥
दिधक्षति जगत् सर्वं धूमकेतुरिवोत्थितः ।
सर्वलोकेश्वरे श्रीमत्यप्रमेये महाद्युतौ ॥ २५ ॥
देवदेवे महादेवे शङ्करे भूतभावने ।
तस्मिन्नत्याहितं तेन नृशंसेन सुरारिणा ॥ २६ ॥
तस्मिन् परमसंक्रुद्धो वर्तते तेन शङ्करः ।
अतस्तमभिगच्छामो वधार्थं दुष्टचारिणः ॥ २७ ॥
बृहस्पतिमुखेनैव तं देवं प्रार्थयामहे ।
स एव तत्र वक्तव्यं जानाति भगवानिति ॥ २८ ॥

वायु द्वारा स्वअभिप्राय निवेदन—सर्वप्रथम वायुदेव ने अपना अभिप्राय प्रकट किया, तब सभा में वायुदेव ने खड़े होकर इन्द्र से कहा—यह बात सत्य है कि वह महान् असुर शस्त्रास्त्रों से अजेय हैं । ब्रह्मा के वरदान से वह बहुत बलवान् तथा वीर्यवान् हो गया है जिससे वह उदय को प्राप्त होने वाले धूमकेतु के समान सारे जगत् को जला रहा है । किन्तु उस नृशंस दानव ने देवाधि-देव, भूतभावन महादेव शङ्कर का बहुत बड़ा अहित किया है । इसलिए भगवान् शङ्कर उसके विषय में अत्यन्त क्रुद्ध हैं । इस कारण उस दुष्ट दानव के वध के लिए शङ्कर जी के पास चलना चाहिये और उन देवाधिदेव से बृहस्पति द्वारा उनके वध की प्रार्थना करनी चाहिए । वही उसके वध का उपाय जानते हैं ॥ २५-२८ ॥

वायुवचनमङ्गीकृत्य शङ्करं गन्तुं शक्रेण बृहस्पतिप्रचोदनम्

विरते पवने तस्मिन् बाढमित्याह वासवः ।
बृहस्पतिमथासीनं ज्वलितानलसन्निभम् ॥ २९ ॥
अभ्यगच्छन्महातेजा भगवान् पाकशासनः ।
जलन्धरवधार्थं त्वमभिगच्छ पिनाकिनम् ॥ ३० ॥
स तस्मिन् परमक्रुद्धो निहनिष्यत्यसंशयम् ।
सुरकार्येषु सर्वेषु भवानेव परायणम् ॥ ३१ ॥
अतोऽभिगम्यतां देवः कैलासे चन्द्रशेखरः ।

वायु का वचन स्वीकार कर इन्द्र की बृहस्पति से शङ्कर के समीप चलने की प्रार्थना—इतना कह कर जब वायुदेव मौन हो गए तब इन्द्र ने 'तथास्तु' कहा । तदनन्तर जलती अग्नि के समान बैठे हुये बृहस्पति के समीप महातेजस्वी इन्द्रदेव गए और कहा—आप जलन्धर के वध के लिए पिनाकी शङ्कर के पास जाइये । वे उस पर क्रुद्ध हैं । अतः निश्चित रूप से उसका वध करेंगे । सभी देवताओं के कार्य के लिए मात्र आप ही सहायक हैं । अतः कैलास पर्वत पर जहाँ चन्द्रशेखर का निवास है वहाँ जाइये ॥ २९-३२ ॥

इन्द्रवचनात् बृहस्पतेः कैलासगमनम्

इत्युक्तवचने तस्मिन् पुरुहूते सुरेश्वरे ॥ ३२ ॥

तथेति तत् प्रतिश्रुत्य वाक्पतिः शक्रपूजितः ।
कैलासशिखरं प्रायात् प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३३ ॥

इन्द्र की प्रार्थना पर बृहस्पति का कैलासगमन—इन्द्र द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उनसे पूजित 'बृहस्पति' तथास्तु कहकर बहुत प्रसन्नता के साथ कैलास शिखर पर गए ।

तत्र शङ्करदर्शनम्

तत्रासीनं सुरैः सार्धमास्थाने सुमनोहरे ।
मामप्सरःप्रयुक्ते तु नृत्ये विस्मितमानसम् ॥ ३४ ॥
सोऽपश्यदाराद्भगवानुद्यद्भास्करसन्निभः ।
प्रणिपत्य समुत्थाय मामस्तौषीत् स वाक्पतिः ॥ ३५ ॥

कैलास पर शङ्कर का दर्शन—उस कैलास पर देवताओं के साथ सुरम्य स्थान पर बैठे हुये मुझे उन्होंने देखा । वहाँ अप्सराओं के नृत्य को मैं साश्चर्य देख रहा था । तदनन्तर उदीयमान सूर्य के समान बृहस्पति ने मुझे प्रणाम किया और खड़े होकर मेरी स्तुति करने लगे ॥ ३४-३५ ॥

जलन्धरवधार्थं बृहस्पतिना शङ्करस्तुतिः

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद जगतःपते ।
प्रसीद सर्वगीर्वाणपालनान्तकर प्रभो ॥ ३६ ॥
प्रसीद भगवन् देव प्रसीद सुरवन्दित ।
प्रसीद विश्वविज्ञानवारिधे परमेश्वर ॥ ३७ ॥
नमस्ते व्योमनिलय नमस्ते नागभूषण ।
नमः परमकल्याण नमस्त्रिपुरदारण ॥ ३८ ॥

जलन्धर के वध के लिए बृहस्पति द्वारा शिवस्तुति—हे देवदेवेश ! आप प्रसन्न हों । हे जगत्पते ! प्रसन्न हों, सभी देवताओं के पालन तथा संहार करने वाले आप प्रसन्न हों । विश्वविज्ञान के समुद्र परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों । परम व्योम में रहने वाले आपको नमस्कार हैं । हे नागभूषण ! आपको नमस्कार है । परमकल्याणस्वरूप ! आपको नमस्कार है । त्रिपुरविदारण आपको नमस्कार है ॥ ३६-३८ ॥

त्वं धाता त्वं वषट्कारस्त्वं हविस्त्वं हुताशनः ।
सदसत्त्वं त्वमोंकारस्त्वमिन्द्रस्त्वं यमस्तथा ॥ ३९ ॥
त्वं पाशपाणिस्त्वं सोमो निर्ऋतिस्त्वं मरुत् तथा ।
त्वमादित्यो वसुश्च त्वं त्वं विश्वं विश्वतोमुख ॥ ४० ॥
त्वमव्यक्तं महांश्च त्वं त्वमहङ्कार एव च ।
भूतानि त्वं सुसूक्ष्माणि विद्याविद्ये तथा भवान् ॥ ४१ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन चराचरमिदं जगत् ।
त्वमेव भूतनाथेश सर्वकारणकारण ॥ ४२ ॥

आप धाता, वषट्कार, हवि तथा हुताशन हैं । आप सत् तथा असत् हैं । आप ओंकार हैं, इन्द्र और यम भी आप ही हैं; वरुण, सोम, निर्ऋति तथा वायु भी आप ही हैं; आदित्य, वसु, विश्व तथा विश्वमुख भी आप ही हैं; आप अव्यक्त हैं, महान् हैं और अहङ्कार हैं; आप पञ्चमहाभूत हैं; आप सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रायें हैं तथा विद्या एवं अविद्या भी आप ही हैं, इस विषय में बहुत क्या कहें, हे भूतनाथेश ! हे सर्वकारणों के कारण ! चराचरात्मक सारा जगत् आप ही हैं ।। ३९-४२ ।।

क्षितिसलिलसमीरव्योमतेजःसहस्र-
द्युतिशशियजमानैः पूर्णदेहाय तुभ्यम् ।
परममुनिमनोभिर्मृग्यमाणाय नित्यं
भवभयविनिहन्त्रे विश्वमूर्ते नमस्ते ।। ४३ ।।

।। इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जलन्धरवधोपाय-चिन्तन नाम त्रिचत्त्वारिंशोऽध्यायः ।। ४३ ।।

।। आदितः श्लोकाः २७१६ ।।

* * *

पृथ्वी, जल, वायु, व्योम, तेज, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान रूप से पूर्ण देह वाले आपको नमस्कार है । बड़े-बड़े मुनियों के मन द्वारा निरन्तर मृग्यमाण तथा संसार के भय को विनष्ट करने वाले आप विश्वमूर्ति को मेरा नमस्कार है ।। ४३ ।।

।। इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जलन्धर के वध का उपाय नामक तिरालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ।। ४३ ।।

* * *

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुदर्शनस्वरूपप्रदर्शनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार का भी ध्यान अनेक करोणों जन्मों के पापसमूहों को नष्ट कर देता है, हम उन सुदर्शन देव के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

स्तुतिप्रीतेन शङ्करेणागमनकारणप्रश्नः

अहिर्बुध्न्यः—

इति स्तुवन्तं कुशलमाभाष्येदमवादिषम् ।
किमागमनकार्यं ते वद वाचस्पते इति ॥ १ ॥

बृहस्पति की स्तुति से प्रसन्न हुये शङ्कर का उनके आने का कारण पूछना—अहिर्बुध्न्य ने कहा—तदनन्तर उपरोक्त स्तुति से प्रसन्न हुये मैंने बृहस्पति के आने का कारण पूछा कि हे वाचस्पते ! आपके आने का क्या कारण हैं? ॥ १ ॥

बृहस्पतिना शङ्कराय सुरकार्यनिवेदनम्

इत्युक्तः सकलं प्राह समागमनकारणम् ।
शम्भो कृपानिधे देव श्रूयतामिदमादरात् ॥ २ ॥
सर्वलोकेषु सर्वेश तव सानुग्रह मनः ।
अतस्त्रिदशकार्यार्थं त्वामहं शरणं गतः ॥ ३ ॥

बृहस्पति का देवकार्यार्थ आने का कारण बताना—इस प्रकार पूछे जाने पर बृहस्पति ने अपने आने का सारा कारण कहा, हे शम्भो ! हे कृपानिधे देव ! मेरी बात आदरपूर्वक सुनिये । हे सर्वेश ! यत: सारे संसार पर ही आप सानुग्रह मन रखते हैं अत: देवताओं के कार्य के लिए आप के अनुग्रह की अपेक्षा रख आपकी शरण आया हूँ ॥ १-२ ॥

जलन्धर इति ख्यातो दानवो दुष्टचेष्टितः ।
अनिशं बाधते देवान् ब्रह्मदत्तवरो बली ॥ ४ ॥
अशक्तास्तद्वधे सर्वे सुराः सुरपतिस्तथा ।

मन्त्रयाञ्चक्रिरे सर्वे सम्भूयैतन्मरुद्गणाः ॥ ५ ॥
वरेण महता दृप्तो दुर्वारो रणमूर्धनि ।
महासुरो महादेवादृते नासौ विनश्यति ॥ ६ ॥
एवं सम्मन्त्र्य शक्रो मामवादीत् समरुद्गणः ।
महासुरवधोपायं भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ ७ ॥
अन्तरेण न पश्यामि तं गच्छ शरणं शिवम् ।
सुरकार्यार्थमेतत् त्वं प्रार्थयेथाः पिनाकिनम् ॥ ८ ॥
इत्युक्तः पुरुहूतेन त्वत्सकाशमिहागतः ।
तद्यथैते सुराः सर्वे सुखिनो निरुपद्रवाः ॥ ९ ॥
भवेयुः पार्वतीनाथ तथैवाशु विधीयताम् ।

जलन्धर नामक दैत्य ब्रह्मदेव का वरदान प्राप्त कर बहुत बलवान् हो गया है और देवताओं को पीड़ित कर रहा है । सभी देवता, किं बहुना इन्द्र ने भी उसके वध में असमर्थ होने के कारण एकत्रित होकर आपस में इस प्रकार मन्त्रणा की है कि यह दैत्य ब्रह्मदेव के वरदान से बलवान् होने के कारण युद्ध में हम लोगों से अजेय है अतः इसका वध महादेव को छोड़कर अन्य कोई भी नहीं कर सकता । इस प्रकार की मन्त्रणा कर इन्द्र ने मुझसे कहा—हे गुरो ! इस महासुर के वध का उपाय भगवान् शङ्कर के सिवाय और किसी के पास नहीं देख रहा हूँ । अतः आप शङ्कर की शरण में जाइये और देवताओं के इस कार्य को भगवान् शङ्कर के समीप जाकर प्रार्थना कीजिये । इन्द्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैं आपके पास आया हूँ । जिस प्रकार ये सभी देवता उपद्रवरहित होकर सुखी हो जावें, हे पार्वतीनाथ ! आप वही उपाय करें ॥ २-१० ॥

शङ्करेण जलन्धरवधप्रतिज्ञा

इत्युक्तोऽहं तदा तेन चिन्तारूढोऽभवं मुने ॥ १० ॥
तदेतदभिवीक्ष्याहमवोचं वचसां पतिम् ।
जलन्धरमहं क्रूरं हनिष्ये पापकारिणम् ॥ ११ ॥

शङ्कर का जलन्धर वध के लिए प्रतिज्ञा करना—हे मुने ! बृहस्पति द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मैं विचार करने लगा । फिर विचार कर वाचस्पति से बोला—मैं उस महापापी क्रूरकर्मा जलन्धर का वध करूँगा ॥ १०-११ ॥

स्वस्य दैत्यनिग्रहसामर्थ्ये सुदर्शनप्रसादस्य हेतुत्वख्यापनम्

समाधिस्थस्य मे दृष्टः सुदर्शनवपुर्धरः ।
मन्त्रो मन्त्रविदां श्रेष्ठ सर्वमन्त्रसमुद्भवः ॥ १२ ॥
सर्वार्थसाधको नित्यः सर्वदुष्टभयङ्करः ।
सर्वत्राणप्रवीणोऽयं चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ १३ ॥
स्वविद्यारक्षणरतः परविद्यानिवारणः ।
आथर्वणोऽपि षट्कार्णः षट्कर्णश्रुत्यगोचरः ॥ १४ ॥

अदृश्यं महसः पुञ्जं दुर्निरीक्षं तदा मया ।
मन्त्रमुच्चरता तस्मिंश्चक्रवर्ति सुदर्शनम् ॥ १५ ॥

जलन्धर के वध में अपना सामर्थ्य प्रगट करते हुये उससे सुदर्शन के हेतुत्व का प्रतिपादन—हे मन्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं जब समाधिस्थ था तो सुदर्शन का शरीर धारण किये, सम्पूर्ण मन्त्रों के उत्पत्ति का स्थान सुदर्शन मन्त्र का मुझे साक्षात् हुआ । वह मन्त्र सर्वार्थसाधक और सभी दुष्टों के लिए भयङ्कर हैं । वह सभी की रक्षा करने में समर्थ है, चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है, अपनी विद्या के रक्षण में निरत है तथा पर विद्या को दूर भगाता है । यह अथर्ववेद से निकला हुआ भी छः अक्षरों वाला है जो छः कानों में कहे जाने योग्य नहीं है । यह अदृश्य है, तेजों का पुञ्ज है और दुर्निरीक्ष्य है । सुदर्शन मन्त्र का जप करते हुये मैंने समाधि काल में उस प्रकार के चक्राकार भगवान् सुदर्शन का दर्शन किया ॥ १२-१५ ॥

दृष्टं तेनैवमुक्तं च प्रीतोऽहं मनुदर्शनात् ।
परमव्योमनिलयो भगवन्नित्यकिङ्करः ॥ १६ ॥
कार्यं तवांशेनागत्य करिष्ये मन्त्रतः स्मृतः ।
इत्युक्त्वासौ गतो देवः सुदर्शनवपुर्धरः ॥ १७ ॥
तेनैव तं दुरात्मानमपनेष्यामि मा चिरम् ।

तदनन्तर उन्होंने कहा—'आपके मन्त्र दर्शन (जप) से परमव्योम निवासी भगवान् का नित्य किङ्कर मैं प्रसन्न हूँ । जब आप मन्त्र द्वारा मेरा स्मरण करोगे तब मैं अंशरूप से अवतरित होकर आपका कार्य करूँगा ।' इतना कह कर सुदर्शन रूपधारी वह तेजःपुञ्ज चला गया । अतः इस समय मैं उस सुदर्शन विद्या का सहारा लेकर अविलम्ब उस राक्षस का वध करूँगा ॥ १६-१८ ॥

सौदर्शनविद्याग्रहणाय शङ्करं प्रति बृहस्पतेः प्रार्थना

इत्युक्तः परमप्रीतो बृहस्पतिरपि त्वरन् ॥ १८ ॥
प्रणम्य च पुनः प्राह यदि सानुग्रहो मयि ।
सौदर्शनीमिमां विद्यां देहि मे भगवन्निति ॥ १९ ॥

सौदर्शन विद्या प्राप्त करने के लिए बृहस्पति की शङ्कर से प्रार्थना करना—मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर बृहस्पति ने बड़ी शीघ्रता से मुझे प्रणाम किया और कहा—हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर कृपालु हैं तो उस सुदर्शन विद्या को मुझे भी प्रदान कीजिये ॥ १८-१९ ॥

शङ्करेण तस्मै तदुपदेशः

ततोऽहं महते तस्मै विद्यां प्रादां महात्मने ।

शङ्कर के द्वारा सुदर्शन मन्त्र का बृहस्पति को उपदेश—तब मैंने उस महान् महात्मा को वह विद्या प्रदान की ।

लब्धविद्येन बृहस्पतिना हिमवत्तटे तत्पुरश्चरणम्

तां लब्ध्वा परमप्रीतो जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ २० ॥

तस्मिञ्जजाप भगवान् मन्त्रमेतमनुत्तमम् ।

विद्या प्राप्त करने के उपरान्त बृहस्पति का हिमालय गमन—बृहस्पति सुदर्शन विद्या को प्राप्त कर हिमालय पहाड़ की ओर चले गए और वहीं रह कर इस मन्त्र का जप करने लगे ॥ २०-२१ ॥

बृहस्पतिना सुदर्शनसाक्षात्कारः

ततोऽस्य सन्निधिं चक्रे परमाश्चर्यरूपधृत् ॥ २१ ॥
चक्रवर्ती स भगवान् सौम्यरूपः सुदर्शनः ।

वृहस्पति का सुदर्शन का साक्षात्कार करना—फिर विचित्र रूप धारण करने वाले चक्रवर्त्ती एवंसौम्य रूप वाले उन सुदर्शन ने बृहस्पति को दर्शन दिया ॥ २१-२२ ॥

विस्मितेन बृहस्पतिना तस्य द्विभुजत्वकारणप्रश्नः

तं दृष्ट्वा दीप्तवपुषं प्रसन्नं कुङ्कुमप्रभम् ॥ २२ ॥
द्विभुजं सर्वभूतानामनुग्रहकरं परम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥ २३ ॥
पीतकौशेयवसनं नेत्रद्वयविराजितम् ।
आधारं सर्वशक्तीनामस्त्राणां च परंतपम् ॥ २४ ॥
तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः पप्रच्छ प्रणिपत्य सः ।
किमिदं भगवँल्लोके प्रथितोऽष्टभुजो भवान् ॥ २५ ॥
मनुष्यरूपसंस्थानः प्रादुरासीः पुरो मम ।

अत्यन्त विस्मित होकर बृहस्पति द्वारा दो भुजा धारण करने की जिज्ञासा विषयक प्रश्न—केशर के समान वर्ण वाले, देदीप्यमान, सर्वभूतों पर अनुग्रह दृष्टि रखने वाले, द्विभुज, शङ्ख एवं चक्र धारण करने वाले, दिव्य माला से विभूषित, पीताम्बर धारण किये हुए दो नेत्रों से विराजमान, सभी शक्तियों के तथा अस्त्रों के आधारभूत, शत्रुओं को ताप उत्पन्न करने वाले इस प्रकार के सुदर्शन को देखकर बृहस्पति आश्चर्य में पड़ गए। तदनन्तर प्रणाम कर उन्होंने पूछा—'हे भगवन् !' आप लोक में आठ भुजा वाले रूप से प्रसिद्ध हैं किन्तु मेरे सामने मनुष्य के समान दो भुजा धारण कर किस प्रकार प्रकट हुये हैं? ॥ २२-२६ ॥

सुदर्शनिन प्रतिवचनम्

श्रूयतामित्युपामन्त्र्य प्रत्युवाच सुदर्शनः ॥ २६ ॥

भगवान् सुदर्शन का उत्तर—तब सुदर्शन ने 'श्रूयताम्' ऐसा कहकर बृहस्पति को सम्बोधित करते हुये कहा ॥ २६ ॥

अनन्तेषु सौदर्शनव्यूहेषु चतुर्णां प्राधान्यम्

व्यूहाः सहस्रशः सन्ति मम क्लृप्ता यथेच्छया ।
तेषां प्रधानतो व्यूहाश्चत्वारो मम वाक्पते ॥ २७ ॥

अनन्त सुदर्शन के रूपों में केवल चार ही रूपों का प्राधान्य कथन—हे बृहस्पते !

ऐसे तो यथेच्छा परिकल्पित मेरे सहस्रों व्यूह हैं । किन्तु उनमें से केवल चार ही व्यूह प्रधान हैं ॥ २७ ॥

तेषां परिगणनम्

द्विभुजं प्रथमं विद्धि ततोऽष्टभुजमेव माम् ।
ततः षोडशहस्तं तु मां द्विषष्टिभुजं ततः ॥ २८ ॥

उनकी सङ्ख्या—प्रथम द्विभुज व्यूह, तदनन्तर आठ भुजा वाला व्यूह, तदनन्तर १६ भुजा वाला व्यूह, उसके पश्चात् ६२ भुजा वाला व्यूह है ॥ २८ ॥

व्यूहान्तराणामुपासकानुग्रहार्थत्वम्

व्यूहान्तराण्यनेकानि तान्युपासककामतः ।

ये व्यूह उपासकों के अनुग्रहार्थ हैं ऐसा कथन—ऐसे तो मेरे अनेक व्यूह है किन्तु वे उपासकों की इच्छा पर निर्भर हैं ॥ २९ ॥

व्यूहचतुष्टयस्य स्वाभाविकत्वं नित्यत्वं सात्त्विकत्वं च

स्वाभाविकमिदं रूपं नित्यमत्यन्तसात्त्विकम् ॥ २९ ॥
अपक्षयविनाशादिरहितं परमं मम ।

अन्येषामुपासकानुग्रहार्थत्वनिगमनम्

अन्यान्यनुग्रहार्थानि मच्चित्तानामिति स्थितिः ॥ ३० ॥

मात्र चार व्यूह ही स्वाभाविक, नित्य और सात्त्विक हैं इसका प्रतिपादन—मेरे ये चार व्यूह ही स्वाभाविक, नित्य और सात्त्विक रूप वाले हैं । ये व्यूह सर्वदा एक रस हैं। उनका अपक्षय और विनाश नहीं होता । अन्य व्यूह अपने भक्त उपासकों के अनुग्रहार्थ हैं ॥ २९-३० ॥

स्वस्यात्यद्भुतरूपान्तरास्तित्वप्रतिपादनम्

अन्यद्विश्वमयं रूपमदृष्टं देवदानवैः ।
अमीमांस्यममर्यादमचक्षुर्गोचरं स्वतः ॥ ३१ ॥
यथा देवो हृषीकेशस्तथाहमपि वाक्पते ।

इसके अतिरिक्त सुदर्शन का एक और अद्भुतरूप के अस्तित्व का प्रतिपादन—हे वाक्पते ! मेरा एक और विश्वमय व्यूह है, जिसे आज तक देव दानव नहीं देख पाये हैं, वह व्यूह अमीमांस्य (विचार से परे) मर्यादारहित और इन्द्रियों के प्रत्यक्ष से परे है । जैसे भगवान् का विश्वरूप है उसी प्रकार मेरा भी है ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिना तद्रूपदर्शनप्रार्थना

इत्युक्तवन्तं तं देवं सुदर्शनवपुर्धरम् ॥ ३२ ॥
प्रणिपत्याब्रवीदेनं वाक्पतिर्वदतां वरः ।
यत्ते विश्वमयं रूपमचाक्षुषमसीमकम् ॥ ३३ ॥
योगदृष्ट्या प्रपश्यामि तन्मे दर्शय साम्प्रतम् ।

बृहस्पति द्वारा उस रूप के दर्शन करने की इच्छा प्रगट करना—सुदर्शन रूप धारण करने वाले उन देव ने जब ऐसा कहा तब महा वाग्मी बृहस्पति ने प्रणाम कर उनसे कहा—हे प्रभो ! इन्द्रियों के सर्वथा परे और मर्यादा से सर्वथा बाहर जो आपका रूप है उसे मैं योगदृष्टि से देखना चाहता हूँ अतः आप उसे दिखाने की कृपा करे ॥ ३२-३४ ॥

भगवता जगच्चक्रात्मकस्वस्वरूपप्रदर्शनम्

भगवानपि विश्वात्मा स्वकीयं रूपमूर्जितम् ॥ ३४ ॥
दर्शयामास गुरवे योगारूढाय नारद ।
स विस्मितमना देवं वीक्षाञ्चक्रे पुरः स्थितम् ॥ ३५ ॥

भगवान् का जगत् का चक्रात्मक रूप धारण कर बृहस्पति को प्रदर्शित करना—तब हे नारद ! उन चक्रस्वरूपधारी विश्वात्मा भगवान् ने अत्यन्त तेजस्वी अपना विश्वरूप, योगस्वरूप में स्थित उन बृहस्पति को दिखाया । उन्होंने अपने समक्ष स्थित उस विश्वरूप को आश्चर्यचकित होकर देखा ॥ ३४-३५ ॥

तद्रूपवर्णनम्

विश्वोदराक्रान्तसुभीमदेह-
मपूर्वरूपं करणातिदूरम् ।
समुद्यदूर्जत्करशृङ्गसङ्गि-
परःसहस्राद्भुतचक्रमालम् ॥ ३६ ॥
पदावलम्बिस्फुरदण्डमाला-
विराजमानं स्थितमात्मभूम्नि ।
युगान्तकालज्वलितार्कजाल-
रुचिप्रभोत्तुङ्गकिरीटशोभम् ॥ ३७ ॥
महार्णवावर्तविघूर्णमान-
पिशङ्गनेत्रं सुरसङ्घजुष्टम् ।
विशुद्धदंष्ट्रान्तरलग्नलोकं
जगद् ग्रसन्तं भ्रुकुटीकरालम् ॥ ३८ ॥
शशाङ्कतारागणकीर्णविष्णु-
पदाभहाराङ्कितवक्षसं तम् ।
समुद्यदुज्जृम्भितदीप्तिमाल-
महास्त्रजालं धृतसर्वशस्त्रम् ॥ ३९ ॥
तेजोमयं दीप्तिकणायमान-
युगान्तकालार्कशशाङ्कवह्निम् ।
स्वदेहसम्पूर्णदिगन्तराल-
मलक्षितव्योममहीतलं च ॥ ४० ॥

विश्वरूप का वर्णन—भयङ्कर देह धारण कर जिन्होंने सारे विश्व को अपनी कुक्षि में समेट लिया है । जिनका अपूर्व रूप इन्द्रियों से परे है, जो प्रखर किरणों से युक्त उदयाचल पर उदीयमान सूर्य के समान सहस्रों से भी अधिक अद्भुत चक्रमाला धारण किये हुये हैं, पैरों के सहारे लटकने वाली ब्रह्माण्डमाला से जो विराजमान तथा स्वयं आत्मविभूति में स्थित, जिनके किरीट की शोभा प्रलयकालीन जलते हुये सूर्य समूहों के समान देदीप्यमान है, जो अपने पीले-पीले नेत्रों से समुद्र के आवर्त्त के समान घूर रहे हैं, जो देवगणों से सेवित हैं, जिनके चमकते हुये दाँतों के मध्य में स्थित संसार को दंष्ट्रा से लपेट कर ग्रस रहे हैं, जिनकी भ्रुकुटी अत्यन्त कराल है, जो चन्द्रमा एवं तारागणों से आकीर्ण हैं, जिनका तेज इतना प्रचण्ड है कि युगान्तकालीन सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि उसके एक कण के समान मालूम पड़ते हैं । उन्होंने अपने शरीर में ही सारे दिग्-दिगन्तों को समेट लिया है । जिसमें न तो आकाश का पता है और न पृथ्वी का ही—ऐसे विश्वरूप का बृहस्पति ने दर्शन किया ॥ ३६-४० ॥

अदृष्टपूर्वरूपदर्शनात् बृहस्पतेर्मोहाधिगमः

झणज्झणत्कारितनूपुरादि-
विभूषणारावविकीर्णविश्वम् ।
अदृष्टपूर्वं परमप्रमेयं
निरीक्ष्य चामूमुहदादिदेवम् ।

उस अदृष्टरूप विश्वरूप के देखते ही बृहस्पति को मूर्च्छा की प्राप्ति—नूपुरादि विभूषणों के झणझणात्मक शब्दों से विश्व को व्याप्त करने वाले, अदृष्टपूर्व, पर तथा अप्रमेय आदिदेव के उस रूप को देखते ही बृहस्पति मोह को प्राप्त हो गए ॥ ४१ ॥

लब्धसंज्ञेन तेन सुदर्शनस्तुतिः

ततः स संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रात्
तुष्टाव देवं धिषणो महात्मा ॥ ४१ ॥

मूर्च्छा हटने पर बृहस्पति की स्तुति—तदनन्तर बुद्धि के देवता साक्षात् महात्मा बृहस्पति कष्टपूर्वक मूर्च्छा से जागने पर देवाधिदेव की स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥

बृहस्पति कृता सुदर्शनस्य स्तुतिः

ओं नमो नमस्ते भगवन्नजय्य
सुदर्शन ज्ञानमयस्वरूप ।
सदा स्फुटाशेषसमस्तशक्ते
धृताखिलस्थावरजङ्गमाय ॥ ४२ ॥
अवार्यवीर्याय च भूरिधाम्ने
समस्तकल्याणगुणार्णवाय ।
विशुद्धतेजोमयमूर्तये ते
नमो नमश्चक्रवपुर्धराय ॥ ४३ ॥

नमो जयायातुलविक्रमाय
समाश्रितत्राणसुदीक्षिताय ।
सहस्रचक्राय सहस्रनाम्ने
नमः सहस्रारवपुर्धराय ॥ ४४ ॥
जगज्जनिस्थितिहरणैकहेतवे
भवार्णवोत्तरणसुनाविकाय ते ।
मरुद्गणप्रतिभटदैत्यदानव-
प्रमाथिने निभृतसुतेजसे नमः॥ ४५ ॥
मधुरिपुमनसो यथा यथा
प्रथमत एव मनीषितं विभो ।
तव पदसरसीरुहं यतो
जगति करोति मनीषितं तथा ॥ ४६ ॥

हे ज्ञानमय स्वरूप ! हे अजय्य भगवन् सुदर्शन ! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, अशेष समस्त शक्तियों से विराजमान स्थावर जङ्गमात्मक अखिल विश्व को धारण करने वाले, अप्रतिहत पराक्रम, महातेजस्वी, अनन्तकल्याण गुणगणों के समुद्र, विशुद्ध तेजोमय स्वरूप वाले, चक्रात्मक रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है आपको नमस्कार है। विजयी, अतुलनीय पराक्रम वाले, अपने आश्रितों के त्राण की दीक्षा ग्रहण करने वाले, सहस्र चक्र, सहस्र नाम तथा सहस्रों शरीर धारण करने वाले आपको नमस्कार है। इस जगत् के जन्म, स्थिति तथा विनाश में हेतुभूत, संसार रूपी समुद्र से पार करने के लिए उत्तम नाविक, देवताओं के शत्रु, समस्त दैत्य तथा दानवों का विनाश करने वाले तेज को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। विष्णु और सोचे हुये मनोरथ के आगे-आगे विद्यमान, हे विभो ! आपका चरण कमल सारे मनोरथों को पूर्ण कर देने वाला है ॥ ४२-४६ ॥

स्मृतिध्वस्ताशेषाश्रितजनमहापापनिचय-
प्रवाहागाधाब्धिप्लवचरणपङ्केरुहयुग ।
त्वदीयार्चिर्वारांनिधिकणकृतात्माङ्गदिनकृ-
च्छशाङ्कस्वाहेशस्तुतपरमधाम्ने नम इदम् ॥ ४७ ॥
जगत्कालसंवर्तचक्रात्मने ते
चतुर्वक्त्रमुख्यामरेड्याय नित्यम् ।
नमो नित्यगोविन्दसेवारसाप्ता-
तुलानन्दसंदोहपूर्णात्मने स्तात् ॥ ४८ ॥
सकलसुरास्त्रमुख्यसततस्मृतनैकजनि-
प्रभृतिमहापदाननिकरश्रुतिहृष्टमनः ।
सकलसुरासुरेशमणिमौलिमरीचिघटा-
घटितपदारविन्दयुगलाय नमो भवते ॥ ४९ ॥

कलामुहूर्तनाडिकाद्युपाधिकालहीन ते ।
नमः क्षयर्द्धिजन्मनाशवर्जितात्ममूर्तये ॥ ५० ॥
वन्दे वरेण्यमपि वाङ्मनसातिभूमि-
मस्पृष्टहेयगुणमाश्रितवत्सलं त्वाम् ।
अक्षीणपुण्यजनलभ्यमशेषवन्द्यं
विद्यामयं परमभौतिकदिव्यदेहम् ॥ ५१ ॥

हे प्रभो ! स्मृति ध्वस्त एवं अनेक आश्रितों का सहारा देने वाला तथा महापाप समूह प्रवाह रूपी अगाध समुद्र से पार करने के लिए नाव स्वरूप आपका दोनों चरण कमल हैं। आपके तेज रूपी समुद्र ने जिन्हें कण बना दिया है, ऐसे सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव के द्वारा स्तुत, परमधाम आपको हमारा नमस्कार है । जगत् के संहार के लिए कालसंवर्त्तक रूप चक्रात्मा वाले तथा ब्रह्मदेव आदि मुख्य-मुख्य देवताओं से भी संस्तुत आपको नित्य नमस्कार है । गोविन्द की सेवा रूपी रस से अतुलनीय आनन्दसंदोह को प्राप्त करने वाले, अतएव पूर्णात्मा आपको हमारा नमस्कार प्राप्त हो । सम्पूर्ण देवता के और असुरों में प्रधान लोगों से सर्वदा स्मरण किये जाने वाले, विशुद्धिकारक वेद मन्त्रों को सुनकर अनेक जन्म के लिए उस पर प्रसन्न रहने वाले आप, जिनके युगल पादारविन्द सम्पूर्ण देवता, असुर एवं ईश आदि के मौलिस्थ मुकुटों में लगी मणियों के प्रभासमूह से घृष्ट हो रहे हैं, उन्हें मेरा नमस्कार हो, कला, मुहूर्त्त नाडिकादि उपाधि वाले काल से रहित (अनन्त आयुः परिमाण वाले) आपको नमस्कार है । क्षय, वृद्धि तथा विनाश वाली अवस्थाओं से सर्वथा वर्जित आत्ममूर्ति आपको नमस्कार है । जो वरेण्य होते हुये भी वाङ्मन से परे हैं उन्हें नमस्कार है । हेय गुणों से सर्वथा रहित एवं शरणागतवत्सल आपको नमस्कार है, अक्षीण पुण्यवानों से उपलब्ध होने वाले, अशेष वन्द्य, विद्यामय, पर, अभौतिक दिव्य देह वाले आपको नमस्कार है ॥ ४७-५१ ॥

तद्रूपोपसंहरणप्रार्थना

त्वां तत्त्वतो न विदुरीश जगत्यमुष्मिन्
मर्त्येषु नैव विबुधेषु न चापरेषु ।
वेदाः परं विदुरतोऽप्युपसंहराद्य
रूपं भयावहमदृष्टचरं प्रसीद ॥ ५२ ॥

विश्वरूप के उपसंहार के लिए बृहस्पति की प्रार्थना—हे ईश ! इस जगत् में मनुष्यों में, देवताओं में तथा अन्यों में आपके स्वरूप को तत्त्वतः कोई भी नहीं जानता, केवल वेद ही एकमात्र आपके रूप को जानते हैं । अतः भयावह एवं पूर्व में कभी न देखे हुये इस रूप का हे देव ! उपसंहार करिए तथा मुझ पर प्रसन्न होइए ॥ ५२ ॥

सुदर्शनिनाष्टभुजेन भूत्वा स्वस्वरूपस्यातिगुह्यत्वकथनम्

इत्युक्तस्तेन गुरुणा भगवांश्चक्ररूपधृत् ।
आविर्बभूव तस्याग्रे तदा ह्यष्टभुजः प्रभुः ॥ ५३ ॥

प्रसन्नवदनः श्रीमान् व्याजहार गुरुं तदा ।
तदेतद् दर्शितं रूपमदृष्टं देवदानवैः ॥ ५४ ॥
सत्यं मां न परो वेत्ति विना देवं जनार्दनम् ।

सुदर्शन द्वारा आठ भुजाओं का रूप धारण कर अपने विश्व रूप का अत्यन्त गुह्यत्व कथन—बृहस्पति के द्वारा ऐसा कहे जाने पर चक्र सुदर्शन रूपधारी भगवान् अपना विश्वरूप त्याग कर आठ भुजा वाला रूप धारण कर उनके आगे प्रगट हो गए । तदनन्तर प्रसन्नमुख हो बृहस्पति से इस प्रकार कहा—हे बृहस्पते ! मैंने देव दानवों को दिखाई न पड़ने वाले अपने इस विश्वरूप को आपको दिखा दिया । यह बात सत्य ही है कि जनार्दन विष्णु के अतिरिक्त मेरे स्वरूप को तत्त्वतः कोई भी नहीं जानता ॥ ५३-५५ ॥

सुदर्शनस्य भगवत्क्रियाशक्तिस्वरूपत्वनिरूपणम्

गुह्यमेतत् क्रियाशक्तिरहं देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ५५ ॥
अतस्तत्कार्यमखिलं मयैव क्रियते मुने ।
जगज्जन्मादि सकलमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनस्वरूपप्रदर्शनं नाम चतुश्चत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २७७२ ॥

* * *

सुदर्शन का अपने को भगवान् की क्रियाशक्ति के रूप में बतलाना—यह बात सर्वथा गोपनीय है कि मैं विष्णु की क्रियाशक्ति हूँ । इसीलिए हे मुने ! उनका जगत् जन्मादि सारा कार्य मैं ही सम्पन्न करता हूँ । इतना कह कर सुदर्शन अन्तर्धान हो गए ॥ ५५-५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शन-स्वरूपप्रदर्शन नामक चौवालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४४ ॥

* * *

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कुशध्वजोपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

अध्यात्मविद्यादिविषयकः प्रश्नः

नारदः—

भगवन्निदमाख्यातं पुरस्तात् परमेश्वर ।
अध्यात्मविद्याविद्या च परविद्या स्वरूपतः ॥ १ ॥
ताभिः किं साध्यते देव ताभिः किं वा निवर्त्यते ।
त्वमेवैतद्विजानासि तन्ममाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥

अध्यात्म के विषय में श्रीनारद का प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे परमेश्वर ! हे भगवन् ! आपने पूर्व में अध्याम विद्या, अविद्या और परविद्या ये तीन विद्यायें कहीं थीं । हे देव ! अब मुझे उनका स्वरूप बताते हुये कहिये कि उनसे क्या सिद्ध होता है? तथा क्या निवृत्त होता है? केवल आप ही इस बात को जानते हैं । अतः विस्तार पूर्वक कहिये ॥ १-२ ॥

अविद्याकार्यनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

परमं गुह्यमेतत् ते कथयामि यथा शृणु ।
अविद्यया परं रूपं जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ३ ॥
संछाद्यते तयोस्तत्त्ववेदनं तु निवर्त्यते ।

अविद्या के कार्य का निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह परम गुह्य (गोपनीय) है । फिर भी कहता हूँ, हे नारद ! सुनिए । अविद्या ने जीवात्मा तथा परमात्मा के रूप को आच्छादित कर रखा है । जब जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब वह अविद्या से निवृत्त हो जाता है ॥ ३-४ ॥

अध्यात्मज्ञानकार्यनिरूपणम्

अध्यात्मयोगाधिगमात् परं ज्ञानं प्रजायते ॥ ४ ॥
निवर्त्यते तथानादिः संसारो बन्धनात्मकः ।

अध्यात्म ज्ञान का कार्य निरूपण—अध्यात्म योग के ज्ञान से परब्रह्मविषयक ज्ञान होता है । जब उसकी सिद्धि होने लगती है तब यह अनादि संसार, जिसका एक नाम बन्ध हैं, अपने आप निवृत्त हो जाता है ॥ ४-५ ॥

परविद्याकार्यनिरूपणम्

परस्वरूपविज्ञानादपुनर्भवलक्षणा ॥ ५ ॥
साध्यते परमा मुक्तिः सदानन्दफलानघ ।
अनादिकालसिद्धानि प्राक्तनान्यमुना मुने ॥ ६ ॥
भविष्याणि च कर्माणि निरस्यन्ते सवासनम् ।

पर विद्या के कार्य का निरूपण—हे निष्पाप ! परविद्या (ब्रह्म) का स्वरूपतः ज्ञान हो जाने पर जनन, मरण और क्लेशरहित सदानन्द फल वाली श्रेष्ठ मुक्ति की प्राप्ति होती हैं । हे मुने ! इस विद्या के सिद्ध हो जाने पर वासनावशात् अनादिकाल से सिद्ध पूर्वजन्मार्जित तथा भविष्य में होने वाले सारे कर्मो का अपने आप निरास हो जाता है ॥ ५-७ ॥

प्रारब्धकर्मणां भोगैकनाश्यत्वम्

न विनश्यति भोगेन विना प्रारब्धकर्म यत् ॥ ७ ॥
एतत् सर्वं समासेन भवतः कथितं मया ।

प्रारब्ध कर्म के भोग से ही नाश सम्भव है—किन्तु जो प्रारब्ध कर्म हैं, उनके भोग के विना नाश सम्भव नहीं है । हे नारद ! हमने संक्षेप में आपके प्रश्नों का उत्तर दे दिया ।

प्रारब्धकर्मविनाशककर्मविशेषसदसद्भावप्रश्नः

नारदः—

प्रारब्धकर्म भगवन् नाश्यते केन कर्मणा ॥ ८ ॥
न विनश्यति वा किंस्विदेतत् केनापि कर्मणा ।

प्रारब्ध कर्म के विनाशक कर्म का सदसद्भाव विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! अब आप यह बताइये कि प्रारब्ध कर्म किस प्रकार के कर्म से नष्ट किये जाते हैं, अथवा यह किसी भी प्रकार के कर्म से कथंचित् विनष्ट नहीं होते? ॥ ८-९ ॥

तत्प्रतिविवक्षया कुशध्वजेतिहासोदाहरणम्

अहिर्बुध्न्यः—

त्रेतायुगे पुरावृत्तमितिहासमिमं शृणु ॥ ९ ॥
आसीत् कुशध्वजो नाम जनकेषु महीपतिः ।
ब्रह्मवित् परमोदारः प्रजापालनतत्परः ॥ १० ॥

उस उत्तर के विषय में कुशध्वज का इतिहास कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! त्रेतायुग में घटित इस इतिहास को सुनिए । पूर्वकाल में जनक के कुल में कुशध्वज नाम के राजा हुए । वे ब्रह्मवेत्ता, परम उदार तथा प्रजापालन में तत्पर थे ॥९-१०॥

कुशध्वजस्य महामोहेन भृशं पीडा

तस्य भूमण्डलं सर्वं शासतः पृथिवीपतेः ।
एकदा तु महामोहः प्रादुरासाङ्गतापनः ॥ ११ ॥
कल्पान्तरं भृशं तेन पीडितोऽपि महीपतिः ।
यास्यतीति स्वयं नैनं व्यजीगणदमित्रहा ॥ १२ ॥

कुशध्वज को महामोह से उत्पन्न अत्यन्त पीड़ा—समस्त भूमण्डल का शासन करते हुये एक वार उस राजा के अङ्ग को उतप्त करने वाला महामोह उत्पन्न हुआ । कल्पान्त तक उस महामोह से अत्यन्त पीड़ित होकर भी 'यह अवश्य चला जायगा' ऐसा विचार कर राजा उसकी उपेक्षा करते रहे ॥ ११-१२ ॥

उदासीनस्यापि तस्य मुहुर्मुहुः पीडातिशयः

पुनश्च पीडितस्तेन वारं वारं विशां पतिः ।

उसकी उपेक्षा करते रहने पर भी राजा को बारम्बार अत्यन्त पीड़ा होने लगना—तब राजा उस महामोह से बारम्बार पीड़ित रहने लगे ॥ १३ ॥

नितरां पीडितस्य तस्य चिन्ताप्रकारः

अचिन्तयत् तदा चेत्थमयमाकस्मिको बली ॥ १३ ॥
मुहुरध्यात्मनिरतं बाधते मामनाथवत् ।
न शाम्यति स्वयं केन कारणेनैतदागतम् ॥ १४ ॥

अत्यन्त पीड़ा से पीड़ित राजा का विचार करना—राजा ने विचार किया कि अकस्मात् प्राप्त होने वाला यह रोग महा बलवान् है, जो अध्यात्मनिरत मुझे भी अनाथ की तरह बारम्बार पीड़ा दे रहा है । यह आया हुआ रोग स्वयं शान्त क्यों नहीं हो रहा है? ॥ १३-१४ ॥

तस्य स्वकुलगुरुयाज्ञवल्क्याभिगमनम्

इति चिन्तापरो राजा जगाम गुरुमन्दिरम् ।
ब्रह्मघोषयुतं पुण्यं हविर्धूमाधिवासितम् ॥ १५ ॥
प्रविश्यान्तः समासीनमग्न्यगारे तपोनिधिम् ।
ब्रह्मविद्भिः परिवृतं विवस्वन्तमिवापरम् ॥ १६ ॥
याज्ञवल्क्यं कुलगुरुं ददर्श विनयान्वितः ।

उन राजा का अपने कुलगुरु याज्ञवल्क्य के पास जाना—ऐसी चिन्ता करते हुये राजा अपने कुलगुरु के घर गए जहाँ निरन्तर ब्रह्मघोष हो रहा था तथा पवित्र हविर्धूम से जो आश्रम सुगन्धित था । तदनन्तर उस विनयी राजा ने आश्रम के अन्दर प्रविष्ट होकर अपने

कुलगुरु महातपस्वी याज्ञवल्क्य का दर्शन किया जो अपने अग्निहोत्र में समासीन थे, ब्रह्मवेत्ताओं से घिरे हुए थे एवं एक दूसरे सूर्य के समान भासित हो रहे थे ॥ १५-१७ ॥

कुशध्वजेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम्

तं प्रणम्य महात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥
त्वत्त एव मया विद्या परा प्राप्ता तथापरा ।
परविद्यानलेनैव दग्धं कर्माखिलं मम ॥ १८ ॥
पूर्वापरं विना कर्म प्रारब्धमिति च श्रुतम् ।
राज्यलाभः फलं प्राप्तं प्रारब्धस्य तु कर्मणः ॥ १९ ॥
इति मे वर्तमानस्य दुःसहः स्मृतिभञ्जनः ।
प्रावर्तत महामोहो मद्गात्रपरितापनः ॥ २० ॥
केनैतदागतं कष्टं केन वा शंस शाम्यति ।

कुशध्वज का स्ववृत्तान्त निवेदन—उस राजा ने महात्मा याज्ञवल्क्य को प्रणाम कर ऐसा कहा—हे भगवन् ! मैंने आपसे ही परा एवं अपरा दोनों विद्यायें प्राप्त की हैं । पराविद्या रूपी अग्नि से मेरे सारे पूर्वजन्म के तथा अन्य जन्मों के कर्म नष्ट हो गए हैं । मात्र प्रारब्ध कर्म का विनाश नहीं हुआ है, ऐसा हमने सुना है । वर्त्तमान काल में प्राप्त हुआ राज्य लाभ मेरे प्रारब्ध कर्म का ही फल है । कर्मों के नष्ट हो जाने पर भी अत्यन्त दुःसह स्मृति का लोप करने वाला तथा सारे अङ्गों को उत्तप्त कर देने वाला यह कष्टकारक महामोह किस कारण से आया ? हे भगवन् ! इसकी शान्ति का उपाय क्या है ? इसे बताइये ? ॥ १७-२१ ॥

याज्ञवल्क्यस्य प्रतिवचनम्

तेनैवमुक्तो भगवान् व्याजहार कुशध्वजम् ॥ २१ ॥

याज्ञवल्क्य का उत्तर—राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महर्षि ने कुशध्वज से कहा ॥ २१ ॥

शरीरसृष्टेः फलभोगार्थत्वम्

सुखदुःखोपभोगाय देहिनां देहकल्पनम् ।

शरीर की उत्पत्ति कर्मों के फल भोगने के लिए ही हुई है—जीव को कर्म के फल स्वरूप सुख तथा दुःख भोगने के लिए शरीर की प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

ब्रह्मविच्छरीरस्यापि तथात्वम्

अपि ब्रह्मविदां देहस्तथैवेत्यवधारय ॥ २२ ॥
तत् तवापि शरीरेण भोक्तव्यं कर्मणः फलम् ।
क्रियन्ते यानि कर्माणि शरीरेण तवापि तु ॥ २३ ॥
तेषां फलानि भुज्यन्ते केवलं न कदाचन ।

ब्रह्मवेत्ता को भी शरीर प्राप्त करने में यही हेतु है—हे राजन् ! ब्रह्मवेत्ता को भी शरीर इसी कारण से मिलता है । इसलिए आपको भी इस शरीर से कर्म का फल भोगना

चाहिए । जीव जो-जो कर्म करता है उसका फल उसे भोगना ही पड़ता है । केवल आपको ही ऐसा करना पड़ रहा है, यह बात नहीं ॥ २२-२४ ॥

महामोहस्य पापफलत्वम्

अतः पापफलं विद्धि प्राप्तमेतन्महीपते ॥ २४ ॥

महामोह आपके पाप के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है—अत: हे राजन् ! आपको जो ऐसा हो रहा है, उसे आप अपने पाप कर्म का फल समझो ॥ २४ ॥

तत्कारणभूतपापनिरूपणप्रतिज्ञा

शृणु येनागतो मोहस्तत्त्वतः कथयाम्यहम् ।
उन्मादश्च महोन्मादश्चित्ताक्षेपश्च मूर्छना ॥ २५ ॥
संज्ञान्तकारी विक्षोभः प्रलापी स्मृतिभञ्जकः ।
अष्टौ दोषा महापापैर्जायन्ते प्राणिहिंसकाः ॥ २६ ॥

मोह रूपी दु:ख के प्राप्त होने में उसके कारणभूत पाप का निरूपण—जिस कारण से आपको यह महामोह प्राप्त हुआ है उसका ठीक-ठीक कारण मैं आपसे कह रहा हूँ, उसे सुनिए । उन्माद, महोन्माद, चित्ताक्षेप, मूर्च्छना, संज्ञान्तकारी, विक्षोभ, प्रलाप तथा मूर्च्छना ये आठ दोष महा पाप से उत्पन्न होते हैं जो प्राणियों की जान ले लेते हैं ॥ २५-२३ ॥

राज्ञामुन्मादादिदोषोत्पत्तिकारणनिरूपणम्

ब्रह्मघ्नादण्डनविधेरसत्ये सत्यतामतेः ।
स्वाराध्यदेवताबिम्बोपेक्षणान्नृपतेर्वधात् ॥ २७ ॥
ब्रह्मदेयापहारेण ब्राह्मणातङ्कनिर्मितेः ।
मर्यादाभङ्गकरणादगम्यागमनादपि ॥ २८ ॥
एतैर्नृपाणां जायन्ते दोषास्ते कारणैर्नृप ।

राजा को उन्मादादि दोष उत्पन्न होने के कारण का निरूपण—ब्रह्महत्यारे को दण्ड न देना, असत्य को सत्य मान लेना, स्वाराध्य देवता की मूर्ति की उपेक्षा, राजा की हत्या, ब्रह्मदेव का अपहरण, ब्राह्मण को आतङ्क उत्पन्न करना, मर्यादा का लोप तथा अगम्यागमन इन्हीं कारणों से राजा को पाप रूप दोष उत्पन्न होता है ॥ २७-२९ ॥

युद्धादन्यत्र राजवधात् कुशध्वजस्य महामोहप्राप्तिकथनम्

अयुद्धे न्यवधीः पूर्वं महाराजं सुधार्मिकम् ॥ २९ ॥
एतद्देहोपभोग्येन पापेनानेन भूपते ।
प्राप्तेयं मूर्छना पापा भवन्तं भयदायिनी ॥ ३० ॥

कुशध्वज को युद्ध के बिना ही राजा का वध करने से महामोह की प्राप्ति—पूर्वकाल में आपने युद्ध के बिना ही सुधार्मिक महाराज का वध किया है । हे राजन् ! उस पाप का फल आपको इसी देह से भोगना पड़ेगा । इसी कारण यह भयदायिनी पाप मूर्च्छना आपको प्राप्त हुई है ॥ २९-३० ॥

सुदर्शनमहिम्नाष्टानामपि दोषाणां निश्चयेन नाश्यत्वम्

सौदर्शनप्रभावेण दोषाश्चाष्टविधा अमी ।
विनश्यन्ति न सन्देहस्तेन तच्च प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

सुदर्शन की महिमा से ये आठों दोष निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं—सुदर्शन के प्रभाव से ये आठों प्रकार के दोष (पाप) नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं । इसलिए उसी से आपका यह पाप भी नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥

सुदर्शनप्रसादसम्पादनयत्नोपदेशः

अतस्तत्साधने यत्नं कुरुष्वाङ्ग विचारयन् ।

सुदर्शन को प्रसन्न करने के उपाय का उपदेश—इसलिए हे प्रिय राजन् ! सुदर्शन को प्रसन्न करने का प्रयत्न विचारपूर्वक करिए ॥ ३२ ॥

प्रथमं मण्डपादिनिर्माणम्

प्रथमं मण्डपं तुङ्गं सर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ३२ ॥
वहुस्तम्भसमाकीर्णं तुङ्गतोरणमण्डितम् ।
शुक्लक्षौमवितानाढ्यं किङ्किणीजालभूषितम् ॥ ३३ ॥
बहुध्वजसमाकीर्णं पताकाभिरलङ्कृतम् ।
मुक्तादामसमाकीर्णं बहुमाल्यपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥
क्षौमाभिवेष्टितस्तम्भं दीपिकासमलङ्कृतम् ।
षट्त्रिंशत्पदविस्तारं चतुःपञ्चाशता पदैः ॥ ३५ ॥
आयामैः संमितं रम्यं मङ्गलाष्टकसंयुतम् ।
चन्दनागरुधूपेन वासितं विश्वतः शिवम् ॥ ३६ ॥

सर्वप्रथम मण्डपादि निर्माण—सर्वप्रथम ऊँचे मण्डप का निर्माण करना चाहिए जो सभी माङ्गलिक द्रव्यों से युक्त हो, जिसमें वहुत से खम्भे हों, ऊँचे-ऊँचे तोरणों से जो सुसज्जित हो, जिसमें शुक्ल वर्ण के वस्त्र निर्मित वितान हों, जो क्षुद्र घण्टिकाओं के समूह से भूषित हो, जो अनेक ध्वजाओं से व्याप्त हो तथा पताकाओं से अलङ्कृत हो, जिसके चारों ओर मोतियों की झालर हो तथा वहुत से पुष्पों की माला से जो परिष्कृत हो, जिसके खम्भों में वस्त्र लपेटे गए हों और दीपकों से जो अलङ्कृत हो, जिसका विस्तार ३६ हाथ तथा लम्बाई ५४ हाथ हो, जो अत्यन्त मनोहर तथा अष्टमङ्गल से युक्त हो, चन्दन, अगुरु तथा धूप के गन्ध से सुवासित हो और चारों ओर कल्याणकारक द्रव्यों से परिपूर्ण हो ॥ ३२-३६ ॥

सरस्वतीतीरे मण्डपनिर्माणविधिः

एवमेव सरस्वत्यास्तटे शुद्धे पुराद् बहिः ।
शीघ्रं कारय कल्याण मा भैषीर्मा विचारणा ॥ ३७ ॥

सरस्वती के किनारे मण्डप निर्माण का विधान—हे कल्याण ! हमें इस प्रकार का

मण्डप आप नगर के बाहर सरस्वती के तट पर शीघ्र प्राप्त कराओ, अब डरो मत। विचार की आवश्यकता नहीं है ॥ ३७ ॥

तत्र स्वागमनप्रतिज्ञा

तत्रैव चागमिष्यामि करिष्ये कर्म शान्तिकम्।

वहाँ पर अपने आने की प्रतिज्ञा—मैं वहीं आऊँगा और शान्ति कर्म करूँगा ॥३८॥

यथोपदेशं राज्ञोऽनुष्ठानम्

एवमुक्तवति प्राज्ञे गुरौ राजा विनिर्ययौ ॥ ३८ ॥
ततः स परमप्रीतः समाहूय च किङ्करान्।
यथोक्तलक्षणं तत्र मण्डपं समकारयत् ॥ ३९ ॥

महर्षि के उपदेश के अनुसार राजा की तैयारी का वर्णन—महाबुद्धिमान् गुरु याज्ञवल्क्य द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा वहाँ से चले आये। तदनन्तर सेवकों को बुलाकर महर्षि द्वारा उपदिष्ट उपर्युक्त लक्षण युक्त मण्डप का निर्माण करवाया ॥३८-३९॥

याज्ञवल्क्यस्य तन्मण्डपगमनम्

स्वप्रभावेण तद्दोषं शक्तः शमयितुं मुनिः।
तथापि राजधर्मोऽयमिति बुद्ध्या विचिन्त्य सः ॥ ४० ॥
जगाम मण्डपं तत्र शुक्लपक्षे शुभे दिने।

याज्ञवल्क्य का मण्डप में पदार्पण—यद्यपि महर्षि अपने प्रभाव से राजा के महामोह रूप दोष को नष्ट करने में समर्थ थे। फिर भी 'यह राजधर्म है' ऐसा बुद्धि से विचार कर वे शुक्लपक्ष में तथा शुभ दिन में मण्डप में गए ॥ ४०-४१ ॥

मण्डपस्य पश्चिमभागे राजासनकल्पनम्

शिल्पिनः स समाहूय राजासनमकल्पयत् ॥ ४१ ॥
अस्य पश्चिमदिग्भागे तृतीये समलङ्कृते।

मण्डप के पश्चिम भाग में राजा के बैठने के लिए आसन का निर्माण—उन्होंने कारीगरों को बुलाकर मण्डप के तृतीय पश्चिम दिशा में अलङ्कृत स्थान पर राजा के बैठने योग्य आसन का निर्माण करवाया ॥ ४१-४२ ॥

प्राग्भागद्वयमध्ये होमकुण्डकल्पनम्

प्राग्भागद्वयमध्येऽस्य होमकुण्डान्यकारयत् ॥ ४२ ॥
विमानलक्षणोपेतवेदिकास्थलमूर्धसु।
चक्राकृतीनि कुण्डानि कल्पयामास सादरम् ॥ ४३ ॥

प्रथम दो भाग के मध्य होमकुण्ड का विधान—मण्डप के पूर्व दिशा के दो भाग में होम कुण्ड का निर्माण कर विमान के लक्षणों से युक्त वेदिका स्थल के शिरोभाग में चक्र की आकृति वाले कुण्डों का निर्माण करवाया ॥ ४२-४३ ॥

मध्ये अष्टदिक्षु च कुण्डकल्पना

तादृशं कुण्डयुग्मं तु मध्ये कृत्वा ततो बहिः ।
अष्टासु दिक्षु कुण्डानि तथैव समकारयत् ॥ ४४ ॥

मध्य में तथा आठों दिशाओं में कुण्ड निर्माण—मण्डप के मध्य भाग में दो कुण्ड का निर्माण करवा कर उसके बाहर आठों दिशाओं में उसी प्रकार (चक्राकार) कुण्ड बनवाया ॥ ४४ ॥

प्रतिकुण्डमेकैकस्य, मध्ये द्वयोश्च कुम्भयोः स्थापनम्

प्रतिकुण्डं परिस्तीर्य कलमान् भारसंमितान् ।
स्थापयामास कुण्डानां पूर्वपार्श्वेषु सर्वतः ॥ ४५ ॥
कुम्भानि राजतान्यष्टौ सौवर्णे मध्यमे उभे ।
गन्धतोयेन पूर्णानि नवरत्नयुतानि च ॥ ४६ ॥

प्रत्येक कुण्ड पर एक-एक तथा मध्य के दो कुण्डों पर दो कलशों का स्थापन करना—प्रत्येक कुण्ड के पूर्वभाग में सर्वत्र भार परिमाण का चावल बिछा कर आठ चाँदी के कुम्भ तथा मध्य के दो कुण्डों पर दो सुवर्ण के कलश स्थापित करवाये जो सुगन्धित जल से तथा नव रत्न से परिपूर्ण थे ॥ ४५-४६ ॥

याज्ञवल्क्येन स्वयं कुम्भार्चनम्

ततः स्वयं मुनिः सार्धं शतानन्देन धीमता ।
क्षौमैस्तन्तुभिरावेष्ट्य गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ॥ ४७ ॥
अलङ्कृत्य च कुम्भेषु देवमावाह्य सादरम् ।
अर्चयामास मन्त्रेण धूपदीपप्रसूनकैः ॥ ४८ ॥

याज्ञवल्क्य द्वारा स्वयं कुम्भ का अर्चन—तदनन्तर मुनि ने स्वयं महाबुद्धिमान् शतानन्द के साथ उन कलशों में वस्त्रों एवं तन्तुओं को लपेट कर गन्ध, पुष्प और अक्षतों से कलश को अलङ्कृत कर उन कुम्भों पर तत्तद् देवताओं का आवाहन कर मन्त्रोच्चारण करते हुये धूप-दीप तथा पुष्पों से उनकी अर्चना की ॥ ४७-४८ ॥

यन्त्रप्रतिष्ठाविलेखनादि

महायन्त्रं प्रतिष्ठाप्य मध्ये कुम्भद्वयं गुरुः ।
देवं विना महायन्त्रं सर्वमन्त्रसमन्वितम् ॥ ४९ ॥
पटे विलिख्य पूर्वोक्तं सर्वदिव्यास्त्रसंयुतम् ।
राजासने विकीर्यैतत् ततस्तत् सोत्तरच्छदम् ॥ ५० ॥
आरोपयामास तदा राजानममितौजसम् ।
स यन्त्रपटसंयुक्तं वितानं तस्य चाकरोत् ॥ ५१ ॥
निर्माय च सुवर्णेन मणिजालपरिष्कृतम् ।
यथोक्तलक्षणं यन्त्रं दर्पणे च न्यवेशयत् ॥ ५२ ॥

तथैव गोरोचनया भूर्जपत्रे सुसंस्कृते ।
सुवर्णसूच्या संलिख्य यन्त्रं दिव्यास्त्रवर्जितम् ॥ ५३ ॥
शिरस्यधारयद्राज्ञो यन्त्रमेतत् सुमन्त्रितम् ।
सौदर्शनेन तिलकं भस्मना चाप्यकारयत् ॥ ५४ ॥
ततश्चाष्टौ समाहूय ऋत्विजो मन्त्रनिष्ठितान् ।
संयतान् वैष्णवान् विप्रान् दिशाकुण्डेष्वयोजयत् ॥ ५५ ॥
ततो यवनिकां कृत्वा मण्डपस्य समन्ततः ।
अलङ्कृतेषु कुण्डेषु सौवर्णैश्च परिच्छदैः ॥ ५६ ॥
विधाय विहितं पूर्वमृत्विग्भिः सहितो गुरुः ।
शतानन्देन सहितो जुहाव ज्वलितेषु सः ॥ ५७ ॥

यन्त्र प्रतिष्ठा विलेखनादि कथन—गुरु याज्ञवल्क्य ने दोनों मध्य के कुम्भ पर सुदर्शन के बिना सर्वमन्त्र से युक्त महायन्त्र की स्थापना की । फिर पूर्वोक्त प्रकार का सर्वदिव्यास्त्र समन्वित महायन्त्र पट पर लिख कर राजासन पर उसे फैला कर बिछा दिया । फिर उस पर महातेजस्वी राजा को बैठाया । इसी प्रकार पट पर यन्त्र बनाकर राजा के शिर पर वितान (=चँदोवा) के समान लगवा दिया । तदनन्तर सुवर्ण निर्मित, मणिजालपरिष्कृत यथोक्तलक्षण यन्त्र बनाकर उसे शीशे पर स्थापित किया । फिर भोजपत्र पर गोरोचन से सुर्वण की सूई द्वारा वही यन्त्र जो दिव्यास्त्र से रहित था उसे मन्त्राभिषिक्त कर राजा के शिर पर स्थापित किया और सुदर्शन यन्त्र के भस्म से राजा को तिलक करवाया । तदनन्तर मन्त्र वेत्ता आठ ब्राह्मणों को जो सदाचार युक्त तथा शुद्ध वैष्णव थे, आठों दिशाओं के आठ कुण्डों पर उन्हें नियुक्त किया । मण्डप के चारों ओर परदा लगवा कर सभी अलङ्कृत कलशों के ऊपर सौवर्ण का परिच्छद बनवा कर ऋत्विजों तथा शतानन्द के साथ याज्ञवल्क्य ने जलती हुई अग्नि में हवन किया ॥ ४९-५७ ॥

नृत्तवादित्रसंयुक्तं ब्रह्मघोषसमायुतम् ।
पुण्याहं पूर्वमकरोद्धोमकर्म समाहितः ॥ ५८ ॥
प्रधानकर्मणो युक्तौ शतानन्दो गुरुस्तथा ।
दिशाहोमेषु संयुक्ता ऋत्विजः सर्व एव ते ॥ ५९ ॥
आज्यैर्विशुद्धैर्नियुतं होमान् सङ्कल्प्य सादरम् ।
अकरोदयुतं नित्यमेवं दशदिनं कृतम् ॥ ६० ॥
गुरुणानुदिनं स्नातो मन्त्रितैः कुम्भवारिभिः ।
मुक्तग्रहो विशुद्धात्मा विज्वरः प्रीतमानसः ॥ ६१ ॥

सर्वप्रथम गाने बजाने एवं ब्रह्मघोष के साथ पुण्याहवाचन किया । तदनन्तर याज्ञवल्क्य तथा शतानन्द ने प्रधान कर्म वाले होम का तथा दिशाओं के होम के लिए आठों ऋत्विजों को संयुक्त कर विशुद्ध आज्य से नियुत होम और एक लक्ष होम का सङ्कल्प किया । फिर प्रतिदिन अयुत (दश हजार) सङ्ख्या में होम करने लगे । इस प्रकार

दश दिन में नियुत सङ्ख्याक होम की पूर्त्ति हो गई । गुरु के द्वारा प्रतिदिन मन्त्रों से अभिमन्त्रित कुम्भजल से स्नान करने के पश्चात् (दशवें दिन) राजा ग्रह मुक्त हो गए । ज्वररहित पाप से विशुद्ध तथा परम प्रसन्न हो गए ॥ ५८-६१ ॥

पूर्णे दशदिने राजा रत्नैर्बहुसुवर्णकैः ।
आराधयामास गुरुं मण्डपं सपरिच्छदम् ॥ ६२ ॥
निवेद्य गुरवे सर्वानृत्विजः समतर्पयत् ।
धनैश्च बहुभिर्धान्यैः प्रतिष्ठाभिः समाहितः ॥ ६३ ॥
प्रशशास महीमेनां दिवि देवेन्द्रवत् सुधीः ।
अन्येषामपि भूतानामयमेव विधिः स्मृतः ॥ ६४ ॥
पञ्चाशन्नियुतैर्होमैर्द्वापरे स विधीयते ।
कलौ च कोटिहोमेन विधिरेष महीक्षिताम् ।
प्रारब्धमेवं भोक्तव्यं कर्म ब्रह्मविदामपि ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां कुशध्वजोपाख्यानवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २८३७ ॥

* * *

दश दिन पूर्ण हो जाने पर बहुत से रत्न तथा बहुत से सुवर्णों द्वारा गुरु की पूजा की । फिर सारी सामग्री से युक्त मण्डप भी गुरु को प्रदान कर दिया । तदनन्तर प्रतिष्ठा के साथ बहुत धन एवं बहुत सा धान्य देकर उन्होंने ऋत्विजों को सन्तुष्ट किया । वे स्वर्ग में इन्द्र के समान इस पृथ्वी का शासन करने लगे । हे नारद ! अन्य प्राणियों के लिए भी शान्ति का यही विधान है । राजाओं के लिए द्वापर में पचास नियुत होम का विधान है तथा कलि में करोड़ सङ्ख्याक होम का विधान है । इस प्रकार ब्रह्मवेत्ताओं को भी प्रारब्ध कर्म भोगना पड़ता है ॥ ६२-६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के कुशध्वज उपाख्यान नामक पैंतालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४५ ॥

* * *

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुदर्शनहोमाङ्गद्रव्यपरिमाणादिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

राज्ञो होममण्डपानागमने कर्तव्यक्रमः

नारदः—

दैवाद्वा मानुषाद्वापि भूतादिभिरथापि वा ।
दर्पात् प्रतिबलाद्वान्यैरन्तरायैर्महीपतिः ॥ १ ॥
यदि न प्राप्नुयादेव होममण्डपमादितः ।
ततः कथं महीभर्तुर्निवर्त्यन्ते महाग्रहाः ॥ २ ॥

राजा के होम मण्डप में न पहुँच सकने पर कैसे कार्य सम्पादन हो—श्रीनारद ने कहा—दैवी, मानुषी एवं भूतादि से विवश होने पर, दर्प से, शत्रु के भय से अथवा अन्य प्रकार के विघ्न बाधाओं के आ पड़ने पर यदि राजा होम-मण्डप में प्रथम ही न उपस्थित हो सके तो राजाओं के ग्रह की शान्ति किस प्रकार करनी चाहिए? ॥ १-२ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु राजा न चेत् कुर्यात् पुरोधाः कुरुतात् कृती ।
स एव राज्ञः सर्वस्वमदृष्टार्थोपपादने ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यदि राजा अपनी ग्रह-शान्ति न कर सके तो उसके स्थान पर विद्वान् पुरोहित नियुक्त होकर सारा कार्य सम्पादन करे, क्योंकि वही अदृष्ट की शान्ति में राजा का सर्वस्व मान एवं सर्वाधिकारी है ॥ ३ ॥

पुरोहितलक्षणम्

धार्मिकः श्रुतिसम्पन्नः सुशीलः सत्यवाक् शुचिः ।
अभिजातोऽनहङ्कारस्तितिक्षुः स्मृतिमान् वशी ॥ ४ ॥

देशकालविभागज्ञः शास्त्रदृष्टिरतन्द्रितः ।
अप्रधृष्योऽप्रमादी च वदान्यो नयकोविदः ॥ ५ ॥
उपायोपेयविन्मन्त्री यायजूको ह्यलोलुपः ।
दैववित् प्रियवादी च वैदिकः सत्त्ववान् प्रभुः ॥ ६ ॥
विष्णुभक्तस्तपस्वी च कार्यवित् कर्मठोऽनघः ।
हिताहिताप्तिहानेच्छुर्नृपाणं सर्वसम्मतः ॥ ७ ॥

पुरोहित का लक्षण—धार्मिक, वेदवेत्ता, सुशील, सत्यवादी, पवित्र, उत्तम कुल में उत्पन्न, कुलीन, अहङ्कार से रहित, तितिक्षु, मेधावी, जितेन्द्रिय, देश काल के विभाग को जानने वाला, शास्त्रवेत्ता, आलस्यरहित, निर्भय, प्रमाद न करने वाला, दाता, नीतिज्ञ, उपाय तथा अपेय का वेत्ता, मन्त्र जानने वाला, यज्ञ कार्य में निपुण, निर्लोभ, दैववेत्ता, प्रियवादी, वैदिक, सत्त्वगुणनिष्ठ, समर्थ, विष्णुभक्त, तपस्वी, कार्यवेत्ता, कर्मकुशल, निष्पाप, हितकारी तथा अहित को दूर करने वाला इस प्रकार का राज पुरोहित होना चाहिए ॥ ४-७ ॥

पुरोधस एव राज्ञः सर्वकार्यकर्तृत्वम्

ईदृशो दुर्लभो राज्ञां गुरुकल्पः पुरोहितः ।
ईदृशो हि क्षमो राज्ञामघौघविनिवारणे ॥ ८ ॥
अतः स एव राज्ञां हि रक्षाविधिमथार्हति ।
एवंविधो गुरुर्यस्य स सम्राड् नृपतिर्भवेत् ॥ ९ ॥
दीर्घायुर्निःसपत्नः स्यादरोगः परवीरहा ।
अवग्रहाद्या जायन्ते पीडास्तद्विषये न हि ॥ १० ॥

इस प्रकार का पुरोहित ही राजा के सारे कर्मों के सम्पादन के योग्य है—गुरु के समान हितकारी इस प्रकार का पुरोहित राजाओं के लिए दुर्लभ है, क्योंकि ऐसा पुरोहित ही राजा के सारे पापसमूह को नष्ट करने में समर्थ है । इसलिए वही राजा के रक्षा के विधान का अधिकारी है । जिस राजा का उपर्युक्त लक्षण युक्त पुरोहित हो, वह राजा सम्राट् होने योग्य है । वह राजा दीर्घायु, शत्रुरहित, स्वस्थ, शत्रुहन्ता होता है, उसके राज्य में अवग्रहादि (= अनावृष्टि) पीड़ा नहीं होती ॥ ८-१० ॥

तादृशपुरोहिताभावे राज्ञोऽनिष्टकथनम्

तं विनान्यो भवेद्राज्ञो गुरुर्वाथ पुरोहितः ।
विपरीतं भवेत् तस्य महीभर्तुर्न संशयः ॥ ११ ॥

उस प्रकार के पुरोहित के अभाव में राजा को अनिष्ट की सम्भावना—यदि उपर्युक्त लक्षणरहित राजा का गुरु अथवा पुरोहित न हो तो राजा को विपरीत फल की सम्भावना होती है इसमें संशय नहीं ।

कुम्भादीनां परिमाणादिप्रश्नः

नारदः—

परिमाणं च कुम्भानां स्रुक्स्रुवाणां च लक्षणम् ।
ऋत्विजः कीदृशो ह्यस्य प्रकारश्चाखिलं वद ॥ १२ ॥

यज्ञ में कुम्भादि के परिमाण के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! राजा को अपने यज्ञ में कितने परिमाण (तौल) का कलश रखना चाहिए । स्रुक् एवं स्रुवा का भी लक्षण कहिये और कितने ऋत्विज होने चाहिए? इन समस्त प्रकारों को कहिये?

उत्तमपरिमाणम्

अहिर्बुध्न्यः—

शुद्धैर्गन्धोदकैर्भारपरिमाणैः सुपूरितान् ।
सौवर्णराजतान् कुम्भान् कारयेदिदमुत्तमम् ॥ १३ ॥

उत्तम कलश के परिमाण का निरूपण—शुद्ध गन्धोदक से परिपूर्ण कलश भारी परिमाण का सोने अथवा चाँदी का वना हुआ होना चाहिए । यह उत्तम कलश का लक्षण है ॥ १३ ॥

मध्यमपरिमाणम्

अर्धभारभृतान् कुम्भान् मध्यमोऽयं विधिः स्मृतः ।

मध्यम कलश का परिमाण—अर्धभार के परिमाण वाला कलश मध्यम कहा गया है ॥ १४ ॥

अधमपरिमाणम्

तदर्धेनाधमे पक्षे पूरयेदेष निर्णयः ॥ १४ ॥

निकृष्ट कलश का परिमाण—निकृष्ट पक्ष में उस आधे को भी आधा भार वाला कलश कहा गया है ॥ १४ ॥

यथाविधि स्रुगादिनिर्माणम्

यथाविधि विधेयौ तु स्रुक्स्रुवौ मुनिसत्तम ।

स्रुगादि का निर्माण यथाविधि करना चाहिए—हे मुनिसत्तम ! स्रुक् तथा स्रुवा जैसे शास्त्रों में कहा गया है उसी प्रकार से निर्माण करावे ॥ १५ ॥

ऋत्विक्सङ्ख्या

ऋत्विजः सात्त्विकानष्टौ वृणुयाद्वैष्णावांस्ततः ॥ १५ ॥

ऋत्विजों की सङ्ख्या—तदनन्तर सात्त्विक स्वभाव वाले विष्णु भक्त आठ ऋत्विजों का वरण करना चाहिए ॥ १५ ॥

अङ्गमन्त्रादिविधिः

अङ्गमन्त्रैश्च गायत्र्या वह्निप्राकारकेण च ।
प्रधानकुण्डयोश्चापि गुरुकल्पौ समाहितौ ॥ १६ ॥
वृणुयान्मूलमन्त्रेण सर्वे रक्षामनौ रताः ।
शमीसमिद्भिर्दूर्वाभिस्तिलैराम्रदलैस्तथा ॥ १७ ॥
चरुणा पायसापूपैः पालाशैर्जुहुयात् क्रमात् ।
शुद्धेन सर्पिषा मध्यकुण्डयोर्हावयेद् गुरुः ॥ १८ ॥
अथवा सर्वकुण्डेषु शुद्धेनाज्येन हावयेत् ।
गुरुणैवाभिनिर्वर्त्ये प्रतीकारविधाविह ॥ १९ ॥
शयनासनयानादौ राज्ञः स्वैरविधावपि ।
पूर्वोक्तेन विधानेन वितानादिकमाचरेत् ॥ २० ॥

अङ्गमन्त्रादि विधि—अङ्गमन्त्र से, गायत्री से अथवा अग्नि प्राकारक मन्त्र से प्रधान कुण्ड पर विद्वान् एवं समाहित दो गुरुकल्पों का वरण करे । अन्य सबका मूल मन्त्र से वरण करे । वे सभी रक्षा के मन्त्रों में लगे रहने वाले हों, क्रमशः शमी की लकड़ी से, फिर दूर्वा से, फिर तिल से, तदनन्तर आम के पत्तों से, चरु से, फिर पायस से, तदनन्तर अपूप एवं पलाश का हवन करना चाहिए । मध्य कुण्ड पर गुरु शुद्ध घी से स्वयं होम करे अथवा सभी कुण्डों पर मात्र शुद्ध घृत का ही होम करना चाहिए । ग्रहों के प्रतीकार में, यदि राजा शयन, आसन एवं सवारी आदि कार्यों में संलग्न हो तो गुरु को ही सारा नियम सम्पादन करना चाहिए । पूर्वोक्त विधान से वितान (चँदोवा) आदि का निर्माण करना चाहिए ॥ १६-२० ॥

होमान्ते राज्ञोऽभिषेकः

होमावसानसमये प्रयोगेऽप्यत्र तद्गुरुः ।
तत्र राजानमाहूय पूर्ववन्मन्त्रितासने ॥ २१ ॥
स्थापयित्वाभिषेकादिसंस्कारं गुरुराचरेत् ।

होमान्त में राजा का अभिषेक—होम हो जाने के बाद गुरु स्वयं इस अनुष्ठान में राजा को बुलाकर पूर्ववत् मन्त्राभिमन्त्रित आसन पर बिठावें । फिर उसका अभिषेकादि संस्कार करे ॥ २१-२२ ॥

गुर्वादिप्रीणनम्

ततः स्वस्थमनाः सद्यो विमुक्तग्रहबन्धनः ॥ २२ ॥
यथार्हं गुरवे दद्यात् स्वचिह्नानि प्रणम्य च ।
भूषणानि महार्हाणि मुक्तामणिमयानि च ॥ २३ ॥
मणिपीठसुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ।
भुवश्च भूयसीर्दत्वा ऋत्विजस्तर्पयेत् ततः ॥ २४ ॥

एकैकमृत्विजः सर्वे शतेनार्च्याः सुवर्णकैः ।
प्रत्येकं दशभिर्गोभिर्वासोभिर्विविधैरपि ॥ २५ ॥

गुर्वादि को प्रसन्न करने की विधि—तब ग्रह बन्धन से विमुक्त, स्वस्थता को प्राप्त हुआ राजा प्रणाम कर अपनी योग्यता के अनुसार गुरु को अपना विशेष चिह्न देवे । मोती और मणियों से निर्मित बहुमूल्य आभूषण, मणिजटित आसन, सुवर्ण तथा विविध रत्नों को भी देवे और पर्याप्त भूमि देवे । तदनन्तर ऋत्विजों को सन्तृप्त करे । एक-एक ऋत्विज को सौ-सौ सुवर्ण से पूजित करे । प्रत्येक को दश-दश गाय तथा विविध प्रकार के वस्त्र भी प्रदान करे ॥ २२-२५ ॥

प्रधानहोमकर्त्रे विशेषतो दक्षिणादानम्

प्रधानहोमकर्त्रे तु देशिकाय विशेषतः ।
दद्याद् बहु धनं पूर्णमेकमश्वं सवाहनम् ॥ २६ ॥
अलङ्कारेण सहितं मण्डपं सपरिच्छदम् ।

प्रधान होम कर्त्ता को विशेष रूप से दक्षिणा देने का विधान—प्रधान होम कर्त्ता को एवं आचार्य को विशेष दक्षिणा देकर उनका सत्कार करे । उन्हें बहुत धन देवे । एक अश्व देवे, वाहन देवे एवं अलङ्कार के सहित सारी सामग्री युक्त मण्डप भी आचार्य को देना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

ततो ब्राह्मणतर्पणम्

ब्राह्मणानां ततस्तृप्तिं कुर्यात् प्रीतमना नृपः ॥ २७ ॥
राज्ञा स्वेनाभिनिर्वृत्ते कर्मण्यस्मिन् यथोदिते ।
प्रयोगे देशिकायैव दद्यान्मन्त्रविदे वसु ॥ २८ ॥
पुरोधसा कृतं सर्वमेष धर्मः सनातनः ।
राजोदाहरणे तावत् सविशेषमुदीरितम् ॥ २९ ॥
अन्येषामपि सर्वेषामेष एव विधिः स्मृतः ।
पूर्णाहुतिं ततः कुर्याद्वैष्णव्यर्चा समाहितः ।
राज्ञोऽभ्युदयमाकाङ्क्षन् देशिको मन्त्रवित्तमः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनहोमाङ्गद्रव्य-
परिमाणादिनिरूपणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २८६७ ॥

* * *

तदनन्तर ब्राह्मणों की सन्तुष्टि का विधान—तदनन्तर राजा ब्राह्मणों को प्रसन्न मन से सन्तुष्ट करे । उक्त कर्म यदि राजा स्वयं अनुष्ठित करे तो इस प्रयोग (अनुष्ठान) में वह

मन्त्रवेत्ता आचार्य को ही धन देवे। यदि पुरोहित ऐसा करे तो उसका तो यह सनातन धर्म ही है। किन्तु यदि राजा करे तो उसमें विशेष-विशेष बात भी कह दी गई है (द्र०श्लो० २८)। अन्य सभी लोगों के लिए इसी प्रकार की विधि होती है। मन्त्रवेत्ता आचार्य राजा के अभ्युदय की इच्छा रखते हुये पूर्णाहुति करे। तदनन्तर सावधानी से विष्णु की अर्चा करे ॥ २७-३० ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शन होमाङ्ग द्रव्य एवं उनके परिमाण के निरूपण नामक छियालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४६ ॥

* * *

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

महाशान्तिविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के तेजोमय रूप का ध्यान करते हैं ।

ऐहिकामुष्मिकसर्वफलसाधकैकोपायप्रश्नः

नारदः—

भगवन् पञ्चमन्त्राङ्ग पशुपाशहर प्रभो ।
स्वतः साक्षात्कृताशेषविशेष व्योममन्दिर ॥ १ ॥
ऐहिकामुष्मिकं शश्वन्मन्त्रेणानेन लभ्यते ।
उभयेऽपि तथा दोषा नाश्यन्ते नात्र संशयः ॥ २ ॥
इत्युक्तं तेन पृच्छामि येनैकेनैव कर्मणा ।
उभयी सिद्धिरुभयानिष्टनाशो भवेत् तथा ॥ ३ ॥
ईदृशं कर्म चेदस्ति तन्मे कथय शङ्कर ।
ईदृग्रहस्यं त्वत्तोऽन्यो न कश्चिद् वक्तुमर्हति ॥ ४ ॥

ऐहिक आमुष्मिक सब प्रकार के फलों की प्राप्ति के उपाय के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे पञ्चमन्त्राङ्ग ! हे पशुपाशविनाशक ! हे प्रभो ! हे स्वत:साक्षात्कृताशेषविशेष ! हे व्योमनिलय ! आप ने यह कहा है कि इस मन्त्र से ऐहिकामुष्मिक सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति निरन्तर हो जाती है तथा ऐहिकामुष्मिक पाप भी इसी मन्त्र से नष्ट हो जाते हैं । अब हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि वह एक मात्र कौन सा ऐसा कर्म है जिससे उभय प्रकार के फलों की सिद्धि तथा उभय प्रकार के पापों का नाश हो जाता है । हे शङ्कर ! यदि ऐसा कोई कर्म है तो मुझे बताइये । इस प्रकार के रहस्य को आप के सिवाय कोई दूसरा बताने में समर्थ नहीं है ॥ १-४ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् कथयिष्यामि सर्वशान्तिकरं परम् ।

उस प्रश्न के समाधान का आरम्भ—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! सब प्रकार के कर्मो की शान्ति का उपाय मैं कहता हूँ ॥ ५ ॥

वक्ष्यमाणे कर्मविशेषे राज्ञामधिकारः

महाराजैर्महाभागैः प्रयोज्यं व्यस्तजातिभिः ॥ ५ ॥

आगे कहे जाने वाले कर्मो में मात्र राजा का ही अधिकार है—इस कर्म में महाभाग्यशाली तथा साधारण की अपेक्षा विशेष कुल में उत्पन्न मात्र महाराजाओं का ही अधिकार है ॥ ५ ॥

तस्य निखिलदुःखनिवर्तनपूर्वकमीप्सितफलसाधनत्वम्

आध्यात्मिकादिदुःखानां त्रयाणामपि नाशनम् ।
आधीनां चाप्यशेषाणां नाशनं शुभलक्षणम् ॥ ६ ॥
सर्वारिनाशनं शान्तं महाविजयकारणम् ।
रक्षोहणं पुष्टिकरं सर्ववश्यकरं मुने ॥ ७ ॥
परमायुःप्रदं पुण्यं पूर्वैर्नृपतिभिः कृतम् ।

वक्ष्यमाण कर्म निखिल दुःखों को दूर कर सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है—वक्ष्यमाण कर्म आध्यात्मिकादि तीनों प्रकारों के दुःखों का विनाशक है। सभी मानसिक व्याधियों को नष्ट करता है, शुभ लक्षण वाला है । यह सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश करता है, शान्ति देता है, महान् विजय में हेतु है और राक्षसों का विनाश कर साधक की रक्षा करने वाला है, पुष्टि प्रदान करता है तथा हे मुने ! सब को वश में करने वाला है । आयुष्य की अभिवृद्धि करता है, पुण्यकारक है और पूर्व में होने वाले राजाओं से अनुष्ठित है ॥ ६-८ ॥

अम्बरीषप्रभृतीनामेतदनुष्ठानात् यथोक्तफललाभः

अम्बरीषः शुकोऽलर्को मान्धाता च पुरूरवाः ॥ ८ ॥
राजोपरिचरो धुन्धुः शिबिश्च श्रुतकीर्तनः ।
कृत्वैतच्चक्रवर्तित्वं पुरा प्रापुरमी नृपाः ॥ ९ ॥
निरामया निःसपत्ना विस्तीर्णामलकीर्तयः ।

अम्बरीषादि अनेक राजाओं द्वारा इसका अनुष्ठान कर अपना मनोरथ पूर्ण किए जाने का प्रतिपादन—अम्बरीष, शुक, अलर्क, मान्धाता, पुरुरवा, राजा उपरिचर, धुन्धु, शिवि और श्रुतकीर्त्तन आदि राजाओं ने इसके अनुष्ठान से चक्रवर्त्तित्व पद प्राप्त किया हैं । इसके प्रभाव से सभी निरोग, शत्रुरहित तथा अपने यश का विस्तार करने वाले हुये ॥ ८-१० ॥

तत्र राज्ञामधिकारनिगमनम्

अतो मानुषमानन्दं काङ्क्षन्तो भुवि भूभुजः ॥ १० ॥

कुर्युरेतन्महाशान्तिलक्षणं कर्म सादरम् ।

उस कर्म में मात्र राजा का ही अधिकार है ऐसा कथन—इसलिए मनुष्योचित सारे आनन्दों की आकाङ्क्षा रखने वाले सभी राजाओं को महाशान्तिकारक यह कर्म श्रद्धापूर्वक करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

देशविशेषविधिः

पुराद् बहिर्महानद्यास्तटे देवालयेऽथवा ॥ ११ ॥
असम्बाधे शिवे देशे विविक्ते सजलाशये ।
पूर्वोक्तलक्षणयुतान्मण्डपादधिकं मुने ॥ १२ ॥
कुर्यादायामविस्तारौ तथा राजासनान्वितम् ।
तत्तत्समन्ततः कुर्यादेवंलक्षणमुत्तमम् ॥ १३ ॥

वक्ष्यमाण कर्म के लिए देश विशेष का कथन—नगर से बाहर जहाँ नदी का तट हो, अथवा देवालय हो, अथवा उपद्रवरहित कल्याणकारी स्थान हो, अथवा एकान्त स्थित जलाशय हो ऐसे स्थान में पूर्वोक्तलक्षण युक्त मण्डप (द्र० ४५.३२-३६) से अधिक आयाम विस्तार (चौड़ाई-लम्बाई) वाले राजासन से युक्त मण्डप का निर्माण करे । उसके चारों ओर वक्ष्यमाण उत्तम लक्षणयुक्त ऐसी रचना करे ॥ ११-१३ ॥

मण्डपनिर्माणक्रमः

बहुस्तम्भसमाकीर्णं मणिकाञ्चनमण्डितम् ।
तुङ्गतोरणसंयुक्तं दीपिकाशतशोभितम् ॥ १४ ॥
किङ्किणीजालसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतम् ।
सवितानं ससोपानं सर्वालङ्कारसंयुतम् ॥ १५ ॥
चन्दनागुरुकर्पूरधूपमालाधिवासितम् ।
तुङ्गसालसमायुक्तं होमशालाभिवेष्टितम् ॥ १६ ॥

उस मण्डप में अनेक खम्भे लगे हों, वह मणियों एवं काञ्चन से जगमगा रहा हो, ऊँचे-ऊँचे तोरण उसमें लगे हों तथा अनेक दीपों से सुशोभित हो, अनेक क्षुद्रघण्टिकायें जिसमें लगी हों, जो पताकाओं से अलङ्कृत हो, जिसमें वितान (=चँदोवा) हो और सीढ़ियाँ हों, जहाँ सम्पूर्ण प्रकार का अलङ्कार हो, वह मण्डप चन्दन, अगुरु, कपूर तथा धूपमाला से सुवासित हो, वह ऊँचे-ऊँचे साल वृक्षों से युक्त हो और होमशाला से अभिवेष्टित हो ॥ १४-१६ ॥

कुण्डकल्पनाक्रमः

एवं मनोज्ञ कृत्वैतत् तत्र कुण्डानि कल्पयेत् ।
प्राग्भागे मण्डपस्यास्य चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥ १७ ॥
चतुर्व्यूहाभियोगार्थं चतुरश्राणि कारयेत् ।
प्राच्याद्यान्यथ कुण्डानि केशवादीनथो यजेत् ॥ १८ ॥

चतुर्णां केशवादीनां विकोणेषु प्रकल्पयेत् ।
कुण्डानि शेषमूर्तीनां तच्छिद्रेषु यथाक्रमम् ॥ १९ ॥
त्र्यश्रं षडश्रमर्धेन्दुं योनिं पद्माकृतिं क्रमात् ।
वृत्तं पद्माभमष्टाश्रं वज्राकृति धनुःप्रभम् ॥ २० ॥
शूलाभं शूर्पकल्पं च कुण्डान्येतानि कारयेत् ।
मध्ये देवं प्रतिष्ठाप्य यन्त्ररूपधरं प्रभुम् ॥ २१ ॥
विमानलक्षणोपेतं कुण्डं कुर्यात् तदग्रतः ।

कुण्ड कल्पना का क्रम—इस प्रकार का मनोज्ञ मण्डप निर्माण कराकर उसमें कुण्ड निर्माण करावे । मण्डप के पूर्वभाग में चारों ओर चतुर्व्यूह की पूजा के लिए चतुरश्र कुण्ड बनवावे । उन पूर्वादिभाग स्थित कुण्डों पर केशवादि की अर्चना करे । उन चारों केशवादि के विकोण में कुण्ड निर्माण करावे तथा शेषमूर्तियों के लिए उनके अवकाश स्थान में यथाक्रम कुण्ड इस प्रकार बनवावे कि त्र्यश्र, षडश्र, अर्धचन्द्राकार, योनिपद्म, वृत्तपद्म, अष्टाश्र वज्राकृति, धनुषाकार, त्रिशूलाकार तथा शूर्पाकार इस प्रकार के कुण्डों का निर्माण करावे । उनके मध्य में यन्त्ररूपधारी विष्णु को स्थापित कर आगे एक कुण्ड और निर्माण करावे ॥ १७-२२ ॥

अस्त्रकुण्डकल्पना

समन्ताद्धोमशालायामस्त्रकुण्डान्यनुक्रमात् ॥ २२ ॥
शतं तथाधिकं कुर्याच्चत्वारिंशदतन्द्रितः ।
यथार्हमस्त्रलिङ्गानि मण्डितान्यथ कारयेत् ॥ २३ ॥

अस्त्रकुण्ड की कल्पना—उस होमशाला के चारों ओर क्रमशः एक सौ चालीस कुण्ड सावधानी से निर्माण करावे तथा उन कुण्डों को अस्त्र के चिह्नों से सुसज्जित करावे ॥ २२-२३ ॥

ऋत्विग्वरणम्

अन्तर्मण्डपकुण्डेषु ऋत्विजः षोडश क्रमात् ।
ऋग्भिः पुरुषसूक्ताभिर्वृणुयाद्वैष्णवान् सतः ॥ २४ ॥

ऋत्विग्वरण—मण्डप कुण्ड के भीतर वैष्णव एवं सदाचार सम्पन्न सोलह ऋत्विजों को पुरुष सूक्त की ऋचाओं से वरण करे ॥ २४ ॥

अस्त्रकुण्डेषु ऋत्विगन्तरवरणम्

ततः स्वनामभिश्चान्ते वृणुयाद्वेदपारगान् ।
बाह्यास्त्रकुण्डशालायां ब्रह्मास्त्रप्रमुखेष्वपि ॥ २५ ॥
ऋत्विजो वृणुयात् सर्वान् कुशलान् शान्तिकर्मणि।
ब्रह्मजज्ञानमित्यादिऋग्भिः पञ्चाशतं क्रमात् ॥ २६ ॥
स्वनामभिश्च विदुषो ब्रह्मास्त्रादिकृतादिकान् ।

त्रिशतं वृणुयाद् ब्रह्मसूक्तैः सद्भिरनुक्रमात् ॥ २७ ॥
तत्रैवाथ भवा मित्र इति पञ्चभिरन्वितः ।
परो मात्रादिभिर्ऋग्भिस्त्रयोदशभिरेव च ॥ २८ ॥
विष्णुसूक्तगताभिश्च अस्य वामेति पञ्चभिः ।
अतो देवेति षड्भिश्च दशभिश्चक्षुरित्यपि ॥ २९ ॥
षड्भिः प्रति व एनेति वृणुयात् स्वस्वनामभिः ।
सौवर्णान् राजतान् वाथ कुर्याद्धोमपरिच्छदान् ॥ ३० ॥

अस्त्र कुण्ड के लिए अन्य ऋत्विजों का वरण—तदनन्तर बाहरी अस्त्रकुण्ड शाला में ब्रह्मास्त्रादि प्रमुख कुण्डों के लिए वेदवेत्ता एवं शान्ति कर्मों में कुशल ऋत्विजो का इस प्रकार वरण करे—'ब्रह्मजज्ञान' इत्यादि ऋचाओं से स्वनाम ग्रहणपूर्वक विद्वान् ब्रह्मास्त्रादि की रचना करने वाले पचास ऋत्विजों का, तदनन्तर उत्तमोत्तम ब्रह्म सूक्त से तीन सौ ऋत्विजों का वरण करे। उसमें 'भवा मित्र' इन पाँच ऋचाओं को, 'मात्रादि' तेरह ऋचाओं को, विष्णुसूक्त तथा 'अस्य वाम' इन पाँच ऋचाओं को, 'अतो देव' इन छः ऋचाओं को 'चक्षुः' इत्यादि दश ऋचाओं को तथा 'प्रति व एन' आदि छः ऋचाओं को भी सम्मिलित कर वरण करे। होम के लिए सुवर्ण अथवा चाँदी का परिच्छद निर्माण करे ॥ २५-३० ॥

कुम्भस्थापनम्

पूर्वभागेषु कुण्डानां स्थापयेत् तोयपरितान् ।
सौवर्णान् राजतान् कुम्भान् यद्वा ताम्रमयानिह ॥ ३१ ॥
कुम्भान् पूर्ववदेकैकं कलमान् भारसंमितान् ।

कुम्भ स्थापन—प्रत्येक कुण्डों के पूर्वभाग में पूर्ववत् सुवर्ण का, रजत का अथवा ताँबे का प्रत्येक कुण्ड पर एक-एक के क्रम से कलश स्थापित करे, जिस पर एक-एक भाग चावल का पूर्णपात्र हो ॥ ३१-३२ ॥

होमार्थमृत्विगन्तरवरणविधिः

वृणुयादृत्विजः शिष्टान् यज्वनो होमकर्मसु ॥ ३२ ॥
प्रवर्तयेत स्वैः स्वैस्तु मन्त्रैर्मन्त्रविदुत्तमः ।

होम के लिए अन्य ऋत्विजों का वरण—तदनन्तर होम कर्म के लिए यज्ञकर्त्ता शेष ऋत्विजों का वरण करे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता अपने-अपने मन्त्रों से होम का प्रारम्भ करे ॥ ३२-३३ ॥

मध्यमकुण्डे आचार्यकर्तृकहोमविधिः

देशिको मध्यमे कुण्डे सामध्वनिसमन्वितम् ॥ ३३ ॥
हुनेद्वादित्रसंयुक्तं पुण्याहनिनदैर्युतम् ।

मध्यम कुण्ड पर आचार्य स्वयं होम करे—आचार्य मध्यम कुण्ड पर स्वयं सामवेद

का गान करते हुये गाने बजाने के साथ तथा पुण्याहवाचन के शब्दों से युक्त हो होम करे ॥ ३३-३४ ॥

होमसङ्ख्याविधिः

प्रत्येकं कोटिहोमेन शान्तिकर्म समारभेत् ॥ ३४ ॥

होम की सङ्ख्या का विधान—प्रत्येक कुण्ड पर कोटि-कोटि होमपूर्वक शान्ति कर्म का आरम्भ करना चाहिए ॥ ३४ ॥

तत्तत्कुम्भेषु तत्तद्देवताभ्यर्चनविधिः

तत्तद्देवान् समाहूय कुम्भेषु च पृथक् पृथक् ।
स्वैः स्वैरभ्यर्चयेन्मन्त्रैर्धूपदीपादिभिस्तथा ॥ ३५ ॥

कुम्भों पर तत्तद्देवतार्चन विधि—प्रत्येक कुण्ड के प्रत्येक कलश पर तत्तद् अस्त्र के देवताओं का आवाहन कर उनका उन-उन मन्त्रों से धूप-दीपादि द्वारा अर्चन करना चाहिए ॥ ३५ ॥

होमान्ते कुम्भोदकेन राज्ञोऽभिषेकः

होमकर्मणि निर्वृत्ते तत्तत्कुम्भोदकैस्ततः ।
यन्त्रपीठे समारोप्य राजानमभिषेचयेत् ॥ ३६ ॥

होम के पश्चात् उन कुम्भोदकों से राजा का अभिषेक—होम कर्म के समाप्त हो जाने पर उन-उन कुम्भोदकों से राजा को यन्त्रमय पीठ पर बैठा कर अभिषेक करना चाहिए ।

अस्त्रकुण्डेषु होमविधिः

अस्त्रमन्त्रेषु येष्वेव नियुक्ता ये द्विजातयः ।
तत्तत्कुण्डेषु तैर्मन्त्रैर्जुहुयुः शान्तमानसाः ॥ ३७ ॥

अस्त्रकुण्डों पर होम का विधान—जिन-जिन अस्त्रमन्त्रों के लिए जो ब्राह्मण नियुक्त किये गए हों वे, उन-उन कुण्डों पर उन-उन मन्त्रों से शान्त चित्त होकर होम करें ॥ ३७ ॥

उत्तममध्यमाधमभेदेन होमसङ्ख्याविकल्पः

प्रत्येकं कोटिहोमस्तु मुख्यस्तस्यार्धमध्यमः ।
अधमं नियुतं ज्ञेयं यावदेतत् समाप्यते ॥ ३८ ॥
कालेन तावता कार्यमप्रमत्तैरतन्द्रितैः ।

उत्तम, मध्यम तथा अधम के भेद से होम सङ्ख्या का विकल्प—प्रत्येक अस्त्र कुण्ड पर एक-एक करोड़ का होम उत्तम है । उसका आधा होम मध्यम है और नियुत सङ्ख्याक (= दस हजार) होम अधम है, जब तक होम की समाप्ति नहीं होती तावत्काल पर्यन्त आलस्यरहित होकर सावधानी से होम करना चाहिए ॥ ३८-३९ ॥

नारायणीयाद्यस्त्रवर्गे होमसाधनद्रव्यविधिः

नारायणीयं ब्राह्मं च विमलं क्रौञ्चमेव च ॥ ३९ ॥

धर्मपाशं च लक्षाक्षं संवर्तं सत्यमुत्तमम् ।
दुन्दुनाभं च शीतेषुं विष्णुचक्रं च मानवम् ॥ ४० ॥
ऐन्द्रं ज्यौतिषमित्येतमस्त्रवर्गं घृतैर्हुनेत् ।

नारायणीय आदि अस्त्र वर्ग के लिए होम सामग्री का विधान—नारायणीय, ब्राह्म, विमल, क्रौञ्च, धर्मपाश, लक्षाक्ष, संवर्त्त, सत्य, उत्तम, दुन्दुनाभ, शीतेषु, विष्णु चक्र, मानव, ऐन्द्र तथा ज्योतिष इन अस्त्र वर्गों को घृत की आहुति देवे ॥ ३९-४१ ॥

कालचक्रादिवर्गे चरुविधिः

कालचक्रं धर्मचक्रं वज्रास्त्रं च गदाह्वयम् ॥ ४१ ॥
ब्राह्मं शिरस्तथैषीकं त्रिशूलमशनिद्वयम् ।
कालपाशं च पैनाकं पाशं वारुणमेव च ॥ ४२ ॥
आग्नेयं दयितं चापि तथा पाशुपतं परम् ।
एष वर्गस्तु होतव्यश्चरुणैव यथाविधि ॥ ४३ ॥

कालचक्रादि अस्त्र वर्गों के लिए चरु होम का विधान—कालचक्र, धर्मचक्र, वज्रास्त्र, गदाह्वय, ब्राह्म, शिरः इषीक, त्रिशूल, दोनों अशनि, कालपाश, पैनाक, पाश, वारुण, आग्नेय, दयित तथा श्रेष्ठ पाशुपत इन अस्त्र वर्गों को चरु से यथाविधि होम करे ॥ ४१-४३ ॥

कङ्कालादिवर्गे दधिविधिः

कङ्कालं मुसलं चापि वायव्यमथ कङ्कणी ।
असिरत्नं च कापालं शक्तिर्वैद्याधरं तथा ॥ ४४ ॥
प्रस्वापनप्रशमने दर्पणं शोषणं तथा ।
सन्तापनं च गान्धर्वं पैशाचं च विलापनम् ॥ ४५ ॥
एतानि दध्ना होतव्यान्यस्त्राणि परमास्तिकैः ।

कङ्कालादि वर्गों के लिए दधिहोम का विधान—कङ्काल, मुसल, वायव्य, कङ्कणी, असिरत्न, कापाल, शक्ति, वैद्याधर, प्रस्वापन, प्रशमन, दर्पण, शोषण, सन्तापन, गान्धर्व, पैशाच तथा विलापन इन अस्त्रों के लिए परमास्तिक ऋत्विज दधि से होम करे ॥ ४४-४६ ॥

मदनादिवर्गे पयोविधिः

मदनं तामसं चैव कन्दर्पदयितं परम् ॥ ४६ ॥
सौमनं मुसलं चैव संवर्तं घोरमेव च ।
मायाधरं च सोमास्त्रं वारुणं त्वाष्ट्रमेव च ॥ ४७ ॥
प्रस्वापनं भगास्त्रं च रौद्रसृष्टं पराङ्मुखम् ।
पयसामूनि जुहुयुस्तदस्त्रध्यानतत्पराः ॥ ४८ ॥

मदनादि वर्ग के लिए दूध से होम की विधि—मदन, तामस, कन्दर्पदयित, पर,

सौमन, मुसल, संवर्त्त, घोर, मायाधर, सोमास्त्र, वारुण, त्वाष्ट्र, प्रस्वापन, भगास्त्र, रौद्रसृष्ट तथा पराङ्मुख इन अस्त्रों को दूध से उन अस्त्रों का उस-उस प्रकार से ध्यान करते हुये होम करना चाहिए ॥ ४६-४८ ॥

रभसादिवर्गे पायसविधिः

रभसं सत्यकीर्तिं च प्रतिहारतरं तथा ।
अवाङ्मुखं च विषमं दृढनाभं सुनाभकम् ॥ ४९ ॥
दशाक्षं शतवक्त्रं च शतशीर्षं शतोदरम् ।
पद्मनाभं महानाभं नैराश्यक्रथने अपि ॥ ५० ॥
वर्गोऽयं पायसेनैव होतव्यः शुद्धमानसैः ।

रभसादि वर्ग के लिए पायस से होम विधि—रभस, सत्यकीर्त्ति, प्रतीहार, अवाङ्मुख, विषम, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, शतशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, नैराश्य तथा क्रथन इन अस्त्र वर्गो को विशुद्ध मन वाले ऋत्विज पायस से होम करे ॥ ४९-५१ ॥

योगन्धरादिवर्गे तिलविधिः

योगन्धरं विनिद्रं च नैद्रं सौमनसं तथा ॥ ५१ ॥
धृतिमाली प्रमथनं विधूतं वृत्तिमानपि ।
महार्चिर्माली मकरं रुचिरं करवीरकम् ॥ ५२ ॥
अमीषां च कृते कार्यस्तिलैर्होमो यथाविधि ।

योगन्धरादिवर्ग के लिए तिल से होम का विधान—योगन्धर, विनिद्र, नैद्र, सौमनस, धृतिमाली, प्रमथन, विधूत, वृत्तिमान्, महार्चि, माली, मकर, रुचिर तथा करवीरक इनके लिए यथाविधि तिल का होम करना चाहिए ॥ ५१-५३ ॥

धनादिवर्गे मधुविधिः

धनधान्ये कामरूपं मोहः कामरुचिस्तथा ॥ ५३ ॥
वरणावरणे चैव परमास्त्रे उभे अपि ।
जृम्भकं सर्वनाभं च भृशाश्वतनयो महान् ॥ ५४ ॥
संदानं परशुं चैव प्रीणीयान्मधुना भृशम् ।

धनादिवर्ग के लिए मधुहोम का विधान—धन, धान्य, कामरूप, मोह, काम-रुचि, वरण, अवरण, दोनों प्रकार के परमास्त्र, जृम्भक, सर्वनाभ, भृशाश्वतनय, महान्, संदान तथा परशु इन अस्त्र वर्गो को मधु द्वारा होम कर परम प्रसन्न करे ॥ ५३-५५ ॥

अन्येष्वस्त्रेषु शालितण्डुलविधिः

अपराण्यप्यनुक्तानि जुहुयाच्छालितण्डुलैः ॥ ५५ ॥

अन्य अस्त्रों के लिए शालितण्डुल से होम का विधान—और अन्य अस्त्र जिन्हें इन वर्गों में नहीं कहा गया है उन्हें शालि तण्डुल के होम से तृप्त करे ॥ ५५ ॥

होमान्ते मन्त्रविशेषेण सुदर्शनतर्पणविधिः

हुत्वा यथोक्तं स्वैर्मन्त्रैः सर्वास्त्रप्रभवं विभुम् ।
सुदर्शनाकृतिं विष्णुं सर्वयन्त्रमयं विभुम् ॥ ५६ ॥
ऋग्भिर्यन्त्रनियुक्ताभिः शान्तिकर्म समारभेत् ।

होमान्त में मन्त्रविशेष से सुदर्शन के तर्पण का विधान—ऊपर कहे गए तत्तद् मन्त्रों से तत्तद्‌द्रव्यों द्वारा होम कर सभी अस्त्रों के जन्मदाता, विभु, सुदर्शनाकृति वाले यन्त्रमय विष्णु के लिए यन्त्र में लिखित उन-उन ऋचाओं से शान्ति कर्म का प्रारम्भ करे ॥ ५३-५७ ॥

नारायणीयादितर्पणे मन्त्रविशेषविधिः

नारायणीयमुख्यास्त्रजातं प्रत्येकमादरात् ॥ ५७ ॥
शान्तिं कुर्यात् परो मात्रेत्येतत्सूक्तेन सादरम् ।

नारायणीयादि में तर्पण की विशेष विधि—नारायणीयादि मुख्य अस्त्र मुख्य समूह में (द्र० ४७.३९.४०) प्रत्येक की 'परो मात्रा' इस सूक्त से आदरपूर्वक शान्ति करे ॥ ५७-५८ ॥

कालचक्रादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

कालचक्रादिवर्गस्थं प्रत्येकं जातवेदसम् ॥ ५८ ॥
प्रीणीयाच्चैव कङ्कालमुख्यवर्गस्य शान्तये ।
दिवस्परीति सूक्तेन जुहुयाज्ज्वलितेऽनले ॥ ५९ ॥

कालचक्रादि वर्ग के तर्पण की विशेष शान्ति विधि—कालचक्रादिवर्ग के अस्त्रों में प्रत्येक को 'जातवेदसम्' इस मन्त्र से तृप्त करे तथा कङ्कालादि मुख्य वर्गों की शान्ति के लिए 'दिवस्परी' त्यादि सूक्त से जलती हुई अग्नि में होम करे ॥ ५८-५९ ॥

मदनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

मदनाद्यस्त्रवर्गस्य शान्तिं कुर्यात् समाहितः ।
अतो देवेति सूक्तेन तथा विष्णोर्नुकं त्विति ॥ ६० ॥

मदनादिवर्ग के अस्त्रों के लिए मन्त्र विशेष से शान्ति का विधान—मदनादि अस्त्र वर्ग की शान्ति समाहित चित्त से 'अतो देव' इस सूक्त से तथा 'विष्णोर्नु कं' इत्यादि सूक्त से करे ॥ ६० ॥

रभसादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

रभसाद्यस्त्रजातानि भवा मित्रेति पञ्चभिः ।
प्रत्येकं शमयेदृग्भिरिति वैदिकशासनम् ॥ ६१ ॥

रभसादि वर्ग की शान्ति के लिए मन्त्र विशेष का विधान—रभसादि अस्त्र वर्गों में प्रत्येक की शान्ति 'भवा मित्र' इत्यादि पाँच ऋचाओं को पढ़ते हुये करे ऐसा वैदिकों का अनुशासन है ॥ ६१ ॥

योगन्धरादेरस्त्रस्य शान्तिः कार्या समाहितैः ।
सूक्तेनानेन चैकैकमतो देवा अवन्त्विति ॥ ६२ ॥

योगन्धरादि अस्त्र जातों की शान्ति के लिए मन्त्र विशेष का विधान—शान्त चित्त वाला ऋत्विज योगन्धरादि अस्त्रों में प्रत्येक अस्त्र की शान्ति 'अतो देवा अवन्तु' इस ऋचा से करे ॥ ६२ ॥

धनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

धनधान्यादिवर्गस्थमस्त्रजातं विचक्षणः ।
जुषस्व नेति सूक्तेन शमयेत् परमेण तत् ॥ ६३ ॥

धनादि अस्त्र जात वर्गों में प्रत्येक की शान्ति के लिए विशेष मन्त्र का विधान—धनधान्यादि वर्गस्थ अस्त्रों में प्रत्येक अस्त्र की शान्ति, बुद्धिमान् ऋत्विज 'जुषस्व नेति' इस सूक्त को पढ़ते हुये करे ॥ ६३ ॥

अन्येष्वस्त्रेषु मन्त्रविशेषविधिः

अस्त्राण्यन्यान्यनुक्तानि विष्णुसूक्तेन तर्पयेत् ।
सूक्तैरेतैर्महायन्त्रविनियुक्तैश्च पावनैः ॥ ६४ ॥
सर्वयन्त्रमयं देवं स्तुतिहोमैः समर्चयेत् ।

अन्य अस्त्रों की शान्ति के लिए मन्त्र विशेष का विधान—अन्य अस्त्र जिन्हें इन वर्गों में नहीं कहा गया है उनका विष्णु सूक्त से तर्पण करना चाहिए । तदनन्तर सर्वयन्त्रमय देवाधिदेव सुदर्शन को यन्त्र में उल्लिखित कर महा पवित्र उन-उन सूक्तों से तथा स्तुति एवं होम से पूजन करे ॥ ६४-६५ ॥

तर्पणान्ते सहस्रब्राह्मणभोजनविधिः

ततो देवान् समभ्यर्च्य ब्राह्मणांस्तदनन्तरम् ॥ ६५ ॥
सहस्रं भोजयेच्छुद्धैरोदनैः पायसैरपि ।

प्रधान देव के तर्पण के पश्चात् सहस्रब्राह्मण के भोजन का विधान—इस प्रकार देवताओं के अर्चन के अनन्तर सहस्र ब्राह्मणों को शुद्ध ओदन तथा पायस का भोजन करावे ॥ ६५-६६ ॥

ततोऽस्त्रमन्त्रजलैः राज्ञोऽभिषेकविधिः

ततो राजासनारूढं राजानं शान्तमानसम् ॥ ६६ ॥
ऋत्विग्भिराहृतैः सर्वैरस्त्रमन्त्रजलैः शुभैः ।
गुरुस्तन्मूलमन्त्रेण मन्त्रितैरभिषेचयेत् ॥ ६७ ॥

तदनन्तर अस्त्रमन्त्र वाले जल से राजा के अभिषेक का विधान—तदनन्तर राजासन पर बैठे हुये शान्त चित्त राजा को, ऋत्विजों द्वारा लाये गए सभी अस्त्र मन्त्रों एवं कल्याणकारी जल से तत्तदस्त्र मन्त्रों से अभिषिक्त करे और मूलमन्त्र पढ़ते हुए आचार्य राजा को स्वयं स्नान करावें ॥ ६६-६७ ॥

रुग्णस्य तु राज्ञः प्रोक्षणविधिः

प्रोक्षयेदामयाविष्टो यदि राजा भवेन्मुने ।

यदि राजा रोगी हो तो उसको मात्र प्रोक्षण करने का विधान—हे मुने ! यदि राजा रोगी हो तो उसके ऊपर जल का प्रोक्षण मात्र करे ॥ ६७ ॥

मण्डपान्तःस्थकुम्भतोयाभिषेचनावश्यकता

अवश्यं मण्डपान्तःस्थकुम्भतोयाभिषेचनम् ।
कुर्यान्निरामयोऽनाधिर्विजयी भवति क्षणात् ॥ ६८ ॥

मण्डप के भीतर कुम्भस्थ जल से अभिषेक की आवश्यकता का प्रतिपादन—अवश्य ही मण्डपान्तःस्थ कलश जल से राजा का अभिषेचन करना चाहिए । ऐसा करने से वह निरामय एवं मानसिक सन्तापों से रहित तथा तत्क्षण विजयी हो जाता है ॥ ६८ ॥

यथोक्तमहाशान्तिफलकीर्तनम्

आरोग्यमायुर्विजयो विभूति-
र्वशित्वमास्तिक्यममर्त्यता च ।
सर्वार्थसिद्धिर्वसुधाधिपत्यं
भवन्ति निःसंशयमेव राज्ञः ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां महाशान्तिविधानं नाम सप्तचत्वारिंशोऽयायः ॥ ४७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २९३६ ॥

*

ऊपर कही गई महाशान्ति का फलकथन—ऊपर कही गई शान्ति से राजा को आरोग्य, आयुवृद्धि, विजय, विभूति, इन्द्रिय जय, आस्तिकता, अमरता, सर्वार्थसिद्धि तथा वसुधाधिपत्य प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के महाशान्ति विधान नामक सैंतालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥

*

अथाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीसुदर्शनमहायन्त्रघटितासनादिप्रभाववर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने पर अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है, हम उस दिव्य तेजोमय सुदर्शन का ध्यान करते हैं ।

इष्टार्थसाधने जपादिव्यतिरिक्तोपायप्रश्नः

नारदः—

कथितं भगवन् सर्वं जपहोमार्चनादिकम् ।
अभिषेको महाशान्तिर्महाशान्तिक्रियाविधिः ॥ १ ॥
सर्वार्थसाधकत्वेन चक्ररूपस्य शार्ङ्गिणः ।
एतैर्विना किमिष्टार्थसाधनं विद्यते न वा ॥ २ ॥

इष्टार्थ साधन के विषय में जपादि के अतिरिक्त और उपाय क्या हैं, इस विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् आपने सुदर्शन के जप, होम तथा अर्चन विषयक सारी बातें कहीं तथा अभिषेक महाशान्ति एवं उस महाशान्ति की क्रियाविधि भी कही । अब आप यह बताइये कि सर्वार्थसाधक चक्ररूप विष्णु के जपादि के बिना क्या इष्ट साधन का कोई और उपाय है अथवा नहीं ॥ १-२ ॥

तत्रासनादीनामुपायत्वकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

विनैतान्यप्यभीष्टार्थमलभन्त परे नृपाः ।
आसनेनाङ्गुलीयेन दर्पणेन ध्वजेन च ॥ ३ ॥
वितानेन च विस्तीर्णभूतयो देवसन्निभाः ।
मुक्तापीडो विशालश्च सुनन्दश्चित्रशेखरः ॥ ४ ॥
कीर्तिमाली च भूपालाः पालयन्तोऽखिलां भुवम् ।

इस विषय में आसनादि रूप उपाय का कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—कुछ राजा ऐसे हुये हैं जिन्होंने उक्त उपाय के अतिरिक्त आसन, अङ्गुलीयक, दर्पण, ध्वज तथा

वितान से अपने विभूतियो का विस्तार किया तथा देवताओं के तुल्य हो गए। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—मुक्तापीड़, विशाल, सुनन्द, चित्रशेखर तथा कीर्त्तिमाली। इन्होंने आसनादि उपायों से सारी पृथ्वी का पालन किया था ॥ ३-५ ॥

आसनादिभिर्मुक्तापीडादीनामिष्टसिद्धिः

आसनेनैव वसुधां मुक्तापीडोऽजयत् पुरा ॥ ५ ॥
विशालोऽप्यजयन्मृत्युमङ्गुलीयेन भूपतिः।
सुनन्दो दर्पणेनैव नागलोकं महीपतिः ॥ ६ ॥
ध्वजेनासुरसंग्राममजयच्चित्रशेखरः।
कीर्तिमाली वितानेन त्रिदिवं प्राप भूपतिः ॥ ७ ॥

आसनादि उपायों से मुक्तापीडादि राजाओं की अभीष्ट सिद्धि—पूर्वकाल में मुक्तापीड ने मात्र आसन के प्रयोग से सारी पृथ्वी जीत ली थी। राजा विशाल ने अङ्गुलीयक के प्रयोग से मृत्यु पर विजय प्राप्त किया। सुनन्द नामक महीपति ने दर्पण के द्वारा नागलोक जीता था। चित्रशेखर ने ध्वज के द्वारा असुर संग्राम पर विजय प्राप्त किया था तथा कीर्त्तिमाली राजा ने वितान से स्वर्ग प्राप्त किया था ॥ ५-७ ॥

केवलासनादीनामिष्टसाधनत्वकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

केवलान्यासनादीनि साधनत्वं कथं ययुः।
साध्यं प्रति विभो तन्मे कथयेदं महाद्भुतम् ॥ ८ ॥

इष्टसाधन में मात्र आसनादि के प्रयोग से किस प्रकार सिद्धि होती है। इस विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—केवल आसनादि किस प्रकार साध्य रूप इष्टसिद्धि में साधक होते हैं? यह तो बड़ी अद्भुत बात है, हे प्रभो! इसे कहिये ॥ ८ ॥

आसनप्रभाववर्णनाय मुक्तापीडोपाख्यानकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

मुक्तापीडो महातेजा राजा सुश्रवसः सुतः।
पितर्युपरते पृथ्वीं बुभुजे सागराम्बराम् ॥ ९ ॥

आसन का प्रभाव वर्णन करने के लिए प्रसङ्गतः मुक्तापीड के इतिहास का कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—महा तेजस्वी मुक्तापीड नामक राजा सुश्रवा का पुत्र था। पिता के उपरत हो जाने पर वह स्वयं सागर रूप वस्त्र से घिरी हुई पृथ्वी का शासन करने लगा ॥ ९ ॥

मुक्तापीडस्य विषयासक्ततया राज्ये धर्मविच्युतिः

निजान्तःपुरयोषित्सु विषयासक्तमानसः।
अनालोचितसप्ताङ्गो राजा राजीवलोचनः ॥ १० ॥
प्रजास्तद्विषये तेन धर्मविच्युतिमाचरन्।

बलिभिर्दस्युभी राज्यं क्षुभितं च हृतं च तत् ॥ ११ ॥
तस्मै प्रकृतयः सर्वा राज्ञे क्षोभं व्यजिज्ञपन् ।
बुबुधे न स तेनापि मधुमैथुनविह्वलः ॥ १२ ॥

मुक्तापीड की विषयासक्ति से राज्य में धर्म का ह्रास—कमलनेत्र वह राजा अन्तःपुर की पटरानियों में इतना विषयासक्त हो गया कि उसने राज्य के सप्ताङ्गों की देख-भाल करना भी त्याग दिया । उसके ऐसा करने से उसके राज्य की सारी प्रजा धर्महीन हो गई । इस कारण बलवान् दस्युओं ने उसके राज्य में उपद्रव प्रारम्भ किया तथा राज्य का हरण भी कर लिया । सभी प्रजा जनों ने मिल कर राजा से दस्युओं के उपद्रव की शिकायत की । किन्तु वह मद्य और मैथुन में इतना विह्वल था कि उसे तब भी होश नहीं हुआ ॥ १०-१२ ॥

सपुरोधसाममात्यानां मन्त्रणप्रकारः

ततः पुरोधसा सार्धममात्याः संन्यमन्त्रयन् ।
राजा तु विषयासक्तो राज्यं दस्युभिराप्लुतम् ॥ १३ ॥
इति संचिन्त्य ते सर्वे गुरुं प्राप्य महाद्युतिम् ।
भवत्प्रसादाज्जेष्यामो नान्या काप्यस्ति नो गतिः ॥ १४ ॥
इत्युक्तस्तैः पुरोधास्तु तथैवेत्याह तान् प्रति ।

तब पुरोहित से अमात्यों ने मन्त्रणा की—तब अमात्यों ने यह सोच कर की राजा विषयासक्त है और राज्य दस्युओं से घिरा हुआ है, फिर हमें क्या करना चाहिए? ऐसा विचार कर वे महातेजस्वी गुरु के पास गए और उनसे निवेदन किया कि अब आपकी कृपा से ही हम लोग इन दस्युओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं और कोई दूसरा उपाय नहीं है । इस बात को सुनकर गुरु पुरोहित ने उनसे कहा—ठीक है ॥ १३-१५ ॥

पुरोधसा वसिष्ठोपदिष्टोपायानुष्ठानम्

इत्युक्त्वा यन्त्रघटितं विष्टरं रत्नमण्डितम् ॥ १५ ॥
वसिष्ठोक्तेन मार्गेण चकारास्मै महाद्भुतम् ।
तस्मिन्नारोपयामास राजानमबलारतम् ॥ १६ ॥

पुरोहित ने वशिष्ठ द्वारा उपदिष्ट उपाय का अनुष्ठान बताया—वशिष्ठ के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से उन्होंने एक महान् अद्भुत यन्त्र युक्त रत्नों से मण्डित विष्टर (=आसन) का निर्माण किया । उस विष्टर पर रानियों में आसक्त उस राजा को बिठाया ॥ १५-१६ ॥

पुरोधसा राजानं प्रति कृत्यविशेषानुशासनम्

वेदशाखाश्चतुर्दिक्षु वाचयेच्च क्रमेण तु ।
आशीर्मङ्गलयुक्तानि गीतवादित्रनर्तकान् ॥ १७ ॥
कलशोदकमक्षय्यममृतं भावयेद् बुधः ।
तन्मध्यादुत्थिते पद्मे सौवर्णे चाष्टपत्रके ॥ १८ ॥

चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं च पद्महस्तं हिरण्मयम् ।
सर्वाभरणसंछन्नं मुक्ताहारविराजितम् ॥ १९ ॥
किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् ।
पीताम्बरधरं सौम्यं प्रसन्नवदनं शुभम् ॥ २० ॥
कटिसूत्रसमायुक्तं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीकरं श्रीनिकेतनम् ॥ २१ ॥
श्रिया जुष्टं सदा सम्यक् ताम्रपद्मनिभेक्षणम् ।
पद्मनाभमुदाराङ्गं भक्तार्तिशमनं हरिम् ॥ २२ ॥
तस्याङ्के दक्षिणे लक्ष्मीं समासीनां विचिन्तयेत् ।

तदनन्तर पुरोहित द्वारा राजा को कृत्यविशेष के अनुष्ठान का उपदेश—हे राजन् ! चारों दिशाओं में चारों वेदों की शाखाओं से क्रमशः पुण्याहवाचन करावे । आर्शीर्वाद तथा मङ्गल युक्त गाने बजाने वाले तथा नर्त्तकों के साथ, अक्षम, अमृतयुक्त कलश को उदक से पूर्ण करे । इसके बीच में सुवर्ण निर्मित आठ पत्र वाला कमल बना कर उस पर श्रीभगवान् विष्णु का इस प्रकार ध्यान करे जो चार बाहु, तीन नेत्र, हाथ में कमल लिए, सुवर्णमय, सर्वाभरणसंच्छन्न, मुक्ताहार से सुशोभित, किरीट, हार, केयूर एवं कटकादि से विराजित पीताम्बर धारण किये, सौम्य एवं प्रसन्नमुख, शुभ काञ्ची धारण किये हुये, दोनों कानों में कुण्डल पहने, वक्षःस्थल पर कौस्तुभ धारण किये हुये । लक्ष्मी के पति, लक्ष्मी देने वाले, श्रीनिवास, लक्ष्मी से सेवित, सर्वदा अनुकूल रहने वाले, रक्तकमल के समान नेत्रों वाले, जिनकी नाभि से कमल निकला हुआ है और भक्तों की आर्त्ति का शमन करने वाले उन विष्णु का ध्यान करे जिनकी दाहिनी ओर गोद में लक्ष्मी विराजमान हों ॥ १७-२३ ॥

मन्त्रमूर्त्यात्मको देवो मन्त्रवाच्यस्तु स प्रभुः ॥ २३ ॥
प्रविशन्तं ततस्तं तु भावयेन्मन्त्ररूपिणम् ।
एवं संचिन्तयन् मन्त्रं जपेत् कलशमामृशन् ॥ २४ ॥
अष्टोत्तरायुतं जप्त्वा अभिषिञ्चन् स्वकां तनुम् ।
ग्रहाणां नवकानां च सद्यः शान्तिकरो भवेत् ॥ २५ ॥
आयुः श्रियं च यस्येच्छेत् तं च तेनाभिषेचयेत् ।
अर्चयेदृत्विजः सर्वान् पूर्वमेव बुधो नरः ॥ २६ ॥
ब्राह्मणांस्तर्पयेच्चैव दक्षिणामुत्तमां ददत् ।
एवं स्वस्यापरस्यापि हितं कुर्यात् तथात्मनः ॥ २७ ॥

उन विष्णु का ध्यान करे कि वे भगवान् मन्त्र मूर्त्यात्मक हैं, मन्त्र उनका वाचक है तथा वे मन्त्र से वाच्य हैं, वे मन्त्र रूप से इस घड़े में प्रवेश कर रहे हैं, इस प्रकार से ध्यान करते हुये कलश का स्पर्श कर मन्त्र का जप करे । जप एक सौ आठ की सङ्ख्या में करे । फिर उस घड़े के जल से अपने शरीर को अभिषिक्त करे । इस प्रकार की यह क्रिया नव ग्रहों की सद्यः शान्ति कर देती है । किं बहुना जिसे आयु तथा लक्ष्मी की इच्छा हो उस घड़े

से उनका अभिषेक करे। बुद्धिमान् मनुष्य सभी ऋत्विजों की पूजा करे। ब्राह्मणों को उत्तमोत्तम दक्षिणा देकर उन्हें तृप्त करे। इस प्रकार इस क्रिया से दूसरों का, अपना तथा अपने सम्बन्धियों का हित करना चाहिए ॥ २३-२७ ॥

दक्षिणा चात्र देया स्यात् सुवर्णं शतमेव वा।
केशान् धुनेन्न न वपेन्न स्पृशेत् स्नानशाटिकाम् ॥ २८ ॥
नातिष्ठेत् स्नानसलिलमलङ्कुर्यात् ततो बुधः।
मङ्गलानि च पश्येत्तु ऋषभं मङ्गलाः स्त्रियः ॥ २९ ॥
आत्मनो जन्मनक्षत्रे शुक्लवासा भवेत् तथा।
शुक्रवारेषु कुर्वीत सप्तशः कुर्वतस्तथा ॥ ३० ॥
कामाः सङ्कल्पितास्तस्य ध्रुवं सिध्यन्ति नान्यथा।

इस अनुष्ठान मे सौ सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए। उस दिन केशों को न झाड़े और न उनका वपन करवावे, स्नान वस्त्र का स्पर्श न करे, स्नान के जल का उपयोग न करे। तदनन्तर अपने शरीर को अलङ्कृत करे। बैल और सौभाग्यवती स्त्रियों का दर्शन करे। यदि अपने जन्म का नक्षत्र हो तो उस दिन शुक्ल वस्त्र धारण करे। इस प्रकार उन्चास शुक्रवार पर्यन्त यह क्रिया करे। ऐसा करने से उसकी समस्त सङ्कल्पित कामनायें पूर्ण हो जाती हैं यह अन्यथा नहीं है ॥ २८-३१ ॥

उद्वहन् वारि कुर्वीत श्रीकामः पापनाशनम् ॥ ३१ ॥
तिष्ठन्नञ्जलिभिः प्रातरष्टोत्तरशतं पुनः।
अभिमन्त्र्य जलं मूर्ध्नि क्षिपेत् पापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥

यदि लक्ष्मी की कामना हो तो जल लिए हुये पाप प्रणाशक इस मन्त्र के जप को करे। उसकी विधि इस प्रकार है—प्रातःकाल में एक सौ आठ अञ्जुलि जल ले। तदनन्तर आचार्य मन्त्र को पढ़ते हुये प्रत्येक अञ्जुलि के जल से पापप्रणाशक उस जल द्वारा साध्य के शिर पर अभिषेक करे। ऐसा करने से लक्ष्मी प्राप्त होती हैं ॥ ३१-३२ ॥

जुहुयाद्वस्त्रकामस्तु कुसुमैः कुमुदादिभिः।
यद्वर्णं जुहुयात् पुष्पं तद्वर्णं वस्त्रमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

वस्त्र की इच्छा रखने वाला कुमुद के पुष्पों का होम करे। जिस वर्ण के पुष्प से होम किया जाता है उसी वर्ण का वस्त्र प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

वृष्टिकामः शुचौ देशे गोमयेनोपलेपिते।
रक्तद्रव्येण तत्रैव मण्डलं परिकल्पयेत् ॥ ३४ ॥
मण्डलस्य पुरस्तात्तु नवकुम्भं निधापयेत्।
तन्तुना वेष्टितं सम्यक् पूरितं गन्धवारिणा ॥ ३५ ॥
आवाहयेत् ततः सूर्यं कुम्भे शुभ्रे समाहितः।
तत्रस्थमर्चयेद् विष्णुं पूर्ववत् साधकोत्तमः ॥ ३६ ॥

वृष्टि चाहने वाला पुरुष किसी गोमयोपलिप्त पवित्र भूमि में रक्त वर्ण के द्रव्य से मण्डल का निर्माण करे। मण्डल के आगे नवीन कुम्भ स्थापित करे, उसमें रक्षासूत्र बाँधे और गन्धयुक्त जल से उसे परिपूर्ण करे। तदनन्तर उस शुभ्र कलश पर सूर्य का आवाहन करे। पुनः उस कलश में साधक विष्णु स्वरूप सूर्य का पूजन करे ॥ ३४-३६ ॥

पायसं जुहुयात् तत्र शतमष्टोत्तरं बुधः।
ध्यायन्नेकाग्रधीः सिंहं जपेन्मन्त्रं सहस्रशः॥ ३७ ॥
एवं कुर्वीत सप्ताहं द्वादशाहमथापि वा।
ततः प्रसन्नो भगवान् महावृष्टिं विमुञ्चति॥ ३८ ॥

तदनन्तर अग्नि में खीर की एक सौ आठ आहुति इसी मन्त्र द्वारा दे। साधक भगवान् नृसिंह का एकाग्र मन से ध्यान करते हुये इस मन्त्र का एक हजार बार जप करे। इस प्रकार की क्रिया एक सप्ताह, अथवा बारह दिन पर्यन्त करे तो भगवान् प्रसन्न होकर अवश्य ही वृष्टि करते हैं ॥ ३७-३८ ॥

वैतसेनैव होमेन वृष्टिर्भवति सर्वथा।
अनश्नन्नार्द्रवासस्को वृष्टिकामः सदा जपेत्॥ ३९ ॥
सप्ताहाज्जायते वृष्टिर्महती दिव्यशासनात्।
भस्महोमेन वा सम्यग् लवणेनाथवा पुनः॥ ४० ॥
वृष्टिं निवारयेद् भूयः शान्तिः कार्या मनीषिणा।

अथवा वैतस के हवन से निश्चित रूप से वृष्टि होती है। वृष्टि की इच्छा वाला उपवास करते हुये आर्द्र वस्त्र से इस मन्त्र का जप करे तो सप्ताह भर में विष्णु के आदेश से बहुत बड़ी वृष्टि होती हैं। भस्म का होम करने से अथवा लवण का होम करने से वृष्टि का निवारण करे। तदनन्तर उसकी शान्ति करे ॥ ३९-४१ ॥

यस्तु मन्त्रं जपेन्नित्यं प्रातः स्नात्वा सहस्रशः॥ ४१ ॥
श्रीरारोग्यं च तेजश्च वर्धते तस्य सर्वदा।
सर्वाहःसु जपेद्यस्तु क्षीराहारो जितेन्द्रियः॥ ४२ ॥
अर्चनं च यथाशक्ति कुर्वन्नियुतमन्वहम्।
संसिद्धिमतुलां गच्छेदणिमादिगुणैर्युताम्॥ ४३ ॥

जो पुरुष प्रातःस्नान कर एक हजार की सङ्ख्या में जप करता है, उसकी श्री, आरोग्य तथा तेज की सर्वथा अभिवृद्धि होती है। जो दूध पीकर अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर दिन भर जप करता है और यथाशक्ति अर्चन करता है इस प्रकार नियुत (= १० हजार) सङ्ख्या में जप की पूर्णता हो जाने पर उसे अणिमादि से युक्त सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ४१-४३ ॥

अहोरात्रोषितो यस्तु पञ्चगव्यं पिबेत् ततः।
नित्यमष्टसहस्रं तु सर्वपापप्रणाशनम्॥ ४४ ॥

जो दिन-रात उपवास कर तदनन्तर पञ्चगव्य का पान करता है तथा इस मन्त्र का आठ हजार जप करता है तो उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

पञ्चगव्यं तु सम्पीत्वा जपेत् पञ्च दिनानि वै ।
ब्रह्महत्यादिभि: सद्यो मुच्यते सर्वपातकै: ॥ ४५ ॥

जो पञ्चगव्य पीकर पाँच दिन पर्यन्त इस मन्त्र का जप करता है वह ब्रह्महत्यादि सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

वापयेत् सर्वबीजानि ह्यभिमन्त्य सहस्रकम् ।
महती सस्यसम्पत्तिर्जायते नात्र संशय: ॥ ४६ ॥

इस मन्त्र से सहस्र वार अभिमन्त्रित कर जो सभी प्रकार के बीजों को खेत में बोता है, उसे वहुत धन-धान्य प्राप्त होता है । इसमें संशय नहीं है ॥ ४६ ॥

घृतेन पयसा चापि स्नापयेद् देवमुत्तमम् ।
तत: प्रसन्नो भगवान् ददाति मनसेप्सितम् ॥ ४७ ॥
अश्नीयादन्वहं विद्वानन्नं सप्ताभिमन्त्रितम् ।
परकर्माचरन्नस्मिन्नासीन: कुरु सर्वदा ॥ ४८ ॥

जो घृत से अथवा दूध से भगवान् को नित्य स्नान कराता है इससे प्रसन्न हुये भगवान् उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं । दूसरे के कर्म को करता हुआ विद्वान् इस मन्त्र पर बैठ कर इसी मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर भोजन करे और कहे कि मुझे सर्वदा सिद्धि प्रदान कीजिए ॥ ४७-४८ ॥

यथोपदिष्टानुष्ठानेन राज्ञो निष्कण्टकभूमिलाभ:

तेनैवमनुशिष्टोऽयं मासमात्रमथाकरोत् ।
तेनास्य शत्रव: सर्वे विनष्टा व्याधिभिर्बलै: ॥ ४९ ॥
तेन निष्कण्टका भूमिर्वश्याभूत् तस्य सार्णवा ।

इस प्रकार पुरोहित द्वारा उपदिष्ट का आचरण करने से राजा को निष्कण्टक अपने राज्य की प्राप्ति का प्रतिपादन—पुरोहित के द्वारा इस प्रकार का उपदेश प्राप्त कर राजा ने एक महीने तक उसी प्रकार का अनुष्ठान किया । उसके प्रभाव से उसे सर्वदा के लिए समुद्र पर्यन्त निष्कण्टक भूमि प्राप्त हो गई ॥ ४९-५० ॥

अङ्गुलीयकप्रभाववर्णनाय विशालोपाख्यानारम्भ:

विशालो नाम राजायं विशालाख्ये पुरे वसन् ॥ ५० ॥
पालयामास धर्मात्मा मेदिनीं साब्धिपत्तनाम् ।

अङ्गुलीयक प्रभाव वर्णन के प्रसङ्ग से विशालोपाख्यान—विशाल नाम का धर्मात्मा राजा अपनी विशाला पुरी में निवास करते हुये समुद्र सहित पृथ्वी का पालन करता था ॥ ५०-५१ ॥

विशालगुणवर्णनम्

सत्यवादी समो बन्धुर्दैष्टिको धर्मवत्सलः ॥ ५१ ॥
वसन् विंशतिमे वर्षे ब्राह्मणानामुपासकः ।
प्रजानुरञ्जको धीरो दैवे पित्र्ये च निष्ठितः ॥ ५२ ॥

विशाल राजा के गुण का वर्णन—वह राजा सत्यवादी, समदर्शी, प्रजाबन्धु, भाग्य पर भरोसा रखने वाला तथा धर्मवत्सल था । उसकी अवस्था मात्र २० वर्ष की थी । तभी से ब्राह्मणों की सेवा में निरत, प्रजावर्ग का अनुरञ्जन करने वाला, धैर्यवान् तथा देव एवं पितृ कार्य में निष्ठा रखने वाला था ॥ ५१-५२ ॥

तज्जनन्याः स्वपुत्रमरणसूचकाकाशवाणीश्रवणाद्विलापः

बाल्ये पित्रा वियुक्तस्य तस्येत्थं वसतो मुने ।
जननी वाचमश्रौषीदाकाशे ह्यशरीरिणीम् ॥ ५३ ॥
आगामिनि चतुर्थेऽह्नि पञ्चत्वं ते गमिष्यति ।
पुत्र इत्यादि सा श्रुत्वा विललापाकुला भृशम् ॥ ५४ ॥

उसकी माता का आकाशवाणी द्वारा पुत्र मरण सुनकर विलाप करना—हे प्रभु ! बाल्यावस्था में ही उसके पिता उसे छोड़कर परलोकगामी हो गए थे, किसी समय उसकी माता को अशरीरिणी वाक् सुनाई पड़ी कि आगे आने वाले पाँचवे दिन आपका पुत्र मर जायगा । इस बात को सुनते ही वह व्याकुल हो कर अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ ५३-५४ ॥

राज्ञा मातुः समाश्वासनपूर्वकं पुरोधसः पुलहस्याश्रमगमनम्

तच्छ्रुत्वा जननीमार्तामुवाच सुसमाहितः ।
किमर्थं रोदिषीत्येवं पृष्टा निर्बन्धतः सती ॥ ५५ ॥
तत्त्वतो वृत्तमाचख्यौ स तच्छ्रुत्वा महामनाः ।
मा भैषीरिति तामुक्त्वा निर्ययौ पुलहाश्रमम् ॥ ५६ ॥

राजा द्वारा माता को धीरज देना और अपने पुरोहित पुलह के आश्रम में जाना—राजा ने जब माता को इस प्रकार आर्त्त देखा तब समाहित चित्त होकर कहा—'माँ आप क्यों रो रही हो'? इस प्रकार कई वार आग्रहपूर्वक पूछने पर उस सती ने सत्य-सत्य सारी बातें बता दी । उसे सुन कर वह महामना राजा 'माँ आप मत रोओ' इस प्रकार समाश्वस्त कर पुलहाश्रम चले गए ॥ ५५-५६ ॥

पुलहं प्रति स्ववृत्तान्तनिवेदनम्

तपस्यन्तं मुनिं दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।
अशृणोज्जननी चैवमशरीरां सरस्वतीम् ॥ ५७ ॥

पुलह से स्ववृत्तान्त निवेदन—उन्होंने पुलहाश्रम में जाकर तपस्या में निरत पुलह को प्रणाम कर कहा कि मेरी माँ ने ऐसी अशरीरिणी वाक् सुनी है ॥ ५७ ॥

मुनिना तत्प्रतीकारोपायोपदेशनम्

इत्थं तेनैवमुक्तोऽसौ मुनिराह पुरोहितः ।
सौदर्शनमहायन्त्रघटितं चाङ्गुलीयकम् ॥ ५८ ॥
धारयैनमनेनैव मृत्युर्नश्यत्यसंशयम् ।

मुनि द्वारा उसके प्रतीकार का उपदेश प्रदान करना—राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महर्षि पुलह ने कहा कि राजन् सुदर्शन महायन्त्र युक्त अङ्गुलीयक (= अँगूठी) धारण करिए । अवश्य ही ऐसा करने से मृत्यु का विनाश हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥ ५८-५९ ॥

राज्ञा यथोपदिष्टानुष्ठानम्

इति शिष्टोऽङ्गुलीयं स आहूयैनमधारयत् ॥ ५९ ॥

राजा का महर्षि के उपदेशानुसार सुदर्शन यन्त्र युक्त अङ्गुलीयक धारण करना— पुरोहित द्वारा इस प्रकार का उपदेश प्राप्त कर पुलह की आज्ञानुसार यन्त्र घटित मुद्रिका धारण की ॥ ५-९ ॥

ततश्च राज्ञो यमकिङ्करैः समागमः

विशालेन धृते तस्मिन्नङ्गुलीये सुयन्त्रिते ।
ततः कालेन संदिष्टाः किङ्करा भीमदर्शनाः ॥ ६० ॥
प्राणानादातुमाजग्मुस्तस्यान्तिकमवारिताः ।

तदनन्तर निर्दिष्ट दिन यमकिङ्करों का आगमन—सुन्दर यन्त्र युक्त अङ्गुलीयक उस विशाल राजा के धारण कर लेने पर यमराज की आज्ञा से महाभयानक यम किङ्कर समय पर राजा का प्राण लेने के लिए बे रोक-टोक आ पहुँचे ॥ ६०-६१ ॥

अङ्गुलीयप्रभावात् किङ्कराणां दूरात् पलायनम्

पार्श्वं न शेकुस्ते गन्तुमङ्गुलीयप्रभावतः ॥ ६१ ॥
संरब्धोर्ध्वकरास्तस्मिन् यावत् पाशान्न चिक्षिपुः ।
तावच्चक्रमहानेमिनिस्सृतैर्विविधायुधैः ॥ ६२ ॥
प्रदुद्रुवुस्ते नितरां पीड्यमाना यथागतम् ।

अङ्गुलीयक के प्रभाव से यमकिङ्करों का दूर पलायन—वे उस अङ्गुलीयक के प्रभाव से राजा के पास तक नहीं फटक सके । अभी दूर से ही जब तक क्रोधपूर्वक हाथ उठा कर उसे पकड़ने के लिए पाश तक नहीं फेंक सके थे कि इतने में चक्र की नेमि लगे हुये अस्त्रों से पीड़ित होकर जैसे आये थे उसी प्रकार वे भाग निकले ॥ ६१-६२ ॥

राज्ञोऽपमृत्युजयात् यमादीनां विस्मयः

ततः सहैव कालेन सुरा विस्मयमागमन् ॥ ६३ ॥
सुदर्शनप्रभावेण तीर्णमृत्युरसाविति ।

राजा के अपमृत्यु से छुटकारा देखकर यमादिकों को महान् विस्मय—तब सभी

देवगण काल के साथ ही यह देख कर आश्चर्य में पड़ गए कि सुदर्शन के प्रभाव से यह राजा मृत्यु से छूट गया ॥ ६३-६४ ॥

दर्पणप्रभाववर्णनाय सुनन्दोपाख्यानम्

तथैव दर्पणस्यापि शृणु वीर्यं महामुने ॥ ६४ ॥
सुनीतिरिति राजासीच्छृङ्गाराख्ये पुरे पुरा ।
त्रेतायुगावसानेऽसौ पालयामास मेदिनीम् ॥ ६५ ॥

दर्पण प्रभाव वर्णन के प्रसङ्ग से सुनन्दोपाख्यान का वर्णन—हे महामते ! उसी प्रकार अब दर्पण के प्रभाव को भी सुनिए । पूर्व काल में शृङ्गार नामक पुर में सुनीति नाम का राजा त्रेतायुग की समाप्ति के काल में हुआ था । वह पृथ्वी पालन में लगा हुआ था ॥ ६४-६५ ॥

सुमतिनाम्नस्तत्पुत्रस्य नागकन्यया नागलोके नयनम्

लेभे चिरेण तनयमयमिष्ट्वा शतक्रतुम् ।
चकार सुमतिं नाम्ना वर्धमानं दिने दिने ॥ ६६ ॥
जनकस्तं ततः श्रीमान् कालेन प्राप्तयौवनः ।
सोऽभूदनल्पकालेन प्राप्तविद्योऽस्त्रकोविदः ॥ ६७ ॥
एकदा मृगयां कर्तुं बाह्योपवनमभ्यगात् ।
तत्रापश्यन्मनोज्ञाङ्गीं रूपयौवनशालिनीम् ॥ ६८ ॥
अदृष्टपूर्वां तां दृष्ट्वा मुमोह मदनातुरः ।
सुमतिं तं समादाय सा जगाम स्वमालयम् ॥ ६९ ॥
मायया मोहयित्वैनं नागलोकं विवेश सा ।

उसके पुत्र सुमति का किसी नागकन्या के साथ नागलोक में गमन—इस राजा ने चिरकाल के बाद सौ यज्ञ करने के उपरान्त एक पुत्र प्राप्त किया । पिता ने उसका नाम सुमति रखा । वह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा । थोड़े ही दिनों में वह युवावस्था को प्राप्त हो गया और सारी विद्याओं में तथा अस्त्र विद्या में भी निपुण हो गया । किसी समय जब वह मृगया के लिए बाहर उपवन में गया तो वहाँ रूप यौवनसम्पन्ना अभूतपूर्व लावण्यमयी युवती किसी स्त्री को देखकर काम से मोहित हो मूर्च्छित हो गया । तदनन्तर वह स्त्री उस सुमति को लेकर और उसे माया से मोहित कर नागलोक में, जहाँ उसका घर था, ले आई ॥ ६६-७० ॥

तस्यानङ्गमञ्जरीं वासुकितनयां परिणीय तत्रैव चिरकालनिवासः

तस्मिन् भोगवतीं रम्यां नागराजपुरीं तदा ॥ ७० ॥
प्रविश्यानङ्गमञ्जर्यै प्रायच्छत् सुमतिं रमा ।
तं दृष्ट्वा परमप्रीता सा वव्रे सुमतिं पतिम् ॥ ७१ ॥
तं लोकं तां पुरीं तां च नागकन्यां मनोहराम् ।
विलोक्य विस्मयं प्राप स तां चानङ्गमञ्जरीम् ॥ ७२ ॥

गान्धर्वेण विवाहेन परिगृह्य तया सह ।
रेमे विस्मृतसर्वस्वपुरीपितृपरिग्रहः ॥ ७३ ॥

वहाँ पर वासुकि की कन्या अनङ्गमञ्जरी से उसका विवाह करवाना और उसी नागलोक में उसका निवास करना—उस स्त्री ने, जिसका नाम रमा था, परम मनोहर भोगवती नाम की नागराजपुरी में प्रवेश कर सुमति को अनङ्गमञ्जरी के हवाले कर दिया । अनङ्गमञ्जरी उस सुन्दर राजकुमार को देखकर प्रसन्न हो गई । फिर उसे अपने पति के रूप में वरण कर लिया । उधर सुमति भी उस नागलोक को, उस पुरी को तथा नागराजकन्या अनङ्गमञ्जरी को देख विस्मित हो गया और उसके साथ गान्धर्व विवाह कर अपने पिता की पुरी को भुलाकर उसके साथ रमण करने लगा ॥ ७०-७३ ॥

पुत्रविरहात् खिद्यता राज्ञा चारैः पुत्रान्वेषणम्

एतस्मिन्नन्तरे राजा शुश्रावानागतं सुतम् ।
त्वरया परयाविष्टः सचिवांश्चेदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥
कृच्छ्राल्लब्धः प्रियः पुत्रो ममैकोऽद्य प्रवेश्यताम् ।
तेन सार्धं तु भुञ्जीय न भोक्ष्येऽद्येत्यचोदयत् ॥ ७५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्ययुः सर्वतो दिशः ।
सचिवैः प्रेषिताश्चारा दूताश्चान्ये जवान्विताः ॥ ७६ ॥
विदिक्षु दिक्षु कोणेषु गिरिष्वप्सु सरित्सु च ।
ग्रामेषु नगरेष्वेते चेरुश्चैत्येषु शाखिषु ॥ ७७ ॥
पत्तनेष्वप्यरण्येषु तीर्थेष्वन्विष्य सर्वतः ।
नापश्यन् सुमतिं सर्वे तथैवोचुर्नृपाय वै ॥ ७८ ॥

पुत्र के विरह से खिन्न राजा सुनीति द्वारा पुत्र के अन्वेषण के लिए यत्र-तत्र गुप्तचरों को भेजना—जब राजा को मालूम हुआ कि मृगया के लिए गया राजकुमार अभी तक नहीं लौटा, तो वह खिन्न होकर शीघ्रता से मन्त्रियों को बुलाकर ऐसा कहने लगा—'मैंने जिस पुत्र को इतने कष्ट से प्राप्त किया, उस पुत्र का शीघ्रता से आप लोग पता लगाइये । मैं आज उसी के साथ भोजन करूँगा । अन्यथा उपवास करूँगा' ऐसा कहा । राजा की बात सुनकर मन्त्री गणों ने चारों दिशाओं में ढूढ़ने के लिए गुप्तचरों को भेजा । तब दूत भी बड़ी शीघ्रता से दिशाओं में, विदिशाओं के कोनों, पहाड़ों, जलों एवं नदियों में, ग्रामों में, नगरों में, चैत्यों में, वृक्षों पर, नगर में, अरण्य में तथा तीर्थों में सर्वत्र उसे ढूंढने लगे । किन्तु कहीं भी जब राजकुमार का पता नहीं लगा तब राजा से जहाँ-जहाँ देखा था वहाँ-वहाँ की सारी बात उसी प्रकार कह दी ॥ ७४-७८ ॥

अलब्धपुत्रवृत्तान्तेन राज्ञा अनशनव्रतस्वीकरणम्

तच्छ्रुत्वा शोकसन्तप्तो विलप्य बहु भूपतिः ।
अनश्नन्नशयिष्टान्तः शोकेन महतावृतः ॥ ७९ ॥

पुत्र का पता न पाकर राजा के द्वारा अनशन व्रत का आरम्भ—इस बात को सुनकर

राजा शोक सन्तप्त हो नाना प्रकार का विलाप करने लगे और बिना खाये पिये उस दिन अन्तः पुर में सो गए ॥ ७९ ॥

पुरोधसा कण्वाश्रमगमनपूर्वकं तस्मिन् राजवृत्तस्य निवेदनम्

एवं शोकाभिभूतेऽस्मिन् महाराजे पुरोहितः ।
स्वगुरुं कण्वमासाद्य तमसातीरवासिनम् ॥ ८० ॥
वृत्तं विज्ञापयामास राजपुत्रस्य तादृशम् ।

पुरोहित द्वारा कण्वाश्रम में जाकर अपने गुरु कण्व से राजवृत्तान्त का निवेदन—इस प्रकार राजा को शोकाभिभूत देखकर पुरोहित ने अपने गुरु कण्व के पास, जो तमसा तट पर निवास करते थे, राजपुत्र का सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ८०-८१ ॥

कण्वमुनिना राजकुमारवृत्तान्तस्याविष्करणम्

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्युक्तो बभूव कृपया पुनः ॥ ८१ ॥
दृष्ट्वा कुमारवृत्तान्तं योगेनास्मात् समुत्थितः ।
स तस्मै कथयामास तद्वृत्तमखिलं मुनिः ॥ ८२ ॥
आसीद् भोगवती नाम पुरी परमशोभना ।
पाताले नागराजस्य वासुकेरमितद्युतेः ॥ ८३ ॥
अनङ्गमञ्जरी नाम तस्यां तस्याभवत् सुता ।
रूपलावण्यसम्पन्ना कालेन प्राप्तयौवना ॥ ८४ ॥
अस्या यस्मिन् वरे लिप्सा तस्मै दास्यामि तामिति ।
सङ्कल्पं वासुकेर्मत्वा चेट्यश्चेरुरितस्ततः ॥ ८५ ॥
तस्याः सदृशमन्वेष्टुं वरं तं नैव लेभिरे ।
नागलोके तथा भूम्यां व्यचरन् वरवाञ्छया ॥ ८६ ॥
तत्रैनं सुमतिं दृष्ट्वा राजपुत्रं मनोहरम् ।
प्रोचुस्तस्या महाराजतनयो मदनोपमः ॥ ८७ ॥
तवैव सदृशो भूम्यां पुरुहूतसमः श्रिया ।
न च सामादिभिः शक्यः समानेतुमसाविति ॥ ८८ ॥
तदाकर्ण्य तमत्रैव क्षिप्रमानयतेति ताः ।
उक्त्वा तत्सङ्गमौत्सुक्यात् परां चिन्तामुपागता ॥ ८९ ॥
ततः सम्मन्त्र्य ताः सख्यो रमां मायाविशारदाम् ।
मायया मोहयित्वैनमिहानय मनोरमम् ॥ ९० ॥
इत्यूचुः सा तथोक्तैनमानयामास मायया ।
सुमतिस्तामथोद्वाह्य रमते तत्र साम्प्रतम् ॥ ९१ ॥

कण्व मुनि द्वारा राजकुमार के सम्पूर्ण वृत्तान्त का समाधि में दर्शन—पुरोहित की बात सुनकर कृपा से करुणापूर्ण होकर मुनि समाधिस्थ हो गए और योग से सारी घटना

जान कर समाधि से उठे। तदनन्तर राजकुमार का सारा वृत्तान्त इस प्रकार कहा—पाताल में परम तेजस्वी वासुकि नाम के राजा की राजधानी भोगवतीपुरी है। वहाँ पर अनङ्गमञ्जरी नाम की उसकी एक कन्या है जो रूप तथा लावण्य से सम्पन्न युवावस्था को प्राप्त है। 'इस लड़की का जिस वर में अभिलाष होगा, उसी वर को मैं अपनी कन्या प्रदान करूँगा' ऐसा उसके पिता का सङ्कल्प जान दूतियाँ जहाँ-तहाँ भेजी गईं। किन्तु उन्होंने उसके सदृश कहीं भी वर प्राप्त नहीं किया। वे पाताल एवं भूलोक में वर खोजने के लिए विचरण करने लगीं। तदनन्तर उन्होंने सुमति नामक परम मनोहर राजकुमार को उसके सदृश वर देख कर कन्या से निवेदन किया कि राजा सुनीति का लड़का काम के सदृश आपके कन्या के अनुरूप वहुत सुन्दर वर है। वह इस पृथ्वी का इन्द्र है। किन्तु सामदामादि किसी भी उपाय से भी उसका ले आना शक्य नहीं है। अनङ्गमञ्जरी ने जब ऐसा सुना तो बोली—'उन्हें शीघ्र यहाँ लाओ।' उसकी सखियाँ भी राजकुमार से सङ्गम के लिए उसे उत्सुक देखकर चिन्तित हो गईं। फिर विचार कर उन्होंने माया में विशारद रमा को उसे लाने के लिए भेजा और कहा—'आप माया से मोहित कर राजकुमार को यहाँ लाओ।' तदनन्तर रमा ने माया से मोहित कर उसे पाताल लोक ले गई। फिर वह राजकुमार सुमति अनङ्गमञ्जरी से विवाह कर वहीं उसके साथ रमण करने लगा॥ ८१-९१॥

कुमारप्रत्याहरणे सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणस्यैव साधनत्वोपदेशः

सुदर्शनप्रभावेण विनाहरणकर्मणि।
नास्त्युपायान्तरं तस्य ततस्तेनाहराम्यहम्॥ ९२॥
सुदर्शनमहायन्त्रं दर्पणीकृत्य हाटकैः।
पूर्वोक्तवर्त्मना तेन तमानयत मा चिरम्॥ ९३॥
इत्युक्त्वा स पुनश्चक्रे तपः परमदारुणम्।

राजकुमार को लाने के लिए कण्व का सुदर्शन यन्त्र घटित दर्पण का उपदेश करना—तदनन्तर कण्व ने कहा—सुदर्शन यन्त्र घटित दर्पण के सिवाय उसे वापस लाने का कोई और उपाय नहीं है। अतः उसी से मैं उसे वहाँ से लाने में समर्थ हो सकता हूँ। बाजार में सुदर्शन यन्त्र को दर्पण में मढ़वा लीजिए। तदनन्तर उसी को धारण कर राजकुमार को वापस लाइए। विलम्ब मत करिए। ऐसा कह वे पुनः अपने कठोर तप में लग गए॥ ९२-९४॥

यथोपदिष्टानुष्ठानात् राज्ञो नागलोकगमनसिद्धिः

पुरोहितो विनिष्क्रम्य राज्ञे सर्वं न्यवेदयत्॥ ९४॥
राजा च परमप्रीतः कृत्वा यन्त्रितदर्पणम्।
रथे पुरस्तात् संस्थाप्य बिलद्वारं तदा ययौ॥ ९५॥
तेनाभिगन्तुं शक्तोऽभूत् सुनन्दो दर्पणौजसा।

वैसा करने से राजा सुनीति को नागलोक जाने के सामर्थ्य की प्राप्ति—पुरोहित ने कण्वाश्रम से लौटकर राजा से सारी बातें कहीं। राजा ने प्रसन्न होकर दर्पण में सुदर्शन यन्त्र

को स्थापित किया। तदनन्तर रथ पर उसे आगे रखकर पाताल के द्वार पर पहुँचे। फिर तो उस दर्पण के तेज से वह बड़ी प्रसन्नता के साथ पाताल लोक में चले गए॥ ९४-९६॥

अत्यद्भुतनागलोकदर्शनात् राज्ञो विस्मयातिशयः

प्रविश्य लोकं नागानां स्वर्गलोकमिवापरम्॥ ९६॥
विस्मयं परमं प्राप तत्समृद्धिविलोकनात्।

अत्यन्त अद्भुत उस नागलोक को देखते ही राजा का विस्मयान्वित होना—वह राजा एक दूसरे स्वर्ग के समान उस नागलोक की समृद्धि देख कर परम विस्मय को प्राप्त हुआ॥ ९६-९७॥

राज्ञा सदारस्य कुमारस्य स्वपुरीं प्रति प्रत्यानयनम्

तस्मिन् भोगवतीं रम्यां नागराजपुरीमसौ॥ ९७॥
प्रविश्याथानयामास पुत्रं परमवत्सलः।
सदारः पितरं द्रष्टुं शुद्धान्तात् सुमतिस्तदा॥ ९८॥
निर्ययौ वनितालोकसहितो मदनो यथा।
तं ताभिर्नागकन्याभिः सह स्यन्दनमुत्तमम्॥ ९९॥
आरोप्य स्वपुरीं राजा प्रतस्थे परवीरहा।

राजा द्वारा भार्या समेत राजकुमार को अपनी पुरी लाने का प्रयत्न करना—नागराज वासुकी की उस भोगवती नामक मनोहर नगरी में राजा गए। पुत्रवत्सल राजा पाताल में प्रवेश कर पुत्र को ले आए। सुमति भी अपने पिता का दर्शन करने के लिए रनिवास से रानियों के साथ कामदेव के सदृश निकला। तब राजा ने उन नागकन्याओं के सहित अपने पुत्र को उत्तम रथ पर बैठा लिया और अपनी पुरी की ओर चल पड़ा॥९७-१००॥

ततः क्रुद्धस्य वासुकेर्युद्धसमुद्योगः

तव जामातरं पुत्रीं स्वावरोधान्महीपतिः॥ १००॥
कश्चित् स्यन्दनमारोप्य यातीत्याकर्ण्य वासुकिः।
निर्ययौ परमक्रुद्धः फणिसेनापरीवृतः॥ १०१॥
स दृष्ट्वा राजशार्दूलं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
क्व गम्यते समादाय वधूं वरमितस्त्वया॥ १०२॥

क्रुद्ध हुये वासुकि का युद्ध के लिए उद्योग—'कोई राजा आपके रनिवास से आपकी पुत्री तथा जामाता को रथ पर बैठाकर लिए जा रहा है।' यह समाचार सुन कर क्रुद्ध हुये वासुकि सर्पों की सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा से उद्यत हो गए और राजा को देख कर कहने लगे 'सावधान! खड़े रहो, खड़े रहो'। आप वधू समेत वर को लेकर अब कहाँ जा रहे हो?॥ १००-१०२॥

सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणप्रभावात् राज्ञो विजयलाभः

सुनन्दोऽथ समाकर्ण्य निवर्त्य स्यन्दनोत्तमम्।

वव्रे दर्पणमद्यैव शत्रुसेनां जहीति वै ॥ १०३ ॥
ततः प्रस्वापनाग्नेये दिव्यास्त्रे निःसृते क्षणात् ।
प्रस्वापनं नागसेनां विवेशानेन सास्वपत् ॥ १०४ ॥
आग्नेयमस्त्रमारब्ध तां पुरीं दग्धुमोजसा ।

सुदर्शन यन्त्र घटित दर्पण के प्रभाव से राजा को विजय की प्राप्ति—सुनन्द ने भी वासुकि को आते देख अपना रथ पीछे की ओर लौटाया और दर्पण से कहा—हे दर्पण ! आप मेरे इन शत्रुओं का विनाश करिए । फिर तो तत्क्षण उस दर्पण से प्रस्वापन और आग्नेयास्त्र निकले । प्रस्वापन ने सारी नागसेना में प्रवेश कर उन्हें सुला दिया और आग्नेयास्त्र क्रोध में भरकर नागपुरी को जलाने लगा ॥ १०३-१०५ ॥

पराजितेन वासुकिना शरणागतिपूर्वकं राजाभ्यर्हणम्

तद्दृष्ट्वा नागराजस्तं शरणं समुपागमत् ॥ १०५ ॥
नाज्ञायि सर्वमस्माभिस्तदेतत् क्षम्यतां विभो ।
अत्याहितमिदं स्त्रीणामिति मत्वा शमं व्रज ॥ १०६ ॥
गृहाणेमानि रत्नानि महार्हाणि महाद्युते ।
इमां च कन्यामन्याश्च सहस्त्रं नागयोषितः ॥ १०७ ॥
आदाय प्रतिसंहृत्य दिव्यास्त्रे गन्तुमर्हसि ।

पराजित वासुकि का शरणागत होना तथा राजा की अर्चना करना—यह देख कर नागराज राजा की शरण में गया और कहा—हे प्रभो ! मुझे यह ज्ञात नहीं था । इसलिए क्षमा करे । यह स्त्रियों के न जानने से ऐसा हुआ । अतः शान्त हो जाइये ! हे महातेजस्वी राजन् ! इन अमूल्य रत्नों को ग्रहण कीजिये । एक कन्या तो आपकी हुई ही । इन सहस्र नागकन्याओं को भी ले लीजिये और इन दिव्यास्त्रों का प्रतिसंहार (लौटा) कर वापस चले जाइये ॥ १०५-१०८ ॥

ततो राज्ञः सपरिकरस्य स्वपुरप्रवेशः

सुनन्दोऽपि तथेत्युक्त्वा संहृत्यास्त्रे समाहितः ॥ १०८ ॥
ततः स्वपुत्रं रत्नानि महान्ति वरयोषितः ।
आदायामन्त्र्य तं राजा जगाम स्वपुरीं कृती ॥ १०९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां श्रीसुदर्शनमहायन्त्रघटितासनादिप्रभाववर्णनं नाम अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३०४५ ॥

* * *

तदनन्तर परिवार सहित राजा का अपने पुर को आगमन—तब सुनन्द ने सावधान हो 'तथास्तु कहा' और उन दोनों दिव्यास्त्रों का उपसंहार कर लिया । फिर पुत्र, महर्घरत्न तथा उत्तमोत्तम नागकन्याओं को लेकर राजा ने विदा की आज्ञा ले कर उनसे कृतार्थ होकर पुनः अपनी पुरी को लौट आए ॥ १०८-१०९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के श्रीसुदर्शन-महायन्त्रघटितासनादि प्रभाव वर्णन नामक अड़तालीसवें अध्याय की
शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के
द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४८ ॥

⁂

अथ एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

सुदर्शनयन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपण

अहिर्बुध्न्यः—

सुदर्शनमहायन्त्रघटितस्य ध्वजस्य तु ।
प्रभावः श्रूयतां सम्यग् याथातथ्येन नारद ॥ १ ॥

सुदर्शन यन्त्र घटित ध्वज का प्रभाव निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—अब हे नारद ! सुदर्शन यन्त्र घटित ध्वज का प्रभाव जैसा है उसे भली प्रकार सुनिए ॥ १ ॥

चित्रशेखराधिष्ठितभद्रवाटीनगरवर्णनम्

सरस्वत्यास्तटे रम्ये भद्रवाटीति विश्रुता ।
परःसहस्रैः प्रासादैर्जातरूपमयैश्श्रिता ॥ २ ॥
पुरी विविधकामाढ्या हेमसालसमन्विता ।
समृद्ध्या त्रिदिवप्रख्या बभूव भुवि दुर्लभा ॥ ३ ॥
तामध्यास्ते महावीर्यो राजोपरिचरात्मजः ।
पालयन्नैकवर्षाणि चित्रशेखरसंज्ञितः ॥ ४ ॥

चित्रशेखर राजा की राजधानी भद्रवाटी नगरी का वर्णन—सरस्वती नदी के सुरम्य तट पर भद्रवाटी नाम की एक नगरी थी जिसमें सुवर्ण निर्मित सहस्राधिक ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें थीं । वह पुरी वहुत लुभावनी थी । उसमें सुवर्णमय साल के वृक्ष लगे हुये थे। समृद्धि में तो वह स्वर्ग ही थी जो पृथ्वी में अन्यत्र दुर्लभ है । उसमें उपरिचर राजा का महाबलवान् पुत्र राज्य का पालन करते हुये निवास करता था । उसका नाम चित्रशेखर था ॥ २-४ ॥

तत्पित्रोपरिचरेण कदाचिद् द्वन्द्वयुद्धे शङ्कुकर्णाख्यासुरहननम्

पितर्यस्य पुरा दिव्यमिन्द्रदत्तं क्रमागतम् ।
रथमारुह्य देवानां कार्यार्थं याति खे बली ॥ ५ ॥
शङ्कुकर्ण इति ख्यातो दानवो भीमलोचनः ।
जिघृक्षुस्तद्रथं मार्गे तस्य कूबरमग्रहीत् ॥ ६ ॥
उवाच च मया सार्धं युध्यस्व यदि वा रथम् ।
जहि वेत्युक्तवत्यस्मिन् स तथेत्यग्रहीद् धनुः ॥ ७ ॥
ततस्तेन महायुद्धे दिनमेकं प्रवर्तिते ।
अथास्त्रजालमुत्सृज्य द्वन्द्वयुद्धे हतोऽसुरः ॥ ८ ॥

उसके पिता उपरिचर द्वारा द्वन्द्व युद्ध में शङ्कुकर्ण नामक असुर का वध करना— उसके पिता उपरिचर के पास इन्द्र के द्वारा दिया गया पितृ-परम्परा से प्राप्त एक रथ था। वह देवताओं के कार्य के लिए उसी रथ पर सवार होकर आकाश मार्ग से जाया करता था। किसी समय आकाश गमन करते हुये उपरिचर के रथ को पकड़ने के लिए रथ के कूबर को भयानक नेत्र वाले शङ्कुकर्ण नामक दानव ने पकड़ लिया और बोला—यदि रथ चाहते हो तो मेरे साथ युद्ध करिए और मेरा वध करिए। राजा ने 'तथास्तु' कह कर दिव्य धनुष हाथ में लिया। तदनन्तर एक दिन पर्यन्त अस्त्रजालों का युद्ध चलता रहा। फिर द्वन्द्व युद्ध होने लगा जिसमें राजा ने असुर का वध कर दिया ॥ ५-८ ॥

अमर्षणनाम्ना शङ्कुकर्णसुतेन चित्रशेखरपीडनम्

जित्वा तमसुरं राज्ञि कालेनास्तंगते मुने ।
तत्पुत्रं शङ्कुकर्णस्य सुतः परमरोषणः ॥ ९ ॥
अमर्षण इति ख्यातो मायावी चित्रशेखरम् ।
जिघांसुस्तद्बलं राज्ञः पुरं चापीडयत् सदा ॥ १० ॥
एकदामर्षणः क्रुद्धो भद्रवाटीमुपागमत् ।
पितृहन्तृसुतं योद्धुं ससैन्यं चित्रशेखरम् ॥ ११ ॥
निहत्य चैनमादास्ये सर्वं तत्स्यन्दनोत्तमम् ।
इत्युक्त्वा नगरीं रम्यां रुरोध बलदर्पितः ॥ १२ ॥

शङ्कुकर्ण के पुत्र अमर्षण द्वारा उपरिचर के पुत्र चित्रशेखर को पीड़ित करना—हे मुने ! उस असुर को जीत कर कुछ दिन के बाद जब राजा की मृत्यु हो गई तो शङ्कुकर्ण का पुत्र जो बड़ा क्रोधी था ! उपरिचर के पुत्र चित्रशेखर को पीड़ा पहुँचाने लगा। वह बड़ा मायावी था। वह चित्रशेखर की सारी सेनाओं के वध करने की इच्छा से उसके पुर को बारम्बार पीड़ा पहुँचाता रहता था। एक बार वह अमर्षण जब भद्रवाटी नगर में आया। उसने यह विचार कर उस नगरी को घेर लिया कि पितृहन्ता उपरिचर के इस पुत्र चित्रशेखर का ससैन्यवध कर उसके पितृपरम्परागत रथ को ले जाऊँगा ॥ ९-१२ ॥

चित्रशेखरस्य तेन सह घोरयुद्धम्

निर्ययौ महतीं सेनां सन्नह्य नृपतिः पुरात् ।
तत्र युद्धं समभवद्राज्ञस्तेन दुरात्मना ॥ १३ ॥
सरणैश्चाभिसरणैः कचाकचि भयावहम् ।
गजाश्वरथपादातं प्रभग्नरथमाकुलम् ॥ १४ ॥
प्रवृत्तासृक्सरित्सार्थं कृत्तच्छत्रध्वजाचितम् ।
नृत्यत्कबन्धमुत्कृत्तदष्टाधरशिरश्चितम् ॥ १५ ॥

चित्रशेखर द्वारा उस असुर से घोर युद्ध का वर्णन—शत्रु को आया देख चित्रशेखर भी कवच धारण कर बहुत बड़ी सेना लेकर नगर के बाहर चला आया । वहाँ उस दुरात्मा असुर के साथ आगे-पीछे पैंतरेबाजी से भयावह परस्पर कचग्रहण द्वारा, हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेना के हताहत होने से महा भयानक ऐसा युद्ध हुआ कि उससे घोर रक्त की नदी बह चली । जिसमें सैनिकों के छत्र ध्वज, नाचते कबन्ध, काटे गए तथा दाँतों से अधर को दष्ट करने वाले शिर दिखाई पड़ रहे थे ॥ १३-१५ ॥

दिनत्रयं युध्यमानस्यापि विजयालाभः

एवं दिनत्रयं युद्धं प्रवृत्तं रोमहर्षणम् ।
न लेभे विजयं तस्मिन्नाहवे चित्रशेखरः ॥ १६ ॥

तीन दिन तक युद्ध करते रहने पर भी किसी को विजय श्री न मिलना—इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देने वाला तीन दिन तक लगातार युद्ध हुआ । फिर भी चित्रशेखर को उस युद्ध में विजय-श्री नहीं मिली ॥ १६ ॥

श्रान्तसेनयोर्द्वयोरपि युद्धात् प्रतिनिवृत्तिः

श्रमान्निववृते सेनाद्वयी तस्माद् द्वयोरपि ।
तावुभौ जग्मतुः स्वं स्वं पुरं विश्रान्तवाहनौ ॥ १७ ॥

अन्त में थक कर दोनों ओर की सेनाओं का लौट जाना—विजय-श्री न मिलने के कारण दोनों ओर की सेनायें थक जाने से वापस लौट गईं और वे दोनों भी अपने-अपने रथ के घोड़ों के थक जाने से अपने-अपने नगर लौट आये ॥ १७ ॥

एवं सप्तदशवारं युध्यमानस्यापि विजयासिद्धिः

वारान् सप्तदशैतेन युयुधे चित्रशेखरः ।
एवमेव जयं प्राप न क्वचित् पृथिवीपतिः ॥ १८ ॥

इस प्रकार का युद्ध सत्रह बार होना परन्तु चित्रशेखर की विजय न होना—वह राजा चित्रशेखर इसी प्रकार सत्रह बार तक लड़ता रहा फिर भी उसे विजय लाभ न प्राप्त हो सका ॥ १८ ॥

खिन्नस्य राज्ञः चिन्ताप्रकारः

अथ दुर्जयमालोच्य महासुरममर्षणम् ।

केनोपायेन जेतव्य इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ १९ ॥
महादेवप्रसादेन विना नैव जयो मम ।
अतस्तं तपसा देवं तोष्यामीति मनो दधे ॥ २० ॥

खिन्न होकर राजा का विचार करना—तब राजा ने उस महासुर अमर्षण को दुर्जय समझ कर विचार किया कि जब तक भगवान् शङ्कर प्रसन्न नहीं होते तब तक मेरी विजय होने वाली नहीं । इसलिए निश्चय ही अब उन महादेव को प्रसन्न करुँगा ॥ १९-२०॥

कृतनिश्चयस्य कैलासगमनम्

कृती निश्चित्य मनसा राज्यं संन्यस्य मन्त्रिषु ।
जगाम तपसे राजा रथमारुह्य कामगम् ॥ २१ ॥
कैलासशिखरं रम्यं नभसा वसुधाधिपः ।

कृतनिश्चय चित्रशेखर का कैलास गमन—तब मन में ऐसा विचार कर उस राजा ने राज्य का भार मन्त्रियों पर सौंप दिया और कामना के अनुसार चलने वाले रथ पर सवार होकर आकाश के रास्ते सुरम्य कैलास शिखर पर तपस्या के लिए चल पड़ा ॥२१-२२॥

गगने गच्छतोऽस्य मन्दरोपरि स्यन्दनगतिप्रतिरोधः

तेनैव गच्छतस्तस्य स्यन्दनं मन्दरोपरि ॥ २२ ॥
अतिष्ठत् प्रेर्यमाणेषु वराश्वेष्वपि नारद ।

आकाशमार्ग से जाते हुये मन्दराचल पर रथ की गति का रुकना—आकाश मार्ग से जाते हुये उसके रथ की गति मन्दराचल पर्वत पर रुक गई । हे नारद ! यद्यपि घोड़ों को कई बार आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया गया ॥ २२-२३ ॥

तत्कारणजिज्ञासया चरतस्तत्र कुबेरदर्शनम्

रथः कस्मादकस्मान्मे विष्टब्ध इति विस्मितः ॥ २३ ॥
रथादवातरच्छृङ्गे तस्य रम्ये महीपतिः ।
अवतीर्य रथात् तस्माच्चचार गिरिमूर्धनि ॥ २४ ॥
तत्रापश्यत् सरस्तीरे तरुणं दिव्यलक्षणम् ।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यामवस्थितमनाकुलम् ॥ २५ ॥
तरुणादित्यसङ्काशं ज्वलन्तं प्रभया स्वया ।

रथ के निरोध का कारण पता लगाने के लिए रथ से उतर कर इधर-उधर घूमते हुये राजा को कुबेर का दर्शन—राजा विस्मित था कि अकस्मात् हमारा रथ क्यों रुक गया? तब वह मन्दराचल के सुरम्य शिखर पर रथ से उतर पड़ा और उसी जगह इधर-उधर टहलने लगा । वहाँ उसने किसी तालाब के सन्निकट दिव्य लक्षण लक्षित एक तरुण को देखा जो सायङ्कालीन सन्ध्या कर प्रसन्न चित्त बैठा हुआ था । वह अपनी प्रभा से दोपहर के सूर्य के समान प्रज्वलित-सा हो रहा था ॥ २३-२६ ॥

तेन समं संलापः

तं प्रणम्य महाबाहुः कृताञ्जलिरभाषत ॥ २६ ॥
कस्त्वं पुराणपुरुषो यदि वा कमलोद्भवः ।
उमेश्वरो दिशेशानां यदि वान्यतमो भवान् ॥ २७ ॥
इत्युक्तस्तेन भगवान् प्राह गम्भीरया गिरा ।
किं नामकोऽसि कथय किमागमनकारणम् ॥ २८ ॥
एकाकिना त्वया देशः कथं प्राप्तोऽयमित्यपि ।

राजा का उससे वार्त्तालाप—महाबली उस राजा ने उस दिव्य पुरुष को प्रणाम किया फिर हाथ जोड़ कर बोला—आप कौन है? क्या पुराण पुरुष विष्णु हैं? अथवा ब्रह्मदेव है? अथवा सदाशिव हैं? अथवा दिगीश्वरों में कोई दिगीश्वर हैं? इस प्रकार पूछे जाने पर उन भाग्यवान् ने गम्भीर वाणी में कहा—आपका नाम क्या है? यहाँ आपका आना किस कारण से हुआ? आप अकेले इस प्रदेश में कैसे चले आये? ॥ २६-२९ ॥

राज्ञा कुबेरे स्ववृत्तान्तस्य निवेदनम्

अथ न्यवेदयत् सर्वं राजोपरिचरात्मजः ॥ २९ ॥
चित्रशेखरनामानमात्मानमवनीपतिम् ।
महासुरप्रवृत्तिं च स्वस्य तेन च पीडनम् ॥ ३० ॥
तज्जयायेशतुष्ट्यर्थं तपश्चरणकारणात् ।
स्यन्दनेनाभिगमनं निरोधं तत्र तस्य तु ॥ ३१ ॥

राजा द्वारा कुबेर से स्ववृत्तान्त निवेदन—तब उपरिचर के पुत्र उस राजा ने सारी बीती बात निवेदन की । उसने अपने को चित्रशेखर नाम का राजा बताकर उस महासुर का उपद्रव और उससे अपना सताया जाना आदि कह कर निवेदन किया कि मैं उसी राक्षस पर विजय के लिए तपस्या द्वारा सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए कैलास जा रहा हूँ । किन्तु यहाँ मेरा रथ अकस्मात् रुक गया है ॥ २९-३१ ॥

कुबेरवचनात् तत्र गिरौ लक्ष्मीनिवासपरिज्ञानम्

इत्युक्तस्तेन सोऽप्याह विद्धि मां गुह्यकेश्वरम् ।
अत्रैवास्ते महालक्ष्मीः सर्वकारणकारणम् ॥ ३२ ॥
तत्सेवार्थमिह प्राप्तः सा हि सर्वगतिः परा ।
तदाज्ञयैव चरतश्चन्द्रसूर्यौ विहायसि ॥ ३३ ॥
तत्प्रभावेण ते भग्नं गमनं स्यन्दनस्य तु ।

कुबेर के वचन से राजा को मालूम हुआ कि यहाँ महालक्ष्मी का निवास है—राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस तेजस्वी पुरुष ने कहा—राजन्! मुझे गुह्यकों का राजा कुबेर समझें । सभी कारणों की कारणभूता महालक्ष्मी यहाँ रहती हैं । मैं उन्हीं की सेवा के लिए यहाँ आया हूँ क्योंकि वही सबकी रक्षा करने वाली हैं । सूर्य और चन्द्रमा

उन्हीं की आज्ञा से आकाश में सञ्चरण करते हैं। आपके रथ की रुकावट भी उन्हीं के प्रभाव से हुई है ॥ ३२-३४ ॥

लक्ष्मीप्रसादनोपदेशपूर्वकं कुबेरान्तर्धानम्

तां दृष्ट्वा साधयाभीष्टमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ३४ ॥

लक्ष्मी को प्रसन्न करने का उपदेश कर कुबेर का अन्तर्द्धान होना—उनका दर्शन कर अपने मनोरथ को पूर्ण करिए। इतना कह कर कुबेर अन्तर्हित हो गए ॥ ३४ ॥

राजसाहाय्यार्थं कुबेरप्रहितपुरुषसमागमः

तस्य साहाय्यकामोऽन्यस्तन्निदेशादुपागमत्।
प्रणम्य भूपतिं प्राह गुह्यकोऽहं तदाज्ञया ॥ ३५ ॥
साहाय्यकामस्ते प्राप्तो वसावोऽत्रैव शर्वरीम्।
प्रत्यूषेऽपेक्षितं यत् स्यात् तत् करिष्यामि नान्यथा ॥ ३६ ॥

राजा की सहायता के लिए कुबेर द्वारा भेजा गया गुह्यक का आगमन—उस राजा की सहायता के लिए कुबेर द्वारा भेजा गया गुह्यक वहाँ आया और राजा को प्रणाम कर बोला—मैं कुबेर की आज्ञा से आपकी सहायता के लिए आया हूँ। आज रात हम दोनों यहीं निवास करे। प्रात:काल होने पर आपकी अपेक्षित सहायता करुँगा और सब ठीक हो जायेगा ॥ ३५-३६ ॥

तद्वचनात् तत्रैव स्थाने तद्रात्रियापनम्

परस्परप्रणयिनौ तां रात्रिं तत्र चोष्य तु।
देव्याः सदसि गन्धर्वगीतवादित्रनिःस्वनम् ॥ ३७ ॥
शृण्वन्तौ तत्कथाभिश्च निन्यतुस्तां सरस्तटे।

कुबेर के सेवक की आज्ञानुसार राजा का वहीं रात्रि व्यतीत करना—दोनों ने आपस में मित्रता कर वह रात्रि वहीं बिता दी। दोनों ने देवी की सभा में गन्धर्वों द्वारा गाये जाने वाले गाने तथा बजाने के शब्दों तथा देवी की कथा सुनते हुये सारी रात बिताई ॥ ३७-३८ ॥

प्रभाते राज्ञा लक्ष्मीनिवासस्थानजिज्ञासया गुह्यकं प्रति प्रश्नः

प्रत्यूषसमये सन्ध्यामुपास्य प्रथमां नृपः ॥ ३८ ॥
गुह्यकं प्राह शैलेऽस्मिन् देवी सा कुत्र वर्तते।
केनाध्वना वा तद्धाम याम तद्दर्शनं कदा ॥ ३९ ॥

प्रात:काल लक्ष्मी का निवास स्थान जानने हेतु राजा का गुह्यक से प्रश्न—प्रात:काल हुआ तब राजा ने प्रात:कालीन सन्ध्या कर उस गुह्यक से पूछा 'इस पर्वत पर देवी का स्थान कहाँ है? वहाँ किस रास्ते से हम जावें और कब उनका दर्शन प्राप्त होगा?' ॥ ३८-३९ ॥

गुह्यकस्य प्रतिवचनम्

गुह्यकः प्रत्युवाचेदं क्रोशे तन्मन्दिरं परम्।

यतो गीतमृदङ्गानां निस्वनः श्रूयते महान् ॥ ४० ॥
कंचित् कालमुपास्यैनां धनदो यास्यति क्षणात् ।
तस्मिन् गते प्रविश्यैनां नमस्यसि सनातनीम् ॥ ४१ ॥

गुह्यक ने कहा—यहाँ से एक कोस की दूरी पर उन देवी का बहुत सुन्दर मन्दिर है। जहाँ से गाने-बजाने तथा मृदङ्ग का महान् शब्द सुनाई पड़ रहा है। कुबेर इस समय उनकी उपासना कर रहे हैं। उपासना के अनन्तर जब वे वहाँ से चले जायेंगे तब आप प्रवेश कर उन सनातनी देवी को नमस्कार करना ॥ ४०-४१ ॥

ततो गुह्यकेन सह लक्ष्मीमन्दिरगमनम्

प्रस्थापयामास ततो याममात्रं प्रतीक्ष्य तम् ।
राजापि स्वरथं तत्र संस्थाप्यैनमथान्वगात् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर राजा का गुह्यक के साथ लक्ष्मीमन्दिर गमन—एक प्रहर बीत जाने पर गुह्यक ने राजा को मन्दिर में जाने के लिए कहा। राजा भी रथ को वहीं छोड़कर उस गुह्यक को आगे कर उसके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ४२ ॥

गुहाद्वारदेशे गुह्यकस्यावस्थानम्

ततो महागुहापार्श्वे मन्दिरं समदृश्यत ।
तद्गुहाद्वारि सोऽतिष्ठत् पालयन् बिलगह्वरम् ॥ ४३ ॥

गुहा के द्वार स्थान पर गुह्यक का अवस्थान—तब गुफा के द्वार देश पर मन्दिर दिखाई पड़ा। उस गुफा के द्वार पर वह गुह्यक गुफा के द्वार का पालन करता हुआ वहीं स्थित हो गया ॥ ४३ ॥

राज्ञो मन्दिरान्तःस्थरत्नमण्डपे प्रवेशः

अतीत्य च ततः कक्ष्याश्चतस्रो मणिगोचराः ।
ततो रत्नमयं दिव्यं विवेशास्थानमण्डपम् ॥ ४४ ॥

राजा का मन्दिर के भीतर जहाँ रत्नमण्डप था वहाँ प्रवेश—तब मणिनिर्मित चार कक्ष्य का अतिक्रमण कर राजा ने रत्नमय दिव्य मण्डप स्थान में प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

मण्डपवर्णनम्

मणिस्थूणासहस्राढ्यं मण्डपं समदृश्यत ।
परःशतमहारत्नपर्यङ्कसमलङ्कृतम् ॥ ४५ ॥
रत्नमङ्गलदीपैश्च मण्डितं तुङ्गतोरणम् ।
अनेककल्पकाकीर्णं मणिपीठपरिष्कृतम् ॥ ४६ ॥
मन्दारकुसुमामोदैर्मृगनाभिमदैरपि ।
कस्तूरिकोत्थसौरभ्यैर्वासितान्तरमूर्जितम् ॥ ४७ ॥
अत्यादित्यप्रभं पुण्यं मुक्तादामविभूषितम् ।
हेमपङ्कजमालाढ्यं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४८ ॥

धूपैः कालागरूद्भूतैः समन्तादधिवासितम् ।
कर्पूरमिश्रकालेयक्षोदपङ्कपरिष्कृतम् ॥ ४९ ॥
इतस्ततश्चरन्तीनां शक्तीनां भूषणारवैः ।
झणज्झणितमञ्जीरनिनदैर्नादितान्तरम् ॥ ५० ॥

मण्डप का वर्णन—हजारों मणिमय खम्भों पर वह मण्डप बना हुआ था जो महारत्नों से निर्मित अनेक रत्नपर्यङ्कों से सुसज्जित था । उसमें रत्न के दीपक जल रहे थे । ऊँचे-ऊँचे तोरण बँधे हुये थे । अनेक प्रकार के स्वच्छ मणियों के आसन से वह परिष्कृत था । मन्दार एवं परियात्र के पुष्पों से तथा कस्तूरिका से मण्डप का भतरी भाग सुवासित होकर गमगमा रहा था । उसकी प्रभा सूर्य के भी तेज को तिरस्कृत करने वाली थी । चारों ओर मोतियों की झालर लटक रही थी । सुवर्णमय कमल की मालाओ से तथा पताका ध्वजादिकों से वह सुशोभित हो रहा था । चारो ओर काला गुरु के धूप से सुवासित तथा कर्पूर मिश्रित कालेय के चूर्ण से वह परिष्कृत था । इधर-उधर आती जाती हुई देवी की शक्तियों के आभूषण के शब्दों से तथा मञ्जीर से निकलने वाले झणझण शब्दों से मण्डप का भीतरी भाग शब्दायमान हो रहा था ॥ ४५-५० ॥

मण्डपमध्यस्थरत्नपर्यङ्के अब्जासनस्थमहालक्ष्मीदर्शनम्

तन्मध्ये रत्नपर्यङ्के संस्कृताब्जासनाश्रिताम् ।
महालक्ष्मीं महानन्दां संश्रितां सर्वशक्तिभिः ॥ ५१ ॥
सर्वाभरणसंयुक्तां सर्वालङ्कारशोभिताम् ।
लावण्यामृतकल्पाङ्गीं शशिबिम्बनिभाननाम् ॥ ५२ ॥
संवीतदिव्यकौशेयां दिव्यचन्दनमालिकाम् ।
विलोक्य प्रणतो भूत्वा विस्मयस्तिमितोऽभवत् ॥ ५३ ॥

राजा को मण्डप के मध्यभाग में स्थित कमल के आसन पर आसीन महालक्ष्मी का दर्शन—उस मण्डप के मध्यभाग में स्थित पर्यङ्क पर सुसंस्कृत कमलासन पर विराजमान सभी शक्तियों से सेवित महान् आनन्द देने वाली महालक्ष्मी को राजा ने देखा । वे सर्वाभरण से युक्त, सर्वालङ्कार शोभित लावण्य रूपी अमृत के समान अङ्गवाली, चन्द्रमुखी, दिव्य कौशेय वस्त्र धारण की हुई तथा दिव्य चन्दन की माला से अलङ्कृत थी । इस प्रकार की महालक्ष्मी का दर्शन कर राजा ने उन्हें प्रणाम किया । फिर विस्मय से स्तब्ध हो गए ॥ ५१-५३ ॥

तत्पादोदकप्राशनपरिपूतेन राज्ञा तत्स्तुतिकरणम्

तत्पादाम्बु समादाय रतिरेनमपाययत् ।
सोऽथ तुष्टाव सुप्रीतस्तां देवीं शुभलोचनाम् ॥ ५४ ॥

उनके चरणोदक के स्पर्श से पवित्र राजा द्वारा महालक्ष्मी की स्तुति—तब रति ने महालक्ष्मी के चरणोदक का राजा को पान कराया । फिर प्रसन्न हुये राजा ने उन शुभलोचना भगवती महालक्ष्मी की इस प्रकार स्तुति की ॥ ५४ ॥

तत्र लक्ष्म्याः उभयविभूत्यैश्वर्यप्रतिपादनम्

महालक्ष्मि भद्रे परव्योमवासि-
न्यनन्ते सुषुम्नाह्वये सूरिजुष्टे।
जये सूरितुष्टे शरण्ये सुकीर्ते
प्रसादं प्रपन्ने मयि त्वं कुरुष्व॥ ५५ ॥
सति स्वस्ति ते गौरि गायत्रि गार्गि
ध्रुवे कामधेनो सुराधीशवन्द्ये।
सुनीते सुपूर्णेन्दुशीते कुमारि
प्रसादं प्रपन्ने मयि त्वं कुरुष्व॥ ५६ ॥
सदा सिद्धगन्धर्वयक्षेशविद्या-
धरैः स्तूयमाने रमे रामरामे।
प्रशस्ते समस्तामरीसेव्यमाने
प्रसादं प्रपन्ने मयि त्वं कुरुष्व॥ ५७ ॥

उस स्तुति द्वारा महालक्ष्मी के उभयविभूत्यात्मक ऐश्वर्य का प्रतिपादन—हे महालक्ष्मि, हे भद्रे, हे परमव्योमवासिनि, हे अनन्ते, हे सुषुम्ना नाम से जानी जाने वाली, हे विद्वानों से सुसुविते, हे जये, हे सूरितुष्टे, हे शरण्ये, हे सुकीर्त्ते ! आप मुझ शरणागत पर प्रसन्न होओ। हे सति, हे गौरि, हे गायत्रि, हे गार्गि, हे ध्रुवे, हे कामधेनु, हे सुरेशवन्दिते ! आपका कल्याण हो। हे सुनीते ! हे पूर्ण चन्द्रमुखि ! हे कुमारि ! आप मुझ शरणागत पर प्रसन्न होइए। सर्वदा सिद्ध, गन्धर्व, यक्षेश, विद्याधरों से स्तूयमान रमा को रमण कराने वाली, प्रशस्त गुणों वाली, देवस्त्रियों से सेव्यमान ! हे महालक्ष्मि ! मुझ शरणागत पर प्रसन्न होइए॥ ५५-५६॥

लक्ष्म्या एव निर्व्याजपुरुषकारत्वसमर्थनम्

दुरितौघनिवारणप्रवीणे
विमले भासुरभागधेयलभ्ये।
प्रणवप्रतिपाद्यवस्तुरूप-
स्फुरणाख्ये हरिवल्लभे नमस्ते॥ ५८ ॥
सिद्धे साध्ये मन्त्रमूर्ते वरेण्ये
गुप्ते तृप्ते नित्यमुद्गीथविद्ये।
व्यक्ते विद्वद्भाविते भावनाख्ये
भद्रे भद्रं देहि मे संश्रिताय॥ ५९ ॥
सर्वाधारे सद्व्रतेऽध्यात्मविद्ये
भाविन्यार्द्रे निर्वृतेऽध्यात्मवल्लि।
विश्वाध्यक्षे मङ्गलावासभूमे
भद्रे भद्रं देहि मे संश्रिताय॥ ६० ॥

लक्ष्मी ही निर्व्याज रूप से परमपुरुषार्थ है ऐसा प्रतिपादन—पाप समूह के निवारण में प्रवीण, सर्वथा विमल, महाभाग्यशालियों को ही भाग्यवशात् उपलब्ध होने वाली, प्रणव प्रतिपाद्यवस्तु रूप से स्फुरित होने वाली, हे हरिवल्लभे ! हम आपको नमस्कार करते है । हे सिद्धे, हे साध्यस्वरूपे, हे मन्त्रमूर्ते, हे वरेण्ये, हे गुप्ते, हे तृप्ते, हे नित्य उद्गीथविद्ये, हे व्यक्ते, हे विद्रद्भाविते, हे भावनाख्ये, हे भद्रे ! एकमात्र आपकी ही आशा करने वाले मुझे भद्र (कल्याण) प्रदान करिए । हे सर्वाधारे ! हे सज्जनों की रक्षा करने वाली, हे अध्यात्मविद्यास्वरूपे, हे भाविनि, हे आर्द्रे, हे आनन्दस्वरूपिणि, हे अध्यात्मवल्लि, हे विश्वाध्यक्षे, हे मङ्गलावास की भूमिस्वरूपा ! एकमात्र आपकी ही आशा करने वाले मुझे भद्र (कल्याण) प्रदान करिए ॥ ५८-६०

लक्ष्म्याः पारमार्थिकमङ्गलगुणाकरतया श्रुतिशिरोभूषणत्वम्

अमोघसेवे निजसद्गुणौघे
विदीपितानुश्रवमूर्धभागे ।
अहेतुमीमांस्यमहानुभावे
विलोकने मां विषयीकुरुष्व ॥ ६१ ॥

लक्ष्मी का पारमार्थिक मङ्गल करने के कारण तत्त्वत:श्रुति की शिरोभूषण स्वरूपा होना—जिनकी सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती, जो सद्गुण समूहों की खान हैं तथा जो श्रुति के मूर्धा स्थान में स्थित होकर जगमगा रही हैं, जिनका महानुभाव हेतुओं के विचार से परे है ऐसी हे महालक्ष्मि ! आप मुझे अपने नेत्रों का विषय बनाइए अर्थात् अपनी कृपा-कटाक्ष से मुझे देखिए ॥ ६१ ॥

उमाशचीप्रभृतीनां महालक्ष्मीविभूतित्वम्

उमाशचीकीर्तिसरस्वतीधी-
स्वाहादिनानाविधशक्तिभेदे ।
अशेषलोकाभरणस्वरूपे
विलोकने मां विषयीकुरुष्व ॥ ६२ ॥

उमा, शची प्रभृति देवियाँ महालक्ष्मी की विभूतियाँ है इसका प्रतिपादन—उमा, शची, कीर्त्ति, सरस्वती, धी एवं स्वाहा आदि रूपों से भिन्न-भिन्न शक्तियों वाली, समस्त संसार की भूषण स्वरूपे ! हे महालक्ष्मि ! आप मुझे अपने नेत्रों का विषय बनाइए और कृपा कटाक्ष से मेरी ओर देखिए ॥ ६२ ॥

स्तुतिप्रीतया लक्ष्म्या राजाभीष्टस्य प्रश्नः

इति स्तुतिं निशम्यैषा प्रसन्ना प्राह पार्थिवम् ।
प्रार्थितं ते ददाम्यद्य किं तत् कथय भूपते ॥ ६३ ॥

स्तुति से प्रसन्न महालक्ष्मी का राजा के अभीष्ट विषयक प्रश्न—इस स्तुति से प्रसन्न हुई महालक्ष्मी ने राजा से कहा—हे राजन् ! आप क्या चाहते हैं? जिसे मैं आपको दूँ ॥ ६३ ॥

राज्ञा स्ववृत्तान्तस्य निवेदनम्, लक्ष्म्या सुदर्शनयन्त्रघटितध्वजस्यार्पणञ्च

राजा च स्वान्वयं स्वं च महासुरनिपीडितम् ।
आचख्यौ सर्वमेवास्यै मा भैषीरिति साब्रवीत् ॥ ६४ ॥
अहमाधारभूतापि शक्तीनां जगतस्तथा ।
सुदर्शनप्रभावेण करोम्याश्रितरक्षणम् ॥ ६५ ॥
अनेन जहि ते शत्रुमिति ध्वजमथार्पयत् ।

राजा द्वारा स्ववृत्तान्त निवेदन एवं लक्ष्मी द्वारा सुदर्शन यन्त्र घटित ध्वज प्रदान करना—राजा ने अपने वंश की कथा तथा महासुर द्वारा दी गई पीड़ा आदि समस्त वृत्तान्त उनसे निवेदन किया । तब महालक्ष्मी ने कहा—राजन् ! आप भयभीत मत होइए । यद्यपि मैं सभी शक्तियों का तथा सारे जगत् का आधार हूँ तथापि सुदर्शन के प्रभाव से अपने आश्रितों की रक्षा करती हूँ । आप इसी से शत्रु पर विजय प्राप्त करिए, ऐसा कहकर उन्होंने राजा को ध्वज दिया ॥ ६४-६६ ॥

लक्ष्मीदत्तध्वजमहिम्ना शत्रुजयपूर्वकं राज्ञो निष्कण्टकराज्यलाभः

यन्त्रितं तं ध्वजं लब्ध्वा जगाम स्वपुरं नृपः ॥ ६६ ॥
जिगाय तेन महतीमासुरीं स वरूथिनीम् ।
तं च हत्वा सुखं राज्यमकरोच्चित्रशेखरः ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपणं नाम एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३११२ ॥

* * *

लक्ष्मी से प्राप्त ध्वज द्वारा राजा की शत्रु पर विजय तथा निष्कण्टक राज्य लाभ—राजा यन्त्र युक्त उस ध्वज को प्राप्त कर अपने नगर चले गए । उसके प्रभाव से उन्होंने विशाल असुर सेना पर विजय प्राप्त कर लिया तथा असुर का वध कर निष्कण्टक राज्य करने लगे ॥ ६६-६७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४९ ॥

* * *

अथ पञ्चाशोऽध्यायः

कीर्तिमाल्युपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिन सुदर्शन का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उन सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

वक्ष्यमाणार्थसूचनम्

अहिर्बुध्न्यः—

इदं तु शृणु देवर्षे कीर्तिमाली वितानतः ।
अजयत् त्रिदिवं पूर्वं येनैव विधिना बली ॥ १ ॥

वितान के प्रभाव से विजय—अहिर्बुध्न्य ने कहा—अब हे देवर्षे नारद ! बलवान् कीर्त्तिमाली ने पूर्वकाल में वितान के प्रभाव से जिस प्रकार स्वर्ग पर विजय प्राप्त किया था उसे सुनिए ॥ १ ॥

भद्रशृङ्गनाम्ना राज्ञा भूमण्डलस्य परिपालनम्

भद्रशृङ्ग इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ।
आसीदुदारचरितो विशालाख्ये पुरे पुरा ॥ २ ॥
तस्य स्वपुरवत् पृथ्वीं सप्तद्वीपवतीमपि ।
शासतः शक्रकल्पस्य शरदामयुतं गतम् ॥ ३ ॥

भद्रशील नामक राजा द्वारा भूमण्डल का परिपालन—पूर्वकाल में परमधार्मिक, उदारचरित्र भद्रशील नाम से विख्यात राजा विशाल नामक नगर में राज्य करते थे । इन्द्र के समान उस तेजस्वी राजा के अपने पुर के समान ही सप्तद्वीपवती पृथ्वी का पालन करते हुये दस हजार वर्ष व्यतीत हो गए ॥ २-३ ॥

तत्पुत्रस्य कीर्तिमालिनो गुणवर्णनम्

तस्य दीर्घायुषः पुत्रः कीर्तिमाली मदोद्धतः ।

शूरः कमलपत्राक्षः कन्दर्प इव रूपवान् ॥ ४ ॥
बलवानप्रतिद्वन्द्वः सर्वशास्त्रविशारदः ।
विनयज्ञो महोदारः प्रतापी सत्यसङ्गरः ॥ ५ ॥
समरेष्वपरावर्ती गम्भीरो धनदर्पितः ।
मेघगम्भीरनिर्ह्रादी जिगीषुः शत्रुतापनः ॥ ६ ॥
मत्तद्विप इव स्वैरं चचार जगतीमिमाम् ।

भद्रशील के पुत्र कीर्त्तिमाली का गुण वर्णन—उन चिरञ्जीवी राजा का कीर्त्तिमाली नामक पुत्र था जो मदोद्धत, शूर, कमलनेत्र, काम के समान सौंन्दर्य युक्त, बलवान्, द्वन्द्वयुद्ध में अप्रतिम, सर्वशास्त्रविशारद, विनयशील, कृपालु, प्रतापी, सत्यप्रतिज्ञ, युद्ध में कभी पीछे न हटने वाला, गम्भीर, धन से मदमत्त, मेघ के समान गम्भीर बोलने वाला, जिगीषु तथा शत्रुहन्ता था और मदमत्त हाथी के समान समस्त जगत् में विचरण करता था ॥ ४-७ ॥

पितुरनन्तरं तेनापि धर्मतो राज्यस्य पालनम्

तस्यैवं वर्तमानस्य पिता मृत्युमुपागतः ॥ ७ ॥
पितर्युपरते श्रीमाञ्छशास पितृवद् भुवम् ।
जगत्याः सर्ववृत्तान्तं चारैः कैश्चिद्विवेद सः ॥ ८ ॥
स्वपुरे स्वयमङ्गेषु चरितं वेद सप्तसु ।

पिता के उपरत हो जाने के पश्चात् उसके द्वारा भी धर्म पूर्वक पृथ्वी पालन—इस प्रकार रहते हुये कीर्त्तिमाली के सामने ही उसके पिता की मृत्यु हो गई । तदनन्तर श्री सम्पन्न कीर्त्तिमाली ही अपने पिता के समान पृथ्वी का पालन करने लगा और गुप्तचरों के द्वारा सारे पृथ्वी का तथा अपने पुर में राज्य के सप्ताङ्गों का स्वयं ज्ञान रखने लगा ॥ ७-९ ॥

कदाचित् निशीथे गूढं सञ्चरतस्तस्य पुराद् बहिर्विप्रदर्शनम्

एकाकी चैकदा धन्वी नृपः स्वैरकथा नृणाम् ॥ ९ ॥
श्रोतुं निशीथे निर्गत्य सर्वतो व्यचरत् पुरम् ।
आपणेषु च रथ्यासु चत्वरेषु गृहेषु च ॥ १० ॥
सर्वद्वारेषु वप्रेषु सरसीषु वनेषु च ।
उपकार्यासु चैत्येषु देवतायतनेषु च ॥ ११ ॥
शस्त्रशालासु तीर्थेषु वनेषूद्यानभूमिषु ।
सञ्चरन् विप्रमासीनं शमीमूले पुराद् बहिः ॥ १२ ॥
ददर्श राजा निर्भीको ज्वलन्तमिव पावकम् ।
प्रसाधिततनुं शान्तं साक्षात्कृतसुदर्शनम् ॥ १३ ॥
सम्प्राप्तसर्वकामं तं योगारूढमकल्मषम् ।
प्रश्रयावनतो भूत्वा पप्रच्छेदं महीपतिः ॥ १४ ॥

किसी समय अर्धरात्रि में नगर में गुप्त रूप से घूमते हुये कीर्तिमाली को नगर के बाहर किसी ब्राह्मण का दर्शन होना—किसी समय वह राजा अर्ध रात्रि के समय अपने विषय में प्रजामण्डल का हाल जानने के लिए धनुष लेकर अकेले नगर में गुप्तरूप से विचरण करने लगा। आपण, गली, चौराहे, गृह, सबके दरवाजे, वप्र (खाड) सरसी वन, उपकार्या (शिविर), देवस्थान, शस्त्रशाला, तीर्थ वन और उद्यानभूमि में इस प्रकार विचरण करते हुये उस निर्भीक राजा ने नगर के बाहर शमीवृक्ष के नीचे बैठे हुये किसी ब्राह्मण को देखा। वह ब्राह्मण जाज्वल्यमान अग्नि के समान तेजस्वी, तपस्वी, शान्त सुदर्शन का साक्षात्कार करने वाला पूर्णकाम, योगारूढ़ तथा पापाचार से रहित था। तब राजा ने विनयपूर्वक जा कर उनसे पूछा ॥ ९-१४ ॥

तद्वृत्तान्तजिज्ञासोः राज्ञस्तं प्रति प्रश्नः

कस्त्वं किमर्थमधुना वृक्षमूलमुपाश्रितः।
कस्मादुपागतः सर्वमाचक्ष्वानघ पृच्छते ॥ १५ ॥

उसके वृत्तान्त को जानने की इच्छा से राजा का प्रश्न—राजा ने पूछा। आप कौन हो? किसलिए इस रात्रिकाल में वृक्ष के नीचे बैठे हो? और कहाँ से आ रहे हो? अपनी सारा वृत्तान्त मुझे बताओ मैं जानना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

योगारूढस्य तस्य राजप्रश्नमजानतो मौनीभावः

एवमुक्तोऽपि योगस्थो न वेदैतदुदीरितम्।
तथा पुनः पुनश्चोक्तो राजानं नाभ्यभाषत ॥ १६ ॥

योगारूढ़ होने के कारण ब्राह्मण को राजा के प्रश्न का भान न होने से पूर्ववत् मौन धारण—योगारूढ़ होने के कारण ब्राह्मण को राजा के प्रश्न का भान न हुआ। इसलिए राजा के द्वारा बारम्बार पूछने पर भी वह मौन ही रहा ॥ १६ ॥

बलाद् ग्रहीतुमुद्युक्तस्य राज्ञो विप्रप्रभावात् स्तम्भीभावः

बलाद् ग्रहीतुमारेभे ब्राह्मणं कुपितो नृपः।
ततस्तस्य प्रभावेण स्तब्धचेष्टोऽभवत् तदा ॥ १७ ॥

तब राजा ने उसे बलपूर्वक पकड़ना चाहा किन्तु ब्राह्मण के तेज से उसकी चेष्टा स्तब्ध हो गयी—जब क्रोध से आग बबूले हुये राजा ने उसे पकड़ना चाहा तो ब्राह्मण के तेज के प्रभाव से उसकी सारी चेष्टा स्तब्ध हो गई ॥ १७ ॥

विस्मितेन राज्ञा स्तुतिभिर्विप्रस्य प्रसादनम्

स्तब्धमात्मानमालक्ष्य विस्मयं परमं ययौ।
स्तुतिभिस्तोषयामास तं प्रणम्य ततस्तुतः ॥ १८ ॥

विस्मित हुये राजा द्वारा उसे स्तुति कर प्रसन्न करना—तब राजा अपने को सर्वथा निस्तब्ध देख कर परम विस्मय को प्राप्त हुये। फिर उस ब्राह्मण को प्रणाम कर बारम्बार उसकी स्तुति कर प्रसन्न किया ॥ १८ ॥

प्रसन्नेन विप्रेण स्ववृत्तान्तस्याविष्करणम्

तुष्टः स योगादुत्थाय जगादेदं वचो नृपम् ।
सालग्राम इति ख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
नित्यं सन्निहितस्तत्र चक्ररूपी जगत्पतिः ।
तत्र चक्राङ्कितं सर्वं स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥ २० ॥
तत्र प्रवेशमात्रेण जन्तवो वीतकल्मषाः ।
तत्र त्यक्तशरीरास्तु यान्ति निर्वाणमुत्तमम् ॥ २१ ॥
तस्मिन् देशे समुत्पन्नो ब्राह्मणः शिष्टसम्मतः ।
सुदर्शनप्रभावेण साधिताखिलसाधनः ॥ २२ ॥
गम्यते पौष्करं तीर्थं मयाद्य जगतीपते ।
निशि मार्गवशात् प्राप्तः पुरमेतत् तवर्द्धिमत् ॥ २३ ॥
पिहितद्वारमालक्ष्य शमीमूलमिह श्रितः ।

प्रसन्न हुये ब्राह्मण द्वारा अपने वृत्तान्त को प्रकट करना—तव स्तुति से प्रसन्न हुये उन ब्राह्मण ने समाधि त्याग कर राजा से कहा—विष्णु का स्थानभूत अत्यन्त श्रेष्ठ 'मालग्राम' नाम से विख्यात एक स्थान हैं । वहाँ पर स्वयं भगवान् विष्णु चक्र रूप में विराजमान रहते हैं । वहाँ भी सभी वस्तुयें चाहे स्थावर हो चाहे जङ्गम हों, चक्र के चिह्न से अङ्कित हैं । उस स्थान पर जाते ही मनुष्यों के सारे पाप धुल जाते हैं । किं बहुना वहाँ शरीर त्यागने वाले जन्तु का मोक्ष हो जाता है । मैं उसी देश में उत्पन्न हुआ कुलीन ब्राह्मण हूँ । मैंने सुदर्शन की कृपा से समस्त साधनों को प्राप्त कर लिया है । हे राजन् ! इस समय मैं पुष्कर तीर्थ की यात्रा के लिए निकला हूँ । संयोगवश रात हो जाने के कारण आपकी यह समृद्धशाली राजधानी मुझे मार्ग में प्राप्त हो गई । रात के समय नगर के फाटक बन्द हो जाने के कारण इसी शमी वृक्ष के मूल का आश्रय लिया हूँ ॥ १९-२४ ॥

विदितवृत्तान्तेन राज्ञा स्वपुरं प्रति ब्राह्मणस्यानयनम्

एवमुक्तस्ततो राजा सत्कृत्यैनमनिन्दितम् ॥ २४ ॥
प्रावेशयत् पुरीं रम्यां तत्राप्यायतनं हरेः ।
तत्रोषितस्तु तां रात्रिं सर्वसत्कारपूर्वकम् ॥ २५ ॥
अपरेद्युर्द्विजो गन्तुमारेभे पुष्करं प्रति ।

ब्राह्मण के सारे वृत्तान्त को जानकर राजा का उन्हें अपने नगर में ले आना—ब्राह्मण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने उन्हें सर्वथा निर्दोष समझा और अपनी पुरी ले आकर विष्णु मन्दिर में ठहराया । ब्राह्मण ने भी राजा से सब प्रकार सत्कार प्राप्त कर वह रात्रि वहीं बिताई । फिर प्रातःकाल पुष्कर जाने की तैयारी में लग गया ॥ २४-२६ ॥

हितमुपदेष्टुं राजप्रार्थना

राजा तु कृतपूर्वाह्णकर्माणं तमभाषत ॥ २६ ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं समस्ताभीष्टसाधनम् ।
इति श्रुतमतो भाषे भगवन् किं हितं मम ॥ २७ ॥
यथेह विन्देय सुखं परत्राप्यसपत्नकम् ।
तथा प्रसादं कुरु मे करुणार्द्रमना ह्यसि ॥ २८ ॥

हितकारक उपदेश के लिए राजा की प्रार्थना—तब राजा ने पूर्वाह्णकृत्य को समाप्त किये उन ब्राह्मण से कहा—'हे ब्राह्मण ! साधुओं के दर्शन से पुण्य तो होता ही है। सम्पूर्ण मनोभीष्ट भी पूर्ण हो जाते हैं । ऐसा हमने वृद्धों से सुना है इसलिए हे भगवन् ! आप मुझे बताइये कि मेरा हित क्या है? जिससे मैं इस लोक में तथा परलोक में निर्विघ्न सुख प्राप्त करुँ? आप मुझपर प्रसन्न होकर वैसा उपदेश कीजिये । आप बहुत दयालु दिखाई पड़ रहे हैं ॥ २६-२८ ॥

तेन राज्ञे साङ्गसौदर्शनमहामन्त्रस्योपदेशः

ततः प्रसन्नो राजानमुपसन्नं मुने द्विजः ।
सौदर्शनं महामन्त्रं षड्वर्णं सर्वसाधकम् ॥ २९ ॥
सत्कारपूर्वकं तस्मै नृपायोपादिशत् तदा ।
साङ्गमन्त्रं तथा ध्यानं साधनं यन्त्रमेव च ॥ ३० ॥
अस्त्रमन्त्रांस्तथा सर्वान् प्रवर्तकनिवर्तकान् ।
परिच्छदानि पञ्चाशद्यन्त्रितानि महामुने ॥ ३१ ॥
सर्वं तस्मै प्रदायासौ गन्तुं समुपचक्रमे ।

ब्राह्मण द्वारा राजा को अङ्ग सहित सुदर्शन मन्त्र का उपदेश—तब प्रसन्न हुये उस ब्राह्मण ने राजा को प्रशान्तचित्त तथा विनयत्वादि गुणों से युक्त देखकर छः अक्षर वाले सर्वार्थसाधक सुदर्शन महामन्त्र का सत्कारपूर्वक उपदेश दिया । अङ्ग सहित महामन्त्र का ध्यान, साधन, यन्त्र, प्रवर्तक एवं निवर्त्तक सभी प्रकार के अस्त्र मन्त्र तथा पचास यन्त्रों से युक्त परिच्छदादि हे महामुने ! सब कुछ देकर प्रस्थान करने का विचार किया ॥ २९-३२ ॥

राज्ञा गुरवे दक्षिणयाः प्रदानम्

राजा च परमप्रीतो द्रव्यजातमुपानयत् ॥ ३२ ॥
गवां सहस्रं कोटिं च सुवर्णानां तथा मुने ।
रत्नपूर्णानि हैमानि पात्राण्यन्यानि सप्त च ॥ ३३ ॥
तथा भूयांसि वासांसि महार्हाणि च भूपतिः ।
ग्रामानष्टौ च गुरवे प्रादात् परमधार्मिकः ॥ ३४ ॥

राजा का गुरु को दक्षिणादान—तब परम धार्मिक उस राजा ने प्रसन्न होकर बहुत सा द्रव्य उस ब्राह्मण को उपहृत किया । हे महामुने ! एक सहस्र कोटि गाय, उतनी ही सङ्ख्या में सुवर्ण, इसके अतिरिक्त रत्नपूर्ण सात सुवर्ण के पात्र तथा बहुमूल्य वस्त्र एवं आठ ग्राम भी अपने गुरु को भेंट किया ॥ ३२-३४ ॥

गुरुणा तदग्रहणपूर्वकं स्वाभिमतदेशस्य गमनम्

न चैच्छद् ब्राह्मणस्तत्र दक्षिणाः समुपाहृताः ।
किं कार्यमेभिर्नृपते सर्वं सङ्कल्पिते भवेत् ॥ ३५ ॥
यथेष्टं विनियुङ्क्ष्वैतदित्युक्तः प्राह भूपतिः ।
अवश्यं गृह्यतामेतन्न चेन्नैवास्मि साधकः ॥ ३६ ॥
त्यज्यतां वा यथेष्टं भो मद्दत्तं दत्तमेव हि ।
इत्युक्तो ब्राह्मणोऽप्याह राजानममितौजसम् ॥ ३७ ॥
मदर्थमर्थजातं तद् ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयताम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो भूपतिश्चैनमन्वयात् ॥ ३८ ॥
निवर्तितः स गुरुणा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ।

गुरु द्वारा उसे अस्वीकार कर स्वाभीष्ट देश की ओर प्रस्थान—राजा के द्वारा दी गई सारी भेंट अस्वीकार करते हुये ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्! मुझे इस दक्षिणा को लेकर क्या करना है? मेरा तो सारा कार्य मेरे सङ्कल्प मात्र से पूर्ण हो जाता है। आप स्वयं अपनी इच्छानुसार इन द्रव्यों का उपयोग करिए। तब राजा ने कहा—आप इसे अवश्य ग्रहण कीजिये। अन्यथा मुझे सिद्धि प्राप्त न होगी आप अपनी इच्छानुसार इसे त्यागें या ग्रहण करे, मैंने जो दिया वह दे दिया। राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर ब्राह्मण ने कहा—राजन् आप मेरी दक्षिणा ब्राह्मणों को बाँट दीजिये। ऐसा कह कर ब्राह्मण ने प्रस्थान किया। राजा भी उसके पीछे-पीछे गया। पश्चात् गुरु ने उसे लौटा दिया और सारी दक्षिणा ब्राह्मणों को बाँट दी ॥ ३५-३९ ॥

राज्ञा धर्मतो राज्यस्य प्रशासनम्

तस्मिन् गते महाराजो विप्रसात्कृत्य तद्धनम् ॥ ३९ ॥
अन्वशात् पृथिवीमेतां त्रिदिवं मघवानिव ।
नक्तंदिवं विभज्यैव धर्ममोक्षाविरोधिनौ ॥ ४० ॥
अर्थकामौ यथाकालमसेवत महीपतिः ।
राजधर्मेषु चान्येषु नात्यवर्तिष्ट किञ्चन ॥ ४१ ॥
एवं च मानवं मार्गमनुतिष्ठन् महीपतिः ।
धर्म्येण पालनेनैव प्रजा रञ्जयति स्म सः ॥ ४२ ॥

राजा का धर्मपूर्वक राज्य पर शासन—उस ब्राह्मण के चले जाने के उपरान्त उस राजा ने सारी दक्षिणा ब्राह्मणों को दे दी और इस पृथ्वी का शासन स्वर्ग में देवराज इन्द्र के समान करने लगा। उस राजा ने रात और दिन का उसी प्रकार सेवन किया जिसमें धर्म तथा मोक्ष का विरोध न हो अर्थात् समय पर सोना और ब्राह्म मुहूर्त में उठना आदि। उसी प्रकार से अर्थ और काम का जिसमें विरोध न हो वैसे ही अपने कार्य का विभाग किया। इस प्रकार परस्पर विरोध न हो, इसलिए यथाकाल उनका सेवन किया। अन्य राज धर्मों

की भी मर्यादा का किसी प्रकार उल्लङ्घन नहीं किया। इस प्रकार मनुप्रणीत धर्म मार्ग का अनुसरण करते हुये वह प्रजाओं का अनुरञ्जन करने लगा ॥ ३९-४२ ॥

वश्यावश्यपरराष्ट्रादिबुभुत्सया कदाचिदमात्यान्
प्रति राज्ञः प्रश्नः

एकदा मन्त्रिणः सर्वानाहूयास्थानमण्डपे।
पप्रच्छ पृथिवीपालः के च वश्या उतेतरे ॥ ४३ ॥
देशेषु भूमिपालेषु प्रकृतिष्वथवा मम।
ब्रूत सर्वं हि जानन्ति भवन्तश्चारचक्षुषः ॥ ४४ ॥

कौन राष्ट्र हमारे वश में है? और कौन नहीं। इस वृत्तान्त को जानने की इच्छा से राजा का अपने अमात्यों से प्रश्न—किसी समय राजा ने आस्थानमण्डप में सभी मन्त्रियों को बुलाकर पूछा कि देश में भूमिपालों में तथा हमारे प्रजामण्डल में कौन-कौन हमारे वश में है और कौन-कौन नहीं? आप लोग गुप्तचरों के द्वारा सब कुछ जानते हैं अतः हमें बताइये ॥ ४३-४४ ॥

मन्त्रिणां प्रतिवचनम्

इति प्रतिसमादिष्टास्ते सर्वे मन्त्रिणोऽवदन्।
देव त्वयि महीमेतां शासत्येव परन्तपे ॥ ४५ ॥
प्रतिपक्षाः प्रलीयन्ते तपत्यर्के यथा तमः।

मन्त्रियों द्वारा प्रत्युत्तर—राजा की इस प्रकार की आज्ञा सुनकर उन मन्त्रियों ने कहा—हे देव! आप जैसे परन्तप के इस पृथ्वी पर शासन करते हुये सारे शत्रु इस प्रकार नष्ट हो गए हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ४५-४६ ॥

कृत्स्नस्यापि भूमण्डलस्य वश्यत्वप्रतिपादनम्

साधुना पृथिवी वश्या सशैलाम्बुधिपत्तना ॥ ४६ ॥
दिवीव देव राजानः सर्वे द्वारि निवारिताः।
तव प्रकृतिवर्गेषु का कथा जगतीपते ॥ ४७ ॥

सारा भूण्डल ही आपके वश में है ऐसा प्रतिपादन—हे देव! आप जैसे सदाचारी राजा के शासन में पर्वत समुद्र सहित सारी पृथ्वी ही वश में है। यहाँ तक कि राजा लोग भी आपके द्वार पर रोके गए स्थित हैं, जिस प्रकार स्वर्ग में द्वार पर लोग रोके जाते हैं। हे जगतीपते! तब राजाओं की यह दशा है तो प्रजामण्डल के विषय में क्या कहा जाय? ॥ ४६-४७ ॥

देवादीनां वश्यत्वाभावप्रतिपादनम्

न च देवा न गन्धर्वा नासुरा न च पन्नगाः।
यथा वयं ते सेवन्ते भवन्तं परमेश्वरम् ॥ ४८ ॥
देवः प्रमाणमिति ते विज्ञाप्यार्थमुपारमन्।

केवल देवगण ही आपके वश में नहीं है इस अभाव का प्रतिपादन—हे राजन्! जिस प्रकार हम लोग आप परमेश्वर राजा की सेवा करते हैं उस प्रकार देवता गन्धर्व, असुर एवं पन्नग आपकी सेवा नहीं करते मात्र यही एक अभाव है। इस विषय में आप ही प्रमाण हैं। इतना निवेदन कर मन्त्रीगण मौन हो गए ॥ ४८-४९ ॥

पुनरमात्यान् प्रति राज्ञो देवादिविजयोपायप्रश्नः

कीर्तिमाली च तच्छ्रुत्वा देवादीनां जिगीषया ॥ ४९ ॥
व्यजृम्भत तदा सर्वान् मन्त्रिणश्चाब्रवीदिदम्।
कथमेतान् विजेष्यामो बलिनो वीर्यशालिनः ॥ ५० ॥
विचित्रयोधिनो दृप्ता मायाबलसमन्विताः।
अनुकूला विशिष्टाश्च लोकान्तरमुपाश्रिताः ॥ ५१ ॥
यथा भवन्ति ते वश्यास्तथा वदत मा चिरम्।

तब फिर देवादिकों पर विजय प्राप्ति के लिए उपाय विषयक अमात्यों से राजा का प्रश्न—कीर्तिमाली मन्त्रियों की बात सुन कर कुछ रुक सा गया। फिर देवताओं पर बिना प्राप्ति की इच्छा से मन्त्रियों से ऐसा कहने लगा, महाबली परम पराक्रमी, विचित्र प्रकार का युद्ध करने वाले उद्धत, मायाबल का आश्रय लेने वाले अन्य लोकों में रहने वाले तथा सब प्रकार से विशिष्ट ये लोग जिस प्रकार हमारे अनुकूल तथा वशवर्त्ती हों वह उपाय आप लोग बताइये। विलम्ब मत कीजिये ॥ ४९-५२ ॥

अमात्यानां प्रतिवचनम्

इत्युक्तास्तेमहाराजमूचुः सम्मन्त्र्य मन्त्रिणः ॥ ५२ ॥
एतानद्यैव यास्यामो विजेष्यामश्च संयुगे।

अमात्यों का प्रत्युत्तर—राजा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर मन्त्रियों ने आपस में मन्त्रणा कर कहा—राजन्! हम लोग आज ही प्रस्थान करेंगे तथा इन पर विजय प्राप्त करेंगे ॥ ५२-५३ ॥

स्वपक्षे बलसमृद्धिनिरूपणपूर्वकमभिषेणनोद्योगजननम्

अस्मद्वरूथिनी सर्वाचतुरङ्गबलान्विता ॥ ५३ ॥
मेरुमन्दरसङ्काशा गजाः परमदुर्जयाः।
एकैकमेव पर्याप्तं शत्रुसैन्यप्रमर्दने ॥ ५४ ॥
एवंविधानां नागानां नियुतानि दशाभवन्।
मत्तानां तुरगाणां च पञ्च कोट्यः परन्तप ॥ ५५ ॥
तिस्रः कोट्यश्च सम्पूर्णाः स्यन्दनानां तथाभवन्।
बद्धापदानमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ५६ ॥
चतुर्विधपदातीनामक्षौहिण्यश्चतुर्दश।

निशितास्त्राणि नः सङ्ख्ये यान्यसङ्ख्यानि भूपते ॥ ५७ ॥
एकतः सर्वमेतच्च एकतः केवलो बली ।
अतिरिक्तो भवान् वीर्यादिति मन्यामहे वयम् ॥ ५८ ॥
किञ्च दिव्यानि चास्त्राणि लब्धवानसि भूसुरात् ।
एभिः परिवृतस्यैवं कस्तिष्ठेत् सम्मुखे तव ॥ ५९ ॥
संवर्तवर्तिनः शम्भोर्भूतानीव दिधक्षतः ।
यत्र यत्र जिगीषा ते वर्तते तत्र मा चिरम् ॥ ६० ॥
नियुङ्क्ष्वास्मान् महाबाहो जयं विद्धि करे स्थितम् ।

अपने पक्ष की सैन्यसमृद्धि प्रगट करते हुये चढ़ाई के लिए मन्त्रियों का उद्योग करना—मन्त्रियों ने कहा—महाराज हम लोगों की सारी चतुरङ्गिणी सेना मेरु तथा मन्दर पर्वत को सदृश अलङ्घ्य है । हाथी तो परम दुर्जय है ही । शत्रु सैन्य के विमर्दन के लिए एक भी हाथी पर्याप्त है । इस प्रकार दस लाख हाथी हमारी सेना में है । हे परन्तप ! पाँच करोड़ मदमत्त घोड़े है तथा समस्त सामग्री युक्त रथ पर सवार होने वाले, युद्ध में पीछे न हटने वाले तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले ऐसे तीन करोड़ रथी हैं । इस प्रकार पैदल सेनाओं को लेकर हमारी चतुरङ्गिणी सेना चौदह अक्षौहिणी हैं । ये सभी अक्षौहिणी सेना एक ओर तथा अकेले महाबलवान् आप एक ओर । फिर भी बल में आप उनकी अपेक्षा भारी पड़ेंगे ऐसा हम लोगों का विचार है क्योंकि आपने ब्राह्मण द्वारा दिव्यास्त्र प्राप्त किया है । इस प्रकार की सेनाओं से संयुक्त आप के सम्मुख लड़ाई में कौन टिकने वाला है? जिस प्रकार प्रलय काल में संवर्त्त बन कर प्राणियों का संहार करने वाले महादेव के सामने कोई नहीं टिक सकता । अतः हे राजन् ! अव विलम्ब मत कीजिये । जिस पर जहाँ-जहाँ आपको विजय की कामना हो वहाँ हमें नियुक्त कीजिये । हे महाबाहो विजय तो आपके हस्तगत है ही ॥ ५३-६१ ॥

मन्त्रिवचनात् प्रथमं राज्ञो नागलोकाभिगमनम्

इत्युक्तः परमप्रीतः कीर्तिमाली महाबलः ॥ ६१ ॥
सर्वानमात्यानाहूय तत्तत्सेना महाहृता ।
नागलोकं प्रयात्वद्य युध्यतामद्य पन्नगैः ॥ ६२ ॥
अहं चाद्यैव यास्यामि समूलबलवाहनः ।
इत्युक्त्वा तैः परिवृतो जगाम स महीपतिः ॥ ६३ ॥

मन्त्रियों के कथनानुसार राजा की नागलोक पर चढ़ाई—मन्त्रियों के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महाबली राजा कीर्त्तिमाली प्रसन्न हो सभी अमात्यों को बुलाकर बोले—मैंने हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदलों की सेना ठीक कर ली है । वह आज ही नागलोक प्रयाण करे तथा आज ही नागों से लड़ाई प्रारम्भ कर दे और मैं भी अपने वाहन पर सवार होकर चल रहा हूँ । ऐसा कहकर वह राजा अपनी सेना के साथ नागलोक के लिए कूच कर दिया ॥ ६१-६३ ॥

गारुडास्त्रप्रभावेण तत्र राज्ञो विजयप्राप्तिः तथा दैत्यविजयः

तत्र तैः पन्नगैर्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ।
ततोऽचिरेण कालेन दिव्यास्त्रेण गरुत्मतः ॥ ६४ ॥
विजयं प्राप्तवांस्तत्र तेभ्यो रत्नादिकं करम् ।
गृहीत्वा दैत्यनाशाय मनश्चक्रे महामनाः ॥ ६५ ॥

गरुडास्त्र के प्रभाव से राजा की नागलोक पर विजय—फिर तो नागलोक में राजा का पन्नगों के साथ रोमाञ्चकारी युद्ध प्रारम्भ हो गया । थोड़ी ही देर में गरुड़ के दिव्यास्त्रों से राजा को विजय लाभ हो गया । फिर वहाँ के रत्नादि को कर स्वरूप ग्रहण कर उस मनस्वी राजा ने दैत्यों के विनाश का सङ्कल्प किया ॥ ६४-६५ ॥

तैर्युद्धमभवत् तीव्रं चिरकालं महामुने ।
नाशयित्वा तु तत्सैन्यं विजयं परमं ययौ ॥ ६६ ॥

दैत्यों पर विजय—हे महामुने ! तदनन्तर दैत्यों के साथ चिरकाल तक लड़ाई चली और अन्त में राजा ने दैत्यों की सेना का विनाश कर विजय प्राप्त कर लिया ॥ ६६ ॥

यक्षगन्धर्वादिजयपूर्वकं राज्ञः स्वनगरागमनम्

ततश्च यक्षगन्धर्वान् सिद्धविद्याधरानपि ।
निर्जित्य समरे सर्वान् किङ्करानकरोद् बली ॥ ६७ ॥
एतान् विजित्य समरे स्वपुरं पुनरराययौ ।

यक्ष गन्धर्वादिकों पर विजय प्राप्त कर राजा का स्वनगर में आगमन—तदनन्तर उस बलवान् राजा ने यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधरों को युद्ध में जीत कर सबको अपना किङ्कर बना लिया और अपने नगर की ओर लौट आया ॥ ६७-६८ ॥

तत्र स्वपरिवारेषु देवानामदर्शनादिन्द्रं प्रति सन्देशप्रेषणम्

आस्थानसद्मन्यासीनो राजभिः परिवारितः ॥ ६८ ॥
तथा गन्धर्वयक्षैश्च दानवैः पन्नगेश्वरैः ।
चक्रवर्ती निजास्थाने नामरान् ददृशे तदा ॥ ६९ ॥
ततो मनोजवं नामगन्धर्वमिदमूचिवान् ।
अद्य त्रिदिवमभ्येत्य वचनान्मम वासवम् ॥ ७० ॥
ब्रूया ऐरावतं नागं कुलिशं कल्पकं तथा ।
अष्टौ चाप्सरसः क्षिप्रं मदर्थं विसृजेति वै ॥ ७१ ॥

वहाँ अपने वश में देवताओं को न देख इन्द्र के यहाँ सन्देश भेजना—वहाँ अपने सभामण्डप के सिंहासन पर बैठ हुये राजा ने अपनी सभा में राजाओं को गन्धर्व, यक्ष, दानवों एवं पन्नगेश्वरों से परिवेष्टित अपने को देखा, किन्तु उस चक्रवर्ती ने अपनी सभा में

देवताओं को नहीं देखा । तब उसने मनोजव नाम के गन्धर्व से ऐसा कहा—हे मनोजव ! आप आज अभी स्वर्ग में जाकर इन्द्रदेव से मेरा सन्देश कहो कि वे ऐरावत हाथी, वज्र, कल्पवृक्ष एवं आठ अप्सरायें मेरे लिए शीघ्र भेज दें ॥ ६८-७१ ॥

राजसन्देशात् मनोजवनाम्नो दूतस्यामरावतीगमनम्

मनोजवस्तथेत्युक्त्वा शिरसा चक्रवर्तिनः ।
मालामिवाज्ञां संगृह्य प्रययावमरावतीम् ॥ ७२ ॥

राजा का सन्देश लेकर मनोजव नामक दूत का अमरावती गमन—मनोजव ने चक्रवर्त्ती उस राजा की आज्ञा 'तथास्तु' कह कर माला की भाँति स्वीकार कर ली और सन्देश लेकर अमरावती पुरी को चल दिया ॥ ७२ ॥

तत्रास्थानमण्डपे वासवदर्शनम्

प्रविश्य तत् पुरं रम्यमुपमानं परं पुराम् ।
वासवं वसुभी रुद्रैरादित्यैश्च समावृतम् ॥ ७३ ॥
आस्थानमण्डपासीनमप्सरोगणसेवितम् ।
विश्वावसुमुखैः सिद्धैः स्तूयमानं शचीपतिम् ॥ ७४ ॥
ददर्श स तदा देवं नाट्यदर्शनलालसम् ।
दृष्ट्वा प्रणम्य तुष्टाव विरते नृत्यकर्मणि ॥ ७५ ॥

वहाँ सभा मण्डप में इन्द्रदेव का दर्शन—पुरों में सर्वश्रेष्ठ उस पुर में प्रवेश कर मनोजव ने वसु, रुद्र, आदित्यादि देवताओं के साथ सभा मण्डप में बैठे इन्द्र देव को देखा, अप्सरायें जिनकी सेवा कर रही थीं एवं विश्वावसु प्रमुख-प्रमुख सिद्ध उनकी स्तुति कर रहे थे । स्वयं वे नृत्य देख रहे थे । तब नृत्य समाप्त हो जाने पर मनोजव ने उन्हें प्रणाम किया फिर स्तुति की ॥ ७३-७५ ॥

वासवेन दूतस्याभिनन्दनम्

दृष्ट्वा प्रीतः सुरपतिर्मनोजवमवैक्षत ।

इन्द्र द्वारा दूत का सत्कार—मनोजव को देख कर प्रसन्न हुये देवराज ने उसका अभिनन्दन किया ॥ ७६ ॥

दूतेनेन्द्राय राजसन्देशस्य निवेदनम्

विमलीकृतमात्मानं मन्यमानः स वीक्षितैः ॥ ७६ ॥
व्यजिज्ञपद्यथावृत्तं वृत्रहन्त्रेऽविलम्बितम् ।
देव भूमण्डले कश्चित् कीर्तिमालीति विश्रुतः ॥ ७७ ॥
चक्रवर्ती सुरपते देवायैतन्न्यवेदयत् ।

दूत द्वारा राज सन्देश का निवेदन—इन्द्र की दृष्टि से अपने को कृतकृत्य मानते हुये दूत ने बिना कुछ विलम्ब किये ही शीघ्रता से उन्हें राजा का सन्देश इस प्रकार सुनाया—हे

देव ! भूमण्डल में कीर्तिमाली नाम का कोई चक्रवर्ती राजा है । उसने आपसे यह निवेदन किया है ॥ ७६-७८ ॥

दूतेन राजोक्तसन्देशस्यानुवादः

विनिर्जिता मया लोकाः सर्वे त्रिविदमन्तरा ॥ ७८ ॥
भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतं त्रिदिवेश्वर ।
आरोहणार्थं नागेन्द्रमैरावतमवारितम् ॥ ७९ ॥
कल्पकं कुलिशं चाष्टौ योषितो विसृजेह नः ।
इत्थमाज्ञापितं तेन महाराजेन गोपते ॥ ८० ॥
देवः प्रमाणमत्रेति विरराम मनोजवः ।

दूत द्वारा राजोक्तसन्देश का अनुवाद—'मैंने स्वर्गलोक के अतिरिक्त सारे लोकों को जीत लिया है । हे त्रिदिवेश्वर ! अब मैं आपका दर्शन करना चाहता हूँ' अतः मुझे चढ़ने के लिए नागेन्द्र ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, वज्र तथा आठ अप्सरायें बिना किसी हिचकिचाहट के भेज दें । हे गोपते ! महाराज ने ऐसी आज्ञा दी है, अब आप ही प्रमाण हैं' ऐसा कहकर मनोजव चुप हो गया ॥ ७८-८१ ॥

सन्देशश्रवणात् कुपितस्येन्द्रस्य तत्प्रतिक्रियाचरणम्

ततो विहस्य मघवानास्थाने देवसेविते ॥ ८१ ॥
प्राह गम्भीरया वाचा विज्ञायैतां विडम्बनाम् ।
वज्रमैरावतं नागं प्रेषयाम्यद्य ते उभे ॥ ८२ ॥
आगत्य स्वयमन्यांस्तु समाहृत्य प्रयात्वसौ ।
इत्युक्त्वा प्रेषयामास वज्रमैरावतं गजम् ॥ ८३ ॥

सन्देश को सुनते ही क्रुद्ध इन्द्र का प्रतीकारात्मक आचरण—तब देव सेवित सभामण्डप में बैठे हुये इन्द्रदेव ने इसे विडम्बना की बात जान कर हँसते हुये मेघगम्भीर वाणी में कहा—आज अभी वज्र और ऐरावत यह दोनों भेज रहा हूँ और शेष वह यहाँ आकर स्वयं ले जावें । इतना कह कर उन्होंने वज्र और ऐरावत हाथी दोनों राजा के पास भेज दिया ॥ ८१-८३ ॥

सवज्रेणैरावतेन राजसैन्यस्य विनाशनम्

निष्क्रम्योभौ विविशतुः कीर्तिमालिमहापुरीम् ।
प्रविश्यैरावतो नागो वज्रमादाय वाहिनीम् ॥ ८४ ॥
अदृष्टेनैव रूपेण जघानैनां महामुने ।

वज्र के साथ ऐरावत द्वारा समस्त राज सेना का विनाश—दोनों ने ही स्वर्ग से निकल कर कीर्त्तिमाली की महापुरी में प्रवेश किया और प्रवेश करते ही ऐरावत हाथी ने अपने हाथ में वज्र लेकर अदृश्य हो राजसेना को विनष्ट कर दिया ॥ ८४-८५ ॥

भीतैर्जानपदैः राज्ञे तद्वृत्तान्तस्य निवेदनम्

हन्यमानेषु सैन्येषु गजवाजिभटात्मसु ॥ ८५ ॥
सर्वे जानपदा भीता भूपायैतन्न्यवेदयन् ।
देव सोमोद्भवा नागा निहता भुवि शेरते ॥ ८६ ॥
तथा हयोत्तमाः शूरा भटाः परमशोभनाः ।
अकस्मादेव दृश्यन्ते निहता जगतीपते ॥ ८७ ॥

भयभीत हुये राजा की प्रजाओं द्वारा इस वृत्तान्त का निवेदन—ऐरावत के द्वारा मारे गए हाथी, घोड़े तथा महाभटों को देख कर राज्य की प्रजाओं ने महाराज से सारी बातें कहीं । उन्होंने कहा—हे देव ! सोमवंशीय हाथी मारे जाने से पृथ्वी पर गिरे हुये हैं, इसी प्रकार उत्तमोत्तम घोड़े, शूर तथा परम तेजस्वी महाभट अकस्मात् मर कर पृथ्वी पर पड़े हुये हैं ॥ ८५-८७ ॥

सैन्यविनाशश्रवणात् दुःखितेन राज्ञा पुरोधसं प्रति प्रश्नः

एतच्छ्रुत्वा महाराजः शोकेन महता वृतः ।
पुरोधसं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८८ ॥
वारणा वाजिनो योधा हन्यन्ते कारणादृते ।
न रोगो दृश्यते चैषु न तापः कालकल्पितः ॥ ८९ ॥
नाभिचारः परकृतो दृश्यते सुनिरूपितः ।
किमेतच्चिन्त्यतां ब्रह्मन् भ्रमतीव च मे मनः ॥ ९० ॥

अपनी सेना का विनाश देख दुःखी हुये राजा का पुरोहित से पूछताछ—इस बात को सुनते ही महाराज शोकाकुल हो गए । फिर पुरोहित को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे ! हाथी घोड़े तथा योधागण मरे पड़े हैं । किन्तु उनके मरने का कोई भी कारण दिखाई नहीं पड़ता । न उनको कोई रोग हुआ और न समयानुसार उनको ज्वर जूड़ी आई किसी शत्रु द्वारा योजना बद्ध कोई अभिचार भी नहीं किया गया । फिर भी ये मर गए । हे ब्रह्मन् ! इसके कारणों का पता लगाइये । मेरा मन अत्यन्त भ्रमित है ॥ ८८-९० ॥

पुरोधसा देवकोपस्यैव तत्कारणत्वेन निवेदनम्

इत्युदीरितमाकर्ण्य पुरोधाश्चाप्यचिन्तयत् ।
चिन्तयित्वा जगादैतद् देवकोपादुपागतम् ॥ ९१ ॥
इति शङ्के न शोकस्य वशमागाः परन्तप ।

इसमें देवकोप ही कारण है ऐसा पुरोहित का निवेदन—राजा की बात सुनकर पुरोहित विचार करने लगे । विचार करने के पश्चात् उन्होंने कहा—देव कोप के कारण ही ऐसा हो रहा है । मुझे यही आशङ्का हो रही है । हे राजन् ! आप शोक के वश में मत होइये ॥ ९१-९२ ॥

अत्रान्तरे मनोजवसमागमः

इति चिन्तयतोरेव तयोरागान्मनोजवः ॥ ९२ ॥
प्रणतः प्राञ्जलिस्तस्थौ महाराजस्य पार्श्वतः ।

मनोजव का आगमन—अभी दोनों विचार ही कर रहे थे कि मनोजव अमरावती से आ पहुँचा । फिर प्रणाम कर हाथ जोड़े महाराज के पार्श्वभाग में खड़ा हो गया ॥ ९२-९३ ॥

मनोजवं प्रति राज्ञः प्रश्नः

मनोजव किमानीतमुक्तरत्नचतुष्टयम् ॥ ९३ ॥
किमाह वासवः सर्वं कथयाद्याविलम्बितम् ।

मनोजव से राजा का प्रश्न—राजा ने मनोजव से पूछा—मनोजव ! क्या आप इन्द्र के पास से रत्नचतुष्टय ले आये? इन्द्र ने क्या कहा? शीघ्र बताइए । बिल्कुल विलम्ब मत करिए ॥ ९३-९४ ॥

मनोजवेन राज्ञे निवेदनम्

इत्युक्तस्तेन सकलं पृष्टमस्मै न्यवेदयत् ॥ ९४ ॥
राजवाक्यस्य कथनमतो मघवतः स्मयः ।
वज्रैरावतयोस्तेन प्रेषणं तद्वचस्ततः ॥ ९५ ॥

मनोजव का राजा से निवेदन—राजा के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर मनोजव ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया । जिस प्रकार राजा का सन्देश सुनाया तथा जिस प्रकार इन्द्र ने अपना अहङ्कार सूचित किया । फिर वज्र तथा ऐरावत को जैसे भेजा और राजा को जो सन्देश दिया ये सारी बातें उसने जैसी की तैसी सारी बातें कह दी ॥ ९४-९५ ॥

स्वसैन्यविनाशमैरावतकृतं ज्ञातवता राज्ञा वारणास्त्रेणैरावतस्य स्तम्भनम्

एवं तेनेरितो राजा निश्चित्यैरावतक्रियाम् ।
पुरोधसा प्रतीकारं तस्य सम्मन्त्र्य तत्क्षणात् ॥ ९६ ॥
व्यसृजद्वारणाख्यास्त्रं दिव्यं वारणवारणम् ।
तदस्त्रं तु गजं प्राप्तं निश्चेष्टः सोऽभवत् तदा ॥ ९७ ॥

ऐरावत के द्वारा अपनी सेना का विनाश जान कर वारण अस्त्र द्वारा ऐरावत का स्तम्भन—मनोजव की बात से राजा ने जान लिया कि सारा उपद्रव ऐरावत ने किया है । फिर तत्क्षण पुरोहित के साथ उसके प्रतीकार की मन्त्रणा की और हाथियों को वारण करने वाले वारण नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जो ऐरावत को लगा जिससे वह स्तब्ध रह गया ॥ ९६-९७ ॥

तच्छ्रुतवता वासवेन युद्धार्थं देवसैन्यस्य प्रेषणम्

स्तब्धमैरावतं वज्रं तेनास्त्रेण महात्मना ।

व्यजिज्ञपुर्मघवते सुराश्चैरावतानुगाः ॥ ९८ ॥
तच्छ्रुत्वा परमक्रुद्धो मघवान् समनह्यत ।
सन्नद्धमिन्द्रमालक्ष्य सुराश्चुक्षुभिरे तदा ॥ ९९ ॥
प्रेषितास्तेन ते सर्वे सैनिकास्तत्पुरं ययुः ।
प्रलयोज्जृम्भिताम्भोधिकल्पं सैन्यं शतक्रतोः ॥ १०० ॥

यह बात सुनकर इन्द्र द्वारा राजा से युद्ध के लिए अपनी देवसेना का प्रेषण—उस महान् अस्त्र के प्रयोग से जब ऐरावत एवं वज्र स्तब्ध (निश्चेष्ट) हो गए तब देवताओं ने एवं ऐरावत के साथियों ने इन्द्र से सारी बातें कही । इसे सुनते ही इन्द्र क्रोध से आग बबूले हो गए और युद्ध की तैयारी में लग गए । इन्द्र की इस प्रकार युद्ध की तैयारी करते देख देवता लोग संक्षुब्ध हो उठे । फिर उनके द्वारा भेजे गए समस्त सैनिक राजा की राजधानी में गए । इन्द्र की वह सेना प्रलयकालीन महासमुद्र के समान अत्यन्त विशाल थी ॥ ९८-१०० ॥

ततो देवमानुषसेनयोर्घोरयुद्धप्रवृत्तिः

विलोक्य त्वरितो राजा ससैन्यो निर्ययौ पुरात् ।
ततः प्रववृते युद्धं देवमानुषसेनयोः ॥ १०१ ॥

तदनन्तर देव और मानुष सैन्य समूहों मे घनघोर युद्ध का आरम्भ—इन्द्र की उस महती सेना को देख कर राजा भी अपनी सेना के साथ नगर के बाहर चल पड़ा । फिर तो दैवी एवं मानुषी सेना का घनघोर युद्ध होने लगा ॥ १०१ ॥

प्रवृत्तयुद्धवर्णनम्

अदृष्टचरमाश्चर्यं हाहाकारि भयावहम् ।
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खभेरीरवैरपि ॥ १०२ ॥
क्ष्वेलितैस्तलशब्दैश्च विहायः समपूर्यत ।
नागा युयुधिरे नागैः पत्तिभिः पत्तयस्तथा ॥ १०३ ॥
स्यन्दनैः स्यन्दनाश्चाश्वैरश्वाश्चैव परस्परम् ।
नाराचैः परिघैः शूलैः पट्टसैर्मुद्गरैरपि ॥ १०४ ॥
कार्मुकैः शक्तिभिः खड्गैः प्रासैः कुन्तैः परश्वधैः ।
एवं नानाविधैः शस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ १०५ ॥
केचिन्निकृत्तशिरसः केचिच्छिन्नोरसः परैः ।
केचिदुत्कृत्तशस्त्रास्तु विद्धवक्षांसि कानि च ॥ १०६ ॥
छिन्नहस्ता गजाः केचित् खड्गनिर्भिन्नमस्तकाः ।
भल्लैर्निर्भिन्नहृदया दृश्यन्ते तुरगास्तथा ॥ १०७ ॥
प्रवृत्ता रक्तसरितो हस्तिस्यन्दनवाजिनाम् ।
निपतच्छस्त्रसम्भिन्ना दृश्यन्ते रणभूमयः ॥ १०८ ॥

महायुद्ध का वर्णन—वैसा आश्चर्यकारी महायुद्ध कभी देखा नहीं गया। हाहाकार के शब्द से भय उत्पन्न करने वाला था। दिव्य दुन्दुभी के बजने से तथा शङ्ख और भेरी के निनाद से परस्पर युद्ध क्रीड़ा से एवं तल-ताड़ी ठोकने के शब्दों से सारा आकाश पूर्ण हो रहा था। हाथी-हाथी से पैदल-पैदल से, रथी रथियों से, घोड़े-घोड़ों से परस्पर लड़ रहे थे। वीर लोग बाण, परिघ, शूल, पट्टिश, मुद्गर, कार्मुक शक्ति, खड्ग, प्रास, भाले और फरसे आदि नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। किन्हीं के सिर काट दिए गए और किसी दूसरे के छाती पर प्रहार किया। किसी के शस्त्र काट दिये गए तो किसी के शस्त्रों ने कितनों का हृदय विदीर्ण कर दिया। किसी हाथी का हाथ (सूँड़) कट गया तो किसी का मस्तक खड्ग से काट दिया गया। कितने घोड़ों के वक्षःस्थल में भाले घोंप दिये गए। उस समय हाथियों एवं रथ में जुते घोड़ों के रक्त से रक्त की नदी बह चली। सारी की सारी रणभूमि प्रयोग में लाये गए शस्त्रों से पट गई॥ १०२-१०८॥

तत्र जिगीषुणेन्द्रेण स्वसेनाधिपतीनां प्रचोदनम्

एवं प्रवृत्ते संग्रामे जयार्थी पाकशासनः।
देवसेनापतीन् सर्वांश्चोदयामास सत्वरः॥ १०९॥

विजय चाहने वाले इन्द्र के द्वारा अपने सेनापतियों को ललकारना—इस प्रकार चल रहे संग्राम में विजय चाहने वाले देवराज ने अपने सेनापतियों को शीघ्र प्रोत्साहित करते हुये ललकारा॥ १०९॥

देवसेनापतीनां तात्कालिकजयप्राप्तिः

तेन प्रवर्तिता देवा विद्राव्य नृपतेर्बलम्।
विजयं लेभिरे सद्यस्ततः क्रुद्धोऽभवन्नृपः॥ ११०॥

देवराज के सेनापतियों की तात्कालिक विजय—इन्द्र के द्वारा प्रेरित देव सेनापतियों ने राजा की सारी सेना भगा दी। जिससे वे तत्क्षण विजयी हो गए। यह देख कर राजा के क्रोध का पारावार नहीं रहा॥ ११०॥

राज्ञा दिव्यास्त्रस्य विमोचनम्

विनष्टे स्वबले सोऽथ दिव्यास्त्राणि मुमोच ह।
आग्नेयादीनि चास्त्राणि प्रवृत्तानि महामुने॥ १११॥

राजा द्वारा दिव्यास्त्र का प्रयोग—तब, हे महामुने! अपनी सेना को विनष्ट हुई देख राजा ने दिव्यास्त्रों एवं आग्नेयादि महान् अस्त्रों का प्रयोग किया॥ १११॥

तेषामपीन्द्रेण निवारणान्निर्विण्णेन राज्ञा सुदर्शनयन्त्रघटितवितानसमाश्रयणम्

निवृत्य बलभित् क्रुद्धः प्रत्यस्त्रैस्तान्यवारयत्।
ततो निर्वेदमापन्नः कीर्तिमाली द्विजोत्तमात्॥ ११२॥
लब्धं विमानं सस्मार तत्तथाकारयत् ततः।

सुदर्शनमहायन्त्रयन्त्रितं सवितानकम् ॥ ११३ ॥
कृत्वा निषेदिवांस्तस्य छायायां स महीपतिः ।

इन्द्र द्वारा उन अस्त्रों के निवारण से खिन्न राजा द्वारा सुदर्शन वितान का आश्रय लेना—इन्द्र ने पुनः लौट कर क्रुद्ध हो, उन अस्त्रों को काट देने वाले अस्त्र चला कर उनका वारण कर दिया । यह देख खिन्न हुये राजा कीर्त्तिमाली ने उस ब्राह्मण द्वारा प्राप्त विमान का स्मरण कर उसी प्रकार ब्राह्मणोपदिष्ट मन्त्र से उसका आवाहन किया । फिर सुदर्शन महायन्त्र से नियन्त्रित उस वितान को अपने शिर पर चँदवे के समान तान कर उसकी छाया में बैठ गया ॥ ११२-११४ ॥

राजप्रयुक्तेन वैष्णवचक्रेण देवसैन्यस्य प्रतिहतिः

प्राहिणोद्विष्णुचक्रं तु महास्त्रप्रभवं परम् ॥ ११४ ॥
तेजसा विश्वमापूर्य विरराज विहायसि ।
तस्यैव तेजसा सर्वे सुराः प्रतिहता रणे ॥ ११५ ॥
विनिघ्नाश्चेष्टितुं नैव शेकुर्देवगणा मुने ।

राजा द्वारा चलाये गए वैष्णव चक्र से देवसेना का विनाश होना—राजा ने सम्पूर्ण महान्-महान् अस्त्रों के जनक उस विष्णु चक्र को चलाया । वह अपने तेज से सारे विश्व को पूर्ण कर आकाश मण्डल में शोभित होने लगा । हे महामुने ! उसके तेज से सारे देवगण युद्ध में प्रतिहत होकर मर गए । तथा किसी प्रकार की चेष्टा करने में सर्वथा असमर्थ हो गए ॥ ११४-११६ ॥

वासवप्रयुक्तानां दिव्यास्त्राणामपि तस्मिन् विष्णुचक्रे विलयः

ततः क्रुद्धः स मघवान् दिव्यास्त्राणि व्यसर्जयत् ॥ ११६ ॥
तानि सर्वाणि निर्गत्य विष्णुचक्रे निलिल्यिरे ।
सर्वास्त्रप्रकृतौ तस्मिञ्छलभा इव पावके ॥ ११७ ॥
ततश्चिक्षेप शस्त्राणि सर्वाण्यपि पुनः पुनः ।
तानि तत्रैव लीनानि सरितः सागरे यथा ॥ ११८ ॥

इन्द्र द्वारा चलाये गए सभी दिव्यास्त्रों का विष्णुचक्र में विलय—तदनन्तर क्रुद्ध हुये देवराज ने पुनः दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया । किन्तु वे सभी उनसे निकल कर सभी अस्त्रों के जन्मदाता उसी विष्णुचक्र में उसी प्रकार विलीन हो गए जिस प्रकार पतङ्ग पावक में विलीन हो जाता है । फिर भी इन्द्रदेव ने बारम्बार उन दिव्यास्त्रों का पुनः प्रयोग किया । किन्तु सभी उस चक्र में इस प्रकार विलीन होते गए जिस प्रकार नदियाँ सागर में विलीन हो जाती हैं ॥ ११६-११८ ॥

अन्ततो वज्रस्याप्यकिञ्चित्करत्वम्

ततश्च परमक्रुद्धो वज्रं सुरसुपूजितम् ।
चिक्षेप तच्च तत्रैव तथैवान्तरधीयत ॥ ११९ ॥

अन्त में इन्द्र द्वारा प्रयुक्त वज्र भी अकिञ्चित्कर हो गया—तब क्रुद्ध हुये इन्द्र ने देवताओं से प्रशंसित अपने वज्र को चलाया। किन्तु वह भी उसी में जाकर उसी में विलीन हो गया॥ ११९॥

स्वपराजयात् विस्मितस्य शक्रस्य राज्ञा सह संलापः

तद् दृष्ट्वा विस्मितः शक्रो राजपार्श्वमुपाययौ।
कीर्तिमाली च देवेन्द्रं विमानस्थं पुरः स्थितम्॥ १२० ॥
उत्थाय प्रणतो भूत्वा तुष्टाव शुभया गिरा।
ततस्तुष्टः शचीनाथो राजानमिदमब्रवीत्॥ १२१ ॥
पुरा विमुक्तान्यस्त्राणि विफलानि तवाभवन्।
अधुना विपरीतानि दृश्यन्ते कारणं वद॥ १२२ ॥

अपने सारे पराक्रम को निष्फल देखकर देवराज इन्द्र का राजा से सम्भाषण करना—अपने सारे प्रयत्नों को, किं बहुना, वज्र प्रयोग को भी निष्फल हुआ देख इन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अन्त में इन्द्र स्वयं राजा के पास आये। तब कीर्त्तिमाली भी अपने आगे विमान पर स्थित इन्द्रदेव को देख कर उठ खड़े हुये और प्रणाम कर विनम्र हो शुभवाणी से स्तुति करने लगे। तदनन्तर सन्तुष्ट हुये देवराज इन्द्र ने राजा से कहा—हे राजन्! प्रथम आपके द्वारा प्रयुक्त सभी अस्त्र निष्फल हो गए थे। किन्तु इस समय सभी अस्त्र उसके विपरीत हो सफल हो गए। इसका क्या कारण है? आप बताइए॥ १२०-१२२॥

राज्ञा सुदर्शनयन्त्रघटितवितानप्रभावात् स्वस्याजय्यत्वस्य ख्यापनम्

सुदर्शनमहायन्त्रयन्त्रितस्य प्रभावतः।
वितानस्य हरे प्राप्तमजय्यत्वमवेहि नः॥ १२३ ॥

राजा का सुदर्शनयन्त्र से घटित वितान (=आच्छादन) के प्रभाव को अपने विजय में कारण बताना—राजा ने कहा—देवराज! श्रीविष्णु के सुदर्शन महायन्त्र से यन्त्रित वितान के प्रभाव से मैंने यह अजयेता प्राप्त की है। ऐसा आप जान लीजिये॥ १२३॥

राजशक्रयोः सख्यकरणपूर्वकं स्वस्वस्थानगमनम्

अतः परं महाराज सख्यं भवतु चावयोः।
यन्मे तत् तव यत् ते स्यात् तन्मम स्यादिति ब्रुवन्॥ १२४ ॥
स ययौ त्रिदिवं देवः सबलायुधवाहनः।
कीर्तिमाली च सन्तुष्टो विजयी स्वपुरं ययौ॥ १२५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां कीर्तिमाल्युपाख्यान-
वर्णनं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥
॥ आदितः श्लोकाः ३२३७ ॥

* * *

राजा तथा देवराज इन्द्र का परस्पर एक दूसरे का सत्कार कर अपने-अपने निवास स्थान पर लौट आना—तब देवराज इन्द्र ने कहा—हे महाराज ! अब हमारे और आपके बीच मैत्री हो, जो हमारा हो, वह आपका हो और जो आपका हो वह मेरा हो—ऐसा कहते हुये देवराज इन्द्र अपनी सेना एवं अस्त्र-शस्त्र तथा वाहन के साथ स्वर्ग चले गए और कीर्त्तिमाली भी इन्द्र की मैत्री से सन्तुष्ट होकर विजय प्राप्त कर अपने पुर की ओर लौट आए ॥ १२४-१२५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के कीर्त्तिमाली उपाख्यान वर्णन नामक पचासवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५० ॥

* * *

अथ एकपञ्चाशोऽध्यायः

तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरे का एक बार भी ध्यान अनेक करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

तारादिमन्त्रार्थप्रश्नः

नारदः—

भगवन् भूतभव्येश भगनेत्रनिपातन ।
साधकानां हितार्थाय यन्त्रं नानाविधात्मकम् ॥ १ ॥
नानामन्त्रमयं प्रोक्तं नानाशक्त्युपबृंहितम् ।
प्रदर्शितानि चास्त्राणि द्वितयानीह शङ्कर ॥ २ ॥
विधानमपि च प्रोक्तं दिव्यं माहाभिषेचनम् ।
उक्ता चोच्चावचा शान्तिरियं ग्लपितयातना ॥ ३ ॥
ऋग्भिरप्युदिता सम्यगस्त्रशक्तिरनेकधा ।
नानाफला महावीर्या मन्त्रा एवात्र कारणम् ॥ ४ ॥
उक्ता भगवता पूर्वं मन्त्रास्ते तारकादयः ।
एषामर्थकृतं भावं वक्तुमर्हसि शङ्कर ॥ ५ ॥
यत्तज्ज्ञानं महत् प्रोक्तं सर्वशास्त्रार्थसम्भवम् ।
तत्ते मनोमयं सर्वं सर्वज्ञो ह्यसि शाश्वत ॥ ६ ॥

तारादि मन्त्रों का अर्थ प्रतिपादन करने के लिए प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भूत तथा भविष्य काल के ईश, हे भगनेत्रभञ्जक ! हे भगवन् ! आपने साधकों के हित के लिए नाना मन्त्रों से युक्त एवं नाना शक्तियों से उपबृंहित नाना प्रकार के यन्त्रों का आख्यान किया । हे शङ्कर ! प्रवर्त्तक एवं निवर्त्तक इन दो भेदों वाले अस्त्रों का भी प्रदर्शन किया । विधान सहित दिव्य महाभिषेचन भी कहा और रोगादि आपत्तियों को नष्ट करने वाली

वैदिक ऋचाओं से होने वाली शान्ति को भी बड़े एवं सामान्य लोगों के लिए कहा तथा अस्त्रों की अनेक प्रकार की शक्तियों का भी भली प्रकार से निरूपण किया तथा यह भी कहा कि इन सभी कार्यों में अनेक प्रकार के फल देने वाले महाबलवान् मन्त्र ही कारण हैं। एतदर्थ आपने पूर्व में तारकादि मन्त्रों का उपदेश भी दिया । अब हे शङ्कर ! इन मन्त्रों के अर्थ द्वारा उत्पन्न हुये भावों का भी प्रतिपादन कीजिये । क्योंकि सभी शास्त्रों के अर्थ से उत्पन्न होने वाला यह ज्ञान महाविशाल है, जो सभी आपके मन में विद्यमान हैं । हे शाश्वत ! आप सर्वज्ञ हैं कोई भी शास्त्रार्थ आपसे छिपे नहीं है ॥ १-६ ॥

उत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन मन्त्राणामर्थजं यशः ।
यद्विज्ञानान्नरः शश्वत् सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

उत्तर देने का उपक्रम—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब आप मन्त्रों से उत्पन्न होने वाले अर्थों की प्रशंसा सुनिए जिसके जान लेने से मनुष्य सर्वदा के लिए सर्वज्ञ बन जाता है ॥ ७ ॥

तारकस्य सर्वश्रैष्ठ्यप्रतिपादनम्

तारको नाम यो भावः सारः सर्वगिरामयम् ।
प्रभवन्ति ह्यतः शब्दा अपियन्ति च तं पुनः ॥ ८ ॥
अनेनाप्यायिताः शब्दा भावं पुष्णन्ति च स्वकम् ।

सभी मन्त्रों में तारक मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है ऐसा प्रतिपादन—यह तारक नाम का जो मन्त्र है वह समस्त वाग् का सार है । इसी से सारे शब्द पैदा होते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं । शब्द इसी से आप्यायित (वृद्धि) होकर अपने-अपने अर्थों को प्रगट करते हैं ॥ ८-९ ॥

मन्त्रसामान्येऽप्यर्थस्य त्रैविध्यम्

स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति भावो मन्त्रे त्रिधा स्थितः ॥ ९ ॥

मन्त्र सामान्य रूप से एक रहता है किन्तु उसके अर्थ तीन प्रकार के होते हैं—१. स्थूल अर्थ, २. सूक्ष्म अर्थ और ३. परार्थ । इस प्रकार भावस्वरूप से मन्त्रार्थ की त्रिधा स्थिति होती है ॥ ९ ॥

स्थूलादीनां सामान्यतो लक्षणम्

स्थूलः संसर्गजो योऽर्थः सूक्ष्मः पदविभावितः ।
अप्रमेयादिभिर्भावैरक्षरस्थः परः स्मृतः ॥ १० ॥

स्थूल, सूक्ष्म तथा पर अर्थों के सामान्य लक्षण—शब्दों के परस्पर संसर्ग से जो अर्थ प्रगट होते हैं, वे स्थूल हैं और पदों से ज्ञात होने वाले अर्थ सूक्ष्म हैं । अप्रमेयादि भावों से अक्षरों में रहने वाले अर्थ 'पर' कहे गए हैं (द्र० १७.४.२९) ॥ १० ॥

स्थूललक्षणम्

संस्तुतैरन्वितैर्योगैः स्वस्ववाच्याभिधानतः ।
पुरुषार्थोऽविभागात्मा संसर्गो नाम भाव्यते ॥ ११ ॥

स्थूल के लक्षण—प्रशस्त अन्वय वाले योगों से युक्त अपने-अपने वाच्यार्थ के अभिधान से पुरुष द्वारा किया गया वह अर्थ जिसका कोई और विभाग न हो सके इस प्रकार का संसर्ग स्थूल अर्थ का लक्षण है ॥ ११ ॥

सूक्ष्मलक्षणम्

स्वरूपालोचनेनैव यः प्रतीतः पदे पदे ।
योगेन जन्यते भावः स सूक्ष्म उदितो बुधैः ॥ १२ ॥

सूक्ष्म लक्षण—अपने स्वरूप का प्रदर्शन करते हुये जो पद-पद में प्रतीत होता हो तथा पदों के परस्पर योग से जो अर्थ प्रगट होता है उसे बुद्धिमानों ने सूक्ष्म अर्थ कहा है ॥ १२ ॥

परलक्षणम्

अप्रमेयादिभिर्भावैर्भावो यो वर्णसंश्रयः ।
स परः कथ्यते सद्भिरिति त्रेधार्थसंस्थितिः ॥ १३ ॥

परलक्षण—अप्रमेयादि भावों (द्र० १७४४-२९) से जो अर्थ अक्षर में स्थित हो सज्जनों ने उसे परार्थ कहा है इस प्रकार तीनों प्रकार के अर्थों की स्थिति कही गई ॥ १३॥

तारस्य स्थूलार्थप्रदर्शनम्

ओतमस्मिन् मितं सर्वमित्यर्थः स्थूल उच्यते ।
ओकारेण मकारेण संसर्गस्तारकाश्रयः ॥ १४ ॥
द्वौ वर्णौ गमकावेतावोतस्य च मितस्य च ।
यत् किञ्चिद्भगवत्तोऽन्यत् तन्मितं सर्वमिष्यते ॥ १५ ॥
शक्तिमान् भगवान् वाच्यस्तच्छक्तेः प्रविजृम्भणम् ।
सङ्कल्पनीयः सङ्कल्प इति यत्ते पुरोदितम् ॥ १६ ॥
तत्र सङ्कल्पनीयोऽर्थो भूतिः शुद्धेतरात्मिका ।
अव्याहता तु तत्प्रेक्षा सङ्कल्पस्तत् सुदर्शनम् ॥ १७ ॥

तार प्रणव का स्थूल अर्थ प्रदर्शन—यह सारा संसार मित है जो परब्रह्म (प्रणव) में ओत-प्रोत (अनुस्यूव) हैं यही तार का स्थूल अर्थ कहा गया है क्योंकि तारक में स्थित ओंकार तथा मकार के परस्पर संसर्ग से यह अर्थ किया गया है इसमें रहने वाले दो वर्ण ओ और म् ओत तथा मित अर्थ के प्रगट करने वाले हैं, भगवान् से अतिरिक्त और जितने भी पदार्थ हैं वे सभी मित (स्वल्पपरिमाण वाले) हैं इस ओम् के शब्द से शक्तिमान् भगवान् वाच्य हैं जिसमें सारी शक्तियों का विजृम्भण विकास होता हैं । जिसे सङ्कल्पनीय और सङ्कल्प भी कहते हैं । हे नारद ! यह बात पूर्व में हम आपको बता भी चुके हैं उसमें

सङ्कल्पनीय अर्थ शुद्धेतर भूति नाम से भी पुकारा जाता है । उस भूति की प्रेक्षा (दृष्टि) अव्याहत है । तथा उस भूति का सङ्कल्प सुदर्शन नाम से कहा गया है ॥ १४-१७ ॥

कल्प्यकल्पात्मकं सर्वं तदेतन्मितमिष्यते ।
मितं तदोतं सूत्रे हि मणिवद्भगवत्यजे ॥ १८ ॥
अवतिस्तु प्रवेशार्थो गतिर्व्याप्तिः प्रवेशनम् ।
मितं प्रविष्टं देवेशे पुष्करे परमाणुवत् ॥ १९ ॥
ओतो मिते च देवेशः प्रविष्टः सूत्रवन्मणौ ।
स्थूलोऽयं प्रणवस्यार्थः सूक्ष्मोऽथार्थो निरूप्यते ॥ २० ॥

कल्पना योग्य तथा कल्पमात्र रहने वाला यह सारा जगत् मित कहा गया है । यह सारा मित जगत उस भगवान् आज में इस प्रकार अनुस्यूत है जिस प्रकार सूत्र में मणि अनुस्यूत रहती है अव् धातु प्रवेश, गति, व्याप्ति तथा प्रविष्ट होने वाले अर्थ में कहा गया है । यह सारा मित संसार भगवान् में इस प्रकार प्रविष्ट है । जिस प्रकार पुष्कर (पराग) में परमाणु भगवान् उसी प्रकार यह भी इस मित जगत् में इस प्रकार प्रविष्ट है जिस प्रकार सूत मणि में । यह प्रणव का स्थूलार्थ हुआ अब उसका सूक्ष्मार्थ निरूपण करूँगा ॥ १८-२० ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणप्रतिज्ञा,
तत्रानिरुद्धप्रद्युम्नसङ्कर्षणानामखण्डभगवच्छक्त्यंशत्वकथनम्

सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः शक्तयस्तिस्र ऊर्जिताः ।
पूर्णाया भगवच्छक्तेरेकस्या अंशतां गताः ॥ २१ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण की प्रतिज्ञा में सर्वप्रथम यह कहना चाहते हैं कि अनिरुद्ध प्रद्युम्न तथा सङ्कर्षण ये भगवान् की अखण्ड शक्तियों के अंश हैं—सृष्टि, स्थित तथा विनाश करने वाली ये तीन शक्तियाँ प्रधान हैं जो परिपूर्ण भगवान् की एक ही शक्ति के अंश हैं ॥ २१ ॥

क्रमेण तेषां प्रणवाक्षरत्रयप्रतिपाद्यत्वम्

अकाराद्यक्षरत्रेतारूपिण्यः परमाद्भुताः ।

तीन शक्तियों का क्रमशः प्रणव के तीनों अक्षर अकार, उकार तथा मकार से प्रतिपाद्य होना—ये तीनों ही क्रमशः अकारादि तीन अक्षर स्वरूपा हैं और परम आश्चर्यमयी हैं ॥ २२ ॥

तेषामेकैकस्य विश्वतैजसप्राज्ञरूपैकैकसंज्ञाभागित्वम्

अकारशक्तिर्विश्वाख्या उकारोत्था तु तैजसी ॥ २२ ॥
मकारशक्तिः प्राज्ञाख्या तासां रूपं पुनः शृणु ।

इन तीनों अक्षरों का क्रम से विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ संज्ञा से अभिहित होना—अकार शक्ति विश्वा नाम से, उकार शक्ति तैजसी नाम से तथा मकार शक्ति प्राज्ञ नाम वाली कही गई हैं । अब आप उनके रूपों को पुनः सुनिए ॥ २२-२३ ॥

विश्वाख्यानिरुद्धरूपप्रदर्शनम्

एकोनविंशतिमुखा विश्वाख्या विश्वधारिणः ॥ २३ ॥

विश्वाख्या का ही अनिरुद्धशक्ति के नाम से अभिधान—उसमें जो विश्वधारी परमात्मा की विश्वाख्या शक्ति १९ मुखों वाली है।

विशेष—इस शक्ति का मध्यम मुख गजमुख की आकृति वाला है किन्तु इसके दोनों पार्श्वस्थ मुख के नव-नव सङ्ख्या से युक्त पुरुष मुख के सदृश हैं इस प्रकार कुल १९ मुख हैं ॥ २३ ॥

अनिरुद्धस्यैव स्थानविशेषनिर्देशपूर्वकं भोग्यविशेषनिरूपणम्

नानासृष्टिमयी विश्वा भुङ्क्ते स्थूलानि जाग्रती ।
द्रव्यक्रियागुणाकारं नानासामान्यचित्रितम् ॥ २४ ॥
स्थूलं तर्पयते विश्वं विश्वां सृष्टिमयीमजाम् ।

अनिरुद्ध का स्थान विशेष निर्देश करते हुये भोग्यविशेष का निरूपण—यह विश्वा शक्ति नाना प्रकार की सृष्टियों वाली है और नेत्र स्थान पर स्थित हो जागती हुई स्थूल पदार्थों का उपभोग करती है। इतना ही नहीं द्रव्य, गुण एवं क्रियात्मकादि नाना स्वरूपों से तथा सामान्य रूप से विचित्र इस स्थूल विश्व को तृप्त करती है और विश्वा सृष्टिमयी अजा (माया) को भी तृप्त करती है ॥ २४-२५ ॥

प्रद्युम्नस्य भोग्यविशेषस्थानविशेषनिरूपणम्

विश्वं तदेव सूक्ष्माख्यमन्तःकरणसंमितम् ॥ २५ ॥
स्वाप्नीं तर्पयते शक्तिमुकारस्थां तु तैजसीम् ।

प्रद्युम्न के भोग्यविशेष तथा स्थानविशेष का निरूपण—वही विश्व (स्थूल) जब सूक्ष्म (वासना) रूप में रहता है तो उसका अन्त कारण संज्ञा होती है वह स्वाप्नीशक्ति का तर्पण करती है और उकार में होने वाली तैजसी शक्ति का भी तर्पण करती है ॥२५-२६॥

सङ्कर्षणस्य भोग्यविशेषस्थानविशेषनिरूपणम्

विश्वं तदेव सूक्ष्मत्वं विहायानन्दतां गतम् ॥ २६ ॥
परां तर्पयते शक्तिं सौषुप्तिं प्राज्ञनामिकाम् ।
उकारशक्तिस्त्रिमुखा सूक्ष्मा स्वाप्नी पुरोदिता ॥ २७ ॥
निरञ्जना मकाराख्या शक्तिरानन्दभोजिनी ।

सङ्कर्षण के भोग्यविशेष तथा स्थानविशेष का निरूपण—वही विश्व (स्थूल) जब सूक्ष्मता (अन्तःकरणजन्यवासना) को त्याग कर जब आनन्द स्वरूप को प्राप्त करती है तो सुषुप्ति, जिसका नाम प्राज्ञ भी है, उस पराशक्ति को तृप्त करती है, उकार में रहने वाली त्रिमुखा स्वाप्नीशक्ति सूक्ष्मा है यह हम पहले कह आये हैं (द्र० ५१.२५) ॥ २६-२८ ॥

अनिरुद्धस्य स्थूलदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः

स्थूलं पुरमधिष्ठाय देहं विश्वा प्रवर्तते ॥ २८ ॥

अनिरुद्ध की स्थूलदेह के अधिष्ठातृत्वरूपेण प्रवृत्ति—यह विश्वा (अनिरुद्ध) शक्ति स्थूल देह स्वरूप पुर में निवास करती हुई प्रवृत्त होती है ॥ २८ ॥

प्रद्युम्नस्य सूक्ष्मदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः

सूक्ष्मं पुर्यष्टकं स्वाप्नी पुरमादाय वर्तते ।

प्रद्युम्न की सूक्ष्मदेहाधिष्ठातृत्वरूपेण प्रवृत्ति—यह सूक्ष्म (प्रद्युम्नरूपा) शक्ति आठ पुरी वाली स्वाप्नी पुरी में निवास कर प्रवृत्त होती है ॥ २९ ॥

सङ्कर्षणस्यानन्दाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः

प्राज्ञा प्रवर्तते प्राप्य पुरमानन्दजं परम् ॥ २९ ॥

सङ्कर्षण की आनन्दाधिष्टातृत्व रूपेण प्रवृत्ति—प्राज्ञा (सङ्कर्षण रूपा) शक्ति सर्वोत्कृष्ट आनन्द देने वाले पुर को प्राप्त हो कर प्रवृत्त होती है ॥ २९ ॥

अनिरुद्धस्य बहिःप्रज्ञत्वम्

बाह्यप्रमाणभूमिष्ठा विश्वस्य स्थूलता दशा ।

अनिरुद्ध की बहिःप्रज्ञता—विश्व की स्थूलता रूपा दशा (अनिरुद्ध रूपा शक्ति) बाह्य प्रमाण वाली भूमि में निवास करती है ॥ ३० ॥

प्रद्युम्नस्यान्तःप्रज्ञत्वम्

अन्तःकरणभूमिष्ठा सूक्ष्मता तस्य वै दशा ॥ ३० ॥

प्रद्युम्न की अन्तःप्रज्ञता—इस विश्व की सूक्ष्मता रूपा दशा (प्रद्युम्न रूपा शक्ति) अन्तःकरण की भूमि में निवास करती है ॥ ३० ॥

सङ्कर्षणस्यानन्दमयत्वम्

सदानन्दमयी तस्य विश्वस्य परता दशा ।

सङ्कर्षण का आनन्दमय स्वरूप—विश्व की परता रूपा दशा (सङ्कर्षण रूपा शक्ति) सदा आनन्दमयी भूमि में निवास करती है ॥ ३१ ॥

स्थूलत्वादिदशात्रयस्यानिरुद्धादिशक्तित्रयप्रीतिहेतुत्वम्

एतास्तिस्त्रो दशास्तिस्त्रः शक्तीः सम्प्रीणयन्ति ताः ॥ ३१ ॥
अनिरुद्धादिरूपास्ता भोक्तृशक्तीर्विचिन्तयेत् ।

इन स्थूलादि तीनों दशाओं का उन तीनों प्रकार की शक्तियों को प्रसन्न रखना—ये शक्तियाँ अनिरुद्धादि स्वरूप वाली है । इनका स्थूल एवं सूक्ष्म तथा आनन्दमयी शक्तियों का जगत् के भोक्तृत्व रूप में ध्यान करना चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

वासुदेवाख्यायाश्चतुर्थशक्तेर्नादप्रतिपाद्यत्वम्

अर्धमात्रा तु या दिव्या मकारोत्था प्रकाशिनी ॥ ३२ ॥
वासुदेवमयीं शक्तिं विद्धि तामनुपस्कृताम् ।

वासुदेव नामक चतुर्थ शक्ति का नाद के द्वारा प्रतिपादित होना—हे नारद ! मकार से उत्पन्न हुई अर्धमात्रा युक्त प्रकाश करने वाली एक दिव्या शक्ति है, उसे आप

वासुदेवमयी शक्ति समझो । वह जाग्रत, स्वप्न सवं सुषुप्ति के अभिमानी अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा सङ्कर्षण शक्ति से भिन्न है । जिसे तुरीया शक्ति भी कहते हैं ॥ ३२-३३ ॥

शक्तिचतुष्टयविलये सति अखण्डभगवच्छक्तेः स्तैमित्यरूपत्वम्

तिसृणां सार्धमात्राणां विलये या विराजते ॥ ३३ ॥
तां विद्धि भगवच्छक्तिमनुच्चार्यां निरञ्जनाम् ।

शक्ति चतुष्टय के विलय हो जाने पर अखण्डभगवच्छक्ति का स्तिमित रूप में होना—अर्द्धमात्रा के सहित तीनों शक्तियों के विलय हो जाने पर भी जो सत्ता के रूप में शेष रह जाती हैं उसे उच्चारण से परे मायारहित भगवच्छक्ति समझो ॥ ३३-३४ ॥

शक्तिचतुष्टयविलापनप्रकारः

उच्चरन्नोमिति व्यक्तं क्रमादादीर्विलोपयेत् ॥ ३४ ॥
शक्तीश्चतस्र उद्दिष्टा उत्तरोत्तरभूमिषु ।

चारों शक्तियों के विलय का प्रकार—'ॐ' इस शब्द का उच्चारण करते हुये क्रमशः अकार, उकार, मकार तथा चौथी नाद शक्ति को उत्तरोत्तर भूमि में विलय करना चाहिए ॥ ३४-३५ ॥

स्तैमित्यरूपायास्तस्याः शक्तेः पञ्चमदशारूपत्वम्

या न किञ्चिदिवाभाति न सती नापि चासती ॥ ३५ ॥
सर्वासां ग्रसनी दिव्या शक्तीनां पञ्चमी दशा ।

तव मात्र स्तैमित्य शक्ति (= शान्ति) का ही पञ्चमदशा को प्राप्त होना—उस स्तैमित्य शक्ति का न सत्तात्मक रूप से और न असत्तात्मक रूप से कुछ भी भान नहीं होता । वह सभी शक्तियों की पञ्चमी दशा है जो सब कुछ ग्रसने वाली तथा दिव्या है ॥ ३५-३६ ॥

प्रणवाभ्यासविशेषस्य तादृशशक्तिसाक्षात्कारहेतुत्वम्

ओमित्युच्चरतः सम्यक् शाम्यतः क्रमतो मुने ॥ ३६ ॥
महाभासा निराभासा शक्तिः सान्तर्विजृम्भते ।

प्रणव के अभ्यास विशेष से उस शक्ति का साक्षात्कार होना—हे मुने ! 'ॐ' इस शब्द का उच्चारण करने वाले को जब क्रमशः क्रमशः पूर्ण शान्ति प्राप्त होने लगती है तब महाभासा, निराभासा वही सौमित्यशक्ति अन्तः करण में प्रकाशित होने लगती है ॥ ३६-३७ ॥

तस्याः शक्तेर्भगवदपृथक्सिद्धविशेषणीभूतलक्ष्मीरूपत्वम्

अनन्या सा परा शक्तिर्विष्णोर्लक्ष्मीः सनातनी ॥ ३७ ॥
गौरी सरस्वती धेनुर्वाच्या वाच्यक्रमोज्झिता ।

वह शक्ति भगवान् से पृथक् न रह कर उनमें विशेषण रूप से रहती हुई लक्ष्मीस्वरूपा

कही जाती है—वही परा शक्ति विष्णु से पृथक् न रहकर लक्ष्मी, सनातनी गौरी, सरस्वती तथा धेनु शब्द से वाच्य होती हैं। उसमें वाच्य का क्रम नहीं रहता ॥ ३७-३८ ॥

ओंकाराभ्यासिनो हृदये लक्ष्म्या निर्हेतुकं स्वस्वरूपस्य प्रकाशनम्

उदेति स्वयमेवान्तरोंकारं शृण्वतो मुने ॥ ३८ ॥

ॐकार का दृढ़तर अभ्यास करने वाले भक्तों के हृदय में लक्ष्मी का स्वयं अपने स्वरूप को प्रगट करना—हे मुने ! ॐकार का जप करने वालों को वह महालक्ष्मी स्वयं दर्शन देती है ॥ ३८ ॥

भवद्रूपे परस्मिन् ब्रह्मणि भावरूपत्वं लक्ष्म्याः

नित्ये निरञ्जने शुद्धे निष्कले निर्विकल्पके ।
विष्णौ भवितरि व्यक्तं भावो ब्रह्मणि वर्तते ॥ ३९ ॥

परब्रह्म परमात्मा के प्रादुर्भूत होने पर उनका भी स्वयं प्रादुर्भूत होना—नित्य निरञ्जन, विशुद्ध, निष्कल तथा निर्विकल्प, ब्रह्मस्वरूप विष्णु जब प्रादुर्भूत होते हैं तो वह लक्ष्मी भी भाव रूप से प्रादुर्भूत होती है ॥ ३९ ॥

पौराणिकोक्तस्य ब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञाचतुष्टयस्य लक्ष्मीपरत्वम्

ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिस्तथैवाव्याकृताख्यया ।
उक्ता चतसृभिर्दिव्या स्तूयते सैव पञ्चमी ॥ ४० ॥

पुराणों में कहे गए ब्रह्म, विष्णु आदि चारों संज्ञाओं से उन्हीं लक्ष्मी का बोध होना—ब्रह्म, विष्णु, शिव तथा अव्याकृत इन चारों नामों से उसी पञ्चमी महालक्ष्मी का बोध होता है ॥ ४० ॥

पाशुपतोक्तस्येशादिसंज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम्

ईशविद्यासमाख्याभिस्तथैव च शिवाख्यया ।
उक्ता चतसृभिः सैव शक्तिः पाशुपते मते ॥ ४१ ॥

पाशुपत मत में ईशादि चारों संज्ञाओं से भी उसी महालक्ष्मी का बोध होना—पाशुपत मत में ईशा, विद्या, समा तथा शिवा इन चारों नामों से उसी महाशक्ति लक्ष्मी का बोध होता है ॥ ४१ ॥

सांख्ययोगोक्तस्य संज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम्

व्यक्ताव्यक्तपुमाख्याभिस्तथा कालाख्यया मुने ।
उक्ता चतसृभिः सैव शक्तिर्वै सांख्ययोगयोः ॥ ४२ ॥

सांख्य योगमत में भी चारों संज्ञाओं से लक्ष्मी का बोध होता है—हे मुने ! सांख्य तथा योग मत में भी व्यक्त, अव्यक्त, पुमान् तथा काल नामक चार संज्ञाओं से वही महालक्ष्मी कही जाती है ॥ ४२ ॥

लक्ष्मीविशिष्टस्य परस्य ब्रह्मणो मुक्तप्राप्यत्वम्

प्राप्य तां पञ्चमीं शक्तिं यदन्ते विरमत्यसौ ।
परं ब्रह्म परं धाम तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४३ ॥

लक्ष्मीविशिष्ट परब्रह्म ही मुक्त योगियों को प्राप्त होते हैं—दृढ़तर प्रणवाभ्यास से संसार बन्धन से मुक्त हुआ पुरुष लक्ष्मी विशिष्ट पर ब्रह्म को प्राप्त कर विराम प्राप्त करता है । वही विष्णु का परं धाम है । अविच्छिन्न तेज वही विष्णु का परम पद है और वही उनका स्वरूप है ॥ ४३ ॥

उक्तार्थस्यैव भङ्ग्यन्तरेण विशदीकरणम्

अर्धमात्रोर्ध्वगां दिव्यां दीर्घघण्टानदोपमाम् ।
अन्तरास्वादयञ्छक्तिमानन्दात्मानमव्ययाम् ॥ ४४ ॥
यमन्ते लभते भावं रूपं विष्णोस्तदुज्ज्वलम् ।
इति ते प्रणवस्यार्थः सूक्ष्मात्मा सम्प्रदर्शितः ॥ ४५ ॥

उसी अर्थ को प्रकारान्तर से विस्तारपूर्वक कहते हैं—अर्धमात्रा वाली, ऊपर की ओर गमन करने वाली, दीर्घ घण्टा के समान शब्द वाली, आनन्दात्मा तथा अव्यय स्वरूपा उस महाशक्ति का अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार कर साधक अन्त में जिस भाव को प्राप्त करता है वही विष्णु का उज्ज्वल रूप है । यही प्रणव का सूक्ष्म स्वरूप वाला अर्थ है । हे नारद ! इसे मैंने आपसे कहा ॥ ४४-४५ ॥

अथ परार्थनिरूपणम्

योऽर्थः पराह्वयस्तस्य तमिदानीं निबोध मे ।
प्रणवं भावयेदेतदक्षरद्वितयात्मकम् ॥ ४६ ॥

प्रणव का परार्थ निरूपण—अब जो प्रणव का परार्थ है । हे नारद ! आप उसे सुनिए । यह अर्थ उसी प्रणव का निरूपण करता है जिसका दूसरा नाम अक्षर भी है ॥ ४६ ॥

सृष्ट्याद्युन्मुखशक्त्युपहितस्य स्थूलचिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मणोऽकारप्रतिपाद्यत्वम्

पञ्चकृत्यकरी शक्तिर्या हि सा वैष्णवी परा ।
तयैवोपहितं ब्रह्म नानाकारविकल्पवत् ॥ ४७ ॥
अभिधत्ते परं विष्णुं सृष्टिकृत् परमेश्वरः ।

सृष्टि के लिए उन्मुख महाशक्ति से उपहित स्थूल चिद्, अचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'ॐ' में रहने वाले अकार से प्रतिपाद्य है उनका प्रतिपादन—जो पञ्चकृत्यकरी है वही विष्णु की पराशक्ति है उस वैष्णवी शक्ति से उपहित ब्रह्म ही नाना आकार के विकल्पों से युक्त होता है । अतः सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ही पर विष्णु का अभिधान करते हैं ॥ ४७-४८ ॥

सृष्ट्याद्यनुन्मुखशक्त्युपहितस्य सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मण उकारप्रतिपाद्यत्वम्

अव्यक्तपञ्चकृत्यासौ तूष्णींभूतेव राजते ॥ ४८ ॥

निरञ्जना निराभासा निश्चला वैष्णवी परा ।
सदा प्रतायमानापि सूक्ष्मैर्भावैरर्लक्षणैः ॥ ४९ ॥
निर्व्यापारेव सा भाति स्तैमित्यमिव चोदधेः ।
तथैवोपहितं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् ॥ ५० ॥
अभिधत्ते परं विष्णुं व्यापी व्योमेश उज्ज्वलः ।

सृष्टि के लिए उन्मुख शक्ति से उपहित सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म उकार से प्रतिपाद्य है इसका प्रतिपादन—पञ्चकृत्यों को अपने में अव्यक्त रखने वाली जब वह महाशक्ति कुछ न कर तूष्णीभाव रूप में स्थित रहती है तब वह निरञ्जना (माया रहित), निराभासा (प्रकाश रहित), निश्चला (सर्वथा स्थिर) परा वैष्णवी (महालक्ष्मी) सर्वदा प्रतायमान (विकासशील) होते हुये भी सूक्ष्म भावों से अपना लक्षण प्रगट किये बिना ही निर्व्यापार दशा को प्राप्त हो जाती है । जिस प्रकार निर्व्यापार समुद्र स्तैमित्य (निश्चलता) को प्राप्त करता है उस प्रकार की सूक्ष्म महालक्ष्मी से उपहित निर्विकल्प एवं निरञ्जन ब्रह्म पर विष्णु का अभिधान करता है । वह विष्णु व्यापी व्योमेश (ॐकार स्वरूप १७.११) तथा उज्ज्वल है ॥ ४८-५१ ॥

ओंकारेण यथोक्तब्रह्मणोरभिन्नत्वस्य बोधनम्

एकतानयनं यत् तदनयोर्वर्णयोर्द्वयोः ॥ ५१ ॥
तदोमित्यक्षरं ब्रह्म परेयमजपा स्मृता ।
जगद्विलापनं रूपं तदेव प्रणवाह्वयम् ॥ ५२ ॥

ॐकार से ऊपर कहे गए ब्रह्म के स्वरूप का अभिधान—जब अकार उकार दोनों वर्ण एक होकर सन्धिः ॐकार का रूप धारण करते हैं तो वही 'ॐ' अक्षर ब्रह्म कहा जाता है और वही अजपा कहा जाता है । सारे जगत् को अपने में विलीन करने वाला जो रूप है वही प्रणव स्वरूप से कहा जाता है ॥ ५१-५२ ॥

उक्तार्थध्याननिष्ठस्य योगनिष्ठासिद्धिः

अत्र योऽवहितो योगी स समाधिं व्रजेत् परम् ।
इति ते त्रिविधावस्था प्रणवस्य प्रदर्शिता ॥ ५३ ॥

ऊपर कहे गए प्रणव के ध्यान में निष्ठा रखने वाले पुरुष को शीघ्र योगसिद्धि हो जाती है ऐसा कथन—जो इस प्रणव का सावधानी से ध्यान करता है वह पर समाधि को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार हे नारद ! मैंने प्रणव की तीनों प्रकार की अवस्थओं को आपको वताया ॥ ५३ ॥

तारानुतारयोरर्थवर्णनप्रतिज्ञा

तारानुतारयोरन्या विधास्तिस्रो निशामय ।

तारा एवं अनुतारा के अर्थ वर्णन करने की प्रतिज्ञा—अब हे नारद ! तारा (ह्रीं) और अनुतारा (श्रीं) के अन्य तीनों (स्थूल, सूक्ष्म एवं पर) अवस्थाओं को सुनिए ॥५४ ॥

तत्र तारायाः स्थूलार्थनिरूपणम्

हरत्यशेषदुरितमीड्यते च सुरासुरैः ॥ ५४ ॥
मीयते चाखिलैर्मानैरतो ह्रीमिति कीर्त्यते ।

उसमें तारा के स्थूलार्थ का निरूपण—जो समस्त दुरितों का विनाश करे तथा सुर और असुरों से संस्तुत हो और समस्त मानों एवं प्रमाणों से कही जाती है इसलिए तारा का अर्थ 'ह्रीं' कहा जाता है ॥ ५४-५५ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

इति ते स्थूल उद्दिष्टः सूक्ष्ममद्य निशामय ॥ ५५ ॥
सर्वत्र प्राणिति व्यक्तमलंभावं न गच्छति ।
नित्योन्नमनरूपा सा कलयत्यखिलं जगत् ॥ ५६ ॥

तारा ह्रीं के सूक्ष्मार्थ का निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ऊपर हमने तारा का स्थूल अर्थ आपको बता दिया अब सूक्ष्म अर्थ सुनिए । जो सर्वत्र स्पष्ट रूप से प्राण प्रदान करती है और कभी भी अलंभाव (विश्राम या पर्याप्तता) को नहीं प्राप्त करती नित्य उन्मन अर्थात् ऊपर उठाने के रूप वाली होकर वह सारे जगत् का निर्माण करती है ॥ ५५-५६ ॥

परार्थनिरूपणम्

इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमद्य निशामय ।
परमात्मा परो योऽसौ देवो नारायणाह्वयः ॥ ५७ ॥
तस्यानपायिनी शक्तिर्देवी तद्धर्मधर्मिणी ।
मायाश्चर्यकरत्वेन पञ्चकृत्यकरी सदा ॥ ५८ ॥
व्यापिनी विष्णुरूपेण सर्वभावानुगामिनी ।
अशेषभुवनाधारसङ्कल्पप्रविजृम्भिणी ॥ ५९ ॥
समाश्रितानलं भावं विधाय विविधं जगत् ।
व्योमेशव्यापिनी स्पष्टं पुनः सा प्रतितिष्ठति ॥ ६० ॥
परोऽयमर्थ उद्दिष्टस्तारिकाया महामुने ।

तारा (ह्रीं) मन्त्र का परार्थ निरूपण—इस प्रकार हे नारद ! मैंने तारा मन्त्र का सूक्ष्म अर्थ आपको बताया, अब परार्थ सुनिए । जो यह पर परमात्मा देव हैं, जिन्हें नारायण भी कहा जाता है, उनकी कभी नष्ट न होने वाली शक्ति उनके समान धर्म को धारण करती है । आश्चर्य युक्त काम करने से वही माया तथा पञ्चकृत्यकरी कही जाती है । विष्णु रूप से वह सर्वत्र व्याप्त होकर सभी पदार्थो में अनुस्यूत रहने वाली है, समस्त जगत् की आधारभूता है तथा सङ्कल्प से सर्वत्र प्रकाश फैलाने वाली है । वह सारे जगत् का निर्माण करके भी अलंभाव (परिश्रान्त) को नहीं प्राप्त होती । इतना कर लेने पर फिर वह व्योमेश (विष्णु ५१.५१) में व्याप्त होकर स्थित हो जाती है । यही तारा का परार्थ है । हे महामुने ! इस प्रकार हमने तारा (ह्रीं) का परार्थ आपको निरूपण किया ॥ ५७-६१ ॥

अनुतारायाः स्थूलार्थनिरूपणम्

शृणाति निखिलान् दोषाञ्छ्रीणाति च गुणैर्जगत् ॥ ६१ ॥
श्रीयते चाखिलैर्नित्यं श्रयते च परं पदम् ।
लेशतः स्थूल उद्दिष्टः श्रिय एष महामुने ॥ ६२ ॥

अनुतारा (श्रीं) का स्थूलार्थ निरूपण—जो अपने चरण कमल में आश्रय चाहने वाले समस्त भक्तों के कर्म रूप को नष्ट करती है तथा कारुण्य वात्सल्यादि स्वगुणगणों से समस्त जगत् के मानस काठिन्यादि दोषों को पचाकर उन्हें मृदु बनाती है और समस्त स्वीय चेतन वर्ग जिसके चरण कमलों का आश्रय लेते है तथा जो परं पद में निवास करती है यही अनुतारा का स्थूल अर्थ हैं । हे महामुने ! इस प्रकार अनुतारा का स्थूलार्थ (श्रीँ) लेश मात्र आपसे कहा ॥ ६१-६२ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षरमव्ययम् ।
शङ्करी श्रयतां तत्र मर्दयन्ती भवोदधिम् ॥ ६३ ॥
नानाश्चर्यकरी भूत्वा तत्तद्भोगप्रदानतः ।

अनुतारा (श्रीं) का सूक्ष्मार्थ निरूपण—नित्य, अक्षर, अव्यय एवं पुण्डरीक जिसका परम धाम है । जो अपने आश्रित भक्तों के लिए अनेक सौभाग्यों को प्रदान कर आश्चर्यकारिणी होकर उनका कल्याण करती है तथा संसारसमुद्र से अथवा जन्म मरण के कुचक्र से छुड़ाती हैं । यही अनुतारा का सूक्ष्म अर्थ है ॥ ६३-६४ ॥

परार्थनिरूपणम्

इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमद्य निशामय ॥ ६४ ॥
प्रशान्तं यत् परं ब्रह्म नित्यशुद्धं निरञ्जनम् ।
षाड्गुण्यमचलं दिव्यं नारायणसमाह्वयम् ॥ ६५ ॥
तद्धर्मधर्मिणी देवी शक्तिस्तस्यानपायिनी ।
मायाश्चर्यकरत्वेन पञ्चकृत्यकरी सदा ॥ ६६ ॥
व्यापिनी विष्णुरूपेण सर्वभावानुभाविनी ।
अशेषभुवनाधारसङ्कल्पप्रविजृम्भिणी ॥ ६७ ॥
समास्थितानलंभावं विधाय विविधं जगत् ।
व्योमेशव्यापिनी स्पष्टं पुनः सा प्रतितिष्ठिति ॥ ६८ ॥
अर्थोऽयमनुतारायास्ताराया इव वर्णितः ।

अनुतारा (श्रीं) का परार्थ निरूपण—हे नारद ! यहाँ तक हमने अनुतारा का सूक्ष्म अर्थ कहा । अब पर अर्थ सुनिए । नित्यशुद्ध निरञ्जन (मायारहित) षाड्गुण्य अचल दिव्य एवं नारायण नाम वाले प्रशान्त परब्रह्म के समान उनके धर्म को धारण करने वाली उनकी शक्ति नित्या है जो नाना प्रकार के आश्चर्यकारक कर्म करने से पञ्चकृत्यकारी कही जाती है

विष्णुरूप से वह सर्वत्र सभी पदार्थों में अनुस्यूत होकर व्यापनशीला है । समस्त संसार की आधारभूता है तथा अपने सङ्कल्प से प्रकाशित रहती है । अनेक प्रकार के जगत् का निर्माण कर भी वह कभी थकान को नहीं प्राप्त करती और पुनः ॐ विष्णु में व्याप्त होकर उसी में स्थित हो जाती है, हे नारद ! इस प्रकार तारा (ह्रीं) के समान हमने इस अनुतारा (श्रीं) का परार्थ निरूपण किया ।। ६४-६९ ।।

उक्तसर्वार्थसंक्षेपः

सर्ववाच्यार्थविषयं संक्षेपं शृणु नारद ।। ६९ ।।
योऽसौ तवेरितो देवःपरमात्मा सनातनः ।
शक्तिमानखिलावासः षाड्गुण्यपरिबृंहितः ।। ७० ।।
तद्धर्मधर्मिणी शक्तिरेका तस्यानपायिनी ।
सर्वभूतानुगा देवी स्तैमित्यमिव वारिधेः ।। ७१ ।।
अत्यन्ताल्पाल्पकांशेन सा स्वेनैव विभाव्यते ।
भाव्यभावकभेदेन भाव्या भूतिः सितेतरा ।। ७२ ।।
भावको विष्णुसङ्कल्पः सुदर्शनसमाह्वयः ।
भूतिः शब्दार्थभेदेन द्विधा पूर्वा प्रवर्तते ।। ७३ ।।
शब्दस्य शब्दनं यत् तदर्थं प्रति निरूप्यते ।
तत् क्रियारूपतो ज्ञेयं सौदर्शनमयं वपुः ।। ७४ ।।

ऊपर कहे गए समस्त प्रतिपाद्यों का संक्षेप में वर्णन—हे नारद ! अब आप तारा (ह्रीं) एवं अनुतारा (श्रीं) मन्त्र के सभी वाच्यार्थ विषय को सुनिए जो हमने आपसे कहा है । वह परमात्मा सनातन हैं, शक्तिमान् हैं, सम्पूर्ण जगत् उसमें निवास करते हैं तथा षाड्गुण्य से परिबृंहित है, उसके समस्त धर्मों को धारण करने वाली कभी विनष्ट न होने वाली उनकी एक ही शक्ति है जो समस्त प्राणियों में निवास करती है तथा निश्चेष्ट समुद्र के समान स्थिर है । वह अपने अल्प से अल्प (अत्यन्त अल्प) अंश से भाव्य एवं भावक इन दो भेदों से जगत् में प्रकाशित होती है । जिसमें भाव्य उसका ऐश्वर्य है जो रजोगुण से युक्त रहता है । दूसरा उसका भावक भेद सुदर्शन नाम से विख्यात विष्णु सङ्कल्प है । प्रथम भेद वाली भूति, शब्द और अर्थ इन दो भेदों से जगत् में व्यवहृत होती है । शब्द का जो शब्दन है वही शब्द है । अब दूसरे भेद अर्थ का निरूपण करता हूँ । वह अर्थ क्रियारूप (कर्त्तृत्वरूप) से सुदर्शन का दिव्य शरीर है ऐसा समझना चाहिए ।। ६९-७४ ।।

शब्दभावो हि योऽर्थस्य कर्मीभावसमाह्वयः ।
सोऽपि क्रियात्मभावेन सुदर्शनमयः स्मृतः ।। ७५ ।।
अतः स्पन्दमयो विष्णोर्यः सङ्कल्पः सुदर्शनम् ।
तन्मय्येव क्रिया सर्वा कारकस्था न संशयः ।। ७६ ।।

अर्थ का अर्थ कर्मीभाव नाम से कहा जाने वाला शब्द का भाव है, वह भाव भी क्रिया-त्मभाव से सुदर्शनमय कहा गया है । इसलिए विष्णु का सङ्कल्पभूत सुदर्शन स्पन्दन

से युक्त हैं। अतः उस कारक में होने वाली सारी क्रियाएं सुदर्शनमयी होती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७५-७६ ॥

सर्वः शब्दश्च सर्वश्च वाच्यो द्वेधा प्रवर्तते ।
गुणेन कर्मणा वापि विधान्या नैव विद्यते ॥ ७७ ॥
अतो नैव प्रवर्तन्ते वाचो ब्रह्मणि रूपतः ।
अवगाहयतो ब्रह्म एते तु गुणकर्मणी ॥ ७८ ॥
ते च सौदर्शने रूपे विशेषणमयात्मना ।
मन्त्रग्रामो हि यो यावान् ब्रह्मणि प्रविगाहते ॥ ७९ ॥
सुदर्शनप्रभावेण तत् सर्वमिति चिन्त्यताम् ।
इति ते गदितः सम्यक् संक्षेपः शास्त्रसम्मतः ।
अस्य विस्तृतिमव्यग्रो मन्त्रे मन्त्रे निबोध मे ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थवर्णनं नाम एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३३१७ ॥

* * *

सभी शब्द तथा सभी वाच्यार्थ दो रूपों में प्रवृत्त होते है (१) गुणयुक्त शब्द गुणरूप अर्थ एवं (२) कर्मरूप शब्द कर्मरूप अर्थ, इसके अतिरिक्त उनकी प्रवृत्ति और अन्य रूप में नहीं होती। ब्रह्म गुण तथा कर्म से हीन है इसलिए गुण और कर्म का अवगाहन करने वाले शब्द तथा अर्थ स्वरूपतः ब्रह्म के प्रतिपादन में असमर्थ हैं। वे केवल विशेषण रूप से सुदर्शन के रूप तक ही सीमित रहते हैं। जो-जो और जितने जितने भी मन्त्र समूह है वे सुदर्शन के प्रभाव से ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराते हैं ऐसा विचार करना चाहिए। इस प्रकार हमने शास्त्रसम्मत किन्तु संक्षेप में तार (ॐ), तारा (ह्रीं) और अनुतारा (श्रीं) का अर्थ कहा। उसका विस्तार आगे कहे जाने वाले प्रत्येक मन्त्र में आप सावधान होकर मुझसे सुनिए ॥ ७७-८० ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थ वर्णन नामक इक्यावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५१ ॥

* * *

अथ द्विपञ्चाशोऽध्यायः

विष्ण्वादिमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

वृत्तानुवादपूर्वकं विष्ण्वादिमन्त्रार्थकथनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

तारतारानुताराणां स्वरूपं ते प्रदर्शितम् ।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेषु गुणकर्मनिमित्तजम् ॥ १ ॥
मन्त्राणां विष्णुपूर्वाणामर्थमद्य निशामय ।

ऊपर कही गई समस्त वातों का अनुवाद करते हुये विष्णुपरक मन्त्रों का अर्थ निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! हमने तार (ॐ), तारा (ह्रीं) एवं अनुतारा (श्री) का स्थूल एवं सूक्ष्म परत्वरूपों में गुण कर्म रूप निमित्त से होने वाले स्वरूप को प्रदर्शित किया । अव विष्णु प्रतिपादक मन्त्रों का अर्थ आप मुझसे सुनिए ॥ १-२ ॥

नमःशब्दस्य स्थूलार्थनिरूपणे शब्दार्थप्रदर्शनम्

प्रेक्षावतः प्रवृत्तिर्या प्रह्वीभावात्मिका स्वतः ॥ २ ॥
उत्कृष्टं परमुद्दिश्य तन्नमः परिगीयते ।

नमः शब्द के स्थूलार्थ निरूपण प्रसङ्ग से उस शब्द के अर्थ का प्रतिपादन—दूसरे को अपने से उत्कृष्ट देख कर देखने वाले व्यक्ति की स्वयं प्रह्वीभाव वाली (झुक जाने वाली) जो प्रवृत्ति है वही नमः शब्द का अर्थ है ॥ २-३ ॥

उत्कृष्टापकृष्टभेदेन चेतनद्वैविध्यम्

लोके चेतनवर्गस्तु द्विधैव परिकीर्त्यते ॥ ३ ॥

ज्यायांश्चैव तथाज्यायान्नैवाभ्यां विद्यते परः ।

उत्कृष्ट तथा अपकृष्टभेद से चेतन के दो प्रकार—लोक में चेतनवर्ग के दो प्रकार कहे गए हैं एक उत्कृष्ट चेतन दूसरा अपकृष्ट चेतन । इन दो भेदों के अतिरिक्त उनका कोई और भेद नहीं है ॥ ३-४ ॥

अनवधिकातिशयप्रकर्षविशिष्टस्य ज्यायःशब्दमुख्यार्थत्वम्

कालतो गुणतश्चैव प्रकर्षो यत्र तिष्ठति ॥ ४ ॥
शब्दस्तं मुख्यया वृत्त्या ज्यायानित्यवलम्बते ।

अनवधिक अतिशय प्रकर्ष विशिष्ट ज्यायान् शब्द का मुख्यार्थ कथन—जिसमें काल से तथा गुण से उत्कृष्टता रहती हो 'ज्यायान्' शब्द उसी में मुख्य वृत्ति (अभिधावृत्ति) से प्रवृत्त होता है ॥ ४-५ ॥

तदन्येषामज्यायस्त्वम्

अतश्चेतनवर्गोऽन्यः स्मृतः प्रत्यवरो बुधैः ॥ ५ ॥
अज्यायांश्चानयोर्योगः शेषशेषितयेष्यते ।
अज्यायांसः स्मृताः सर्वे ज्यायानेको मतः परः ॥ ६ ॥

उससे अतिरिक्त अन्य सभी अज्यायान् हैं ऐसा कथन—'ज्यायान्' के अतिरिक्त अन्य सभी चेतन वर्गों को बुद्धिमानों ने 'अवर' शब्द से कहा है । ज्यायान् तथा अज्यायान् इनका योग शेष शेषीभाव रूप से कहा गया है । उसमें 'ज्यायान्' एक होता है । अन्य सभी 'अज्यायान्' हैं ॥ ५-६ ॥

जीवपरयोः सम्बन्धनिरूपणपूर्वकं नन्तृनन्तव्यत्वव्यवस्था

नन्तृनन्तव्यभावेन तेषां तेन समन्वयः ।
नन्तव्यः परमः शेषी शेषा नन्तार ईरिताः ॥ ७ ॥

जीव और परमात्मा में सम्बन्ध निरूपणपूर्वक नन्ता तथा नन्तव्य की व्यवस्था—जीव और परमात्मा का समन्वय (सम्बन्ध) नन्ता और नन्तव्यभाव से हैं । परमात्मा शेषी (विशेष्य) होने से नन्तव्य हैं और शेषभूत (विशेषणीभूत) जीव नन्ता हैं ऐसा कहा गया है ॥ ७ ॥

जीवेशयोः शेषशेषिभावस्य निरुपाधिकत्वम्

नन्तृनन्तव्यभावोऽयं न प्रयोजनपूर्वकः ।
नीचोच्चयोः स्वभावोऽयं नन्तृनन्तव्यतात्मकः ॥ ८ ॥

जीव और ईश्वर में शेषशेषीभाव उपाधि से रहित है ऐसा प्रतिपादन—जीव और ईश्वर में नन्ता और नतव्यभाव किसी प्रयोजनपूर्वक नहीं है । किन्तु नीच और उच्च में परस्पर नन्ता-नन्तव्यात्मक स्वभाव होता है ॥ ८ ॥

निरुपाधिकोत्कर्षापकर्षज्ञानस्य नमनहेतुत्वम्

उपाधिरहितेनायं येन भावेन चेतनः ।
नमति ज्यायसे तस्मै तद्वा नमनमुच्यते ॥ ९ ॥
भगवान् मत्परो नित्यमहं प्रत्यवरः सदा ।
इति भावो नमः प्रोक्तो नमसः कारणं हि सः ॥ १० ॥

निरूपाधिक उत्कर्षापकर्ष का ज्ञान ही नमन क्रिया में हेतु है—यह चेतन (जीव) उपाधिरहित जिस भाव से उसे परमात्मा (ज्यायस) के लिए जिस प्रकार नमन करता है उसी को 'नमः' कहते हैं । भगवान् नित्य हमसे श्रेष्ठ हैं और हम सर्वदा उनसे अपकृष्ट हैं इस प्रकार का भाव 'नमः' शब्द से वाच्य है, जो नमन क्रिया में कारण है ॥ ९-१० ॥

अन्तर्णिजर्थविवक्षया नमःशब्दस्य निर्वचनान्तरम्

नामयत्यपि वा देवं प्रह्वीभावयति ध्रुवम् ।
प्रह्वीभवति नीचे हि परो नैच्यं विलोकयन् ॥ ११ ॥
अतो वा नम उद्दिष्टं यत् तं नामयति स्वयम् ।

'नामयति' इस अन्तर्णिजर्थ की विवक्षा से नमः शब्द का दूसरा निर्वचन—जो क्रिया देवाधिदेव परमात्मा को नवा दे अथवा उन्हें झुकने के लिए विवश करा दे अथवा उत्कृष्ट परमात्मा अपने से नीचे जीव की ओर देखता हुआ जिस क्रिया से नीचे की ओर झुक जावे तो वही नमः शब्द का अर्थ है—क्योंकि वह परमात्मा को स्वयं नमन करा देता है ॥ ११-१२ ॥

करणत्रयसहितस्य नमसः पूर्णत्वम्

वाचा नम इति प्रोच्य मनसा वपुषा च यत् ॥ १२ ॥
तन्नमः पूर्णमुद्दिष्टमतोऽन्यन्न्यूनमुच्यते ।
इयं करणपूर्तिः स्यादङ्गपूर्तिमिमां शृणु ॥ १३ ॥

तीन कारणपूर्वक नमस्कार में पूर्णता आती है ऐसा प्रतिपादन—'वाचा नमः' ऐसा कहकर वाणी से, २. मनसा नमः ऐसा कहकर मन से तथा ३. शिरसा नमः कहकर शरीर से जो नमः क्रिया की जाती है वह पूर्ण नमः है । उसके अतिरिक्त अन्य न्यून नमस्कार है । यहाँ तक करण पूर्त्ति नमस्कार कहा गया । अब अङ्ग पूर्त्ति युक्त नमस्कार को सुनिए ।

विमर्श—नमस्कार से ही शरणागति परिलाक्षित होती है । यह शरणागति छः प्रकार की कही गई है—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासः गोप्तृत्ववरणं तथा ।
आत्मनिक्षेप कारुण्ये षड्विधा शरणागति ॥ १२-१३ ॥

प्रह्वीभावात्मकात्मनिक्षेपतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

शाश्वती मम संसिद्धिरियं प्रह्वीभवामि यत् ।

पुरुषं परमुद्दिश्य न मे सिद्धिरतोऽन्यथा ॥ १४ ॥
इत्यङ्गमुदितं श्रेष्ठं फलेप्सा तद्विरोधिनी ।

इन छः प्रकार के अङ्गनिरूपण मे प्रह्वीभावात्मक आत्मनिक्षेप तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन करते हैं—मैं परमात्मा पुरुष को उत्कृष्ट समझ कर जो उसमें नमस्कार कर रहा हूँ यही हमारी शाश्वती संसिद्धि में हेतु है । इसके अतिरिक्त मेरी सिद्धि का अन्य कोई उपाय नहीं है । यह सर्वश्रेष्ठ नमस्कार का अङ्ग कहा गया है, नमस्कार से कुछ फल चाहना यह इच्छा उसकी विरोधिनी है ॥ १४-१५ ॥

कार्पण्यतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

अनादिवासनारोहादनैश्वर्यात् स्वभावजात् ॥ १५ ॥
मलावकुण्ठितत्वाच्च दृक्क्रियाविहतिर्हि या ।
तत् कार्पण्यं तदुद्बोधो द्वितीयं ह्यङ्गमीदृशम् ॥ १६ ॥
स्वस्वातन्त्र्यावबोधस्तु तद्विरोधीत्युदीर्यते ।

अब कार्पण्य तथा उसके विरोधीभाव का वर्णन—अनादिकालीन वासना के रहने से, ऐश्वर्यहीनता से, स्वभाव से तथा आणवादि मलों की कुण्ठा के कारण जीव की जो ज्ञान और क्रिया प्रतिहत हो गई है उसका उद्बोध (ज्ञान) होना कार्पण्य है । इस उद्देश्य से किया गया नमस्कार नमः का दूसरा अङ्ग है । अपने को सर्वथा स्वतन्त्र मानना' यह उस कार्पण्य का विरोधी भाव है ॥ १५-१६ ॥

महाविश्वासतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

परत्वे सति देवोऽयं भूतानामनुकम्पनः ॥ १७ ॥
अनुग्रहैकधीर्नित्यमित्येतत्तु तृतीयकम् ।
उपेक्षको यथाकर्म फलदायीति या मतिः ॥ १८ ॥
विश्वासात्मकमेतत्तु तृतीयं हन्ति वै सदा ।

महाविश्वास तथा तद्विरोधी भाव का वर्णन—देवाधिदेव परमात्मा पर होते हुये भी प्राणियों पर दया करने वाले हैं । इस प्रकार भगवान् के अनुग्रह में विश्वास रखना यह तृतीय अङ्ग है । वह कर्मानुसार फल देने वाला है, अतः किसी पर अनुग्रह क्यों करेगा? इस प्रकार की उसमें उपेक्षा बुद्धि रखना यह तृतीय विश्वासात्मक अङ्ग का विघात है ॥ १७-१९ ॥

गोप्तृत्ववरणतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

एवंभूतोऽप्यशक्तः सन्न त्राणं भवितुं क्षमः ॥ १९ ॥
इति बुद्ध्यस्य देवस्य गोप्तृशक्तिनिरूपणम् ।
चतुर्विधमङ्गमुद्दिष्टममुष्य व्याहतिः पुनः ॥ २० ॥
उदासीनो गुणाभावादित्युपेक्षानिमित्तजा ।

गोप्तृत्व वरण तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन—यदि इस प्रकार का पामर पुरुष

अशक्त होता तो वह जीव की रक्षा करने में असमर्थ होता, किन्तु वह जीव वर्ग की रक्षा करता है इसलिए अवश्य शक्तिमान् है। इस प्रकार की बुद्धि से परमात्मा में गोप्तृत्व शक्ति का वरण नमः का चतुर्थ अङ्ग है। 'उसे किसी से क्या लेना देना? वह तो सर्वथा उदासीन है तथा निर्गुण होने से सर्वथा गुणरहित है। इस प्रकार के निमित्तों से उसमें उपेक्षा भाव रखना यह चतुर्थ गोप्तृत्व वरण का विनाशक भाव है॥ १९-२१ ॥

प्रातिकूल्यवर्जनम्, तद्विरोधिनोर्निरूपणम्

स्वस्य स्वाम्यनिवृत्तिर्या प्रातिकूल्यविवर्जनम्॥ २१ ॥
तदङ्गं पञ्चमं प्रोक्तमाज्ञाव्याघातवर्जनम्।
अशास्त्रीयोपसेवा तु तद्व्याघात उदीर्यते॥ २२ ॥

प्रातिकूल्य विवर्जन तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन—मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे स्वामी है इस भाव को बनाये रखना यही प्रातिकूल्य विवर्जन है जो नमः का पाँचवाँ अङ्ग है। भगवान् की आज्ञा का व्याघात, भगवान् की आज्ञा न मानना और अशास्त्रीय विधि से उनकी सेवा ये सभी प्रतिकूल्यभाव है जो इस पञ्चम अङ्ग के विरोधी हैं॥ २१-२२ ॥

आनुकूल्यसङ्कल्पतम्, द्विरोधिनोर्निरूपणम्

चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः।
अतस्तदानुकूल्यं मे कार्यमित्येव निश्चयः॥ २३ ॥
षष्ठमङ्गं समुद्दिष्टं तद्विघातो निराकृतिः।

आनुकूल्य का सङ्कल्प तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन—समस्त चराचर जीव भगवान् के शरीर हैं, अतः हमें उनके अनुकूल कार्य करना चाहिए इस प्रकार निश्चय आनुकूल्यसङ्कल्प नामक नमः का षष्ठ अङ्ग हैं। भगवच्छरीरभूत चरा चरात्मक जगत् का न तिरस्कार की बुद्धि षष्ठ अङ्ग का विधातक है॥ २३-२४ ॥

उक्तार्थनिगमनम्

पूर्णमङ्गैरुपाङ्गैश्च नमनं ते प्रकीर्तितम्॥ २४ ॥
स्थूलोऽयं नमसश्चार्थः सूक्ष्ममद्य निशामय।

उक्तार्थ का उपसंहार—हे नारद! इस प्रकार हमने अङ्गों एवं उपाङ्गों से परिपूर्ण नमन का स्थूलार्थ निरूपण किया। अब सूक्ष्मार्थ सुनिए॥ २४-२५ ॥

नमःशब्दस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणे म इत्यस्याहङ्कार-ममकारवाचित्वम्

चेतनस्य यदा मम्यं स्वस्मिन् स्वीये च वस्तुनि॥ २५ ॥
मम इत्यक्षरद्वन्द्वं तदा मम्यस्य वाचकम्।

नमः शब्द के सूक्ष्मार्थ निरूपण में 'म' शब्द अहङ्कार तथा ममकार का वाचक है ऐसा निरूपण—

चेतन वर्ग को अपने में तथा अपनी वस्तु में सदैव ममत्व रहता है। इसलिए 'मम' यह दो अक्षर नमः शब्दान्तार्वर्त्ती मकार का वाचक है ॥ २५-२६ ॥

नमःशब्दस्याहन्तामयताबुद्धिनिवर्तकत्वम्

अनादिवासनाधीनमिथ्याज्ञाननिबन्धना ॥ २६ ॥
आत्मात्मीयपदार्थस्था या स्वातन्त्र्यस्वतामतिः।
मे नेत्येवं समीचीनबुद्ध्या सात्र निवार्यते ॥ २७ ॥

नमः इस शब्द से अहन्ता तथा ममता की बुद्धि निवृत्त हो जाती है—अनादिवासना की परवशता के कारण मिथ्याज्ञान से युक्त अपने में तथा अपने से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों में जीव को जो स्वातन्त्र्यपूर्वक स्वत्व की मति होती है, वह 'मे न' इस प्रकार की समीचीन बुद्धि से निवृत्त हो जाती है। यही नमः शब्द का अर्थ है ॥ २६-२७ ॥

उक्तार्थस्यैव विवरणम्

नाहंमम स्वतन्त्रोऽहं नास्मीत्यस्यार्थ उच्यते।
न मे देहादिकं वस्तुसशेषः परमात्मनः ॥ २८ ॥
इति बुद्ध्या निवर्तन्ते तास्ताः स्वीयामनीषिकाः।

ऊपर कहे गए अर्थ का विवरण—अहं न, मम न, अहं स्वतन्त्र न, मे देहादिकं वस्तु न, इत्यादि स्व और स्वीय में निषेध बुद्धि तथा यह सारा जगत् परमात्मा का है इस प्रकार की बुद्धि सकारात्मक से स्व और स्वीय बुद्धि निवृत्त हो जाती है। यह नमः शब्द का अर्थ है ॥ २८-२९ ॥

नमः शब्दार्थज्ञानस्याहन्ताममताबुद्धिनिवर्तकत्वे उपपत्तिप्रदर्शनम्

अनादिवासनाजातैर्बोधैस्तैस्तैर्विकल्पितैः ॥ २९ ॥
रूषितं यद् दृढं चित्तं स्वातन्त्र्यस्वत्वधीमयम्।
तत्तद्वैष्णवसार्वात्म्यप्रतिबोधसमुत्थया ॥ ३० ॥
नम इत्यनया वाचा नन्त्रा स्वस्मादपोह्यते।
इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमद्य निशामय ॥ ३१ ॥

'नमः' शब्द के अर्थ का विज्ञान होने पर अहन्ता ममता की बुद्धि निवृत्त हो जाने में उपपत्ति प्रदर्शन—अनादिवासना जाल से उत्पन्न तत्तद् विकल्प विषयक बोध से यह चित्त स्वातन्त्र्य तथा स्वत्व बुद्धि से दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ है। तब नमस्कार करने वाला समस्त वस्तु जात भगवान् विष्णु का है इस प्रकार की बुद्धि से उत्पन्न नमः शब्द द्वारा अपने से उसे अलग कर देता है यही नमः शब्द का सूक्ष्म अर्थ है ॥ २९-३१ ॥

नमःशब्दस्य परार्थनिरूपणम्

पन्था नकार उद्दिष्टो मः प्रधानो निरूप्यते।
विसर्गः परमेशस्तु तत्रार्थोऽयं निरूप्यते ॥ ३२ ॥

अनादिः परमेशो यः शक्तिमान् पुरुषोत्तमः ।
तत्प्राप्तये प्रधानोऽयं पन्था नमननामवान् ॥ ३३ ॥
इति ते त्रिविधः प्रोक्तो नमःशब्दार्थ ईदृशः ।

नमः शब्द का परार्थ निरूपण—न कार का अर्थ है 'पन्था' और 'म' का अर्थ है प्रधान, म पर रहने वाले विसर्ग का अर्थ है परमेश्वर । इस प्रकार नमः शब्द का यह अर्थ हुआ कि अनादि शक्तिमान् परमेश्वर पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिए किया गया नमन प्रधान मार्ग है । हे नारद ! हमने नमः पद का स्थूलार्थ, सूक्ष्मार्थ तथा परार्थ आपसे इस प्रकार वर्णन किया ॥ ३२-३४ ॥

विष्णुमन्त्रस्य स्थूलार्थनिरूपणम्

विष्णुनारायणादीनामर्थमद्य निशामय ॥ ३४ ॥
नीचभावेन संद्योत्यमात्मनो यत् समर्पणम् ।
विष्ण्वादिस्था चतुर्थी तत्सम्प्रदानप्रदर्शनी ॥ ३५ ॥
नीचीभूतो ह्यसावात्मा यत्संरक्ष्यतयार्प्यते ।
तत् कस्मा इत्यपेक्षायां विष्णवे स इतीर्यते ॥ ३६ ॥
क्रियाकारकसंसर्गलभ्योऽर्थः स्थूल ईरितः ।

'ॐ नमो विष्णवे' इस विष्णु मन्त्र में विष्णु पद का स्थूल अर्थ कहते हैं—

हे नारद ! अब विष्णु नारायणादि पदों के अर्थ को सुनिए । अपने को नीच समझ कर विष्णु के लिए आत्मसमर्पण द्योतित करना यही 'विष्णवे' पद में रहने वाली चतुर्थी विभक्ति का अर्थ है । यह चतुर्थी विभक्त सम्प्रदान को प्रगट करती है । नीचीभूत इस आत्मा को (अपने) को जिस संरक्षण के लिए समर्पित किया जाता है, वह कौन है? इस का उत्तर है विष्णवे अर्थात् विष्णु के लिए । क्रिया कारक से तथा संसर्ग से लभ्य होने वाला यह विष्णवे पद का स्थूल अर्थ है ॥ ३४-३७ ॥

विष्णुमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणे विष्णौ परत्वद्योतकगुणविशेषनिरूपणम्

यः प्रातिपदिकप्रेक्षाजन्यः सूक्ष्मः स ईर्यते ॥ ३७ ॥
व्याप्तिकान्तिप्रवेशेच्छास्तत्तद्धातुनिबन्धनाः ।
परत्वद्योतिका विष्णोर्देवस्य परमात्मनः ॥ ३८ ॥

विष्णुमन्त्र के सूक्ष्मार्थनिरूपण के प्रसङ्ग से विष्णु पद में परत्व प्रकाशक गुण का निरूपण—प्रातिपदिक की समीक्षा से उत्पन्न अर्थ को सूक्ष्मार्थ कहा जाता है । विष्लृ व्याप्तौ, वश कान्तौ, विश प्रवेशने एवं ईष इच्छायाम्' इन धातुओं से बनने वाले विष्णु रूप प्रातिपदिक का व्याप्ति, कान्ति, प्रवेश, इच्छा इतना अर्थ तत्तद्धातुओं के निबन्धन से होता है । ये सभी अर्थ परमात्मा विष्णु देव के परत्व (उत्कृष्टता) के द्योतक हैं ॥ ३७-३८ ॥

व्याप्तिगुणनिरूपणम्

व्याप्नोति देशकालाभ्यां सर्वं यद्रूपतोऽपि च ।
तत् परं गदितं सद्भिर्विषेर्धातोर्निरूपणात् ॥ ३९ ॥

व्याप्तिरूप गुण का निरूपण—जो देश एवं काल मे तथा स्वस्वरूप से सर्वत्र व्याप्त है वह सर्वापेक्षया पर (उत्कृष्ट) हुआ । सज्जनों ने विष्लृ व्याप्तौ इस धातु से निष्पन्न विष्णु पद का इस प्रकार उत्कृष्ट अर्थ किया है ॥ ३९ ॥

कान्तिगुणनिरूपणम्

कान्तिर्नाम गुणोत्कर्षो गुणा ज्ञानबलादयः ।
अतिवेलं प्रकृष्यन्ते यत्र कान्तः स ईरितः ॥ ४० ॥
अकान्ताश्चेतनाः सर्वे कान्तः स पुरुषः परः ।
कान्तिर्नाम गुणः सोऽयं वशेर्धातोर्निरूपणात् ॥ ४१ ॥

कान्तिगुण निरूपण—गुण की प्रकर्षता को कान्ति कहते हैं । ज्ञान, बल आदि गुण हैं । ये ज्ञान बलादि गुण जिसमें अपनी वेला (मर्यादा) का अतिक्रमण कर स्वयं आकृष्ट हों वह कान्त कहा जाता है । सभी चेतन अकान्त हैं । कान्त तो एक मात्र परमात्मा ही है । इस प्रकार वंश धातु से निष्पन्न कान्ति अर्थ वाले वे विष्णु ही पर हैं ॥ ४०-४१ ॥

प्रवेशगुणनिरूपणम्

चेतनाचेतनाः सर्वे विशन्त्येव यतः स्वयम् ।
महीयांसं विशत्येव योऽणीयानणुषु स्वयम् ॥ ४२ ॥
सपरो गदितः सद्भिर्विशेर्धातोर्निरूपणात् ।

प्रवेश गुण निरूपण—यतः चेतन और अचेतन सभी इन महान् विष्णु में स्वयं प्रवेश करते हैं तथा अत्यन्त अणु-अणु में स्वयं प्रवेश करते हैं । सज्जनों ने विश् धातु से निष्पन्न विष्णु रूप प्रातिपदिक का इसी प्रकार 'पर' अर्थ किया है ॥ ४२-४३ ॥

इच्छागुणनिरूपणम्

य इष्यते सदा सर्वैरात्मभावेन चेतनैः ॥ ४३ ॥
स परो गदितः सद्भिरिषेर्धातोर्निरूपणात् ।

इच्छागुण निरूपण—जो सभी चेतनों के द्वारा आत्मभाव से इच्छा का विषय है इस प्रकार सज्जनों ने इष धातु से निष्पन्न विष्णु का पर अर्थ कहा है ॥ ४३-४४ ॥

विष्णुशब्दे एकैकवर्णार्थनिरूपणम्

विश्वं प्रजायते वस्तु समवैति च तत्र हि ॥ ४४ ॥
प्रस्नौति च सदा सद्भ्यः पुरुषार्थं चतुर्विधम् ।
वेः सचेश्च स्नुतेश्चैव विष्णुर्धातुत्रयान्वयात् ॥ ४५ ॥
इति ते लेशतः सूक्ष्मो विष्णुशब्दार्थ ईरितः ।

विष्णु शब्द में रहने वाले एक-एक वर्ण के अर्थ का निरूपण—जिससे सारा विश्व उत्पन्न हुआ है वह 'वि' हुआ—(द्र० वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यासनखादनेषु) । यतः समुदाय रूप से वे उसी में रहते हैं, इसलिए वह 'ष्' हुआ (द्र० षच् समवाये) तथा जो सज्जनों के लिए चारों पुरुषार्थों को प्रस्रवित करता है वह ष्णु हुआ (द्र० ष्णु प्रस्रवणे) । इस प्रकार दो ष्कार युक्त विष्ष्णु शब्द वी, षच एवं ष्णु इन तीन धातुओं के योग से निष्पन्न हुआ । इस प्रकार विष्णुशब्द का सूक्ष्मार्थ हमने लेश मात्र कहा ॥ ४४-४६ ॥

परार्थनिरूपणम्

परस्त्वक्षरलभ्योऽर्थस्तस्य तत्त्वं निशामय ॥ ४६ ॥
अमृतायितसर्वार्थो ज्योतिस्त्रयसमिन्धनः ।
ददात्यभयमित्येतत् परोऽर्थः परिकीर्तितः ॥ ४७ ॥
इति ते वैष्णवे मन्त्रे त्रिविधा गतिरीरिता ।

विष्णु शब्द का परार्थ निरूपण—अक्षर से लभ्य अर्थ 'पर' अर्थ कहा जाता है, हे नारद ! अब आप उस 'पर' अर्थ को सुनिए जो सभी अर्थों को अमृतयुक्त करता है ! तीनों ज्योतियों को बढ़ाता है तथा सबको अभय प्रदान करता है यही विष्णु शब्द का परार्थ कहा जाता है । हमने इस प्रकार 'ॐ नमो विष्णवे' मन्त्र में विष्णु शब्द के तीनों अर्थो का प्रतिपादन किया ॥ ४६-४८ ॥

नारायणमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

नारायणे निबोधैतद्रूपाणां त्रितयं मुने ॥ ४८ ॥
क्रियाकारकलभ्योऽर्थस्तत्र स्थूलो निदर्शितः ।
यः प्रातिपदिकस्थोऽर्थः स सूक्ष्मोऽद्य निरूप्यते ॥ ४९ ॥
नरसम्बन्धिनो नारा नरः स पुरुषोत्तमः ।
नयत्यखिलविज्ञानं नाशयत्यखिलं तमः ॥ ५० ॥
न रिष्यति च सर्वत्र नरस्तस्मात् सनातनः ।
नरसम्बन्धिनः सर्वे चेतनाचेतनात्मकाः ॥ ५१ ॥
ईशितव्यतया नारा धार्यपोष्यतया तथा ।
नियाम्यत्वेन सृज्यत्वप्रवेशहरणैस्तथा ॥ ५२ ॥
अयते निखिलान्नारान् व्याप्नोति क्रियया तथा ।
नाराश्चाप्ययनं तस्य तैस्तद्भावनिरूपणात् ॥ ५३ ॥
नाराणामयनं वासस्ते च तस्यायनं सदा ।
परमा च गतिस्तेषां नाराणामात्मनां सदा ॥ ५४ ॥
आपो नारा इति प्रोक्तास्ता अप्ययनमस्य च ।
अतो नारायणो नाम हेतुभिर्दर्शितः परः ॥ ५५ ॥
इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परं वर्णाश्रयं शृणु ।

नारायण मन्त्र का सूक्ष्मार्थ निरूपण—हे मुने 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्र में नारायण पद के तीनों प्रकार (स्थूल, सूक्ष्म तथा परार्थ) के अर्थों को सुनिए—क्रिया कारक भाव से प्राप्त होने वाला अर्थ स्थूल कहा जाता है। यह बात हम आपसे पहले कह आये है (द्र० ५२.३५.३६)। अब जो नारायण रूप प्रातिपादिक में रहने वाले 'नारा' और 'नर' एक मात्र वही पुरुषोत्तम है। जो सारे विज्ञानों के प्रकाशक हैं, समस्त तमों का विनाश करने वाले है। कोई भी जो किसी की हिंसा नहीं करता। (द्र० रुष रिष् हिंसायाम् दिवादि)। इसलिए भी वह सनातन पुरुष 'नर' कहा जाता है। ये समस्त चेतन अचेतन नर से सम्बन्ध रखने वाले हैं, सबका ईशितव्य होने से और सबको धारण करने से तथा सब का पोषण करने से वह 'नारा' कहा जाता है। नियामक होने से, सृजन करने से, प्रवेश करने से तथा हरण करने से वह सबको जानता है अथवा समस्त नर समूहों में क्रिया द्वारा जो व्याप्त है, वह नारायण है, अथवा नारा (नर समूह) वही उसका वास स्थान है इस भाव का निरूपण करने से वह नारायण है, अथवा समस्त नरसमूहों का वह वास स्थान है, अथवा समस्त नरसमूह उसका वास स्थान है इसलिए वह नारायण हैं अथवा उन आत्मीय नर समूहों (अपने भक्तों) की वह एकमात्र गति है इसलिए नारायण हैं, अथवा नारा जल को कहते है वह जल ही जिसका वास स्थान है इसलिए वह नारायण हैं। इस प्रकार अनेक हेतुओं द्वारा नारायण शब्द से हमने उसकी उत्कृष्टता प्रगट कर सूक्ष्मार्थ प्रदर्शित किया। अब नारायण शब्द के वर्ण में रहने वाले पर अर्थ को, हे नारद ! सुनिए ॥ ४८-५६ ॥

परार्थनिरूपणम्

अकुण्ठितश्चक्ररूपः समस्तदुरितानलः ॥ ५६ ॥
व्यापकः सर्वशास्त्रेषु प्रथितो गोपनः सताम्।
सदानन्दमयः पन्था नाराणां च परा गतिः ॥ ५७ ॥
इत्यर्थः पर उद्दिष्टो वासुदेवे निशामय।

नारायण शब्द का परार्थ निरूपण—जिसमें कुण्ठा नहीं है वह अकुण्ठित चक्र ही जिसका स्वरूप है। समस्त पापों को भस्म करने के लिए जो अग्नि स्वरूप है, जो सर्वत्र व्यापक तथा सभी शास्त्रों में प्रथित है। सज्जनों का गोपन (संरक्षण) करने वाला, सदा आनन्दमय प्रधान मार्ग वाला, नारा (अपने भक्त) जनों की एक मात्र गति है इस प्रकार नारायण शब्द का पर अर्थ कहा गया। अब ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस मन्त्र में रहने वाले 'वासुदेव' शब्द का अर्थ सुनिए ॥ ५६-५८ ॥

वासुदेवमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

क्रियाकारकगो योऽर्थः स्थूलः पूर्वोक्त एव सः ॥ ५८ ॥
सूक्ष्मोऽर्थो वासुदेवाख्ये मन्त्रे प्रतिपदाश्रयः।
भगवानिति पूज्यार्थः शब्दोऽयं समुदायतः ॥ ५९ ॥

वासुदेव मन्त्र का सूक्ष्मार्थ निरूपण—क्रिया कारक में रहने वाला जो अर्थ है वह

स्थूल कहा जाता है। यह बात हम पूर्व में कह आये हैं (द्र० ५२.३६)। वासुदेव नामक मन्त्र में सूक्ष्म अर्थ प्रत्येक पद का आश्रय लिए हुये हैं। इस शब्द समुदाय का पूज्यार्थ भगवान् होता है॥ ५८-५९॥

भकारार्थनिरूपणम्

धारयत्यखिलं विश्वं पोषयत्यपि तत् सदा।
भरते पूरयत्येतत् सम्भरत्यपि चात्मना॥ ६०॥
त्रयीकर्मात्मकं सूक्ष्ममिति भार्थो निरूप्यते।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र में भकारार्थ निरूपण—(डुभृञ् धारणपोषणयोः) जो सारे विश्व को धारण करता है तथा उसका पोषण करता है, इसे पूर्ण करता है भकार का यह सूक्ष्म अर्थ तीन क्रियाओं वाला है, इस प्रकार भकार का सूक्ष्मार्थ निरूपण किया गया॥ ६०-६१॥

गकारार्थनिरूपणम्

गीयते निखिलैः शब्दैर्गम्यते चापवर्गिभिः॥ ६१॥
स्वतोऽवबुध्यते सर्वं व्याप्नोति निखिलं जगत्।
नेता च निखिलार्थस्य गकारार्थः स्मृतो मुने॥ ६२॥

भगवते शब्द में गकारार्थ निरूपण—सम्पूर्ण शब्द राशि जिसका गान करते हैं, अपवर्गियों (मोक्ष चाहने वाले) द्वारा जो गम्य है और जो स्वयं सब कुछ जानता है तथा जो सारे संसार में व्याप्त हो रहा है तथा निखिल पदार्थों का अध्यक्ष है। हे मुने! यही गकार शब्द का अर्थ है॥ ६१-६२॥

मतुवर्थनिरूपणम्

स्वत्वेन वृणुते विश्वं वर्तते चेशतात्मना।
वर्धयत्यखिलं कामं वतोऽर्थोऽयं समीरितः॥ ६३॥

भगवते पद में वतुप् प्रत्यय के अर्थ का निरूपण—जो सारे जगत् को स्वत्व रूपेण वरण करता है एवं ईश्वर रूपेण वर्त्तमान रहता है और सम्पूर्ण कामनाओं बढ़ाता है, यही वतुप् प्रत्यय का अर्थ है॥ ६३॥

वासुशब्दार्थनिरूपणम्

छादयत्यखिलं स्वेन ज्ञानानन्दामलात्मना।
यथा च वह्निनाविष्टमिन्धनं तन्मयं भवेत्॥ ६४॥
एवमाच्छादितं तेन विश्वं तन्मयमेव तत्।
वसत्यस्मिन् यतो विश्वं तत्रापि च वसत्ययम्॥ ६५॥
वासुशब्दार्थ उद्दिष्टो वा गन्ता परिकीर्त्यते।
तन्तुवत् सकलार्थेषु सन्तनोतीति वाः स्मृतः॥ ६६॥
प्रसूयतेऽखिलान् भावान् सौति प्रेरयतीत्यपि।
मखेष्वभिष्टुतः सद्भिरिति स्वर्थोऽयमुच्यते॥ ६७॥

वासु शब्दार्थ निरूपण—(वस् आच्छादने) जो अपने ज्ञान, आनन्द तथा अमलात्म स्वरूप से निखिल विश्व को आच्छादित किये हुये है। जिस प्रकार अग्नि से आविष्ट इन्धन अग्नि स्वरूप में दिखाई पड़ता है उसी प्रकार उससे आच्छादित यह सारा विश्व भी तत्स्वरूप ही है। (वस निवासे) यत: विश्व इसमें निवास करता है और उस विश्व में यह स्वयं निवास करते हैं। यह 'वासु' शब्द का अर्थ हमने कहा। (वो गतिबन्धनयो:) 'वा' का अर्थ गन्ता (ज्ञानवान्) कहा जाता है, अथवा तन्तु के समान सम्पूर्ण अर्थों में जो अनुस्यूत है वह 'वा:' कहा जाता है। सु का अर्थ जो सारे पदार्थों को उत्पन्न करता है, अथवा सबको प्रेरित करता है, अथवा यज्ञों में सज्जनों से अभिप्लुत हैं, यही 'सु' शब्द का अर्थ है ॥ ६४-६७ ॥

देवशब्दार्थनिरूपणम्

द्योतते स्वत एवायं सृष्ट्याद्यै: क्रीडति स्वयम्।
स्तूयते च सदा देवैरिति देवार्थ ईरित: ॥ ६८ ॥
दाता च सर्वकामानां शोधक: सर्वदेहिनाम्।
रक्षिता सर्वभूतानामिति देकार उच्यते ॥ ६९ ॥
सर्वै: सम्भजनीयश्च वोढा च सकलात्मनाम्।
वकारार्थोऽयमुद्दिष्ट इति सूक्ष्मगतिस्त्वियम् ॥ ७० ॥

देव शब्दार्थ निरूपण—दिव् क्रीडा विजिगीषाव्यवहार एवं द्युतिस्तुति मोद कान्तिगतिषु इतने अर्थों में दिव् धातु प्रयुक्त होती है।

जो स्वयं प्रकाशित रहता है और सृष्टि आदि से स्वयं क्रीडा करता है तथा देवता गणों से संस्तुत है। इतना देव शब्द का अर्थ कहा। अब दे का अर्थ—जो सम्पूर्ण कामनाओं का दाता है समस्त जीवों को पाप से शुद्ध करता है और सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा करता है। यही 'दे' का शब्द का अर्थ है। 'व' शब्द का अर्थ—सबके द्वारा अपनी सेवा की योग्यता रखने वाला और सम्पूर्ण लोगों का वहन करने वाला है। यही 'वकार' शब्द का अर्थ कहा जाता है, इतना सूक्ष्मार्थ हुआ ॥ ६८-७० ॥

परार्थनिरूपणे भकारार्थनिरूपणम्

परस्त्वक्षरसलभ्यस्तस्य रूपं निशामय।
ध्रुव: पूर्वोऽवधिर्ज्ञेयो यदुपादानमुच्यते ॥ ७१ ॥
ध्रुवं जगदुपादानमिति भाक्षरचिन्तनम्।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र में भगवते शब्द के 'भकार' का परार्थ निरूपण—पर अर्थ अक्षर से लभ्य है, अत: उसका रूप सुनिए। 'ध्रुव' (भकार द्र० १७.२८) पूर्व में वर्त्तमान अवधि को कहते हैं जिसे उपादान भी कहा जाता है। वह ध्रुव होने के कारण सारे जगत् का उपादान है, यहाँ तक 'भकार' का परार्थ कहा गया ॥ ७१-७२ ॥

गकारार्थनिरूपणम्

गां वेदयति सच्छास्त्रमादौ विन्दति वा स्वयम् ॥ ७२ ॥

गोविन्दो नाम देवोऽसौ गार्थः सङ्कर्षणो मुने ।

भगवते के गकारार्थ का निरूपण—जो गाम् (पृथ्वी वाणी या गाय) का ज्ञान कराते है, अथवा स्वयं सच्छास्त्रों को जानते हैं वहीं गोविन्द नाम वाले देव सङ्कर्षण भी कहे जाते हैं । हे मुने ! यही 'गकार' का अर्थ है ॥ ७२-७३ ॥

वकारार्थनिरूपणम्

वरुणो वृणुते विश्वं त्रयीकर्मोभयात्मकम् ॥ ७३ ॥
वृणुते कुरुते विश्वमिति वार्थो निरूप्यते ।

भगवते के वकारार्थ का निरूपण—जो सारे विश्व को आच्छादित करता है वह वरुण (वकार द्र० १७.२६) है अथवा जो विश्व को वरण करता है, अथवा जो विश्व का कर्त्ता है वह 'वकार' है । (यहाँ पर वृञ् वरणे और वृञ् आच्छादने) दो धातु हैं पर उनकी तीन क्रियायें हैं । इस प्रकार 'वकार का अर्थ निरूपण किया गया ॥ ७३-७४ ॥

तकारार्थनिरूपणम्

यत् सृज्यते संह्रियते स्रग्धरः परिकीर्त्यते ॥ ७४ ॥
धत्ते तदुभयं देवः स्वनाभिकमलोदरे ।
अतः स्रग्धर इत्येवमनिरुद्धोऽत्र चोदितः ॥ ७५ ॥
चतुर्भिरक्षरैरेवं चतुर्व्यूहनिरूपणम् ।

भगवते के तकारार्थ का निरूपण—जो सृष्टि करता है और उसका संहार करता है, उसे स्रग्धर (तकार द्र० १७.१९) कहा जाता है, अथवा अपने नाभिकमल के भीतर सृष्टि और संहार इन दोनों को धारण करता है इस कारण भी वह स्रग्धर तकार (द्र० १७.१९) कहा जाता है । इस तकार से यहाँ अनिरुद्ध व्यूह विवक्षित है । अब आगे वासुदेव इन चार अक्षरों से चतुर्व्यूह का निरूपणे किया जाता है ॥ ७४-७६ ॥

वाकारार्थनिरूपणम्

वकारेणामृताधारो वासुदेवो निरूप्यते ॥ ७६ ॥
आकारेणादिदेवस्तु सङ्कर्षण उदीर्यते ।
यो वासुदेवो भगवान् मोक्षाधारः सनातनः ॥ ७७ ॥
सङ्कर्षणः स एवेति वाकारार्थो निरूप्यते ।

वासुदेव के वाकारार्थ का निरूपण—वकार द्वारा अमृताधार वासुदेव का निरूपण किया जाता है । (द्र० १७.२६) आकार से आदिदेव सङ्कर्षण कहे जाते हैं । जो सनातन मोक्षाधार भगवान् वासुदेव है वही सङ्कर्षण भी है । इतना ही 'वाकार' का अर्थ निरूपण किया जाता है ॥ ७६-७८ ॥

सुकारार्थनिरूपणम्

भुवनं कर्म चैवादौ योऽसूयत सनातनः ॥ ७८ ॥
स सोम उदितस्तेन प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ।

उद्दाम उदयश्चात्र सङ्कर्षण उदीर्यते ॥ ७९ ॥
सङ्कर्षणदशायां हिं सम्पूर्ण उदयो हरेः ।
वासुदेवात्मको यः स सङ्कर्षण उदीरितः ॥ ८० ॥
प्रद्युम्नोऽपि स एवेति सुकारार्थो निरूप्यते ।

वासुदेव पद में सुकारार्थ का निरूपण—जिस सनातन भगवान् ने सर्वप्रथम भुवन रूप कार्य को उत्पन्न किया । वही सोम (सकार द्र० १७.२७) रूप से प्रकट हुआ, जिससे पुरुषोत्तम प्रद्युम्न हुये । वही सोम जब उद्दाम रूप से उदित हुआ (उकार द्र० १७.६) तो सङ्कर्षण कहा गया । सङ्कर्षण दशा में हरि का पूर्ण रूप से उदय होता है । इस प्रकार जो वासुदेवात्मक है, वही सङ्कर्षण है और जो सङ्कर्षण है वही प्रद्युम्न है । सुकारार्थ का निरूपण यहाँ तक किया गया ॥ ७८-८१ ॥

देकारार्थनिरूपणम्

दत्तो येनावकाशोऽप्सु शयानेन महात्मना ॥ ८१ ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्वृद्ध्यै स्वनाभिकमलोदरे ।
दत्तावकाशो दस्यार्थः सोऽनिरुद्ध उदीर्यते ॥ ८२ ॥
एकारेण जगद्योनिः प्रद्युम्नः परिपठ्यते ।
सङ्कर्षणात्मको यः स प्रद्युम्नः परिकीर्तितः ॥ ८३ ॥
अनिरुद्धः स इत्येवं देकारार्थो निरूप्यते ।

वासुदेव शव्द में देकारार्थ का निरूपण—जिन महात्मा विष्णु ने अपने नाभिकमलोदर में स्थित जल में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को बढ़ने के लिए अवकाश (स्थान) प्रदान किया, अर्थात् 'दत्तावकाश' द का अर्थ है और वही अनिरुद्ध पद से अभिहित किया जाता है । दकारोत्तरवर्त्ती एकार से जगद्योनि प्रद्युम्न कहे जाते हैं । सङ्कर्षणात्मक व्यूह ही प्रद्युम्न नाम से कहा जाता है । वही अनिरुद्ध व्यूह भी हैं । इतने से 'देकार' का अर्थ निरूपण किया गया ॥ ८१-८४ ॥

वकारार्थनिरूपणम्

एवं वर्णत्रयेणोक्तं व्यूहतादात्म्यमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
उपसंहाररूपेण पुनर्वेति तदुच्यते ।
लेशतो वासुदेवाख्ये परोऽर्थस्ते प्रदर्शितः ।
जितन्तायामिदानीं मे सर्वमर्थं निशामय ॥ ८५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां विष्णवादिमन्त्रार्थ-निरूपणं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३४०२ ॥

***

वासुदेव पद में वकारार्थ का निरूपण—इस प्रकार 'वा' 'सु' दे इन तीन अक्षरों से व्यूहों का परस्पर तादात्म्य (अभेद) सम्बन्ध कहा गया । उसी त्रितयात्मक व्यूह को कहने के लिए उपसंहार रूप में पुनः वकार कहा गया है । इस प्रकार मन्त्र में आने वाले वासुदेव पद को हमने लेश मात्र परार्थ निरूपण किया । अब आप 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' इस विष्णुमन्त्र का अर्थ सुनिए ॥ ८४-८५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के विष्ण्वादि-मन्त्रार्थ निरूपण नामक बावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५२ ॥

⁂

अथ त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

जितन्ताख्यमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ जन्मों के पाप राशि को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

मन्त्राद्यपादस्य स्थूलार्थनिरूपणे जिधात्वर्थयोरौज्ज्वल्याविघातयोर्नमनप्रयोजकत्वकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

औज्ज्वल्यमविघातश्च जयतेरर्थ उच्यते ।
प्रयोजकं तदुभयं नन्तुर्नमनकर्मणि ॥ १ ॥

'जितं' आदि मन्त्र के प्रथम पाद में स्थूलार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से जिधातु के अर्थभूत उज्ज्वलत्व तथा अविघातकत्व ये दोनों ही नमन क्रिया के प्रयोजक हेतु हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं—अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिधातु से निष्पन्न 'जयते' का अर्थ उज्ज्वलता तथा अविघातता कहा गया है । ये दोनों नमस्कार कर्ता के नमन क्रिया में प्रयोजक हेतु हैं ॥ १ ॥

तयोर्ज्ञानादिषड्गुणजन्यत्वम्

ज्ञानशक्तिबलाद्यैस्तदुभयं खलु जायते ।

ये दोनों अर्थ ज्ञानादिषाड्गुण्य से उत्पन्न होते हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं—ज्ञान शक्ति बलादि षड्गुणों से ये दोनों निश्चित रूप से उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानादिगुणपूर्णत्वात् भगवत एव नन्तव्यत्वम्

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजोमहोदधिः ॥ २ ॥
भगवानेव विश्वात्मा नन्तव्यः प्रविवक्ष्यते ।

ज्ञानादि षड्गुण से परिपूर्ण होने से एक भगवान् ही नमस्कार करने के योग्य है— ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य एवं तेज के महोदधि एक मात्र विश्वात्मा भगवान् ही हैं। इसलिए वही नमस्करणीय हैं ॥ २-३ ॥

पुण्डरीकाक्षशब्दस्य यथोक्तार्थप्रकाशकत्वोपपादनम्

पुण्डरीकाक्षशब्देन तदिदं प्रतिसूत्र्यते ॥ ३ ॥
प्रयुक्तो रागरोषाभ्यां चक्षुषैव विभाव्यते ।
अयं त्ववाप्तकामत्वात् तत्तत्कृत्यविवर्जितः ॥ ४ ॥
प्रसन्नो वैकृतत्यागात् पुण्डरीकाक्ष उच्यते ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द से उक्त दोनों अर्थों का प्रतिपादन होता है ऐसा कथन— जिधात्वर्थ एवं षाड्गुण्यादि परिपूर्णता ये दोनों अर्थ एक मात्र पुण्डरीकाक्ष शब्द से प्रतिसूत्रित हो जाते हैं क्योंकि राग और रोष से युक्त पुरुष का ज्ञान नेत्र द्वारा ही होता है। भगवान् पूर्ण काम हैं इसलिए राग रोष रहित होने के कारण तथा विकारों के त्याग देने से वे प्रसन्न रहते हैं। इसलिए वही पुण्डरीकाक्ष हैं ॥ ३-५ ॥

तस्यैव शब्दस्य हेयप्रतिभटत्वकल्याणगुणाकरत्वरूपोभयलिङ्गपरत्वम्

रागादिदोषनिर्मुक्तिः कल्याणगुणपूरणम् ॥ ५ ॥
पुण्डरीकाक्षशब्देन शब्द्यते पुरुषोत्तमे ।

वही पुण्डरीकाक्ष शब्द हेयादिदोष राहित्य से तथा कल्याणादि गुण करता इन दोनों अर्थों का प्रतिपादन करता है ऐसा कथन—रागादिदोष से निर्मुक्ति तथा कल्याणगुण से पूर्णता ये दोनों ही पुण्डरीकाक्ष शब्द पुरुषोत्तम में घटित होते हैं ॥ ५-६ ॥

तस्यैव वासुदेवाख्यप्रथमव्यूहनिरूपकत्वम्

पुण्डरीकाक्षशब्दोऽयमादिव्यूहनिरूपणः ॥ ६ ॥
पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य ब्रह्मा तेनैव हेतुना ।
नन्ता स्वं च समालोक्य जितं त इति वक्त्ययम् ॥ ७ ॥
इति संसर्गजः स्थूलः सूक्ष्मं चापि मुने शृणु ।

वही वासुदेव नामक प्रथम व्यूह है ऐसा कहते हैं—यह पुण्डरीकाक्ष शब्द आदिव्यूह (वासुदेव व्यूह) का निरूपण करता है इसी कारण ब्रह्मदेव, पुण्डरीकाक्ष को ही इन गुणों से युक्त समझ कर तथा अपने को स्वयं नन्ता (नमस्कार कर्त्ता) जान कर 'जितं ते' इस वाक्य का उच्चारण करते हैं। यह तो संसर्गज पुण्डरीकाक्ष शब्द का स्थूल अर्थ हुआ। हे मुने! अब उसका सूक्ष्म अर्थ सुनिए।

विमर्श— 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥'

यह श्लोक बद्ध मन्त्र लक्ष्मीतन्त्र २४.६९ में आया है ॥ ६-८ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणे पुण्डरीकाक्षशब्देन भगवतोऽकाल-काल्यत्वस्याविष्करणम्

पुण्डरीकं तु कालाख्यं पुरं जरयते यतः ॥ ८ ॥
तेनाक्षतो बहिर्भावात् तेनानाकलितो यतः ।

सूक्ष्मार्थ निरूपण के प्रसङ्ग में भगवान् का काल द्वारा अकाल्यत्व कालराहित्य कथन—यतः ये पुण्डरीक कालाख्य पुर को जला देते हैं । अतः काल से सर्वथा बाहर रहने के कारण वे अक्षत है और काल से कवलित नहीं होते ॥ ८-९ ॥

कालत्रैविध्यकथनपूर्वकं तदुपपादनम्

स्थूलः सूक्ष्मः परः कालस्त्रिविधो न परात्मनि ॥ ९ ॥
वासुदेवे परे ब्रह्मण्यवगाहनमर्हति ।
स्थूलो लवादिमान् कालः सूक्ष्मस्तात्त्वनिरूपकः ॥ १० ॥
व्यूहानां चेष्टितव्यापी परः कालो निरूप्यते ।

काल का त्रैविध्य निरूपण तथा उसका उपपादन—स्थूल, सूक्ष्म तथा पर ये त्रिविध काल परमात्मा वासुदेव रूप परब्रह्म में अवगाहन नहीं करते । लव, कला, काष्ठादि स्थूल काल कहे जाते हैं । तत्त्वों का निरूपक सूक्ष्म काल कहा गया है तथा व्यूहों की चेष्टा में व्याप्त रहने वाला काल, पर काल नाम से निरूपित किया गया है ॥ ९-११ ॥

व्यूहत्रयात् परवासुदेवस्य वैलक्षण्याविष्करणम्

व्यूहत्रयस्य भवति कालेन कलनं सदा ॥ ११ ॥
भगवान् वासुदेवस्तु न व्यूहेनापि कालवान् ।
व्यूहत्रयमपेक्ष्यैव कालव्यूहनिरूपणम् ॥ १२ ॥
कालेनामानतश्चायममितद्युतिरुच्यते ।

वासुदेव नामक व्यूह अनिरुद्धादि व्यूह त्रितय से विलक्षण हैं ऐसा उपपादन करते हैं—इन तीनों व्यूहों का सदैव काल से कलन हो जाता है किन्तु भगवान् वासुदेव नामक व्यूह काल व्यूह से भी कवलित नहीं होंगे । कालव्यूह का निरूपण इन्हीं तीनों व्यूहों की अपेक्षा से किया जाता है । यह वासुदेव काल गणना से परे हैं और अमितद्युति कहे जाते हैं ॥ ११-१३ ॥

पुण्डरीकाक्षशब्दस्य भगवति नित्यविभूतियोग-प्रतिपादकत्वम्

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ १३ ॥
तस्मिन्निवसनान्नित्यं पुण्डरीकाक्ष उच्यते ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द का भगवान् में नित्य विभूतियोग रूपेण प्रतिपादन—पुण्डरीक नाम का धाम (तेज) नित्य अक्षय तथा अव्यय है । उस अपने धाम में निवास करने के कारण भगवान् को पुण्डरीकाक्ष कहते हैं ॥ १३ ॥

तस्यैव स्वमहिमप्रतिष्ठितत्वप्रतिपादकत्वम्

पुण्डरीकं परं धाम स्व एव महिमोज्ज्वलः ॥ १४ ॥
स्वे महिम्नि स्थितो देवः पुण्डरीकाक्ष उच्यते ।
वासुदेवस्ततः प्रोक्तः पुण्डरीकाक्षसंज्ञया ॥ १५ ॥
पुण्डरीकाक्षशब्दस्य सूक्ष्मार्थः सोऽयमीरितः ।

पुण्डरीकाक्ष भगवान् अपने महिमा में प्रतिष्ठित हैं ऐसा उपपादन—पुण्डरीक नामक धाम अपने महिमा से ही उज्ज्वल हैं । अतः स्व महिमा में स्थित होने के कारण देव वासुदेव भगवान् पुण्डरीकाक्ष हैं । इसलिए वासुदेव पुण्डरीकाक्ष संज्ञा से अभिहित होते हैं । इस प्रकार पुण्डरीकाक्ष शब्द का अर्थ हमने कहा ॥ १४-१६ ॥

परार्थनिरूपणारम्भः

पुण्डरीकाक्ष इत्यस्य परमर्थं निशामय ॥ १६ ॥

अब पुण्डरीकाक्ष शब्द परार्थ का निरूपण प्रारम्भ करते हैं—हे नारद ! अब पुण्डरीकाक्ष शब्द का परार्थ श्रवण करिए ॥ १६ ॥

पकारार्थनिरूपणम्

रागादिदोषनिर्मुक्तः पवित्रं परमं हरिः ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द में पकारार्थ निरूपण—पुण्डरीकाक्ष शब्द का पकार, उकार, णकार, डकार, रीकार, काकार, क्षकार इस प्रकार सात भागों में विभाग कर अब उसका क्रमशः अर्थ प्रदर्शित करते हैं—

पकारार्थ निरूपण—रागादिदोष से निर्मुक्तहरि ही एकमात्र परम पवित्र हैं ॥ १७ ॥

उकारार्थनिरूपणम्

नित्योदितस्वरूपत्वादुद्दाम उदयः स्मृतः ॥ १७ ॥

उकारार्थ निरूपण—नित्य उदित होने वाले स्वरूप से उद्दाम एवं उदय उकार का अर्थ है ॥ १७ ॥

णकारार्थनिरूपणम्

व्यूहत्रितयपूर्वत्वात् प्रधानः परिपठ्यते ।

णकारार्थ निरूपण—तीन व्यूहों से पूर्व रहने के कारण जो प्रधान शास्ता (द्र० १७१.१९) हैं वही णकार का अर्थ है ॥ १८ ॥

डकारार्थनिरूपणम्

शुद्धाशुद्धाध्वसम्प्राप्तेः संस्मृतोऽखण्डविक्रमः ॥ १८ ॥

डकारार्थ निरूपण—शुद्धाशुद्धाध्व की सम्प्राप्ति से अखण्डविक्रम ही डकार का अर्थ है ॥ १८ ॥

ईकारशिरस्करेफार्थनिरूपणम्

सङ्कर्षणादिभूम्यन्तमशेषभुवनं यतः ।
बिभर्त्याधारभावेन व्याप्नोत्यन्तश्च तत् स्वयम् ॥ १९ ॥

रीकार का अर्थ निरूपण—सङ्कर्षणादि भूमि से लेकर अन्त में रहने वाले सम्पूर्ण भुवनों का आधार बन कर (द्र० १७.२५) जो धारण करता है और उसके भीतर व्याप्त रहता है वह स्वयं रीकार का अर्थ है ॥ १९ ॥

आकारसहितककारार्थनिरूपणम्

आनन्दो नैरपेक्ष्येण परा च प्रकृतिः स्वयम् ।

काकार का अर्थ निरूपण—जो बिना किसी की अपेक्षा किये आनन्द स्वरूप है (आकार द्र० १७.४) तथा स्वयं परा प्रकृति स्वरूप (ककार द्र० १७.१२) है वह काकार का अर्थ है ॥ २० ॥

क्षकारार्थनिरूपणम्

शुद्धाशुद्धमयस्यास्य चेतनाचेतनात्मनः ॥ २० ॥
वर्गस्यान्तः परा सीमा वर्गान्तः परिपठ्यते ।

क्षकारार्थ निरूपण—शुद्धाशुद्धमय चेतना चेतनात्मक (मातृका) वर्ग के अन्त की सीमा होने के कारण वर्गान्त क्षकार (१७.२८) का अर्थ है ॥ २०-२१ ॥

पुण्डरीकाक्षशब्दार्थस्य चिरकालादपि कार्त्स्न्येन वक्तुमशक्यत्वम्

इति वर्णमयी रीतिः पराख्या ते प्रदर्शिता ॥ २१ ॥
वर्षायुतैरपि व्यक्तं न शक्या वक्तुमञ्जसा ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द का अर्थ बहुत काल पर्यन्त भी सम्पूर्ण रूपेण वर्णन करना सम्भव नहीं है—इस पुण्डरीक शब्द की वर्णमयी पराख्या रीति हमने प्रदर्शित की । इसका सम्पूर्ण अर्थ दश हजार वर्षों तक भी कदाचित् वर्णन करना सम्भव नहीं है ॥ २१-२२ ॥

मन्त्रद्वितीयपादस्थूलार्थनिरूपणम्

विश्वभावनसंज्ञेयं सङ्कर्षश्रीसमीरणी ॥ २२ ॥
क्रियाकारकसंसर्गजन्यः स्थूलो निरूपितः ।

'जितन्ता' मन्त्र के दूसरे पाद का स्थूलार्थ निरूपण—यह विश्वभावन संज्ञा सङ्कर्षण श्री को प्रेरणा करने के कारण है । इस प्रकार विश्वभावन शब्द का क्रिया कारक भाव से जन्य स्थूल अर्थ निरूपण किया गया ॥ २२-२३ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

सूक्ष्ममर्थमिदानीं तु गदतो मे निशामय ॥ २३ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण—अब हे नारद ! आप विश्वभावन शब्द का सूक्ष्म अर्थ सुनिए ॥ २३ ॥

विश्वभावनशब्दस्य सर्वकारणपरत्वम्

चेतनाचेतनाकारं विश्वं प्रद्युम्नपूर्वकम् ।
भावयन्ननिशं देवः कथितो विश्वभावनः ॥ २४ ॥

यह विश्वभावन शब्द सब का कारण परत्व है—प्रद्युम्नपूर्वक समस्त चेतना चेतनात्मक जगत् को वे देव यतः उत्पन्न करते हैं इसलिए उन्हें विश्वभावन कहा जाता है ॥ २४ ॥

कारणत्वोपयोगिसर्वज्ञत्वपरत्वम्

विश्वं भावयति व्यक्तं जानात्येव यथार्थतः ।
विश्वभावन उद्दिष्टः सर्वज्ञः शब्दवित्तमैः ॥ २५ ॥

विश्व कारणता के उपयोगी सर्वज्ञत्व का कथन—वह इस विश्व को प्रकट रूप में उत्पन्न करता है तथा यथार्थ रूप से उसका ज्ञान भी रखता है इसलिए शब्दवेत्ता विद्वानों ने विश्वभावन शब्द का अर्थ 'सर्वज्ञ' ऐसा किया है ॥ २५ ॥

सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वम्

अनिशं बिभ्रतं प्राप्य विश्वं भवति वै ततः ।
विश्वभावन उद्दिष्टो बलदेवो महाबलः ॥ २६ ॥

यह विश्वभावन शब्द सङ्कर्षण नामक द्वितीयव्यूह का भी वाचक है—उसी से निरन्तर धार्यमाण रह कर यह सारा विश्व उत्पन्न होता है । इसलिए महा वलवान् बलदेव ही विश्वभावन शब्द से कहे जाते हैं ॥ २६ ॥

सर्वशेषिपरत्वम्

अनाथमभवद्विश्वं नाथो भावयति स्वयम् ।
तस्मिन्नुदितमात्रे वै विश्वं यद्भवति स्वयम् ॥ २७ ॥
विश्वभावन उद्दिष्टो नाथत्वेन निरीक्षणात् ।

सर्वशेषी परत्व का उपपादन—इस विश्व को वह स्वयं ऐश्वर्य तथा आशीः प्रदान करते हैं । अन्यथा वह अनाथ हो जाता है । नाथ रूप से उसकी रक्षा करते हैं, क्योंकि उनके उदय होते ही यह सारा विश्व अपने आप उत्पन्न हो जाता है । अतः नाथ बन कर निरीक्षण करने के कारण वह विश्वभावन है ॥ २७-२८ ॥

सर्वाधारपरत्वम्

विशालोऽयं यदाधारो विश्वस्य भवने स्वयम् ॥ २८ ॥
तिलकालकवद्विश्वं यस्मात् तत्रावतिष्ठते ।
विशालाधाररूपेण विशालाक्षो भवेत् स्वयम् ॥ २९ ॥
विश्वं तद्भावयन् विश्वं विश्वभावन ईर्यते ।
इति ते लेशतः प्रोक्तः सूक्ष्मोऽर्थो विश्वभावने ॥ ३० ॥

सर्वाधारपरत्व निरूपण—विश्व के उत्पन्न होने में यह स्वयं विशाल आधार है। जिस कारण से यह सारा विश्व उसमें मात्र काले तिल के समान स्थित रहता है अत: विश्व का विशाल आधार होने के कारण वह स्वयं विशालाक्ष बन जाता है, चारों ओर से विश्व की रक्षा करने के कारण उसे विश्वभावन कहा जाता है। इस प्रकार हे नारद! हमने विश्वभावन शब्द का लेश मात्र सूक्ष्म अर्थ आपको निरूपण किया ॥ २८-३० ॥

परार्थनिरूपणारम्भः

परमर्थमिदानीं त्वं गदतो मे निशामय।

विश्वभावन शब्द का परार्थ निरूपण—विश्वभावन शब्द का परार्थ निरूपण मैं करता हूँ उसे सुनिए।

विमर्श—वि, श, द्वितीय व, भ, आ, तृतीय व, न इस प्रकार सात भागों में विश्वभावन' शब्द के वर्णों का विभाग कर तथा उनका अप्रमेयादि भावसिद्ध शब्द के वर्णों का विभाग कर और उनका अप्रमेयादिभावसिद्ध 'पर' संज्ञक अर्थ (द्र० १७.४.२९) निरूपण किया जाता है जो 'अमृताधारत:' इत्यादि ३१ श्लो० से आरम्भ कर विश्वभावन इत्येव ३७ श्लोक पर्यन्त साढ़े पाँच श्लोकों में है ॥ ३१ ॥

इकारशिरस्कवकारार्थनिरूपणम्

अमृताधारतस्त्विन्द्धो वासुदेवादिभूमिकः ॥ ३१ ॥

इकारशिरस्क वकारार्थ निरूपण—अमृताधार (वकार द्र० १७.२६) और इद्ध, (इकार द्र० १७.६) ये दोनों वासुदेव भूमिका वाले हैं ॥ ३१ ॥

शकारार्थनिरूपणम्

सम्यग्ज्ञानोपदेशेन शङ्करः सर्वदेहिनाम्।

शकारार्थ निरूपण—सम्यग् ज्ञानोपदेश कर जो सारे जीवों का कल्याण करता है यह शकार का अर्थ है (द्र० १७.२६ शङ्कर:) ॥ ३२ ॥

द्वितीयवकारार्थनिरूपणम्

अह्नां वरमहो यस्माद्वराहः परिपठ्यते ॥ ३२ ॥
अहः सङ्कर्षणः प्रोक्तो वासुदेवस्य तत्त्वतः।

द्वितीय वकारार्थ निरूपण—जिस कारण वह सभी अहों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिए वराह द्वितीय वकार का अर्थ है। यथार्थ रूप से वासुदेव को अह: सङ्कर्षण कहा जाता है ॥ ३२-३३ ॥

आकारसहितभकारार्थनिरूपणम्

सिद्धिदः सर्वभूतानां देवानामादिरेव च ॥ ३३ ॥

भाकार का अर्थ निरूपण—सम्पूर्ण प्राणियों को सिद्धि प्रदान करते हैं (भकार द्र० १७.२३) तथा देवताओं में आदिदेव है। (आकार द्र० १७.४) यहाँ तक भा का अर्थ निरूपण किया गया ॥ ३३ ॥

भकारविवक्षितसिद्धिप्रदत्वोपपादनम्

तत्तत्सच्छास्त्रसम्भूतशुक्लकर्मोपज्ञोषणः ।
सिद्धिं ददाति जीवानामतः सिद्धिद उच्यते ॥ ३४ ॥

विश्वभावन सिद्धिप्रद हैं ऐसा भाकार के अर्थ का उपपादन—उन-उन शास्त्रों में प्रतिपादित शुक्ल कर्मों से सेवित भगवान् जीवों को सिद्धि प्रदान करते हैं अतः 'सिद्धिद' कहे जाते हैं ॥ ३४ ॥

आकारविवक्षितयोरादित्वदेवत्वयोरुपपादनम्

आदिभूतः स देवानां सव्यूहविभवात्मनाम् ।
आदिश्च दीव्यति व्यक्तमादिदेवः स उच्यते ॥ ३५ ॥

भकारोत्तरवर्त्ती आकार से विवक्षित आदित्व तथा देवत्व इन दो अर्थों का उपपादन—वह व्यूह विभव वाले सभी देवताओं का आदिभूत है और आदि प्रकटरूप से विश्व में देदीप्यमान है। इसलिए विश्वभावन को आदिदेव भी कहा जाता है (आकार द्र० १७.४) ॥ ३५ ॥

तृतीयवकारनकारार्थनिरूपणम्

आवृणोति तमः सर्वं विवृणोति तदक्षरम् ।
वरुणः सोऽप्रमेयस्थः स च पन्थाः स्मृतो बुधैः ॥ ३६ ॥
विश्वभावन इत्येवमर्थो वर्णमयः परः ।

तृतीय वकार तथा नकार का अर्थ निरूपण—जो सारे अन्धकारों को रोकता है तथा अक्षर को विकसित करता है। इस प्रकार अप्रमेयस्थ वकार ही सब का मार्ग है (द्र० नकार ११७.२१) ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है। इस प्रकार विश्वभावन का वर्णमय पर अर्थ हमने कहा ॥ ३६-३७ ॥

मन्त्रतृतीयपादस्थूलार्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम्

हृषीकेशपदार्थं तु ब्रुवतो मे निशामय ॥ ३७ ॥
क्रियाकारकसंसर्गजन्योऽर्थः पूर्वमीरितः ।

अब मन्त्र के तृतीय पाद 'जितन्तेऽथ हृषीकेश' में हृषीकेश शब्द का क्रियाकारक रूप स्थूलार्थ हमने पूर्व में कह दिया है ऐसा सूचित करना—हे नारद ! अब हम हृषीकेश शब्द का अर्थ निरूपण कर रहे हैं। आप सुनिए। क्रिया कारक से प्राप्त होने वाला स्थूल अर्थ हमने पूर्व में ही कह दिया है ॥ ३७-३८ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

यः प्रातिपदिकार्थस्तं सूक्ष्ममद्य निशामय ॥ ३८ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण—अब जो हृषीकेश रूप प्रातिपदिक का सूक्ष्म अर्थ है हे नारद ! आप उसे सुनिए ॥ ३८ ॥

हृषीकेशपदस्य सप्तधा अर्थवर्णने प्रथमं ज्ञानोत्तेजकत्वपरत्वकथनम्

प्रद्योतयति विद्यायास्तमो हत्वा मधुं रिपुम् ।
भगवद्भावितं रूपं सत्सत्त्वप्रतिपादकम् ॥ ३९ ॥
हृषीकेशत्वमीशस्य तदेव गदितं बुधैः ।

हृषीकेश शब्द के सात प्रकार के अर्थ वर्णन के प्रसङ्ग से, उसका प्रथम ज्ञानोत्तेजकत्व रूप परत्व अर्थ का कथन—विद्या के तमरूप शत्रु मधु को मार कर वे सत् सत्त्व प्रतिपादक भगवद् भावित रूपों से प्रकाशित करते हैं यही उस ईश्वर का हृषीकेशत्व है। ऐसा बुद्धिमानो ने कहा है ॥ ३९-४० ॥

ज्ञाननिर्मलीकरणद्वारा हर्षहेतुत्वपरत्वेन प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम्

हर्षयत्यमलीकृत्य विद्यामीश इतीदृशम् ॥ ४० ॥
हृषीकेशत्वमेतद्धि प्रद्युम्नत्वमुदीर्यते ।

अब ज्ञान को निर्मल बनाकर हर्ष के हेतुभूत प्रद्युम्नव्यूह रूप में प्रगट होते हैं—वे ईश्वर विद्या को निर्मल बना कर जीव को हर्षित करते हैं। इसी प्रकार का उनका हृषीकेशत्व है, जिसे प्रद्युम्न भी कहा जाता है ॥ ४०-४१ ॥

ज्ञानेन्द्रियनियामकपरत्वम्

ज्ञानेन्द्रियं हृषीकं स्यात् तस्य सोऽन्तर्नियामकः ॥ ४१ ॥
हृषीकेशत्वमेतद्धि प्रद्युम्नस्य निगद्यते ।

ज्ञानेन्द्रियों की नियामकता—ज्ञानेन्द्रियों को हृषीक कहते हैं। वे भीतर से उसका नियमन करते हैं, यही उस प्रद्युम्न का हृषीकेशत्व है ॥ ४१-४२ ॥

जगन्मयपरत्वम्

हृषीका विषयाः प्रोक्ताः प्रकृतिप्राकृतात्मकाः ॥ ४२ ॥
हर्षयन्ति हि ते जीवांस्तेषामीशो जगद्गुरुः ।
जगन्मयत्वमेतद्धि तन्मयत्वसमीरणात् ॥ ४३ ॥

जगन्मय परत्व—हृषीक शब्द प्रकृति एवं प्राकृतात्मक विषय रूप अर्थ का वाचक है। वे विषय जीव को हर्षित करते हैं। वे उन जीवों के ईश हैं। जगत् के गुरु हैं। इस प्रकार जगन्मय होने से उनका जगन्मयत्व ही हृषीकेश शब्द का अर्थ है ॥ ४२-४३ ॥

सृष्ट्यादिरूपक्रीडाहेतुकहर्षाश्रयदेवपरत्वम्

क्रीडया हृष्यति व्यक्तमीशस्तत्सृष्टिरूपया ।
हृषीकेशत्वमीशस्य देवत्वं चास्य तत् स्फुटम् ॥ ४४ ॥

सृष्ट्यिादिरूप क्रीडा के हेतुभूत हर्षाश्रय रूप देवत्व का कथन—वह ईश्वर अपनी सृष्टि रूप क्रीडा से प्रकट रूप में प्रसन्न होते हैं। यही ईश्वर का हृषीकेशत्व है, जिससे उनका देवत्व स्पष्ट प्रकट होता है ॥ ४४ ॥

ऐश्वर्यवीर्यरूपगुणाश्रयपरत्वम्

अविकारितया हृष्टो हृषीको वीर्यरूपया ।
ईशः स्वातन्त्र्ययोगेन नित्यं सृष्ट्यादिकर्मणि ॥ ४५ ॥
ऐश्वर्यवीर्यरूपत्वं हृषीकेशत्वमुच्यते ।

ऐश्वर्य एवं वीर्य रूप गुण का आश्रय परत्व कथन—वीर्य रूप से अविकारी होने के कारण हृष्ट रहना यही हृषीक है और वह सृष्ट्यादि कर्म में नित्य स्वतन्त्र रहने के कारण ईश्वर भी है । इस प्रकार ऐश्वर्य तथा वीर्य रूप होने के कारण वह हृषीकेश कहलाते हैं ॥ ४४-४६ ॥

जगच्छब्दविवक्षितसर्वचेतनशेषित्वपरत्वम्

हृषी ज्ञानं समुद्दिष्टं हृषीकाश्चेतनात्मकाः ॥ ४६ ॥
जङ्गमत्वाज्जगद्रूपास्तदीशो जगतां पतिः ।
इति सूक्ष्मोऽयमुद्दिष्टः स प्रातिपदिकाश्रयः ॥ ४७ ॥

जगच्छब्द से विवक्षित सर्वचेतन का शेषित्वप्रधान विशेष्यत्व रूप का प्रतिपादन—'हृषी' ज्ञान को कहते हैं । अतः सभी चेतन प्राणी हृषीक हैं । वे चेतन जङ्गम होने से जगद्रूप हैं । वह उसका ईश अर्थात् जगत्पति हैं । इस प्रकार हमने हृषीकेश रूप प्रातिपदिक के आश्रयभूत सूक्ष्म अर्थ का निरूपण किया ॥ ४६-४७ ॥

परार्थनिरूपणारम्भः

वर्णाश्रयमिदानीं मे परमर्थं निशामय ।

परार्थ निरूपण—अब हे नारद ! आप हृषीकेश शब्द के प्रत्येक वर्ण में रहने वाले पर अर्थ को सुनिए ।

विमर्श—हकार, ऋकार, ईकार एवं शिरस्क षकार, एकार शिरस्क ककार एवं शकार इस प्रकार हृषीकेश शब्द में रहने वाले वर्णों को पाँच भागों में विभक्त कर अप्रमेयादि भाव से सिद्ध पर अर्थ का क्रमशः प्रदर्शन करते हैं ॥ ४८ ॥

हकारार्थनिरूपणम्

प्राणयत्यखिलं जीवं शुक्लधर्मात्मभावतः ॥ ४८ ॥

हकारार्थ निरूपण—शुक्ल धर्मात्मभाव से जो सारे जीवों को प्राण देकर जीवित रखता है । यह हकार का अर्थ हुआ । (हकार द्र० १७.२८) ॥ ४८ ॥

ऋकारार्थनिरूपणम्

सत्यश्च नामतः सच्च त्यच्च यस्माद्भवत्ययम् ।

ऋकारार्थ निरूपण—जिस कारण वह सत् रूप और त्यद् रूप होने से अर्थात् वह पञ्चमहाभूत स्वरूप है इसलिए नामतः सत्य कहा जाता है । ऋकार का अर्थ है । (ऋकार द्र० १७.७) ॥ ४९ ॥

ईकारशिरस्कषकारार्थनिरूपणम्

माययाश्चर्ययोगेन भास्करं भरते दिवि ॥ ४९ ॥

षी शब्द का अर्थ निरूपण—माया के आश्चर्य योग का सहारा लेकर वह आकाश में भास्कर (भकार द्र० १७.२७) को प्रकाश देकर पोषित करता है यह 'षी' का अर्थ हुआ ॥ ४९ ॥

एकारशिरस्ककाकारार्थनिरूपणम्

करालां जगतो योनिं घोररूपां तमोमयीम् ।

के शब्द का अर्थ निरूपण—यह जगत् की योनि रूप से कराल है । घोर रूपा है तथा तमोमय है, यह के शब्द का अर्थ हुआ । (ककार द्र० १७.१२) ॥ ५० ॥

शकारार्थनिरूपणम्

शमयत्यप्रमेयस्थ इति वर्णाश्रया स्थितिः ॥ ५० ॥
अर्थोऽयं त्रिविधः प्रोक्तो हृषीकेशे महामुने ।

शकारार्थ निरूपण—अप्रमेय में स्थित होकर वह उस तमोमयी योनि को विनष्ट कर देता है । यह शकार का अर्थ है (शान्तः द्र० ५.१७,२६) इस प्रकार हृषीकेश शब्द के प्रत्येक वर्ण में रहने वाले अर्थ का प्रतिपादन किया तथा हे महामुने ! इस प्रकार उसका स्थूल, सूक्ष्म तथा परार्थ भी निरूपण किया ॥ ५०-५१ ॥

मन्त्रचतुर्थपादस्य स्थूलार्थनिरूपणम्

अर्थं शृणु त्वं त्रिविधं महापुरुषपूर्वजे ॥ ५१ ॥
जितं त इति वाकृष्य आहार्योऽत्र जयेति वा ।
जितं तेऽथ नमस्तेऽस्तु पदमेतदिहोभयम् ॥ ५२ ॥
अञ्जसा जगतोऽध्यक्षे चेतनाचेतनात्मनः ।
जयः प्रणामरूपोऽर्थो ह्यनिरुद्धेऽभिधीयते ॥ ५३ ॥
जितं त इति शब्दोऽयमतिस्वामित्वसूचकः ।
सन्निकृष्टो नमस्कारः सर्वोत्कृष्टे कथं भवेत् ॥ ५४ ॥
अत्युच्चो येन रूपेण सन्निकर्षमुपैति सः ।
तद् द्वितीयतृतीयौ द्वाविति तत्र नमस्क्रिया ॥ ५५ ॥
भावद्वयेन भगवाननिरुद्धो जगद्धितः ।
इति द्योतयितुं तत्र वाच्ये जयनमस्क्रिये ॥ ५६ ॥
क्रियाकारकजन्योऽर्थ इति स्थूलो निरूपितः ।

मन्त्र के चतुर्थपाद 'महापुरुषपूर्वज' का स्थूल अर्थ प्रतिपादन करते हैं—हे नारद ! अब आप 'महापुरुषपूर्वज' शब्द के तीनों प्रकार के अर्थों को सुनिए । यहाँ पूर्व पद में रहने वाले 'जितं ते' इस पद का आकर्षण कर अथवा जय पद का अध्याहार कर, अथवा 'जितं

तेऽथ नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज' इस प्रकार श्लोक का दो चरण मान कर तीन प्रकार का अर्थ करना चाहिए। १. चेतना चेतनात्मक सारे जगत् के अध्यक्ष अनिरुद्ध में जय अथवा प्रणाम कहा जाता है—ऐसा कहा गया है। २. 'जितं ते' यह शब्द सभी प्रकार के स्वामियों के स्वामित्व का अतिक्रमण करने वाला अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्वामी इस अर्थ को द्योतित करता है—अब रही नमस्कार की बात नमस्कार सन्निकृष्ट को किया जाता है जो सर्वोत्कृष्ट है उसमें किस प्रकार नमस्क्रिया बने? तो कहते हैं दो बार अथवा तीन बार अथवा उससे अधिक दो बार और नमस्कार करे। ३. 'जय तथा नमः' इन दो भावों से भगवान् अनिरुद्ध ही एकमात्र जगत् के हितकारी हैं। इस भाव का द्योतन करने के लिए वहाँ जय तथा नमस्क्रिया करनी चाहिए। यहाँ तक हमने 'महापुरुषपूर्वज' शब्द का क्रियाकारकभावजन्य स्थूल अर्थ निरूपण किया ॥ ५१-५७ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

यः प्रातिपदिकस्थोऽर्थस्तं त्वं सूक्ष्मं निशामय ॥ ५७ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण—जो प्रातिपदिक में रहने वाला सूक्ष्म अर्थ है हे नारद! आप सुनिए ॥ ५७ ॥

मकारार्थनिरूपणम्

मिमीते विविधं वस्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञतन्मयम्।

मकारार्थ निरूपण—जो क्षेत्रमय एवं क्षेत्रज्ञमय समस्त वस्तुओं को परिमित करता है—यह मकार का अर्थ है ॥ ५८ ॥

हाकारार्थनिरूपणम्

जिहीते तदशेषं च प्रविशत्यन्तरात्मना ॥ ५८ ॥

हाकारार्थ निरूपण—जो अशेष को त्यागता है अथवा उसका ज्ञान रखता है तथा अन्तरात्मा रूप से उसमें प्रवेश करता है—यह हकार का अर्थ है ॥ ५८ ॥

महेतिसमुदायार्थनिरूपणम्

प्राणयत्यथ तत् सर्वं तत्र तत्र महीयते।
महद्भ्यश्च महानित्थं महानिति निरुच्यते ॥ ५९ ॥

'महा' इस समुदाय पद का अर्थ—समस्त जीव जात को जीवन देता है और वहाँ-वहाँ महत्ता प्राप्त करता है तथा जो महान् से भी महान् है। इस प्रकार महाशब्द का अर्थ 'महान्' हुआ ॥ ५९ ॥

पुकारार्थनिरूपणम्

पुष्यति स्थितिमाव्यक्ति पुनः पुनरुदेति च।

पुकारार्थ निरूपण—सब का पोषण करता है। प्रत्येक व्यक्ति में स्थिति रहता है तथा पुनः-पुनः उदय को प्राप्त होता है यह पुरुष के पुकार का अर्थ है ॥ ६० ॥

रुशब्दार्थनिरूपणम्

रौति शास्त्रं च नानार्थं रूयते तत्तदात्मना ॥ ६० ॥
राति पूजामथादत्ते राति चाराधितः फलम् ।

रु शब्द का अर्थ-निरूपण—जो नाना अर्थ वाले शास्त्रों को शब्दतः प्रकाशित करता है तथा तत्तदात्माओं से पुकारा जाता है, अथवा जो पूजा ग्रहण करता है अथवा जो आराधना करने पर उसका फल प्रदान करता है । यह रु शब्द का अर्थ है ॥ ६०-६१ ॥

षकारार्थनिरूपणम्

अन्तं करोति पापानां नाना सभज्यते जनैः ॥ ६१ ॥

षकारार्थ निरूपण—जो पापों का अन्त करता है तथा लोगों द्वारा सेवित होता है—यह 'पुरुष' शब्द के ष का अर्थ है ॥ ६१ ॥

पुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम्

पुरमोषति कर्मान्ते पुरुभिः सेव्यते तथा ।
पुरि शेते पुरं सौति सत्त्वे पुरुणि सीदति ॥ ६२ ॥

पुरुष पद का समुदित अर्थ—जो कर्म की समाप्ति हो जाने पर इस पुर (शरीर) का शोषण कर जाता है, अथवा उसकी समाप्ति कर देता है वह पुरुष है, अथवा जो पुर (शरीर) में शयन करता है, अथवा पुर (शरीर) को उत्पन्न करता है वह पुरुष है ॥ ६२ ॥

रेफशिरस्कपूकारार्थनिरूपणम्

पारयत्यखिलं विश्वं वारयत्यखिलं तमः ।

पूकारार्थ निरूपण—जो सारे संसार को पार कराता है, अथवा जो समस्त तमस् को दूर करता है यह पूर्वज के 'पू' का अर्थ है ॥ ६३ ॥

वकारजकारार्थनिरूपणम्

वनते चाश्रितान् सर्वाञ्जयत्यपि तमोमयम् ॥ ६३ ॥
अजति क्षिपति स्पष्टं द्विषतः क्रूरयोनिषु ।

वकार एवं जकारार्थ निरूपण—जो अपने आश्रितों की सेवा करता है तथा उनके अन्धकार को दूर करता है, द्वेष करने वालों को नीच योनि में फेंकता है वह व और ज का अर्थ हुआ ॥ ६३-६४ ॥

पूर्वजशब्दसमुदितार्थनिरूपणम्

पूर्व एव पुराणः संस्तत्तद्योनिषु जायते ॥ ६४ ॥
पूर्वजः सर्वदेवानां पूर्वोऽजो यस्य देहजः ।
अजो हि पुत्रः पूर्वोऽस्य ब्रह्मा प्रथमकल्पितः ॥ ६५ ॥
पूर्वा जीवाः समाख्याताः पुरस्ते वन्वते यतः ।
स्वेन रूपेण पूर्वांस्तान् प्रादुर्भावयति स्वयम् ॥ ६६ ॥

पूर्वज इस समुदित शब्द का अर्थ—जो पूर्व एवं पुराण होकर भी तत्तद् योनियों में उत्पन्न होता है, सभी देवों में पूर्वज है तथा पूर्व में वर्त्तमान ब्रह्मदेव जिसके शरीर से पैदा हुये हैं, अज यही जिनके सर्वप्रथम पुत्र हैं, अथवा ब्रह्मदेव ही जिनकी प्रथम रचना है—यह पूर्वज का अर्थ है । पूर्व पद से जीव कहा जाता है, अतः वही उसके आगे होकर याचना करते हैं, अथवा पूर्व में रहने वाले उन जीवों को अपने स्वरूप से जो स्वयं प्रादुर्भूत करता है वह पूर्वज है ।। ६४-६६ ।।

महापुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम्

महत्त्वमनपेक्षत्वं सर्वभावक्रियाविधौ ।
पुरुषैरविभागो यो महापुरुषतास्य सा ।। ६७ ।।
एतदेव च तेजस्तत् सैषा शक्तिरुदीरिता ।
एतदेवानिरुद्धत्वं भगवत्त्वमपीदृशम् ।। ६८ ।।
स्थित्युत्पत्तिलयत्राणहेतुत्वं चैतदीदृशम् ।
इति ते लेशतः प्रोक्तः सूक्ष्मः प्रतिपदाश्रयः ।। ६९ ।।

महापुरुष पद का समुदित अर्थ—सभी पदार्थों की सभी क्रियाओं में जिसका महत्त्व तथा जिसकी निरपेक्षता है । पुरुष द्वारा जिसकी महापुरुषता विभक्त नहीं की जा सकती यही उसका तेज है और यही उसकी शक्ति है यही उसका अनिरुद्धत्व है, ऐसी ही उसकी भगवत्ता है । स्थिति, उत्पत्ति, लय तथा त्राण का हेतु भी इसी प्रकार है इस प्रकार प्रतिपद में रहने वाला महापुरुष शब्द का सूक्ष्म अर्थ लेश मात्र आपसे कहा ।। ६७-६९।।

परार्थनिरूपणारम्भः

वर्णाश्रयमिदानीं मे परमर्थं निशामय ।

महापुरुष शब्द का परार्थ निरूपण—हे नारद ! अब आप महापुरुष शब्द के वर्ण में रहने वाले अर्थ को सुनिए ।। ७० ।।

मकारार्थनिरूपणम्

मर्दनः सर्वदुष्टानामप्रमेयपराक्रमः ।। ७० ।।

मकारार्थ निरूपण—वह अप्रमेय पराक्रम वाला है । (अकार द्र० १७.४) तथा समस्त दुष्टों का मर्दन करने वाला है (मकार द्र० १७.२४) ।। ७० ।।

हाकारार्थनिरूपणम्

अरिभ्यश्च हितो नित्यं गोपनः सर्वदेहिनाम् ।
व्यक्तः क्रियावतां पन्थास्त्रयीकर्मसमुद्भवः ।। ७१ ।।

हाकारार्थ निरूपण—जो सारे जीवों की शत्रुओं से रक्षा करता है और नित्य उनका हित करता है तथा वेदत्रयी कर्म से उत्पन्न क्रियावानों का स्पष्ट मार्ग है—यह हाकार का अर्थ है ।। ७१ ।।

उकारशिरस्कपकारार्थनिरूपणम्

पद्मनाभोऽम्बुशायी सन्नुद्दामभुवनोदयः ।

उकारार्थ एवं पकारार्थ निरूपण—विशाल भुवन (उकार द्र० १७.६) को उत्पन्न कर जो पद्मनाभ एवं अम्बुशायी है (यकार द्र० १७.२२) ॥ ७२ ॥

तादृशरेफार्थनिरूपणम्

अशेषभुवनाधारस्तत्तत्कार्योदयस्थितिः ॥ ७२ ॥

रु शब्द का अर्थ कथन—जो तत्कार्यों की उदय स्थिति है तथा अशेष भुवनों का आधार है—यह रु वर्ण का अर्थ है ॥ ७२ ॥

षकारपकारार्थनिरूपणम्

श्वेतद्वीपे नृसिंहः सन्नग्निरूपो हविर्भुजाम् ।
भास्करः सर्वदेवानां पवित्रं परमं सताम् ॥ ७३ ॥

षकारार्थ तथा पकारार्थ का निरूपण—जो श्वेतद्वीप में नृसिंह रूप से निवास कर हवि भोजन करने वालों में अग्नि है, सभी देवों में भास्कर है तथा सज्जनों में परम पवित्र हैं—यह षकार और पकार का अर्थ है (द्र० १७.२७) ॥ ७३ ॥

ऊकारार्थनिरूपणम्

नानाविधानां प्रज्ञानामाधारः कार्यसाधने ।

ऊकारार्थ निरूपण—कार्य सिद्धि में जो नाना प्रकार की प्रज्ञा का आधार है (ऊकार द्र० १७.६) ॥ ७४ ॥

द्वितीयरेफार्थनिरूपणम्

बलवान् सर्वलोकेशः कल्पान्ते कालपावकः ॥ ७४ ॥

द्वितीय रेफार्थ निरूपण—बलवान् है, सर्व लोकेश है तथा कल्पान्त में वही प्रलयाग्नि है—यह द्वितीय रेफ का अर्थ है (द्र० १७.२५) ॥ ७४ ॥

वकारजकारार्थनिरूपणम्

वराहो वसुधोद्धारे जन्महन्ता स्मृतः सताम् ।
अजितो देवदैत्याद्यैर्महापुरुषपूर्वजः ॥ ७५ ॥
इति वर्णाश्रया रीतिर्महापुरुषपूर्वजे ।

वकार एवं जकारार्थ निरूपण—पृथ्वी के उद्धार काल में वराह रूप धारण करने वाला तथा सज्जनों के जन्मादि का विनाश करने वाला, देव तथा दैत्यादिकों से कभी न जीता जाने वाला वह महापुरुष पूर्वज है । इस प्रकार हमने 'महापुरुष पूर्वज' के वर्णों में रहने वाली अर्थ रूप रीति का प्रतिपादन किया ॥ ७५-७६ ॥

प्रकृतमहामन्त्रतात्पर्यसूचनम्

नानाविधमहार्थोऽयं जितन्ताख्यो महामनुः ।
चक्ररूपं चित्ररूपं वक्ति देवं सनातनम् ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जितन्ताख्यमन्त्रार्थनिरूपणं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३४७८ ॥

* * *

प्रकृत महामन्त्र का तात्पर्य कथन—'जितन्ते' इत्यादि महामन्त्र अनेक प्रकार के महान् अर्थों वाला है जो चक्ररूप और चित्ररूप तथा सनातन देव का प्रतिपादन करता है ॥ ७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जितन्ताख्य-मन्त्रार्थनिरूपण नामक तिरपनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५३ ॥

* * *

अथ चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

सप्तभिः श्लोकैर्मन्त्रमाहात्म्यनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

इति ते लेशतः प्रोक्तो जितन्ताख्यो महामनुः ।
नारसिंहमिदानीं मे तत्त्वतः शृणु नारद ॥ १ ॥

सात श्लोकों द्वारा नरसिंहानुष्टुभ् महामन्त्र का माहात्म्य निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! इस प्रकार हमने 'जितं ते' इस महामन्त्र का लेश मात्र अर्थ कहा है । अब आप नारसिंह मन्त्र का तत्त्वतः व्याख्यान सुनिए ॥ १ ॥

मन्त्रस्यास्यैहिकामुष्मिकनानाविधफलसाधनता

सर्वाश्चर्यकरः सोऽयं नारसिंहो महामनुः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानां भोगानामुपपादकः ॥ २ ॥
आध्यात्मिकादिरूपाणां त्रिविधानां तथापदाम् ।
निवारणस्तथा रक्षोदैत्यदानवमर्दनः ॥ ३ ॥

यह मन्त्र इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी नाना फलों का साधन है इसका निरूपण—यह नारसिंह महामन्त्र सभी प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न करता है । यह दिव्य, भौम तथा अन्तरिक्ष में रहने वाले सभी भोगों को प्रदान करने वाला है । यह मन्त्र आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार की आपत्तियों का निवारण करता है और राक्षस, दैत्य तथा दानवों का मर्दन करता है ॥ २-३ ॥

सांख्ययोगपाञ्चरात्रवेदान्तपाशुपतैरप्यस्यावश्योपजीव्यत्वम्

सांख्यानां परमं ज्ञानमिदमेव महामुने ।
इयं सोपानभूमिः सा योगिनां नियतात्मनाम् ॥ ४ ॥
तदेतदयनं ह्येकं सात्त्वतानां महात्मनाम् ।
एतत् त्रय्यन्तसर्वस्वमेतत् पाशुपतं मतम् ॥ ५ ॥

यह सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेदान्त एवं पाशुपतों का आवश्यक रूपेण उपजीव्य है—हे महामुने ! यही सांख्य मत वालों का परम ज्ञान है, योग में लगे हुये महात्माओं की यह सोपान भूमि है । सात्त्वत महात्माओं का तो यह एक मात्र अयन (निवास स्थान) है । यही वेदान्त का सर्वस्व है और पाशुपतों का तो यही सिद्धान्त है ॥ ४-५ ॥

सर्वचेतनहितकामनया कल्पादौ सङ्कर्षणेनास्य प्रकाशितत्वम्

सङ्कर्षणो जगत्यस्मिन् सृष्टे नानाविधे पुरा ।
हिताय सर्वजीवानां ज्ञानमेतत् परं जगौ ॥ ६ ॥

सभी चेतन प्राणियों के हित के लिए सङ्कर्षण ने इसे प्रकाशित किया है—भगवान् सङ्कर्षण ने पूर्वकाल में नाना प्रकार की सृष्टि के उपरान्त सभी जीवों के हित के लिए इस मन्त्र को प्रकट किया ॥ ६ ॥

ब्रह्मरुद्रादीनामपि महता श्रमेण सङ्कर्षणादेतन्मन्त्रप्राप्तिः

तप्त्वा घोरं तपो ब्रह्मा तस्मादधिजगौ पुरा ।
अधीतवानहं तस्मान्मत्तो दिव्या महर्षयः ॥ ७ ॥

ब्रह्मा एवं रुद्रादिकों ने बहुत श्रम से सङ्कर्षण द्वारा इस मन्त्र को प्राप्त किया है—पूर्वकाल में ब्रह्मा ने घोर तप कर सङ्कर्षण द्वारा इस मन्त्र को प्राप्त किया और मैंने भी उन्हीं से इस मन्त्र की शिक्षा प्राप्त की । तदनन्तर महर्षियों ने मुझसे प्राप्त किया ॥ ७ ॥

विमर्श—नारसिंह मन्त्र इस प्रकार है—

'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥'

इस मन्त्र में कुल ग्यारह पद हैं सबसे अन्त वाला ग्यारहवाँ अहं पद प्रथमान्त कर्त्ताकारक है तथा १० वाँ नमामि पद उत्तम पुरुषैकवचनान्त क्रिया का बोधक है ॥ ७ ॥

स्थूलार्थनिरूपणे शेषत्वज्ञानपूर्वकमात्मात्मीययोर्भगवति समर्पणनिरूपणम्

नमनं नतिरित्युक्तं नीचीभावश्च स स्मृतः ।
परं प्रत्यात्मनो नीचीभावः शेषत्वमेव हि ॥ ८ ॥
आत्मानं शेषतां नीत्वा नमामीतिपदेन तु ।
आत्मीयमर्थं तत् तस्मै निवेदयति मन्त्रवित् ॥ ९ ॥

स्थूलार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से शेषत्व ज्ञान कराते हुये अपना तथा अपनी सारी

वस्तु का भगवान् में समर्पण यही 'नमाम्यहं' पद का अर्थ है ऐसा उपपादन करते हैं—नम्र हो जाने को नमन कहते हैं । वह नीचीभाव रूप में कहा गया है । परब्रह्म परमात्मा की अपेक्षा नीचीभाव हो जाना शेषत्व है । इस प्रकार अपने को शेष (नीचा या अप्रधान) समझ कर 'नमामि' इस पद से मन्त्रवेत्ता अपने को तथा आत्मीय पदार्थों को परमात्मा के लिए जिस क्रिया से समर्पण करता है वही नमामि पद का अर्थ है ॥ ८-९ ॥

मान्त्रवर्णिकैरुग्रादिपदैः रौद्रादिरसप्रतिपादनम्

क्रोधातिशयतो रौद्रो रस उग्र उदीरितः ।
उत्साहातिशयोत्थायी वीरो वीरपदोदितः ॥ १० ॥
चतुर्भिरद्भुतैः शब्दैर्महाविष्ण्वादिपूर्वकैः ।
भयातिशयहेतुत्वाद् भीषणेन भयानकः ॥ ११ ॥
रसं वदति शृङ्गारं मन्त्रभद्रपदं मुने ।
मृत्युमृत्युपदं चापि वदत्यद्भुतभीषणौ ॥ १२ ॥

मन्त्र में रहने वाले उग्रादिपदों से रौद्रादि रस का प्रतिपादन—उग्र का क्रोधातिशय अर्थ होने से वह रौद्र रस का प्रतिपादक है । वीर शब्द 'उत्साहातिशय' का बोध कराने से वीर रस कहा गया है । चार अद्भुत शब्द वाले महाविष्णुपूर्वक भीषण शब्द से भयातिशय हेतुत्व रूप अर्थ कहने के कारण 'भयानक' रस है । हे मुने ! मन्त्र में रहने वाला भद्रं पद शृङ्गार रस कहता है । 'मृत्युमृत्यु' यह पद अद्भुत तथा भयानक इन दो रसों को कहता है ॥ १०-१२ ॥

अहंपदस्य भगवच्छेषत्वेन रूपेणात्मस्वरूपनिष्कर्षकत्वम्

अहमित्यात्मनिष्कर्षो नन्तुर्भागवतात्मना ।

नमन करने वाले भागवतात्मा साधक के द्वारा अहं पद का निष्कर्ष उक्त है ॥ १३ ॥

उग्रादिपदाभिहितानां रौद्रादिरसानां विष्णुव्यवस्थाप्रदर्शनम्

उग्रः शत्रुधिया देवो वीरो देवगणेक्षया ॥ १३ ॥
महाविष्णुर्ज्वलंश्चैव सर्वतोमुख इत्यपि ।
नृसिंह इति चाश्चर्यो योगसिद्धजनेक्षया ॥ १४ ॥
भीषणो देव उद्दिष्टः क्षुद्ररक्षोगणेक्षया ।
आनन्दवलितापाङ्ग्या लक्ष्म्या भद्रो निरीक्षितः ॥ १५ ॥
ऋषीणां मृत्युमृत्युः स भीषणाश्चर्ययोगतः ।
क्रियाकारकसंसर्गजन्योऽर्थः स्थूल ईदृशः ॥ १६ ॥

उग्रादि पदों से अभिहित रौद्रादि रसों की विष्णु में व्यवस्था का वर्णन—वे देव अपने शत्रुओं के लिए उग्र हैं, देवगणों की दृष्टि से 'वीर' हैं । इसी प्रकार महाविष्णु, ज्वलन् तथा सर्वतोमुख ये पद भी देवगणों की दृष्टि की अपेक्षा से कहे गए हैं । योग सिद्धजनों की दृष्टि से आश्चर्य उत्पन्न करने के कारण नृसिंह हैं तथा क्षुद्र राक्षसगणों की दृष्टि से भीषण हैं ।

आनन्द से उपोद्वलित अपाङ्ग वाली लक्ष्मी से अवलोकित होने के कारण वह भद्र कहे गए हैं। ऋषियों की दृष्टि में भीषण तथा आश्चर्य युक्त होने के कारण वे मृत्युमृत्यु कहे गए हैं। इस प्रकार इस मन्त्र का क्रियाकारक जन्य स्थूलार्थ कहा गया ॥ १३-१६ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

सूक्ष्ममर्थं निबोधेमं यः प्रातिपदिकाश्रयः ।

सूक्ष्मार्थ निरूपण—हे नारद ! अव आप प्रातिपादिक में रहने वाला सूक्ष्म अर्थ सुनिए ॥ १७ ॥

उग्रशब्दार्थनिरूपणम्

उद्गिरत्यखिलं विश्वमुद्गीर्णं ग्रसति स्वयम् ॥ १७ ॥

उग्र शब्दार्थ निरूपण—जो सारे विश्व को उत्पन्न करता है तथा उत्पन्न किये गए उसी विश्व को स्वयं निगल जाता है, यह उग्र शब्द का अर्थ है ॥ १७ ॥

वीरशब्दार्थनिरूपणम्

वीरयत्यखिलं भावं विविधं रमयत्यपि ।

वीर शब्दार्थ निरूपण—जो समस्त पदार्थो को विशेष रूप से प्रेरणा प्रदान करता है तथा उसे विविध रूप से रमण कराता है वह वीर है ॥ १८ ॥

महच्छब्देन त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वस्य बोधनम्

कालदेशाद्यवच्छेदविरहात् स महान् स्मृतः ॥ १८ ॥

महाविष्णु शब्द के अन्तर्गत रहने वाले महत् शब्द से त्रिविधपरिच्छेद शून्यत्व का बोध—काल, देश तथा अवस्था द्वारा जिसका परिच्छेद सम्भव नहीं है वही महान् है। यह महत् शब्द का अर्थ हुआ ॥ १८ ॥

पुनर्महच्छब्दस्य नवधा निर्वचनप्रदर्शनम्

महीयतेर्मेहतेर्वा मुह्यतेरथवा मिहेः ।
मनुतेः सजहातेर्वा मां जिहीतेऽथवा महान् ॥ १९ ॥
मात्यस्मिन्नथ वा विश्वं न जहात्यपि वै जगत् ।

पुनः महत् शब्द का नव प्रकार से निर्वचन—'महीयते' इति महान्, मेहतीति महान्, मोहयातीति महान्, मेहतीति महान्, मनुते इति महान्, जहातीति महान्, माँ जिहीते इति महान्, माति विश्वमस्मिन्निति महान्, जगत् न जहातीति महान्, इस प्रकार के निर्वचनों में मंहे पूजायाम्' (भ्वादि), मिह सेचने (भ्वादि), मुह वैचित्र्ये (दिवादि), मनु अवबोधने (तनादि), ओहाक् त्यागे (जुहोत्यादि), ओहाङ् गतौ (जुहोत्यादि), माङ् माने (अदादि) इस प्रकार सात् धातुओं का प्रयोग है। किन्तु निर्वचन नव हैं तथापि मिह धातु तथा ओहाङ् धातु की तात्पर्यभेद से दो वार आवृत्ति की गई है इसलिए नव सङ्ख्या की पूर्त्ति हो गई ॥ १९-२० ॥

यथाक्रमं तेषामुपपादनम्

महीयते परे व्योम्नि महानिति निरुच्यते ॥ २० ॥
मेहतिर्दानकर्मायं महान् मेहत्यभीप्सितम् ।
मोहयत्यात्मचेष्टाभिरिति देवो महान् स्मृतः ॥ २१ ॥
स्वं मेहत्यप्सु वै वीर्यमण्डत्वेनेति वै महान् ।
मनुते नित्ययोगेन स्वेन ज्ञानात्मना महान् ॥ २२ ॥
जहाति विविधान् भावान् षड् भावा इति यान् विदुः ।
मेति लक्ष्मीर्मता देवी तां जिहीतेऽभिगच्छति ॥ २३ ॥
दिव्यं नित्यपरिष्वक्तं मिथुनं तन्महानतः ।
मात्यस्मिन्निखिलेनेदं कुण्डे बदरवज्जगत् ॥ २४ ॥
न जहाति बहिर्भूतस्तच्च देहे महानतः ।

यथाक्रम उनका उपपादन—१. जो पर व्योम में सर्वश्रेष्ठ है अथवा पूजित है इसलिए वह महान् है । २. मेहति अभीष्टं ददाति अर्थात् सबको अभीष्ट प्रदान करता है इसलिए वह महान् है । ३. मोहयतीति महान् अर्थात् जो अपनी चेष्टाओं से सबको मोहित करता है वह महान् है । ४. अण्डत्वेन स्वं वीर्यं अप्सु मेहतीति महान् अर्थात् जो अण्ड रूप से अपने वीर्य को जल में सिञ्चन करता है वह महान् है । ५. जो अपने में रहने वाले नित्य ज्ञान से सर्वदा उद्बुद्ध रहता है वह महान् है । ६. जो षड्भावों (जायते तिष्ठति विपरिणमते विवर्धते अपक्षीयते विनश्यति) का त्याग करता है वह महान् है । ७. मां लक्ष्मीं जहाति अधिगच्छतीति महान्' अर्थात् जो लक्ष्मी को प्राप्त करता है । अत: दोनों ही दिव्य है और नित्य मिथुन भाव से परस्पर समासक्त हैं इसलिए महान् हैं । ८. जिस प्रकार कुण्ड में बेर का फल अमा जाता है, उसी प्रकार सारा जगत् जिसमें अमा जाता है वह महान् है । ९. बाहर रह कर भी जो इसको नहीं त्यागता अत: वह इस शरीर में महान् है ॥ २०-२५ ॥

विष्णुशब्दार्थनिरूपणम्

विविनक्ति जगत्यस्मिन् सच्चासच्च विचेष्टते ॥ २५ ॥
वेवेष्टि निखिलान् भोगान् यच्छति प्राणिनां स्वयम् ।
आयत्तैः सकलैर्जीवैः प्रणौत्यन्तः स्वरात्मना ॥ २६ ॥
इति शब्दार्थतत्त्वज्ञा विष्णुं देवं प्रचक्षते ।

विष्णु शब्दार्थ निरूपण—विविनक्ति विचिर पृथग्भावे (रुधादि) जो सत् और असत् को सर्वथा पृथक् करता है अथवा जीव रूप से सरस्वाद चेष्टा करता वह विष्णु है । वेवेष्टीति विष्णु (वृष्ल व्याप्तौ अर्थात् जो सर्वत्र) व्याप्त है अथवा जो प्राणियों को सब प्रकार का भोग स्वयं देता है वह विष्णु है । जो अपने अधीन रहने वाले जीवों से अन्त: स्वरों द्वारा स्तुत रहता है वह विष्णु है । शब्दार्थ के तत्त्वज्ञ लोगों ने इस प्रकार विष्णु पद का अर्थ किया है ॥ २५-२७ ॥

महाविष्णुपदसम्पिण्डितार्थनिरूपणम्

महान् विशति संसारे जायमानो यतो महान्॥ २७ ॥
महाविष्णुमतो धीरा देवमेनं प्रचक्षते।

'महाविष्णु' शब्द का सपिण्डित अर्थ—यत: महान् होकर भी संसार में जायमान रूप से प्रविष्ट होता है इसलिए वह देव महान् है। इसीलिए धीर लोग इन्हें महाविष्णु शब्द से अभिहित करते हैं॥ २७-२८॥

ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम्

हृदये योगिनां नित्यं सूरीणां परमे पदे॥ २८ ॥
वितानेषु च विप्राणां यतो ज्वलति वै स्वयम्।
सूर्याचन्द्रमसौ वह्निरिति तेजस्त्रयं परम्॥ २९ ॥
आविश्य ज्वलयत्यन्तरवतीर्णो ज्वलत्यपि।
ज्ञानात्मना स्वरूपेण ज्वलत्येको जगद् ग्रसन्॥ ३० ॥
इति ज्वलन्तमाहुस्तं सर्वतो हरिमेधसम्।

ज्वलच्छब्दार्थ निरूपण—योगियों के हृदयप्रदेश में, मुमुक्षुओं के परम पद में तथा ब्राह्मणों के यज्ञ मण्डप में जो स्वयं जलता रहता है, जो सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि इन तीनों तेजों में प्रवेश करता है तथा अवतीर्ण (अवतार लेकर) हो कर जलता है अथवा जगत् को कवलित कर अकेले ज्ञान स्वरूप से जलता है। इस प्रकार सर्वत्र जलने वाले और अपने आश्रितों के पापों को हरण करने वाले परमेश्वर को ज्वलत् कहते हैं॥ २८-३१॥

सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम्

मुखं शक्तिः समुद्दिष्टा सर्वतो यस्य सा स्थिता॥ ३१ ॥
सर्वतोमुखमाहुस्तं सर्वशक्तिं सनातनम्।

सर्वतोमुख शब्दार्थ निरूपण—मुख शक्ति को कहते हैं। अत: जिसकी शक्ति सर्वत्र स्थित है, उस सर्वशक्तिमान् सनातन परमात्मा को सर्वतोमुख कहा जाता है॥ ३१-३२॥

नृसिंहशब्दार्थनिरूपणम्

नराणां बन्धनं हन्ति हिनस्तीति नृसिंहता॥ ३२ ॥

नृसिंह शब्दार्थ निरूपण—जो मनुष्यों के बन्धन को विनष्ट करते हैं तथा उनका बन्धन काटते हैं। यही उनकी नृसिंहता है॥ ३२॥

भीषणशब्दार्थनिरूपणम्

भियं सनोति दुष्टानां भीषणस्तेन शब्द्यते।

भीषण शब्दार्थ निरूपण—दुष्टों को भय प्रदान करता है (षणुदाने)। इसलिए वह भीषण शब्द से कहा जाता है॥ ३३॥

भद्रशब्दार्थनिरूपणम्

भां ददाति रवौ भद्रां भावं द्रावयते सताम् ॥ ३३ ॥
भवं द्रावयते घोरं संसारं तापसन्ततम् ।

भद्र शब्दार्थ निरूपण—जो रवि में सर्वोत्कृष्ट प्रकाश प्रदान करता है, सज्जनों में भाव द्रवीभूत करता है तथा उन भक्तों के सर्वदा ताप उत्पन्न करने वाले घोर संसार एवं जन्म को सर्वथा दूर कर देता है वह भद्र है ॥ ३३-३४ ॥

मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम्

मृत्युरज्ञानमुद्दिष्टं मृत्युः प्राणापहारकः ॥ ३४ ॥
मृत्युः संसार उद्दिष्टस्तेषां मृत्युर्यतो हरिः ।

मृत्युमृत्यु शब्दार्थ निरूपण—अज्ञान का नाम मृत्यु है । प्राणों का अपहरण करने वाला मृत्यु है और संसार को भी मृत्यु कहा जाता है । इन तीनों प्रकार की मृत्युओं के भगवान् हरि स्वयं मृत्यु है । अतः उन्हें ही मृत्युमृत्यु कहा जाता है ॥ ३४-३५ ॥

प्रथममृत्युशब्दस्याज्ञानादित्रयपरत्वे निर्वचनप्रदर्शनम्

मतिं त्यजत्यनेनेति मृत्युरज्ञानमुच्यते ॥ ३५ ॥
मृतिं तनोति जन्तूनामिति मृत्युरिति स्थितिः ।
मृतिसन्तानरूपत्वान्मृत्युः संसार उच्यते ॥ ३६ ॥

प्रथम मृत्यु शब्द का अज्ञानादि तीनों अर्थों के प्रतिपादन के लिए उनका निर्वचन कथन—जिसके कारण लोग मतिभ्रष्ट हो जाते हैं वह मृत्यु है जिसे अज्ञान कहा जाता है । जो जन्तुओं को मारता है वह मृत्यु है । मृति सर्वदा सन्तान रूप है इसलिए संसार को मृत्यु कहते हैं ॥ ३५-३६ ॥

द्वितीयमृत्युशब्दस्य प्रथममृत्युशब्दोदिताज्ञानादित्रयनाशकत्वपरत्वम्

नाशकत्वमिहोद्दिष्टं मितमुत्तरमृत्युना ।

दूसरा मृत्यु शब्द प्रथम मृत्यु से कहे गए अज्ञान, मरण तथा संसार इन तीनों का विनाशक है ऐसा उपपादन—दूसरे मृत्यु शब्द से उक्त तीनों अर्थों का यहाँ विनाशकत्व कहा गया है ॥ ३७ ॥

अहंशब्दस्य चतुर्धार्थवर्णनम्

अं जिहीते हरिं याति स्वरूपेणेह तादृशः ॥ ३७ ॥
पूर्णानन्दस्वरूपो हि चेतनो निखिलो यतः ।
अहीनश्चाप्ययं सर्वैर्ज्ञानशक्त्यादिभिः स्वतः ॥ ३८ ॥
अह्ना वाप्यमितोऽयं स्यात् कालातीतो यतोऽखिलः ।
अह्नि वा माति जीवोऽयमहमर्थः स उच्यते ॥ ३९ ॥
अहः सङ्कर्षणो ज्ञेयस्तस्मिञ्जीवोऽखिलः स्थितः ।

अहं शब्द से चार प्रकार के अर्थों का उपपादन—अं जिहीते इस निर्वचन में अकार

पद वासुदेव का वाचक है जिसका अर्थ 'जिहांते ओहाक् मतौ' होता है जो स्वरूपतः हरि को प्राप्त करता है। अतः समस्त चेतन पूर्णानन्दस्वरूप है। इसलिए समस्त चेतन अहं का अर्थ है और दूसरा ज्ञानशक्त्यादि सभी गुणों से वह परिपूर्ण है इसलिए अहं है। सभी संसार काल के घेरे में है किन्तु परमात्मा कालातीत है, इसलिए वे ही अहं पद वाच्य हैं, अथवा यह जीव काल में समा जाता है इसलिए वह अहं है, अथवा सङ्कर्षण देव को अहं कहा जाता है। उसी में समष्टि रूप से सारे जीव रहते हैं इसलिए वे ही अहं हैं॥ ३७-४० ॥

सांख्यमार्गेण मन्त्रार्थं प्रदर्शयितुमुग्रभीषणशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

उग्रभीषणशब्दाभ्यां प्रोच्यतेऽव्यक्तरूपता॥ ४० ॥
उग्रमत्यन्तघोरं यद्भीषणं भयदायि च।
अव्यक्तं तत् परिज्ञेयं भगवद्रूपमेव हि॥ ४१ ॥

सांख्य दृष्टि से मन्त्र में आये हुये उग्र तथा भीषण शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण— उग्र भीषण इन दोनों शब्दों से अव्यक्तरूपता का प्रतिपादन किया गया है। 'उग्र' अत्यन्त घोर एवं भीषण तथा भय देने वाला है। अतः उसे अव्यक्त कहा जाता है। वह अव्यक्त भगवत्स्वरूप ही है॥ ४०-४१ ॥

ज्वलच्छब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

ज्वलन्तमिति शब्देन प्रोच्यते जीवरूपता।
चैतन्यं ज्वलनं प्रोक्तं तत्कर्ता चेतनो ज्वलन्॥ ४२ ॥
ज्वलन्नित्युच्यते सोऽयमसमाप्तविदिक्रियः।
सर्वतः प्रकृतिं दृष्ट्वा दोषाश्चैव तदुद्भवान्॥ ४३ ॥
विरक्तः सर्वथा तत्र यदा वेत्ति परं हरिम्।
तदा समाप्यते तस्य वेत्तुः सर्वा विदिक्रिया॥ ४४ ॥
अतः प्रकृतिनिर्मग्नो बुध्यमानो य ईर्यते।
संसारी स ज्वलन् सोऽपि भगवानिति भण्यते॥ ४५ ॥

ज्वलच्छब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—'ज्वलन्तम्' इस शब्द से जीवरूपता कही गई हैं! ज्वलन् चैतन्य को कहते हैं। जलते रहने के कारण चेतन ही उसका कर्त्ता है। जब तक जानने वाले के ज्ञान की समाप्ति नहीं हो जाती तब तक वह जलता रहता है। सब जगह प्रकृति का साम्राज्य देख कर तथा उससे उत्पन्न दोषों को देख कर जब जीव विरक्त हो तत्र-तत्र परमात्मा को जान लेता है। तब उसके ज्ञान की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति में निमग्न पुरुष जब जागरुक होकर प्रबुद्ध होता है तब जलता हुआ भी वह संसारी जीव 'भगवान्' शब्द से कहा जाता है॥ ४२-४५ ॥

वीरशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

विविधं प्रेरयत्येतच्चेतनाचेतनं जगत्।
यः कालो भगवद्रूपं वीरशब्देन स स्मृतः॥ ४६ ॥

वीर शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—जो काल रूप से चेतना-चेतनात्मक सारे जगत्

को अनेक प्रकार से प्रेरित करता है तथा भगवत्स्वरूप है, वही काल वीर शब्द से कहा जाता है ॥ ४६ ॥

महाविष्णुशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

तत्तत्त्वत्रितयव्याप्तिर्विष्णुशब्देन भण्यते ।
व्याप्तौ तत्राप्यलिप्तत्वं तस्माच्चाधिकता च या ॥ ४७ ॥
महा महत्त्वं पूज्यत्वं महच्छब्देन वर्ण्यते ।

महाविष्णु शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—तत्त्व त्रितय में जो व्याप्त है विष्णु शब्द उसी को कहता है । व्याप्त होने पर भी जो उन तीनों तत्त्वों से सर्वथा निर्लिप्त रहता है और उससे (तीनो तत्त्वों) उसकी जो अधिकता है । वही महा महत्त्व है, पूज्यत्व है । इतना ही महाशब्द से वर्णन किया गया है ॥ ४७-४८ ॥

सर्वतोमुखशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

सर्वतोमुखशब्देन प्रोच्यते सर्वशक्तिता ॥ ४८ ॥
सर्वज्ञता च देवस्य सर्वकर्तृत्वमेव च ।

सर्वतोमुख का तात्पर्य निरूपण—'सर्वतोमुख' शब्द से देवाधिदेव विष्णु की सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता तथा सर्वकर्त्तृता विवक्षित है ॥ ४८-४९ ॥

भद्रशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

भद्रशब्देन देवस्य नित्यनिर्दोषतोच्यते ॥ ४९ ॥

भद्र शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—भद्र शब्द से श्रीविष्णु की नित्य निर्दोषता प्रतिपादित की गई है ॥ ४९ ॥

नृसिंहशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

तथा नृसिंहशब्देन पुरुषोत्तमतोच्यते ।

नृसिंह शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—नृसिंह शब्द से विष्णु की पुरुषोत्तमता कही गई है ॥ ५० ॥

मृत्युमृत्युशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

मोक्षप्रदत्वमेतस्य मृत्युमृत्युसमीरणात् ॥ ५० ॥

मृत्युमृत्यु शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—'मृत्युमृत्यु' इस शब्द के उच्चारण से विष्णु का मोक्षप्रदत्व निरूपण किया गया है ॥ ५० ॥

अहंशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

प्रसङ्ख्यानेन या सिद्धा सिद्धिः कालेन भूयसा ।
प्रकृत्युत्तरता साक्षात् साहंशब्देन वर्ण्यते ॥ ५१ ॥
हिनस्ति गच्छतीत्यादिः प्राकृती याखिला क्रिया ।
तत्कर्तृवाची हंशब्दस्तदन्योऽहंपदोदितः ॥ ५२ ॥

निरुपाध्यवमर्शोऽयं देहप्राणात्यये स्थितः ।
अहमित्यास्पदं याति स जीवो निरुपस्कृतः ॥ ५३ ॥

अहं शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—बहुत काल से प्रसङ्ख्यान (सांख्य शास्त्र) द्वारा 'अकार से लेकर हकार पर्यन्त वर्णों की अहं पद से गणना सिद्धि सिद्ध है, तथा पूर्व में प्रकृति, तदनन्तर महत्तत्व, तदनन्तर अहन्तत्त्व, इस प्रकार जिसमें प्रकृति से उत्तरता विद्यमान है वही 'अहं' शब्द से वर्णन किया गया है । हिनस्ति गच्छति इत्यादि जितनी भी क्रियायें हैं उनका कर्त्ता 'हं' है । उससे भिन्न अहं है । देह और प्राण के बिना स्थित रहने वाला जीव जब उपाधि से रहित हो जाता है तो वही अहं इस आस्पद (उपाधि) को प्राप्त कर लेता है ॥ ५१-५३ ॥

नमामिशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

प्रसङ्ख्यायेत्थमात्मानं प्रह्वीभवति यत् स्वयम् ।
नद्या इवाम्बुधौ देवे प्रह्वीभावो निमग्नता ॥ ५४ ॥
इति ते सांख्यमार्गस्थो मन्त्रोऽर्थः सूक्ष्म ईरितः ।
तत्प्रसङ्ख्यानतत्त्वज्ञा विशन्ति पुरुषोत्तमम् ।
योगमार्गस्थितं तस्य मत्तो रूपं निशामय ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणं नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३५३३ ॥

* * *

नमामि शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—मैं इस प्रकार (दीन हूँ, अज्ञ हूँ, अणु हूँ) अपने को बता कर जब जीव परमात्मा में इस प्रकार निमग्न हो आत्मसमर्पण कर देता है तब जिस प्रकार नदी अपने को समुद्र में लीन कर देती है उसी प्रकार यह प्रह्वीभाव रूप निमग्नता कहा जाता है । हे नारद ! हमने सांख्यमार्गानुसारी नारसिंह मन्त्र का अर्थ प्रतिपादन किया । इसी प्रकार प्रसङ्ख्यान के तत्त्वज्ञ पुरुष पुरुषोत्तम में प्रवेश करते हैं । अब इस मन्त्र का योग मार्गानुसारी अर्थ आप मुझसे सुनिए ॥ ५४-५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपण नामक चौवनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५४ ॥

* * *

अथ पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यानं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते है ।

योगमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

निर्ब्रुवन्ति यथा योगा मन्त्रमेतं विचक्षणाः ।
तथा वाच्यस्तव मुने तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥

योगमत के अनुसार मन्त्र के अर्थ निरूपण की प्रतिज्ञा—अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिस प्रकार योगशास्त्र के विद्वान् इस मन्त्र की व्याख्या करते हैं, हे मुने ! वही मैं आपसे कह रहा हूँ आप सुनिए ॥ १ ॥

उग्रशब्दार्थनिरूपणम्

उद्गतः क्रुध इत्येवमुग्रः करणरोधनात् ।

उग्रशब्दार्थ निरूपण—समस्त ज्ञानेन्द्रियों को रोक कर उससे ऊपर होकर उत्पन्न होने वाला क्रोध ही उग्र शब्द से वाच्य है ॥ २ ॥

वीरशब्दार्थनिरूपणम्

विवृता येन विजिता ईरा देहस्थवायवः ॥ २ ॥
स वीर उदितो योगैस्तन्त्रविज्ञानपारगैः ।

वीरशब्दार्थ निरूपण—विवृता का अर्थ विजिता है और ईरा देहस्थ वायु को कहते हैं । इस प्रकार जिसने देहस्थ वायु को जीत लिया वही 'वीर' है ऐसा तन्त्र और योगशास्त्र के विद्वानों ने कहा है ॥ २-३ ॥

ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम्

जितेन्द्रियो जितश्वासो योऽन्तर्ज्वलति सर्वत: ॥ ३ ॥
अनिन्द्रियव्यवच्छेदात् सर्वत: प्रसृतो ज्वलन् ।

ज्वलच्छब्दार्थ निरूपण—जो इन्द्रियों को तथा श्वास को जीत कर सर्वत्र भीतर ही भीतर जलता रहता है । इन्द्रियों द्वारा जिसको रोकना सम्भव नहीं है । अत: सर्वत्र जलते हुये ही फैलता रहता है । वही ज्वलन् शब्द का अर्थ है ॥ ३-४ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम्

सर्वतोमुख उद्दिष्ट: सर्वज्ञानमयो हरि: ॥ ४ ॥

सर्वतोमुख शब्दार्थ निरूपण—सर्वज्ञानमय विष्णु को सर्वतोमुख कहा जाता है ॥ ४ ॥

भीषणशब्दार्थनिरूपणम्

भा सम्यग्ज्ञानमुद्दिष्टं तस्या: प्रेरणमीषणम् ।
भेषणो भीषण: प्रोक्तो भगवान् विश्वभावन: ॥ ५ ॥

भीषण शब्दार्थ निरूपण—भा पद से सम्यग्ज्ञान विवक्षित है उसको जो प्रेरित करता है वह ईषण है । 'भ' और 'ईषण' दोनों मिलाकर कहा जाने वाला शब्द भेषण है वही भीषण है । इस प्रकार विश्वभावना भगवान् ही भीषण शब्द से कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

महाविष्णुनृसिंहभद्रमृत्युमृत्युशब्दार्थस्य पूर्वोक्तत्वसूचनम्

महाविष्णुनृसिंहौ च मृत्युमृत्युश्च पूर्ववत् ।

महाविष्णु नृसिंह तथा मृत्यु शब्द का पूर्वोक्त अर्थ कथन—महाविष्णु नृसिंह तथा 'मृत्युमृत्यु' शब्द पूर्ववत् हैं (द्र० ५४.४७-५०) ॥ ६ ॥

संपिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

जितेन्द्रियसमीराद्यं जीवरूपं व्यवस्थितम् ॥ ६ ॥
व्यापिनं महनीयं च धियां सम्यक् प्रचोदकम् ।
संसारमोचकं चैव यं विदु: पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥
नमामि तमहं देवमिति योगानुशासनम् ।

सबको मिलाकर अर्थ निरूपण—जो इन्द्रियों तथा प्राणों को जीत कर जीव रूप से व्यवस्थित है तथा सर्वत्र व्याप्त रहने वाला, महनीय, बुद्धि का प्रेरक तथा संसार से मुक्त करने वाला है जिसे लोग पुरुषोत्तम कहते हैं उसी देव को हम नमस्कार करते हैं । यह योगानुशासन का अर्थ है ॥ ६-८ ॥

पाशुपतमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणे उग्रशब्दार्थनिरूपणम्

उग्रव्रतसमाराध्य उग्रशब्दने वर्ण्यते ॥ ८ ॥

पाशुपत मत के अनुसार मन्त्रार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से उग्र शब्द का अर्थ—जो उग्र व्रत द्वारा आराधनीय है वही उग्रशब्द से वर्णन किया गया है ॥ ८ ॥

वीरशब्दार्थनिरूपणम्

तत्पारयितृवन्द्यत्वं वीरशब्देन वर्ण्यते ।

वीरशब्दार्थ निरूपण—जो उन जीवों को पार करने के कारण वन्दनीय है वही वीर है ऐसा वीर शब्द का अर्थ है ॥ ९ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम्

मलत्रयप्रागभावः सर्वतोमुखशब्दितः ॥ ९ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थ का निरूपण—जिनमें आणवादि मलत्रय का प्रागभाव हो वही 'सर्वतोमुख' शब्द का अर्थ है ॥ ९ ॥

ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम्

संविद्घनत्वमाद्यस्य ज्वलच्छब्देन वर्ण्यते ।

ज्वलच्छब्दार्थ निरूपण—आदिभूत महाविष्णु की ज्ञानघनता को ही ज्वलत् शब्द से कहा गया है ॥ १० ॥

भीषणशब्दार्थनिरूपणम्

अर्थपञ्चकरूपस्तु पाशो भीशब्ददर्शितः ॥ १० ॥
भियं स्यति द्यति स्पष्टं पाशं छिन्ते पशोरिति ।
पशुपाशच्छिदं वक्ति शब्दो भीषण इत्ययम् ॥ ११ ॥

भीषण शब्दार्थ निरूपण—अर्थपञ्चकरूप पाश यही 'भी' शब्द का अर्थ है जो भय का अन्त करता है। (षोऽन्त कर्मणि अथवा) जो भय को काट देता है। (दो अवखण्डने) अथवा पशु रूप जीव के पाश का छेदन करता है इसलिए यह भीषण शब्द 'पशुपाश को उच्छेद करने वाला' इस अर्थ को कहता है ॥ १०-११ ॥

मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम्

शिवङ्करत्वमीशस्य मृत्युमृत्युपदोदितम् ।

मृत्युमृत्यु शब्दार्थ निरूपण—ईश्वर का कल्याणकरत्व यही 'मृत्युमृत्यु' पद से कहा गया है ॥ १२ ॥

पदान्तरार्थस्य पूर्वप्रदर्शितत्वसूचनम्

महाविष्णुर्नृसिंहश्च पूर्वमेव प्रदर्शितौ ॥ १२ ॥

अन्य पदों का पूर्वप्रदर्शित्व कथन—महाविष्णु तथा नृसिंह इन दो शब्दों का अर्थ पहले कह आये हैं (द्र० ५४.४७.५०) ॥ १२ ॥

सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

उग्रव्रतप्रियं नित्यमुग्रव्रतपरार्चितम् ।
मलत्रयापरामृष्टं चिद्घनं पाशभेदिनम् ॥ १३ ॥
शिवं वदन्ति यं विष्णुं महान्तं पुरुषोत्तमम् ।

नमाम्यहं तमित्येवमर्थः पाशुपते स्मृतः ॥ १४ ॥

समुदित मन्त्र का अर्थ निरूपण—जिन्हें उग्रव्रत प्रिय है, जो उग्र व्रत करने वालों से अर्चित है, जो तीनों प्रकार के आणवादि मलों से अस्पृष्ट हैं और चिद्घन तथा पाश का भेदन करने वाले हैं, जिन्हें कोई शिव कहता है कोई विष्णु कहता है । कोई महान्, तो कोई पुरुषोत्तम कहता है हम उसे नमस्कार करते हैं । यही पाशुपतों के मत में उक्त मन्त्र का अर्थ है ॥ १३-१४ ॥

त्रय्यन्तमतानुसार्यर्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम्

त्रय्यन्तपदवीवेद्यः पूर्वमेव निरूपितः ।

वेदान्त मत द्वारा वर्णित मन्त्रार्थ का पूर्वसूचन—वेदान्तवेद्य मन्त्रार्थ हम पहले ही कह आये हैं (द्र० ५४.१७.३९) ॥ १५ ॥

सात्त्वतमतेन मन्त्रार्थनिरूपणम्

अर्थं सात्त्वतसंवेद्यमप्रमत्तोऽवधारय ॥ १५ ॥

सात्त्वतमत के मतानुसार मन्त्रार्थ निरूपण—हे नारद ! अब सात्त्वत मत से जानने योग्य इस मन्त्र का अर्थ सुनिए ॥ १५ ॥

उग्रशब्दस्य सङ्कर्षणाख्यव्यूहपरत्वम्

उद्गिरत्यमलं शास्त्रमुद्गीर्य रमयत्यपि ।
गिरत्यन्ते च तच्छास्त्रमुग्रः सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ १६ ॥

उग्र शब्द का अर्थ—जो सर्वथा दोषरहित शास्त्र का प्रतिपादन करता है तथा उत्पन्न कर उसे विकसित करता है, अन्त में पुनः उसे अपने में समेट लेता है इसलिए 'उग्र' पद से सङ्कर्षण को कहा गया है ॥ १६ ॥

वीरशब्दस्य प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम्

विना कृत्वा प्रेरयति रजसा तमसा त्रयीम् ।
वीरां करोति तां विद्यां वैद्यमानवसर्गयोः ॥ १७ ॥
वीरयत्यपि चात्मानं तमोमधुनिघातने ।
व्यापारयति शास्त्रार्थानुष्ठाने कर्म निर्मलम् ॥ १८ ॥
अतो वीरं वदन्त्याद्यं प्रद्युम्नं पुरुषोत्तमम् ।

वीर शब्द का प्रद्युम्न नामक व्यूह परत्व अर्थ—जो वेद का कर्त्ता न होकर भी रजोगुण और तमोगुण से उसे प्रेरित करता है तथा वैदिक सृष्टि (सूर्य, अग्नि, आदि) एवं मनु सृष्टि की विद्या को प्रसारित करता है । मधु राक्षस को मारने के लिए अपने को तमोगुण से युक्त करता है तथा शास्त्रार्थ के अनुष्ठान के लिए जो निर्मल कर्म का व्याख्यान करता है । इसीलिए बुद्धिमानों ने आद्य, पुरुषोत्तम प्रद्युम्न को 'वीर' कहा है ॥ १७-१९ ॥

महाविष्णुशब्दस्यानिरुद्धाख्यव्यूहपरत्वम्

महान् भवति चेष्टाभिरनिरुद्धश्च सर्वतः ॥ १९ ॥

एकत्रिचतुरीहाभिस्ते पूर्वे मितवृत्तयः ।
कार्यस्य च मितत्वेन तेषां शक्तिर्निरोधिता ॥ २० ॥
आम्नायन्तेऽनिरुद्धे तु चेष्टाः सङ्ख्यानवर्जिताः ।
कार्याण्यपरिमेयानि सृष्टिस्थित्यादिकानि तु ॥ २१ ॥
शक्तिस्तद्विषया या तु या व्याप्तिर्विष्णुता च सा ।
सा चानिरुद्धता तस्य तुर्यव्यूहस्य शार्ङ्गिणः ॥ २२ ॥
महाविष्णुस्ततः प्रोक्तः सोऽनिरुद्धो विचक्षणैः ।

महाविष्णु शब्द का अनिरुद्ध व्यूह परम अर्थ—'जो चेष्टाओं से महान् है तथा सर्वत्र अनिरुद्ध (अप्रतिहत) है । पूर्व में कहे गए तीनों व्यूह, एक तीन एवं चार चेष्टाओं से मितवृत्ति (स्वल्प चेष्टा वाले) हैं, उनका कार्य मित (स्वल्प) है इसलिए उनकी शक्ति निरोध करने वाली है । असङ्ख्य चेष्टायें निरोध न रहने पर और तद्विषयक शक्ति तथा सर्वत्र व्याप्ति यही विष्णुता है । यह सब उस चतुर्व्यूह वाले विष्णु की अनिरुद्धता है । इसलिए विचक्षण लोगों ने उन अनिरुद्ध को महाविष्णु कहा है ॥ १९-२३ ॥

ज्वलच्छब्दस्य रामकृष्णादिविभवपरत्वम्

विकासो ज्वलनं प्रोक्तं तस्य ब्रह्माण्डमध्यतः ॥ २३ ॥
यद्वदन्त्यवतारं तु वैभवं हरिमेधसः ।

ज्वलच्छब्द का राम कृष्णादि विभव परक अर्थ—विकास ही ज्वलन कहा जाता है । उसका ब्रह्माण्ड मध्य में अवतार धारण करना ही विकास है । जो विष्णु का वैभव (ऐश्वर्य) है ॥ २३-२४ ॥

सर्वतोमुखशब्देनावताराणां सौलभ्यकाष्ठाभूमिभूतनानायोनित्वस्य बोधनम्

सर्वतोमुखशब्देन नानायोनिनिवेशनम् ॥ २४ ॥

सर्वतोमुख शब्द से उसके अवतारों का सुलभता से नाना योनि प्रवेश रूप अर्थ का कथन—'सर्वतोमुख' शब्द से उसका नाना योनियों में प्रवेश कहा गया है ॥ २४ ॥

भद्रशब्दस्यावतारदशायामपि हेयसम्बन्धराहित्यपरत्वम्

भद्रत्वं तत्र तस्यापि ह्यजहत्स्वस्वभावता ।

भद्र शब्द से अवतार लेने पर भी वह हेय(दोष)सम्बन्धरहित है ऐसा कथन—अवतार लेने पर भी वह अपने स्वभाव का त्याग नहीं करता और न हेय (दोष) सम्बन्ध को ग्रहण करता है यही भद्रशब्द से कहा गया है ॥ २५ ॥

भीषणशब्दस्य मोक्षप्रदत्वपरत्वम्

भियः संसारबन्धस्य सानं भीषणता मता ॥ २५ ॥
सा सप्रकारविज्ञानमात्रलभ्योपदिश्यते ।

भीषण शब्द का मोक्षप्रदत्वरूप अर्थ कथन—संसार रूप बन्धन का उच्छेद कर देना यही भीषणता है । वह भीषणता विशेषण विशिष्ट विशेष्य के ज्ञान से ही सम्भव है ।

इसलिए संसार रूपबन्धन को काटने वाला मोक्ष यही उस भीषण शब्द का अर्थ हुआ।

विमर्श—सानम्—'षोऽन्तकर्मणि' इति धातुः ॥ २५-२६ ॥

मृत्युमृत्युशब्देन भद्रशब्दोदितस्य हेयप्रतिभटत्वस्य बोधनम्

हेयप्रत्यर्थिता या सा ब्रह्मणः सार्वकालिकी ॥ २६ ॥
स्वाभाविकी च सा प्रोक्ता मृत्युमृत्युपदेन तु ।

'मृत्युमृत्यु' शब्द से भद्रादि शब्द द्वारा कहा गया हेय प्रतिभटत्व मृत्यु का शत्रु रूप अर्थ बोधन—उस परब्रह्म विष्णु में हेय (मृत्यु) की प्रत्यर्थिता (विनाशक शक्ति या शत्रुता) सार्वकालिक तथा स्वाभाविक है। यही अर्थ 'मृत्युमृत्यु' पद से कहा गया है ॥ २६-२८ ॥

नृसिंहशब्दस्य द्विविधव्याप्तिपरत्वम्

नृनात्मनोऽनुबध्यान्तर्हित्वैनान् परितोऽपि च ॥ २७ ॥
या स्थितिस्तस्य देवस्य पुरुषोत्तमताह्वया ।
सोक्ता नृसिंहशब्देन सैषा वाक्यार्थ उच्यते ॥ २८ ॥

नृसिंह शब्द की दो रूपों से व्याप्तता का कथन—मनुष्यों को अपने अन्तःप्रदेश मे बांधन कर पुनः उसे अलग होकर जो उनके चारों ओर स्थित रहता है इस प्रकार भीतर तथा वाहर से व्याप्त होना यही उस देव की नृसिंह शब्द से पुरुषोत्तमता कही गई है ॥ २७-२८ ॥

सङ्कर्षणादिरूपेण व्यूह्यात्मानं त्रिधा स्थितः ।
तत्तदाश्रितकार्याय यो विभुः सर्वतोमुखः ॥ २९ ॥
नानाविभवरूपेण ज्वलत्यन्तर्भवोदरे ।
एवं ज्वलन् भवत्येव भद्रो भद्रतरस्तथा ॥ ३० ॥
एवं विज्ञातमात्रो यो भीषणो बन्धनाशकृत् ।
मृत्योर्हेयस्वरूपस्य मृत्युः प्रतिभटो यतः ॥ ३१ ॥
तमहं व्यूहविभवविज्ञानसुलभं नृणाम् ।
अन्तर्बहिरिदं व्याप्य तिष्ठन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ ३२ ॥
नृसिंहं करणैः सर्वैरात्मत्वेनानुसन्दधे ।
इति सात्त्वतसिद्धार्थो लेशतस्ते निदर्शितः ॥ ३३ ॥
सूक्ष्मो नानाविधोऽर्थो यः परमद्य निशामय ।

समूचे मन्त्र का वाक्यार्थ कथन—जो अपने को सङ्कर्षण प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन तीन रूपों से व्यूह बन कर स्थित है। अपने आश्रित (भक्तों) के तत्तत कार्यों के लिए जो विभु (व्यापक) रूपेण स्थित है वही सर्वतोमुख है। जो अपने अनेक विभवों से अपने संसार रूप उदर के भीतर जलता रहता है यही ज्वलन का अर्थ है। इस प्रकार जलते हुये भी जो भद्रतर (अत्यन्त कल्याणकारी) है वही भद्र शब्द का अर्थ है। जो इस प्रकार से विज्ञात मात्र होकर संसार के बन्धन का उच्छेद कर देता है वही भीषण कहा जाता है।

अत: मृत्यु सबका हेय है । कोई नहीं चाहता कि हमारी मृत्यु हो उस मृत्यु का वह प्रतिभट (विनाशक या शत्रु) मोक्ष स्वरूप है । इस प्रकार मृत्युमृत्यु शब्द से कहा जाने वाला, व्यूहविभव मनुष्यों के लिए ज्ञानसुलभ, अन्तर तथा बाहर सर्वत्र व्यापक रूप से रहने वाले पुरुषोत्तम नृसिंह को अपना समझे तभी ज्ञानेन्द्रियों से ध्यान कर रहा हूँ । इस प्रकार सात्त्वत सिद्धान्त अर्थ लेश रूपेण मैंने आपसे कहा । यहाँ तक इस मन्त्र के सूक्ष्म नाना अर्थों का निरूपण किया अब पर अर्थ को सुनिए ॥ २९-३४ ॥

परार्थवर्णने प्रथममुग्रपदस्य सङ्कर्षणाख्यव्यूहपरत्वकथनम्, तदुपपादनञ्च

अशेषभुवनाधारः संसारगदनाशनः ॥ ३४ ॥
उद्दाम उदयो विष्णोः सङ्कर्षणसमाह्वयः ।
उग्रवर्णैः समुद्दिष्टो वैष्णवः प्रथमोदयः ॥ ३५ ॥

परार्थ वर्णन के प्रसङ्ग से प्रथम उग्र शब्द का सङ्कर्षण नामक व्यूह निरूपण—अशेष भुवनों का आधार (रकार द्र० १७.२५), संसार रूप रोग का विनाशक (गकार द्र० १७.१३), उद्दाम या उदय (उकार द्र० १७.६) विष्णु के सङ्कर्षण नामक व्यूह को कहा जाता है । अत: उग्र शब्द से यहाँ विष्णु का प्रथम व्यूह सङ्कर्षण कहा गया ।

विमर्श—नारसिंहानुष्टुभ मन्त्र का परार्थवर्णन का अर्थ—मन्त्र में रहने वाले प्रत्येक वर्ण का अप्रमेयादि भाव एवं सिद्धव्यूह विभव प्रदर्शन करते हैं—उक्त मन्त्र में ११ पद हैं जिसमें अन्तिम 'अहं' पद प्रथमान्त एवं कर्त्ता कारक हैं । १०वाँ नम: पद उत्तम पुरुष नमन रूप क्रिया का वाचक है । अवशिष्ट नव पद नमन क्रिया के कर्म हैं यह हम पहले कह आयें हैं । इसमें आदि के तीन पद उग्र, वीर तथा महाविष्णु ये तीन, व्यूह त्रय का उपपादन करते हैं । शेष ज्वलत् आदि छ: पद पञ्चमाध्याय वर्णित पद्मनाभादि, पाताल शयनान्त ३९ अवतार के वाचक हैं । उसे 'परमद्य निशामय' (३३ श्लोक) से शब्दों का अप्रमेयादि भाव (द्र० १७४-२९) जो सभी वर्णों को मिलाकर एक सौ पचास की सङ्ख्या में कहा गया है—प्रारम्भकर इस अध्याय के अन्त तक उग्र, वीर एवं महाविष्णु इन तीन शब्दों का व्यूह-त्रय अर्थ प्रतिपादन करते हैं । शेष छ: पदों का ३९ अवतार (जो पञ्चम अध्याय के ५०-५६ श्लोक तक कहे गए हैं) परक अर्थ विस्तृत होने के कारण अगले अध्याय में कहेंगे ॥ ३४-३५ ॥

तिलकालकवद्यस्मात् तत्र विश्वं प्रकाशते ।
दिव्यशास्त्रोपदेशेन गदं ध्वंसयते यतः ॥ ३६ ॥
उद्दामः सोऽप्रतिहतो विष्णोरुदय उज्ज्वलः ।
अत उग्रपदोद्दिष्टो देवः सङ्कर्षणः प्रभुः ॥ ३७ ॥

उग्र के अर्थ का उपपादन—यत: समस्त विश्व उसमें काले तिल के समान प्रकाशित रहता है, वह रकार जो दिव्य शास्त्रों के उपदेश द्वारा संसार रूप (रोग) का विनाश करता है, वह गकार तथा जो विष्णु का उद्दाम एवं उज्ज्वल उदय है, वह उकार है । इसलिए यहाँ वही उग्र पद द्वारा सङ्कर्षण प्रभु कहे गए हैं ।

विमर्श—यहाँ अर्थ र.ग.उ इस प्रकार संहार क्रम से कहा गया है ॥ ३६-३७ ॥

वीरपदेन प्रद्युम्नव्यूहस्य प्रतिपादनम्, तदुपपादनञ्च

अमृताधाररूपश्च मायावांश्च ततोऽनलः ।
प्रद्युम्नो वीरशब्देन गदितः पुष्करेक्षणः ॥ ३८ ॥

वीर पद से प्रद्युम्न रूप व्यूह का प्रतिपादन—अमृताधार (वकार द्र० १७.२६), तदनन्तर (ईकार द्र० १७.५), तदनन्तर मायावान् अनल (रकार द्र० १७.२५), इन तीनों (वर्णो) से कमल नेत्र प्रद्युम्न व्यूह कहे गए हैं ।

विमर्श—वीर में वकार ईकार, रेफ ये तीन वर्ण विभाग हैं ॥ ३८ ॥

अमृतं भगवद्धर्मस्तस्याधारः समाश्रयः ।

उस प्रद्युम्न व्यूह का उपपादन—अमृत भगवद्धर्म को कहते हैं उसके आधार (समाश्रय) अर्थात् प्रद्युम्न हैं, वही अमृताधार हैं । इस प्रकार दूसरे व्यूह प्रद्युम्न का उपपादन वीरशव्द से किया गया ॥ ३९ ॥

सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

सद्धर्मस्य ह्यधिष्ठाता प्रद्युम्नो धर्मसंश्रयः ॥ ३९ ॥
माया ज्ञानं यतो विद्यां सम्बोधयति मायया ।
दहत्यनलवच्चैव विद्यादोषं तमोमयम् ॥ ४० ॥
वीरवर्णैरतो देवः प्रद्युम्नः परिकीर्त्यते ।

समुदित वाक्यार्थ का निरूपण—अमृतरूप सद्धर्म के अधिष्ठाता प्रद्युम्न धर्म के आश्रय हैं यत: वह (वकार) एवं माया (ईकार) से माया अथवा ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिससे विद्या उत्पन्न हुई है । अत: वह ज्ञान विद्या के दोषों को अनल के समान नाश करता है । इस प्रकार वीर शब्द से प्रद्युम्न का बोध होता है ॥ ३९-४१ ॥

महाविष्णुशब्देनानिरुद्धव्यूहस्य सङ्कीर्तनम्, तदुपपादनञ्च

कालः प्रधानमाधारस्तयोः प्राणः सदाभवत् ॥ ४१ ॥
गोपनश्च तयोर्नित्यं वृण्वानः सकला गतीः ।
एधयन् मानवं गर्भं तत्तत्संवत्सरैः क्रमात् ॥ ४२ ॥
अग्निरूपो जगत्यस्मिन् भास्करश्च स्वयं भवन् ।
भुवनाभयदश्चैव वैकुण्ठोऽविहतं जगत् ॥ ४३ ॥
शासिता स्वयमध्यक्षो महाविष्णुर्विवर्णितः ।

महाविष्णु शब्द से अनिरुद्ध व्यूह का सङ्कीर्तन—काल और प्रधान (मकार द्र० १७.२४) इन्हें सृष्टि का आधार कहा जाता है । उससे सदैव प्राण (हकार द्र० १७.२८) उत्पन्न हुआ है । वही प्राण सम्पूर्ण गतियों को (वृण्वानः वकार द्र० १७.२६) आच्छादित कर उनका गोपन (=आकार) करता है । जो उन-उन संवत्सरों से मानवगर्भ को बढ़ाते हुये (एधयन् इकार द्र० १७.७.५) भास्कर बन कर अग्नि रूप में प्रगट हुआ

है । जो (अग्निरूप: षकार द्र० १७.२७) सारे भुवनों को अभय प्रदान करता है (अभयद: णकार द्र० १७.१९) और जो बैकुण्ठ है (द्र० वैकुण्ठ: १७.१९) । जिससे जगत् निरन्तर स्थित है, जो जगत् का शासन करता है और स्वयं अध्यक्ष है णकार (द्र० १७.१९) । यही महाविष्णु पद के प्रत्येक वर्ण मकार, हकार-वकार, इकार, षकार तथा णु का अर्थ हुआ ॥ ४१-४४ ॥

पुष्करं कालरूपेण धत्ते नाभिसमुद्भवम् ॥ ४४ ॥
अन्त:स्थपुरुषं चैव प्रधानं तद्गतं दधत् ।
कालप्रधानशब्दाभ्यामभेदेनाभिधीयते ॥ ४५ ॥
प्राणयन् कालत: सांख्यकालजीवत्रयीत्रयम् ।
प्राणवर्णेन निर्दिष्टो गोपनो गोपनाख्यया ॥ ४६ ॥

इसका वर्ण सङ्केत की युक्ति से उपपादन—जो काल रूप (मकार) से अपनी नाभि में उत्पन्न होने वाले पुष्कर (कमल) तथा अन्त:स्थ पुरुष (ब्रह्मा) और उसमें होने वाले प्रधान (मकार के दूसरे अर्थ) को धारण करते हुये काल तथा प्रधान इन दो शब्दों से अभेद द्वारा कहा जाता है । जो ज्ञान, काल तथा जीव इन त्रयी के तीनों रूपों को काल रूप से अनुप्राणित करता हुआ प्राण वर्ण (ह) से कहा जाता है । गोपन (= आकार) वर्ण से जो सबका गोपन करता है ॥ ४४-४६ ॥

कार्याणि गतय: प्रोक्तास्ताश्च वृण्वंश्चिकीर्षया ।
उक्तो वरुणवर्णेन सा हि तस्यानिरुद्धता ॥ ४७ ॥
गर्भं कालस्थविद्यायां जीवमन्वष्टकात्मकम् ।
पुष्णन्नब्दसहस्रेण देव इद्धार्णवर्णित: ॥ ४८ ॥
अग्निसूर्यादिके चैव देवसर्गे हि वैद्यके ।
तत्तद्देवप्रवेशेन तत्तन्नाम दधत् स्वयम् ॥ ४९ ॥
अग्निभास्करवर्णेन स्वयं देव उदीर्यते ।

कार्य को गति कहा जाता है । उस गति को जो अपनी चिकीर्षा से (वृण्वन् वकार) आच्छादित करता है यही उसकी अनिरुद्धता है । यह वरुण (वकार द्र०१७.२६) शब्द का अर्थ है । जो कालस्थ विद्या में अन्वष्टक जीव रूप गर्भ को एक हजार वर्ष पर्यन्त पोषित करता है वही इद्ध वर्ण (इकार) का अर्थ है । अग्निसूर्यादि ये वैद्यक में देव सर्ग से कहे गए हैं, उसमें जो प्रकाश द्वारा प्रविष्ट हो कर उन-उन सत्ताओं को स्वयं धारण करता है । इस प्रकार अग्नि भास्कर वर्ण (षकार द्र० १७.२७) से स्वयं देव विष्णु कहे जाते हैं ॥ ४७-५० ॥

कालाद्यवनिपर्यन्तं चेतनाचेतनात्मकम् ॥ ५० ॥
भुवनार्णोदितं यत् तद् भुवनाङ्गविचित्रितम् ।
तस्य दुष्टनिबर्हेण यो ददात्यभयं सदा ॥ ५१ ॥
यश्चाविहत एवासीत् तत्तत्कार्यसमुद्यमे ।

अनुप्रविश्य भूतानि योऽध्यक्षः सन्नियच्छति ॥ ५२ ॥

काल से लेकर अवनिपर्यन्त यावत् चेतना-चेतनात्मक भुवन, जो शब्दों के वाच्य का विषय है तथा भुवनाङ्ग होने से विचित्र है, उस भुवन को, जो दुष्टों से रक्षा कर, अभय (णकार द्र० १७.३९) दान देता है, अथवा जो प्राणियों में प्रविष्ट होकर तत्तत्कार्य में अप्रतिहत है और अध्यक्ष (णकार १७.१९) बन कर उस भुवन का नियमन करता है ॥ ५०-५२ ॥

ऐषोऽभयदवैकुण्ठशास्तृवर्णेन वर्ण्यते ।
इति व्यूहाः समुद्दिष्टा उग्रादित्रितयेन तु ।
ज्वलदादिनिरूप्योऽर्थो ह्यतः परमुदीर्यते ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३५८६ ॥

* * *

इतना णकार से कहे गए अभयद, बैकुण्ठ तथा शास्ता (अध्यक्ष) पद से अर्थ का निरूपण किया गया । यहाँ तक उग्र, वीर तथा महाविष्णु शब्दों से हमने तीनों व्यूहों का वर्णन किया । अब इसके बाद 'ज्वलन्तम्' आदि द्वितीयान्त पदों का परार्थ निरूपण कर रहे हैं ॥ ५३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थ निरूपण नामक पचपनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५५ ॥

* * *

अथ षट्पञ्चाशोऽध्यायः

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक वार ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन चक्र के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

ज्वलदादिपदानां पद्मनाभाद्येकोनचत्वारिंशदवतारपरत्ववर्णनम्

अहिर्बुध्न्यः—

वैभवं देवताचक्रं ज्वलदाद्यर्णवर्णितम् ।
यथा तद्वर्ण्यते तैस्तैस्तथा तदवधारय ॥ १ ॥

'ज्वलन्तं' आदि पदों से पद्मनाभादि ३९ अवतारों का प्रतिपादन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ज्वलदादि पदों से जिस प्रकार विभवात्मक देवताचक्र (द्र० ५.५०-५६) का तत्तच्छास्त्रों द्वारा प्रतिपादन किया गया है, उसे सुनिए ॥ १ ॥

ज्वलत्पदविवक्षितेष्वेकादशस्ववतारेषु जकारस्य पद्मनाभाख्यप्रथमावतारपरत्वम्

अवतारो हि यो विष्णोः पद्मनाभो महोदयः ।
अजितः कुत्रचित् कैश्चित् सोऽजितार्णेन वर्ण्यते ॥ २ ॥

सर्वप्रथम 'ज्वलत्' इस शब्द से विवक्षित एकादश अवतारों में जकार द्वारा पद्मनाभ नामक प्रथमावतार का उपपादन—विष्णु का महान् अभ्युदय कारक जो पद्मनाभ अवतार है, जिसे कुछ लोग अजित भी कहते हैं वही अजित (जकार द्र० १७.१५) वर्ण से कहा गया है ।

विमर्श—'ज्वलन्तम्' इस पद में तत्तदवतारपरक वर्णों के विभाग का क्रम इस प्रकार है—जकार (१) वकार (२) वकारोत्तरवर्त्ती अकार (३) लकार (४) पुनः लकार (५) पुनः लकार (६) नकार (७) तकार (८) पुनः लकार (९) पुनः तकार (१०) अम्प्रत्ययवर्त्ती मकार (११) । इन ११ वर्णों से ११ अवतारों का वर्णन कहा गया है ॥ २ ॥

वकारस्य कान्तात्मामृतधारकाख्यविंशावतारपरत्वम्

अमृताधारवर्णेन कान्तात्मामृतधारकः ।

वकार से कान्तात्मक तथा अमृतधारक (द्र० ५.५३) नामक बीसवें अवतार का कथन—अमृताधार (वकार द्र० १७.२६) वर्ण से कान्तामृतधारक नामक बीसवें अवतार को कहा गया है ॥ ३ ॥

वकारोत्तराकारस्यैकाम्भोनिधिशाय्याख्यचतुर्दशावतारपरत्वम्

तत्रैवार्णवशायी च वरुणस्थाप्रमेयतः ॥ ३ ॥

वकारोत्तरवर्त्ती अकार से 'अम्भोनिधिशायी (द्र० ५.५२) नामक १४वें अवतार का कथन—वरुण (वकार) में रहने वाला अप्रमेय (अकार) अर्णवशायी नाम का अवतार का प्रतिपादन करता है ॥ ३ ॥

लकारस्य शक्त्यात्माख्यचतुर्थावतारपरत्वम्

धरेशेन तु शक्तीशो धरा शक्तिर्हि वैष्णवी ।

लकार से शक्ति (द्र० ५.५०) नामक चतुर्थ अवतार का कथन—धरेश (लकार द्र० १७.२५) वर्ण से शक्तीश अवतार कहा गया है उनकी वैष्णवी शक्ति ही धरा पद से अभिहित होती है ॥ ४ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन हरिकृष्णाख्यत्रयस्त्रिंश-चतुस्त्रिंशावतारद्वयपरत्वम्

विबुधो हरिरुद्दिष्टः कृष्णस्तु पुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥
विबुधाख्येन वर्णेन वर्ण्यते पुरुषेश्वरः ।
तावुभौ कथितौ देवौ नरनारायणात्मकौ ॥ ५ ॥

वही लकार हरि और कृष्ण इन तैंतीसवें तथा चौंतीसवें अवतार का प्रतिपादक है—विबुध (लकार द्र० १७.२५) से हरि अवतार और पुरुषेश्वर कृष्ण (द्र० ५.५५) अवतार कहे गए हैं। वही दोनों नर नारायण नाम से भी विख्यात हैं ॥ ४-५ ॥

नकारस्य धर्माख्यद्वादशावतारपरत्वम्

स्वर्गापवर्गयोः पन्था यो हि धर्मः सनातनः ।
स धरेशोत्तरेणैव पथा देव उदीर्यते ॥ ६ ॥

नकार से धर्म (द्र०५.५१) रूप दशम अवतार का कथन—स्वर्ग तथा अपवर्ग का जो सनातन सिद्ध मार्ग है वे धरेश अवतार नकार सहित अकार से कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

तकारस्यानन्ताख्यतृतीयावतारपरत्वम्

काललक्ष्मा हि भगवान् योऽनन्तः परिपठ्यते ।
स देवो धरणीधर्ता कथ्यते काललक्ष्मणा ॥ ७ ॥

तकार से अनन्त (द्र० ५.५०) नामक तीसरे अवतार का कथन—काललक्ष्मा

(तकार द्र० १७.१९) भगवान् अनन्त नाम से भी कहे जाते हैं । इस प्रकारताललक्ष्म (तकार) वर्ण से पृथ्वी धारण करने वाले अनन्त कहे जाते है ॥ ७ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन कूर्मविद्याधिदेवाख्यपञ्चदशषष्ठावतारद्वयपरत्वम्

लोकमालाः स्रजः प्रोक्ताः स्रग्धरः कूर्म उच्यते ।
विराड् विद्योदिता सद्भिर्वैराजश्च तदीश्वरः ॥ ८ ॥
वैराजस्रग्धराख्येन तौ देवौ परिकीर्तितौ ।

वही तकार कूर्म विद्याधिदेव नामक १५ वें तथा छठवे (द्र० ५.५२.५०) अवतार को भी कहता है ऐसा उपपादन—लोकमाला को स्रज् कहते हैं और उसे धारण करने वाला स्रग्धर कूर्म अवतार कहा जाता है यह तकार का प्रथम अर्थ है (द्र० १७.१९) । अब द्वितीय विराज अर्थ वाले (द्र० १७.१९) तकार का अर्थ कहते है—सज्जनो ने विराट् को विद्या कहा है और विराज उसका ईश्वर है । यही विराज तकार का दूसरा अर्थ है । इस प्रकार वैराज और स्रग्धर दो संज्ञाओं वाले तकार वर्ण से कूर्म और विद्याधिदेव अवतार कहा गया है ॥ ८-९ ॥

अम्प्रत्ययावयवयोरकारमकारयोः कालनेमिघ्नाख्यद्वाविंशावतारपरत्वम्

अप्रमेयनिगीर्णेन कालेन पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥
उच्यते कालनेमिघ्नो यः कालः स दुरासदः ।

अम् प्रत्ययावयव अकारोत्तरवर्ती मकार द्वारा कालनेमिघ्न (द्र० ५.५३) नामक बाइसवे अवतार का प्रतिपादन—अप्रमेय अकार (द्र० १७.४) से संयुक्त काल वर्ण (मकार द्र० १७.२४) से (अम् प्रत्यय) कालनेमिघ्न नामक पुरुषोत्तम कहे गए हैं क्योंकि काल बड़ा दुर्द्धर्ष है तथा पुरुषोत्तम को छोड़ कर उस काल का और कोई वधकर्त्ता नहीं हो सकता ॥ ९-१० ॥

सर्वतोमुखशब्दविवक्षितेषु दशस्ववतारेसु सकारस्य पीयूषहरणाख्याष्टादशावतारपरत्वम्

अप्रमेयसमाक्रान्तममृताक्षरमुत्तमम् ॥ १० ॥
अमृताहरणं वक्ति पुरुषं पुष्करेक्षणम् ।

सर्वतोमुख शब्द से विवक्षित दशावतारों में सकार द्वारा पीयूषहरण नामक अठारहवें (द्र० ५.५२) अवतार का प्रतिपादन—अप्रमेय अकार संयुक्त अमृताक्षर (सकार द्र० १७.२७) अमृत का आहरण करने वाले कमलनेत्र विष्णु को कहता है । यह सकार का प्रथम अर्थ है ।

विमर्श—सर्वतोमुख शब्द में दश वर्ण का विभाग इस प्रकार किया गया है—(१) सकार, (२) पुनः सकार, (३) रेफ सहित वकार, (४) पुनः अकार शिरस्क वकार, (५) तकार, (६) ओकार, (७) पुनः ओकार, (८) पुनः मकार शिरस्क ओकार, (९) उकारपूर्वक मकार शिरस्क खकार (१०) पुनः खकार ॥ १०-११ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन श्रीपत्याख्यैकोनविंशावतारपरत्वम्

अप्रमेयसमाक्रान्ता सैव तृप्तिः सनातनी ॥ ११ ॥
श्रीपतिं वक्ति देवेशं श्रीः सा तृप्तिरुदीरिता ।

पुनः उसी सकार से श्रीपति नामक (द्र० ५.५३) उन्नीसवें अवतार का कथन—अप्रमेय (अकार) से समाक्रान्त तृप्ति (सकार द्र० १७.२७) सनातनी है जो श्रीपति को कहती है क्योंकि श्री को ही तृप्ति कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

सरेफस्य वकारस्य वराहाख्यषोडशावतारपरत्वम्

अशेषभुवनाधारवराहसमुदायतः ॥ १२ ॥
अशेषभुवनाधारो वराहः परिगीयते ।

रेफ युक्त वकार से वराह नामक सोलहवें अवतार का कथन—अशेषभुवनाधार रेफ (द्र० १७.२५) उससे संयुक्त वराह वकार (द्र० १७२६) शब्द से अशेषभुवनाधार वराहावतार कहा गया हैं ॥ १२-१३ ॥

अकारशिरस्कस्य तस्यैव वकारस्य संज्ञान्तरमुखेन पातालशयनाख्यैकोनचत्वारिंशावतारपरत्वम्

अप्रमेयसमाक्रान्ताद्वरुणादेव चाक्षरात् ॥ १३ ॥
पातालशायी भगवान् देवदेवो निरुच्यते ।

अकार संयुक्त वकार द्वारा संज्ञान्तर से पातालशयन (द्र० ५.२६) नामक उन्नालिसवें अवतार का प्रतिपादन—अप्रमेय (अकार) से संयुक्त वरुण (वकार द्र० १७.२६) अक्षर से पातालशायी भगवान् विष्णु कहे गए हैं ॥ १३-१४ ॥

तकारस्य वागीश्वराख्यत्रयोदशावतारपरत्वम्

स्रग्वाक् प्रोक्ता मुनीन्द्रैः सा सृजती दधती जगत् ॥ १४ ॥
वागीशः स्रग्धरार्णेन द्वितीयेन निरुच्यते ।

तकार द्वारा वागीश्वर नामक (द्र० ५.२१) तेरहवें अवतार का प्रतिपादन—मुनीन्द्रों ने स्रग्धर पद का अर्थ वाणी किया है क्योंकि वही जगत् का सर्जन करती हैं और उसे धारण भी करती है इसलिए उसे धारण करने के कारण स्रग्धर (तकार द्र० १७.१९) वर्ण से वागीश नामक अवतार का प्रतिपादन है ॥ १४-१५ ॥

ओकारस्य त्रिविक्रमाख्यत्रिंशावतारपरत्वम्

यः स देवो बलेर्नेता पृथिवीं त्रिर्विचक्रमे ॥ १५ ॥
हरिर्विक्रमिणा तेन वर्णेन परिगीयते ।

ओकार द्वारा त्रिविक्रम नामक (द्र० ५.५५) तीसवें अवतार का प्रतिपादन—जो भगवान् बलि से पृथ्वी को ग्रहण करने के लिए तीन पद से उसे नापने वाले हैं वह हरिः विक्रमी (ओंकार द्र० ५.१०) वर्ण से कहे गए हैं ॥ १५-१६ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन विश्वरूपाख्याष्टमावतारपरत्वम्

ओतो देवो हि यो विश्वं रूपेण स्वेन दीव्यता ॥ १६ ॥
विश्वरूपः स देवोऽसावोतदेवेन वर्ण्यते ।

उसी ओकार द्वारा दूसरी संज्ञा से विश्वरूप नामक (द्र० ५.५१) आठवें अवतार का

प्रतिपादन—जो देव अपने दिव्य स्वरूप से इस विश्व में ओतप्रोत हैं वही विश्वरूप देव ओतदेव (ओंकार वर्ण द्र० १७.१०) वर्ण से कहा गया है ॥ १६-१७ ॥

तस्यैव मकारशिरस्कस्य संज्ञान्तरमुखेन बडबावक्त्राख्यैकादशावतारपरत्वम्, तदुपपादनञ्च

ओदनेन समाक्रान्तो मर्दनो वर्ण उत्तरः ॥ १७ ॥
वक्त्यौर्वं बडवावक्त्रं देवदेवं जलाशनम् ।

मकार शिरस्क उसी ओकार वर्ण से संज्ञान्तर द्वारा बड़वा वक्त्र नामक (द्र० ५.५१) ग्यारहवें अवतार का कथन—ओदन (ओकार द्र० १७.१०) से समाक्रान्त उसके उत्तर में रहने वाले मर्दन (मकार द्र० १७.२४) वर्ण जल को पीने वाले देवाधिदेव वड़वावक्त्र औंर्व को कहते हैं ॥ १७-१८ ॥

ओदनं जलमुद्दिष्टमोदनस्य प्रसूर्यतः ॥ १८ ॥
जलं मृद्नन् स पानेन देव ओदनमर्दनः ।

औंर्व पद का उपपादन—ओदन पद जल का वाचक है वह जल सबका प्रसू (उत्पन्न करने वाला) है । उस जल को पीकर जो उसका विनाश करता है वही देव ओदन मर्दन (ओकार मकार पद) हैं ॥ १८-१९ ॥

उकारपूर्वकस्य मकारशिरस्कस्य खकारस्य वामनदेहाख्यैकोनत्रिंशावतारपरत्वम्, तदुपपादनञ्च

खर्वदेहो हि यो वर्णः सोद्दामोदयमर्दनः ॥ १९ ॥
वामनं वक्ति सुव्यक्तं याचितारं बलिं भुवम् ।

उकारपूर्वक मकार शिरस्क खकार (मुख) शब्द से वामन देह नामक (द्र० ५.२५) उन्तीसवें अवतार का प्रतिपादन—खर्वदेह (खकार द्र० १७.१२) तथा सोद्दाम उदय मर्दन (मु द्र० १७.२४) से कहा जाने वाला मुख शब्द स्पष्ट रूप से बलि से याचना करने वाले वामनदेह रूप अवतार का प्रतिपादक है ॥ १९-२० ॥

उद्दाममुदयं व्याप्तिं स हि मृद्नाति वामनः ॥ २० ॥

जिन्होंने बलि से याचना की थी उसका उपपादन—उद्दाम, उदय तथा व्याप्ति को कहता है वह वामन उसका विनाश करते है ॥ २० ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन वेदविदाख्यसप्तत्रिंशावतारपरत्वम्

स एव वर्णो वेदात्मा वक्ति वेदविदं हरिम् ।

वही मुख शब्द संज्ञान्तर से 'वेदविद्' नामक तीसवें अवतार को कहता है इसका प्रतिपादन—वही वर्ण वेदात्मा वेदविद् (द्र० ५.५६) हरि को कहता है ॥ २१ ॥

नृसिंहशब्दविवक्षितेषु नवस्ववतारेषु नकारस्य नरनारायणाख्यैकत्रिंशद्वात्रिंशावतारद्वयपरत्वम्

नरो नारायणश्चैव नरनारायणाक्षरात् ॥ २१ ॥

नृसिंह शब्द से विवक्षित नव अवतारों में नकार का नरनारायण नामक (द्र० ५.५५) इकतीसवें एवं बत्तीसवें अवतार का प्रतिपादन करता है—नर नारायण नामक अक्षर (नकार द्र० १७.२१) से नर एवं नारायण दो अवतार कहे गए हैं ।

विमर्श—नृसिंह शब्द के वर्णों के विभाग का क्रम इस प्रकार है—नकार, पुनः नकार, ऋकार, मकार-नकार ऋकार सकार । रूप वर्णचतुष्टय, इकार, पुनः इकार, ङकार, हकार, प्रत्ययावयव मकार इस प्रकार नृसिंह शब्दावयव नव वर्णों से नरनारायणादि अवतार नवक का कथन है ॥ २१ ॥

ऋकारस्य पारिजातहरणाख्यत्रयोविंशावतारपरत्वम्

सत्या यस्य स सत्योऽसौ पारिजातहरो महान् ।
स सत्यार्णेन कथितः सत्यामङ्कस्थितां वहन् ॥ २२ ॥

ऋकार से पारिजातहरण (द्र० ५.५३) नामक तेइसवें अवतार का प्रतिपादन—सत्या (सत्यभामा) के पति सत्य जिन्होंने सत्यभामा को अपनी गोद में लेकर पारिजात का हरण किया था । यहाँ वहीं पारिजात हरण सत्य नामक वर्ण (ऋकार द्र० १७.७) से कहे गए हैं ॥ २२ ॥

मकारनकारऋकारसकाररूपवर्णचतुष्टयसमुदायस्य राहुजिदाख्यैकविंशावतारपरत्वम्

खर्वदेहात् परो यो हि मर्दनः सहितः पथा ।
अङ्कुशस्तत्परः सोम इति वर्णचतुष्टयात् ॥ २३ ॥
सोमस्य चरतो मार्गाद्योऽङ्कुशो राहुरुच्यते ।
तं मर्दयति यो देवो राहुजित् स निरुच्यते ॥ २४ ॥

श्लोक के पूर्वार्ध में आये हुये 'मुखम्' शब्द के खकार के बाद माला मकार, नृसिंह शब्द के नकार, ऋकार तथा सकार इन वर्ण चतुष्टय से प्रतिपादित राहुजित् नामक (द्र० ५.५३) इक्कीसवें अवतार का प्रतिपादन—खर्वदेह (खकार), उससे परे रहने वाला मर्दन (मकार द्र० १७.२४) उसके सहित अङ्कुश वर्ण (ऋकार १७.७), उसके परे जो सोम वर्ण (सकार १७.२७) अर्थात् मकार नकार ऋकार और सकार इन चार वर्णों से चलते हुये चन्द्रमा के मार्ग में आ जाने वाले 'राहु' का जो चक्रधारी देव मर्दन करते हैं वही राहुजित् कहे गए हैं ॥ २३-२४ ॥

इकारस्य परशुरामश्रीरामाख्यपञ्चत्रिंशषट्त्रिंशावतारद्वयपरत्वम्

रामद्वयं समुद्दिष्टं रामवर्णेन नारद ।

इकार से परशुराम एवं श्रीराम नामक (द्र० ५.५६) दो अवतारों का प्रतिपादन—हे नारद ! रामवर्ण (द्र० इकार १७.५) से रामावतार एवं परशुरामावतार दोनों राम का प्रतिपादन है ॥ २५ ॥

ङकारस्य क्रोडात्माख्यदशमावतारपरत्वम्

एकदंष्ट्रेण भगवान् क्रोडात्मा परिगीयते ॥ २५ ॥

ङकार द्वारा क्रोडात्मा नामक (द्र० ५.५१) दशम अवतार का प्रतिपादन—एक दंष्ट्र (ङकार द्र० १७.१४) से क्रोडात्मा नामक भगवान् कहे गए हैं ॥ २५ ॥

हकारस्य विहङ्गमाख्यनवमावतारपरत्वम्

सूर्येण यः सहायाति हंसरूपी जनार्दनः ।
विहङ्गमः स देवेशः सूर्यवर्णेन वर्ण्यते ॥ २६ ॥

'हकार' से विहङ्गम नामक नवें अवतार का कथन—हंस रूपी जनार्दन जो सूर्य (द्र० १७.२८) के साथ चलते हैं वही विहङ्गम देवेश हकार द्वारा कहे गए हैं ॥ २६ ॥

प्रत्ययावयवस्य मकारस्य कल्क्याख्याष्टात्रिंशावतारपरत्वम्

यो मर्दयति कल्क्याख्यो दस्यूंस्तिष्ययुगान्तजान् ।
सूर्योपरिस्थितेनैव मर्दनेन स गीयते ॥ २७ ॥

'नृसिंहम्' शब्द में अम् प्रत्ययावयव मकार से कल्की नामक (द्र० ५.५६) अड़तीसवें अवतार का प्रतिपादन—जो कल्कि अवतार कलियुग के अन्त में उत्पन्न होंगे वे दस्युओं का मर्दन करते हैं, वही सूर्य (हकार द्र० १७.२८) के ऊपर रहने वाले मर्दन (मकार द्र० १७.२४) से वर्णन किया गया है ॥ २७ ॥

भीषणशब्दविवक्षितेषु चतुर्ष्ववतारेषु भकारस्य ध्रुवाख्यद्वितीयावतारपरत्वम्

ध्रुवो देवः समुद्दिष्टो ध्रुवार्णेन महामुने ।

भीषण शब्द से विवक्षित चार अवतारों में भकार से ध्रुव (द्र० ५.५०) नामक द्वितीय अवतार का प्रतिपादन—भीषण पद में वर्ण विभाग इस प्रकार है—भकार, ईकार, षकार और णकार । इन चार वर्णों से क्रमशः ध्रुव, न्यग्रोधशायी नरसिंह एवं मधुसूदन इन चार अवतारों का प्रतिपादन किया गया है— हे महामुने ! ध्रुव अक्षर (भकार द्र० १७.२३) से ध्रुवदेव का प्रतिपादन हैं ॥ २८ ॥

ईकारस्य न्यग्रोधशायिसंज्ञकसप्तविंशावतारपरत्वम्

मायामयं समास्थाय न्यग्रोधदलमुज्ज्वलम् ॥ २८ ॥
यः शेते कान्तरूपेण स मायावर्णवर्णितः ।

ईकार से न्यग्रोधशायी नामक (द्र० ५.५४) सत्ताइसवें अवतार का प्रतिपादन—जो मायामय उज्ज्वल न्यग्रोध पर स्थित हो शयन करते हैं वे न्यग्रोधशायी भगवान् मायावर्ण (ईकार द्र० १७.५) से कहे गए हैं ॥ २८-२९ ॥

षकारस्य नरसिंहाख्यसप्तदशावतारपरत्वम्

नृसिंहो देवदेवस्तु नृसिंहार्णेन वर्ण्यते ॥ २९ ॥

षकार द्वारा नरसिंह नामक (द्र० ५.५२) सत्रहवें अवतार का प्रतिपादन—देवाधिदेव नृसिंह नृसिंह वर्ण (षकार द्र० १७.२७) से प्रतिपादन किये गए हैं ॥ २९ ॥

णकारस्य मधुसूदनाख्यपञ्चमावतारपरत्वम्

मधुं निहत्य यः पूर्वं प्रधानं मर्दनं विधेः ।

स्वबाहुबलमास्थाय विरिञ्चायाभयं ददौ ॥ ३० ॥
देवो ह्यभयदार्णेन स उक्तो मधुसूदनः ।

णकार द्वारा मधुसूदन नामक (द्र० ५.५०) पाँचवें अवतार का प्रतिपादन—जिन्होंने ब्रह्मदेव का मर्दन करने वाले प्रधान मधु नामक दैत्य को मार कर अपने बाहुबल से उन्हें अभयदान दिया वे ही मधुसूदन देव अभयवर्ण (द्र० णकार १७.१९) से कहे गए हैं ॥ ३०-३१ ॥

भद्रशब्दविवक्षितेषु त्रिष्ववतारेषु भकारस्य कपिलाख्य-सप्तमावतारपरत्वम्

सिद्धिं ददाति यो दिव्यां प्रसङ्ख्यानमयीं पराम् ॥ ३१ ॥
देवः सिद्धिप्रदार्णेन कपिलः स निगद्यते ।

भद्रशब्द से विवक्षित तीन अवतारों में भकार द्वारा कपिल नामक (द्र० ५.५१) सातवें अवतार का प्रतिपादन—जो सर्वोत्कृष्ट सांख्यतत्त्व प्रतिपादित तत्त्वों द्वारा सिद्धिप्रदान करते हैं। वही कपिल नामक देव सिद्धि नामक वर्ण (भकार द्र० १७.१९) से कहे गए हैं।

विमर्श—भद्रशब्द में भकार, दकार और रेफ ये तीन वर्ण विभक्त रूप से कहे गए हैं। जिनसे क्रमशः कपिल, दत्तात्रेय और शान्तात्मा नामक तीन विष्णू के अवतार विवक्षित हैं ॥ ३१-३२ ॥

दकारस्य दत्तात्रेयाख्यषड्विंशावतारपरत्वम्

दत्तात्रेयस्तु भगवान् दत्तात्रेयार्णवर्णितः ॥ ३२ ॥

दकार से दत्तात्रेय नामक (द्र० ५.५४) छब्बीसवें अवतार का प्रतिपादन—दत्तात्रेय भगवान्, दत्तात्रेय वर्ण (दकार द्र० १७.२०) से वर्णित है ॥ ३२ ॥

रेफस्य शान्तात्माख्यपञ्चविंशावतारपरत्वम्

दोषकालानलत्वेन तद्वर्णेन स ईर्यते ।

रेफ से शान्तात्मा नामक (द्र० ५.५४) पच्चीसवें अवतार का प्रतिपादन—यतः शान्तात्मा, दोष और काल के लिए अग्नि है अतः अनल शब्द (रेफ द्र० १७.२५) से उन्हीं का प्रतिपादन हैं ॥ ३३ ॥

मृत्युमृत्युशब्दविवक्षितेऽवतारद्वये प्रथममृत्युशब्दस्यैकशृङ्गतनुसंज्ञक-मत्स्यापरपर्यायाऽष्टाविंशावतारपरत्वम्

कालः कालः समुद्दिष्टः प्रधानं प्रकृतिः परा ॥ ३३ ॥
ऋतधामा पुमांस्तत्स्थो वैराजश्च चतुर्गतिः ।
भुवनं च दधद् देहे यः शङ्खो मीन ईर्यते ॥ ३४ ॥
एकशृङ्गतनुर्देवो मृत्युवर्णैः स गद्यते ।

मृत्युमृत्यु शब्द से विवक्षित दो अवतारों में प्रथम मृत्यु शब्द से एक शृङ्गतनु संज्ञक (द्र० ५.५४) अट्ठाइसवें अवतार का प्रतिपादन—काल वर्ण (मकार) से काल कहा गया है और वही प्रधान अर्थात् परा प्रकृति है (द्र० १७.२४)। ऋतधामा (ऋकार द्र० १७.७) पुमान् एवं वैराज (तकार द्र० १७.१९) एवं चतुर्गति (अकार द्र० १७.२४) उसमें स्थित हैं और जो अपने देह में सारे भवन (उकार द्र० १७.६) को धारण किये हुये हैं जिसे शङ्ख या मीन कहते हैं ऐसा एकशृङ्ग तनु देव (=मीनावतार) प्रथम मृत्यु पद से विवक्षित है ॥ ३३-३५ ॥

द्वितीयमृत्युशब्दस्य लोकनाथाख्यचतुर्विंशावतारपरत्वम्

प्रधानः सत्यरूपश्च वैराजो राजयञ्जगत् ॥ ३५ ॥
चतुर्गतिर्देवदेवो लोकनाथो महाप्रभुः ।
मृत्युवर्णसमुद्दिष्टः पूर्वस्माद् भुवनादपि ॥ ३६ ॥
इति वर्णाश्रया रीतिः परा ते सम्प्रदर्शिता ।

द्वितीय मृत्यु शब्द से लोकनाथ नामक (द्र० ५.५४) चौबीसवें अवतार का उपपादन—प्रधान (मकार १७.२४), सत्यरूप (ऋकार द्र० १७.७), वैराज (तकार द्र० १७.१९) चतुर्गति (यकार द्र० १७.२४), जगत् भुवन (उकार द्र० १७.६) इस प्रकार मृत्यु शब्द से महाप्रभु लोकनाथ कहे गए हैं। इस प्रकार की रीति से इस मन्त्र के प्रत्येक वर्णों द्वारा परा रूप अर्थ का उपपादन किया गया ॥ ३५-३७ ॥

अध्यायशेषेण मन्त्रस्य महिमान्तरनिरूपणम्

शृणु मन्त्रस्य माहात्म्यं भूयोऽपि मुनिसत्तम ॥ ३७ ॥
पादशः प्रतिलोमोऽयं वैकुण्ठास्त्रं निगद्यते ।
अक्षरप्रतिलोमोऽयं स्मृतं नारायणास्त्रकम् ॥ ३८ ॥
स्वराणां प्रतिलोमो यः संहिताशब्दरूपवान् ।
नारसिंहमहास्त्रं तन्नखक्रकचसंज्ञितम् ॥ ३९ ॥
प्रमित्यपेतो वरुणः कालपावकसंस्थितः ।
अप्रमेयः पुनस्तादृक् तृतीयाक्षरमीरितम् ॥ ४० ॥
सूक्ष्मस्थः प्रथमः सूक्ष्मः संस्थितः कालपावकः ।
वरुणः सूक्ष्मयोर्द्वन्द्वं सप्तमाक्षरमीरितम् ॥ ४१ ॥
सूक्ष्मस्थो गोपनः पश्चाद्वरुणो भुवनाश्रयः ।
वरजादार इत्येतन्नारसिंहास्त्रमीरितम् ॥ ४२ ॥
नवाक्षरमिदं श्रेष्ठं तत्र यत् प्रतिलोमजम् ।
अस्त्रमक्षरशस्तत्तु नारसिंहं महादिकम् ॥ ४३ ॥
तत्र स्वरप्रातिलोम्यादस्त्रं त्वतिमहादिकम् ।
व्यापकः सामृताधारो गोपनो द्व्यक्षरं तु तत् ॥ ४४ ॥

तत्र स्वरप्रातिलोम्ये गोपनो गोपनः सताम् ।
सर्वत्र प्रातिलोम्येन यद्यदस्त्रमुदीरितम् ।
तत्र तत्रानुलोम्येन तत्तच्छान्तिरुदीरिता ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३६३१ ॥

* * *

अध्याय के शेष श्लोकों से इस मन्त्र की महिमा का वर्णन—अब हे मुनिसत्तम ! आप इस मन्त्र के माहात्म्य को पुनः सुनिए । इसके पदों को विलोम करने से वह वैकुण्ठास्त्र हो जाता है और जब इसके अक्षरों को विलोम कर दिया जाता है तो यह नारायणास्त्र हो जाता है । स्वरों के प्रतिलोम कर देने पर उसकी संहिता से जो शब्दस्वरूप बनता है वह नख एवं क्रकच संज्ञा वाला नारसिंह महास्त्र हो जाता है ॥ ३७-३९ ॥

चार प्रकार वीर, ज्वलन्त, महाविष्णु और सर्वतोमुख इन से रहित कर विलोम करने पर यह मन्त्र कालपावक संज्ञा वाला हो जाता है ॥ ४० ॥

पुनः अप्रमेय तृतीय अक्षर कहा गया है । सूक्ष्मस्थ सूक्ष्म प्रथम कालपावक हैं और वरुण एवं सूक्ष्म का द्वन्द्व सप्तम अक्षर कहा गया है ॥ ४०-४१ ॥

सूक्ष्मस्थ, गोपन के बाद वरुण एवं भुवनाश्रय (वरजादार ?) ये नारसिंहास्त्र कहे गए हैं ॥ ४२ ॥

नव अक्षर का यह श्रेष्ट मन्त्र है । व्यञ्जन से प्रतिलोमाक्षर महादिक आदि मन्त्र नारसिंहास्त्र है । इनमें भी जब स्वर प्रतिलोम मन्त्र होगा तब वह अतिमहादिक नारसिंहास्त्र होगा ॥ ४३-४४ ॥

व्यापक, अमृताधार, गोपन ये दो अक्षर हैं । इनका स्वर प्रतिलोम गोपन एवं गोपन है । अतः सर्वत्र जहाँ भी प्रतिलोम करके अस्त्र कहे गए हैं वहीं उनका अनुलोम करके प्रयोग करने से उनकी शान्ति कही गई है ॥ ४४-४५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपण नामक छप्पनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५६ ॥

* * *

अथ सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापों को नष्ट करता है । उस सुदर्शन के दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ ।

प्रथमं गायत्र्यर्थप्रपञ्चने तच्छब्दस्य भगवत्सकल्परूपसुदर्शनपरत्वनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

यत्तु ज्योतिस्त्रयं पूर्वं ज्योतिश्चक्रे निदर्शितम् ।
सावित्रं नाम यज्ज्योतिस्तत् सावित्रीसमाह्वयम् ॥ १ ॥
तस्य व्याख्यामिमां सम्यग् गदतो मे निशामय ।
सङ्कल्पः कथितो यः स सुदर्शनसमाह्वयः ॥ २ ॥
या सा भूतिर्महाशक्तेर्वैष्णव्याः कोटिभागजा ।
शुद्धाशुद्धमयैर्भावैस्तनुते विस्तृणाति ताम् ॥ ३ ॥
प्रतिसञ्चरवेलायां तामयत्येव तां पुनः ।
तायते तत्र तत्रैव भूत्यंशे धारकात्मना ॥ ४ ॥
प्रमाणत्वेन भूयश्च तत्तदर्थतया पुनः ।
अतस्तदिति सङ्कल्पः प्रोच्यते वैष्णवः परः ॥ ५ ॥

सर्वप्रथम गायत्री के अर्थ निरूपण के प्रसङ्ग में तच्छब्द का भगवत्सङ्कल्प रूप सुदर्शन परत्व अर्थ निरूपण करते हैं । अहिर्बुध्न्य नामक रुद्र ने कहा—पूर्वाध्याय में (२३.४४-६९) ज्योतिश्चक्र के निरूपण के प्रसङ्ग में तीन ज्योति का निर्देश किया गया है । उसमें सावित्री नामक सावित्र ज्योति का सर्वप्रथम वर्णन किया गया है । अब मेरे द्वारा कही गई उसकी व्याख्या, हे नारद ! आप सुनिए । वह ज्योति सुदर्शन नामक विष्णु का सङ्कल्प कहा जाता है । जो विष्णु पत्नी महाशक्ति की करोड़ोंहवें अंश से उत्पन्न भूति कही जाती है । वह महाशक्ति अपने शुद्धाशुद्धमय भावों से उस सावित्री रूप ज्योति का विस्तार

करती हैं। (अय् गतौं, ताय् पालने, सन्तौंध) पुनः प्रतिसञ्चार वेला में उसे अपने में मिला लेती हैं। फिर प्रयोजन वशात् उसे धारण कर पालन करती एवं बढ़ाती है इसीलिए उसे वैष्णव संकल्प कहा जाता है ॥ १-५ ॥

सवितृशब्दस्य जगत्कारणत्वभोगमोक्षप्रदत्वादिगुणविशिष्टपरमपुरुषपरत्वम्

प्रसौति सकलाश्चेष्टाः प्रसूते सकलं जगत्।
अवतेर्गतिकान्त्यर्थात् तरतेर्दानकर्मणः ॥ ६ ॥
गतो ह्यवति सर्वत्र षड्भिः कान्तो गुणैः परः।
भोगापवर्गयोर्दाता सवितेति निरुच्यते ॥ ७ ॥

अब सवितुः में सवित्र शब्द का जगत्कारणत्व, भोग एवं मोक्ष (पुञ प्रस-वैश्ययोः प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम्) प्रदत्त्वादि गुण विशिष्ट परम पुरुष परमात्म स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं—स् जो प्राणियों की सारी चेष्टाओं को जानता है तथा सारे जगत् को उत्पन्न करता है। अव् धातु का अर्थ गति एवं कान्ति है। तृ धातु का अर्थ दान देना है। इसलिए जो सर्वत्र गमन करे तथा छओं गुणों से जो (द्र० २.५५-६२) सुन्दर हो, यह अवि शब्द का अर्थ हुआ। इस प्रकार भोग एवं मोक्ष के दाता सविता की निरुक्ति कही गई ॥ ६-७ ॥

वरेण्यशब्दस्योपास्यत्वपरत्वम्

वरैर्नेयं वरेण्यं तु वराः ख्यातार ईरिताः।
वरणीयं वरेण्यं वा वरं नयति तत्परम् ॥ ८ ॥

अब वरेण्य शब्द का सर्वोपास्यत्व रूप अर्थ वर्णन करते हैं—जो वर अर्थात् श्रेष्ठ लोगों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। लोक में विख्यात लोग वर कहे जाते हैं। इसलिए जो वरणीय है वही वरेण्य कहा जाता है अथवा जो सज्जनों को तत्पद की ओर आकृष्ट करता है वह वरेण्य है ॥ ८ ॥

भर्गःशब्दस्य तच्छब्दविवक्षितसुदर्शनगुणविशेषपरत्वम्

भर्गस्तेजः समाख्यातं प्रभावः कर्तृरूपता।
भरतीदं जगत् कृत्स्नं सम्भरत्यपि चेश्वरान् ॥ ९ ॥
रमयत्यपि तत् सर्वं राति चार्थमभीप्सितम्।
गमयत्यपि तन्नाशं स्यति बन्धमशेषतः ॥ १० ॥
भर्जयत्यखिलं कष्टं भ्रस्जतेऽनेहसं तथा।
अतो भर्गः परं विष्णोः सङ्कल्पं विदुरद्भुतम् ॥ ११ ॥

अब भर्ग शब्द का तच्छब्द विवक्षित सुदर्शनगुण विशेष परत्व रूप अर्थ का प्रतिपादन करते हैं—'भर्ग' तेज, को कहते हैं और प्रभाव को कर्त्तृरूपता कहते हैं। भ शब्द का अर्थ है जो सारे संसार का पोषण करे और वह ईश्वर जो लोगों को परिपूर्ण करे। र् शब्द का अर्थ है जो सबको रमण करावे अर्थात् अभीष्ट अर्थ प्रदान करे। ग् शब्द का अर्थ हैं जो सबको नष्ट करे और सबके बन्धनों को काट देवे। समुदित भर्ग शब्द का अर्थ है जो

सबके कष्टों को भ्रष्ट अर्थात् विनष्ट करे और जो दिन को प्रकाशित करे । इसलिए विष्णु के अद्भुत सङ्कल्प को भर्ग कहा जाता है ॥ ९-११ ॥

देवशब्दस्य द्योतनत्वादिगुणविशिष्टपरमात्मपरत्वम्

द्योतनः सर्वभावानां द्योतमानः स्वयं सदा ।
अज्ञानमखिलं चान्यच्छोधयत्यखिलं जगत् ॥ १२ ॥
अतः सकलमेवेदं तत्रौतं मणिसूत्रवत् ।
इत ईरण ईड्यश्च वनितः सकलं वियत् ॥ १३ ॥
देव इत्युदितो विष्णुः परमात्मा सनातनः ।

देव शब्द का द्योतनत्वादि विशिष्ट परमात्मपरत्व अर्थ का निरूपण—जो सारे पदार्थों को प्रकाशित करे । स्वयं सर्वदा प्रकाशमान रहे । सारे संसार के अज्ञान को एवं सारे संसार को शुद्ध करे । यह सारी सृष्टि मणिसूत्र के समान जिसमें अनुस्यूत हो । इन् (इण् गतौ) जो सर्वत्र व्याप्त हो (ईर कम्पने प्रेरणे च) जो सबका प्रेरक हो । सबसे ईडय (पूज्य) हो । जो सारा (वन् शब्दे) आकाशमण्डल शब्दायमान करता हो, प्रविभक्त करता हो । इस प्रकार परमात्मा सनातन विष्णु को देव (= प्रकाशक) कहा जाता है ॥ १२-१४॥

धीमहीत्यस्योपासनात्मकज्ञानविशेषपरत्वम्

धीमहीत्यत्र धीर्ज्ञानं मननं भावनं तथा ॥ १४ ॥

अब 'धीमहि' शब्द का उपासनात्मक ज्ञानविशेषपरत्वरूप अर्थ कहते है—'धीमहि' शब्द में धी का अर्थ ज्ञान, मनन तथा भावना है ॥ १४ ॥

तृतीयपादार्थनिरूपणपूर्वकं गायत्र्याः सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

धियो धीपूर्विकाश्चेष्टाः प्रेरणं तु प्रचोदनम् ।
यः सर्वशक्तिः सविता देवः संविन्मयश्च यः ॥ १५ ॥
यश्च सर्वविदीशानो धियस्तास्ताः प्रचोदयात् ।
सृष्टिस्थितिलयत्राणक्रियाकारणमव्ययम् ॥ १६ ॥
तस्य देवस्य सङ्कल्पं भर्गःसंज्ञमुपास्महे ।
गायन्तं त्रायमाणाया गायत्र्या अर्थ ईदृशः ॥ १७ ॥

अब गायत्री के तृतीय पाद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का अर्थ निरूपण कर सम्पूर्ण गायत्री का मन्त्र का अर्थ निरूपण करते हैं—धियो का अर्थ धी पूर्वक चेष्टा करना है । 'प्रचोदयात्' का अर्थ प्रेरित करना है । जो सर्वशक्ति सम्पन्न सवितादेव हैं एवं जो ज्ञान स्वरूप हैं । जो सर्वज्ञ एवं सबके ईश्वर हैं वे हमारी उन-उन बुद्धियों को (अच्छे कार्य की ओर) प्रेरित करे । सृष्टि की स्थिति, प्रलय एवं त्राण रूप क्रिया के जो अविनाशी कारण हैं । उन देव के सङ्कल्प को जिसे भर्ग कहा जाता है उसकी हमलोग उपासना करते हैं वह गायत्री स्तुति गान करने वाले की रक्षा करती है । इस प्रकार यह गायत्री का अर्थ हुआ ॥ १५-१७ ॥

संक्षेपतो गायत्रीमहिमवर्णनम्

सन्ध्ययोरुभयोर्युक्तो ब्राह्मण्यं लभते परम् ।
बहिः सहस्रमभ्यस्ता माससमात्रेण साधिनः ॥ १८ ॥
त्रायते महतः पापात् सर्वस्मादपि चांहसः ।
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥ १९ ॥
त्रिपदा चेयमित्येतत् त्रितयं पावनं परम् ।

संक्षेप मे गायत्री की महिमा का वर्णन—जो दोनों सन्ध्या काल में गायत्री की उपासना करता है वह ब्राह्मण्य को प्राप्त करता है । एक महीने पर्यन्त गाँव के बाहर एक सहस्र बार निरन्तर प्रति दिन जप करने वाले ॐकार पूर्वक अव्यय तीन महाव्याहृतियों (ॐभूर्भुवःसुवः) से युक्त त्रिपदा गायत्री कही गई है क्योंकि इसके तीनों पाद अत्यन्त पवित्र हैं ॥ १८-२० ॥

व्याहृतित्रयस्वरूपनिरूपणपूर्वकं संग्रहेण तदर्थप्रकाशनम्

या सत्ता सर्वभूतानां विष्णुशक्तिः परावरा ॥ २० ॥
सा भूरिति समाख्याता भवतीदं जगत् स्वयम् ।
भूत्वशक्तिं समास्थाय यावतीदं जगत् स्वयम् ॥ २१ ॥
सा भुवः कथिता सद्भिरवन्ती भावितं जगत् ।
वसीयो भोगमोक्षाख्यं सूते या सततं सताम् ॥ २२ ॥
सा सुवः कथिता सद्भिर्व्याहृतिर्वाङ्मयी ततः ।

व्याहृतियों के स्वरूप का निर्णय करते हुये उनका एक-एक रूप में अर्थ प्रकाशन—जो सभी प्राणियों की सत्ता है और जो सर्वोत्कृष्ट विष्णु शक्ति है उसे 'भू' कहते हैं । यह भू जगत् अपने आप उत्पन्न होता है । भूत्व शक्ति आश्रय लेकर यह जगत् स्वयं जितना है उसे सज्जनों ने 'भुवः' कहा है क्योंकि वह जो भावी जगत् की रक्षा करती है । 'वसीय' का अर्थ है भोग और मोक्ष । जो सज्जनों के लिए उस भोग एवं मोक्ष को उत्पन्न करे उसे सज्जनों ने 'सुवः' कहा है । इसीलिए उसे वाङ्मयी व्याहृति कहा गया है ॥ २०-२३ ॥

गायत्रीमन्त्रनिगूढानां ब्रह्मशिरःप्रभृतीनामस्त्राणां दिङ्मात्रप्रदर्शनम्

पादशो ब्रह्मदण्डास्त्रं प्रतिलोमस्तदित्यृचः ॥ २३ ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम पदशः परिगीयते ।
वर्णशो ब्राह्ममस्त्रं स्यात् तत्स्वरप्रतिलोमजम् ॥ २४ ॥
सुब्रह्मास्त्रमिति प्रोक्तं सर्वास्त्रविनिबर्हणम् ।

गायत्री मन्त्र में दिये हुये 'ब्रह्मशिर' प्रभृति अस्त्रों का दिङ्मात्र प्रदर्शन—'तदादि तीन ऋचाओं के पाद को प्रतिलोम कर (उलटा) उच्चारण करने से ब्रह्मदण्डास्त्र होता है । गायत्री मन्त्र में आये हुये प्रत्येक पदों को प्रतिलोमपूर्वक उच्चारण करने से ब्रह्मशिर नामक

अस्त्र होता है । स्वरों को प्रतिलोम कर उच्चारण करने से सुब्रह्मास्त्र कहा जाता है, जो सभी प्रकार के अस्त्रों का संहार कर्ता है ॥ २३-२५ ॥

आनन्दो वरुणस्तद्वान्वरुणः स चतुर्गतिः ॥ २५ ॥
साप्रमेयस्तृतीयः स्याच्छङ्खस्थो व्यापकस्तथा ।
सानन्दो वरुणश्चैव साप्रमेयश्चतुर्गतिः ॥ २६ ॥
शङ्खद्वयं सदा देवमस्त्रं सप्ताक्षरं परम् ।
अतिब्राह्मं समुद्दिष्टमस्य स्वरविलोमजम् ॥ २७ ॥
आनन्दः केवलस्तत्तु दिव्यमेकाक्षरं स्मृतम् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्या इयती दर्शिता भिदा ॥ २८ ॥

आनन्द आकार (द्र० १७.४) और वरुण वकार (द्र० १७.२६) तद्वान् वो वरुण वकार (द्र० १७.२६) स चतुर्गतिः यकार से युक्त (द्र० १७.२४) और साप्रमेय अकार से युक्त (द्र० १७.४) य्व शङ्खस्थ मकार (द्र० १७.२४) वरुण वकार (द्र० १७.४) इस प्रकार य सानन्द आकारयुक्त (द्र० १७.४) वरुण वकार (द्र० १७.२६) वा साप्रमेय अकार से युक्त (द्र० १७.४) चतुर्गतिः (यकार द्र० १७.२४) य और दो शङ्ख य और य, इस प्रकार सात अक्षर का देवास्त्र हैं । केवल आनन्द आकार तो दिव्य एकाक्षर मन्त्र है । इस प्रकार तदित्यादि सावित्री ऋचा का भेदपूर्वक प्रतिपादन किया गया ॥ २५-२८ ॥

'जातवेदसे' इति त्रिष्टुभोऽर्थनिरूपणे जातवेदःशब्दस्य सोमशब्दस्य चार्थवर्णनम्

जातवेदस इत्यस्यास्त्रिष्टुभोऽर्थं निशामय ।
जातजातं हि यो वेत्ति भूते भूतेऽखिलं सदा ॥ २९ ॥
जातं स्वभावसंसिद्धं विज्ञानं तस्य सर्वदा ।
वेदः सत्ता महाशक्तिरानन्दस्पन्दलक्षणा ॥ ३० ॥
प्रादुर्भूता सदा यस्य सा देवी जगतां गतिः ।
वेदो विचारणं प्रोक्तं विचारो विविधा क्रिया ॥ ३१ ॥
प्रादुर्भूता क्रिया यस्य विष्णोः सा सर्वकर्तृता ।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च सर्वकृत् पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥
जातवेदाः समुद्दिष्ट आत्मा सोमः समीरितः ।
स ह्यविद्यावशात् सर्वयोनिस्थः सूयते सदा ॥ ३३ ॥

'जातवेदस' इस त्रिष्टुभ छन्द वाले मन्त्र के निरूपण में 'जातवेद' शब्द का तथा सोम शब्द का अर्थ वर्णन—'जातवेदस' इस त्रिष्टुभ छन्द वाले मन्त्र का अर्थ सुनिए । जो प्राणियों के हृदय में उत्पन्न होने वाले विचारों को भली प्रकार से जानता है जिसका इस प्रकार विज्ञान स्वभाव सिद्ध है उसे जात कहते हैं और वेद का अर्थ सत्ता है । महाशक्ति आनन्द और स्पन्द उसके लक्षण हैं । वह सत्तात्मिका जगत् को गति प्रदान करने वाली

देवी जिससे प्रादुर्भूत है। वही वेद है जिसको विचार कहते हैं। अनेक प्रकार की क्रिया को विचार कहते हैं। ऐसी क्रिया जिस विष्णु से प्रादुर्भूत है वही सव की कर्त्री है। भगवान् पुरुषोत्तम ही एक मात्र सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सब के कर्त्ता हैं। उन्हीं को 'जातवेदा:' कहा जाता है। सोम शब्द का अर्थ आत्मा कहा गया है। वही सोम रूप आत्मा अविद्या के वश में होकर सभी योनियों में सर्वदा पैदा होता रहता है॥ २९-३३॥

सुनवामेति पदस्य बद्धात्मनि भगवच्छेषत्वयोग्यतापादनपरत्वम्

योग्यतापादनं तस्य प्रोच्यतेऽत्र सुनोतिना।

'सुनवाम' इस पद से माया युक्त जीव में भगवच्छेषत्व की योग्यता है। अर्थात् वह भगवत्स्वरूप हो सकता है—इस प्रकार यहाँ सुनोति पद से जीव में भगवत्स्वरूप के प्राप्ति की योग्यता कही गई॥ ३४॥

योग्यतापादनस्य प्रकृत्यात्मविवेकरूपतां वक्तुं विवक्षितार्थस्य सोमपदगम्ये दृष्टान्ते शिक्षणम्

पृथक्कारो हि सोमस्य स्वरसस्य सुनोतिजः॥ ३४॥
रसीभूतेन सोमेन यागः कर्तुं स शक्यते।
उपमागर्भ एवायं वाक्यार्थः पूर्वपादजः॥ ३५॥

जिस प्रकार सोम का रस सोम से अलग किया जाता है वही सुनोतिजः शब्द का अर्थ है—जिस प्रकार सोम से रस निकालने पर उस रस से यज्ञ करना सम्भव हैं। इसी प्रकार के उपमागर्भ द्वारा यह वाक्यार्थ कहा गया है। इस प्रकार पूर्व पाद का अर्थ मात्र इतना ही है॥ ३४-३५॥

दृष्टान्ते शिक्षितस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम्

सोमं यथाभिषुण्वन्ति ह्यध्वरे जातवेदसे।
दित्समानस्तथात्मानमृषिः स्वं परमात्मने॥ ३६॥
देहेन्द्रियमनः प्राणधीगुणेभ्यः स्वरूपतः।
विविनक्ति प्रसङ्ख्यानैः साम्यवैषम्यहेतुजैः॥ ३७॥

दृष्टान्त में कहे गए अर्थ को दाष्टान्तिक में उपपादन करते हैं—जिस प्रकार यज्ञ में जातवेदा (अग्नि) के लिए सोम की आहुति देते हैं। इसी प्रकार ऋषि भी परमात्मा के लिए देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि, गुण एवं स्वरूप से अपनी आत्मा उसे प्रदान कर देवे और साम्य वैषम्य हेतुओं से उत्पन्न होने वाले प्रसङ्ख्यानों से अपने को दूर रखे॥ ३६-३७॥

यथोक्तात्महविर्याजिनः स्वेन रूपेणाभिनिष्पत्तिरूपो गुणाष्टकाविर्भावः फलम्

एवं विविच्य दत्त्वास्मै स्वात्मानं जातवेदसे।
तत्स्थः स तन्मना भूत्वा स्वेनाथो संविवित्सते॥ ३८॥

इस प्रकार की हवि से यज्ञ करने वाले याज्ञिक अपने रूप से अभिनिष्पत्तिरूप गुणाष्टकाविर्भाव फल प्राप्त करते हैं—ऐसी विवेचना कर जब ऋषि जातवेदा: स्वरूप परमात्मा को अपनी सोम रूप आत्मा प्रदान कर देता है । तब वह परमात्मा में स्थित हो जाता है और तन्मना होकर स्वयं उसको जानने की इच्छा करता है ॥ ३८ ॥

भङ्ग्यन्तरेण नमःशब्दार्थस्यैवात्र प्रथमपादे विवक्षितत्वसूचनम्

नमःशब्दार्थ एवायं प्रकारान्तरदर्शितः ।

इस मन्त्र के प्रथम पाद में भङ्ग्यन्तर से नमः शब्द का ही विवक्षित्व प्रदर्शन—प्रकारान्तर से नमः शब्दार्थ ही इस मन्त्र का विवक्षित अर्थ है ॥ ३९ ॥

द्वितीयपादेन परमपुरुषस्य स्वप्राप्तिप्रतिबन्धकप्रकृतिसम्बन्ध-रूपबन्धनिवर्तकत्वप्रदर्शनम्

अर्थं द्वितीयपादस्य प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ ३९ ॥
अरातीयान् स तु प्रोक्तो यो ह्यरातिवदाचरेत् ।
स च बन्धः समाख्यातो मिथ्याज्ञाननिबन्धनः ॥ ४० ॥
तस्य वेदः स्मृता सत्ता गुणासक्तिरनादिका ।
स्वीकर्तुं स सुतं सोमं जातवेदाः सनातनः ॥ ४१ ॥
तत्प्रतिद्वन्द्विनीं बन्धसत्तां निदहतु स्वयम् ।

मन्त्र के द्वितीय पाद से परम पुरुष को अपने द्वारा प्राप्त होने में प्रतिबन्धक प्रकृति सम्बन्धरूप बन्ध का निवर्त्तकत्व प्रदर्शन—अब इस मन्त्र के द्वितीय पाद का अर्थ मैं कह रहा हूँ उसे सुनिए—अरातीयान् उसे कहते हैं जो अराति (शत्रु) के समान आचरण करे । ऐसा शत्रु मिथ्याज्ञान से बँधा हुआ माया का बन्धन ही है । उस माया बन्धन का अनादि काल से गुणासक्ति रूप सत्ता ही वेद कहा जाता है । इसलिए वह सनातन जातवेदा: (अग्नि) सोम सुत् रूप सत्ता को स्वीकार करने के लिए उसकी प्रतिद्वन्द्विनी बन्ध सत्ता को स्वयं जला दे ॥ ३९-४२ ॥

उत्तरार्धे सदृष्टान्तं पूर्वोक्तार्थोपपादनम्

बद्ध्वा स नितरां सत्तां गुणसङ्गस्वरूपिणीम् ॥ ४२ ॥
हेयतत्त्वानि दुर्गाणि पारयत्यखिलानि नः ।

उत्तरार्ध में दृष्टान्तपूर्वक पूर्वोक्त अर्थ का उपपादन करते हैं—वह अग्नि रूप परमात्मा गुणसङ्ग स्वरूपिणी उस सत्ता को बाँधकर समस्त हेय तत्त्व रूप एवं समस्त पापों के दुर्ग से हमें पार कर देवे ॥ ४२-४३ ॥

उत्तरार्धगतस्याग्निशब्दस्य परमपुरुषपरत्वसमर्थनम्

जातवेदाः स चात्रापि ह्यग्निशब्देन वर्ण्यते ॥ ४३ ॥

उत्तरार्ध में आये हुये अग्नि शब्द का परमपुरुषपरत्व रूप अर्थ का निरूपण—

यहाँ पर ऋचा के उत्तरार्ध में आये अग्नि शब्द से जातवेदा का ही वर्णन किया गया है ॥ ४३ ॥

अङ्गीकारं समीपं स्वमागतं निखिलं जगत् ।
नयत्यात्मानमित्येवमग्निशब्दो निरुच्यते ॥ ४४ ॥
स्वात्मोपसर्पिणं जीवं नेताग्निः स्वं परं पदम् ।
जातवेदाः स दुर्गाणि पारयत्यखिलानि नः ॥ ४५ ॥

अग्नि शब्द में 'अ' शब्द का निर्वचन—अपने समीप में आये अखिल जगत् को अङ्गीकार करना यह अ शब्द का अर्थ है और जो अपने को उसके पास पहुँचावे । यही अग्नि शब्द का निर्वचन है ॥ ४४ ॥

अब उपर्युक्त शब्द का अर्थ इस प्रकार होगा नेता अग्नि अपने पास में आने वाले जीव को स्वयं परं पद तक पहुँचा देते हैं । ऐसे वह जातवेदा अग्नि हम लोगों को दुर्गति रूप दुःख से पार कर देवें ॥ ४५ ॥

दृष्टान्तपरस्य चतुर्थपादस्य वाक्यार्थवर्णनम्

अत्र नावेति दृष्टान्तः सिन्धुर्नाम महोदधिः ।
तं यथा नाविको नावा नौस्थितं पारयेन्नरम् ॥ ४६ ॥
दुरितादिपदद्वन्द्वात् पारणे दुरितात्ययः ।
दुरितं गदितं दौःस्थ्यं वातवर्षादिसम्भवम् ॥ ४७ ॥
अतीत्यतीत्य दुरिता दुरितानीति वर्ण्यते ।
दुरितं वातवर्षाद्यं परिहृत्य यथाखिलम् ॥ ४८ ॥

अब दृष्टान्त परक मन्त्र के चतुर्थपाद के वाक्यार्थ का निरूपण करते हैं—यहाँ पर नाव का दृष्टान्त है । सिन्धु को महोदधि कहते हैं । जिस प्रकार उस समुद्र से नाविक नाव पर बैठे हुये आदमी को पार कर देता है । दुरितादि पदों के द्वन्द्व से यहाँ वात वर्षादिजन्य दुःस्थिति को दुरित कहा जाता है । एक दुःख के बीत जाने पर दूसरे तीसरे इत्यादि दुःस्थिति को दुरितानि इस बहुवचन द्वारा प्रतिपादित किया गया है ॥ ४६-४८ ॥

तस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम्

नाविकः पारयेन्नावा सागरं नौस्थितं नरम् ।
एवं स भगवानग्निर्जातवेदा हरिः स्वयम् ॥ ४९ ॥
दुरितं क्लेशसङ्घातमपवर्गविघातकम् ।
सर्वं परिहरन् दुर्गं पारयेत् तत्त्वपद्धतिम् ॥ ५० ॥

अब इसी अर्थ को दार्ष्टान्तिक में उपपादन करते हैं—जिस प्रकार नाविक नाव पर स्थित हुए मनुष्य को वात वर्षादि रूप समस्त उपद्रवों से बचा कर समुद्र से पार कर देता है उसी प्रकार जातवेदा स्वयं भगवान् विष्णु अपवर्ग (मोक्ष) में विघातक दुरित

(क्लेश समूह) से बचाते हुये हमें आवागमन रूप दुर्ग (क्लेश) से सीधे-सीधे पार कर देवें ॥ ४९-५० ॥

अत्र नावेति दृष्टान्तादुपायस्थानमेव तु ।
नरेण कृत्यमन्यनु नाविकस्येव तद्धरेः ॥ ५१ ॥

यहाँ नावा इस दृष्टान्त के द्वारा मन्त्र में सूचित किया गया है कि पार जाने वाले मनुष्य को मात्र उपाय ही करना चाहिए । शेष स्वयं श्रीहरि नाविक की तरह आपत्ति से बचा लेंगे ॥ ५१ ॥

अस्मिन् मन्त्रे निगूढानां पावकाद्यस्त्राणां संक्षेपतः स्वरूपसूचनम्

पादशः प्रतिलोमः स पावकास्त्रं निगद्यते ।
पादशो जातवेदःस्थमाग्नेयं वर्णशस्तु तत् ॥ ५२ ॥
स्वरशः प्रतिलोमोऽयमत्याग्नेयं निगद्यते ।
चतुर्गतिः साप्रमेयः सोदयोऽथ चतुर्गतिः ॥ ५३ ॥
सूक्ष्मद्वयं साप्रमेयं साप्रमेयश्चतुर्गतिः ।
चतुर्गतिः साप्रमेयो वराहः शङ्ख एव च ॥ ५४ ॥
अप्रमेयश्च पिण्डस्थं त्रयमेकीकृतं स्मरेत् ।
चतुर्गतिः साप्रमेयः सादिदेवश्चतुर्गतिः ॥ ५५ ॥
उत्तरार्धविलोमोऽयमथ पूर्वार्धजं शृणु ।

इस मन्त्र में छिपे हुये पावकादि अस्त्रों का संक्षेप में वर्णन—इस मन्त्र के पाद का विलोम किये जाने पर पावकास्त्र हो जाता है । जातवेदस्थ पदों का विलोम करने से, अथवा वर्णों का विलोम करने से आग्नेयास्त्र हो जाता है । स्वरों का प्रतिलोम करने से वही अत्याग्नेय हो जाता है । चतुर्गति यकार (द्र० १७.२४) साप्रमेय अकार के सहित (१७.४५), इस प्रकार य, सादय उकार के सहित (द्र० १७.६) साप्रमेयम् अकार के संहित (द्र० १७.४) य्य, साप्रमेय अकार के सहित (द्र० १७.४) य । चतुर्गति यकार (द्र० १७.२४) साप्रमेय अकार के सहित (द्र० १७.४) य, वराह व (द्र० १७.२६) शङ्ख यकार (द्र० १७.२४) पिण्डस्थ अप्रमेय अकार इस प्रकार वय और अ को अर्थात् तीनों को एकाकार कर देने से व्यय हुआ । चतुर्गति यकार साप्रमेय अकार के सहित य, सादिदेव (आकार) के सहित (द्र० १७.४) इस प्रकार या । इतना तो उत्तरार्ध का विलोम हुआ । अब पूर्वार्ध का विलोम सुनिए ॥ ५२-५५ ॥

आनन्दः केवलः सूक्ष्मद्वययुक् चाप्रमेयतः ॥ ५६ ॥
चतुर्गतिः साप्रमेयो वराहः शङ्ख एव च ।
अप्रमेयश्च पिण्डस्थं त्रयमेकीकृतं स्मरेत् ॥ ५७ ॥
चतुर्गतिः सादिदेवः सानन्दो वरुणस्तथा ।
चतुर्गतिः सादिदेव इति पूर्वार्धजा स्थितिः ॥ ५८ ॥

हनद्वयं वर्म सास्त्रमग्निजाया तथान्ततः ।
स्वरशः प्रतिलोमोऽयं स्मृतं पञ्चदशाक्षरम् ॥ ५९ ॥
हनाद्यष्टाक्षरं चान्ते यः स्वरः प्रतिलोमजः ।
त्र्यक्षरः स तु विज्ञेयो द्विवर्णश्चोर्ध्वभाग्भवेत् ॥ ६० ॥
एकार्णश्चैव पूर्वार्धे तयो रूपे पुनः शृणु ।
अप्रमेयोऽथ सानन्दो वरुणो द्व्यक्षरो मनुः ॥ ६१ ॥
आनन्द एकः पूर्वार्धे संहत्या यत् त्रिवर्णकम् ।
तस्यापि प्रतिलोमोऽयमानन्दः केवलः स्मृतः ॥ ६२ ॥
प्रतिलोमाविमौ सर्वशान्तिस्वस्त्ययनात्मकौ ।
इत्येषा त्रिष्टुभो रीतिर्लेशतस्ते निदर्शिता ॥ ६३ ॥

पूर्वार्ध का विलोम—चतुर्गति (य), साप्रमेय अकार के सहित (य), वराह (व), शङ्ख (य), अप्रमेय (अ) तीनों का एकीकृत पिण्ड (व्य), चतुर्गति य, सादिदेव आकार के सहित (या), आनन्द के साथ वरुण व (वा), चतुर्गति (यकार), आदिदेव (आकार) के साथ या इस प्रकार पूर्वार्ध का विलोम हुआ ॥ ५६-५८ ॥

हन द्रयम्, दो बार हन हन, सास्त्रं वर्म हुं फट्, अन्त में अग्निजाया (स्वाहा) । इस प्रकार स्वर के अनुसार किया गया यह प्रतिलोम १५ अक्षरों का हुआ । जिसके अन्त में हन आदि आठ अक्षर लगाये गए हों ऐसा प्रतिलोमज स्वर तीन अक्षरों का जानना चाहिए । दो वर्ण वाला प्रतिलोम तो ऊर्ध्वभाग् होता है । पूर्वार्ध में एक अक्षर का ही विलोम है—अब उनके रूपों को पुनः सुनिए । अप्रमेय (अकार), आनन्द (आकार) के साथ वरुण (वा) यह दो अक्षर का मन्त्र है । पूर्वार्ध में एक मात्र आनन्द (आ) यह एकाक्षर है । पूर्वोक्त दोनों अक्षर वाले मन्त्र को और एक अक्षर वाले मन्त्र को जोड़ देने से यह मन्त्र तीन वर्ण का हो जाता है । इसका भी प्रतिलोम केवल आनन्द (आकार) ही कहा गया है । ये दोनों प्रकार के प्रतिलोम मन्त्र सब प्रकार की शान्ति तथा सब प्रकार का कल्याण करने वाले हैं । इस प्रकार 'जातवेदसे' इत्यादि त्रिष्टुभ मन्त्र की विधि लेश मात्र प्रदर्शित की गई ॥ ५९-६३ ॥

'त्रियम्बकम्' इत्यनुष्टुभोऽथर्वणनि त्रियम्बकशब्दस्य ज्ञानशक्तिक्रियान्वितपरमपुरुषपरत्वकथनम्

अधुनानुष्टुभो रीतिं शृणु त्वं पावनीं पराम् ।
इच्छा ज्ञप्तिः क्रिया चेति तिस्रो लोकस्य मातरः ॥ ६४ ॥
तिस्रस्तु यस्य विद्यन्ते जगद्धाविन्य ऊर्जिताः ।
त्र्यम्बकः स तु विज्ञेयो ज्ञानशक्तिक्रियान्वितः ॥ ६५ ॥

'त्रियम्बकम्' इस अनुष्टुप् के अर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में त्रियम्बक शब्द का ज्ञान, शक्ति एवं क्रिया से अन्वित परमपुरुषत्व का प्रदर्शन—अब अनुष्टुप् मन्त्र की परम पावनी रीति को आप मुझसे सुनिए । इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया ये तीन लोक की मातायें हैं ।

जिसके पास जगत् को उत्पन्न करने वाली अत्यन्त ओजस्विनी ये तीन महाशक्तियाँ हैं, ऐसा ज्ञान, शक्ति एवं क्रिया से युक्त परमात्मा 'त्र्यम्बक' पद से वाच्य है ॥ ६४-६५ ॥

यजामहे इति पदार्थनिरूपणम्

यजतिर्द्रव्यसंत्यागः काञ्चिदुद्दिश्य देवताम् ।

'यजामहे' इस पद के अर्थ का निरूपण—किसी देवता को उद्देश्य कर द्रव्य को त्याग करना यही 'यजति' पद का अर्थ है ॥ ६६ ॥

सुगन्धिशब्दार्थनिरूपणम्

शोभनो यस्य गन्धोऽस्ति स सुगन्धिरितीर्यते ॥ ६६ ॥
शोभनं सूचयन् सर्वः सुगन्धिरिति शब्द्यते ।
यः सुष्ठु सर्वतत्त्वानि गन्धयत्यात्मतेजसा ॥ ६७ ॥
गन्धयत्यनुवेधेन स्वस्वरूपीकरोति यः ।
गन्धादीनि पृथिव्यादिभूतान्येवाखिलानि च ॥ ६८ ॥
शोभनं यस्य तिष्ठन्ति वशे देवस्य शासितुः ।
स सुगन्धिः समाख्यातो ज्ञानात्मा सर्वविद्वशी ॥ ६९ ॥

सुगन्धि शब्द का अर्थ निरूपण—जिसकी सुगन्ध अत्यन्त शोभन हो वह सुगन्धि कहा जाता है, अथवा जो सर्व शक्तिमान होकर सबका भला करने वाला हो उसे भी सुगन्धि शब्द से कहा जाता है, अथवा जो अपने तेज से सारे तत्त्वों को भली प्रकार सुगन्धित करता है वह सुगन्धि है, अथवा जो अनुविद्ध होकर सबको सगुन्धित बना देता है और उसे अपने स्वरूप में मिला लेता है वह सुगन्धि है, अथवा गन्धादि से युक्त पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत जिस शास्ता (= शासक) के वश में रहने से भली-भाँति अपना-अपना काम करते हैं वह ज्ञानात्मा, सर्ववेत्ता एवं वशी प्रभु सुगन्धि पद से वाच्य है ॥ ६६-६९ ॥

पुष्टिवर्धनशब्दार्थनिरूपणम्

पुष्टिर्भूतिः समाख्याता या सा सदसदात्मिका ।
शक्तिर्विष्णुमयी विष्णोः स तां वर्धयति स्वयम् ॥ ७० ॥
सङ्कल्पेन समुद्भाव्य वितत्य विविधात्मना ।
सन्धार्य सन्नियम्याथ प्रतिसंहरते च ताम् ॥ ७१ ॥
ततोऽसौ भगवान् विष्णुः कथ्यते पुष्टिवर्धनः ।

पुष्टिवर्धन शब्द के अर्थ का निरूपण—पुष्टि भूति को कहते हैं । वह सदसदात्मिका है और विष्णु की विष्णुमयी शक्ति है । वे उस पुष्टि को स्वयं बढ़ाते हैं । सङ्कल्प से उसे उत्पन्न करते हैं । अनेक प्रकार से उसे विस्तृत करते हैं । पुनः उसे धारण एवं नियन्त्रित कर उसका प्रतिसंहार भी करते हैं । इसलिए भगवान् विष्णु को पुष्टिवर्धन कहा जाता है ॥ ७०-७२ ॥

वाक्यार्थवर्णनमुखेन पूर्वार्धस्य भगवति स्वात्महविः-समर्पणपरत्वप्रदर्शनम्

इच्छाज्ञानक्रियाकारं शोभनाख्यं जगत्प्रियम् ॥ ७२ ॥
स्वाकारज्ञापितैश्वर्यं शुद्धं संविन्मयं परम् ।
ईशानं सर्वलोकानां पुरुषं पुष्करेक्षणम् ॥ ७३ ॥
देवतां स्वां समुद्दिश्य स्वात्माख्यद्रव्यमुत्तमम् ।
यजाम इति मन्त्रस्य पूर्वभागार्थ ईदृशः ॥ ७४ ॥

वाक्यार्थ वर्णन के व्याज से पूर्वार्ध का भगवान् में अपनी आत्मा रूप हवि का समर्पण परत्व प्रदर्शन—इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप आकार वाले, शोभन, जगत्प्रिय, अपने आकार से अपने ऐश्वर्य को प्रगट करने वाले, शुद्ध विज्ञानमय परब्रह्म, सर्वलोक के ईश्वर, पुष्करेक्षण उस पुरुष को, अपने देवता को उद्देश्य कर अपने आत्मा रूप उत्तम द्रव्य का त्याग करना ही 'यजामहे' पद का अर्थ है । इस प्रकार पूर्वार्ध का अर्थ सम्पन्न होता है ॥ ७२-७४ ॥

उत्तरार्धस्य वाक्यार्थनिरूपणम्

निरुक्तो मृत्युशब्दोऽत्र मृत्युमृत्युनिरूपणे ।
स्वात्मस्वात्मीयसंन्यासी देवेऽद्य परमात्मनि ॥ ७५ ॥
मृत्योर्मुच्येय संसारान्नानादुःखमहोदधेः ।
उर्वारुकं यथा पक्वमक्लेशेन स्वबन्धनात् ॥ ७६ ॥
मुच्यते मृत्युतस्तद्वदहं मुच्येय बन्धनात् ।

उत्तरार्ध के वाक्यार्थ का निरूपण—'मृत्युमृत्यु' निरूपण के प्रसङ्ग में देव परमात्मा के विषय में मृत्यु शब्द का निर्वचन कर दिया गया है (द्र० ५४.३४) । अपनी आत्मा और अपनी आत्मा के सम्बन्धियों का उस परमात्मा में त्याग करने वाले हम अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण संसार रूपी महोदधि रूप मृत्यु से इस प्रकार मुक्त हो जावें जिस प्रकार पकी हुई ककड़ी का फल अपने आप बन्धन से मुक्त हो जाता है अर्थात् उसी प्रकार हम भी मृत्यु रूप बन्धन से स्वयं अपने आप मुक्त हो जावें ॥ ७५-७७ ॥

संन्यासे स्थैर्यमाशास्ते कृतेऽस्मिन् मामृतादिति ॥ ७७ ॥
अमृताद् ब्रह्मणस्तस्माद्यस्मै मां दत्तवानहम् ।
जातुचिन्मा स्म मुच्येय क्षेमीभावो भवेन्मम ॥ ७८ ॥

सबके सन्यास (त्याग) में ही स्थिरता आती है । उसका (त्याग) कर देने पर 'मा मृताद्' अर्थात् अमृतरूप ब्रह्म से, जिसे मैंने स्वयं अपने को समर्पित किया है उससे, मैं कभी भी मुक्त न होऊँ । हमारा वह परब्रह्म कल्याण करें ॥ ७७-७८ ॥

प्रपत्तुर्ब्रह्मसाधर्म्यापत्तिलक्षणस्य फलस्य तात्पर्यगत्या मन्त्रे विवक्षितत्वप्रदर्शनम्

इत्यर्थोऽनुष्टुभः प्रोक्तो ब्रह्मभावमयः शुभः ।

ज्योतिस्त्रयं निरुक्तं तु तदिदं छन्दसां त्रयम् ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ज्योतिश्चक्रमन्त्रार्थ-निरूपणं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३७१० ॥

* * *

भगवान् के शरण में जाने वाले शरणागत को ब्रह्मसाधर्म्यापत्ति लक्षणरूप फल प्राप्त होता है । इसी तात्पर्य का मन्त्र के विवक्षितार्थ रूप में प्रदर्शन—इस प्रकार अनुष्टुप् छन्द वाले 'त्र्यम्बकम्' इत्यादि मन्त्र का कल्याणकारी ब्रह्मभावमय अर्थ कहा गया और तीन छन्दों में कहे गए तीन ज्योतिः स्वरूप मन्त्रों के अर्थ का निर्वचन भी किया गया ॥ ७९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ज्योतिश्चक्र-मन्त्रार्थनिरूपण नामक सत्तावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५७ ॥

* * *

अथाष्टपञ्चाशोऽध्यायः

पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरे का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के करोड़ों पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं, हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

अहिर्बुध्न्यः—

दशहोता चतुर्होता पञ्चहोता तथैव च ।
षड्ढोता सप्तहोता च पञ्च होतार ईरिताः ॥ १ ॥
विश्वं सिसृक्षतो विष्णोर्यत् तज्ज्ञानमयं तपः ।
होतृभिः क्रतुरूपेण स सङ्कल्पो निरूप्यते ॥ २ ॥
अद्याप्यवदधानोऽयं योगी तत्तन्निरूपणम् ।
तांस्तान्निर्वर्तयत्येव क्रतून् ज्ञानमयाञ्छुभान् ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—दश होता, चतुर्होता, पञ्चहोता उसी प्रकार षड्ढोता एवं सप्त होता इस प्रकार पञ्च होताओं की सङ्ख्या हम पहले कह आये हैं । विश्व की सिसृक्षा करने वाले विष्णु का जो ज्ञानमय तप था, होताओं ने उसे क्रतु के रूप से सङ्कल्पित किया । अब उसी सङ्कल्प का निरूपण करते हैं । आज भी योगी जन उन-उन तपों का ध्यान करते हुये उन-उन कल्याणकारी ज्ञानमय तथा उन-उन क्रतुओं का सम्पादन करते हैं ॥ १-३ ॥

दशहोत्रादिपदविवक्षितमन्त्रविशेषसूचनम्

चित्तिः स्रुग्दशहोतायमग्निहोत्रस्य कारणम् ।
पृथिवीत्यादिको होता चतुर्होता निगद्यते ॥ ४ ॥
दर्शस्य पूर्णमासस्य निदानं स द्वयोरपि ।
अग्निर्होता पञ्चहोता चातुर्मास्योद्भवस्तु सः ॥ ५ ॥
सूर्यं ते स च वाग्घोता पशुबन्धस्य कारणम् ।
षड्ढोताराविमौ वेदे निर्णीतौ मुनिसत्तमैः ॥ ६ ॥

(महाहविः सप्तहोता ज्योतिष्टोमस्य कारणम् ।)

दशहोत्रादि पद से विवक्षित मन्त्र विशेष का निर्देश—चित्ति स्रुवा, दशहोता ये अग्निहोत्र के कारण हैं । पृथ्वी इत्यादि जिसमें होता हों उसे चतुर्होता कहा जाता है । वह चतुर्होतृत्व रूप मन्त्र दर्श और पूर्णमास दोनों यागों में कारण है । जहाँ अग्नि होता हों उसे पञ्चहोता कहते हैं । वह चातुर्मास्य से उत्पन्न हुआ है । 'सूर्य ते और वह 'वाग्घोता' ये दोनों ही वेद में षड्ढोता कहे जाते हैं । जो पशुवन्ध के कारण हैं और वह महाहवि सप्तहोता कहा जाता है एवं जो ज्योतिष्टोम का कारण है ॥ ४-६ ॥

अथोक्तानां मन्त्राणामर्थवर्णनप्रतिज्ञा

अथार्थो दशहोत्रादेर्वर्ण्यते शृणु नारद ॥ ७ ॥

ऊपर कहे गए मन्त्रों का अर्थ निरूपण—हे नारद ! अब दशहोत्रादि मन्त्रों के अर्थ का वर्णन करता हूँ । आप उन्हें सुनिए ॥ ७ ॥

प्रथमं दशहोतृमन्त्रार्थनिरूपणे चित्त्यादिपदार्थप्रदर्शनम्

चित्तिर्नाम स्मृता बुद्धिर्व्यवसायस्य कारणम् ।
अहङ्कारस्तु चित्तं स्यादभिमानस्य कारणम् ॥ ८ ॥
मनो नामेन्द्रियं हेतुः स सङ्कल्पविकल्पयोः ।
वाङ् नाम व्याहृता वाणी एवमस्त्वितिरूपिणी ॥ ९ ॥
आधीतं नाम वाग्वृत्तिर्यदध्ययनमुच्यते ।
केतो ज्ञानमिति प्रोक्तमुच्चार्यस्यावधारणम् ॥ १० ॥
विज्ञातं यत् तदुच्चार्यमवधारणगोचरम् ।
यत् तद्वागिन्द्रियं प्रोक्तं तद्व्यङ्ग्या या सरस्वती ॥ ११ ॥
सा वाक् तां सुब्रुवन् पाति यः स वाक्पतिरुच्यते ।
उच्चारणप्रवृत्तेर्यः प्रयत्नो हेतुरुच्यते ॥ १२ ॥
स प्राणः साम तत् प्रोक्तं यदुच्चारणसौष्ठवम् ।

दशहोतृत्वादिमात्र के निरूपण के प्रसङ्ग में सर्वप्रथम चित्यादि पद के अर्थ का निरूपण—चित्ति बुद्धि को कहते हैं जो समस्त व्यवसायों (चेष्टाओं) का कारण है । चित्त अहङ्कार को कहा जाता है जो अभिमान का कारण है । मन एक प्रकार की इन्द्रिय को कहा जाता है जो सङ्कल्प एवं विकल्प का कारण है । उच्चारण की जाने वाली वाणी का नाम वाक् है । जो 'एवमस्तु' इस रूप वाली है । आधीत एक प्रकार के वाग्व्यापार का नाम है जिसे अध्ययन भी कहते हैं । केतो ज्ञान को कहा जाता है जो उच्चरित शब्द का ठीक-ठीक निश्चय रूप कहा जाता है । पूर्व में निश्चित किये गए एवं विज्ञात शब्द को प्रत्यक्ष करने के लिए जहाँ से उच्चारण किया जावे वह वागिन्द्रिय है । सरस्वती उसी से प्रगट होती है । ऐसी वाणी को ठीक-ठीक बोलते हुये जो उसका पालन करता है उसे 'वाक्पति' कहा जाता है । उच्चारण में प्रवृत्त करने वाले हेतु को प्रयत्न कहा जाता है । प्राण साम को कहते हैं । जिसकी कृपा से उच्चारण में सहायता मिलती है ॥ ८-१३ ॥

दशहोत्रादिसमाख्यानिमित्तप्रदर्शनम्

दशहोत्रादिहोत्राख्या यागोपकरणाभिधा ॥ १३ ॥

दशहोत्रादि समाख्या का निमित्त प्रदर्शन—दशहोत्रादि जो होता के नाम है उसे योगोपकरण भी कहा जाता है ॥ १३ ॥

क्रियाभूतिविभेदेन भगवच्छक्तेर्द्वैविध्यम्

एकान्तिनो जगद्विष्णोः कुर्वतः शक्तिशालिनः ।
या शक्तिर्वैष्णवी देवी सर्वभावानुगामिनी ॥ १४ ॥
तदेकांशः क्रिया नाम कृत्योपकरणं हरेः ।
तदेकांशो विभूत्याख्यो लक्ष्यतेऽत्र जगत्तया ॥ १५ ॥

क्रिया और शक्ति के भेद से भगवान् की शक्ति के दो प्रकार—क्रिया काल में एकमात्र शक्तिशाली भगवान् विष्णु की जो शक्ति है उसे वैष्णवी देवी कहते हैं जो सभी भावों में व्याप्त होकर अवस्थित है । उस देवी के एक अंश को क्रिया कहते हैं जो विष्णु के क्रिया रूप उपकरण को कहा जाता है और उसका एक अंश विभूति कहा जाता है । उस विभूति पद से यह जगत् लक्षित है ॥ १४-१५ ॥

क्रियायाः सङ्कल्परूपत्वं कृत्योपकरणत्वं च

सङ्कल्पः प्रोच्यते विष्णोः कृत्योपकरणं क्रिया ।

क्रिया की सङ्कल्पता एवं कृत्योपकरणता—उसी क्रिया को विष्णु का सङ्कल्प कहते हैं और कृत्योपकरण भी ॥ १६ ॥

सङ्कल्पस्य च निश्चयात्मकमित्यादिरूपत्वम्

एवमस्त्विति वाक्यान्तो मित्यादिः स च कथ्यते ॥ १६ ॥
बुद्ध्यहङ्कारमनसां वृत्तिः शब्दे विवक्ष्यते ।
त्रिरूपामितिरुद्दिष्टा ते स्तब्धोत्र शब्दितम् ॥ १७ ॥

निश्चयादि किये हुये कार्य को सङ्कल्प कहने का निरूपण—'एवमस्तु' इस प्रकार के वाक्य को मिति कहते हैं । बुद्धि, अहङ्कार तथा मन की जिस वृत्ति को शब्द के द्वारा कहा जाय उसे सङ्कल्प कहते हैं । यह मिति तीन प्रकार की कही गई है ॥ १६-१७ ॥

चित्त्यादिवाक्योक्तस्रुगादिपदार्थनिरूपणम्

बुद्ध्यादिमितिपर्यन्तं वृत्तिमद्वृत्तिरूपकम् ।
यज्ञे जगद्विधानाख्ये वितते हरिमेधसः ॥ १८ ॥
स्रुक्तयाज्यतया चोपवक्तृत्वेनाग्निभावतः ।
उपवक्ता स्मृतो ब्रह्मानुज्ञा प्रवचनं स्मृतम् ॥ १९ ॥
उच्चार्यत्वेन विज्ञातः शब्दोऽग्निरिति कथ्यते ।
उच्चारणं यदाधीतं तद्बर्हिरिति गीयते ॥ २० ॥
तस्य हेतुः प्रयत्नो यः प्राणः स हविरुच्यते ।

वाग् व्याहृता तु वेदिः स्याद्धर्ता होतेति गीयते ॥ २१ ॥
उच्चारणस्य साम्यं यत् साम सोऽध्वर्युरुच्यते ।

चित्यादि वाक्योक्त स्रुगादि पदों के अर्थ का निरूपण—उस जगद्विधान नामक विष्णुयज्ञ के प्रारम्भ किये जाने पर बुद्धि से मिति पर्यन्त (द्र० ५८.८-१६) वृत्तिमान् एवं वृत्ति (द्र० ५८.१७) स्रुक् एवं आज्य हुये, ब्रह्मा उपवक्ता हुये और उनका प्रवचन अनुज्ञा हुआ । उच्चार्यत्वेन विज्ञात शब्द अग्नि हुआ । अध्ययन मे जो उच्चारण हुआ वह 'वर्हि' हुआ । उच्चारण का हेतुभूत जो प्रयत्न हुआ उसी की प्राण या हवि संज्ञा हुई । बोली गई वाणी वेदी हुई । उसको धारण करने वाला होता कहा गया । उच्चारण की समता साम हुई जिसे अध्वर्यु कहा गया ॥ १८-२२ ॥

विमर्श—जिस प्रकार लौकिक यज्ञ में स्रुवा, आज्य, उपवक्ता, अग्नि, वर्हि, हवि, वेदी, होता और अध्वर्यु की आवश्यकता होती है उसी प्रकार यहाँ जगद्विधान नामक उक्त वैष्णव यज्ञ में रूपक के द्वारा यज्ञोपकरण प्रस्तुत किया गया है ॥ १८-२२ ॥

यथोक्तस्य जगद्विधानाख्यस्य वैष्णवयज्ञस्य ज्ञेयत्वविधिः

इत्थं जगद्विधानाख्यो दशोपकरणान्वितः ॥ २२ ॥
यो यज्ञो वैष्णवो वृत्तस्तमद्यत्वे विचिन्तयेत् ।
वाक्यं समुच्चरन् किञ्चिल्लौकिकं वैदिकं तु वा ॥ २३ ॥
वैष्णवं भावमासाद्य मन्त्रं चेमं विचिन्तयेत् ।

इस जगद्विधान नामक आध्यात्मिक वैष्णव यज्ञ का ज्ञान अवश्य करना चाहिए, इसका प्रतिपादन—इस प्रकार दशोपकरण से युक्त जो जगद्विधात्र नामक वैष्णव यज्ञ सम्पन्न किया गया उसका ध्यान इस समय भी करना चाहिए । उस ध्यानकाल में लौकिक एवं वैदिक वाक्यों का स्मरण करते हुये विष्णुमय हो इन मन्त्रों का उच्चारण भी करते रहना चाहिए ॥ २२-२४ ॥

तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन ग्रहभागस्यात्महविःसमर्पणपरत्वस्फुटीकरणम्

वाचस्पते विधे नामन्निति तस्यार्थ उच्यते ॥ २४ ॥
वाङ् नाम वैष्णवी शक्तिः शब्दब्रह्ममयी परा ।
वाचस्पतिस्तत्पतिः स्याद् विदधातीति वै विधिः ॥ २५ ॥
नामयत्यखिलं स्वस्मिन्निति नामाग्निरुच्यते ।
विधेम भगवन्नाम प्रह्वीभावापराभिधम् ॥ २६ ॥
त्वं चास्माकं विधेः कुर्या नाम प्रवणचित्तताम् ।
एतदेव पुनर्वक्ति मुनिः स्वात्मसमर्पणम् ॥ २७ ॥

तात्पर्यनिरूपण के व्याज से किये जाने वाले ग्रहभाग का आत्महवि समर्पणपरत्व—'वाचस्पते विधे' (नाम) यह उसका अर्थ हुआ । 'वाचस्पति' शब्द का अर्थ—वैष्णवी शक्ति को वाग् कहते हैं । जो शब्द ब्रह्ममयी एवं परा है उस विष्णुमयी वाग् शक्ति

के जो पति (= स्वामी) वही वाचस्पति कहे जाते हैं । विधिशब्द का अर्थ—जो सबको धारण करे वह विधि है । नाम शब्द का अर्थ—जो सबको अपने में नवा दें वह नाम है । उसे अग्नि कहा जाता है । विधेम का अर्थ भगवान् के नाम में नम्रीभूत हो जाना है । आप हमारे विधि को अपने नाम ग्रहण में प्रवणचित्त बनाओ । मुनि इसी को बारम्बार कहे तब उसी को स्वात्मसमर्पण कहा जाता है ॥ २४-२७ ॥

भगवत एवात्महविःसमर्पणजन्यफलभागित्वनिरूपणम्

वाचस्पतिः स पूर्वोक्तः सोमं सोमरसोपमम् ।
पिबत्वात्मरसं स्वस्मै मया हुतमिवाध्वरे ॥ २८ ॥

भगवान् में ही आत्मसमर्पण से पुरुष का तज्जन्यफल का भागी होना—वाचस्पति का अर्थ पूर्व में कहा गया है । वह वाचस्पति इस सोम को मेरे द्वारा अपने लिए समर्पित किये गए आत्मरस को इस प्रकार पान करे जिस प्रकार यज्ञ में सोमरस का पान देवगण करते हैं ॥ २८ ॥

स्वरूपनिरूपकशेषत्वपारतन्त्र्यानुगुणवृत्तिप्रार्थना

पीत्वा चास्मासु नृम्णं यत् स्वमाधादादधातु तत् ।
मननीयं नृभिर्नृम्णं तदनुग्रहरूपकम् ॥ २९ ॥

स्वरूप निरूपकशेषत्व के पारतन्त्र्य होने से अनुगुण अनुग्रह की प्रार्थना—हे प्रभो! उस सोमरस रूप आत्महवि को पान कर आप हममें उस नृम्ण का आधान करिए । मनुष्य जिसकी चाह करे उसका नाम नृम्ण है । वैसा मनुष्य का अभीष्ट भगवदनुग्रह रूप ही जानना चाहिए ॥ २९ ॥

आत्महविःसमर्पणस्य स्वार्थत्वशङ्काव्युदासः

स्वाहेति स्वात्मसंन्यासः स्वाहुतं तद्भवेदिति ।

आत्महविः के समर्पण में स्वार्थ की शङ्का का निराकरण—स्वाहा का अर्थ स्वात्मसन्यास है । जो 'इदं न मम' 'यह मेरा नहीं है' इस आत्म समर्पण से ही किया जा सकता है ॥ ३० ॥

चतुर्होतृमन्त्रेऽपि पूर्वोक्तस्यैव यज्ञस्य भङ्ग्यन्तरेण विवक्षितत्वनिरूपणम्

अयमेव च यज्ञोऽत्र चतुर्होतृतयेष्यते ॥ ३० ॥

चतुर्होत्र मन्त्र में पूर्वोक्त यज्ञ का प्रकारान्तर से निरूपण—यहाँ पर 'चतुर्होतृ' पद से यही यज्ञ विवक्षित है ॥ ३० ॥

पृथिवीद्युरुद्रशब्दानां प्रकृतिपुरुषकालपरत्वप्रदर्शनम्

जगत्प्रथनरूपा सा पृथिवी प्रकृतिः स्मृता ।
पुरुषो द्यौरिति प्रोक्तो द्योतते स स्वया चिता ॥ ३१ ॥
रुणद्धि प्रलये तौ द्वौ द्रावयत्युदयेऽपि च ।
रुद्र इत्युदितः कालः संयोजकवियोजकः ॥ ३२ ॥

पृथ्वी द्यु रुद्र शब्दों का प्रकृति, पुरुष और काल परत्व अर्थ प्रदर्शन—जगत् को धारण करने से पृथ्वी है। वह 'पृथ्वी' प्रकृतिरूपा कही गई है। यत: वह स्वकीय ज्ञान से द्योतित होता है। इसलिए पुरुष को 'द्यौ' कहते हैं। उन दोनों को जो प्रलय काल में रोकता है एवं उदय काल मे प्रगट करता है। इसलिए रुद्र काल को कहते हैं। वह रुद्र संयोगकर्त्ता और वियोगकर्त्ता दोनों है ॥ ३१-३२ ॥

बृहस्पतिशब्दस्य श्रियःपतित्वपुरस्कारेण भगवत्परत्वम्

बृहत् सा शक्तिरुद्दिष्टा यतो बृंहयतेऽखिलम्।
बृहस्पतिः पतिस्तस्या देवदेवो जनार्दनः ॥ ३३ ॥

बृहस्पति शब्द का पहले श्रिय:पतित्व पुन: भगवत्परत्व रूप अर्थ वर्णन—बृहत् शब्द से उस शक्ति का निर्देश है जो समस्त जगत् को बढ़ाती है। उस महाशक्ति के पति को बृहस्पति कहा जाता है। इस प्रकार बृहस्पति शब्द का देवाधिदेव जनार्दन रूप अर्थ हुआ ॥ ३३ ॥

ग्रहभागार्थनिरूपणे वाचोवीर्यशब्दस्य भगवत्कर्तृक-सृष्ट्युद्यमपरत्वप्रदर्शनम्

वाचो वीर्यं भवेत् प्राणो विष्णोः सृष्ट्युद्यमः परः।

सम्भृततमशब्देन सृष्ट्युद्यमस्य सर्वार्थविषयकत्वविवक्षा

तत्सम्भृततमं चैव सर्वार्थविषयत्वतः ॥ ३४ ॥

ग्रहभागार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से वाचोवीर्यशब्द का भगवत्कर्तृक सृष्टि उद्यम-परत्व—वाचो वीर्य प्राण को कहते हैं। जो विष्णु के सृष्टि में सर्वातिशय उद्यम रूप कहा जाता है ॥ ३४ ॥

सम्भृततम शब्द का सृष्टि के उद्यम के लिए सर्वविषयकत्व अर्थात् सर्वविषय के निर्माण की इच्छा—सम्भृततम उसे कहते हैं जिसमें सर्वार्थविषयत्व हो ॥ ३४ ॥

पूर्वोक्तस्य प्राणस्यैवात्रापि हविष्ट्वविवक्षा

प्राणो हविरिति न्यायात् प्राणो हविरिहेष्यते।

पूर्वोक्त प्राण की हवि रूप में विवक्षा—'प्राणो हवि:' इस श्रुति से प्राण हवि को कहते हैं ॥ ३५ ॥

मन्त्रशेषस्य दास्यमहारसरूपसुखप्रार्थनापरत्वप्रदर्शनम्

आयक्ष्यसे पूज्यसेऽद्य यस्त्वं वाचस्पतिः स्वयम् ॥ ३५ ॥
अतोऽस्मै यजमानाय वार्यं वर्यं सुवः सुखम्।
आकस्त्वमाकुरुष्वाद्य सोमं पिबति पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

शेष मन्त्र का दास्य महारस रूप सुखप्रार्थना परत्व रूप अर्थ का वर्णन—यत: वाचस्पति रूप आप स्वयं पूजा को प्राप्त कर रहे हो। अत: इस यजमान को (वार्यम्

वर्यम् सुवः) सुख आकस्वत्वम्, अर्थात् प्राप्त कराओ, क्योंकि यह पूर्ववत् सोमदान कर रहा है ॥ ३५-३६ ॥

मन्त्रचरमवाक्यस्य प्रतिबन्धनिवृत्तिप्रार्थनापरत्वम्

इरां ददतमिन्द्रं मामिन्द्रियायाद्यशक्तये ।
ब्रह्माप्तिहेतुभूतायै स योग्यं जनयत्वजः ॥ ३७ ॥

मन्त्र का चरम (अन्तिम) वाक्य का प्रतिबन्धक निवृत्ति रूप प्रार्थना परक होना—हे अज ! ब्रह्म प्राप्ति की हेतुभूत इरा देने वाले मुझको इन्द्रिय एवं आद्यशक्ति के लिए योग्य बनाइये ॥ ३७ ॥

पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

चतुर्होतायमुद्दिष्टः- पञ्चहोता निगद्यते ।
अग्निर्निरुदितः पूर्वं स होता परिगीयते ॥ ३८ ॥
ज्ञानप्राणावश्विनौ द्वावश्नुवाते यतो जगत् ।
अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता द्वावध्वर्यू प्रकीर्तितौ ॥ ३९ ॥
त्वष्टा सङ्कल्प उद्दिष्टस्त्वष्टृकार्यं यतोऽखिलम् ।
मित्रो मैत्री समुद्दिष्टा करुणा हरिमेधसः ॥ ४० ॥

पञ्चहोतृमन्त्रार्थ निरूपण—यहाँ तक चतुर्होता का अर्थ कहा गया । अव पञ्चहोता मन्त्र का अर्थ कहते हैं । सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न हुआ, जो होता रूप कहा जाता है । ज्ञान और प्राण ये दोनों अश्विनी हैं, जिनसे यह सारा जगत् व्याप्त है । प्रतिप्रस्थाता को अध्वर्यू कहते हैं उक्त दोनों अध्वर्यू पद से वाच्य हैं । जिस प्रकार सङ्कल्प द्वारा सारा कार्य किया जाता है उसी प्रकार यह सारा जगत् त्वष्टा का कार्य है । अतः त्वष्टा को सङ्कल्प कहा जाता है । मित्र-मैत्री को कहते हैं जो विष्णु यज्ञ की करुणा है ॥ ३८-४० ॥

ग्रहभागस्यात्मयागसाधनत्वेन विनियोगः

सोम इत्यादिमन्त्रोऽयं यजने तस्य शिष्यते ।

ग्रहभाग अर्थात् मन्त्र के उत्तरभाग का आत्मसाधन होने से विनियोगत्व—सोम इत्यादि यह मन्त्र यज्ञ के विनियोग रूप में कहा गया है ॥ ४१ ॥

तत्र षष्ठ्यन्तयोः प्रथमान्तयोश्च सोमशुक्रपदयोरर्थविवेकः

षष्ठ्यन्तौ सोमशुक्रौ द्वौ लतासाराभिधायिनौ ॥ ४१ ॥
इतरावात्मवचनौ पुरोगा हेतुरुच्यते ।

वहाँ षष्ठयन्त तथा प्रथमान्त रूप में इस प्रकार दो बार पढ़े हुये सोम शुक्र पदों का अर्थ विवेचन—षष्ठ्यन्त सोम और शुक्र दोनों ही (सोमरूप) लता के सार तत्त्व के वाचक हैं और प्रथमान्त सोम शुक्र पद आत्मा के वाचक हैं जो पुरोगा अग्रगामी हेतु कहे जाते हैं ॥ ४१-४२ ॥

प्रथमान्तसोमपदविवक्षितस्य जीवस्य षष्ठ्यन्तसोमपदविवक्षितात् लतासारादुत्तमत्वम्, तदुपपादनञ्च

जीवः सोमस्य सोमोऽयं पुरोगाः सेमतोऽपि यत् ॥ ४२ ॥
सोमो ह्यभिष्टुतो यादृक् प्रीणयेत् पुरुषोत्तमम् ।
आत्मयागहुतो जीवो न तादृक् किंत्वतोऽधिकः ॥ ४३ ॥

प्रथमान्त सोमपद से विवक्षित जीव षष्ठ्यन्त सोमपद से विवक्षित लतासार की अपेक्षा अधिक उत्तम होने का कथन—जीव सोम का भी सोम है । यह पुरोगाः है क्योंकि यह आगे-आगे जाने वाला है । सोम लता आहुति देने पर जिस प्रकार भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करता है उसी प्रकार जीव अपने आत्मा की आहुति प्रदान करने पर क्या प्रसन्न नही करता किन्तु उससे भी अधिक प्रसन्न करता है ॥ ४२-४३ ॥

मर्त्यो ह्यभिष्टुतः सोमो यस्त्वमर्त्यो हि चिन्मयः ।

हवन की जाने वाली सोमलता मरणशील है । किन्तु हवन किया जाने वाला चिन्मय आत्मा चिन्मय है इसलिए यह अधिक श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥

शुक्रशब्दस्य जीवपरत्वे प्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम्

शुक्र इत्यतिसारत्वाज्जगद्बीजतयापि च ॥ ४४ ॥
आख्या जीवस्य तत्रापि योजनैषा पुरोदिता ।

शुक्र शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त जीव होने का उपपादन—अत्यन्त सारयुक्त होने के कारण एवं जगद् का बीज होने के कारण शुक्र जीव की आख्या है । यह योजना हम पहले भी प्रदर्शित कर चुके हैं ॥ ४४-४५ ॥

इन्द्रशब्देन भगवतः सम्बोधनम्

इन्द्रेत्यपि च सम्बोधो देवस्य हरिमेधसः ॥ ४५ ॥

इन्द्र शब्द से भगवान् का सम्बोधन—मन्त्र से इस प्रकार का सम्बोधन भगवान् विष्णु के लिए किया गया है ॥ ४५ ॥

वातापिशब्दस्य व्याप्तिपूर्वकभगवन्निष्ठक्रियाशक्तिवैशिष्ट्यपरत्वम्

वातापीत्युच्यते व्यापी वातेन क्रियया स्वया ।
जगद्धातुः क्रिया सृष्टिरतर्क्या व्याप्तिपूर्विका ॥ ४६ ॥
तस्या अविषयो नास्ति भावः कोऽपि कथञ्चन ।

वातापी शब्द की व्याप्तिपूर्वक भगवन्निष्ठ क्रियाशक्तिविशिष्टपरता—जो अपनी वात रूप क्रिया के द्वारा सर्वत्र व्याप्त हो उसे वातापी कहा जाता है । जगद्धाता भगवान् की क्रिया सृष्टि अतर्क्य तो है ही सर्वत्र व्याप्त भी है और कोई भी पदार्थ उसकी क्रिया का कथञ्चिदपि अविषय नहीं है ॥ ४६-४७ ॥

हवनश्रुत्पदस्य स्वविषयकाह्वानश्रवणरसिकत्वपरत्वम्

हवनश्रुत् समाख्यातः शृण्वन्नाह्वानमादरात् ॥ ४७ ॥

हवनश्रुत्पद का स्वविषयक आह्वान सुनने में रसिकत्व का उपपादन—हवनश्रुत् उसे कहते हैं जो अपने को बुलाये जाने पर आदरपूर्वक उसे सुने ॥ ४७ ॥

श्राता इत्यादिवाक्यद्वयस्य तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन सर्वेष्वप्यात्मसु भगवद्गुणकृतदास्यप्रतिपादकत्वप्रदर्शनम्

हे इन्द्र परमेशान कर्तस्ते हवनश्रुतः ।
श्राताः श्रिता गुणैः सोमा आत्मानस्त इमे वयम् ॥ ४८ ॥
स्वाहा स्वाहुतमस्त्वेतत् तदिदं परमं हविः ।

श्राता इत्यादि दो वाक्यों का तात्पर्य कहने के व्याज से सभी आत्माओं में भगवान् के गुण के कारण उनमें दास्यभाव होने का प्रतिपादन—हे इन्द्र ! हे परमेशान ! हे कर्त्तः आपका हवन श्रुत यह नाम है । हम आपके श्राता अर्थात् आपके गुणों से आपके आश्रित हैं । सोमा अर्थात् आपकी आत्मा हम हैं । इसलिए परम हवि रूप इस आत्मा की आहुति आप में हो ॥ ४८-४९ ॥

अथ षड्ढोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

उद्दिष्टः पञ्चहोतायं षड्ढोताद्य निगद्यते ॥ ४९ ॥
यजमानं पशुं भूतं वक्त्यात्मानं हविष्कृतम् ।
देहेन्द्रियैः समं विष्णुं प्राप्ताद्य सहविष्कृतम् ॥ ५० ॥
सूते च रमते चैव यजते चैव कथ्यते ।
सूर्यो विष्णुं विशत्वेनं चक्षुर्विज्ञानकारणम् ॥ ५१ ॥
वातो गतिमतः संज्ञा गतिर्व्याप्तिरुदीरिता ।
द्योतमानस्तथा स द्यौर्देवो विज्ञानसारथिः ॥ ५२ ॥
अन्तः समीक्षमाणः सन्नन्तरिक्षमुदीर्यते ।
सर्वान् सङ्गमयन् प्राणैर्यज्ञ इज्यतयापि च ॥ ५३ ॥
पृथिवी वैष्णवी शक्तिः प्रथमाना स्वतेजसा ।
पञ्चात्मावयवः प्राणः पृष्ठं मूर्धाङ्गमुच्यते ॥ ५४ ॥
आत्मान्तःकरणं प्रोक्तमनाद्यन्तस्थितानि च ।
शरीराण्यथ बाह्याङ्गान्यथो ग्रह उदीर्यते ॥ ५५ ॥

षड्ढोतृमन्त्र के अर्थ का निरूपण—यहाँ तक पञ्चहोता का अर्थ निरूपण किया गया, अब षड्ढोता का अर्थ निरूपण करते हैं । यजमान पशुभूत अपनी आत्मा को हवि रूप में मानता है । वह अपने देह, इन्द्रिय एवं मन के साथ विष्णु को अपनी हवि प्रदान कर उनके साथ उत्पन्न होता है । रमण करता है, यज्ञ करता है और बात करता है । सूर्य चक्षुविज्ञान के कारण उस विष्णु में प्रवेश करे । गतिमान् यह 'वायु की संज्ञा है । गति का अर्थ व्याप्ति है यह हम पहले कह आये हैं । जो द्योतमान हो वह द्यौः है । विज्ञान जिसका सारथी है वह देव है । जो सबको अन्तरात्मा में रह कर देखता है वह अन्तरिक्ष है । सभी को प्राण के साथ मिलाने वाला एवं सबका ईज्य होने के कारण यज्ञ कहा

जाता है । अपने तेज से पृथित होने के कारण पृथिवी वैष्णवी शक्ति कही जाती है । आत्मा के अवयव पञ्चप्राण, पृष्ठ, शिर, आत्मा, अन्त:करण, अनाद्यन्त: स्थित शरीर— ये बाह्याङ्ग कहे जाते हैं ।। ४९-५५ ।।

वाचस्पतिः समुद्दिष्टः शक्तिर्वाग् वैष्णवी क्रिया ।
सैव प्रोक्ता जुहूः प्राणो होत्राहुतिरुदीर्यते ।। ५६ ।।
नानादेहादिरूपेण वृद्धा देवा उदीरितः ।
एरयस्व प्रेरयस्व प्रेरणं त्वेरणं मतम् ।। ५७ ।।

ग्रह (उत्तरभाग) का अर्थ—वाचस्पति शब्द का अर्थ पहले कह दिया गया है । वैष्णवी वाग् शक्ति है और क्रिया जुहू: कही जाती है । प्राणरूप होता के द्वारा जिसकी आहुति दी जावे वह प्राण है । अनेक प्रकार के देह से बढ़े हुये देव कहे जाते हैं । एरयस्व का अर्थ प्रेरणा प्रदान करिए । क्योंकि ईरण का अर्थ प्रेरण होता है ।। ५६-५७ ।।

अपरस्य षड्ढोतृमन्त्रस्यार्थनिरूपणम्

अथापरस्य षड्ढोतुर्निर्णयं श्रृणु नारद ।
दीक्षा मानससङ्कल्पो वागवस्था तु वाक् स्मृता ।। ५८ ।।
आपो दयार्द्रता विष्णोर्मन इच्छा निगद्यते ।
तपो विज्ञानमुद्दिष्टं पोता त्वभिगरा मतः ।। ५९ ।।

दूसरे षड्ढोतृ मन्त्र के अर्थ का निरूपण—अब हे नारद ! दूसरे षड्ढोतृ मन्त्र के अर्थ को आप सुनिए । मानस सङ्कल्प का नाम दीक्षा है । वाणी की अवस्था को वाग् कहते हैं । विष्णु की दयार्द्रता आप (जल) है । मन इच्छा को कहते हैं । विज्ञान को तप कहा जाता है और पोता अभिगर है ।। ५८-५९ ।।

सप्तहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

महाहविरिति प्रोक्तः सप्तहोता मनीषिभिः ।
मनो हविरिति प्रोक्तं मनो हविरिहोच्यते ।। ६० ।।
महाविषयता तस्य महत्त्वं परिगीयते ।
यत्नो हविरिति प्रोक्तं प्राणो हविरिहोच्यते ।। ६१ ।।
सत्यता त्वविपर्यासः सन्ततोद्युक्तता तथा ।
पाजस्तेज इह प्रोक्तो नित्यताच्युततास्य तु ।। ६२ ।।

सप्नहोतृ मन्त्रार्थ का निरूपण—मनीषियों ने महा हवि को सप्तहोता कहा है । मन को हवि कहा जाता है । इसलिए यहाँ मन को हवि कहा गया है । उसकी महाविषयता है । इसलिए उसके महत्त्व का गान होता है । प्रयत्न को हवि कहा गया है । इसलिए यहाँ प्राण भी हवि कहा गया है । जिसमें फेर बदल न हो उसे सत्यता कहते हैं । सन्तत लगे रहने का नाम उद्युक्तता एवं उद्योग है । पाज तेज को कहते हैं । कभी च्युत न होने के कारण उसे नित्य कहा जाता है ।। ६०-६२ ।।

मनो मतिरिह प्रोक्ता तस्याः पूर्ववदच्युतिः ।
अनाधृष्याप्रधृष्यौ च शक्त्यैश्वर्यनिरूपकौ ॥ ६३ ॥
पोता च मैत्रावरुणः स्मृतावभिगराविह ।
अनायासविषयत्वादयास्य इति वर्ण्यते ॥ ६४ ॥

मन मति को कहा जाता है । वह मति पूर्ववत् विष्णु से च्युत न हो उनमें नित्य लगी रहे । अनाधृष्य और अप्रधृष्य पद शक्ति एवं ऐश्वर्य के निरूपक हैं । पोता एवं मैत्रावरण को अभिगर नाम से भी स्मरण किया गया है । अयास्य का अर्थ अनायास विषयत्व वर्णित किया गया है ॥ ६३-६४ ॥

ग्रहभागार्थनिरूपणम्

हरति स्वीकरोतीह पूजां हृदिति वर्ण्यते ।
दैव्यस्तन्तुरिति प्रोक्ता शिष्याचार्यपरम्परा ॥ ६५ ॥
मनुष्यस्तन्तुरित्युक्ता सत्सन्तानसमृद्धिता ।
द्यावापृथिव्यौ पितरौ पितरौ श्रीतदीश्वरौ ।
व्याख्यातो होतृवर्गोऽयमिति ते लेशतो मुने ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां पञ्चहोतृमन्त्रार्थ-निरूपणं नाम अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३७७६ ॥

* * *

मन्त्र के ग्रहभाग (उत्तरभाग) का अर्थ—जो पूजा को स्वीकार करे उसे हृत् कहा जाता है । शिष्य और आचार्य की परम्परा दैव्य तन्तु कही गई है और सत्सन्तानसमृद्धि को मनुष्य तन्तु कहा गया है । द्यावा पृथ्वी पिता माता हैं । महालक्ष्मी और विष्णु माता पिता हैं । हे मुने ! इस प्रकार लेश मात्र हमने होतृवर्ग का व्याख्यान किया ॥ ६५-६६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के पञ्चहोतृ-मन्त्रार्थ निरूपण नामक अट्ठावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५८ ॥

* * *

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषसूक्तश्रीसूक्तवाराहमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के करोड़ों पापों का समूह नष्ट हो जाता है हम उन सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

ब्रह्मचक्रान्तर्गतसम्भारादिमन्त्रार्थानिरूपणे कारणनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

सम्भारा देवपत्न्यश्च दक्षिणा हृदयानि च ।
रुद्रा ब्रह्माणि चेत्येतन्निगदेन निरूप्यते ॥ १ ॥

अब पूर्वोक्त ब्रह्मचक्र के भीतर रहने वाले सम्भार, देव पत्नियों, दक्षिणा, हृदय, रुद्र एवं ब्रह्मरूप मन्त्रों के व्याख्यान का यद्यपि अवसर प्राप्त है तथापि बुद्धिमानों के लिए इन सभी का अर्थबोध भी सम्भव है अर्थात् ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ उसका व्याख्यान करना उचित नहीं है । ऐसा ग्रन्थकार का आशय है ॥ १ ॥

पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोरर्थं निरूपयितुं जगद्धिताय परमपुरुषाल्लक्ष्म्याश्च तयोराविर्भावकथनम्

सूक्तं तु पौरुषं पुंसः परस्मादुत्थितं पुरा ।
जगद्धिताय लक्ष्म्याश्च श्रीसूक्तं तत् समुद्गतम् ॥ २ ॥

अब पुरुषसूक्त तथा श्रीसूक्त इन दोनों सूक्तों के अर्थ का निरूपण करने के लिए संसार के कल्याण की इच्छा से उन दोनों सूक्तों की उत्पत्तिक्रमेण विष्णु और लक्ष्मी से होने का विवेचन—पूर्वकाल में पुरुष सूक्त की उत्पत्ति परब्रह्म परमात्मा से तथा जगत् के कल्याण के लिए श्रीसूक्त की उत्पत्ति महालक्ष्मी से हुई है ॥ २ ॥

पुरुषसूक्तस्य ऋक्सङ्ख्यायां मतभेदप्रदर्शनम्

नानाभेदप्रपाठं तत् पौरुषं सूक्तमुच्यते ।
ऋचश्चतस्रः केचित्तु पञ्च षट् सप्त चापरे ॥ ३ ॥

ऋचः षोडश चाप्यन्ये तथाष्टादश चापरे ।
अधीयते तु पुंसूक्तं प्रतिशाखं तु भेदतः ॥ ४ ॥

पुरुष सूक्त की ऋचाओं के विषय में शाखानुसार भिन्न-भिन्न मतभेद का निरूपण—यह पुरुषसूक्त अनेक प्रकार के मतों से युक्त है । कोई इसमें चार ही ऋचायें बतलाते हैं । कोई पाँच, कोई छः और कोई सात ऋचायें ही मानते हैं । कोई सोलह ऋचायें तथा कोई अन्य अट्ठारह ऋचायें मानते हैं इस प्रकार शाखा के भेद होने से लोग इसे भिन्न-भिन्न रूपों में मानते हैं ॥ ३-४ ॥

पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यप्रमेयप्रदर्शनम्

समस्तजगदुत्पत्तिहेतुः स्वर्गापवर्गदः ।
पौरुषो मानुषो यज्ञः सूक्तेऽस्मिन् प्रतिपाद्यते ॥ ५ ॥

पुरुष सूक्त में प्रतिपाद्य प्रमेय विषय का प्रदर्शन—इस सूक्त में संसार की उत्पत्ति का मूल एवं स्वर्ग तथा मोक्ष देने से पुरुष-यज्ञ या मानुष-यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है ॥ ५ ॥

आद्यानां चतसृणामृचां वासुदेवादिचातुरात्म्यस्वरूपविवेचकत्वम्

तत्राद्याभिश्चतसृभिश्चातुरात्म्यं विविच्यते ।

अब इस सूक्त की आदि की चार ऋचाओं से वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप चातुरात्म्य परब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हैं ॥ ६ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमि ँ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।

तत्राद्यमन्त्रस्य लक्ष्मीपतित्वपरिष्कृतवासुदेवाख्यप्रथमव्यूहप्रतिपादकत्वम्

यः परः पुण्डरीकाक्षः परमात्मा सनातनः ॥ ६ ॥
या च सा जगतां योनिर्लक्ष्मीस्तद्धर्मधर्मिणी ।
भगवान् वासुदेवोऽसावाद्यया प्रतिपाद्यते ॥ ७ ॥

जो परात्पर पुण्डरीकाक्ष सनातन परमात्मा हैं और सारे संसार की सृष्टि की कारणभूता महालक्ष्मी, जिन विष्णु की धर्मपत्नी हैं वही भगवान् वासुदेव इस प्रथम ऋचा से प्रतिपादित किये गए हैं ॥ ६-७ ॥

मन्त्रस्य प्रतिपदमर्थं वर्णयितुं सहस्रशीर्षशब्दस्य श्रियः पतित्वपरत्वप्रदर्शनम्

सहस्रा सहगा यस्य सहभावमुपेयुषी ।
श्रीर्नाम परमा शक्तिः पूर्णषाड्गुण्यविग्रहा ॥ ८ ॥
निःसक्तासक्तको यश्च नित्यं सन् सकलाश्रयः ।
सहस्रशीर्ष इत्येवं भगवान् परिगीयते ॥ ९ ॥

'सहस्रशीर्षा' इस सूक्त के प्रत्येक पद का अर्थ वर्णन करने के लिए 'सहस्रशीर्षा' इस पद का श्रियःपतित्व रूप अर्थ प्रदर्शन—जिनकी सहस्रों सङ्ख्या वाली

सहगामिनी एवं उनके प्रत्येक कार्य में सहयोग देने वाली, पूर्ण और ऐश्वर्यादि समस्त षड्गुणों से सम्पन्न विग्रह वाली, श्री नाम की जो परमा शक्ति है, जो निरासक्त तथा आसक्ति वाले हैं और जो नित्य होकर भी सारे जगत् के आश्रय है उन्हीं भगवान् को सहस्रशीर्ष कहा जाता है ॥ ८-९ ॥

पुरुषशब्दस्यावाप्तसमस्तकामत्वपरत्वम्

पूर्णत्वात् पुरुषो नित्यं पृणातेः पूरणार्थकात् ।

प्रथम ऋचा के 'पुरुष' पद का 'समस्त कामनाओं से परिपूर्ण' होने का प्रतिपादन—'पीञ्' धातु के पूरणार्थक होने से जो समस्त कामनाओं से परिपूर्ण है वही पुरुष है ॥ १० ॥

'सहस्राक्ष'शब्दस्य सहस्रत्वगुणविशिष्टवद्धात्मवैशिष्ट्यपरत्वम्

अश्नोतेरथवाश्नातेरक्षोऽजेरञ्चतेरुत ॥ १० ॥
अक्षः पुरुष उद्दिष्टो यः प्रकृत्याश्रितो विभुः ।

सहस्राक्ष पद का सहस्रत्वगुणविशिष्टवद्ध होने से विशिष्टार्थ का प्रतिपादन—इसमें सहस्र शब्द का अर्थ प्रथम कह आये हैं केवल 'अक्ष' शब्द का अर्थ प्रतिपादित करते हैं। अश्नोति (सर्वत्र व्याप्त) अश्नाति (सबको खा जाने वाला) अजति (सर्वत्र गमनशील) अथवा अञ्चति (व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु) से अक्ष शब्द की निष्पत्ति हुई है। जो 'पुरुष' रूप अर्थ का वाचक है। इस प्रकार प्रकृति जिसके अधीन है वह व्यापक विभु अक्षपद से वाच्य है ॥ १०-११ ॥

सहस्रपाच्छब्दस्य सहस्रत्वगुणविशिष्टप्रकृतिवैशिष्ट्यपरत्वम्

पद्यतेः परिणामार्थात् पादित्येष निरुच्यते ॥ ११ ॥
पादिति प्रकृतिः प्रोक्ता सा नित्यपरिणामिनी ।

'सहस्रपाद' शब्द के 'सहस्रत्वगुणविशिष्ट प्रकृतिविशिष्ट' इस अर्थ का प्रतिपादन—पद धातु का अर्थ परिणाम होता है इसलिए 'पद्यते' इस व्युत्पत्ति से 'पाद्' शब्द की निष्पत्ति हुई। नित्य परिणामिनी होने से प्रकृति को पाद् कहा जाता है ॥ ११-१२ ॥

प्रकृतिपुरुषयोः सहस्रशब्दप्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम्

षण्णां गुणानां मध्ये या शक्तिः सा हस्र उच्यते ॥ १२ ॥
प्रधानपुरुषौ तस्याः सृतौ सर्गे सनातनौ ।
तामेवापि श्रितावन्ते तौ सहस्रावतः स्मृतौ ॥ १३ ॥

प्रकृति एवं पुरुष रूप अर्थ में सहस्र शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त प्रदर्शित करना—छओं गुणों ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य के मध्य रहने वाली जो शक्ति है उसे 'साहस्र' कहा जाता है। उस शक्ति का सर्वदा सृष्टि में प्रधान और पुरुष ही आश्रय हैं। इसी प्रकार प्रकृति तथा पुरुष ये दोनों भी उसी शक्ति के आश्रित हैं। इसलिए प्रकृति और प्रधान को सहस्रवान् कहा जाता है ॥ १२-१३ ॥

वासुदेवस्य प्रकृतिपुरुषवैशिष्ट्यनिगमनम्

सहस्रपुरुषाव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

भगवान् वासुदेव का ही प्रकृति और पुरुष से विशिष्ट उभय अर्थ के प्रतिपादकत्व का कथन—इस प्रकार भगवान् वासुदेव ही सहस्रपुरुष, अव्यक्त, सहस्राक्ष एवं सहस्रपाद हैं ॥ १४ ॥

उत्तरार्धस्य तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन कारणगतापरिच्छिन्नत्वगुणपरत्वप्रदर्शनम्

स भूमिं विश्वतो वृत्वेत्येतेनैव निरूप्यते ॥ १४ ॥
यदतीत्य सृतं विश्वं नानासत्तात्मनः स्थितिः ।
कार्ये हि कारणेयत्ता पयसो दधिसम्भवे ॥ १५ ॥
कार्यं सत्सन्ततौ क्वापि कार्येयत्तैव कारणे ।
मधूच्छिष्टमये पिण्डे यथाकारवियोगिनी ॥ १६ ॥
नैवं भगवतः सर्गे प्रतिसर्गेऽपि वा सति ।
कार्येयत्तात्वमस्तीति स भूमिमिति वर्ण्यते ॥ १७ ॥
भगवत्यार्जितानीति शुद्धाशुद्धमयानि च ।
भूमिं जगदुपादानं भूमिशक्तिरिहोच्यते ॥ १८ ॥
शुद्धाशुद्धविभागो यः कालपुंप्रकृतिस्थितिः ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा विष्टभ्य स्वेन तेजसा ॥ १९ ॥
रत्नसङ्कल्पस्वरूपेण प्रभवाप्ययवेलयोः ।
अत्यतिष्ठदतीत्यैव स्थितो भूयो दशाङ्गुलम् ॥ २० ॥
दशाङ्गुलिभिरानन्त्यं कारणस्योपदिश्यते ।

'पुरुषसूक्त' की प्रथम ऋचा के उत्तरार्ध का तात्पर्य निरूपण करते हुये उसके कारण में रहने वाला अपरिच्छिन्नगुणपरत्व प्रदर्शित करना—'उत्तरार्ध' की 'स भूमिं विश्वतो वृत्वा' इस ऋचा से यह निरूपण करते हैं कि जो विश्व का अतिक्रमण करके नाना सत्तात्मक नाम रूपों से व्याप्त है (द्र० ४.५६) । कारण की इयत्ता कार्य में ही देखी जाती है जैसे दूध रूप कारण की इयत्ता दधि की उत्पत्ति में है । कार्य तो कारण से ही उत्पन्न होता है इसलिए कहीं-कही कारण में भी कार्य की इयत्ता होती है । जैसे 'मधूच्छिष्टमय-पिण्ड' में मधु का आकार लुप्त हो जाता है । किंतु सृष्टि की उत्पत्ति अथवा प्रलय रूप कार्य में कारणरूप भगवान् के विषय में यह नियम लागू नही होता अर्थात् उस कारण रूप परमात्मा की इयत्ता उसके कार्य में नहीं होती इसलिए भूमि को व्याप्त कर वह स्थित है ऐसा कहते हैं । (द्र० २.२५,२८,४३,४४) । जितनी भी शुद्धाशुद्धमयी (द्र० ६.६.७) विभूतियाँ हैं वे भगवान् से ही उत्पन्न हुई हैं । भूमि ही इस जगत् का उपादान कारण है, इसलिए उसे भूमि शक्ति कहते हैं । वह परमात्मा शुद्धाशुद्ध के विभाग कर्त्ता भगवान् की स्फूर्त्ति रूपा व्यूहविभवात्मिका भूति शुद्धमयी तथा तन्मूलक सृष्टि शुद्धेतरा अशुद्धमयी शक्ति है (द्र० ६.६.७) जिसमें काल पुरुष और प्रकृति की स्थिति है और जो अपने तेज से पृथ्वी को

स्थिर कर उसमें चारों ओर से व्याप्त है । वह केवल उसमें ही मात्र व्याप्त नहीं है बल्कि सृष्टि के जन्म एवं प्रलय काल की वेला में वह अपने सङ्कल्प स्वरूप से उसका अतिक्रमण कर उसके ऊपर भी दश अङ्गुल व्याप्त होकर स्थित है । इस प्रकार यहाँ 'दशाङ्गुल' शब्द से कारण की अनन्तता सिद्ध की गई है । यहाँ तक वासुदेवात्मक प्रथमव्यूह का व्याख्यान कहा गया ॥ १४-२१ ॥

द्वितीयमन्त्रस्य सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वप्रतिपादनम्

अथ सङ्कर्षणावस्था जगद्धेतुर्निरूप्यते ॥ २१ ॥
यदिदं दृश्यते विश्वं भूतभव्यात्मरूपकम् ।
इदं पुरुष एवादौ सिसृक्षायामभूत् किल ॥ २२ ॥

दूसरे मन्त्र का सङ्कर्षण नामक द्वितीय व्यूह के रूप में प्रतिपादन—अब सङ्कर्षणावस्था रूप जगत् के हेतु का निरूपण करते हैं । यह भूतभव्यात्मक जो विश्व दिखाई पड़ रहा है वह पूर्व में सृष्टि की सिसृक्षा काल में पुरुष रूप ही था ॥ २१-२२ ॥

मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्य सङ्कर्षणपरत्वोपपादनम्

पुरुषः स्यन्दति व्यक्तं सम्यग्विज्ञानयोजनात् ।
अतः पुरुष इत्येवं सङ्कर्षण उदीर्यते ॥ २३ ॥

मन्त्र में आये हुये 'पुरुष' शब्द का सङ्कर्षणपरत्व प्रतिपादन—सम्यग्विज्ञान से युक्त किये जाने के कारण ही स्पष्ट रूप से पुरुष गतिशील होता है । इसलिए यहाँ आये हुये पुरुष शब्द का अर्थ सङ्कर्षण किया गया है ॥ २३ ॥

उत्तरार्धेन सङ्कर्षणस्य ज्ञानोपदेष्टृत्वनिबन्धनमोक्षप्रदत्वप्रतिपादनम्

तिलकालकवद् विश्वं बिभ्रच्चिदचिदात्मकम् ।
सङ्कर्षण उदेति स्म स एवं पुनरुच्यते ॥ २४ ॥

तृतीय मन्त्र के उत्तरार्ध से द्वितीय व्यूह सङ्कर्षण का ज्ञानोपदेष्टृत्व निबन्धन मोक्षप्रदायकत्व वर्णन—जो काले तिल के समान सारे चिदचिदात्मक विश्व को धारण करते हुये सङ्कर्षण रूप से उदीयमान है ॥ २४ ॥

उतामृतत्वस्येशान इति तस्यार्थ उच्यते ।
अन्नेन भोग्यभूतेन प्रकृतिप्राकृतात्मना ॥ २५ ॥
कालसङ्कलितेनैव नानाकारविधाजुषा ।
अचिदंशेन जीवात्मा यश्चिदंशोऽधिरोहति ॥ २६ ॥
स्वस्यासम्बन्धपूर्वं यः पूर्वसङ्गवशादिह ।
तस्य सद्गुणसंसर्गान्नानाबन्धक्षये सति ॥ २७ ॥
अमृतत्वं स्वरूपाविर्भावमोक्षापराह्वयम् ।
तस्य सङ्कर्षणो देव ईशानो ज्ञानदेशनात् ॥ २८ ॥

'उतामृतत्वस्येशान' इस मन्त्र का अर्थ कथन—काल द्वारा सङ्कलित अनेक प्रकार

के आकार वाले प्रकृति प्राकृतात्मक भोग्यभूत अन्न के अचिदंश से जो चिदंश जीवात्मा वृद्धि को प्राप्त करता है और जो असङ्ग आत्मा पूर्व में सङ्ग के वशीभूत हो जाता है। पुनः सद्गुण के संसर्ग से जब उसके बन्धन विनष्ट हो जाते हैं, तब वह अमृतत्वस्वरूप को प्राप्त कर लेता है, जिसकी दूसरी संज्ञा मोक्ष भी है। उसका कारण ज्ञानोपदेष्ट्रत्व होने के कारण ईशान है। जिन्हें सङ्कर्षण देव कहा जाता है॥ २५-२८॥

तृतीयमन्त्रस्य प्रद्युम्नाख्यतृतीयव्यूहपरत्वप्रतिपादनम्

संसारानलसन्तप्तचेतनानुजिघृक्षया।
सङ्कर्षणोदयो विष्णुरुच्यतेऽथ तृतीयया॥ २९॥
एतावानस्य महिमा विष्णोः सङ्कर्षणात्मनः।
यदयं धृतवान् विश्वं समुन्मीलनमादिमम्॥ ३०॥
ज्यायानतोऽपि पुरुषः प्रद्युम्न उपकारतः।

तृतीय मन्त्र का प्रद्युम्न नामक तृतीय व्यूह रूप के अर्थ में प्रतिपादन—इस प्रकार संसार रूप अग्नि से जलते हुये जीवों पर (ज्ञान द्वारा मोक्ष प्रदान करने के लिए) दया करने के लिए सङ्कर्षण देव का उदय प्रतिपादित किया गया। इसलिए 'एतावानस्य महिमा' इस तृतीय ऋचा से सङ्कर्षणात्मक विष्णु की इतनी महिमा प्रतिपादित की गई कि इन्होंने ही पूर्व में समुन्मीलित सृष्टि को धारण किया है। किन्तु उपकार के कारण प्रद्युम्न रूप पुरुष इससे भी अधिक हैं॥ २९-३१॥

मन्त्रगतेन पुरुषशब्देन प्रद्युम्नस्य ज्यायस्त्वोपपादनम्

पुरू प्रकृतिपुंरूपौ पुरुषः सृजतीति यत्॥ ३१॥
विश्वोपकारचेष्टाभिर्ज्यायस्त्वं तस्य वर्ण्यते।

मन्त्र में 'ततो ज्यायांश्च पुरुषः' इसमें पुरुष शब्द के द्वारा प्रद्युम्न के श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन—यतः यह पुरुष अपने विश्व के उपकार की चेष्टाओं से प्रकृति और पुरुष का ही सृजन करता है इसलिए सङ्कर्षण की अपेक्षा उसका ज्यायस्त्व वर्णन किया गया है॥ ३१-३२॥

चतुर्थमन्त्रस्यानिरुद्धाख्यचतुर्थव्यूहपरत्वप्रतिपादनम्

ऋचा तुरीयया सूक्ते त्रिपादूर्ध्व उदैदिति॥ ३२॥
देवोऽपरिमितेहः सन्निरुद्धो निरूप्यते।

चतुर्थ मन्त्र का अनिरुद्ध नामक चतुर्थव्यूहपरत्व प्रतिपादन—अब पुरुषसूक्त में 'त्रिपादूर्ध्व उदैत्' इस चौथी ऋचा से अपरिमित सङ्कल्पों वाले अनिरुद्ध का निरूपण किया गया है॥ ३२-३३॥

मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्यानिरुद्धपरत्वोपपादनम्

पुरा सीदति कार्याणि कारयन् प्राणिनोऽखिलान्॥ ३३॥
फलानि पुरुषेभ्यश्च सनोति क्रिययार्चितः।

ततः पुरुष इत्येवमनिरुद्धोऽभिधीयते ॥ ३४ ॥

चौथी ऋचा में आये हुये पुरुष शब्द का अनिरुद्ध परक उपपादन—जो कार्य को कराता हुआ समस्त प्राणियों को दुःख देता है और क्रियापूर्वक अर्चना करने से पुरुष को उत्तम फल प्रदान करता है । इसलिए वही पुरुष (प्राणियों को दुःख-सुख प्रदान करने में स्वतन्त्र होने के कारण) अनिरुद्ध कहा जाता है ॥ ३३-३४ ॥

पुरि सन् सन् पुरीवायं पुरादूर्ध्वमुदैत् परात् ।
तदवस्थेन नाघ्रातमित्यर्थोऽयमिहोच्यते ॥ ३५ ॥
पादोऽस्यैकांश एवेह चेतनाचेतनात्मकः ।
अन्तर्यामितया व्याप्तिस्तत्तन्नियमनेच्छया ॥ ३६ ॥
एतदेव व्यनक्तीह ततो विष्वङ्ङिति त्वृचा ।
विष्वक् समन्ततो भूत्वा व्यक्रामत् प्राविशद् बहु ॥ ३७ ॥
साशनानशने प्रोक्ते चेतनाचेतने उभे ।
तस्माद् विराडिति प्रोक्ता विराड् विद्या पराह्वया ॥ ३८ ॥
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा स पूरुष इहोच्यते ।

पुर में अथवा पुरी के समान यह अन्य पुरों की अपेक्षा ऊपर रहता है । उसको वैसा रहने से वह आघ्रात नहीं होता इसलिए ऐसा अर्थ किया गया है । चेतना-चेतनात्मक जगत् को नियन्त्रित करने के लिए वह अन्तर्यामी रूप से भी व्याप्त रहता है । इसलिए 'ततो विष्वङ्' इस ऋचा से यही बात स्पष्ट की गई है । 'विष्वक्' अर्थात् चारों तरफ से उत्पन्न होकर 'व्यक्रामत' अर्थात् अनेक प्रकार से प्रविष्ट है । 'साशनानशने उभे' इस पद से चेतनाचेतनात्मक जगत् कहा गया है इसलिए वह विराट् है । परा विद्या को ही विराट् कहा जाता है । हिरण्यगर्भ विश्वात्मा ही पुरुष पद से कहा जाता है ॥ ३५-३९ ॥

अवशिष्टानां चतुर्दशमन्त्राणामर्थस्य लोकतो ज्ञेयत्वकथनपूर्वकं पुरुषसूक्तार्थनिगमनम्

शेषं तु लोकतः सिद्धमित्ययं सूक्त ईदृशः ॥ ३९ ॥

यहाँ तक चार ऋचाओं के अर्थ का प्रतिपादन किया गया । अवशिष्ट चौदह मन्त्र लोक से भी जाने जा सकते हैं । इसी बात को आगे के श्लोक से कहते हैं—शेष सूक्त का अर्थ लोक सिद्ध है । यहाँ तक पुरुष सूक्त का अर्थ प्रतिपादित किया गया ॥ ३९ ॥

तन्त्रान्तरे विस्तरेण निरूपितस्य श्रीसूक्तार्थस्यातिसंक्षेपेण सूचनम्

हिरण्यवर्णां श्रीसूक्तं कृतोऽन्यत्रास्य विस्तरः ।
वर्णो वरयते रूपं वर्णो वर उदीरितः ॥ ४० ॥
हितश्च रमणीयश्च यस्या वर्ण इति स्थितिः ।
हिरण्यवर्णा सा देवी श्रीशक्तिः परमामृता ॥ ४१ ॥
तदेतत् सूक्तमित्युक्तं मिथुनं परचिह्नितम् ।

आदावन्योन्यमिश्रत्वादन्योन्यप्रतिपादकम् ॥ ४२ ॥

अन्य तन्त्रो में विस्तारपूर्वक निरूपित श्रीसूक्त के अर्थ का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन—'हिरण्यवर्णाम्' इत्यादि श्रीसूक्त का अन्यः [illegible]० लक्ष्मीतन्त्र) वर्णन किया गया है जो रूप को वरण करे उसका नाम वर्ण है। अथवा वर्ण शब्द वर का वाचक है। इसलिए हितकारी और मनोहर जिसका वर्ण हो वही हिरण्यवर्णा है। इसलिए इन दोनों ही सूक्तों का दिङ्मात्र निर्देश किया गया। दोनों ही दोनों में मिले हुये हैं और दोनों ही एक दूसरे के प्रतिपादक है ॥ ४०-४२ ॥

नियमपूर्वकं यथोक्तसूक्तद्वयनिष्ठस्य मोक्षप्राप्तिः फलम्

नियतो नियताहारो निरतो नियतेन्द्रियः।
भजन् सूक्तद्वयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४३ ॥

नियमपूर्वक ऊपर कहे गए दोनों सूक्त में निष्टा रखकर उसका पाठ करने से मोक्ष प्राप्ति रूप फल निरूपण—नियमपूर्वक रहकर नियत आहार करते हुये इन्द्रियों को वश में करने वाला पुरुष निष्टापूर्वक इन दोनों सूक्तों का पाठ करे तो वह विष्णुपद को प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

वराहमन्त्रे स्थूलार्थस्य लोकतो ज्ञेयत्वकथनम्

वाराहो नाम यो मन्त्रो ह्यत्यनुष्टुबितीरितः।
तस्य सांसर्गिकी मुद्रा विदिता लोकतस्तव ॥ ४४ ॥

वराहमन्त्र में स्थूल अर्थ का ज्ञान लोक से हो जाता है इस बात का प्रतिपादन—वराह नामक मन्त्र जिसका अनुष्टुप् छन्द है उसकी सांसर्गिकी मुद्रा तो आपको लोक से भी ज्ञात हो गई है ॥ ४४ ॥

तस्यैव संक्षेपतः सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

अस्य प्रतिपदार्थो यो मत्तस्तं त्वं निशामय।
वराहादावभिव्यक्तं यस्य रूपं सनातनम् ॥ ४५ ॥
वराहरूपो भगवान् वसुधाहरणोद्यतः।
संसारो रात्रिरुद्दिष्टो मोक्षो वरमहः स्मृतः ॥ ४६ ॥
वराहरूप उद्दिष्टो वरस्याह्नो निरूपणात्।

उस वराहमन्त्र का सूक्ष्मार्थ निरूपण—अब इसके प्रत्येक पाद का अर्थ आप मुझसे सुनिए। सर्वप्रथम जिसका सनातन रूप वराहादि में अभिव्यक्त हुआ। वसुधा का उद्धार करने के लिए उद्यत वहीं भगवान् वराह रूप वाले हैं। यह संसार प्राणियों की रात्रि है और मोक्ष वरमहः (श्रेष्ट दिन) कहा जाता है। इसलिए वरस्य अह्नः (मोक्षरूप श्रेष्ठ दिन के) निरूपण करने के कारण यह मन्त्र भी वराह रूप कहा जाता है ॥ ४५-४७ ॥

तस्यैव परार्थनिरूपणम्

अशेषभुवनाधारो गोपनश्चैव सर्वदा ॥ ४७ ॥

प्रज्ञानामपि चाधारो रक्षोदैत्यदवानलः ।
पवित्रः सर्वलोकानामप्रमेयः सनातनः ॥ ४८ ॥
परमात्मा वराहोऽभूदित्थं स पर ईरितः ।
दिगियं दर्शिता सम्यगेषा मन्त्रान्तरे गतिः ॥ ४९ ॥
न्यायेनानेन मन्त्राणां गतिं पिण्डं निरूपय ।

अब उसी के परार्थ का निरूपण—वह भगवान् का रूप समस्त विश्व का आधार हैं और सर्वदा जगत् की रक्षा करने वाला है । सबकी बुद्धि का आधार तो है ही, राक्षस तथा दैत्यों को भस्म करने के लिए वनाग्नि स्वरूप है । पवित्र, सारे लोकों से अप्रमेय एवं सनातन परमात्मा वराह रूप में अवतीर्ण हुए हैं इसलिए वे ही 'पर' शब्द से कहे जाते हैं । यह व्याख्या मैंने दिङ्मात्र प्रदर्शित की है । इसी प्रकार मन्त्रों के अन्य शब्दों को तथा अन्य मन्त्रों की गति तथा स्वरूप जानना चाहिए ॥ ४७-५० ॥

शास्त्रार्थमुपसंहर्तुं संक्षेपतः सुदर्शनगतिनिरूपणम्

भूयश्च शृणु संक्षेपात् सुदर्शनगतिं प्रति ॥ ५० ॥
निमिषच्चोन्मिषच्चैव चरं चाचरमेव च ।
दिव्यं च प्राकृतं चैव सूक्ष्मं च स्थूलमेव च ॥ ५१ ॥
ह्रस्वं दीर्घं च यत् किञ्चिदीशितव्यमथेश्वरम् ।
विज्ञानं यदविज्ञानं सुखं वा यदि वासुखम् ॥ ५२ ॥
इति द्वन्द्वपदाद्यैर्यद् वस्तु किञ्चिद् विकल्प्यते ।
सुदर्शनसमुन्मेषं तत्तद् विद्धि मुनीश्वर ॥ ५३ ॥

इस शास्त्र का उपसंहार करने के लिए सुदर्शन की गति का निरूपण—अब सुदर्शन की गति के विषय में संक्षेप से सुनिए । यह समस्त जड़ चेतन, चर-अचर, दिव्य प्राकृत, सूक्ष्म स्थूल, छोटा-बड़ा, राजा-प्रजा, विज्ञान-अविज्ञान, सुख-दुःख जो भी वस्तु द्वन्द्व पद से विकल्प के रूप में (सद्सद्) के रूप में व्यवहृत होती है, हे मुनीश्वर ! उन-उन सभी वस्तुओं को सुदर्शन का उन्मेष समझना चाहिए ॥ ५०-५३ ॥

शास्त्रार्थसंक्षेपः

लेशतो भगवानुक्तः स्वरूपगुणवैभवैः ।
तद्धर्मधर्मिणी शक्तिस्तस्य तत्त्वेन वर्णिता ॥ ५४ ॥
तस्या अत्यल्प उन्मेषो भूतिर्भाव्या त ईरिता ।
शुद्धाशुद्धमयी व्यक्तिस्तस्यास्तत्त्वेन वर्णिता ॥ ५५ ॥
भावकश्चापि शक्त्यंशः सङ्कल्पो वैष्णवः परः ।
रूपतो वर्णितः सम्यक् सुदर्शनपराह्वयः ॥ ५६ ॥
देशकालादिका व्याप्तिस्तस्य तत्त्वेन वर्णिता ।
प्राणक्रिया बलं तेजः सङ्कल्पो वैष्णवं यशः ॥ ५७ ॥
सुदर्शनं परोद्योगः प्राणो विष्णुसमुद्यमः ।

अव्याहतो महायोगो योगात्मा योग भावनः ॥ ५८ ॥
इत्यादिभिर्महाशब्दैस्तत्तदर्णविगाहिभिः ।
क्रियाशक्तिः परा विष्णोः शास्त्रे शास्त्रे निगद्यते ॥ ५९ ॥
यथा कारणतां याति यथैवाधारतामपि ।
यथा प्रमाणतां याति यथा याति तदर्थताम् ॥ ६० ॥
यथा याति विधायाभिस्तत्तदर्थाधिकारिताम् ।
निष्कलेन स्वरूपेण तथा दिव्योऽभवद्विधिः ॥ ६१ ॥
यथा च मध्यमं रूपं यन्त्रं तदुभयात्मकम् ।
सकलं यच्च तद्रूपं शस्त्रास्त्रमयमुज्ज्वलम् ॥ ६२ ॥
दिव्याः सौदर्शना व्यूहा वैश्वरूप्यं च तन्महत् ।
राज्ञोऽपि विजयः सर्वो रोदसीविजयस्तथा ॥ ६३ ॥

इस शास्त्र के समस्त विषयों का संक्षिप्त रूप से कथन—इस शास्त्र में विष्णु के स्वरूप, गुण एवं वैभव का संक्षेप में वर्णन किया गया है । उनके धर्म से धर्मिणी महाशक्ति का भी तत्त्वतः वर्णन किया गया है । उस विष्णुशक्ति के अत्यल्प (५.१-१४) उन्मेष, भाव्या विभूति (द्र० ७.६८) तथा शुद्धाशुद्धमयी रूप में उसकी अभिव्यक्ति का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ में विष्णु के उत्कृष्ट सङ्कल्प स्वरूप भावक नाम के शक्त्यंश, जिसे सुदर्शन भी कहा जाता है, उनके स्वरूप का तथा देश काल में उनकी व्याप्ति का वर्णन किया गया है । उनकी प्राणक्रिया, वल, तेज, विष्णु का सङ्कल्प, विष्णु का यश, सुदर्शन का उद्योग, विष्णु का समुद्यम, अव्याहत महायोग, योगात्मा इत्यादि तत्तद्वर्णों से कहे जाने वाले महाशब्दों से वर्णन किया है । प्रत्येक शास्त्र में जिस प्रकार विष्णु की क्रिया शक्ति, कारणता, आधारता, प्रमाणता और तत्तदर्थता को प्राप्त होती है और जिस प्रकार इनके अनुष्ठान से लोग पुरुषार्थ चतुष्टय के अधिकारी बनते हैं, अपने निष्कल स्वरूप से जिस प्रकार परमात्मा का अवतार होता है । जिस प्रकार उनका सुदर्शन का मध्यम रूप मन्त्र है और यन्त्र उभयात्मक है, जिस प्रकार से शस्त्रास्त्रयुक्त उनका उज्ज्वल रूप है । जिस प्रकार सुदर्शन व्यूह है तथा जिस प्रकार उनकी विश्वरूपता है । इस यन्त्र के प्रभाव से जिस प्रकार राजा की विजय होती है एवं द्यावा पृथ्वी की विजय होती है, इसके समस्त विषयों का वर्णन यहाँ किया गया है ॥ ५४-६३ ॥

कृत्स्नो योगविधिश्चैव न्यासयोगविधिस्तथा ।
नानोपद्रवशान्तिश्च व्यवस्था योगगोचरा ॥ ६४ ॥
ब्रह्मास्त्रादिस्वरूपं च तत्तन्मन्त्रविधिस्तथा ।
महाभिषेचनविधिरस्त्रयोगविधिस्तथा ॥ ६५ ॥
ध्वजादिमन्त्रयोगाश्च सेतिहासविनिश्चयाः ।
स्थूलसूक्ष्मपरात्मानो दिव्यमन्त्रविनिश्चयाः ॥ ६६ ॥
इति ते निखिलेनार्था दर्शितास्ते मुनीश्वर ।
निधाय हृदये तत्त्वं स्वस्थो भव निरामयः ॥ ६७ ॥

योगविधियों का, न्यास योग की विधि, सुदर्शन के प्रभाव से नाना प्रकार के उपद्रव की शान्ति, योगशास्त्र में कही गई योगाङ्गों की व्यवस्था, ब्रह्मास्त्रादि का स्वरूप, उन-उन मन्त्रों की विधि, यन्त्र के महाभिषेचन की विधि, अस्त्र योग विधि, इतिहास के साथ ध्वजादि मन्त्र योग, स्थूल, सूक्ष्म तथा परभेद से दिव्य मन्त्रों का विनिश्चय आदि सभी अर्थ इस ग्रन्थ में, हे मुनीश्वर ! मैंने आपसे कहा। अतः आप इस ग्रन्थ को अच्छी तरह हृदय में धारण कर स्वस्थ तथा निरामय हो जाइए ॥ ६४-६७ ॥

व्याकृताः संशयाः सर्वे नारदर्षे मनःस्थिताः ।
करामलकवच्चैव दिव्या सौदर्शनी गतिः ॥ ६८ ॥
आदर्शनस्वरूपेण गुणैः सफलवैभवैः ।
संहितेयं समाख्याता नानाशास्त्रावगाहिनी ॥ ६९ ॥

हे महामुने श्रीनारद ! मैंने इस ग्रन्थ के द्वारा आपके सभी संशयों को निराकृत कर दिया है। इसके अनुष्ठान से करामलकवद् सुदर्शन की गति भी आपको प्रत्यक्ष हो जायगी। दर्पण के सामने अपने स्वच्छ रूप से, गुण से, फल से तथा वैभव से युक्त यह अहिर्बुध्न्यसंहिता जिसमें नाना प्रकार के शास्त्रों का अवगाहन है उसे मैंने आपसे कहा ॥ ६८-६९ ॥

एतत्संहितोपदेशानर्हजनपरिगणनम्

पञ्चरात्रमयी दिव्या सांख्ययोगादिसंमिता ।
संहितेयं महागुह्या नानामन्त्रमयी परा ॥ ७० ॥
नावासुदेवभक्ताय त्वया देया कथञ्चन ।
नास्तिके भिन्नमर्यादे कृतघ्नेऽनृतवादके ॥ ७१ ॥
निःस्वाध्यायवषट्कारे देवब्राह्मणदूषके ।
ब्रह्मचर्यव्रतभ्रष्टे पञ्चयज्ञपराङ्मुखे ॥ ७२ ॥
दूषणेऽपि च वेदानां ब्राह्मणे मन्त्रवर्जिते ।

इस संहिता के उपदेश के लिए अनधिकारी व्यक्ति की गणना—सांख्ययोगादि के समान यह पञ्चरात्रमयी अहिर्बुध्न्यसंहिता परम गोपनीय है। यह नानामन्त्रमयी है और परा है। जो वासुदेव की भक्ति नहीं करता उसे इस संहिता का उपदेश नहीं करना चाहिए। नास्तिक को, मर्यादा (शास्त्र सेतुरूप) का उल्लङ्घन करने वाले को, कृतघ्न को, झूठ बोलने वाले को, स्वाध्याय तथा वषट्कार न करने वाले को, देवता तथा ब्राह्मण की निन्दा करने वाले को, ब्रह्मचर्य व्रत से भ्रष्ट, पञ्चयज्ञ से पराङ्मुख, वेद को दूषित करने वाले, अतएव मन्त्र वर्जित ब्राह्मण को भी इस संहिता का उपदेश नहीं करना चाहिए ॥ ७०-७३ ॥

योग्याधिकारिपरिगणनम्

वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमेधिनि ॥ ७३ ॥
ब्रह्मचारिणि वा सम्यग् गुरुस्वाध्यायतत्परे ।

वनस्थे वा व्रतोपेते भिक्षौ वा तत्त्ववित्परे ॥ ७४ ॥
कर्मणा मनसा वाचा भक्ते देवे जनार्दने ।
पञ्चरात्रप्रिये नित्यं वेदविद्यासुनिष्ठिते ॥ ७५ ॥
वक्तव्येयं परा विद्या सर्ववेदान्तबृंहणी ।

अनर्ह व्यक्ति कह कर संहितोपदेश के लिए योग्य अधिकारी का निरूपण—जो वेदविद्याव्रत में स्नान कर चुका हो, श्रोत्रिय एवं गृहस्थ हो अथवा ब्रह्मचारी हो, जिसने गुरु से स्वाध्याय किया हो, वानप्रस्थ हो अथवा तत्त्ववेत्ता सन्यासी हो, जो कर्मणा मनसा वाचा भगवान् जनार्दन में भक्ति रखता हो, जो पञ्चरात्र नामक ग्रन्थ में भक्ति रखने वाला हो, वेद विद्या में निष्ठा रखने वाला हो उसी को सर्ववेदान्तबृंहणी इस पराविद्या का उपदेश करना चाहिए ॥ ७३-७६ ॥

मङ्गलाचरणव्याजेन शास्त्रप्रमेयसारानुवादपूर्वकं शास्त्रसमापनम्

समस्तजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारहेतवे ।
सुदर्शनाभिधानायै नमः शक्त्यै क्रियात्मने ॥ ७६ ॥

नारदः—

अज्ञानतिमिरध्वंसभास्करायादिवेधसे ।
शिवङ्कराय भूतानां नमः शान्ताय तेजसे ॥ ७७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां पुरुषसूक्तश्रीसूक्तवाराहमन्त्रार्थनिरूपणं नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३८५३ ॥

* * *

अब मङ्गलाचरण के व्याज से शास्त्र के प्रमेयभूत सार का अनुवाद करते हुये इस शास्त्र की समाप्ति करते हैं—सारे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के हेतु भगवान् की सुदर्शन नामक क्रियाशक्ति को नमस्कार है । श्रीनारद ने कहा—अज्ञान रूपी तिमिर को ध्वंस करने के लिए भास्कररूप एवं प्राणियों का कल्याण करने वाले परमशान्त स्वरूप आदि वेधा महाविष्णु को नमस्कार है ॥ ७६-७७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के पुरुषसूक्त-श्रीसूक्तवराहमन्त्रार्थ निरूपण नामक उन्सठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिंन्दी पूर्ण हुई ॥ ५९ ॥

* * *

अथ षष्टितमोऽध्यायः

शास्त्रवैभवनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापों का विनाश कर देता है, उन सुदर्शन देव के दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ ।

भारद्वाजं प्रति दुर्वाससा वृत्तानुवादव्याजेनापेक्षितयावदर्थ-प्रतिपादकत्वरूपशास्त्रवैभवप्रपञ्चनम्

दुर्वासाः—

इत्येतन्नारदायादौ पृष्टः प्रोवाच शङ्करः ।
रहस्यं भगवज्ज्ञानं ज्ञानानामुत्तमं महत् ॥ १ ॥

दुर्वासा और भरद्वाज में परस्पर हुये संवाद के अनुवाद के व्याज से ग्रन्थकार इस ग्रन्थ में प्रतिपादित अहिर्बुध्न्य तथा श्रीनारद में हुये समस्त संवाद की सूची रूप शास्त्रवैभव को प्रपञ्चित करने का उपक्रम करते हैं—दुर्वासा ने कहा—हे महामुने ! भरद्वाज ! इस प्रकार सर्वप्रथम महर्षि श्रीनारद द्वारा पूछे जाने पर भगवान् विष्णु के विषय में सभी ज्ञानों में उत्तम तथा रहस्यपूर्ण ज्ञान को शङ्कर ने कहा ॥ १ ॥

शास्त्रस्यास्य प्राधान्येन जगज्जन्मादिकारणभूतब्रह्मस्वरूपरूपगुणविभवादि-प्रतिपादनपूर्वकं परदेवतानिष्कर्षकत्वम्

स्थित्युत्पत्तिप्रलयकृद् भूतानां यत्र चिन्त्यते ।
स विष्णुश्चिन्त्यते यत्र स्वरूपगुणवैभवैः ॥ २ ॥

जगत् के जन्मादि कारणभूत परब्रह्म स्वरूप, गुण तथा ऐश्वर्य का प्रतिपादन करने से इस शास्त्र द्वारा प्राधान्येन विष्णु का ही परदेवतात्व कथन—इस ग्रन्थ में प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले भगवान् विष्णु के स्वरूप, गुण तथा ऐश्वर्य का प्रतिपादन किया गया है ॥ २ ॥

प्राधान्येन भगवदिच्छाशक्तिभूतलक्ष्मीस्वरूपरूपगुणविभवादिप्रतिपादकत्वम्

यत्र सा शक्तिसङ्ख्याता विष्णोस्तद्धर्मधर्मिणी ।
शीतरश्मेरिव ज्योत्स्ना भावाभावानुगामिनी ॥ ३ ॥
अनन्या चान्यरूपा च ज्ञानानन्दक्रियामयी ।
महाविभूतिसंस्थाना निर्विकारा निरञ्जना ॥ ४ ॥
निःसक्तासक्तसन्मात्रा पूर्णा रिक्ता ऋतम्भरा ।
प्रत्यस्तमितभेदा सा समुन्मीलितभेदिनी ॥ ५ ॥
षडध्वविषयातीता षडध्वविषयात्मिका ।
निमेषोन्मेषरूपा सा भावाभावस्वलक्षणा ॥ ६ ॥
चिन्त्यते यत्र सा लक्ष्मीः स्वरूपगुणवैभवैः ।
भाव्यभावकरूपा सा शक्तिः शक्तिद्वयाभिधा ॥ ७ ॥
चिन्त्यते यत्र विस्पष्टं स्वरूपगुणवैभवैः ।
शुद्धाशुद्धस्वरूपा सा विष्णुशक्तिर्जगन्मयी ॥ ८ ॥
भूतिर्विचिन्त्यते यत्र भाव्यका यत्र वर्तते ।

इस शास्त्र में विष्णु की इच्छाशक्तिभूता महालक्ष्मी के स्वरूप, गुण तथा ऐश्वर्य का निरूपण—इस ग्रन्थ में विष्णु की शक्ति महालक्ष्मी का वर्णन है जो चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका के समान भावाभाव दोनों अवस्थाओं में उनका अनुगमन करने वाली महान् पतिव्रता हैं। यह महालक्ष्मी विष्णु से अभिन्न होते हुये भी भिन्न रूपा हैं। यह ज्ञान, आनन्द तथा क्रियामयी हैं। यह महाविभूति स्वरूपा, निर्विकारा एवं निरञ्जना हैं। अनासक्त होते हुये भी आसक्त रहने वाली है। सन्मात्रा, पूर्णा, रिक्ता एवं ऋतम्भरा हैं। यद्यपि समस्त प्रपञ्च का भेद उनमें अस्त हो जाता है जब कि सारे भेद उन्हीं से प्रगट होते हैं। वे षडध्व विषय से परे होने पर भी षडध्वविषयात्मिका हैं। निमेष (द्र० ४.७) एवं उन्मेष रूपा हैं (द्र० ३.२९) भावाभावा-स्वलक्षणा है। (द्र० ३.५) इस प्रकार की महालक्ष्मी का स्वरूप गुण एवं वैभव इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। उस महाशक्ति के भाव्यभावक रूप दो भेदों का भी इस ग्रन्थ में वर्णन है (७.६६-६८)। इस ग्रन्थ में जगन्मयी विष्णुशक्ति, जो शुद्धाशुद्धस्वरूपा है (द्र० ७.६९-७०), उनके स्वरूप, गुण तथा वैभव का वर्णन है। इतना ही नहीं उनकी भाव्यकाभूति (द्र० ७.६६) का भी चिन्तन प्रतिपादित है ॥ ३-९ ॥

तथा प्राधान्येन भगवत्क्रियाशक्तिभूतसुदर्शनस्वरूपादिप्रतिपादकत्वम्

उत्प्रेक्षारूपिणी शक्तिः सुदर्शनपराह्वया ॥ ९ ॥
सा पङ्कजा जगद्धातुर्भाविका यत्र चिन्त्यते ।
यत्र कारणरूपत्वं क्रियाशक्तेर्विचिन्त्यते ॥ १० ॥
साकारताकारता च शुद्धाशुद्धविभेदिता ।
चिन्त्यते यत्र विस्पष्टं विष्णुशक्तेः क्रियात्मनः ॥ ११ ॥

प्रमाणरूपता यत्र त्रिविधा परिचिन्त्यते ।
मर्यादास्त्रौघशस्त्रौघशास्त्रौघपरिभेदिता ॥ १२ ॥
पुरुषार्थात्मता शक्तेस्तथा तदधिकारिता ।
जगद्रक्षणरूपत्वं मन्त्रयन्त्रास्त्रविस्तृतम् ॥ १३ ॥
इति सौदर्शनं रूपं निष्कलं यत्र चिन्त्यते ।
नानाव्यूहसमुद्भेदं नानासंस्थानशोभितम् ॥ १४ ॥
चिन्त्यते सकलं रूपं यत्र सौदर्शनं महत् ।
जगद्रक्षणविध्वंससृजिशालि महोदयम् ॥ १५ ॥
सुदर्शनाङ्गसम्भूतमस्त्रजातमशेषतः ।
स्वरूपशब्दविक्रान्तैर्निपुणं यत्र चिन्त्यते ॥ १६ ॥

इसी प्रकार प्राधान्येन भगवत्क्रियाशक्तिभूत सुदर्शन के स्वरूपादि का भी यह ग्रन्थ प्रतिपादन करता है—भगवान् की उत्प्रेक्षारूपिणी शक्ति जिसका दूसरा नाम सुदर्शन है वही ब्रह्मदेव की पङ्कजा शक्ति है । जहाँ से विष्णु का सङ्कल्प सुदर्शन रूप में, जिसे भावक कहते हैं, स्थित है (द्र० ७.६६, १६.३१-३२) और उसे वहीं उसकी क्रियाशक्ति की कारणरूपता भी कही गई है । इस ग्रन्थ में स्पष्टरूप से विष्णु की क्रियाशक्ति का शुद्धाशुद्ध भेद वाली साकारता का भी वर्णन है (द्र० ५-७ अध्याय) । इस ग्रन्थ में मर्यादास्त्रौघ, शस्त्रौघ तथा शास्त्रौघ तीन भेदों से युक्त प्रमाणरूपता का भी वर्णन है (द्र० १०.४०-४२)। शक्ति की पुरुषार्थात्मता तथा उसकी अधिकारिता का भी वर्णन है (द्र० १४-१५ अध्याय) । इतना ही नहीं जगद्रक्षणरूप मन्त्र, यन्त्र तथा अस्त्र का भी विस्तार रूप से वर्णन है । (द्र० १४-१५ अध्यायपर्यन्त) नाना प्रकार के व्यूह भेदों से युक्त नाना प्रकार के संस्थानों से सुशोभित सुदर्शन के सकल और निष्कल रूप का भी इस ग्रन्थ में वर्णन है। ये सभी जगद् की रक्षा, विनाश तथा उत्पत्ति से युक्त एवं महान् अभ्युदय देने वाले हैं। प्रधानतया सुदर्शन के शरीर से उत्पन्न होने वाले समस्त अस्त्र समूहों का स्वरूप तथा पराक्रम का इस ग्रन्थ में वर्णन है (द्र० ३०.२१-४०) ॥ ९-१६ ॥

सांख्ययोगाद्यर्थप्रतिपादकत्वरूपवैभवान्तरसूचनम्

सांख्ययोगविधिर्यत्र कार्त्स्न्येन परिचिन्त्यते ।
विविधा मन्त्रयोगाश्च मन्त्राश्च विधयोऽखिलाः ॥ १७ ॥
नानासामर्थ्यभेदाश्च सेतिहासप्रविस्तराः ।
आत्मन्यासविधिश्चैव विधीनामुत्तमो विधिः ॥ १८ ॥
मन्त्रार्था विविधाश्चैव स्थूलसूक्ष्मपरात्मकाः ।
चिन्त्यन्ते यत्र विस्पष्टं विष्णुसङ्कल्पजृम्भिताः ॥ १९ ॥

यह ग्रन्थ सांख्ययोगादि के अर्थ का प्रतिपादकत्वस्वरूप अन्य वैभव का भी सूचक है—इस ग्रन्थ में सांख्य तथा योग की विधियों का पूर्णतया वर्णन है । (द्र० ३१.३२ अध्याय) अनेक प्रकार के मन्त्रयोग और उनकी अनेक प्रकार की विधियों का भी इस ग्रन्थ

में वर्णन हैं । इतिहास के विस्तार के साथ उन मन्त्रों के अनेक प्रकार के सामर्थ्यों के भेद इस ग्रन्थ में वर्णित हैं । सभी विधियों में उत्तम आत्मन्यास की विधि का इस ग्रन्थ में वर्णन हैं (द्र० ३७ अध्याय) । इस ग्रन्थ में विष्णु सङ्कल्प से उत्पन्न होने वाले स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भेद वाले अनेक मन्त्रों के अर्थ का भी वर्णन किया गया है ॥ १७-१९ ॥

एतच्छास्त्राधिकारिनिरूपणम्

तदेतदुपशान्तेन शान्तेन गुरुसेविना ।
अध्येयं तन्त्रसाराख्यमाहिर्बुध्न्यं हि शासनम् ॥ २० ॥

इस शास्त्र के अधिकारी का निरूपण—यह अहिर्बुध्न्य के द्वारा प्रतिपादित तन्त्रसार नामक शास्त्र गुरु की सेवा करने वाले, शान्तचिन्त एवं शान्तात्मा पुरुष को ही पढ़ना चाहिए ॥ २० ॥

अनधिकारिनिर्देशापूर्वकं तेभ्यः शास्त्रप्रदाननिषेधः

नाश्रोत्रियाय नाज्ञाय नाप्रातःस्नायिने तथा ।
न शठाय न दृप्ताय न कूटविधिसेविने ॥ २१ ॥
नानन्तेवासिने चैव नासंवत्सरवासिने ।
नैव देयं कृतघ्नाय नासूयानलशायिने ॥ २२ ॥

इस शास्त्र के अनधिकारी का निर्देश कर उन्हें इस शास्त्र को पढ़ाने का निषेध करते हुये ग्रन्थकार का निर्देश—यह ग्रन्थ अश्रोत्रिय को, मूर्ख को एवं जो प्रातःकाल में स्नान न करे उसे नहीं पढ़ाना चाहिए । शठ को अहङ्कारी को झूठ बोलने वाले को भी नहीं पढ़ाना चाहिए । जो अपना (आत्मीय) छात्र न हो, जो एक संवत्सर पर्यन्त अपने यहाँ निवास न करे, जो कृतघ्न हो तथा दूसरों की ईर्ष्या से जलने वाला हो उसे यह शास्त्र नहीं पढ़ाना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

योग्याधिकारिनिर्देशपूर्वकं तेभ्यः शास्त्रप्रदानाभ्यनुज्ञा

सुपुत्राय सुशिष्याय सर्वस्वप्राणदायिने ।
गुह्यगोपनशीलाय शास्त्रार्थस्थापकाय च ॥ २३ ॥
ऊहापोहसुदक्षाय मन्त्रवत् संस्कृताय च ।
देयमेतत् त्रिवर्णाय नित्यमध्यात्मशालिने ॥ २४ ॥

योग्य अधिकारी का निरूपण करते हुये उन्हें शास्त्र प्रदान की अभ्यनुज्ञा—आज्ञाकारी सुपुत्र एवं सुशिष्य, सर्वस्व एवं प्राण भी दे देने वाले, गुप्त रखने वाले, शास्त्र की रक्षा करने वाले, शास्त्र के अर्थ का सदैव प्रचार करने वाले, ऊहापोह में निपुण, मन्त्र के द्वारा सुसंस्कृत ऐसे अध्यात्मवेत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य साधक को ही इस शास्त्र का दान करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

शास्त्रवैभवनिगमनम्

षष्ट्यध्यायैः समुद्दिष्टा संहिता सेयमुत्तमा ।

यां ज्ञात्वा पुरुषः शश्वत् सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥
परा च मध्यमा चैव ये हि ते संहिते स्मृते ।
तदर्थः सकलोऽप्यत्र संक्षेपेण प्रदर्शितः ॥ २६ ॥

शास्त्र-वैभव का उपसंहार—यह वही उत्तम संहिता साठ अध्यायों में कही गई है जिसको जान लेने पर पुरुष सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है । परा और मध्यमा नाम की जो दो संहितायें हैं, उन दोनों संहिताओं का सभी अर्थ इसमें संक्षेप रूप से प्रदर्शित किया गया है ॥ २५-२६ ॥

ग्रन्थसमापनम्

नमः शिवाय शान्ताय नारदाय महर्षये ।
नमः सुदर्शनायाथ विष्णोः सङ्कल्परूपिणे ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शास्त्रवैभव-निरूपणं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३८८० ॥

॥ समाप्ता चेयमहिर्बुध्न्यसंहिता ॥

*

ग्रन्थ समापन—शान्तस्वरूप शिव को नमस्कार है । महर्षि श्रीनारद को नमस्कार है तथा विष्णु के सङ्कल्प स्वरूप सुदर्शन को भी नमस्कार है ॥ २७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शास्त्र-वैभव निरूपण नामक साठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ६० ॥

*

सुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रम्

(अहिर्बुध्न्यसंहितापरिशिष्टं)

प्रणम्य शिरसा देवं नारायणमशेषगम् ।
रमावक्षोजकस्तूरीपङ्कमुद्रितवक्षसम् ॥ १ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः पाराशर्यस्तपोधनः ।
हिताय सर्वजगतां नारदं मुनिमब्रवीत् ॥ २ ॥
ज्ञानविद्याविशेषज्ञं कर्पूरधवलाकृतिम् ।
वीणावादनसन्तुष्टमानसं मरुतां परम् ॥ ३ ॥
हिरण्यगर्भसम्भूतं हिरण्याक्षादिसेवितम् ।
पुण्यराशिं पुराणज्ञं पावनीकृतदिक्तटम् ॥ ४ ॥

व्यास उवाच—

देवर्षे नारद श्रीमन् साक्षाद् ब्रह्माङ्गसम्भव ।
भवानशेषविद्यानां पारगस्तपसां निधिः ॥ ५ ॥
वेदान्तपारगः सर्वशास्त्रार्थप्रतिभोज्ज्वलः ।
परब्रह्मणि निष्णातः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ६ ॥
जगद्धिताय जनितः साक्षादेव चतुर्मुखात् ।
हन्यन्ते भवता दैत्या दैत्यारिभुजविक्रमैः ॥ ७ ॥
कालोऽनुग्रहकर्ता त्वं त्रैलोक्यं त्वद्वशेऽनघ ।
मनुष्या ऋषयो देवास्त्वया जीवन्ति सत्तम ॥ ८ ॥
कर्तृत्वे लोककार्याणां वरत्वे परिनिष्ठित ।
पृच्छामि त्वामशेषज्ञं निदानं सर्वसम्पदाम् ॥ ९ ॥
सर्वसंसारनिर्मुक्तं चिद्घनं शान्तमानसम् ।
यः सर्वलोकहितकृद्यं प्रशंसन्ति योगिनः ॥ १० ॥
इदं चराचरं विश्वं धृतं येन महामुने ।
स्पृहयन्ति च यत्प्रीत्या यस्मै ब्रह्मादिदेवताः ॥ ११ ॥

निर्माणस्थितिसंहारा यतो विश्वस्य सत्तम।
यस्य प्रसादाद् ब्रह्माद्या लभन्ते वाञ्छितं फलम्॥ १२ ॥
दारिद्र्यनाशो जायेत यस्मिन् श्रुतिपथं गते।
विवक्षितार्थनिर्वाहा मुखान्निःसरतीह गीः॥ १३ ॥
नृपाणां राज्यहीनानां येन राज्यं भविष्यति।
अपुत्रः पुत्रवान् येन वन्ध्या पुत्रवती भवेत्॥ १४ ॥
शत्रूणामचिरान्नाशो ज्ञानं ज्ञानैषिणामपि।
चातुर्वर्गफलं यस्य क्षणाद् भवति सुव्रत॥ १५ ॥
भूतप्रेतपिशाचाद्या यक्षराक्षसपन्नगाः।
भूतज्वरादिरोगाश्च यस्य स्मरणमात्रतः॥ १६ ॥
मुच्यन्ते मुनिशार्दूल येनाखिलजगद्धृतम्।
तदेतदिति निश्चित्य सर्वशास्त्रविशारद॥ १७ ॥
सर्वलोकहितार्थाय ब्रूहि मे सकलं गुरो।
इत्युक्तस्तेन मुनिना व्यासेनामिततेजसा॥ १८ ॥
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा सादरं नारदो मुनिः।
नमस्कृत्य जगन्मूलं लक्ष्मीकान्तं परात् परम्॥ १९ ॥
उवाच परमप्रीतः करुणामृतधारया।
आप्याययन् मुनीन् सर्वान् व्यासादीन् ब्रह्मतत्परान्॥ २० ॥

नारदः—

बहिरन्तस्तमश्छेदि ज्योतिर्वन्दे सुदर्शनम्।
येनाव्याहतसङ्कल्पं यस्तु लक्ष्मीधरं विदुः॥ २१ ॥

विनियोग—ॐ अस्य श्रीसुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रमहामन्त्रस्य अहिर्बुध्न्यो भगवानृषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसुदर्शनमहाविष्णुर्देवता, रं बीजम्, हुं शक्तिः, फट् कीलकम्, 'रां रीं रूं रैं रौं रः' इति मन्त्रः, श्रीसुदर्शनप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

कराङ्गन्यासः— ॐ रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ रीं तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ रैं अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः—ॐ रां ज्ञानाय हृदयाय नमः, ॐ रीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा,
ॐ रूं शक्त्यै शिखायै वषट्, ॐ रैं बलाय कवचाय हुं,
ॐ रौ वीर्यायास्त्राय फट्, ॐ रः तेजसे नेत्राभ्यां वौषट्।

अथ दिग्बन्धः— ॐ ठं ठं पूर्वां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं आग्नेयीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं याम्यां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,

ॐ ठं ठं नैर्ऋतीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं वारुणीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं वायवीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं कौबेरीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं ऐशानीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं ऊर्ध्वां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं अधरां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं सर्वां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा ।

इति दिग्बन्धः ।

सुदर्शनस्य ध्यानम्

कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तं,
रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदं भीमदंष्ट्राट्टहासम् ।
शङ्खं चक्रं गदाब्जं पृथुतरमुसलं चापपाशाङ्कुशादीन्,
बिभ्राणं दोर्भिराद्यं मनसि मुररिपोर्भावये चक्रराजम् ॥ १ ॥

शङ्खं चक्रं गदाब्जं शरमसिमिषुधिं चापपाशाङ्कुशादीन्,
बिभ्राणं वज्रखेटं हलमुसललसत्कुन्तमत्युग्रदंष्ट्रम् ।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं ज्वलदनलनिभं हारकेयूरभूषं,
ध्यायेत् षट्कोणसंस्थं सकलरिपुजनप्राणसंहारचक्रम् ॥ २ ॥

ककारादीनि षोडश नामानि

कल्याणगुणसम्पन्नः कल्याणवसनोज्ज्वलः ।
कल्याणाचलगम्भीरः कल्याणजनरञ्जकः ॥ १ ॥
कल्याणदोषनाशश्च कल्याणरुचिराङ्गकः ।
कल्याणाङ्गदसम्पन्नः कल्याणाकारसन्निभः ॥ २ ॥
करालवदनोऽत्रासी करालाङ्गोऽभयङ्करः ।
करालतनुजोद्दामः करालतनुभेदकः ॥ ३ ॥
करञ्जवनमध्यस्थः करञ्जदधिभोजनः ।
करञ्जासुरसंहर्ता करञ्जमधुराङ्गकः ॥ ४ ॥

खकारादीनि दश

खञ्जनानन्दजनकः खञ्जनाहारभूषितः ।
खञ्जनायुधभृद् दिव्यखञ्जनाखण्डगर्वहृत् ॥ ५ ॥
खरान्तकः खररुचिः खरदुःखैरसेवितः ।
खरान्तकः खरोदारः खरासुरविभञ्जनः ॥ ६ ॥

गकारादीनि द्वादश

गोपालो गोपतिर्गोप्ता गोपस्त्रीनाथरञ्जकः ।
गोजारुणतनुर्गोजो गोजारतिकृतोत्सवः ॥ ७ ॥
गम्भीरनाभिर्गम्भीरो गम्भीरार्थसमन्वितः ।
गम्भीरवैद्यमरुतो गम्भीरगुणभूषितः ॥ ८ ॥

घकारादीन्येकादश

घनरावो घनरुचिर्घनगम्भीरनिस्वनः ।
घनाघनौघनाशी च घनसन्तानदायकः ॥ ९ ॥
घनरोचिर्घनचरो घनचन्दनचर्चितः ।
घनहेतिर्घनभुजो घनोऽखिलसुरार्चितः ॥ १० ॥

ङकारादीनि चत्वारि

ङकारावधिविभवो ङकारो मुनिसम्मतः ।
ङकारवीतसहितो ङकाराकारभूषितः ॥ ११ ॥

चकारादीनि षट्पञ्चाशत्

चक्रराजश्चक्रपतिश्चक्राधीशः सुचक्रभूः ।
चक्रसेव्यश्चक्रधरश्चक्रभूषणभूषितः ॥ १२ ॥
चक्रराजरुचिश्चक्रश्चक्रपालनतत्परः ।
चक्रधृच्चक्रवरदश्चक्रभूषणभूषितः ॥ १३ ॥
सुचक्रधीः सुचक्राख्यः सुचक्रगुणभूषितः ।
विचक्रश्चक्रनिरतश्चक्रसम्पन्नवैभवः ॥ १४ ॥
चक्रदोश्चक्रदश्चक्रश्चक्रराजपराक्रमः ।
चक्रनादश्चक्रचरश्चक्रगश्चक्रपाशकृत् ॥ १५ ॥
चक्रव्यापी चक्रगुरुश्चक्रहारी विचक्रभृत् ।
चक्राङ्गश्चक्रमहितश्चक्रवाकगुणाकरः ॥ १६ ॥
आचक्रश्चक्रधर्मज्ञश्चक्रकश्चक्रमर्दनः ।
आचक्रनियमश्चक्रः सर्वपापविधूननः ॥ १७ ॥
चक्रज्वालश्चक्रधरश्चक्रपालितविग्रहः ।
चक्रवर्ती चक्रदायी चक्रकारी मदापहः ॥ १८ ॥
चक्रकोटिमहानादश्चक्रकोटिसमप्रभः ।
चक्रराजावनचरश्चक्रराजान्तरोज्ज्वलः ॥ १९ ॥
चञ्चलारातिदमनश्चञ्चलस्वान्तरोमकृत् ।
चञ्चलो मानसोल्लासी चञ्चलाचलभासुरः ॥ २० ॥
चञ्चलारातिनिरतश्चञ्चलाधिकचञ्चलः ।

छकारादीनि नव

छाययाखिलतापघ्नश्छायामदविभञ्जनः ॥ २१ ॥
छायाप्रियोऽधिकरुचिश्छायावृक्षसमाश्रयः ।
छायान्वितश्छायायार्च्यश्छायाधिकसुखप्रदः ॥ २२ ॥
छायाम्बरपरीधानश्छायात्मजनमुञ्छितः ।

जकारादीनि षोडश

जलजाक्षीप्रियकरो जलजानन्ददायकः ॥ २३ ॥
जलजासिद्धिरुचिरो जलजालसमो भरः ।
जलजालापसंस्तुत्यो जलजाताय मोदकृत् ॥ २४ ॥
जलजाहारचतुरो जलजाराधनोत्सुकः ।
जनकस्तुतिसन्तुष्टो जनकाराधिताधिकः ॥ २५ ॥
जनकामोदनपरो जनकानन्ददायकः ।
जनकाध्यानसन्तुष्टहृदयो जनकार्चितः ॥ २६ ॥
जनकानन्दजननो जनकृद्धृदयाम्बुजः ।

झकारादीनि चत्वारि

झञ्झामारुतवेगाढ्यो झञ्झामारुतसङ्गरः ॥ २७ ॥
झञ्झामारुतसंरावो झञ्झामारुतविक्रमः ।

ञकारादिनी द्वे

ञकाराम्बुजमध्यस्थो ञकारकृतसन्निधिः ॥ २८ ॥

टकारादीनि नव

टङ्कधारी टङ्कवपुष्टङ्कसंहारकारकः ।
टङ्कच्छिन्नसुवर्णाभष्टङ्कारधनुरुज्ज्वलः ॥ २९ ॥
टङ्काराग्निसमाकारष्टङ्काररवमेदुरः ।
टङ्कारकीर्तिभरितष्टङ्कारानन्दवर्धनः ॥ ३० ॥

डकारादीन्येकोनविंशतिः

डम्भसंहतिसंहर्ता डम्भसन्ततिवर्धनः ।
डम्भधृग् डम्भहृदयो डम्भदण्डनतत्परः ॥ ३१ ॥
डिम्भधृग् डिम्भकृड्डिम्भो डिम्भसूदनतत्परः ।
डिम्भपापहरो डिम्भसम्भावितपदाम्बुजः ॥ ३२ ॥
डिम्भरोद्यत्कटम्बाजो डमरुध्यानतत्परः ।
डमरूद्भवसंहर्ता डमरूद्भवनन्दनः ॥ ३३ ॥
डाडिमीवनमध्यस्थो डाडिमीकुसुमप्रियः ।
डाडिमीफलसन्तुष्टो डाडिमीफलवर्जितः ॥ ३४ ॥

ढकारादीन्यष्टौ

ढक्कामनोहरवपुर्ढक्कारवविराजितः ।
ढक्कवाद्येषु निरतो ढक्काधारणतत्परः ॥ ३५ ॥
ढकारबीजसम्पन्नो ढकाराक्षरमेदुरः ।
ढकारमध्यसदनो ढकारविहितान्त्रकः ॥ ३६ ॥

णकारादीनि चत्वारि

णकारबीजवसतिर्णकारवसनोज्ज्वलः ।
णकारातिगभीराङ्गो णकाराराधनप्रियः ॥ ३७ ॥

तकारादीनि चतुर्दश

तरलाक्षीमहाहर्ता तारकासुरहृत्तरिः ।
तरलोज्ज्वलहाराढ्यस्तरलस्वान्तरञ्जकः ॥ ३८ ॥
तारकासुरसंसेव्यस्तारकासुरमानितः ।
तुरङ्गवदनस्तोत्रसन्तुष्टहृदयाम्बुजः ॥ ३९ ॥
तुरङ्गवदनः श्रीमांस्तुरङ्गवदनस्तुतः ।
तमःपटलसंछन्नस्तमःसन्ततिमर्दनः ॥ ४० ॥
तमोनुदो जलशयस्तमःसंवर्धनो हरः ।

थकारादीनि चत्वारि

थवर्णमध्यसंवासी थवर्णवरभूषितः ॥ ४१ ॥
थवर्णबीजसम्पन्नस्थवर्णरुचिरालयः ।

दकारादीनि दश

दरभृद् दरसाराक्षो दरहृद् दरवञ्चकः ॥ ४२ ॥
दरफुल्लाम्बुजरुचिर्दरचक्रविराजितः ।
दधिसंग्रहणव्यग्रो दधिपाण्डरकीर्तिभृत् ॥ ४३ ॥
दध्यन्नपूजनरतो दधिवामनमोदकृत् ।

धकारादीनि चतुर्विंशतिः

धन्वी धनप्रियो धन्यो धनाधिपसमञ्चितः ॥ ४४ ॥
धरो धरावनरतो धनधान्यसमृद्धिदः ।
धनञ्जयो धनाध्यक्षो धनदो धनवर्जितः ॥ ४५ ॥
धनग्रहणसम्पन्नो धनसम्मतमानसः ।
धनराजवनासक्तो धनराजयशोभरः ॥ ४६ ॥
धनराजमदाहर्ता धनराजसमीडितः ।
धर्मकृद्धर्मभृद्धर्मी धर्मनन्दनसन्नुतः ॥ ४७ ॥

धर्मराजो धनासक्तो धर्मज्ञाकल्पितस्तुतिः ।

नकारादीनि षोडश

नरराजावनायत्तो नरराजाय निर्भरः ॥ ४८ ॥
नरराजस्तुतगुणो नरराजसमुज्ज्वलः ।
नवतामरसोदारो नवतामरसेक्षणः ॥ ४९ ॥
नवतामरसाहारो नवतामरसारुणः ।
नवसौवर्णवसनो नवनाथदयापरः ॥ ५० ॥
नवनाथस्तुतनदो नवनाथसमाकृतिः ।
नालिकानेत्रमहितो नालिकावलिराजितः ॥ ५१ ॥
नालिकागतिमध्यस्थो नालिकासनसेवितः ।

पकारादीन्यष्टादश

पुण्डरीकाक्षरुचिरः पुण्डरीकमदापहः ॥ ५२ ॥
पुण्डरीकमुनिस्तुत्यः पुण्डरीकसुहृद्द्युतिः ।
पुण्डरीकप्रभारम्यः पुण्डरीकनिभाननः ॥ ५३ ॥
पुण्डरीकाक्षसन्मानः पुण्डरीकदयापरः ।
परः परागतिवपुः परानन्दः परात् परः ॥ ५४ ॥
परमानन्दजनकः परमान्नाधिकप्रियः ।
पुष्कराक्षकरोदारः पुष्कराक्षः शिवङ्करः ॥ ५५ ॥
पुष्करव्रातसहितः पुष्करारवसंयुतः ।

अथ फकारादीनि नव

फट्कारतः स्तूयमानः फट्काराक्षरमध्यगः ॥ ५६ ॥
फट्कारध्वस्तदनुजः फट्कारासनसङ्गतः ।
फलाहारः स्तुतफलः फलपूजाकृतोत्सवः ॥ ५७ ॥
फलदानरतोऽत्यन्तफलसम्पूर्णमानसः ।

वकारादीनि षोडश

बलस्तुतिर्बलाधारो बलभद्रप्रियङ्करः ॥ ५८ ॥
बलवान् बलहारी च बलयुग्वैरिभञ्जनः ।
बलदाता बलधरो बलराजितविग्रहः ॥ ५९ ॥
बलालो बलकरो बलासुरनिषूदनः ।
बलरक्षणनिष्णातो बलसम्मोददायकः ॥ ६० ॥
बलसम्पूर्णहृदयो बलसंहारदीक्षितः ।

भकारादीनि चतुर्विंशतिः

भवस्तुतो भवपतिर्भवसन्तानदायकः ॥ ६१ ॥

भवध्वंसी भवहरो भवस्तम्भनतत्परः ।
भवरक्षणनिष्णातो भवसन्तोषकारकः ॥ ६२ ॥
भवसागरसंछेत्ता भवसिन्धुसुखप्रदः ।
भद्रदो भद्रहृदयो भद्रकार्यसमाश्रितः ॥ ६३ ॥
भद्रश्रीचर्चिततनुर्भद्रश्रीदानदीक्षितः ।
भद्रपादप्रियो भद्रो ह्यभद्रवनभञ्जनः ॥ ६४ ॥
भद्रश्रीगानसरसो भद्रमण्डलमण्डितः ।
भरद्वाजस्तुतपदो भरद्वाजसमाश्रितः ॥ ६५ ॥
भरद्वाजाश्रमरतो भरद्वाजदयाकरः ।

मकारादीनि त्रिपञ्चाशत्

मसारनीलरुचिरो मसारचरणोज्ज्वलः ॥ ६६ ॥
मसारसारसत्कार्यो मसारांशुकभूषितः ।
माकन्दवनसञ्चारी माकन्दजनरञ्जकः ॥ ६७ ॥
माकन्दानन्दमन्दारो माकन्दानन्दबन्धुरः ।
मण्डलो मण्डलाधीशो मण्डलात्मा सुमण्डलः ॥ ६८ ॥
मण्डलेशो मण्डलान्तमण्डलार्चितमण्डलः ।
मण्डलावननिष्णातो मण्डलावरणी घनः ॥ ६९ ॥
मण्डलस्थो मण्डलाग्र्यो मण्डलाभरणाङ्कितः ।
मधुदानवसंहर्ता मधुमञ्जुलवाग्भरः ॥ ७० ॥
मधुदानाधिकरतो मधुमङ्गलवैभवः ।
मधुजेता मधुकरो मधुरो मधुराधिपः ॥ ७१ ॥
मधुवारणसंहर्ता मधुसन्तानकारकः ।
मधुमासातिरुचिरो मधुमासविराजितः ॥ ७२ ॥
मधुपुष्टो मधुतनुर्मधुगो मधुसंवरः ।
मधुरो मधुराकारो मधुराम्बरभूषितः ॥ ७३ ॥
मधुरानगरीनाथो मधुरासुरभञ्जनः ।
मधुराहारनिरतो मधुराह्लाददक्षिणः ॥ ७४ ॥
मधुराम्भोजनयनो मधुराधिपसङ्गतः ।
मधुरानन्दचतुरो मधुरारातिसङ्गतः ॥ ७५ ॥
मधुराभरणोल्लासी मधुराङ्गदभूषितः ।
मृगराजवनीसक्तो मृगमण्डलमण्डितः ॥ ७६ ॥
मृगादरो मृगपतिर्मृगारातिविदारणः ।

यकारादीनि दश

यज्ञप्रियो यज्ञवपुर्यज्ञसम्प्रीतमानसः ॥ ७७ ॥

यज्ञसन्ताननिरतो यज्ञसम्भारसम्भ्रमः ।
यज्ञयज्ञो यज्ञपदो यज्ञसम्पादनोत्सुकः ॥ ७८ ॥
यज्ञशालाकृतावासो यज्ञसम्भावितान्नकः ।

रेफादीनि विंशतिः

रसेन्द्रो रससम्पन्नो रसराजो रसोत्सुकः ॥ ७९ ॥
रसान्वितो रसधरो रसचेलो रसाकरः ।
रसजेता रसश्रेष्ठो रसराजाभिरञ्जितः ॥ ८० ॥
रसतत्त्वसमासक्तो रसदारपराक्रमः ।
रसराजो रसधरो रसेशो रसवल्लभः ॥ ८१ ॥
रसनेता रसावासो रसोत्करविराजितः ।

लकारादीन्यष्टौ

लवङ्गपुष्पसन्तुष्टो लवङ्गकुसुमोचितः ॥ ८२ ॥
लवङ्गवनमध्यस्थो लवङ्गकुसुमोत्सुकः ।
लतावलिसमायुक्तो लतारससमर्चितः ॥ ८३ ॥
लताभिरामतनुभृल्लतातिलकभूषितः ।

वकारादीनि सप्तदश

वीरस्तुतपदाम्भोजो विराजगमनोत्सुकः ॥ ८४ ॥
विराजपत्रमध्यस्थो विराजरससेवितः ।
वरदो वरसम्पन्नो वरो वरसमुन्नतः ॥ ८५ ॥
वरस्तुतिर्वर्धमानो वरधृद् वरसम्भवः ।
वरदानरतो वर्यो वरदानसमुत्सुकः ॥ ८६ ॥
वरदानार्द्रहृदयो वरवारणसंयुतः ।

शकारादीनि पञ्चविंशतिः

शारदास्तुतपादाब्जः शारदाम्भोजकीर्तिभृत् ॥ ८७ ॥
शारदाम्भोजनयनः शारदाध्यक्षसेवितः ।
शारदापीठवसतिः शारदाधिपसन्नुतः ॥ ८८ ॥
शादावासदमनः शारदावासभासुरः ।
शतक्रतुस्तूयमानः शतक्रतुपराक्रमः ॥ ८९ ॥
शतक्रतुसमैश्वर्यः शतक्रतुमदापहः ।
शरचापधरः श्रीमान् शरसम्भववैभवः ॥ ९० ॥
शरपाण्डरकीर्तिश्रीः शरत्सारसलोचनः ।
शरसङ्गमसम्पन्नः शरमण्डलमण्डितः ॥ ९१ ॥
शरातिगः शरधरः शरलालनलालसः ।

शरोद्भवसमाकारः शरयुद्धविशारदः ॥ ९२ ॥
शरवृन्दावनरतिः शरसम्मतविक्रमः ।

षकारादीनि षोडश

षट्पदः षट्पदाकारः षट्पदावलिसेवितः ॥ ९३ ॥
षट्पदाकारमधुरः षट्पदी षट्पदोद्धतः ।
षडङ्गवेदविनुतः षडङ्गपदमेदुरः ॥ ९४ ॥
षट्पद्मकवितावासः षड्बिन्दुरचितद्युतिः ।
षड्बिन्दुमध्यवसतिः षड्बिन्दुविशदीकृतः ॥ ९५ ॥
षडाम्नायस्तूयमानः षडाम्नायान्तरस्थितः ।
षट्छक्तिमङ्गलवृतः षट्चक्रकृतशेखरः ॥ ९६ ॥

सकारादीनि विंशतिः

सारसारसरक्ताङ्गः सारसारसलोचनः ।
सारदीप्तिः सारतनुः सारसाक्षकरप्रियः ॥ ९७ ॥
सारदीपी सारकृपः सारसावनकृज्ज्वलः ।
सारङ्गसारदमनः सारकल्पितकुण्डलः ॥ ९८ ॥
सारसारण्यवसतिः सारसारवमेदुरः ।
सारगानप्रियः सारः सारसारसुपण्डितः ॥ ९९ ॥
सद्रक्षकः सदामोदी सदानन्दनदेशिकः ।
सद्वैद्यवन्द्यचरणः सद्वैद्योज्ज्वलमानसः ॥ १०० ॥

हकारादीनि चतुःषष्टिः

हरिजेता हरिरथो हरिसेवापरायणः ।
हरिवर्णो हरिचरो हरिगो हरिवत्सलः ॥ १०१ ॥
हरिद्रो हरिसंस्तोता हरिध्यानपरायणः ।
हरकल्पान्तसंहर्ता हरिसारसमुज्ज्वलः ॥ १०२ ॥
हरिचन्दनलिप्ताङ्गो हरिमानससम्मतः ।
हरिकारुण्यनिरतो हंसमोचनलालसः ॥ १०३ ॥
हरिपुत्राभयकरो हरिपुत्रसमञ्चितः ।
हरिधारणसांनिध्यो हरिसम्मोददायकः ॥ १०४ ॥
हेतिराजो हेतिधरो हेतिनायकसंस्तुतः ।
हेतिर्हरिर्हेतिवपुर्हेतिहा हेतिवर्धनः ॥ १०५ ॥
हेतिहन्ता हेतियुद्धकरो हेतिविभूषणः ।
हेतिदाता हेतिपरो हेतिमार्गप्रवर्तकः ॥ १०६ ॥
हेतिसन्ततिसम्पूर्णो हेतिमण्डलमण्डितः ।

हेतिदानपरः सर्वहेत्युग्रपरिभूषितः ॥ १०७ ॥
हंसरूपी हंसगतिर्हंससन्नुतवैभवः ।
हंसमार्गरतो हंसरक्षको हंसनायकः ॥ १०८ ॥
हंसदृग्गोचरतनुर्हंससङ्गीततोषितः ।
हंसजेता हंसपतिर्हंसगो हंसवाहनः ॥ १०९ ॥
हंसजो हंसगमनो हंसराजसुपूजितः ।
हंसवेगो हंसधरो हंससुन्दरविग्रहः ॥ ११० ॥
हंसवत् सुन्दरतनुर्हंससङ्गतमानसः ।
हंसस्वरूपसारज्ञो हंससन्नतमानसः ॥ १११ ॥
हंससंस्तुतसामर्थ्यो हरिरक्षणतत्परः ।
हंससंस्तुतमाहात्म्यो हरपुत्रपराक्रमः ॥ ११२ ॥

क्षकारादीनि द्वादश नामानि

क्षीरार्णवसमुद्भूतः क्षीरसम्भवभावितः ।
क्षीराब्धिनाथसंयुक्तः क्षीरकीर्तिविभासुरः ॥ ११३ ॥
क्षणदारवसंहर्ता क्षणदारवसम्मतः ।
क्षणदाधीशसंयुक्तः क्षणदानकृतोत्सवः ॥ ११४ ॥
क्षीराभिषेकसन्तुष्टः क्षीरपानाभिलाषुकः ।
क्षीराज्यभोजनासक्तः क्षीरसम्भववर्णकः ॥ ११५ ॥

फलश्रुतिः

इत्येतत् कथितं दिव्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ ११६ ॥
सर्वसौभाग्यजनकं सर्वमङ्गलकारकम् ।
सर्वदारिद्र्यशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ ११७ ॥
सर्वशान्तिकरं गुह्यं सर्वरोगनिवारणम् ।
अतिबन्धग्रहहरं सर्वदुःखनिवारकम् ॥ ११८ ॥
नाम्नां सहस्रं दिव्यानां चक्रराजस्य सत्पतेः ।
नामानि हेतिराजस्य ये पठन्तीह मानवाः ।
तेषां भवन्ति सकलाः सम्पदो नात्र संशयः ॥ ११९ ॥

॥ इत्यहिर्बुध्न्यसंहितायां तन्त्ररहस्ये व्यासनारदसंवादे
श्रीसुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

⁂

पारिभाषिक शब्द कोष

अनुतारा — श्रीं (अहि०सं० ५१.६४)।

आगम — सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन और ध्यानयोग—इन सात विषयों का प्रतिपादक तथा कर्म, उपासना और ज्ञान की प्राप्ति के उपायों का कथन करने वाले शास्त्र ग्रन्थ। निगम (वेद) से विभिन्न ग्रन्थों को आगम ग्रन्थ कहते हैं। शैव, शाक्त और पाञ्चरात्र आगम वेद बाह्य किन्तु वेदानुकूल होने से वैदिक माने जाते हैं। बौद्ध जैनादि आगम इसी दृष्टि से अवैदिक कहे गए हैं।

ऐश्वर्य — स्वातन्त्र्यपरिबृंहित जगत्कर्तृत्व।

चतुरक्षरी कूट — स् अ ह् अ = सह (अहि०सं० १८.९-१५)।

जितन्ता मन्त्र — (अहि०सं० ५३.८५) सम्पूर्ण श्लोक मन्त्र लक्ष्मी तन्त्र २४.६९ में प्राप्त है—

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥

ज्ञान — स्वप्रकाश और नित्य सर्वापगाही गुण को 'ज्ञान' कहते हैं।

तार — ॐ।

तारा — ह्रीं (अहि०सं० ५१.६०)।

त्र्यक्षरी कूट — स् र् आ = स्रा (अहि०सं० १८.९-१५)।

दशाक्षरी कूट — स् अ ह् अ स् स् र् आ र् अ = सहस्रार (अहि०सं० १८.९-१५)।

धी — एक (अहि०सं० १६.९७)।

पाञ्चरात्रागम — पाञ्चरात्रागम के विषय—ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या।

बल — जगत् के निर्माण में श्रमाभाव नारायण का बल है।

रस — छ: (अहि०सं० १६.९७)।

वीर्य — विकारराहित्य, निर्विकार ब्रह्म में जगदुपादान कारण होने पर भी किसी भी प्रकार के विकार का उदय न होना।

व्यूह — षाड्गुण्य में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि।

षाड्गुण्य — १. ज्ञान, २. शक्ति, ३. ऐश्वर्य, ४. बल, ५. वीर्य एवं ६. तेज।

शक्ति — जगत् का उपादान कारण।

* * *

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

- **तन्त्रविज्ञान और साधना** । सीताराम चतुर्वेदी
- **तन्त्रसारसङ्ग्रहः** । नारायण विरचित । सव्याख्या । आंग्ल एवं संस्कृत भूमिका सहित । वैद्यराज प० एम० दुरैस्वामी आंयगार
- **दुर्गासप्तशती** । दुर्गाप्रदीप-गुप्तवती-चतुर्धरी-शान्तनवी-नागोजीभट्टी-जगच्चन्द्रिका-दंशोद्धार नामक सप्तटीकायुक्त । हरिकृष्ण शर्मा संग्रहित ।
- **देवीरहस्यम्** । परिशिष्ट सहित (श्रीरुद्रयामलतन्त्रान्तर्गत)। सम्पादक-रामचन्द्र काक एवं हरभट्टशास्त्री ।
- **प्रपञ्चसारसारसंग्रहः (1-2 भाग)** । गीर्वाणेन्द्रसरस्वतीविरचित । के.एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री सम्पादित
- **पुरश्चर्यार्णवः (तन्त्रम्)**। श्रीनेपालमहाराजाधिराज श्रीप्रतापसिंह साहदेव विरचित । सम्पादक- म० म० पण्डितमुरलीधर झा महोदय
- **बृहत्तन्त्रसारः** । कृष्णानन्द आगमवागीशकृत । 'साधनात्मक' हिन्दी टीका सहित । श्रीकपिलदेव नारायण ।
- **भारतीय शक्ति-साधना** । (शक्ति-विज्ञानः स्वरुप एवं सिद्धान्त) । डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
- **महाकालसंहिता** । कामकला कालीखण्ड । 'ज्ञानवती' हिन्दी भाष्य सहित। प्रो० राधेश्याम चतुर्वेदी
- **मन्त्रमहोदधि** । श्रीमन्महीधर विरचित । स्वोपज्ञ 'नौका' संस्कृत टीका तथा 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार - डॉ० सुधाकर मालवीय
- **रुद्रयामलतन्त्र (1-2 भाग)** । हिन्दी टीका सहित । टीकाकार-डॉ० सुधाकर मालवीय
- **ललितासहस्रनाम** । भास्करराय प्रणीत 'सौभाग्यभास्करभाष्य' एवं श्रीभारतभूषण कृत विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित ।
- **शारदातिलकम् (1-2 भाग)** । लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कृत । राघवभट्ट कृत 'पदार्थादर्श संस्कृत टीका एवं डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी टीका सहित ।
- **सौन्दर्यलहरी** । हिन्दी-भाषा-भाष्य । व्याख्याकार - पं० हरिदत्तशास्त्री

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली